# THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186732

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRAR
Call No. H323.2/R16R Accession No. H247
Author राजकुमार
Title राजनीतिक भारत। 1956
This book should be returned on or before the date last marked below.

# राजनीतिक भारत

[१७५७–१९५६]

लेखक

राजकुमार

सर्वोदय साहित्य मंदिर,
कोठी, (बसन्तएण्ड,) हैदराबाद ४.



हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

वाराणसी ।

आत्मा राम एण्ड संस
कश्मीरी गेट, देहली

प्रकाशक

ओम्प्रकाश बेरी

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

पो० बॉक्स० नं० ७०, ज्ञानवापी

वाराणसी ।

प्रथम संस्करण

१९५६

मूल्य : दस रुपया

मुद्रक

चिनगारी प्रेस

वाराणसी ।



सादर समर्पित

अग्रज श्री मदनलाल वाही

को

जिनका असीम प्यार,

ममता और स्नेह

ही मुझमें जीवन के

प्रति आसक्ति उत्पन्न

कर सका और मैं

यह समझ सका—

मानवता है क्या!

—राजकुमार



# अपनी ओर से

प्रस्तुत इतिहास पलासी की लड़ाई से आरम्भ होता है। इस काल से सितम्बर १९५६ तक की प्रायः सभी राजनीतिक घटनाओं का समावेश इसमे करने की चेष्टा की गयी है। इसमें तिथि-क्रम पर ध्यान रखते हुए भी परस्पर सम्बद्ध घटनाओं को स्थान-स्थान पर एक साथ प्रस्तुत करने की चेष्टा की गयी है ताकि विवरण स्पष्टतः और सरलता से मस्तिष्क में उतर सके।

इस इतिहास मे, विवादास्पद घटनाओं के सम्बन्ध में, जो मत यथार्थ माना गया है, उसके पक्ष मे प्रमाण भी प्रस्तुत किये गये है। सक्षेप मे परस्पर-विरोधी मतों की ओर भी संकेत कर कर दिया गया है। इसमें एक-दो नयी मान्यताओं की ओर भी संकेत किया गया है, जिनसे सम्बन्धित तथ्यों का निरूपण अन्तिम रूप मे करने के लिए अभी तथ्यों के अन्वेषण की आवश्यकता है।

इतिहास स्पष्टतः दो भागों में विभक्त है—(१) पलासी से भारत की स्वतन्त्रता तक और (२) स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय से १९५६ तक। दोनों भागों की विवरण शैली अलग-अलग है। इतिहास को सरल और बोधगम्य बनाने के लिए ही ऐसा किया गया है। प्रथम भाग में सम्बन्धित घटनाओं पर ध्यान देते हुए तिथि-क्रम के अनुसार मुख्य घटनाएँ उल्लिखित है। कारण यह है कि यह काल भारत के पराभव का काल था और इसमें

मुख्य समस्या राजनीतिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति के संघर्ष से किसी न किसी रूप में सम्बद्ध थी। इसके आधार पर ही सभी घटनाएँ खिचती चली आयी। स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद यह समस्या समाप्त हो गयी। साथ ही अनेक नयी राजनीतिक समस्याएँ भी उत्पन्न हो गयीं। ये सभी महत्त्वपूर्ण रही है। प्रथम भाग की विवरण शैली के अनुसार यदि इनका वर्णन किया जाता तो अनेक समस्याएँ एक में गुथ जाती और उनका स्वरूप स्पष्ट न हो पाता। इस दुरूहता को समाप्त करने के लिए अगस्त १९४७ के बाद की प्रमुख राजनीतिक घटनाओं का विवरण समस्या विशेष को लेकर पृथक-पृथक किया गया है। इसमें स्वतंत्रोत्तर भारत की प्रत्येक राजनीतिक समस्या और उससे सम्बन्धित घटनाओं का स्वरूप बिलकुल स्पष्ट हो गया है। फलत प्रत्येक समस्या सलरता से समझ में आ जाती है।

प्रयास कहाँ तक सफल हुआ है, इसका निर्णय पाठक ही करेगे। अपनी ओर से इतना ही कहा जा सकता है कि प्रस्तुत इतिहास को सरल बनाने की चेष्टा की गयी है। सहायक ग्रंथों का चुनाव करते समय इस बात पर पूरा-पूरा ध्यान दिया गया है।

अंत मे उन लोगो के प्रति आभार प्रकट कर देना भी उचित ही होगा, जिनकी पुस्तकों का सहारा यह इतिहास तैयार कर मे लिया गया है।

—लेखक

—×—

**स्पष्टीकरण**—प्रथम पचवर्षीय आयोजना सम्बन्धी अध्याय में कांडला बंदरगाह के निर्माण को योजना के प्रथम चरण का ही निर्माण-कार्य समझना चाहिये । पर-राष्ट्र नीति-सम्बन्धी अध्याय में चीन को मान्यता देने के प्रसंग में यह समझना चाहिये कि बरमा के अनुरोध पर भारत ने अपने निर्णय के बावजूद प्रत्यक्षतः पहले उसे मान्यता प्रदान करने का अवसर दिया था।

# विषय-सूची


| | | पृ० सं० |
|---|---|---|
| १. | विषय-प्रवेश ... | १ |
| २. | अंग्रेजी राज की नींव ... | ३४ |
| ३. | प्रत्यक्ष शासन और लूट ... | ४३ |
| ४. | दक्षिण में उथल-पुथल ... | ५० |
| ५. | मराठों की राजनीति ... | ५८ |
| ६. | अंग्रेजों के प्रभुत्व का विस्तार ... | ७६ |
| ७. | मराठा शक्ति का पराभव ... | ९० |
| ८. | हिमालय की सीमा से बरमा तक ... | ११४ |
| ९. | सिखों मे फूट और पंजाब का पतन ... | १२७ |
| १०. | डलहौजी की अपहरण-नीति ... | १५१ |
| ११. | प्रथम स्वातन्त्र्य युद्ध ... | १५८ |
| १२. | भारत की आर्थिक लूट ... | १८८ |
| १३. | अंग्रेजी सत्ता-विरोधी आन्दोलन ... | १९५ |
| १४. | विक्टोरिया-काल--राजनीतिक और आर्थिक पक्ष .. | २०४ |
| १५. | कांग्रेस .. | २१७ |
| १६. | बंग-भंग और उसके बाद ... | २२८ |
| १७. | गांधीयुग का आरम्भ .. | २३६ |
| १८. | औपनिवेशिक स्वराज्य की मांग .. | २५५ |
| १९. | पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा और सत्याग्रह .. | २६३ |
| २०. | चुनाव, मंत्रिमण्डल और विचार-संघर्ष .. | २८७ |
| २१. | द्वितीय महायुद्ध और भारत | ३०० |

| | | |
|---|---|---|
| २२. सन् ४२ का विद्रोह और अकाल | ... | ३२० |
| २३. समझौते की योजनाएँ और चुनाव | ... | ३३२ |
| २४. आजाद हिन्द फौज | ... | ३४१ |
| २५. आजादी और उसकी पृष्ठभूमि | ... | ३५० |
| २६. अन्तरिम व्यवस्था-सम्बन्धी आदेश | ... | ३८० |
| २७. पंजाब और सीमाप्रान्त का नरमेध | ... | ३८७ |
| २८. कश्मीर की समस्या | ... | ३९५ |
| २९. भारत-पाकिस्तान समझौता | ... | ४२० |
| ३०. नहर के पानी का विवाद | ... | ४२७ |
| ३१. भारत का पौण्ड-पावना | .. | ४३१ |
| ३२. रियासतों की समस्या का अंत | . | ४३७ |
| ३३. गणराज्य भारत का संविधान | . | ४५२ |
| ३४. फ्रांसीसी और पुर्तगाली बस्तियां | ... | ४५८ |
| ३५. विस्थापितों का पुनर्वास | ... | ४६९ |
| ३६. प्रथम पंचवर्षीय आयोजना | ... | ४७९ |
| ३७. आम निर्वाचन | ... | ५०२ |
| ३८. राज्यों का पुनर्संघटन | ... | ५०६ |
| ३९. द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना | ... | ५२१ |
| ४०. परराष्ट्र-नीति | .. | ५४२ |
| ४१. उपसंहार | . | ५५६ |


—:o:—

# विषय-प्रवेश

भारत के पिछले दो सौ वर्षों का इतिहास राग और द्वेष, कलह और षड्यन्त्र, दम्भ और अदूरदर्शिता, शोषण और उत्पीड़न, तथा दलन और दोहन की घटनाओं से भरा है। सत्रहवीं शती से ही भारत का स्वरूप क्रमशः बदलने लगा और सोने की वह चिड़िया ब्रिटिश शासन की जड़ जमते-जमते मर गयी जिसकी शोहरत ने विदेशियों से बड़े-बड़े रेगिस्तान पार करा दिये, हजारों मील की विपत्ति से भरी यात्राएँ पूरी करा दी और समुद्र की लम्बाई नपवा दी।

भारत के इतिहास का यह काल अपनी विशेषताओं से भरा है। इन्हें समझने के लिए अट्ठारहवीं शती के उत्तरार्द्ध से कम से कम सौ वर्ष पूर्व की घटनाओं पर दृष्टि डालनी होगी। इनके विनाशकारी प्रभाव से उत्पन्न स्थिति के गर्भ में ही उस भयावह राजनीतिक भूचाल ने जन्म ग्रहण किया जिसकी चपेट में पड़कर धन-धान्य से भरा-पूरा यह देश उजाड़ खंड हो गया और अपनी आजादी को खो बैठा।

अरब, तुर्क, तातार, मुगल और अफगान—सबने समय-समय पर भारत पर आक्रमण किया, उसे लूटा और रौंदा; लेकिन वास्तव में विजयी न हो सके। उन्होंने भारत की भूमि पर अधिकार कर लिया, यह सही है; लेकिन भारत की संस्कृति और सभ्यता से वे टक्कर न ले सके। इनके प्रखर प्रकाश का सामना होने पर विदेशियों की बर्बरता से भरी आँखें चौंधियाँ उठीं। पराजित होकर वे अपना-अपना सिर झुकाते गये। वे भारतीय हो गये। अंग्रेज पहले विजेता थे जिन्होंने भारत को लूटने के साथ-साथ उसकी संस्कृति और सभ्यता को भी उध्वस्त् कर दिया। मार्क्स सदृश इतिहास के सफल समीक्षकों ने यह मत व्यक्त किया है कि 'अंग्रेजों की सभ्यता, भारतीयों की सभ्यता से ऊँची थी* इसलिए भारतीय सभ्यता उन पर हावी न हो सकी।' मार्क्स का अभिप्राय जड़ता से था। जो इस देश की विशेषता हो गयी थी।

---

* न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून के ८ अगस्त, १८५३ के अंक में प्रकाशित कार्ल मार्क्स का पत्र। 'आर्टिकल्स आन इण्डिया' नामक संग्रह से उद्धरित।

अंग्रेजों की सभ्यता की कहानी भी कम दिलचस्प नहीं है। यद्यपि उन्होंने अपनी बर्बरता को इतिहास के पृष्ठों से मिटाने की काफी कोशिश की तथापि वे सफल न हो सके। उनमें भी कुछ ईमानदार लोग थे जो सत्य को प्रकट करने-वाले सूत्र कहीं-कहीं छोड़ गये। इन्हीं सूत्रों के आधार पर किया जाने वाला अनुसंधान एकबार नहीं अनेक बार, मक्कारी और फरेब से लिपटी इस उक्ति का नग्न रूप प्रकट कर चुका है कि 'अंग्रेज भारत पर विजय प्राप्त करने में इसलिए सफल हुए कि वे अपने साथ निर्दलन से मुक्ति और शांति का संदेश लाये थे।'* वास्तव में अंग्रेज सफल इसलिए हुए कि वे जाल और षड्यंत्र रचने में, बेइमानी और मक्कारी का सहारा लेने में सबसे आगे थे। जहाँ एक ओर यह स्थिति थी, वहीं दूसरी ओर अनेक खंडों में विभक्त भारत के सामंतों और शासकों में दूरदर्शिता और राष्ट्रीयता का व्यापक अभाव था। संकुचित स्वार्थों की पूर्ति और अधिकार-लिप्सा के नशे ने उन्हें अन्धा बना रखा था। वे देख नहीं पा रहे थे कि कहाँ क्या हो रहा है। फलतः 'मुगलों की सर्वोच्च शक्ति मुगल सूबेदारों ने तोड़ी। सूबेदारों की ताकत मराठों ने नष्ट की। मराठों की शक्ति को अफगानों ने समाप्त किया और जब सब एक दूसरे से लड़ रहे थे—अंग्रेज आया और खुद बादशाह बन बैठा।'† इससे पूर्व लगातार लगभग सवा सौ वर्षों तक—सन १४९८ से, जब पुर्तगाली वास्कोडिगामा ने कालीकट में पैर रखा, लेकर सन १६३९ तक जब मद्रास की नींव पड़ी—क्रमशः अधिकाधिक शक्ति ग्रहण करने वाली अंग्रेजी नौसेना की ओर किसी का ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ। सन १५८८ में यूरोप में अंग्रेजों ने अपने प्रबल शत्रु स्पेन के राजा फिलिप का जंगी बेड़ा फूंकने में सफलता हासिल की और इधर भारत में सूरत के पास पुर्तगाली बेड़े को शिकस्त दी। इंग्लैण्ड के शाह जेम्स प्रथम का राजदूत मुगल बादशाह जहाँगीर के दरबार में हाजिर हुआ (१६१५) और उसने भारत में कारखाना खोलने की आज्ञा प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की। सूरत में अंग्रेजों के कारखाने खुल गये और १६३९ में उन्होंने मद्रास की नींव डाली। इस अवधि में यूरोप में जो क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए उनकी ओर भारतीय रियासतों ने ध्यान नहीं दिया। अंग्रेजों को नगण्य समझते हुए वे आपसी कलह में ही बरबाद होती गयीं। पिता, पुत्र पर अविश्वास करता और पुत्र, पिता की गरदन उतारने के मौके

* 'ए हिस्ट्री आव यूरोप'—एच० ए० एल० फिशर, पृष्ठ संख्या १०२०

† न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून के ८ अगस्त, १८५३ के अंक में प्रकाशित कार्ल मार्क्स का पत्र।

की ताक में रहना। जिस मुगल बादशाह जहाँगीर के जमाने में अंग्रेजों ने भारत में अपना पैर टिकाया, उसे स्वतः अपने पुत्र की बगावत का सामना करना पड़ा। सन १६२२ में ईरान के शाह अब्बास ने कंदहार को घेर कर जहाँगीर को चुनौती दी। अपने पुत्र शाहजहाँ के नेतृत्व में एक विशाल सेना शाह अब्बास के विरुद्ध भेजने की तैयारी जहाँगीर कर ही रहा था कि शाहजहाँ विद्रोह कर बैठा। उसने अपने भाई खुर्रम की हत्या कर डाली और 'दक्षिण के सूबेदारों पर विजय प्राप्त की। अपने पिता को उसने शासन की बागडोर संभालने के अयोग्य घोषित किया. क्योंकि वह मुलताना ( नूर महल ) के आगे भींगी बिल्ली की तरह झुक गया था। नर्वदा के तट पर विद्रोही शाहजहाँ और बादशाह जहाँगीर की फौजों का मुकाबला हुआ। शाहजहाँ की फौजें पराजित हुईं और वह स्वयं मौत के मुंह में जाते-जाते निकला। किसी प्रकार वह रणक्षेत्र से भाग निकला। अगले तीन-चार वर्षों तक उसने एक आवारे की जिंदगी व्यतीत की।*

फूट और स्वार्थपरता का यह चित्र अभी अधूरा है। जहाँगीर अपने सेनापति महावत खाँ की सूझ-बूझ और वीरता के कारण विद्रोही शाहजादे शाहजहाँ पर काबू पाने में समर्थ हुआ था। नूरजहाँ के कारण वह इसमें भी दुश्मनी मोल ले बैठा। उसने बादशाह का दिमाग यह मंत्र फूंक कर विकृत कर दिया कि जो "ताज को बनाये रखने की ताकत रखता है, वह उसे बिगाड़ भी सकता है।" परिणामतः जहाँगीर महावत खाँ से असंतुष्ट हो गया। उसने उसे जलील किया। महावत खाँ जिस शक्तिशाली दुर्ग का शासक था, वह उसके हाथ से जहाँगीर ने ले लिया और मुलताना के एक पिट्ठू को उसका शासक बना दिया। अपने आत्म-सम्मान पर पहुंचने वाली चोट के कारण महावत खाँ तिलमिला उठा और अपने पाँच हजार विश्वस्त राजपूतों के साथ बाद में उसने विद्रोह कर दिया। यह बहुत बड़ी घटना थी, क्योंकि इसके बाद ही जिस समय जहाँगीर लाहौर से काबुल की ओर बढ़ रहा था, झेलम पर महावत खाँ उसे कैद करने में सफल हो गया। लेकिन बाद में उसने बादशाह को मुक्त कर दिया। दूसरे ही वर्ष सन १६२७ में बादशाह की मृत्यु हो गयी और शाहजहाँ गद्दी पर बैठा।

यह वह काल था जब अंग्रेजों की जड़ें भारत में जमने लगी थीं और

* हिस्ट्री आव दि ब्रिटेश इम्पायर इन इण्डिया—जी० आर० ग्लेइग, खण्ड १, पृष्ठ सं० १९१.

पंद्रहवीं शती के आखिरी दिनों में यहाँ आने वाले पुर्तगालियों के बेड़े पर कप्तान टामस वेस्ट का अंग्रेजी बेड़ा विजय प्राप्त कर चुका था ( सन् १६१२ )।

शाहजहाँ कालीन भारत अपने ऐश्वर्य, अपनी समृद्धि के लिए प्रसिद्ध है। इस काल में ही जगत् प्रसिद्ध ताजमहल का निर्माण हुआ। तख्त ताउस शाहजहाँ ने ही बनवाया जिसमें लगे जवाहरातों की जगमगाहट देखने वालों की आँखें चौधियाँ जाती थीं। कालान्तर में जिसे नादिरशाह ने लूटा और जिसमें जड़ा हुआ प्रसिद्ध कोहनूर हीरा आज भी ब्रिटिश ताज की शोभा बढ़ा रहा है। जनता भी बे फिक्र थी। गाँव स्वावलम्बी थे। यह सब था लेकिन उस राजनीतिक सूझ-बूझ और दूरदर्शिता का अभाव बना ही रहा जो व्यापारियों के रूप में भारत में आने वाले विदेशियों की असली सूरत को पहचान सकती थी।

६ अगस्त, १४९८ को पुर्तगाली वास्कोडिगामा का जहाजी-बेड़ा कालीकट के किनारे लगा था। सन् १५०० में उन्होंने कालीकट में अपना कारखाना खोला। इसके ६ वर्ष बाद अल बुकर्क ने गोवा पर कब्जा कर लिया। यहाँ से इनकी लूट-मार ने जोर पकड़ा और ये बंगाल तक धावा मारने लगे। असहाय नागरिकों को ये पकड़ कर ले जाते। उनके हाथों और पैरों को छेद-छेद कर उन्हें रस्सियों में जकड़ते और फिलिपाइस आदि में ले जाकर गुलामों के रूप में बेच देते। उनकी ताकत क्रमशः बढ़ती गयी और 'चौबीस वर्षों के अल्प काल में आशा अन्तरीप से लेकर चीन के तटवर्ती प्रान्तों तक—बारह हजार मील की लम्बाई में व्यापार के प्रायः सभी प्रमुख केन्द्रों पर उनका अधिकार हो गया।'* शाहजहाँ के शासन-काल में हुगली की कोठी की उन्होंने किलेबन्दी कर रखी थी और बावजूद बादशाह की आज्ञा के उन्होंने इसको नहीं ढाया। बादशाह ने इसका बदला जरूर लिया। उसने किले पर चढ़ाई की। पुर्तगालियों के लगभग दस हजार आदमी तलवार के घाट उतार दिये गये। चार-पाँच हजार व्यक्ति कैद किये गये। यह सब हुआ लेकिन इसका इरादा राजनीतिक नहीं था। यह सब 'शाहंशाही' रुतबा कायम रखने के लिए किया गया। यदि ऐसा न होता तो इस काल में ही अंग्रेजों को वे सुविधाएं न प्राप्त होतीं जो उनके राजनीतिक प्रतिद्वंद्वियों से छीनी गयी थीं। उन्होंने भारत के पूर्वी तट पर बसना शुरू किया। मछलीपट्टम्, बालेश्वर और हुगली

---

* हिस्ट्री आव दि ब्रिटिश इम्पायर इन इण्डिया—जी० आर० रलेइग खंड १ पृ० सं० ३२१-२२

में कोठिया बनायीं। इतना ही नहीं, डे नामक एक अंग्रेज व्यापारी ने कारो मंडल तट पर एक हिन्दू राजा से पाँच सौ पौण्ड सालाना किराये पर जमीन की ६ मील चौड़ी पट्टी पट्टे पर ले ली। उसने यहाँ किला बनाया जिसका नाम फोर्ट सेण्ट जार्ज पड़ा। इस किले पर तोपें तक चढ़ायी गयीं। बाद में यहाँ व्यापार का एक केन्द्र बना जो मद्रास के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इस समय तक (सन् १६४०) पुर्तगाल, स्पेन से मुक्त हो गया था। यूरोप में पुर्तगाल और इंग्लैंड के बीच मैत्री कायम हो गयी थी। इसका लाभ अंग्रेजों ने भारत में भी उठाया। पुर्तगालियों को पीछे छोड़कर अंग्रेजों ने बंगाल के सूबेदार शाहजादा शुजा से विशेष सुविधाएं प्राप्त की और तीन हजार रुपये वार्षिक एक मुश्त देकर बिना चुंगी दिये बंगाल में व्यापार करने की इजाजत हासिल कर ली। यह सारी कारवाई उस हालत में पूरी हुई जब अंग्रेज का दस्यु रूप प्रकट हो चुका था और शाहजहाँ उसे देख चुका था। डे नामक अंग्रेज द्वारा कारोमंडल में जमीन हासिल की जाने से पूर्व इंग्लैण्ड के बादशाह का परवाना रखने वाले अंग्रेज सन् १६३५ और सन १६३८ के बीच भारतीय समुद्र में खुलकर डकैती करते थे। उन्होंने बादशाह की ओर से तिजारत करने वाले अरबों को भी कई बार लूटा। जिस प्रकार हुगली में किले बंदी तोड़ने की आज्ञा की अवहेलना करने पर शाहजहाँ ने पुर्तगालियों से बदला लिया था, उसी प्रकार उसने अंग्रेजों से भी बदला लिया। उसने सूरत के सब अंग्रेजों को कैद करवा दिया और भारी हरजाना वसूल करने के बाद ही उन्हें छोड़ा। यह भी शाहशाही आन-बान का ही दौर था। राजनीतिक दूर-दर्शिता का दिवाला तब भी पिटा हुआ था। मिजाज में शहशाहियत के नशे का पुट, आने वाले खतरे को देखने ही नहीं देता था। नाराज होने पर मुगल बादशाह खून की नदियाँ बहा देता और खुश होने पर बेफिक्री के साथ साँप को दूध पिलाने लगता। अंग्रेजों की डकैती से क्रुद्ध होकर शहशाह शाहजहाँ ने सूरत के सभी अंग्रेजों की मुश्कें कसवा दीं। वह खुश हुआ तो इतना अधिक खुश हो गया कि अंग्रेजों को अपने साम्राज्य में मुक्त रूप से व्यापार करने की इजाजत दे दी। यह सुविधा ही वास्तव में आगे चलकर अंग्रेजी हुकूमत के जहरीले पौधे की जड़ साबित हुई।

"मद्रास में प्रेसीडेंसी की स्थापना से कुछ समय पूर्व अंग्रेजों को बंगालमें उन विशेष सुविधाओं में से जो प्रथम सुविधा प्राप्त हुई, वह बाद में उनकी शक्ति की जड़ सिद्ध हुई। कम्पनी की सेवा में ब्राउन नाम का एक चिकित्सक नियुक्त था...जो एक मिशन के साथ सूरत से आगरा गया। गम्भीर रूप में

ज्वराक्रांत शाहजहाँ की पुत्री को रोग-मुक्त करने में भाग्यवश उसे सफलता मिली। मुगल सम्राट ने इसके बदले में उसे विभिन्न पुरस्कार दिये। इनमें समस्त साम्राज्य में मुक्त रूप से व्यापार कर सकने का आदेश भी शामिल था।"* बाटन आगरा से दिल्ली पहुँचा। यहाँ नवाब से भी उसे उपर्युक्त सुविधा प्राप्त हुई और अंग्रेजों को बिना चुंगी दिये व्यापार करने का अधिकार मिल गया। फलतः उन्होंने सन् १६३६ में हुगली में अपना प्रथम कारखाना स्थापित किया।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, एक ओर शाही तबियत ने दूरदेशी का गला घोंट रखा था जिसके कारण तोपों का निर्माण करने तथा उपयोग करने की कला में भारतीय यूरोपीय राष्ट्रों के मुकाबिले में पिछड़ते जा रहे थे और दूसरी ओर मजबूत केन्द्रीय शासन की जड़ों में मट्ठा समा रहा था। मुगल सूबेदार तो गड़बड़ी पैदा कर ही रहे थे, बुंदेलखंड और दक्षिण तथा पश्चिम में भी अशांति उत्पन्न हो गयी। ओरछा नरेश के पुत्र जुझार सिंह ने बगावत कर दी। मुगल फौजों ने औरंगजेब तथा शाइस्ता खां के नेतृत्व में में बुंदेलखंड पर आक्रमण किया। पंजाब में गुरु गोविंद सिंह ने सन् १६२८ से १६३४ के बीच छः बार मुगलों से टक्कर ली। इन परिस्थितियों के बावजूद शाही रोबदाब को बढ़ाने का मुगल सम्राट का जोश कम नहीं हुआ। शासन में स्थायी दृढ़ता लाने का प्रयास गौड़ था और नयी रियासतों को जीतने का काम मुख्य।

शाहजहाँ भी इस दोष से मुक्त नहीं था। शासन की बागडोर के हाथ में आते ही उसने दक्षिण की रियासतों को कुचलना शुरू कर दिया। इधर उसने खानदेश, बरार, दौलताबाद और तेलंगाना के सूबे बनाये। उसने गोलकुंडा से सालाना खिराज लेकर ही उसको छोड़ा। बीजापुर को उसने तलवार के जोर से आधिपत्य मानने को विवश किया।

युद्ध का रोग उत्तर में भी फैला। साम्राज्य-विस्तार की लिप्सा के आवेग के कारण शाहजहाँ इधर से भी अपनी नजर न हटा सका। सन् १६३८ में में उसने कंदहार पर कब्जा किया और इसके बाद उजबक सुलतान की दुर्बलता का लाभ उठाते हुए बलख और बदख्शाँ के सूबों पर भी अधिकार जमा लिया। इतनी दूर तक फौजें भेजने का परिणाम यह हुआ कि स्थिरता कहीं भी न आ पायी। बलख और बदख्शाँ पर वह केवल दो वर्षों तक अधिकार

---

* हिस्ट्री आव दि ब्रिटिश इम्पायर इन इंडिया, खण्ड १-पृष्ठ संख्या ३५३

कायम रख सका। इसके पश्चात् वे उसके हाथ से निकल गये। सन् १६४८ में उसके हाथ से कंदहार भी निकल गया। दम तोड़ने वाली राजनीतिक सूझ-बूझ फिर भी न सम्भली। अगले पाँच वर्षों में बादशाह ने तीन बार कंदहार पर पुनः कब्जा करने की कोशिश की किन्तु हर बार असफलता ही हाथ लगी।

शाहजहाँ के काल में यद्यपि युद्धों का दौर-दौरा बना रहा तथापि आर्थिक विच्छृंखलता उत्पन्न न हो पायी। बाद में साम्राज्य की आर्थिक जड़े भी हिलने लगी। औरंगजेब ने विघटित साम्राज्य को सम्भालने की कोशिश अवश्य की लेकिन स्थिति इस हद तक खराब हो चुकी थी कि यत्र-तत्र युद्धों में सफलता अर्जित करने के अलावा वह और कुछ न कर सका। अपनी धार्मिक कट्टरता के कारण उसने और भी अधिक राजपूतों तथा सिखों को अपना दुश्मन बना लिया। स्वयं भी बड़ी डाँवाडोल स्थिति में वह गद्दी पर बैठा। जिस समय शाहजहाँ बीमार हुआ, उसका बड़ा पुत्र दारा आगरा में ही था। इससे छोटा पुत्र शुजा बंगाल का शासक था। औरंगजेब दक्षिण के सूबों को सम्भाल रहा था और सबसे छोटा पुत्र मुराद गुजरात का सूबेदार था: तभी पिता की बीमारी का समाचार पाते ही वह युद्ध की तैयारी करने लगा। बंगाल में शुजा ने ताज सिर पर रखा और बनारस पर चढ़ाई कर दी। मुराद भी इस हरकत से बाज नहीं आया। उसने भी स्वयं को सम्राट घोषित करके सूरत को जी भर कर लूटा। रह गया दारा। शाहजहाँ ने उसे राज-काज सौंप रखा था। विद्रोह का समाचार पाकर उसने शुजा को दबाने के लिए अपने पुत्र सुलेमान शिकोह को और मुराद के विरुद्ध मारवाड़ नरेश जसवन्त सिंह को भेजा। इसका मुकाबला करने के लिए तथा मुराद को मिलाने के लिए औरंगजेब ने अपनी फौजें उसकी फौजों के साथ मिला दी। दोनों की संयुक्त शक्ति के समक्ष राजा जसवन्त सिंह टिक न सका। फलतः उज्जैन के पास पराजित हुआ। सुलेमान शिकोह विद्रोही शुजा को परास्त करने में सफल हुआ। इधर उज्जैन के पास धर्मट के युद्ध में विजयी होने के कारण औरंगजेब को मौका मिल गया। उसने मुराद को ताज की लालच दी और समझाया कि तुम्हारे लिए ही मैंने शस्त्र उठाया है। मुराद चक्कर में आ गया। उसने अपनी फौजें औरंगजेब के साथ रवाना कर दी। वह नर्वदा तक बढ़ आया जहाँ दारा की फौज से उसका मुकाबला हुआ। युद्ध की बाजी दारा के हाथ में आने ही वाली थी कि एक उमरे ने उसे हाथी से नीचे उतरने के लिए राजी कर लिया। नतीजा यह हुआ कि फौज में हलचल मच गयी, भगदड़ मच गयी और हारते-हारते भी औरंगजेब जीत गया।

इसके बाद की कहानी औरंगजेब के फरेब और उसकी खूंरेजी से भरी है। उसने बूढ़े बाप को कैद करके पानी तक के लिए तरसाया। मुराद को मथुरा के पास शराब पिला कर धोखे से कैद किया और उसपर षड्यंत्र रचने का दोषारोप करके उसे मौत के घाट उतार दिया। दारा दिल्ली से पंजाब की ओर भागा लेकिन अन्त में गिरफ्तार हो गया। शुजा भी अपने पिता की मदद न कर सका और युद्ध में पराजित होकर अराकान भागा जहाँ के राजा के आदेश से वह तलवार के घाट उतार दिया गया। दारा को भी दिल्ली में कतल कर दिया गया। इस प्रकार औरंगजेब का रास्ता निष्कंटक हो गया और वह सम्राट बना।

शाहजहाँ के समय से ही दक्षिण में मराठों का जोर बढ़ रहा था। इस समय ही जुन्नार के पास शिवनेरी गढ़ में उस महान् विभूति ने जन्म लिया जिसने उस जमाने में पहली बार राष्ट्रीयता का मन्त्र फूंका और जो इतिहास में शिवाजी के नाम से प्रसिद्ध है। अपनी आदत के अनुसार अनेक अंग्रेज इतिहासकारों ने शिवाजी को 'पहाड़ी-चूहा' लिखा। लेकिन इतिहास को वे मिटा न सके। आज भी वह चिल्ला-चिल्ला कर शिवाजी को महान् कूटनीतिज्ञ, अद्भुत मेधावी, प्रबल संघटनकर्ता और अद्वितीय वीर घोषित कर रहा है। उन्होंने उन्नीस वर्ष की अल्पायु में ही अपनी उमंगें पूरी करने का वह महान् प्रयास शुरू किया जिसके फलस्वरूप मराठा साम्राज्य की नींव पड़ी और अहमद शाह अब्दाली से मुठभेड़ होने तक (पानीपत की तीसरी लड़ाई, १७६१) जिसकी तूती बोलती रही।

सन् १६४६ में शिवाजी ने कई बीजापुरी गढ़ छीन लिये और कोंकण में विजय अभियान जारी किया। इसपर बीजापुर दरबार ने शिवाजी के पिता शाहजी को गिरफ्तार कर लिया और तीन वर्ष के बाद यह वचन लेकर ही उन्हें रिहा किया कि शिवाजी शान्त रहेंगे। इस कारण वश छः वर्षों तक शिवाजी ने स्वयं को दबा रखा लेकिन राज्य और सेना के संघटन का कार्य बन्द नहीं किया। बाद में औरंगजेब के काल में बीजापुर दरबार ने शिवाजी को कुचलने के लिए अफजल खाँ के नेतृत्व में एक बड़ी फौज भेजी। शिवाजी से इसका युद्ध नहीं हुआ। आपसी वार्ता के लिए प्रतापगढ़ के पहाड़ीगढ़ के नीचे दोनों का मिलन हुआ। अफजल खाँ ने धोखे से शिवाजी को हलाक करना चाहा लेकिन सजग शिवाजी के आगे उसकी दाल न गली। शिवाजी ने आस्तीन में छिपाये हुए बघनख से उसकी अंतड़ियाँ बाहर निकाल लीं। इसके बाद मावलियों की फौज शाही फौज पर टूट पड़ी और उसने उसके टुकड़े-टुकड़े

उडा दिये। इस विजय से उत्साहित होकर शिवाजी ने दक्षिण में कोंकण और कोल्हापुर के जिलों तथा पन्हाला गढ़ पर कब्जा जमा लिया।

इस दौरान में मीर जुमला के स्थान पर औरंगजेब का प्रसिद्ध सेनापति शाइस्ता खाँ दक्षिण का सूबेदार बना। बीजापुर दरबार से मिल कर उसने शिवाजी को दबाने पर कमर कसी। उसने और राजा जसवंत सिंह ने मिल कर उत्तरी कोंकण के अतिरिक्त शिवाजी की असली जागीर पूना पर भी कब्जा कर लिया। दूसरी ओर बीजापुर के अली आदिल शाह ने दक्षिणी इलाके पर कब्जा कर लिया और स्वयं शिवाजी को पन्हाला गढ़ में घेरने (१६६०) की चेष्टा की। इस आड़े समय में शिवाजी के विश्वस्त साथी बाजीप्रभु ने उनकी मदद की और बीजापुरी फौज को तब तक आगे न बढ़ने दिया जब तक शिवाजी सकुशल विशालगढ़ पहुँच न गये। उनके पास यही इलाका शेष रह गया था। शाही और मुगलिया फौज से बदला लिये और उसे परास्त किये बगैर एक इंच भूमि पर भी कब्जा करना मुश्किल था। शिवाजी के पास फौज नाम-मात्र को थी। शत्रुओं के पास बेशुमार फौजी ताकत थी। इस स्थिति में शिवाजी ने असीम धैर्य और चतुरता से काम किया। जसवंत सिंह और शाइस्ता खाँ की सेना पूना में छावनी डाले पडी थी। एक दिन शिवाजी अपने कुछ विश्वस्त सैनिकों के साथ वेश बदल कर छावनी में घुस गये और शाइस्ता खाँ के मकान के पास पहुँच कर उन्होंने मारकाट शुरू कर दी (सन् १६६३)। इस अचानक हमले से घबरा कर शाइस्ता खाँ एक खिडकी से निकल भागा। भागते समय शिवाजी ने उस पर तलवार का गहरा वार किया। शाइस्ता खाँ तो बच गया लेकिन उसके एक हाथ की पाँचों अँगुलियाँ साफ हो गयीं। इस घटना के बाद शिवाजी ने मुगल फौज को किसी तरह का मौका नहीं दिया और छावनी से साफ-साफ निकल गये।

पूना में शाइस्ता खाँ की कमर तोडने के बाद शिवाजी ने कोंकण की ओर मुँह फेरा और रत्नागिरि के साथ-साथ अन्य भू-भाग भी बीजापुर के सुलतान से छीन लिया। इसके बाद भी वह चुप न बैठे और अगले वर्ष अर्थात् १६६४ के प्रथम मास में सूरत पर धावा बोल दिया। मुगल फौज गढ़ में जा छिपी। शिवाजी ने सूरत को लूटा। यही पहला अवसर था जब शिवाजी ने जहाजी बेड़ा तैयार करके मुगलों को लूटा था, उनके अनेक जहाजों पर अधिकार जमा लिया था और सूरत में मुगलों के साथ-साथ अंग्रेजों को भी मजा चखाते हुए बम्बई और कारवार तक धावा मारा था।

शिवाजी की बढ़ती हुई ताकत से घबरा कर औरंगजेब ने राजा (मिर्जा)

जयसिंह कछवाहा के नेतृत्व मे एक विशाल फौज उनका मुकाबला करने के लिए भेजी। राजगढ़ में जयसिंह की फौज से शिवाजी का मुकाबिला हुआ। अनेक युद्धों में उनकी पराजय हुई। पुरंदरपुर दुर्ग मे वह घिर गये। उन्होंने मिर्जा जयसिंह से सन्धि कर ली और अपने पैंतिस गढ़ों में से तेइस गढ़ उन्हें सौंपना स्वीकार कर लिया।

कुछ अर्सा बाद जयसिंह की सलाह मानकर शिवाजी आगरा जाने के लिए तैयार हो गये। यह सलाह मानने से उत्तर भारत को अपनी आँखों से देखने की शिवाजी की लालसा पूरी होती थी।

उन्होंने मिर्जा जयसिंह की सलाह मान ली और राजकाज अपनी माता को सौंप कर आगरा चले गये जहाँ औरंगजेब ने उनके साथ अपमान जनक व्यवहार किया। शिवाजी से यह बर्दाश्त न हुआ। औरंगजेब ने उन्हे कैद (१६६६) कर लिया। तीन मास बाद अपनी चतुरता से शिवाजी अपने पुत्र शम्भाजी के साथ मिठाई के टोकरे मे छिप कर कैद से निकल गये। अपने राज मे पहुँच कर उन्होंने शासन-सुधार किया। दक्षिण के दोनों मुख्य शासको से उन्होंने मित्रता कर ली। इसमे पश्चात् सिंहगढ़ पर कब्जा करके उन्होंने शासन का विस्तार किया। सूरत मे अंग्रेजों को उन्होंने पुनः लूटा और बीजापुर तथा गोलकुंडा के राजाओं को क्रमशः तीन और चार लाख रुपये देने के लिए बाध्य किया।

उन्हे दबाने के लिए आगरा से एक के बाद दूसरी फौज भेजी जाती रही लेकिन उनका कुछ न बिगड़ा। ५ अप्रैल, सन् १६८० को रायगढ़ मे उनका देहान्त हो गया।

दक्षिण मे ही औरंगजेब को उपद्रवों का सामना करना पड़ा, यह बात न थी। आसाम मे भी विद्रोह हो गया। सन् १६६७ मे अहोम राजा चक्रध्वज ने धुबड़ी तक पूरा आसाम प्रदेश वापस ले लिया था। यही हाल उत्तर-पश्चिमी सीमा का था। सन १६७२ में अफरीदियों ने काबुल की सूबेदारी पर जाने वाले मीर जुमला के दो करोड रुपये लूट लिये और खैबर का मार्ग बंद कर दिया। कटहार से अटक तक के पठान विद्रोह मे शामिल हो गये। इस विद्रोह को दबाने के लिए स्वयं औरंगजेब को भी एक बार हसन अब्दाल तक जाना पड़ा।

मराठों और पठानों के साथ-साथ औरंगजेब ने राजपूतों और जाटों को भी अपना शत्रु बनाया। अपनी धर्मान्ध नीति के कारण उसने हिन्दुओं को तरह-तरह से त्रास देना आरम्भ किया। उनपर करों का भार बढ़ा दिया। जजिया

वसूल करना आरम्भ किया। उनके मंदिरों को ध्वस्त किया। परिणामतः बुंदेलखंड में छत्रसाल के नेतृत्व में राजपूतों ने विद्रोह किया और इधर मथुरा से आगरा तक के जाट बागी हो गये। दिल्ली से पश्चिम नारनौल में सतनामियों ने बगावत कर दी। अपने गुरु तेगबहादुर का कतल होने पर सिख भी बिगड़ गये। गुरु तेगबहादुर को बादशाह ने दिल्ली बुलाकर मुसलमान धर्म स्वीकार करने को कहा। गुरु के इनकार करने पर औरंगजेब ने उनका सिर कलम करवा दिया (१६७५)।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि सारे भारत में अशांति की लहर फैली हुई थी। चालाक अंग्रेज इस मौके से चूके नहीं। उन्होंने भी अपनी लूट-मार बढ़ा दी और अपनी शक्ति में वृद्धि आरम्भ की।

सन् १६६१ में पुर्तगाल की एक राजकुमारी इंग्लैण्ड के राजा को ब्याही गयी। पुर्तगाल ने इंग्लैण्ड के राजा को दहेज में बम्बई दे दिया। बाद में राजा ने इसे ईस्ट इण्डिया कम्पनी को सौंप दिया। इधर अंग्रेजों ने हुगली नदी में भी किराये पर जहाज चलाने शुरू कर दिये (सन् १६७६)।

अंग्रेजों के साथ उदारता दिखाकर जो गलती शाहजहाँ और उसके पिता जहाँगीर ने की थी, औरंगजेब ने भी उसकी पुनरावृत्ति की।

जब औरंगजेब ने हिन्दुओं पर जजिया लगाया तो उसने अंग्रेजों पर भी एक प्रतिशत चुंगी बढ़ाने का निर्णय किया। अंग्रेज कम्पनी के लंदन के मुखिया जोशिया चाइल्ड ने चुंगी न देने का फैसला किया। कम्पनी सूरत से अपना कारबार हटाकर बम्बई ले गयी। जोशिया चाइल्ड ने इंग्लैण्ड के बादशाह की आज्ञा से समुद्र में भारतीय जहाजों को पकड़कर बदला लेना चाहा। मुगल फौज पर हमला करने का आदेश भी जारी कर दिया गया। मार्शमैन ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री आव इण्डिया' में लिखा है कि 'बेड़े की कमान एडमिरल निकलसन को दी गयी। इस बेड़े में बारह सामरिक जहाज, दो सौ तोपें और छः सौ सैनिक थे। चार सौ सैनिक मद्रास से मिलने वाले थे।'

यह तूफान बंगाल में भी उठा। मुर्शिदाबाद के समीप कासिम बाजार की कोठी का प्रधान जाब चारनाक भारतीय महाजनों का देनदार हो गया। मामला अदालत में गया और अदालत ने जाब चारनाक के विरुद्ध फैसला दिया। इस पर वह हुगली भाग गया और उसके नेतृत्व में अंग्रेजों ने हुगली नगर को लूटा।

बम्बई के समुद्र में चाइल्ड की लूट-मार का बदला लेने की गरज से

औरंगजेब ने सूरत के अंग्रेज कारखाने के कर्मचारियों को पकड़वा लिया और धमकी दी कि मुगल जहाज छोड़े न गये तो बंदी अंग्रेजों का सफाया कर दिया जायगा। तेलंगाना में भी बहुत से अंग्रेज पकड लिये गये। बम्बई का गढ़ भी घेर लिया गया। अभिप्राय यह कि औरंगजेब ने अंग्रेजों को पंगु बनाने की काररवाई पूरी की लेकिन आखिरी मौके पर चूक गया। उन्हें शक्ति-विहीन करने तथा पुनः दुस्साहपूर्ण आक्रमणात्मक काररवाई न करने का सबक सिखाये बगैर ही बादशाह ने उनका पिंड छोड दिया और उनसे हरजाना मात्र लेकर उन्हें बख्श दिया।

इस समय तक अंग्रेज भारत में अपने अधिकारों को किस दृष्टि से देखने लगे थे, यह देखने की कोशिश यदि औरंगजेब ने आगे की होती तो उसने पुनः उपर्युक्त गलती दोहरायी न होती। उसने अंग्रेजों के खुराफात को लूट-मार की मामूली घटना से अधिक महत्त्व कभी नहीं दिया। बराबर उसकी धारणा यही रही कि अंग्रेजों में भारत की भूमि पर अधिकार करने की शक्ति नहीं है और उन्हें चुटकी बजाते कुचला जा सकता है। यह भयानक भूल थी।

नवाब और मुगलों के साथ अंग्रेजों का झगड़ा "सन् १६८५—८६ में उस समय अपनी-चरम सीमा पर पहुँच गया, जब लंदन में कम्पनी के डाइरेक्टरों ने फौजों के बल पर बदला लेने का निर्णय किया। सैनिकों की छः कम्पनियों से भरे दस युद्धक जहाज बंगाल की ओर रवाना किये गये और उन्हें चटगाँव पर कब्जा करने तथा हर तरह से नवाब और मुगलों से बदला लेने का आदेश दिया गया।"* लेकिन अंग्रेजों की यह योजना सफल न हुई, क्योंकि जहाज एक-एक करके पहुँचे। उन्होंने समझौता कर लिया लेकिन शीघ्र ही उसे तोड भी दिया। सन् १६८७ में इंगलैंड से बंगाल में पहुँचने वाले जहाज का कप्तान हीथ नामक अंग्रेज था। उसने बालासोर को लूट लिया और अचानक आक्रमण करके चटगाँव को उध्वस्त कर देना चाहा लेकिन असफल रहा। इस समय तक कासिम बाजार से भागकर हुगली पहुँचने वाला मुखिया अंग्रेज जाब चारनाक कलकत्ता में डेरा जमा चुका था। वहाँ उसने मेदिनीपुर के हिजली द्वीप पर कब्जा किया और बालेश्वर का गढ़ छीन लिया। लेकिन अततः उसे और कप्तान हीथ, दोनों को भाग कर मद्रास जाना पड़ा। यही

---

* हिस्ट्री आव ब्रिटिश इम्पायर इन इण्डिया —जी० आर० गलेड्ग, खण्ड १—पृ० सं० ३५७

समय था जब औरंगजेब ने बम्बई को घेर कर अंग्रेजों से हरजाना वसूल किया था और तब उन्हें मुक्त कर दिया था।

अंग्रेजों के नग्न रूप का मौका देखने का अवसर एक बार औरंगजेब को फिर मिला लेकिन तब भी उसकी आँख न खुली और वह भूल पर भूल करता गया। सन् १६८६ में ब्रिगमैन उर्फ एवोरी नामक अंग्रेज ने जलदस्युओं से एक जहाज छीना। इसका नाम उसने 'फैंसी' रखा। जल्द ही 'फैंसी' ने डकैतियों का सिलसिला शुरू कर दिया। ब्रिगमैन ने कई बडी-बड़ी डकैतिया की। सूरत के बन्दरगाह के सबसे बड़े शाही जहाज 'गंजे सवाई' को जो हर साल हाजियो को मक्का ले जाता था, 'फैंसी' ने दामन और बम्बई के बीच रोक कर तीन दिनोंतक लगातार लूटा। इतना ही नहीं 'फैंसी' जहाज के अंग्रेजों ने लौटने वाली सैयद स्त्रियों पर पाशविक रूप से बलात्कार भी किया (१६९५)। अमानुषिकता की यह वीभत्स कहानी सुनाने के लिए 'गजे सवाई' जब सूरत पहुँचा तो हलचल मच गयी। बात बादशाह के कानोंतक पहुँची तो वह तिलमिला उठा। उसके हुक्म से सूरत के अंग्रेज कैद कर लिये गये। उनका व्यापार बन्द कर दिया गया। उनके झण्डे गिरा दिये गये।

यह क्षणिक जोश था। इसके पीछे अंग्रेजों की शक्ति को मिटाने का सकल्प पैदा करने वाली राजनीतिक दूरदर्शिता न थी। औरंगजेब ने यह सब अंग्रेजों को डराने के लिए तथा उन्हे इस बात के लिए राजी करने के उद्देश्य से किया कि वे मेहनताना लेकर हाजी जहाजो की रक्षा करने की जिम्मेदारी ले लें। राजनीतिक दूरदर्शिता के दिवालियेपन का यह सबूत बहुत घातक सिद्ध हुआ। इसने अंग्रेजों का हौसला खूब बढ़ा दिया। औरंगजेब जो चाहता था, वह सरत की अंग्रेज कोठी के मुखिया ऐंस्ले ने स्वीकार कर लिया और इस आशय का इकरारनामा लिख दिया। बादशाह ने सब कैदी छोड़ दिये (सन् १६९६) लेकिन शीघ्र ही उसे अंग्रेजों के इकरारनामे का खोखलापन नजर आ गया। अंग्रेजों ने डकैती से मुँह नहीं मोड़ा। दूसरे वर्ष ही किड (अंग्रेज) और शिवर्स (डच) नामक जलदस्युओं ने हिन्दमहासागर में पुनः जहाजो को लूटना आरम्भ किया। औरंगजेब ने अंग्रेजों को फिर कैद करवा दिया। लेकिन इस बार भी पुरानी काररवाई की पुनरावृत्ति हुई। फर्क इतना ही था कि इस बार डचों ने लाल सागर, फ्रांसीसियों ने ईरान की खाड़ी तथा अंग्रेजों ने दक्षिणी समुद्र मे भारतीय जहाजों की रखवाली करने की जिम्मेदारी ले ली।

औरंगजेब में चाहे जितने दुर्गुण रहे हों लेकिन जहाँ तक कर्मठता और

और शूरता का प्रश्न है, इतिहासकारों ने यह स्वीकार किया है कि वह कर्मठ, साहसी और वीर था। जमाने की हवा के अनुसार उसे शत्रुओं को दबाने और मुगल साम्राज्य का विस्तार करने का शौक था। यह शौक उसने पूरा किया। उसने अफगानों को दबाया, शिवाजी की मृत्यु के बाद मराठों को पराजित किया, गोलकुण्डा को मिटाया और बीजापुर को आत्म-समर्पण करने के लिए विवश किया। उसने साम्राज्य का विस्तार अवश्य किया। लेकिन उसकी नीव सुदृढ़ न कर सका। चतुर्दिक फैली हुई बगावत की आँधी को वह मिटा न सका। सुदृढ़ केन्द्रीय शासन का अभाव बना ही रहा। उसने जो कुछ किया, अपने लिये किया। "दुर्गुण से उसे नफरत थी। ऐश-आराम से वह परहेज करता था। उसकी बुद्धि प्रखर थी। राजकाज ( अपनी इच्छाओं की दृष्टि से—ले० ) वह लगन और उत्साह से करता। उसके अहलकार भी उसके समान परिश्रम नहीं कर सकते थे। उसमें असीम धैर्य और सहन शक्ति थी। अनुशासन उसे प्रिय था। वह स्वतः काफी संयमी था। धार्मिक पुस्तकों से उसे प्रेम था।"*

किसी विघटनोन्मुख साम्राज्य को बचाने के लिए केवल उपर्युक्त गुण ही पर्याप्त नहीं होते। उसके लिए राजनीतिक दूरदर्शिता, बागियों का हृदय जीतने की कला के ज्ञान, दूसरों का विश्वास अर्जित करने और अपने मातहत प्रमुख राज्याधिकारियों पर विश्वास करने की प्रवृत्ति की भी आवश्यकता होती है। इस दृष्टि से औरंगजेब सफल नहीं माना जाता। मुगल साम्राज्य की जड़ें जमाने वाले अकबर की तुलना में इस दृष्टि से वह कहीं भी ठहर नहीं पाता। उसके शासन-काल में उपर्युक्त गुणों वाले बादशाह की ही आवश्यकता थी: क्योंकि घर में तो चारों ओर आग लगी ही हुई थी, विदेशियों पर भी सही माने में रोबदाब न था। इस जमाने में अंग्रेज, पुर्तगाली, डच और फ्रांसीसी ये चारों यूरोपीय जातियों के वणिक लुटेरे भारत में आ चुके थे। उन्होंने यहाँ की राजनीति में हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया था। २१ फरवरी, सन् १७०७ में औरंगजेब की मृत्यु हुई। इसके पाँच वर्ष पूर्व ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी कायम हो चुकी थी।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद अगले पचास वर्षों तक जो मुगल साम्राज्य की निरंतर अवनति का काल रहा, भारत की हालत बहुत बुरी थी। अराजकता और लूट-मार का बोलबाला हो गया था। जनता की रक्षा करने तथा शांति

---

* 'हिस्ट्री आव औरंगजेब'—यदुनाथ सरकार, खण्ड १, पृष्ठ संख्या १४

बनाये रखनेवाली केंद्रीय सरकार का नाम-निशान तक मिट गया था। गावों की रक्षा ग्रामीणों को स्वतः करनी पड़ती थी। शासनाधिकारियों पर न तो किसी का नियत्रण रह गया था, न किसी का रोब। प्रत्येक बड़े सूबे का सूबेदार बादशाह की अधीनता को ठुकराकर अपने सूबे का शाहशाह आप बन बैठा था। यह तमाशा भी विचित्र था। सूबेदार बादशाह के खजाने मे धन तो भेजता लेकिन निर्धारित रूप मे नहीं—अपनी इच्छा के अनुसार। यों दिखने के लिए बादशाह को वह अपना सिरताज भी मानता लेकिन वस्तु-स्थिति यह थी कि बादशाह केवल दिल्ली का बादशाह रह गया था!

अधिकतर नवाब भी सूबेदारों के नियत्रण से मुक्त हो गये और खुद मुख्तार बन बैठे। नाममात्र के लिए वे सूबेदारों के अधीन अवश्य रहे। सूबेदारों और नवाबों मे मुख्य रूप मे उत्तर भारत मे अवध का सूबेदार, बगाल और और बिहार का नवाब, दक्षिण मे हैदराबाद का सूबेदार—ये पदाधिकारी ही थे। दक्षिण का सूबेदार 'निजामुल मुल्क' बन बैठा। उसने दिल्ली के शासन की दुर्बलता का लाभ उठाकर प्रायः पूरे दक्षिण भारत पर अपना अधिकार जमा लिया। कर्नाटक का नवाब उसके अधीन हो गया। एक ओर यह स्थिति थी, दूसरी ओर अंग्रेज पृथक-पृथक रियासतो के झगड़े मे किसी न किसी का पक्ष ले लेकर युद्ध के मैदान मे कूदने लगे थे। इस सिलसिले मे गहरी प्रतिद्वंद्विता अंग्रेजों और फ्रांसीसियों मे थी, क्योंकि यूरोप मे दोनों जातियाँ युद्ध-रत थीं। बाजी अंग्रेजों के ही हाथ रही। वे हर हालत मे प्रतिद्वंद्विता मे विजयी होने के लिए दृढ़ सकल्प थे। उनके इस इरादे का इतिहास भी अध्ययनीय है।

भारत मे पुर्तगालियों की घुस-पैठ का समाचार लदन मे पद्रहवीं शती के आरम्भ मे ही पहुँच गया था। सोलहवीं शती मे इस दिशा मे डचों को भी सफलता प्राप्त होने के समाचार तेजी से लन्दन मे पहुँचने लगे। अपने प्रतिद्वन्द्वियों से होड मे पीछे न रहने के लिए अंग्रेजों ने भी कमर कस ली। हर तरह की मुसीबत उठाने के लिए वे तैयार हो गये। "सन् १५९९ मे एक कम्पनी संघटित की गयी। चंदा प्राप्त करके इसने धन एकत्र किया। इसके प्रबन्ध का भार संस्था ने पन्द्रह सदस्यों की एक समिति को सौंपा। कम्पनी की काररवाइयों पर शाही स्वीकृति प्राप्त करने के निमित्त दूसरी बार आवेदन-पत्र दिया गया। साम्राज्ञी एलिजाबेथ जिसके हाथ मे उस समय इंग्लैण्ड की बागडोर थी, इस प्रस्ताव से सहमत तो थी लेकिन इंग्लैण्ड और स्पेन के बीच चलने वाली संधि-वार्ता को देखते हुए वह हिचकी। उसने यह मामला अपनी प्रिवी

कौंसिल को सौंप दिया। उसने आवेदन-पत्र के पक्ष मे अपनी रिपोर्ट दी। इसी वर्ष जान माइल्डेन हाल नामक अंग्रेज मुगल सम्राट के दरबार में दूत के रूप में भेजा गया। वह कुस्तुनतुनिया (वर्तमान इस्ताम्बोल) होकर भारत पहुँचा।...यह कारवाई माकूल न साबित हुई। मार्ग मे ऐसी कठिनाइयाँ थी कि वह सन १६०६ तक भी आगरा पहुँचने और मुगल सम्राट से साक्षात्कार करने मे सफल न हुआ।

"इससे व्यापार मे प्रतिद्वंद्विता की अंग्रेजो की भावना का अवसान नही हुआ था। उन्होंने साम्राज्ञी के पास लाइसेंस प्राप्त करने के लिए जिसके बिना उपर्युक्त उद्योग मे सफल होना मुश्किल था, नये प्रार्थना-पत्र भेजे। १३ दिसम्बर सन् १६०० को प्रार्थियो का प्रार्थना-पत्र स्वीकार कर लिया गया: क्योंकि साम्राज्ञी पहले से ही इसके लिए इच्छुक थी। 'गवर्नरस एण्ड कम्पनी आव मर्चेण्ट्स आव लदन टु ईस्ट इण्डीज' नाम से प्रार्थियों का कारपोरेशन संघटित हुआ। इसे अधिकारपत्र द्वारा बिना किसी बंधन के भूमि खरीदने का अधिकार दिया गया। अफ्रिका तथा एशिया के प्रदेशों एवं इनके किसी भाग मे, एशिया, अफ्रिका और अमेरिका के सभी द्वीपो, बन्दरगाहों तथा नगरों मे एवं वहाँ से व्यापार करने का एकाधिकार भी इसे प्राप्त हो गया।"*

इस प्रकार उस सत्ता की शुरुआत हुई जिसने डेढ़ सौ वर्ष बाद अपने देश से छः हजार मील की दूरी पर भारत मे ब्रिटिश शासन का झण्डा मजबूती के साथ गाड़ दिया। व्यापार की शुरुआत भी नगण्य पूंजी से हुई, इंगलैंड की साम्राज्ञी एलिजाबेथ ने जिस कम्पनी को उपर्युक्त अधिकार-पत्र प्रदान किया, उसमें केवल "दो सौ पंन्द्रह व्यक्ति शामिल थे और अर्ल आव् कम्बरलैंड उनका मुखिया था। अपने नये व्यापार मे लगाने के लिए उन्होंने मुश्किल से सत्तर हजार पौंड की पूंजी एकत्र की जो पचास-पचास पौण्ड के शेयरों मे विभक्त थी।"†

सन् १६०९ में कम्पनी को नया अधिकार-पत्र (चार्टर) प्रदान किया गया। इसके अनुसार कम्पनी के पहले के अधिकार स्थायी कर दिये गये। इससे अंग्रेज व्यापारियों को उस उत्साह से कम उत्साह नहीं मिला, जो उन्हें भारत मे मुक्त रूप से व्यापार करने की मुगल सम्राट शाहजहाँ की आज्ञा से

---

* दि हिस्ट्री आव दि ब्रिटिश इम्पायर इन इण्डिया—जी० आर० ग्लेइग, खण्ड १ पृष्ठ संख्या ३३१-३३२

† वही—पृष्ठ संख्या—३३३

प्राप्त हुआ था। इसके फलस्वरूप अंग्रेजों ने जो सफलता प्राप्त की, उसकी ओर संकेत पहले किया जा चुका है। मुख्य घटना सूरत के पास पुर्तगालियों के बेड़े की पराजय थी। इससे अंग्रेजों को बहुत लाभ हुआ। सूरत के अधिकारियों ने पुर्तगालियों की शक्ति पर विश्वास करना त्याग दिया और अंग्रेजों को तरजीह मिलने लगी।

इतिहास यह प्रमाणित करता है कि यदि इस देश के शासकों ने थोड़ी दूरदर्शिता से काम लिया होता तो अंग्रेज अथवा अन्य विदेशी शक्तियाँ जिनमें पुर्तगाल भी शामिल है और आज भी, अंग्रेजी सत्ता की समाप्ति के बाद भी, जिसने भारतीय भूभाग गोवा, दामन और ड्यू पर कब्जा जमा रखा है—भारत में पनप न पातीं। इसका कारण यह है कि सन् १६१२–१३ से बाद के सौ वर्षों तक अंग्रेज व्यापारी कम्पनी को अपने देश के ही अन्य वर्गों के षडयंत्र का सामना अनेक बार करना पड़ा। कम्पनी का साम्राज्ञी से जो सुविधाएं प्राप्त हुईं उन पर अपने देश में अन्य अंग्रेज व्यापारियों ने ही अनेक बार प्रहार किया। जिस समय अंग्रेज व्यापारियों ने भारत में मद्रास के तट पर फोर्ट सेण्ट जार्ज की नींव डाली, उससे महज चार-पाँच वर्ष पूर्व ही इंग्लैंड में एक नया कारपोरेशन स्थापित किया गया था जिसका इरादा साम्राज्ञी से सुविधा-प्राप्त कम्पनी को समाप्त कर देना था। सन् १६३५ में यह प्रतिद्वन्द्वी संघटन बना। "सर विलियम कोर्टिन इसका मुखिया था। इसका उद्देश्य ईस्ट इंडिया कम्पनी के एकाधिकार को नष्ट करना था। इसने अपनी साजिशें इस खूबी से कार्यान्वित कीं कि इंग्लैंड के बादशाह चार्ल्स प्रथम पर भी इसका प्रभाव जम गया। व्यापार और वाणिज्य की कारस्वाई इसने इतनी बुद्धिमत्ता और तत्परता से की कि पुरानी कम्पनी गम्भीर रूप में अस्तव्यस्त हो गयी। अस्तु, इस नवीन संघटन से उत्पन्न खतरा जब समाप्त दिखाई देने लगा, तब दूसरी मुसीबतों ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को आ घेरा जो पहली मुसीबत से किसी हालत में कम न थीं। पहला संकट गृह-युद्ध के सिलसिले में बादशाह द्वारा फौजों के संघटन की कारस्वाई से उत्पन्न हुआ और दूसरी बार क्रामवेल ने उसके एकाधिकार को नष्ट करके उसे संकट में डाल दिया।"*

यद्यपि क्रामवेल ने बाद में ईस्ट इण्डिया कम्पनी को संरक्षण प्रदान किया और उसे सन् १६६१ में नया अधिकार-पत्र प्रदान किया जिसके द्वारा पहले

---

* दि हिस्ट्री आव दि ब्रिटिश इम्पायर इन इण्डिया—श्री० आर० ग्लेइग खण्ड १, पृष्ठ संख्या ३१६

से भी अधिक अधिकार कम्पनी को दिये गये, तथापि आपसी कशिश की सरगर्मी से कम्पनी मुक्त नहीं हुई। "विलियम तृतीय के शासन-काल में पार्लिमेण्ट के हस्तक्षेप के फलस्वरूप उसको बिलकुल भंग कर दिये जाने की नौबत आ गयी। पार्लिमेण्ट ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अस्तित्व को तब स्वीकार किया जब डच राजा के अभ्युदय-काल में ह्विग दल वाले ब्रिटिश साम्राज्य के विभिन्न भागों से राज्य-कर वसूलने वाले बन चुके थे, 'बैंक आव इंग्लैंड' का जन्म हो चुका था, इंग्लैंड में बाहर से आने वाले माल पर चुंगी लगाकर देशी उद्योगों की रक्षा करने की व्यवस्था बाकायदा जारी हो चुकी थी और यूरोप में निश्चित शक्ति-सतुलन कायम हो चुका था।"*

अब तक के अधिकतर इतिहासों में यही सिद्ध किया गया है कि सन् १७५७ में प्लासी के युद्ध में विजयी होने के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी का सिक्का हिन्दुस्तान पर पूरी तरह जम गया। इस निष्कर्ष को सामने रखते समय प्रायः भूल की गयी और इस ओर ध्यान नहीं दिया गया कि वास्तव में यदि हिन्दुस्तानी नवाब और सूबेदार कूप-मण्डूक न बने रहते और उनकी निगाहें यूरोप, विशेष रूप से इंग्लैंड में घटने वाली घटनाओं पर भी जमी रहती तो प्लासी के युद्ध में विजय के बावजूद हिन्दुस्तान में अंग्रेजों की बन न आती। इतिहास के पृष्ठों में इसके दो स्पष्ट कारण नजर आते हैं। पहला तो यह कि अंग्रेजों के अत्याचार के कारण प्रत्येक भारतीय उनसे घृणा करता था और दूसरा यह कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी को प्राप्त एकाधिकार के विरुद्ध इंग्लैंड के मिल मालिक बराबर आन्दोलन कर रहे थे। सन् १७६५ में द्वितीय बार भारत आने के बाद क्लाइव ने लिखा था कि "जैसी अस्थिरता, अराजकता, अव्यवस्था, घूसखोरी लूट-मार और चरित्र-हीनता यहाँ है, वैसी किसी देश में न होगी।...कम्पनी के नौकरों ने नवाब से लेकर छोटे जमींदारों तक से बल-पूर्वक धन ऐंठा है। वे इतने भ्रष्टाचारी हो गये हैं कि हर हिन्दू और मुसलमान उनसे नफरत करता है।"†

इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनसे पता चलता है कि उपर्युक्त स्थिति में शासन-सत्ता को उन्मूलित करने के लिए प्रयत्नशील शक्तियों को अनायास ही सफलता मिली। लेकिन अदूरदर्शिता के कारण यहाँ कुछ भी न हुआ। कम्पनी को अपने घर में खतरे का सामना करना पड़ा लेकिन भारत में उसके

---

* कार्ल मार्क्स—'अटिकल्स आन इंडिया'—पृष्ठ संख्या ८८

† मैकॉले, 'लाइफ आव क्लाइव' खण्ड २, पृष्ठ संख्या ३७९

विरुद्ध संघटित रूप मे प्रबल कारवाई का अभाव बना ही रहता। यही वह काल था जब "फ्रांस मे लुई चौदहवें के शासन की निरंकुशता ने जन-क्रांति के बीज बोये। इंग्लैंड मे शक्ति ग्रहण करने वाले मध्यम वर्ग ने राजा की गरदन उतार ली, विद्रोही क्रामवेल का गणतांत्रिक शासन अल्पकाल तक ही सही, फला-फूला। चार्ल्स द्वितीय गद्दी पर आया और चला भी गया। जेम्स द्वितीय को पलायित होना पडा। पार्लिमेण्ट ने जो मुख्यतः नये पूँजीवादी व्यापारियों का प्रतिनिधित्व करती थी, राजा को पगु कर दिया और अपनी सत्ता स्थापित की।"* इस उथल-पुथल की ओर और तत्कालीन इंग्लैंड की आतरिक सामाजिक कशमकश की ओर ध्यान देने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दुस्तान मे जमी कम्पनी का जो रूप क्लाइव ने खींचा था और जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, इससे भिन्न कोई दूसरा रूप उसका अपने देश मे भी न था। कम्पनी यहा रिश्वत लेती थी वहाँ ( अपने देश मे ) रिश्वत देती थी—सिर्फ इतना ही फर्क रहा। ११ जुलाई, सन १८५३ के 'न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून' के अङ्क मे कार्ल मार्क्स का २१ जून, सन् १८५३ को जो पत्र † प्रकाशित हुआ, उसमे मार्क्स ने कम्पनी की रिश्वत बाजी का चित्र खींचते हुए लिखा था—"सन् १६६३ मे पार्लिमेण्ट की ओर से की गयी जॉच-पड़ताल मे यह बात साफ हो गयी थी कि शासक लोगों को दी गयी 'भेंट' ( रिश्वत ) की मद मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी का वार्षिक खर्च, जो क्रान्ति के पहले शायद ही कभी १२ सौ पौण्ड से अधिक होता था, सन् १६८८ तक नौ हजार पौण्ड तक बढ़ गया। लीड्स के ड्यूक पर पार्लिमेण्ट ने पाच हजार पौण्ड घूस लेने का मुकदमा चलाया और स्वतः 'धर्मनिष्ठ राजा' पर दस हजार पौण्ड लेने का अभियोग सिद्ध हो गया। इस प्रत्यक्ष रिश्वत के अलावा, बहुत कम सूद पर सरकार को भारी रकम देने को लालच दिखाकर एक कम्पनी अपनी प्रतिद्वन्द्वी कम्पनियों को मैदान से हटवा देती, या उनके डाइरेक्टरों को खरीद लेती थी।"

"बंक आव इंग्लैण्ड की भाति ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भी रिश्वत दे कर जो शक्ति प्राप्त की, उसे कायम रखने के लिए बंक की ही भाति कम्पनी को भी बार-बार रिश्वत देनी पड़ती थी। प्रत्येक ऐसे अवसर पर जब उसके एकाधिकार का समय समाप्त होने पर आया, नया अधिकार-पत्र प्राप्त करने के लिए उसे सरकार को नया कर्ज और नया तोहफा देना पडा।"

---

* जवाहरलाल नेहरू—'डिसकवरी आव इण्डिया' पृष्ठ संख्या २३०

† कार्ल मार्क्स—'आर्टिकल्स आन इण्डिया' पृष्ठ सख्या ३९-४०

"सप्त वर्षीय युद्ध की घटनाओं ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को व्यापारिक शक्ति से प्रादेशिक एवं सैनिक शक्ति के रूप में बदल दिया। उस समय ही पूर्व में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव पड़ी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शेयरों की कीमत २६३ पौण्ड तक बढ़ गयी और लाभांश साढ़े बारह प्रतिशत की दर से वितरित हुआ। इस समय भी कम्पनी का एक नया शत्रु प्रकट हुआ—प्रतिद्वंद्वी कम्पनियों के रूप में नहीं, बल्कि प्रतिद्वंद्वी मन्त्रिमंडलों और प्रतिद्वंद्वी जनता के रूप में। यह कहा गया कि कम्पनी जिन इलाकों पर हुकूमत करती है, वे ब्रिटिश समुद्री बेड़े तथा ब्रिटिश सैनिकों की मदद से जीते गये है। ब्रिटिश प्रजा का कोई सदस्य राजा से स्वतंत्र रहते हुए किसी इलाके पर हुकूमत नहीं कर सकता। उस जमाने में मंत्रियों और आम लोगों ने माँग की कि जो 'अद्भुत खजाने' कम्पनी के हाथ लगे है, उनमें उनका भी हिस्सा होना चाहिये। अन्त में सन् १७६६ में कम्पनी ने यह समझौता करके अपनी जान बचायी कि वह राष्ट्रीय कोष में प्रति वर्ष ४ लाख पौण्ड देगी। परन्तु समझौते की शर्तें पूरी करने के बजाय कम्पनी आर्थिक संकट में फँस गयी और नजराना देने के बजाय उसने पार्लिमेण्ट से आर्थिक सहायता की याचना की। इसके फलस्वरूप कम्पनी के अधिकार-पत्र में बड़े-बड़े परिवर्तन हुए।"

इस प्रकार इतिहास से यह सिद्ध होता है कि सन् १७०२ से लेकर सन १७८४ से पहले तक अपने अस्तित्व की रक्षा करने के लिए कम्पनी को बराबर संघर्ष-रत रहना पड़ा। इस लम्बे अर्से का लाभ भारत में कोई न उठा सका। जैसा कि कहा जा चुका है, केंद्रीय सत्ता विच्छृंखल हो चुकी थी और सन् १७०७ में औरंगजेब की मृत्यु के बाद दिल्ली का बादशाह नाम-मात्र को ही बादशाह रह गया था। अगली आधी शताब्दी तक अंग्रेज निष्कंटक होकर अपने प्रभाव का विस्तार करते रहे। संयोगवश इस समय यूरोप में भी उनका सितारा बुलन्दी पर था। डचों को वे पराजित कर ही चुके थे। भूमध्य सागर में उनकी नौसेना की धाक जम चुकी थी। दिल्ली के बादशाह की मृत्यु के छः सात वर्षों के बाद ही यूरोप में फ्रांस को भी पराजित करने में वे सफल हुए और उनकी ताकत बहुत बढ़ गयी।

सन् १७०० में स्पेन के सम्राट की मृत्यु हो गयी। उसकी कोई सन्तान न थी। उसकी बहन फ्रांस के राजा लुई चौदहवें को ब्याही थी, अतः मृत्यु से पूर्व उसने यह वसीयत नामा लिखा था कि लुई का पोता उसका उत्तराधिकारी होगा। इस प्रकार स्पेन और उसके साथ उसके विशाल अमेरिकी साम्राज्य को लुई के कब्जे में जाते देखकर अंग्रेजों के कान खड़े हो गये। उधर लुई ने

स्वतः ही नौ-शक्तियों में आग भड़काने वाली काररवाई कर डाली। उसने स्पेनिश निदरलैण्ड्स में एक बड़ी सेना भेज दी, डच नगरों पर कब्जा कर लिया और स्पेनिश इण्डीज में अफ्रिकी गुलामों का अधिकार सौंपने के लिए स्पेन को मजबूर कर दिया। इन काररवाइयों को देखते हुए अंग्रेजों और डचों ने अपने व्यापारिक अस्तित्व की रक्षा के लिए उससे लोहा लेने का निर्णय किया। इग्लैण्ड ने यूरोप के अनेक देशों का गुट बनाया जिसमें हालैण्ड और आस्ट्रिया आदि शामिल थे, और फ्रांस के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। स्पेनिश उत्तराधिकार के नाम से चलने वाले इस बारह वर्षीय युद्ध के अन्त में सन् १७१४ में लुई हार गया और स्पेन का बन्दरगाह जिब्राल्टर जो रोम सागर के पश्चिमी द्वार पर है और जिसकी वजह से भूमध्य सागर में ब्रिटिश नौसेना की शक्ति बहुत अधिक बढ़ गयी, अंग्रेजों के कब्जे में आ गया।

इसी दौरान में भारत में भी काफी उलट-फेर हुआ। औरंगजेब यह वसीयत छोड़ गया था कि साम्राज्य उसके तीनों बेटों में बट जाय लेकिन छोटे लड़के आजम को यह मंजूर न था। औरंगजेब का बड़ा पुत्र मोहम्मद मुअज्जम गद्दी पर बैठा और शाह आलम बना लेकिन शीघ्र ही गृह-युद्ध छिड़ गया। छोटे भाई अजीम शाह ने युद्ध छेड़ दिया लेकिन वह मारा गया। औरंगजेब के तृतीय पुत्र कामबख्श का भी यही हाल हुआ। भाइयों से छुटकारा पाकर भी शाह आलम संभल न सका। दक्षिण का शासन संभालने के लिए उसने जुल्फिकार खां को निजाम बना दिया। स्वयं आगरा लौटने के बाद वह राजपूतों से उलझ पड़ा। नतीजा यह हुआ कि मेवाड, मारवाड़ और आमेर के राजाओं ने मिलकर बादशाह की अधीनता स्वीकार न करने का प्रण किया (सन् १७१०)। दूसरी ओर पंजाब में गुरु गोविंद सिंह के शिष्य बंदा बैरागी ने अपने गुरु के पुत्रों की हत्या का बदला लेने के लिए सरहिंद पर आक्रमण कर दिया और फौजदार वजीर खां को मौत के घाट उतार दिया। सरहिंद से बढ़कर उसने जमुना और सतलज के बीच के क्षेत्र पर कब्जा जमा लिया। इसके बाद उसने सहारनपुर को लूटा और सतलज पार करके सतलज और व्यास के बीच के क्षेत्र की ओर बढ़ा। बाध्य होकर शाह आलम उसका दमन करने के उद्देश्य से अजमेर से लाहौर की ओर बढ़ा। बन्दा के अनुयायी सिख सरमौर के पहाड़ों में चले गये। शाह आलम ने उन्हें लोहगढ़ के किले में घेरा लेकिन बन्दा निकल गया।

२७ फरवरी, सन् १७१२ को लाहौर में शाह आलम की मृत्यु हो गयी। इसके चार पुत्र थे। वे लाहौर शिविर में ही थे। सब आपस में जूझने लगे।

जेठे बेटे की जीत हुई और वह जहाँदार शाह के नाम से गद्दी पर बैठा। उसके भतीजे फर्रुखसियर ने उसके खिलाफ बगावत की। उसने आगरे के पास १० जनवरी, सन् १७१३ को जहाँदार को हरा दिया और उसे कतल कर दिया। उसका वजीर जुल फिकार खाँ भी जिसकी मदद से जहाँदार शाह गद्दी पर बैठा था, मौत के घाट उतार दिया गया।

फर्रुखशियर के जमाने मे ही बंगाल के योग्य सूबेदार मुर्शिदकुली खाँ ने अंग्रेजों की कमर तोडने की चेष्टा की लेकिन बादशाह की मूर्खता के कारण वह कुछ न कर सका। मुर्शिदकुली खाँ ने अंग्रेजो के व्यापार पर चुंगी बढ़ा दी। इस बन्धन से छुटकारा पाने के लिए अंग्रेजों ने फर्रुखशियर की सेवा मे अपना दूत भेजा। एक अंग्रेज डाक्टर हैमिल्टन ने उसे बवासीर के रोग से मुक्ति दिलायी थी। फर्रुखशियर ने उसे इनाम देना चाहा। तब मौका देखकर उसने यह कहा कि बंगाल मे अंग्रेजो द्वारा लाये गये विलायती माल पर चुगी न ली जाय। फर्रुखशियर ने शाहजहाँ और औरगजेब की गलती की पुनरावृत्ति की और अंग्रेज बगाल मे चपते-चपते बच गये।

बंगाल मे अंग्रेजों ने अपनी व्यापारिक स्थिति सम्भाली और दक्षिण मे क्षेत्रीय विस्तार की चेष्टा की। बम्बई के अंग्रेजों ने मराठा सरदार कान्होजी आंग्रे को जिसने कोंकण और समुद्र मे अपनी शक्ति बना ली थी, कुचलना चाहा। विजयगढ़ और खण्डेरी के गढ़ों पर उन्होने चढ़ाई की लेकिन उन्हें मुँहकी खानी पडी (१७१७-१९)। किन्तु अंग्रेज इस पराजय से हताश नहीं हुए क्योंकि भारत में फैली व्यापक फूट उनके सामने थी। राष्ट्रीय हितों के समन्वय को गति प्रदान करने वाली राष्ट्रीयता का अभाव उनसे छिपा न था।

कान्हों जी आग्रे की जल-शक्ति का नाश करने मे अपने को असमर्थ पा कर ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने इंग्लैण्ड के राजा से मदद मागी। वहा से सहायतार्थ एक जगी बेड़ा बम्बई भेजा गया। कान्हो जी आग्रे के विरुद्ध इस सैनिक अभियान मे गोवा और बेसिन के पुर्तगाली गवरनरों ने भी साथ दिया। लेकिन इस बार भी अंग्रेजोंको पराजय का मुंह देखना पड़ा। सन १७२२-२३ में उन्हें कोलाबा किले से पराजित होकर लौटना पडा। दूसरे वर्ष डचों ने विजय दुर्ग पर हमला किया। उनकी भी वही दशा हुई जो अंग्रेजों की हुई थी। सन् १७२९ मे कान्हों जी की मृत्यु हो गयी। इसके पुत्र आपस मे झगड़ने लगे। इसमे पुर्तगालियों ने हस्तक्षेप किया। मराठा राजा शाहू जी के पेशवा बाजीराव प्रथम ने उन्हें रोका और मामला सुलझा दिया। मराठों के प्रति पुर्तगालियों की बदतमीजी ने उनका रोष पुनः भडका दिया। फलतः मराठों ने

अपनी सारी शक्ति लगा कर उन्हें कुचल दिया और पुर्तगालियों के पूरे प्रदेश पर कब्जा कर लिया (१७३७-३९)। बेसिन हाथ में आ ही गया था। मराठों ने लगे हाथ बम्बई पर भी कब्जा करने की तैयारी की। अंग्रेजों को पसीना छूटने लगा। वे शाहू के सामने जाकर गिड़गिड़ाये। शाहू ने उन्हें बख्श दिया। जहाँ पुर्तगालियों की सत्ता समाप्त करने में मराठों ने ऐसी सफलता पायी जिसके लिए मुगल भी तरसते थे, वहीं अंग्रेजों के नक्काशु देख कर उन्होंने मुगलों की वही गलती भी दोहरायी, जिसकी वजह से अंग्रेजों के पैर जमें थे।

जिस समय मराठों और पुर्तगालियों मे घोर युद्ध हो रहा था, उसी समय ईरानी सरदार नदिरशाह उत्तर भारत पर चढ़ दौड़ा। सन् १७३८ में नादिर-शाह ने काबुल पर कब्जा कर लिया और पेशावर पर काबू पाकर उसने पंजाब की ओर कदम बढ़ाये। इस समय मुगल बादशाहत की बागडोर मोहम्मद शाह के हाथ मे थी। औरंगजेब की मृत्यु के बारह वर्ष बाद वह सन् १७१९ मे तख्त पर बैठा था। इस दौरान मे चार बादशाह मुगल तख्त पर बैठ चुके थे। इस स्थिति से मुगलों की गिरती हुई दशा का पता चल जाता है।

मुगल बादशाह नादिरशाह के हमलों को रोकने मे असफल रहा। उसके प्रसिद्ध सूबेदार जकरिया खां के हाथ से लाहौर निकल गया। नादिरशाह ने पंजाब मे ऐसा जुल्म ढाया कि शैतान की आत्मा भी कांप उठी होगी। बादशाह घबरा गया। उसने राजपूतों और मराठों से मदद मांगी। बदकिस्मती से इस समय भी भारत की फूट ने उसका साथ नहीं छोडा। राजपूतों ने टाल-मटोल की। बाजीराव ने बादशाह की सहायता करना स्वीकार अवश्य किया लेकिन कुछ कर न सका। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, मराठा फौज पुर्तगालियों से बुरी तरह उलझी हुई थी। वह कोंकण से हट न सकी।

मुगल बादशाह और उसके सरदारों ने पानीपत से करनाल पहुँच कर मोर्चे-बन्दी की और नादिरशाह को रोकना चाहा लेकिन सफल न हुए। इसके दो प्रमुख कारण थे। नादिरशाह चुस्त और चालाक था। उसकी सेना में घुड़सवार अधिक थे जिनके पास लम्बी बन्दूकें थीं। तलवार और भाले से इन्हे रोका न जा सका। नादिरशाह ने मुगल सेना की मोर्चेबन्दी ध्वस्त् कर दी। तब सन्धि की बात चली। बहुत सम्भव था कि मोटी रकम प्राप्त करने के बाद नादिरशाह लौट जाता लेकिन ऐन वक्त पर मीरबख्श का ओहदा मिलने की गुजाइश न देखकर बादशाह का सआदत खां नामक सिपहसालार गद्दारी कर बैठा। नतीजा यह हुआ कि नादिरशाह ने धोखे से मुहम्मदशाह को कैद कर लिया और दिल्ली में घुस गया। वहां जनता ने विद्रोह किया तो उसने कत्लेआम का हुक्म

दे दिया। इतिहास में यह कत्लेआम प्रसिद्ध है। कहते हैं कि नादिरशाह ने दिल्ली में १५ करोड़ रुपये नकद तथा ५० करोड़ के आभूषण लूटे। इनमें मुगल सम्राट शाहजहां द्वारा बनवाया हुआ प्रसिद्ध तख्त ताऊस भी शामिल था।

उत्तर भारत में जब यह उलट-फेर हो रहा था, तभी दक्षिण में मराठों की ताकत बढ़ती जा रही थी। पुर्तगालियों को उन्होंने कुचल दिया था। इसके बाद कुछ ऐसी घटनाएं घटीं जिनके फलस्वरूप अंग्रेजों की राजनीति ने दूसरा रंग पकड़ लिया।

सन् १७४० में बाजीराव की मृत्यु के बाद शाहू जी ने उसके बेटे बालाजी बाजीराव को पेशवा बना दिया और रघुजी भोंसले को तामिलनाड पर धावा करने के लिए भेज दिया।

आरकट में तामिलनाड की राजधानी थी। यहां का नवाब दक्षिण के सूबेदार के अधीन था। जुलफिकार खां और फर्रुखसियर दोनों ने सआदतुल्ला खां को आरकट की नवाबी सौंपी थी। दक्षिण का स्वतंत्र सूबेदार बनने के बाद निजाम ने भी उसे न छेड़ा। सआदतउल्ला खां ने काफी लम्बे समय तक बड़ी योग्यता से शासन किया। सन् १७३१ में उसकी मृत्यु के बाद उसका भतीजा दोस्त अली आरकट का नवाब बना। इसी समय मराठा रघुजी उसकी ओर बढ़ा। अम्बूर के पास दोस्त अली से उसकी मुठभेड़ हुई। वह युद्ध में मारा गया और उसका दामाद चंदा साहब त्रिचनापल्ली में लड़ता हुआ सन् १७४१ में कैद हुआ।

चन्दा साहब ने गिरफ्तारी से पूर्व अपने परिवार को पांडिचेरी के फ्रांसीसी हाकिम ड्यूमा के पास भेज दिया था। ड्यूमा बहुत योग्य और दूरदर्शी था। उसने भारतीय सिपाहियों को यूरोपीय ढंग से सैनिक शिक्षा देकर एक क्रांतिकारी दिशा की ओर निर्देश किया था जिसका पूरा-पूरा लाभ उसके उत्तराधिकारी डूप्ले ने उठाया। डूप्ले स्वयं भी बहुत कुशल और महत्वाकांक्षी था। सन् १७४८ में जब फ्रांस और इंग्लैण्ड के बीच यूरोप में युद्ध आरम्भ हुआ तो उसने दक्षिण में चोल मंडल की मद्रास आदि अंग्रेजी बस्तियों पर कब्जा कर लिया। दरअसल उसका इरादा काफी पहले से ही यह था कि फ्रांसीसी साम्राज्य का विस्तार किया जाय; क्योंकि नवाबों के आपसी झगड़ों के फलस्वरूप उनकी दिनोत्तर कमजोर होती हुई स्थिति उससे छिपी न थी। वह यह भी समझता था कि मुगल शासन की सत्ता समाप्त प्रायः है। पूर्ववर्ती फ्रांसीसी हाकिम ड्यूमा मराठों को किसी न किसी हद तक प्रभावित कर ही चुका था।

चन्दा साहब को गिरफ्तार करने के बाद रघुजी ने पाण्डिचेरी पहुँच कर ड्यूमा से बकाया खिराज मागा और चंदा साहब का परिवार तलब किया। ड्यूमा ने यह मांग अस्वीकार कर दी। रघुजी ने अंग्रेजी ढंग से शिक्षित सैनिकों की सुसंघटित सेना देखकर उसे न छेड़ा और लौट गया।

फ्रांसीसी-अंग्रेज संघर्ष से एक वर्ष पूर्व ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी थी जिसके फलस्वरूप मराठा शक्ति पर भी आघात पहुँचा। रघुजी और बालाजी पेशवा में ही भिड़न्त हो गयी। बात यह हुई कि त्रिचनापल्ली के बाद रघुजी ने हजारी बाग और बाकुडा से होकर बर्दवान पर धावा किया। उधर बालाजी राव ग्वालियर तक बढ़ गया। मुगल बादशाह ने उसे मालवा का इलाका सुपुर्द कर दिया और साथ ही उसे बगाल से रघुजी को भी निकालने के लिए राजी कर लिया। इस इकरारनामे के अनुसार पेशवा बालाजी राव मुर्शिदाबाद (बगाल की राजधानी) की ओर बढ़ा। रघुजी वीरभूमि की ओर हटा। बालाजी ने उसका पीछा किया और उसे भगा दिया।

बगाल मे रघुजी का यह हाल होता देख निजाम को मौका मिला। उसने तामिलनाड मे रघुजी की सफलता पर पानी फेर दिया और उस प्रान्त पर कब्जा जमाकर अनवरुद्दीन को नवाब नियुक्त कर दिया। इस अनवरुद्दीन की मदद से ही डूप्ले ने अंग्रेजों की बस्तियों पर कब्जा करने मे सफलता प्राप्त की। उसने अनवरुद्दीन को मद्रास सुपुर्द करने की लालच दी लेकिन सफल होने पर उसने उसे अगूठा दिखा दिया। इस पर अंग्रेजों ने उसे उकसाया। उनके पास केवल फोर्ट सेंट डेविड (देवनपटम) रह गया था। नवाब अनवरुद्दीन ने डूप्ले से कहा कि फोर्ट सेट जार्ज अंग्रेजों को वापस कर दिया जाय। डूप्ले ने इसकी परवाह न की। इससे चिढ़कर नवाब ने अपने पुत्र के साथ दस हजार सैनिक रवाना किये और मद्रास से डूप्ले को निकाल बाहर करने का आदेश पुत्र को दिया। डूप्ले के लगभग दो सौ फ्रांसीसी और सात सौ भारतीय सैनिकों ने नवाब के पुत्र की सेना का सामना किया और उसे मार भगाया। ड्यूमा द्वारा सैनिकों को अंग्रेजी ढंग से दी गयी शिक्षा का ही यह परिणाम था। सम्भवतः खुले मैदान में यूरोपियनों और भारतीयों के बीच यह पहला युद्ध था। इसने फ्रांसीसी ताकत की गहरी धाक जमा दी। इस अपूर्व सफलता से उत्साहित होकर फ्रांसीसियों ने फोर्ट सेट डेविड पर भी कब्जा करने की कोशिश की। इस बीच अंग्रेजों को इंग्लैण्ड से सहायता मिल चुकी थी इसलिए डूप्ले अपने इरादे में कामयाब न हुआ; हालांकि उसने फोर्ट सेंट डेविड पर तीन बार आक्रमण किया। इस दौरान मे ही

अंग्रेज सेनापति मेजर लारेंस ने भी जो सेना के साथ इंग्लैण्ड से आया था, पाण्डिचेरी पर कब्जा जमाने की कोशिश की लेकिन वह भी विफल रहा।

सन् १७४८ में फ्रांस और इंग्लैण्ड के बीच यूरोप में संधि हो गयी। उसके फलस्वरूप भारत में भी उनके बीच युद्ध बंद हो गया। फ्रांसीसियों ने मद्रास अंग्रेजों को लौटा दिया। इस प्रकार शांति कायम हुई जो ऊपर-ऊपर तो अगले अगले आठ वर्षों तक अर्थात् सन् १७५६ तक बनी रही लेकिन अन्दर-अन्दर बंदिशें चलती रहीं। अंग्रेज और फ्रांसीसी दोनों यह समझते थे कि पुनः कभी भी लड़ाई शुरु हो सकती है। फ्रांसीसियों ने पाण्डिचेरी में अपनी सैनिक शक्ति बना रखी थी। अंग्रेज भी इंग्लैण्ड से आने वाली सेना को वापस भेजने का साहस नहीं कर रहे थे।

अपनी सेना को बनाये रखने के कारण डूप्ले को काफी आर्थिक बोझ उठाना पड रहा था। वह इसे हल्का करने की फिराक में लगा रहा। अंततः उसने इसकी तरकीब भी खोज ली।

सन १७४८ में बूढ़े निजाम उल मुल्क की मृत्यु हो गयी। उसका बड़ा लड़का नासिरजंग उसके स्थान पर दक्षिण का सूबेदार बना। उसके दोहते मुजफ्फर जंग ने गद्दी स्वयं हथियानी चाही। अपना इरादा पूरा करने की गरज से वह फ्रांसीसियों से मदद लेने के लिए पाण्डिचेरी चला गया। उधर डूप्ले भी चुप न बैठा था। उसके दिमाग में यह बात चक्कर काट रही थी कि चंदा साहब को मराठों की कैद से निकाल कर तामिलनाड का नवाब बनाया जा सके तो इस प्रदेश पर सरलता से कब्जा हो सकता है। इसके लिए उसने चेष्टा की और मराठा शाहू जी को सात लाख रुपये देखकर उसे कैद से छुड़ा लिया।

डूप्ले ने मुजफ्फरजंग और चंदा साहब, इन दोनों की सहायता करने का बीडा उठा लिया। दोनों को उसने सैनिक सहायता दी। चंदा साहब, मुजफ्फर जंग और फ्रांसीसियों की सेना आरकट की ओर बढ़ी। अनवरुद्दीन ने उन्हे दमलचेरी घाट पर रोकने की चेष्टा की लेकिन वह मारा गया। उसका बेटा मुहम्मद अली शेष सेना के साथ भाग कर त्रिचनापल्ली चला गया। डूप्ले का इरादा फौरन आगे बढ़ने का था लेकिन मुजफ्फरजंग और चंदा साहब राग-रंग में डूब गये। नतीजा यह हुआ कि वे बाद में तंजोर तक ही बढ़ पाये थे कि मराठों से मदद ले कर नासिर जंग उनपर टूट पड़ा। मुजफ्फर जंग ने स्वयं को उसे सौंप दिया। चंदा साहब पाण्डिचेरी भाग निकला। डूप्ले ने अपने को बचाने के लिए एक ओर संधि का संदेश भेजा और दूसरी ओर उसने नासिर जंग के विरुद्ध उसके पठान सरदार से मिलकर षडयंत्र रचा। इसके साथ ही

अपना इरादा पूरा करने की कोशिश भी उसने जारी रखी। समुद्र के रास्ते अपनी सेना भेजकर उसने मछलीपट्टम् पर कब्जा कर लिया। फिर तामिलनाड के सर्वाधिक मजबूत गढ़ जिंजी पर कब्जा करने में भी उसने सफलता प्राप्त की। यह देखकर नासिर ने स्वयं डूप्ले से संधि कर ली। इस बीच पठान सरदारों का षड्यंत्र भी पक चुका था। एक पठान सरदार की गोली ने ५ दिसम्बर, सन् १७५० को नासिरजंग का काम तमाम कर दिया।

इस प्रकार डूप्ले अपने इरादे में सफल हुआ। इसका श्रेय उसके सेनापति बुसी को था। एक के बाद दूसरे युद्ध में विजय प्राप्त करने से उसका उत्साह बढ़ा। नासिर के दम तोड़ते ही उसने हैदराबाद की ओर कदम बढ़ाया। इधर कैद से छूट कर मुजफ्फर जंग पांडिचेरी पहुँचा। उसने डूप्ले को कृष्णा से कन्याकुमारी तक का गवरनर तथा चंदा साहब को उसके अधीन नवाब बना दिया। चंदा साहब ने डूप्ले को काफी नकद रकम दी और कर्नाटक का बहुत बड़ा भाग उसे सुपुर्द कर दिया।

डूप्ले मुजफ्फर जंग को दक्षिण के सूबेदार की गद्दी पर बैठाना चाहता था। विजयी फ्रांसीसी सेनापति बुसी उसे लेकर गोलकुण्डा की ओर चला लेकिन रास्ते में वह एक स्थान पर बलवा दबाते समय मारा गया। तब फ्रांसीसी सेनापति बुसी ने उसके सबसे बड़े मामा सलाबत जंग को गद्दी पर बैठाने का निश्चय किया।

इधर नासिर जंग की मृत्यु पर मुगल बादशाह ने पेशवा का सुझाव मानकर उसके बड़े भाई गाजीउद्दीन को जो दिल्ली में था, दक्षिण का सूबेदार बनाने का फैसला किया और उसे उधर रवाना किया। गाजीउद्दीन ने पेशवा को अपना नायब बना दिया। फलतः पेशवा मैदान में आ गया और उसने कृष्णा के पास सलाबत जंग को आगे बढ़ने से रोक दिया। यहाँ तलवार से निपटारा न किया जा सका। महाराष्ट्र में घरेलू युद्ध छिड़ गया। उसने सलाबत से एक बड़ी रकम प्राप्त करने का वादा करा लिया और लौट गया। बुसी इस मौके से कब चूकने वाला था। वह सलाबत को लेकर औरंगाबाद पहुँचा और वहाँ उसने २० जून, सन् १७५१ को सलाबत जंग को दक्षिण का सूबेदार घोषित कर दिया।

नासिर जंग के बेटे मोहम्मद अली का भी बुरा हाल था। चन्दा साहब ने उसे त्रिचनापल्ली में घेर लिया था। उसने मैसूर के राजा, मराठों और अंग्रेजों से मदद माँगी। सेना का खर्च उठाने की जो समस्या फ्रांसीसियों के सामने थी, वही अंग्रेजों के सामने भी थी। दूसरी बात यह थी कि मोहम्मद अली के पतन

क बाद खतरा साध उनका आर हा बढ़न वाला था। यह देखकर उन्होंने उसकी मदद करने की ठान ली।

यही वह समय था जब क्लाइव नामक अंग्रेज ने जो बाद में भारत में अंग्रेजों की जड जमाने वाला सिद्ध हुआ, यह सलाह दी कि आरकट पर हमला कर दिया जाय। उसे बचाने के लिए चन्दा साहब त्रिचनापल्ली का घेरा ढीला करने को मजबूर होगा। बाद में यही हुआ। पहले अंग्रेज गवरनर ने मोहम्मद अली के सहायतार्थ सेना की एक टुकड़ी तथा कुछ शस्त्रास्त्र भेजे। क्लाइव के आधीन सेना थी। वह त्रिचनापल्ली में घुस गया और निकल भी आया। उसकी इस खूबी से खुश होकर अंग्रेज गवरनर ने उसे कप्तान बना दिया।

मद्रास लौट कर क्लाइव ने अपने गवरनर को यह रिपोर्ट दी कि मोहम्मद अली बहुत कमजोर है और वह अधिक दिनों तक टिक न सकेगा। साथ ही उसने यह भी सुझाया कि फ्रांसीसी फौज का एक भाग त्रिचनापल्ली में, दूसरा भाग पाण्डिचेरी में तथा तीसरा भाग बुसी के नेतृत्व में मुदूर हैदराबाद में पड़ा है। आरकट की रक्षा के लिए नाममात्र की सेना रह गयी है, अतः उस पर ही हमला बोल दिया जाय। यह सलाह मान ली गयी। दो सौ अंग्रेजी और तीन सौ भारतीय सिपाहियों के साथ आरकट की चढ़ाई पर क्लाइव भेजा गया। छः दिनों में ७० मील का मार्ग तय करके क्लाइव आरकट में घुसा। नवाब की सेना भाग खड़ी हुई। क्लाइव ने उस पर कब्जा कर लिया। यह खबर सुनकर नवाब चन्दा साहब ने अपने पुत्र राजा (राजू) साहब के नेतृत्व में दस हजार सिपाहियों को आरकट पर पुनः अधिकार करने के लिए भेजा। राजा साहब ने आरकट को घेर लिया। अपने मुट्ठी भर सैनिकों के साथ क्लाइव वहीं डटा रहा। वह भागा नहीं। राजा साहब ने भी घेरा तोड़ा नहीं। इस प्रकार लगभग दो मास बीत गये। क्लाइव के सैनिकों के लिए भोजन तक न रह गया। उसके आधे सैनिक काम आये। जब क्लाइव और उसके सैनिक इतनी मुसीबत सह चुके तब मद्रास के गवरनर ने क्लाइव के सहायतार्थ कुछ और सैनिक भेजे। यह समाचार पाकर राजा साहब ने आरकट को लेने की आखिरी कोशिश की लेकिन उसे पराजित होकर पीछे हटना पड़ा। बाहर से आने वाली अंग्रेज फौज तथा क्लाइव की फौज के घेरे से अपने को बचाने के लिए उसने अपना घेरा तोड़ दिया। सन् १७५१ की इस मशहूर लड़ाई का जो इतिहास में 'आरकट का घेरा' के नाम से प्रसिद्ध है, इस प्रकार अन्त हुआ।

जब कर्नाटक में ये घटनाएँ घट रही थीं, फ्रांसीसी सेनापति बुसी की ताकत

दक्षिण में तब भी बनी थी। आरकट पर अंग्रेजों का पूर्ण अधिकार होने के दौरान में ही बाला जी द्वारा औरंगाबाद पर आक्रमण किये जाने के बाद, वह गोलकुण्डा से आगे बढ़ा और उसने मराठों को पराजित किया। उसकी फौज पूना से १६ मील दूर कोरे गाँव तक पहुँच गयी। दक्षिण के सूबेदार सलाबत जंग को अकेला पाकर इसी समय रघुजी भोंसले ने निजाम का पूर्वी प्रदेश—पेनगंगा और गोदावरी के बीच का भाग दबा लिया। त्रिचनापल्ली के मोर्चे पर भी फ्रांसीसियों को पीछे हटना पड़ा। आरकट के घेरे के कारण चन्दा साहब की फौज बँट गयी थी। मोहम्मद अली का पलड़ा भारी देखकर तंजोर के राजा ने भी उसकी मदद की। चन्दा साहब और फ्रांसीसियों की फौजों को श्री रंगम् द्वीप में हटना पड़ा, जहाँ चन्दा साहब स्वयं घेर लिया गया। जून, सन १७५२ में तंजोर के सेनापति ने चन्दा साहब को धोखे से पकड़ लिया और मौत के घाट उतार दिया। मोहम्मद अली मराठों को दोस्त न बनाये रख सका। मराठे पुनः फ्रांसीसियों का पक्ष लेने लगे।

हैदराबाद को मराठे मुंह का कौर समझते थे, लेकिन वहां फ्रांसीसियों के पैर जम गये। तामिलनाड में शक्ति का बंटवारा हो गया। आरकट और त्रिचनापल्ली अंग्रेजों के हाथ में आ गये। जिंजी पर फ्रांसीसियों का कब्जा बना रहा।

बालाजी राव ने फ्रांसीसियों की शक्ति को बढ़ने से कुछ रोका अवश्य लेकिन सम्पूर्ण भारत की राजनीति की दृष्टि से उसने घटनाओं पर ध्यान नहीं दिया। सारे भारत पर मराठों के बढ़ते हुए प्रभुत्व को जमाये रखने के लिए बालाजी को पठानों की सहायता लेकर फ्रांसीसियों और अंग्रेजों की कमर तोड़ने के मौके से लाभ उठाना चाहिये था लेकिन उसने यह नहीं किया। मराठा दरबार में सिर्फ एक खब्त का जोर था और वह यह कि पूरा दक्षिण मराठा सम्राज्य में शामिल किया जाना चाहिये। दिल्ली में सफदर जंग और बंगाल में अलीवर्दी खां से होनेवाली संधियों के कारण दक्षिण के अतिरिक्त पूरे भारत में उनका प्रभाव जम चुका था।

बालाजी राव ने दक्षिण विजय की अपनी लालसा पूरी करने के लिए यदि शिवाजी और बाजीराव की नीति पर ध्यान दिया होता तो भी गनीमत थी। तब इतिहास का क्रम शायद बदल जाता। उसने मैसूर आदि छोटी-छोटी रियासतों को मिलाने की आवश्यकता नहीं समझी और इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि नन्दिराज और मुरारीराव आदि मराठा सरदार फ्रांसीसियों के साथ है। वास्तव में दक्षिण में फ्रांसीसी ही उसके मार्ग में आड़े आते थे।

उसकी शक्ति को तोड़ने के लिए बालाजी राव उसके सहायकों को तोड़ सकता था। इनमें कुछ मराठा सरदार थे, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, जो आसानी से टूट सकते थे। फ्रांसीसी सेनापति बुसी के पास काफी भारतीय फौज भी थी। इसे भी आसानी से तोड़ा जा सकता था। बालाजी राव का ध्यान इधर तो आकृष्ट नहीं हुआ। हां, फ्रांसीसियों के विरुद्ध अंग्रेजों से मदद लेने की बात उसने अवश्य सोची। इस प्रकार की ऊटपटांग बातों के फलस्वरूप फ्रांसीसियों की शक्ति और बढ़ गयी।

पहले ही कहा चुका है कि दक्षिण का सूबेदार सलाबत जंग फ्रांसीसियों के कब्जे में था। बुसी की मदद से ही वह सूबेदार बना था। बालाजी ने इसके भाइयों और दीवान से मिलकर बुसी को क्षति पहुँचानी चाही लेकिन उसका यह प्रयत्न बेकार हो गया। फ्रांसीसियों को ही उलटे लाभ हुआ। सन् १७५३ में सलाबत ने आंध्र-तट के चार जिले (सरकार) कोंडपल्ली, एलोर, राजमहेन्द्री और शिकाकोल फ्रांसीसी कम्पनी को जागीर के रूप में दे दिये।

सन् १७५८ में जिस समय बालाजी राव का दक्षिण अभियान आरम्भ हुआ, उस समय घटना-क्रम ने ऐसा रुख अख्तियार किया कि मराठे तो जहां के तहां रह गये लेकिन अंग्रेजों की शक्ति अवश्य बढ़ गयी। मैसूर और पांडिचेरी में मित्रता थी लेकिन इसके बावजूद फ्रांसीसी सेनापति बुसी मैसूर के विरुद्ध युद्ध-रत हुआ। बालाजी राव ने सलाबत जंग के दीवान को मिलाकर उसे इस बात के लिए राजी कर लिया था कि मराठे और निजाम मिलकर मैसूर, तंजोर आदि छोटे-छोटे राज्यों को समाप्त कर दें। बालाजी ने यह कारर-वाई उस समय की जब मैसूर की सेना ने त्रिचनापल्ली में अंग्रेजों को घेर रखा था। उनकी शक्ति को तोड़ने के बजाय बालाजी ने घर की शक्ति पर ही आघात पहुँचाने की भूल की। बुसी ने अनिच्छा से सलाबत जंग का साथ दिया और मैसूर में घुसा लेकिन मामला उसने आगे नहीं बढ़ने दिया। उसने दोनों में समझौता कराने के लिए अपने प्रभाव का उपयोग किया। यह झगड़ा समाप्त हुआ ही था कि दूसरा सामने आ गया। इस बार दूसरे मराठा सरदार मुरारी राव के जो कृष्णा के दक्षिण गुत्ती में बसने वाले मराठों का सरदार था, प्रदेश पर चढ़ाई हुई। मुरारी राव ने अन्तिम क्षण तक लड़ते रहने की घोषणा की। साथ ही उसने इस बात की भी चेष्टा की कि युद्ध न हो। फ्रांसीसी कम्पनी पर उसका काफी कर्ज था। मोहम्मद अली की मदद करने वाले अंग्रेजों को भी मुरारी राव ने घेरा था। उसने बुसी को समझाया कि पेशवा उसके विरुद्ध शक्ति का प्रयोग न करे तो लड़ाई रुक सकती है। सूबेदार सला-

ख्त जङ्ग के दीवान ने जो बालाजी राव से मिला हुआ था, मौका देखकर निजाम को भड़काया। निजाम इस बार दरअसल भड़क उठा। उसने फ्रांसीसियों को अपमानित किया और अङ्गरेजों से सहायता की याचना की। उसे समझाने के लिए बुसी ने अपना रुतबा कम करना गवारा नहीं किया। उसने बालाजी राव से सन्धि तक करने से इनकार कर दिया और पाण्डिचेरी लौटने के पक्के इरादे के साथ हैदराबाद की ओर बढ़ा। सावनूर, कर्नूल आदि इलाकों के कुछ भाग को लेने के बाद मई, सन् १७५६ में निजाम भी लौट आया लेकिन मराठों का अभियान जारी रहा।

अंग्रेजों ने मलाबत जंग की सहायता करना स्वीकार कर लिया था लेकिन बात जहां की तहां रह गयी: क्योंकि इसी समय बंगाल में अंग्रेजों के अस्तित्व पर पहुँचने वाले खतरे के समाचार प्रेसीडेंसी में पहुँचे और अंग्रेजों ने अपनी रक्षा के लिए सेना सुरक्षित रखने का फैसला किया।

बालाजी राव के दक्षिण अभियान से कुछ समय पूर्व से ही फ्रांसीसी कम्पनी के मालिकान डूप्ले पर अविश्वास करने लगे थे। वे युद्ध के खर्च से ऊब गये थे। इससे उनका व्यापार भी चौपट हो रहा था। यही भावना इंगलैण्ड में भी फैली थी। भारत में अंग्रेज फ्रांसीसी युद्ध के लिए वहां की कम्पनी के मालिकान भी डूप्ले को ही दोषी ठहरा रहे थे। वास्तव में यह फ्रांस की सरकार की दुर्बलता का परिणाम था। डूप्ले का दोष इतना ही था कि वह अंग्रेजों के मुकाबिले में अधिक तत्पर और लगन वाला था। फ्रांसीसी कम्पनी के स्वार्थ की रक्षा के लिए भारतीय नवाबों और सरदारों के युद्ध में उसका हस्तक्षेप अनिवार्य था। अपने मालिकों को वह यह समझा न सका। प्रशंसा प्राप्त करना तो दूर रहा, उलटे उसे अपमानित होना पड़ा। उसे स्वार्थी और महत्त्वाकांक्षी ठहरा गया। उसे पदच्युत कर दिया गया और २० अगस्त, सन् १७५४ को उसके स्थान पर गोडयू पाण्डिचेरी पहुँचा। शांति के स्थापनार्थ किसी तरह की भी सन्धि करने का पूरा अधिकार उसे प्राप्त था। इससे अंग्रेजों को अपार हर्ष हुआ। उनको शर्तों पर ही सन्धि हुई। मोहम्मद अली कर्नाटक का नवाब मान लिया गया। उत्तरी जिलों (सरकार) पर फ्रांसीसियों के अधिकार का दावा समाप्त हो गया। दोनों पक्ष इस बात पर सहमत हुए कि अब से भारतीय राजाओं के मामले में वे हस्तक्षेप न करेंगे।

इस सन्धि की स्याही अभी सूख भी नहीं पायी थी कि वह समाप्त होती नजर आयी। मदुरा और तिनेवेल्ली को नये नवाब के मातहत करने के लिए अंग्रेज वहां फौजें भेजने का नक्शा बनाने लगे। फ्रांसीसियों ने दबकर समझौता

किया था। इसका अनादर होते देखकर वे भी पीछे न रहे। मैसूर के रिजेंट से प्राप्त प्रदेश पर कब्जा जमाने के लिए उन्होंने भी वहां अपनी सेना भेज दी। दोनों पक्षों को इससे कोई लाभ न हुआ। मदुरा और तिनेवेल्ली के राजा तभी तक दबे रहे, जबतक अंग्रेज फौजें वहां थीं। फ्रांसीसियों ने भी अपनी योजना त्याग दी: क्योंकि परेशानी बहुत थी और लाभ कुछ भी नहीं। सम्भव था कि अंग्रेज और फ्रांसीसी कुछ समय के लिए इसके बाद शांत हो जाते लेकिन वेल्लोर के मामले ने रंग पकड़ लिया। यहां के दुर्ग का शासक मुर्तीज अली था। उसने हमेशा मोहम्मद अली का विरोध किया था। मालगुजारी का आधा प्राप्त करने का वचन ले कर अंग्रेजों ने मुर्तीज अली के विरुद्ध मोहम्मद अली की सहायता करने का निर्णय किया। फ्रांसीसियों ने उनका विरोध किया। पांडिचेरी के गवरनर ने अपने मित्र मुर्तीजअली की सहायता करने की घोषणा की और अपनी फौज वहां भेज दी। इस प्रकार वेल्लोर बच गया लेकिन इससे अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के बीच युद्ध की सम्भावना का अन्त नहीं हुआ।

ये घटनाएँ उसी दौरान की है जब बालाजी राव पेशवा ने निजाम के दीवान को मिलाकर मैसूर आदि छोटे राज्यों पर हमला किया था। सन् १७५५ में अमेरिका में अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के उपनिवेशों के बीच युद्ध छिड़ गया। भारत में युद्ध होने की सम्भावना देखकर इंग्लैंड के तत्कालीन प्रधान मन्त्री पिट ने वाटसन और क्लाइव को जो आरकट के युद्ध में काफी ख्याति प्राप्त कर चुका था, अंग्रेजी सेना के साथ भारत भेजा। इस समय मराठों में विचित्र फूट पड़ गयी थी। इसको सम्भालने के बजाय पेशवा ने इसे बढ़ाया और ऐसी आत्मघाती भूल की जिससे मराठों की शक्ति पर करारा आघात पहुँचा।

कोंकण के आगरे भाइयों में से तुला जी ने विद्रोह कर दिया था और काफी जुल्म ढाया था। इस मामले को आपस में निपटाने के बजाय बाला जी राव पेशवा ने इसमें हस्तक्षेप करने का मौका अंग्रेजों को दिया। उसने तुला जी के विरुद्ध अंग्रेजों से मदद ली। अप्रैल, सन् १७५५ में तुला जी से सुवर्ण दुर्ग छीन लिया गया। तुला जी विजय दुर्ग भाग गया। अंग्रेज बेड़ा तो यहां से लौट गया लेकिन बाला जी राव घेरा डाले पड़ा रहा और अन्त में उसने तुला जी को सन्धि करने के लिए विवश किया।

इंग्लैंड से यहाँ पहुँचने पर वाटसन और क्लाइव ने यह प्रस्ताव रखा कि अंग्रेजों के साथ मिलकर मराठे हैदराबाद पर धावा करें और फ्रांसीसी सेनाधिकारी बुसी को वहाँ से निकाल दें। बालाजी तो अंग्रेजों के साथ था ही लेकिन

तुला जी इसके लिए राजी न हुआ। इस पर वाटसन और क्लाइव ने विजय दुर्ग पर चढ़ाई की और १२ अप्रैल, सन् १७५६ को तुला जी का जहाजी बेड़ा डुबा दिया। सन् १७१७–१९ में और सन् १७२२–२३ में क्रमशः विजयगढ़ और खंडेरी के गढ़ों पर आक्रमण के समय तथा बाद में कोलाबा के किले में जिस आंग्रे की जल-शक्ति के समक्ष अंग्रेजों और पुर्तगालियों की संयुक्त जल-शक्ति को मुँह की खानी पड़ी थी, आपसी फूट के कारण उसका सिक्का समाप्त हो गया—स्वयं मराठा सरदार ने ही उसे डुबवा दिया! सन् १७३७ में पुर्तगालियों के दुर्व्यवहार से क्षुब्ध मराठों ने उनके प्रदेश पर कब्जा करके बम्बई पर आँखें गड़ायी थी और अंग्रेजों को गिड़गिड़ाने के लिए विवश किया था लेकिन अठारह वर्ष बाद मराठों का पेशवा अंग्रेजों का मुँह ताकने लगा था—अपने ही भाई को युद्ध में पराजित करने के लिए। दुर्भाग्यवश पेशवा यह गलती आगे भी दोहराता गया। फ्रांसीसियों को रोकने के लिए वह इस हद तक अंग्रेजों की मदद करता गया कि स्वयं अंग्रेजों के मुकाबिले में उसका ही अस्तित्व खतरे में पड़ गया और अंग्रेज जमते गये।

———

# अंग्रेजी राज की नींव

**नवाब अलीवर्दी खां—सिराजुद्दौला का कड़ा रुख—अंग्रेजों का षड्यन्त्र—सिराज का अभियान—पेशवा की भूल—पंचमांगी मैदान में—काल कोठरी की घटना—कलकत्ता पर अंग्रेजों का अधिकार—दिल्ली में उलट-फेर—अंग्रेज रेजिडेण्ट मुर्शिदाबाद में—फ्रांसीसियों पर आक्रमण—शाहदव की मक्कारी—मीरजाफर की दगाबाजी—पलासी का युद्ध।**

दक्षिण मे मराठों की नौ-शक्ति पर विजय के बाद ही बंगाल मे भी अंग्रेजों का सितारा बुलद हुआ। यहां उनकी सफलता वीरता और शूरता पर नहीं, अपितु मक्कारी, दगाबाजी और फरेब पर आश्रित थी। मराठों की अदूरदर्शिता के कारण उनको बंगाल मे भी सफलता मिलीं। इसमे संदेह नहीं है कि यदि मराठों ने तनिक सूझ-बूझ से काम लिया होता और शिवाजी ने राष्ट्रीयता के जिस बीज को रोपा था, उसे उन्होंने रौंदा न होता, तो न तो बंगाल मे अंग्रेजों के पांव जमते, न कालांतर मे उत्तर भारत में उनका प्रभुत्व जम पाता।

विजय दुर्ग पर अंग्रेजी झंडा फहराने के ही दिन पूर्वी बंगाल के बूढ़े नवाब अलीवर्दी खां को खतरा सामने दिखाई देने लगा। इस खतरे से उसने अपने नाती सिराजुद्दौला को जो उसका उत्तराधिकारी होने वाला था, सावधान किया। अलीवर्दी खां बंगाल का गवरनर था। वह अंग्रेजों की चाल को खूब समझता था। शहंशाह से उन्हें जो सुविधाएं प्राप्त हुई थी, वे उसे फूटी आंख न सुहाती थी। राजनीतिक अस्थिरता के कारण वह उनसे निपट सकने में असमर्थ रहा। दरअसल उसे इसका मौका ही नहीं मिला। उसके शासन के आरम्भिक काल में बंगाल की दशा भी प्रायः वही थी जो दक्षिण भारत की थी। अव्यवस्था और विद्रोह की चिनगारियां चटक रही थी। चिनसुरा में डच, चन्द्रनगर में फ्रांसीसी और कलकत्ता मे अंग्रेज अपना कब्जा जमाये बैठे थे। एक ओर अंग्रेज दक्षिण में पिटने के कारण बंगाल में अपनी शक्ति बढ़ाने मे सक्रिय थे, दूसरी ओर मराठों के आक्रमण का जोर था। अलीवर्दी खां को लगभग दस वर्षों तक आंधी और तूफान की तरह आने वाले मराठा आक्रामकों का सामना करना पड़ा। वह उनसे पार न पा सका और

लाचार होकर सन् १७५१ में उसे मराठों से संधि करनी पड़ी। उसने चौथ के रूप में मराठों को बारह लाख रुपया वार्षिक देना तो स्वीकार किया ही, साथ ही साथ कटक का प्रान्त भी दे दिया। सन् १८०३ तक मराठों का कब्जा इस पर बना रहा।

अंग्रेजों और अलीवर्दी खा के पारस्परिक सम्बंध के बारे में अंग्रेज इतिहास कारों ने विभिन्न मत व्यक्त किये हैं। लेकिन यह भलीभाति प्रतिपादित हो चुका हैं कि अलीवर्दी खा अंग्रेजों से सशक ही रहता था। इतिहासकार विंसेंट स्मिथ का कथन है कि अलीवर्दी खा अंग्रेजों का मित्र था किन्तु दूसरे इतिहास कार एच० एच० डाडवेल ने इस धारणा से असहमति प्रकट की है। डाक्टर रमेश चन्द्र मजूमदार प्रभृति इतिहासकारों के इस कथन का समर्थन ही उसके इतिहास मे मिलता है कि अलीवर्दी खां अंग्रेजों की ओर से सशंक था। अंतिम समय मे उसका सम्बंध अग्रेजों से अच्छा न था और उनसे सावधान रहने की चेतावनी उसने अपने उत्तराधिकारी सिराजुद्दौला को दी थी। इस धारणा की पुष्टि इस बात से भी होती है कि विभिन्न शक्तियों से लम्बे अर्से तक लड़ने के कारण अली-वर्दी खां युद्ध से ऊब गया था। इससे बचने के लिए तथा बंगाल में शांति बनाये रखने के लिए ही उसने मराठों को चौथ के रूप मे बारह लाख रुपया सालाना देना स्वीकार किया था। अग्रेजों से मित्रता का अर्थ यह हो सकता था कि वे खुले आम अपनी शक्ति को बढ़ाने लगते जिसके फलस्वरूप इस बात की पक्की सम्भावना थी कि यहा भी उनके प्रतिद्वद्वी फ्रांसीसी उससे भिड़ जाते।

दक्षिण मे त्रिजय दुर्ग पर अंग्रेजों के अधिकार के समय ही अलीवर्दी खा की मृत्यु हो गयी। उसके बाद सिराजुद्दौला उसकी गद्दी पर बैठा। उसने अग्रेजों को कलकत्ता में अपने किले का विस्तार करने से रोका। इस तथ्य को अनेक अग्रेज इतिहासकारों ने यह कह कर उड़ाना चाहा है कि दरअसल वह किला था ही नहीं—बचत का मामूली स्थान मात्र था। लेकिन यह दलील बेकार सिद्ध हो चुकी है। इसे लचर सिद्ध करने वाला सबसे बड़ा तर्क यह है कि यदि अंग्रेज दरअसल बचाव के चक्कर में ही होते तो उन्होंने सिराजुद्दौला के आदेश की अवहेलना करने का साहस न किया होता। उन्होंने सिराजुद्दौला के आदेश की अवहेलना की। सिराजउद्दौला को अपने नाना की चेतावनी भूली न थी। अंग्रेजों की हिमाकत देखकर उसने उन्हें बंगाल से निकाल बाहर करने का निश्चय किया। उसे इस बात पर क्रोध आया कि फ्रांसीसियों ने किलेबन्दी का विस्तार न करने का आदेश मान लिया लेकिन अंग्रेजों ने ऐसा नहीं किया।

अग्रेजों पर सिराजउद्दौला के आक्रमण का एकमात्र यही कारण न था।

तत्कालीन इतिहासकार ओर्मे के कुछ लेखों के अनुसार अंग्रेज ढाका के दीवान राजवल्लभ तथा नवाब की पत्नि के साथ मिलकर सिराजउद्दौला को गद्दी से हटाने का षड़यंत्र भी रच रहे थे। पूर्णिया का नवाब शौकतजग अली-वर्दी खाँ की दूसरी लडकी का पुत्र था। यह भी सिराज से असंतुष्ट था क्योंकि बंगाल की गद्दी का अधिकारी वह स्वयं को समझता था। ढाका के नवाब के साथ इसकी लडकी घसीटी का विवाह हुआ था। यह स्वयं भी बंगाल की नवाबी चाहती थी। बाद में इस षड्यंत्र का भेद खुल भी गया। अंग्रेजों के षडयंत्र का समाचार पा कर सिराजुद्दौला ने उसे बडी चतुरता के साथ अपने महल में बुलाकर कैद कर लिया। इससे भण्डा फूट गया और तब अंग्रेज बचत के लिए क्षमा याचना करने लगे।

अंग्रेजों के विरुद्ध सिराजुद्दौला के क्रोध का तीसरा कारण यह था कि उन्हें शाही फरमान के अनुसार व्यापार करने की जो सुविधाएँ प्राप्त थीं, उनका वे दुरुपयोग कर रहे थे और नवाब की आमदनी पर धक्का पहुँचा रहे थे। चौथा कारण यह था कि अंग्रेजों ने कुछ ऐसे व्यक्तियों को संरक्षण प्रदान कर रखा था जो नवाब के मुजरिम थे और जिन्हें नवाब को सौंपने से अंग्रेजों ने इनकार कर दिया था। इन कारणों से ४ जून, सन् १७५६ को सिराजुद्दौला ने अंग्रेजों के विरुद्ध अपना सैनिक अभियान आरम्भ किया। कासिम बाजार में उसने अंग्रेजों के कारखानों पर कब्जा जमा लिया और बारह दिन बाद एक बड़ी सेना के साथ वह कलकत्ता मे जा धमका। अंग्रेज उसके सामने टिक न सके। बालू की दीवार की तरह उनका प्रतिरोध ढह गया। अंग्रेज गवरनर ड्रेक, उसके सेनापति तथा अन्य लोग जहाज मे बैठकर भाग निकले और उन्होंने फुल्टा मे जाकर पनाह ली। कलकत्ता से दक्षिण की ओर बीस मील दूर हुगली के किनारे स्थित इस स्थान पर बैठकर अंग्रेजों ने जो मक्कारी की, लगता है कि उस पर पर्दा डालने की गरज से ही कुछ अंग्रेज इतिहासकारों ने 'कालकोठरी की घटना' की कल्पना की। इसके सम्बन्ध में कुछ लिखने से पूर्व यह बताना आवश्यक है कि फुल्टा मे भागकर अंग्रेजों ने सिराजुद्दौला से यह प्रार्थना की कि हमे कुछ दिनों तक यहाँ बने रहने दिया जाय। सिराजुद्दौला ने उन्हें तुच्छ समझ कर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। यद्यपि इस समय चन्द्रनगर के फ्रांसीसी सिराज की मदद को तैयार थे, तथापि सिराज ने उनकी मदद नहीं ली। इसकी वजह अंग्रेजों की शक्ति के सम्बन्ध में उसकी भ्रांत कल्पना ही थी।

पेशवा बालाजी राव ने भी इस समय भारी भूल की। अपनी शक्ति

को संभालने तथा अंग्रेजों और फ्रांसीसियों को लड़ाने के बजाय उसने स्वयं ही फ्रांसीसियों की शक्ति न बढ़ने देने का फैसला किया। उसने बंगाल के मुखिया ड्रेक को लिखा कि सिराज से दबना न चाहिये। मराठा सेना मदद करने को तैयार है। ड्रेक ने इस पर ध्यान न दिया; फिर भी बालाजी ने दक्षिण में अपनी सारी शक्ति इसलिए लगा दी कि फ्रांसीसी सेनाधिकारी बुसी बंगाल न पहुँच पाये।

फुल्टा में अंग्रेजों ने सिराज के विरुद्ध षड़यंत्र रचना शुरू किया। कलकत्ते के व्यापारी अमीचन्द तथा जगत सेठ से उनका पत्र-व्यवहार सिराज के विरुद्ध जारी रहा। उन्होंने सिराज के सेनाधिकारी मानिकचंद को भी मिला लिया। इस प्रकार षड़यंत्र बराबर जारी रहा।

कलकत्ता के अंग्रेज गवरनर ड्रेक के पलायन की अंग्रेज इतिहासकारों ने भी काफी निन्दा की है और लिखा है कि अपनी जान बचाने के लिए ही उसने ऐसा किया। अस्तु, ड्रेक के पलायन के बाद 'कलकत्ता की रक्षा के लिए हालवेल और पर्क्स नामक सेनाधिकारी एक सौ नब्बे सिपाहियों के साथ वहीं रह गये।' लेकिन यह अपने किले की, फोर्ट विलियम की रक्षा न कर सके। इनमें से कुछ भाग गये, कुछ मर गये। जी० आर० ग्लेइग सदृश्य इतिहासकारों के कथनानुसार 'एक सौ छियालिस व्यक्ति शेष रह गये जिन्हें बीस वर्ग फुट के एक कमरे में बन्द कर दिया गया। इस कमरे में केवल दो खिड़कियाँ थीं। दोनों के बीच में बरामदा था। दरवाजे में ताला बन्द था। अंग्रेज कठोर गर्मी में रात्रि के समय बन्द किये गये थे। स्थानाभाव के कारण बन्दी एक दूसरे पर लदे थे। उन्हें यह विश्वास हो गया कि प्रातःकाल तक कोई जीवित न बचेगा। उन्होंने दरवाजा खोलने की जी तोड़ कोशिश की लेकिन कामयाब न हुए। हालवेल ने बन्दियों को सान्त्वना देने की काफी चेष्टा की। उसने नवाब के पहरेदार को खिडकी के पास बुलाकर प्रातःकाल तक एक हजार रुपये देने का वादा किया। लेकिन शर्त यह थी कि बन्दी दो कमरों में बाँट दिये जाँय।' तत्कालीन इतिहासकार ओर्मे के कथनानुसार 'बुड्ढा पहरेदार कोशिश करने के लिए चला गया लेकिन कुछ ही मिनटों में लौटकर उसने उत्तर दिया—यह असम्भव है। जब हालवेल ने उसे और अधिक रुपये देने को कहा तो वह एक बार पुनः गया लेकिन पुनः उसने लौटकर यह समाचार दिया कि किसी प्रकार की सहायता की आशा नहीं की जा सकती; क्योंकि नवाब सोता है और कोई उसे उठाने का साहस नहीं कर सकता।'* परिणाम

---

* जी० आर० ग्लेइग—'हिस्ट्री आफ दि ब्रिटिश इम्पायर इन इण्डिया' में उद्धृत—खण्ड—२, पृ० सं०—८३।

यह बताया गया कि सबेरा होते-होते एक सौ तेइस कैदी कालकोठरी में घुट-घुट कर मर गये। शेष तेइस व्यक्ति बचे।

अनेक इतिहासकारों ने यह मत व्यक्त किया है कि उपर्युक्त घटना से सिराज का कोई सम्बन्ध नहीं था। यदि वह घटी भी तो सिराज की गैरजानकारी में। आर० सी० मजूमदार, विंसेट स्मिथ, और एच० एच० डाडवेल आदि इतिहासकारों ने यही मत व्यक्त किया है। ऐसा लगता है कि कालकोठरी की कहानी सिराज को बदनाम करने के लिए हालवेल ने गढ़ी थी। चूंकि अंग्रेज गवरनर ड्रेक के पलायन के बाद हालवेल ने कलकत्ता को बचाने की जी तोड कोशिश की थी, अतः इसका कथन प्रभावोत्पादक मान लिया गया। कुछ समय के लिए तो वह अंग्रेजों का अगुआ सा भी बन गया। इस पर रंग इसलिए चढ़ा कि बाद में क्लाइव ने जम कर इसका समर्थन किया। यह स्थिति भी अविश्वास को ही बल प्रदान करती है, क्योंकि क्लाइव स्वतः जालसाजी और दगाबाजी में किसी से कम साबित न हुआ। इतिहासकार स्मिथ और डाडवेल ने स्वयं क्लाइव को धूर्त बताया है।

कलकत्ता से अंग्रेजों के पलायन का समाचार जिस समय मद्रास पहुँचा, उस समय अंग्रेज फ्रांसीसियों के विरुद्ध सलाबत जंग की सहायता की दरख्वास्त पर विचार कर रहे थे। उन्होंने यह आदेश भी दे दिया था कि तीन सौ यूरोपियन और पंद्रह सौ देशी सिपाहियों की सेना कूच के लिए तैयार रहे। ऐसे ही समय में पहले कासिम बाजार और बाद में कलकत्ता के पतन का समाचार उनके पास पहुँचा। इसने कौंसिल पर गहरा प्रभाव डाला। कौंसिल ने अपना पहला निर्णय बदल दिया। उसने तय किया कि कलकत्ता पर पुनः कब्जा करने के लिए 'अपने प्रत्येक साधन से काम लिया जाय।' कलकत्ता पर चढ़ाई के लिए जहाजी बेड़े का नेतृत्व कप्तान वाटसन को तथा पैदल सेना का क्लाइव को सौंपा गया। १४ दिसम्बर, सन् १७५६ को वाटसन और क्लाइव बंगाल में पहुँच गये और कलकत्ता पर चढ़ाई करने की तैयारी करने लगे। पहले उन्होंने हुगली को जी भरकर लूटा और २ फरवरी, सन् १७५७ को वाटसन और क्लाइव ने पुनः कलकत्ता पर अधिकार कर लिया। इसका कारण सिराज के सेनापति मानिकचंद का विश्वासघात था। सिराज ने कलकत्ता उसके सुपुर्द कर रखा था और 'वह अंग्रेजों के हाथ बिक गया था।'* बाद की घटनाओं ने यह प्रमाणित कर दिया कि न केवल मानिकचंद बल्कि उसका सेनापति मीरजाफर भी बंगाल की नवाबी के लोभ में अंग्रेजों से मिल गया था।

---

* रेवरेंड लांग—'सिलेक्शन फ्राम दि गवर्नमेंट रिकार्डस' से उद्धरित।

१० जून, सन् १७५७ को मीरजाफर और अंग्रेजों के बीच एक गुप्त संधि हुई। इस संधि में मीरजाफर के अतिरिक्त जगत सेठ और अमींचंद आदि भी शामिल थे। इसका उद्देश्य सिराजुद्दौला को गद्दी से उतार कर मीरजाफर को गद्दी पर बैठाना था।

सिराज को इस प्रकार के षड़यंत्र का अभास काफी पहले ही मिल गया था लेकिन कूटनीतिज्ञ न होने के कारण वह अपनी जानकारी का लाभ न उठा सका। कलकत्ता के पतन के बाद अंग्रेजों से संधि करने के लिए जिस समय कुछ संरक्षकों और सेना की एक छोटी टुकड़ी के साथ सिराज कलकत्ता पहुँचा, उस समय उसे अपने अफसरों, 'विशेषतः मीरजाफर के व्यवहार में अजीब परिवर्तन और शत्रुता का भाव नजर आया।'† इतिहास बताता है कि अंग्रेजों ने सिराज के अफसरों को मिलाकर रात में उसे बंदी बनाने की योजना बनायी थी लेकिन यह सफल न हो सकी। सिराज रात को ही चुपके से अपने कुछ विश्वस्त सिपाहियों के साथ खिसक गया था।

कलकत्ता से लौटकर सिराज ने एक बार और साहस बाँधा। उसने अपनी सेना एकत्र की और साथ ही दक्षिण के फ्रांसीसी सेनाधिकारी बुसी को सहायता देने के लिए लिखा। लेकिन बुसी को बालाजी राव ने आंध्र में बुरी तरह फँसा रखा था। इधर से सिराज को निराश होना पड़ा। ऐसी स्थिति में उन लोगों द्वारा उस पर संधि करने के लिए भी काफी जोर दिया जाने लगा जो अंग्रेजों से घूस खा कर बैठे थे। एक ओर यह स्थिति थी, दूसरी ओर दिल्ली में भी व्यापक उलट-फेर हो गया था। अफगान सरदार अहमद शाह अब्दाली पंजाब पर कब्जा करने के बाद जनवरी, १७५७ में दिल्ली में घुस गया था। नादिरशाह की भाँति उसने भी दिल्ली को जी भर कर लूटा। फरवरी, सन् १७५७ में अब्दाली ने दिल्ली से दक्षिण की ओर कूच किया और विजय पर विजय प्राप्त करता हुआ मथुरा से होकर आगरा में जा धमका। इस समय बंगाल में सिराजुद्दौला के पास यह समाचार पहुँचा कि अब्दाली बंगाल पर भी चढ़ाई करेगा। इससे उसकी रही-सही हिम्मत भी टूट गयी और उसने विवश होकर अंग्रेजों से सन्धि कर ली। इस सन्धि से अंग्रेजों को दो जबरदस्त लाभ हुए (१) उन्हें बंगाल, बिहार और उड़ीसा में कहीं भी किसी प्रकार की चुंगी या कर दिये बिना अपना माल भेजने तथा मुक्त रूप से व्यापार करने और (२) कलकत्ते में इच्छानुकूल किलेबन्दी करने

† स्क्रैफ्टन—'रिफ्लेक्शंस' पृ० सं० ६६

का अधिकार मिल गया। इस सन्धि के बाद से ही नवाब के दरबार (मुर्शिदाबाद) में अंग्रेज रेजिडेण्ट भी रहने लगा जिसका मुख्य काम फूट डालना तथा भेद लेना था।

शक्तिशाली शत्रु पर हावी होने के बाद क्लाइव का हौसला बढ़ गया। उसने न केवल सिराजुद्दौला के साथ विश्वासघात किया, वरन् मौका देखकर फ्रांसीसियों के साथ दगा करने से भी बाज न आया। अपनी शक्ति बढ़ाने की गरज से उसने पहले तो यह प्रयास किया कि सिराजुद्दौला अंग्रेजों को फ्रांसीसी उपनिवेश दिला दे, किन्तु जब सिराजुद्दौला ने इसे अपनी प्रतिष्ठा के विरुद्ध बताया तो उसने मक्कारी से काम लिया। 'क्लाइव ने नवाब (सूबेदार) से प्रार्थना की कि हमें चन्द्रनगर के फ्रांसीसी कारखाने पर आक्रमण करने की इजाजत दी जाय। जब सूबेदार ने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया तो क्लाइव ने उसके उत्तर का मनमाना अर्थ लगाना आरम्भ किया और फ्रांसीसियों पर आक्रमण करने के लिए अपनी सेना रवाना कर दी।'* सैनिक हस्तक्षेप की नवाब की धमकी की क्लाइव ने परवाह न की।

यह स्मरण रखने की बात है कि नवाब के हाथ से बंगाल को छीनकर उस पर कब्जा जमाये हुए उसे अधिक दिन व्यतीत नहीं हुए थे कि ब्रिटेन और फ्रांस में युद्ध होने का समाचार पहुँचा। यही वह अवसर था जब सिराज फ्रांसीसियों से सहायता प्राप्त कर सकता था। लेकिन घटनाओं ने विचित्र तरीके से पलटा खाया। क्लाइव के भाग्य से चन्द्रनगर के फ्रांसीसी अधिकारियों ने उसके सामने इस आशय का प्रस्ताव रखा कि फ्रांस और इंगलैंड के बीच युद्ध के बावजूद यहाँ दोनों देशों को एक दूसरे के मामले में तटस्थ रहना चाहिये। क्लाइव ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और दोनों पक्षों में समझौता हो गया। लेकिन सिराज के साथ मनोनुकूल संधि (अलीनगर की संधि, फरवरी १७५७) होते ही उसने यह समझौता भंग कर दिया। इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। क्लाइव के इस कार्य के औचित्य को ईस्ट इण्डिया कम्पनी की कौंसिल के ही कुछ सदस्यों ने चुनौती दी लेकिन उनकी एक न चली क्योंकि सैनिक अभियान के अधिकारियों को काफी अधिकार प्राप्त हो चुका था।

चन्द्रनगर में फ्रांसीसियों ने अंग्रेजों का तगड़ा मुकाबिला किया लेकिन क्लाइव की शक्ति के सामने वे टिक न सके और उन्हें हार स्वीकार करनी पड़ी। फ्रांसीसियों ने सिराज की सहायता नहीं की थी फिर भी सिराज को उनकी

* जी० आर० ग्लेइग 'हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इम्पायर इन इण्डिया' खंड २, पृ० संख्या ९०

पराजय और अंग्रेजों की शक्ति में वृद्धि अच्छी न लगी। जैसा कि कहा जा चुका है, सिराज ने फ्रांसीसी उपनिवेशों पर अंग्रेजों की सत्ता कबूल नहीं की। क्लाइव अब भी सीधे-सीधे मुकाबिला करने से डरता था, अतः उसने षड़यंत्र से काम लिया। इस षड़यंत्र में मीरजाफर को उसने अपना मोहरा बनाया और मुर्शिदाबाद के हिन्दू व्यापारी अमीचन्द को दलाल। इसके फलस्वरूप मीरजाफर और अमीचंद आदि तथा क्लाइव के बीच गुप्त सन्धि (जून, १७५७) हुई जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। इसका उद्देश्य सिराज को अपदस्थ कर के मीरजाफर को नवाब बनाना था।

उपर्युक्त संधि पर हस्ताक्षर होने से पूर्व अमीचंद ने जमकर सौदेबाजी की। उसने क्लाइव से कहा कि नवाब के खजाने की दौलत का पॉच प्रतिशत तथा जवाहरात का चार प्रतिशत भाग मुझे दिया जाय। इससे अंग्रेजों के सामने जटिल समस्या उत्पन्न हो गयी क्योंकि माग स्वीकार न होने पर नवाब के समक्ष षडयत्र का भण्डाफोड़ करने की धमकी भी अमीचद ने दी थी। इस स्थिति मे न केवल मीरजाफर की अपितु मुर्शिदाबाद दरबार के अंग्रेज रेजिडेण्ट वाट्स की जान भी खतरे में पड जाती। कम्पनी का भाग्य तो अधर मे था ही। इस चक्र से निकलने के लिए क्लाइव ने जाल का सहारा लिया। उसने समझौते के दो मसविदे तैयार किये—एक असली था और दूसरा नकली। असली संधि-पत्र में अमीचंद को दी जाने वाली रकम की चर्चा नहीं की गयी और नकली संधि-पत्र मे उसकी माँगे स्वीकार कर ली गयी। क्लाइव के सहयोगी वाट्सन ने नकली संधि-पत्र पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया। क्लाइव ने इसकी भी परवाह न की और स्वयं ही वाट्सन का हस्ताक्षर बनाने का जाल रचने से भी बाज न आया।

यह काररवाई पूरी करने के बाद क्लाइव ने सिराजुद्दौला को पदच्युत करने का बहाना ढूढ़ना आरम्भ किया। यह स्वाभाविक भी था: क्योंकि उपर्युक्त षड़यंत्र पर अधिक दिनों तक पर्दा डाल रखना उसके बूते के बाहर था। वह समझता था कि षडयंत्र का भण्डाफोड़ होने पर न केवल मीरजाफर और अमीचद आदि की बल्कि मुर्शिदाबाद के अंग्रेज रेजिडेण्ट वाट्स तथा सभी अंग्रेजों की भी शामत आ जायगी। उसके निर्देश पर पहले वाट्स और अमीचंद मुर्शिदाबाद से भाग निकले। मीरजाफर अपने महल में ही किलेबंदी करके वक्त पड़ने पर अपनी रक्षा करने के लिए तैयार हो गया। यह सब हो जाने पर क्लाइव ने चन्द्रनगर से सिराज के पास एक पत्र भेजा जिसमें उस पर विश्वासघात करने का दोषारोप किया गया था और अंग्रेजों की अधीनता अथवा युद्ध को

स्वीकार करने को कहा गया था। यह पत्र प्राप्त कर के तथा वाट्स को दरबार से गायब देख कर सिराज की आँखें खुल गयी। उसे अपनी संकटपूर्ण स्थिति का ज्ञान तो हुआ और फौजों को तैयार रहने का हुक्म भी उसने दे दिया लेकिन अंग्रेजों से मीरजाफर की मैत्री के खतरे की ओर उसका ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ क्योंकि वह कूटनीतिज्ञ नहीं था। मीरजाफर पर आक्रमण करके उसे कैद करने के बजाय सिराज उससे वफादारी का आश्वासन प्राप्त करने के निमित्त उसके पास गया। नवाब के तख्त पर बैठने का ख्वाब देखने वाला मीरजाफर इस मौके पर कैसे चूक सकता था। उसने कुरान हाथ में लेकर वफादार रहने की कसम खायी। बदकिस्मत सिराज के भाग्य का फैसला यहीं हो गया। अपने पैर में उसने आप कुल्हाड़ी मारी। अंग्रेजों से मुकाबला करने के लिए तैयार फौज की कमान उसने मीरजाफर को सौंप दी।

चन्द्रनगर से क्लाइव की सेना बढ़ी और मुर्शिदाबाद की ओर से नवाब सिराजुद्दौला की। हुगली और मोर के संगम पर पलासी गाँव में दोनों ओर की फौजों का मुकाबिला हुआ (२३-६-१७५७)। ठीक मौके पर मीरजाफर अपनी सेना के साथ अंग्रेजो से जा मिला। सिराज की सेना के पाँव उखड़ गये। वह मैदान छोड़कर भागा लेकिन अपने घर के शत्रु द्वारा पकड़कर मुर्शिदाबाद पहुँचा दिया गया जहाँ चुपके से उसकी हत्या कर दी गयी।

भारत के इतिहास मे पलासी के युद्ध का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें विजय ने न केवल बंगाल में अंग्रेजो की सत्ता जमायी, वरन् भारत में अंग्रेजी राज की मजबूत नींव भीडाली। स्वतः अंग्रेजों की विजय के सम्बन्ध में जवाहर लाल नेहरू के इन शब्दों को दोहराना ही पर्याप्त होगा कि "बंगाल में विश्वासघात और जालसाजी को आगे बढ़ा कर तथा नाममात्र का युद्ध करके क्लाइव ने पलासी की लड़ाई जीत ली।"*

---

* डिसकवरी आफ इंडिया—पृष्ठ संख्या २३४

*

# प्रत्यक्ष शासन और लूट

**अंग्रेजों का प्रत्यक्ष शासन—बंगाल में लूट—मुगल शाहजादे की पस्त-हिम्मती—डचों से अंग्रेजों का युद्ध—मीरजाफर पदच्युत—मीरकासिम का हौसला—पटना पर आक्रमण – मीरजाफर पुनः नवाब बना—५ लाख के बदले ५३ लाख वसूल—मीरकासिम का प्रयास—बक्सर का युद्ध—शुजाउद्दौला भी चंगुल में – अंग्रेजों को बंगाल, बिहार, उड़ीसा की दीवानी प्राप्त—इलाहाबाद की संधि भंग—बंगाल में दोहरा शासन—अकाल और अंग्रेजों की लूट।**

सिराजुद्दौला के पतन के बाद भारत की भूमि पर अंग्रेजों की ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रत्यक्ष शासन का इतिहास आरम्भ होता है। पलासी के युद्ध में विजयी होने के बाद अंग्रेजो ने मीरजाफर को मुर्शिदाबाद की गद्दी सौंपी और उसे अपनी अंगुली पर नचाते रहे। उन्होंने जी भर कर बंगाल को लूटा। मूर्ख और कायर मीरजाफर सदा उनका मुँह ताकता रहा और कभी भी चूं तक न कर सका।

मीरजाफर के नवाब होने पर अंग्रेजों ने जून, सन् १७५७ की संधि के अनुसार सिराज के खजाने का बटवारा किया। खजाने में कुल डेढ़ करोड़ रुपये थे। संधि के अनुसार मीरजाफर इससे बीस लाख रुपये अधिक देने का वादा अंग्रेजों से कर चुका था। आधी रकम अर्थात ८५ लाख रुपये उसने तुरंत अदा कर दिये और शेष रकम तीन वार्षिक किश्तों में दी गयी। भारत में इससे पूर्व इतनी बड़ी रकम एक साथ कभी भी अंग्रेजों के हाथ नहीं आयी थी।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी को तो मोटी रकम मिली ही, कम्पनी के ओहदेदारों की थैली भी खाली न रही। मीरजाफर ने उन्हें कुल मिलाकर लगभग १२॥ लाख पौण्ड दिये। इनमें से २ लाख ३४ हजार पौण्ड केवल क्लाइव को प्राप्त हुए थे। लूट बराबर जारी रही। मीरजाफर जनता से कर वसूल करता और अंग्रेजों का घर भरता। वह मजबूर था। अंग्रेज उससे धन वसूल करने के लिए बल-पूर्वक सन्धि की शर्तें पूरी कराते थे क्योंकि "सन्धि की शर्तें बलपूर्वक पूरी न करायी जाती तो उन बड़ी रकमों का वसूल होना कठिन था जिन्हें देने का वादा संधि में मीरजाफर ने किया था।"*

---

*'वंसीठार्ट नैरेटिव आव दि ट्रांजेक्शंस इन बंगाल'—खण्ड १, पृ० सं० ४६

कलकत्ते की कौंसिल ने सन् १७५८ मे क्लाइव को बंगाल का गवरनर नियुक्त कर दिया। इसके फलस्वरूप क्लाइव स्वतंत्र रूप से बगाल के शासन में हिस्सा लेने लगा। इस सिलसिले में उसके हाथ और मजबूत हो गये। भाग्य-वश उसे एक मौका और मिल गया जिसका लाभ उठाने मे वह सफल रहा। उसकी धाक इससे और अधिक प्रबल हो गयी।

पहले कहा जा चुका है कि औरंगजेब की मृत्यु के बाद सूबेदार और नवाब स्वतंत्र हो चुका था। मुगल बादशाह का प्रभुत्व नाममात्र को ही था। इससे शाही परम्परा मे कोई अंतर न पडा। जिस समय बगाल मे मीरजाफर नाम के लिए नवाब, पर वास्तव में अंग्रेजो का जरखरीद गुलाम बना हुआ था, उस समय मुगल दरबार मे मुगल शाहजादा अली गौहर बगाल, बिहार और उडीसा का युवराज था। मीरजाफर का खजाना अग्रेज ही खाली कर देते। नवाब न तो मुगल दरबार को मालगुजारी देता, न उसका शाही हिस्सा। इसे वसूल करने की गरज से अली गौहर ने बिहार पर चढ़ाई कर दी। मीर-जाफर के हाथ-पैर फूल गये। मिया की दौड मसजिद तक। मीरजाफर ने फिर अंग्रेजो का पैर पकडा और कम्पनी से सहायता माँगी। कम्पनी ने इस मौके का पूरा-पूरा लाभ उठाया। उसने नवाब को सहायता दना स्वीकार कर लिया। साथ ही मुगल शाहजादे को भी उसने अपना दुश्मन न बनाना चाहा। उसने नवाब की गैर जानकारी मे चुपके-चुपके अली गौहर से लिखा-पढ़ी की और उसे यह आश्वासन दिया कि भविष्य मे शाही हिस्सा मुगल दरबार को मिला करेगा। मुगल शाहजादे के लिए यह बहुत था, क्योंकि उसमे न हिम्मत रह गयी थी, न मुगलों की आनबान को पुनः कायम करने का शौक रह गया था। उसने कम्पनी का वादा मान लिया। अंग्रेजों को मालगुजारी वसूल करने का मौका मिल गया। शाहजादे ने उन्हें इस शर्त पर बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी सौंपने को कहा था कि कम्पनी मालगुजारी का निर्धारित हिस्सा मुगल दरबार को देती रहेगी। इससे जहाँ अंग्रेजों को उपर्युक्त सूबों पर अपना प्रभुत्व कायम करने का अवसर मिला, वहीं मीरजाफर की हिम्मत भी एकदम पस्त हो गयी।

क्लाइव को भला इतने से संतोष कैसे हो सकता था। उसने मीरजाफर को बिलकुल खोखला कर दिया और जब यह देख लिया कि वह किसी मर्ज का इलाज नहीं रह गया है तो उसको गद्दी से हटाकर किसी दूसरे को उसका स्थान देने का मंसूबा वह बाँधने लगा। मरता क्या न करता। मीरजाफर की यही दशा थी। डचों का सहारा लेकर उसने अंग्रेजों के फौलादी पंजे से अपने को मुक्त

करने की चेष्टा की। कलकत्ता से बीस मील उत्तर की ओर चिनसुरा में डचों का अड्डा था। जावा से वहां आनेवाले जहाजों में भरे डचों का स्वागत मीरजाफर ने करना आरम्भ किया। क्लाइव के लिए इतना ही काफी था। इसके अतिरिक्त वह यों भी डचों से सावधान रहता था; क्योंकि वे भी प्रभुत्व जमाने की होड़ में पीछे नहीं रहना चाहते थे। क्लाइव ने युद्ध छेड़ दिया। कर्नल फोर्ड के नेतृत्व में अंग्रेज सेना ने उनको बुरी तरह शिकस्त दी। इससे क्लाइव को तीन लाभ हुए (१) फ्रांसीसियों की भाँति इस क्षेत्र में डचों की शक्ति पर भी चोट पहुँची (२) मीरजाफर का षड्यंत्र विफल हो गया और (३) अंग्रेजों की धाक द्विगुणित हो गयी। डचों के लिए यह लड़ाई बहुत महँगी सिद्ध हुई। प्रसिद्ध इतिहासकार विंसेंट स्मिथ ने लिखा है कि 'यह युद्ध अल्पकालिक, खूंखार और निर्णयात्मक रहा। इसमें डचों ने पूर्णतः आत्मसमर्पण किया। वे भारत के राजनीतिक क्षेत्र से पृथक हो गये।'* इसके बाद ही क्लाइव सन् १७६० के द्वितीय मास में इगलैंड चला गया और वंसिटार्ट बंगाल का गवरनर होकर आया।

मीरजाफर को पदच्युत करने का अपना इरादा पूरा करने के लिए अंग्रेजों ने २७ सितम्बर, सन् १७६० को मीरजाफर के दामाद मीरकासिम से उसी प्रकार की एक गुप्त सन्धि की जिस प्रकार की गुप्त सन्धि उन्होंने सिराजुद्दौला को पदच्युत करने के लिए स्वयं मीरजाफर से की थी। इसके अनुसार निश्चय हुआ कि कम्पनी मीरकासिम को सैनिक सहायता देगी और बदले में मीरकासिम उसे बर्दवान, मिदनापुर और चटगॉव के इलाके (जिले) दे देगा।

सन्धि होने के बाद अंग्रेज गवरनर वंसिटार्ट अपने सेनापति के साथ मुर्शिदाबाद की ओर चल पड़ा। उसने मीरजाफर को गद्दी छोड़ने के लिए मजबूर किया। मीरजाफर पाँच दिनों तक लगातार बात करता रहा लेकिन उसकी एक न चली। मीरकासिम बंगाल का नवाब बना ही दिया गया। लेकिन बहुत अधिक दिनों तक मीरकासिम से अंग्रेजों की पट न सकी। वह योग्य शासक था। अंग्रेजों के इशारे पर नाचना इसे गवारा न था। उसने बंगाल की दशा सुधारने की चेष्टा की। लगान की वसूली का उचित प्रबन्ध किया। उसने अपनी आर्थिक स्थिति सुधार ली और कम्पनी का काफी ऋण चुकता कर दिया। राजधानी वह मुर्शिदाबाद से हटाकर मुंगेर ले गया जहाँ उसने नये ढंग से अपनी सेना का संघटन किया। सेना को विदेशी ढंग की शिक्षा

---

* विंसेंट स्मिथ, 'दि आक्सफोर्ड हिस्ट्री आव इण्डिया' पृ० संख्या ७९६

देने के लिए उसने सेमरू और मार्कर नामक दो आर्मिनियनों को नियुक्त किया और अपनी शक्ति बनायी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की कौंसिल के अधिकतर सदस्यों को 'मीरकासिम का योग्य शासन खटकने लगा, क्योंकि लूट-खसोट करने का मौका उन्हें कम मिलता।' †

कम्पनी का गवरनर वंसिटार्ट स्वतः कमजोर था। कौंसिल के सदस्य और कर्मचारी खूब मनमानी करते थे। कम्पनी को बिना कर दिये व्यापार करने का अधिकार मुगल सम्राट फर्रुखसियर के फरमानों से प्राप्त था। कम्पनी तो इसका उपयोग करती ही थी। उसके अफसर और नौकर भी निजी लाभ के लिए इसका दुरुपयोग करने से बाज न आते। मीरकासिम ने इस ओर वंसिटार्ट का ध्यान आकृष्ट किया लेकिन कौंसिल के सदस्यों के भय के कारण वह चाहते हुए भी कुछ न कर सका। इधर मीरकासिम की आमदनी भी घटने लगी। देशी व्यापारियों का व्यापार चौपट हो गया। फलतः मीरकासिम ने कड़ा रुख अख्तियार किया। वह अंग्रेजों की लूट-खसोट का विरोध करने लगा। स्थिति को सुलझाने की गरज से बंगाल का अंग्रेज गवरनर वंसिटार्ट मुर्शिदाबाद गया और उसने नवाब के साथ व्यापारिक समझौता किया। इसके अनुसार यह निश्चित हुआ कि कम्पनी के नौकर अपने व्यक्तिगत व्यापार पर नौ प्रतिशत कर देंगे। कम्पनी की कौंसिल ने यह समझौता ठुकरा दिया। इससे रुष्ट होकर नवाब ने देशी व्यापारियों को भी बिना कर दिये व्यापार करने की अनुमति दे दी। इससे अंग्रेज क्रुद्ध हो उठे। पटना की अंग्रेजी कोठी के मुखिया एलिस ने बदला लेने के लिए पटना शहर पर आक्रमण कर दिया। युद्ध की दुदुभी बज उठी। दोनों ओर से युद्ध की तैयारी होने लगी।

एलिस को अपने प्रयास में मुंह की खानी पड़ी और सम्भव था कि आगे भी अंग्रेजों का यही हाल होता लेकिन सदा की भाँति नवाबी पक्ष की ओर से इस बार भी चूक हुई। अंग्रेजी सेना का एक भगोड़ा अंग्रेज सिपाही जो अपराधी था, मीरकासिम की सेना का सैनिक था। उसकी ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। युद्ध का बिगुल बजने और पहली मुठभेड़ होने के बाद यह एक रात को चुपके से खिसक गया। उसने अंग्रेजों को नवाब की सैनिक तैयारी का समाचार दे दिया। अंग्रेजों ने इसका लाभ उठाया। उन्होंने विश्वासघाती अंग्रेज सिपाही के कथन के मुताबिक रात को ही मीरकासिम की सेना पर हमला कर दिया। जून, सन् १७६३ में युद्ध आरम्भ हुआ। बेखबर मीरकासिम संभल

† रैमजेम्योर—'दि मेकिंग आव ब्रिटिश इण्डिया'—पृ० सं० ६७

न सका। अंग्रेजों ने बेतवा, घेरिया, मुर्शिदाबाद और नवाब की राजधानी मुंगेर पर कब्जा कर लिया। मीरकासिम अपनी फौज के साथ पीछे हटता हुआ पटना पहुँचा। यहाँ पर दो सौ अंग्रेज मौत के घाट उतार दिये गये। मीरकासिम के आर्मिनियन सेनापति सेमरू ने स्वयं डेढ़ सौ अंग्रेजों को तलवार के घाट उतार दिया। अंग्रेज इतिहासकारों ने इस घटना को 'पटना हत्या कांड' के नाम से मशहूर किया।

मीरकासिम को पटना से भी भागना पड़ा। वह अवध के नबाब के पास चला गया। उसके राज में अपनी दाल गलती न देख कर उससे रुष्ट रहने वाले कौंसिल के सदस्यों के लिए यह अच्छा मौका था। उन्होंने पुनः मीर-जाफर को नवाब की गद्दी पर बैठा दिया। गद्दार और नबाबी का भूखा मीर-जाफर अंग्रेजों की हरकत देखकर भी उन्हें पहचान न पाया। वह अंग्रेजो का हुक्म बजाने लगा। अंग्रेजों का व्यापार पुनः कर-मुक्त हो गया। देशी व्या-पारियों पर २५ प्रतिशत कर लगा दिया गया। युद्ध के हरजाने के रूप में मीरजाफर ने अंग्रेजों को ६७॥ लाख की मोटी रकम दी। इसके अतिरिक्त पाँच लाख रुपये और देनेको उससे कहा गया। कहा गया कि भारतीय व्यापा-रियों पर से कर हटाने के कारण जो हानि हुई थी, इस प्रकार वह पूरी होगी। इस रकम की वसूली का इतिहास भी कम रोमांचकारी नहीं है। कहा जाता है कि अंग्रेजों ने उससे पाँच लाख के बदले लगभग ५३ लाख रुपये वसूल किये।

पराजित होने के बाद भी मीरकासिम का साहस टूटा न था। अंग्रेजों से बदला लेने के लिए उसने अवध के नबाब शुजाउद्दौला और मुगल सम्राट से सहायता लेने का निश्चय किया। नबाब शुजाउद्दौला और शाहआलम द्वितीय से मिलकर उसने एक संघ बनाया। दिल्ली के सम्राट के नाम पर बंगाल पर आक्रमण करने की उसकी योजना शुजाउद्दौला ने पसन्द की। मराठों ने भी शुजाउद्दौला की मदद करने का वादा किया। सन् १७६४ में मीरकासिम विशाल सेना के साथ बक्सर की ओर रवाना हुआ। हेक्टर मुनरो के नेतृत्व में अंग्रेज सेना भी मुकाबिले के लिए सामने आ डटी। नवाबी सेना की शक्ति के आगे अंग्रेजों की शक्ति यद्यपि नगण्य थी, तथापि पँचमांगियों के कारण उनके हाथ काफी मजबूत थे। पलासी युद्ध की घटना की पुनरावृत्ति बक्सर में भी हुई। घनघोर युद्ध के बाद नवाब की सेना पराजित हुई। शुजाउद्दौला भाग कर रुहेलखण्ड चला गया। मीरकासिम भी भाग गया और सन् १७७७ में नयी दिल्ली के समीप उसका अन्त हो गया। कहा जाता है कि लाश पर पड़े दुशाले से ही यह पहचाना जा सका कि लाश मीरकासिम की है।

भारत के इतिहास में बक्सर के युद्ध का बहुत अधिक महत्त्व है। विसेण्ट स्मिथ के कथनानुसार पलासी युद्ध का अधूरा काम 'बक्सर युद्ध मे अंग्रेजों की विजय से पूरा हो गया।' यह बात सही भी है। पलासी के युद्ध में अंग्रेजों ने केवल बंगाल के नवाब पर विजय पायी थी और बंगाल पर प्रभुत्व कायम किया था लेकिन बक्सर के युद्ध मे प्राप्त विजय मुगल सम्राट, नवाब शुजाउद्दौला और नवाब मीरकासिम की सम्मिलित फौज पर प्राप्त होने वाली विजय थी। इसके फलस्वरूप उत्तर भारत में भी उनके प्रभुत्व के विस्तार का श्री गणेश हुआ। भगोडा शुजाउद्दौला उनकी शर्तों पर उनसे ( अंग्रेजों से ) संधि करने को विवश हुआ। उसने हरजाने के रूप मे अंग्रेजों को पचास लाख रुपये तो दिये ही, साथ ही गाजीपुर तथा उसके आसपास का इलाका भी दे दिया। यही दशा शाहआलम द्वितीय की भी हुई। उसने भी अंग्रेजों से संधि कर ली। इसके अनुसार उसने बंगाल, बिहार और उडीसा की दीवानी ईस्ट इण्डिया कम्पनी को सुपुर्द कर दी। बदले में कम्पनी ने सम्राट शाहआलम को २६ लाख रुपये बतौर वार्षिक पेशन देना स्वीकार किया। इसके अतिरिक्त बाद में बर्दवान आदि जिलों पर भी कम्पनी का कब्जा मान लिया गया।

मई, सन् १७६५ मे क्लाइव दूसरी बार बंगाल का गवरनर बनाकर यहाँ भेजा गया। इस बार उसे सेनाध्यक्ष के अधिकार भी प्राप्त थे। उसके आगमन से पूर्व जनवरी में ही कठपुतली नवाब मीरजाफर की मृत्यु हो चुकी थी। इतिहासकारों का कहना है कि वह असमय मे ही काल कवलित हुआ। अंग्रेजों की माँग ने उसका जीवन दूभर कर दिया था। एक इतिहासकार के कथनानुसार 'अंग्रेजों की अनुचित माँगों और जबरन वसूली ने उसकी मृत्यु को निकट ला दिया था।'

नवाब मीरजाफर की मृत्यु के बाद उसके पुत्र नज्मुद्दौला को अंग्रेजों ने तख्तनशीं किया। उसने कम्पनी के साथ एक संधि की जिसके अनुसार राज्य प्रबंध का भार अंग्रेजों द्वारा मनोनीत मंत्री को सुपुर्द करने का निश्चय हुआ। इस प्रकार अंग्रेजों ने बंगाल का शासन-प्रबंध सीधे-सीधे अपने हाथ में ले लिया।

जिस समय क्लाइव बंगाल पहुँचा, यहाँ घोर अव्यवस्था फैली हुई थी। बक्सर के युद्ध में विजयी होने के कारण यद्यपि अंग्रेजो का प्रभुत्व बढ़ गया था, तथापि न तो कम्पनी अराजकता की स्थिति का अंत कर सकी थी, न कम्पनी के नौकरों की बेइमानी और उनका भ्रष्टाचार ही समाप्त हुआ था। इस स्थिति को सुधारने का प्रश्न क्लाइव के सामने था। उसने इस ओर ध्यान दिया भी

किन इसका परिणाम उसके लिए बुरा हुआ। कम्पनी के अधिकतर कर्मचारी
नके दुश्मन हो गये। इनका सामना वह न कर सका; क्योंकि अपने प्रथम
सन-काल में वह स्वयं मीरजाफर से २ लाख ३४ हजार पौण्ड ले चुका
। इस काम को उसने यहीं छोड दिया और राजनीतिक शासन को संभा-
ने की चेष्टा शुरु की। इस सिलसिले में उसने अपने पूर्वगामी गवरनर वंसि-
र्ट का वादा तोड दिया। वंसिटार्ट ने अवध के नवाब शुजाउद्दौला को पूरा
न्त लौटा देने का वादा उससे किया था लेकिन क्लाइव ने यह नहीं किया।
ाहाबाद की संधि के अनुसार उसने इलाहाबाद और कड़ा के जिले
जाउद्दौला को नहीं लौटाये। ये जिले उसने शाहआलम को सौंप दिये।

बंगाल, बिहार और उडीसा मे अंग्रेजों ने कर वसूल करने का अधिकार
र्युक्त संधि के अनुसार शाहआलम द्वितीय से प्राप्त कर लिया था। इसके
लस्वरूप बंगाल मे दोहरा शासन-प्रबन्ध स्थापित हो गया। कर वसूल करते
ग्रेज और सैनिक तथा फौजदारी विभाग की देख-रेख करता नवाब। इसके
ले में कम्पनी नाम के लिए नवाब को ५३ लाख रुपये सालाना देने लगी।
से शासन प्रबन्ध में अनेक दोष आ गये। अधिकार का प्रश्न उत्तरदायित्व
सर्वथा पृथक हो गया।

दूसरी बार गवरनर होकर बंगाल आने के बाद क्लाइव अधिक दिनों तक
ाँ न रहा। जनवरी, सन् १७६७ मे वह इग्लैण्ड लौट गया जहाँ उस पर
कदमा चलाया गया। इससे उसे मुक्ति तो मिल गयी लेकिन उसका जो
पमान हुआ, उसे वह भुला न सका। सन् १७७४ मे उसने आत्महत्या कर
। इस प्रकार भारत मे अंग्रेजी राज्य के सस्थापक का अन्त हुआ।

क्लाइव के बाद वर्ल्स्ट बंगाल का गवरनर हुआ। इसके समय में उत्तर
रत मे कोई महत्त्वपूर्ण घटना नहीं घटी। दक्षिण भारत मे युद्ध का दौर
री रहा। मराठे अपनी शक्ति संघटित करने मे लगे थे।

सन् १७६९ मे वर्ल्स्ट के स्थान पर कार्टियर बंगाल का गवरनर हुआ।
र पद पर यह सन् १७७२ तक बना रहा। इसके शासन-काल में भयंकर
काल पड़ा। कई लाख आदमी इसके शिकार हुए। कम्पनी के व्यापारियों ने
ावल पर अधिकार करके खूब मुनाफा कमाया।

---

# दक्षिण में उथल-पुथल

**देवनपट्टम् पर फ्रांसीसियों का अधिकार—बुसी का प्रभाव—लैली का उतावलापन—आरकट पर हमला—मद्रास पर चढ़ाई विफल—विन्दवास पर अंग्रेजों का कब्जा—हैदरअली मैदान में—पेशवा की अदूरदर्शिता—हैदरअली का विजय अभिमान—मराठों से पहला युद्ध—निजाम से अंग्रेजों की संधि—मैसूर का प्रथम युद्ध—अंग्रेजों पर हैदरअली की करारी चोट—मराठों से तीसरी बार टक्कर—कर्नाटक पर हैदर की चढ़ाई—अंग्रेज-विरोधी सब मंग—टीपू का पराक्रम—हैदर की मृत्यु।**

जिस समय क्लाइव और वाटसन कलकत्ता मे नवाब की सेना से लोहा ले रहे थे, यूरोप में इंग्लैण्ड और फ्रांस मे युद्ध छिड़ चुका था ( सन् १७५६ )। भारत में अंग्रेजी बस्तियों को खत्म करने के उद्देश्य से इसी समय फ्रांस की सरकार ने जहाजों का एक बेडा भारत के लिए रवाना किया। यह बेड़ा अनुभवी और अनुपम वीर समझे जाने वाले नौ-सेनाधिकारी काउण्ट द एके के नेतृत्व में था। इसपर लैली नामक फ्रांसीसी सेनापति की कमान मे १८८० सैनिक, ५० तोपची और अनेक विशिष्ठ अफसर थे। पूरे जहाजी बेड़े की कमान लैली के हाथ में थी। इस बेड़े को अनेक दुर्घटनाओं का सामना करना पडा। मुसीबतों का सामना करते-करते लगभग दो वर्ष के पश्चात् फ्रांसीसी बेडा २५ अप्रैल, सन् १७५८ को कारो मण्डल के किनारे पहुँचा। चोल मण्डल पहुँच कर लैली ने देवनपट्टम् को घेर लिया और एक मास बाद उस पर अधिकार जमाने मे उसे सफलता मिल गयी।

लैली कुशल, साहसी और वीर सेनानी था। लेकिन इसमे एक दोष भी था। वह किसी की न सुनता और मनचाही करने के लिए 'चट मंगनी, पट विवाह' की कहावत चरितार्थ करने पर तुल जाता। देवनपट्टम् पर अधिकार करने के बाद, आंध्रतट के जिलों का पक्का इंतजाम करके, हैदराबाद पर पूरा प्रभुत्व जमाने वाले फ्रांसीसी सेनापति बुसी को उसने लिखा कि 'मद्रास पर अधिकार करने के बाद मेरा इरादा गंगा पर पहुँचने का है।'

निजाम सलावत जंग के विरुद्ध उस षड़यन्त्र का उल्लेख पहले किया जा

चुका है जिसमें हस्तक्षेप करके बुसी ने मामला निपटा दिया था। बात यह थी कि निजाम और उसके दो भाइयों के बीच गम्भीर झगड़ा था। दक्षिण की प्रभु-सत्ता प्राप्त करना ही इसका मुख्य कारण था। इस मामले मे समझौता कराने के बाद बुसी ने औरंगाबाद छोड़ा लेकिन निजाम सलावत जंग की रक्षा के लिए वह फ्रांसीसी रक्षकों और सिपाहियों की एक टुकड़ी भी वहाँ छोड़ गया। यद्यपि संख्या की दृष्टि से उपर्युक्त सैनिक निजाम की हिफाजत करने के लिए पर्याप्त थे, तथापि उसके सम्बन्धियों के षड़यंत्र को समझना उनके बूते के बाहर था। फलतः निजाम की गद्दी खतरे में पड गयी। निजाम सब कुछ देखता लेकिन अपने भाइयों के षड़यंत्र को विफल करने का उपाय उसे नजर न आता। लाचार होकर उसने पुनः बुसी को मदद के लिए लिखा। बुसी ने उसकी मदद की। बाद में निजाम का एक भाई धोखे में अपने ही आदमियो द्वारा मार डाला गया और दूसरा भाग निकला। निजाम का सिंहासन फिर सुरक्षित हो गया। बुसी की क्षमता के प्रति उसके विश्वास मे गहरी वृद्धि हुई और वह उसकी इच्छाओं का गुलाम बन गया।

मद्रास पर हमला करके वहाँ से अंग्रेजों को निकाल बाहर करने के लिए लैली उतावला हो रहा था। उसने बुसी को औरंगाबाद से वापस आने को लिखा। बुसी ने उसे समझाया कि मुझे यहीं रहने दिया जाय लेकिन लैली ने एक न सुनी। खर्च की समस्या फिर भी हल न हुई। खजाना खाली था। पाण्डिचेरी मे रुपये न थे। व्यक्तिगत आय से व्यय की समस्या हल करने का उदाहरण लैली ने सामने रखा लेकिन इसका अनुसरण भलीभाँति न किया गया। तब लैली ने तंजोर पर हमला करके दौलत प्राप्त करने का निश्चय किया। उसके भाग्य ने उसका साथ न दिया। तंजोर के राजा ने उसके समक्ष झुकने के बजाय अंग्रेजो से सहायता माँगी। इस बीच उसने अपने मातहत सैनिकों को एकत्र किया और अन्तिम क्षण तक युद्ध करने के लिए तैयार हो गया। लैली ने उसे राजधानी में घेर लिया लेकिन घेरा वह कायम न रख सका। राजा के सहायतार्थ त्रिचनापल्ली से सेना आ गयी। दूसरी ओर कारीकल के तट पर अंग्रेजी बेड़ा भी दिखाई देने लगा। लैली को पीछे हटना पड़ा। इस प्रयास मे उसकी सेना की बड़ी दुर्दशा हुई। उसकी तोपें पीछे छूट गयी। सैनिक, मार्ग में मिलने वाली गरी तथा अन्य जंगली फलों से क्षुधा मिटाते हुए कारीकल पहुँचे, जहाँ अंग्रेजी बेड़ा पहले ही पहुँच गया था।

तंजोर में सफल न होने के बाद लैली ने आरकट को हथियाने का निश्चय किया। उसकी धारणा थी कि यहाँ खजाना छिपा है। यहाँ सफलता प्राप्त

करने में उसे दिक्कत न हुई; क्योंकि नवाब मोहम्मद अली जिसपर आरकट की रक्षा का भार था, गद्दार निकला। इसके बावजूद लैली की इच्छा पूरी न हुई। यहाँ जो कुछ प्राप्त करने की कल्पना उसने की थी, वह उपलब्ध न हुआ।

इस बीच औरंगाबाद में अपने देश के लिए बहुत कुछ अर्जित करने के बाद बुसी सदर कार्यालय के आदेशानुसार वहाँ से लौटा। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, औरंगाबाद में ही रहने की उसने कोशिश की लेकिन लैली ने उसके किसी तर्क पर ध्यान न दिया। बाध्य होकर उसे उस इमारत को अरक्षित छोड़ना पडा जिसका निर्माण करने में काफी समय लगा था। उसने निराशा और संशय से भरे निजाम को यों ही छोड़ दिया और अपने साथ मछलीपट्टम् से काफी सेना लेते हुए आरकट में लैली से जा मिला।

लैली के पास विशाल सेना का जमावड़ा तो जुट गया लेकिन आर्थिक संकट मुँह बाये सामने खडा हीं रहा। उसकी बुद्धि काम न देती थी। इस बीच पाण्डिचेरी के अधिकारियों ने भी यह घोषित कर दिया कि इतनी बडी सेना को बनाये रखने के साधनों का अभाव है। परिणामतः युद्ध परिषद की बैठक बुलायी गयी। इसके समक्ष दोयम नम्बर के सेनाधिकारी द' एस्टिंग तथा अन्य अफसरों ने यह घोषित किया कि 'भूख से तडप कर मरने के बजाय दुश्मन के सामने फना हो जाना बेहतर है।'* अन्ततः मद्रास पर आक्रमण करने का सुझाव पेश हुआ। यद्यपि सफलता मिलने की आशा लैली को कम थी, तथापि उसने इससे सहमति प्रकट की। इतना ही नहीं, उसने अपनी आय मे से चौंतिस हजार रुपये भी दिये। अन्य लोगों ने भी उसका अनुसरण किया। इससे समस्या तो हल न हुई लेकिन कुछ राहत मिल गयी। इस प्रकार फ्रांसीसी अधिकारियों के उत्साह से नब्बे हजार रुपये एकत्र हुए और नवम्बर मास के मध्य में (सन् १७५८) फ्रांसीसी सेना ने मद्रास की ओर प्रयाण किया। मौसिम ने बडी निर्दयता दिखाई। मूसलाधार वर्षा होती रही। निर्धारित स्थान पर पहुँचते-पहुँचते रसद आदि जो पहले ही अपर्याप्त थी और भी कम हो गयी। मुश्किल से एक सप्ताह तक काम चलाने का सामान बचा था। चौदह दिसम्बर को लैली ने मद्रास नगर पर आक्रमण का आरम्भिक दौर शुरु कर दिया। अंग्रेज गवरनर पिगाट के अधीन सेनाधिकारी कर्नल लारेंस ने लगभग छः सौ अंग्रेज सिपाहियों को लेकर मोर्चेबन्दी की। लैली ने इस युद्ध का

---

*जी० आर० ग्लेइग—'दि हिस्ट्री आव दि ब्रिटिश इम्पायर इन इण्डिया' खण्ड २, पृ० सं० ११८

संचालन बड़ी कुशलता से किया। हतोत्साह सैनिकों के सहारे ही उसने अंग्रेजों के लिए खतरा उत्पन्न कर दिया लेकिन ऐन वक्त पर किस्मत ने उसका साथ छोड़ दिया। तोपों की मार से परेशान अंग्रेजों की हिम्मत पस्त करने के लिए उसने नगर पर आक्रमण करने का आदेश दिया ही था कि क्षुब्ध अफसरों ने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। सम्भव था कि अपनी बुद्धि-चातुरी और दम-दिलासा देने की नीति से लैली इस महान् संकट को पार कर जाता लेकिन इसी समय अंग्रेज एडमिरल पोकाक का जहाजी बेड़ा जिसपर छः सौ सैनिक मौजूद थे, मद्रास आ पहुँचा और फलतः उसी समय तसवीर का रुख बदल गया जब मद्रास का भाग्य अधर में लटक रहा था। लैली को पीछे हटना पड़ा।

२७ अक्तूबर, सन् १७५९ को अंग्रेज सेनाधिकारी कर्नल आयरकूट ताजी सेना के साथ मद्रास पहुँच गया। लगभग दो मास के अंदर उसने विंदवास के गढ़ पर भी जो फ्रांसीसियों के अधिकार में था, कब्जा कर लिया। इसे वापस लेने के प्रयत्न में लैली की करारी हार हुई और दक्षिण में फ्रांसीसी शक्ति की धाक जमाने वाला सेनाधिकारी बुसी बहादुरी के साथ खोई हुई बाजी जीतने का प्रयास करते समय अंग्रेजों द्वारा बंदी बना लिया गया।

लैली ने इस पराजय के बाद मराठों और मैसूर के सेनापति हैदरअली से जो बाद में स्वतः सर्वेसर्वा बन बैठा, सहायता प्राप्त कर के अपनी खोयी हुई प्रतिष्ठा पुनः अर्जित करने की काफी चेष्टा की। इस सिलसिले में हैदर की मैसूरी फौज ने एक बार अंग्रेजों को शिकस्त भी दी लेकिन इसका नतीजा कुछ न निकला। अंग्रेजों की ताकत बढ़ती ही गयी। सितम्बर, सन् १७६० में आयरकूट ने पाण्डिचेरी को घेर लिया। फ्रांसीसियों के प्रमुख केंद्र की रक्षा के लिए लैली ने पेशवा बालाजी राव से मदद माँगी। बालाजी के लिए यह अच्छा मौका था। सन् १७५९ में अंग्रेजों ने धोखे से सूरत का कोटला छीन लिया था। इसका बदला लेने के लिए बालाजी ने फ्रांसीसियों से मिलकर जंजीरा और बम्बई पर चढ़ाई करने की कल्पना की थी लेकिन उत्तर भारत पर अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण के कारण वह ऐसा न कर सका था। फ्रांसीसी सेनापति लैली द्वारा सहायता की याचना की जाने पर अपना पुराना स्वप्न साकार करने का मौका बालाजी राव के हाथ में फिर आया। उसके लिए वास्तव में यह सुनहरा मौका था। पहला लाभ तो यह था कि मराठा सेना की मदद के बदले उसे लैली से जिंजी का गढ़ प्राप्त हो जाता और दूसरा लाभ यह था कि वह प्रबल यूरोपीय शक्ति को तोड़ देता। लेकिन बालाजी राव उपर्युक्त

अवसर का लाभ न उठा सका। उत्तर भारत में जिस प्रकार वह पठानों से समझौता न कर सका था, उसी प्रकार फ्रांसीसियों से भी न मिल सका। उसने मोलभाव करने में ही सारा समय बिता दिया। बाहर से लैली पाण्डिचेरी को मदद पहुँचाने की जी तोड कोशिश करता रहा। लेकिन सब व्यर्थ। सन् १७६१ मे आयरकूट ने पाण्डिचेरी पर कब्जा कर लिया। बाद में जिजी पर भी उसका अधिकार हो गया। इस प्रकार फ्रासीसी शक्ति का अंत हुआ। डचों की कमर बंगाल मे क्लाइव तोड ही चुका था। यूरोपीय शक्तियों मे से केवल अंग्रेजों की ही शक्ति शेष रह गयी।

सन् १७६३ की पेरिस संधि के अनुसार भारत की फ्रासीसी बस्तियाँ फ्रास को लौटा दी गयीं—फ्रांसीसियो का कब्जा इन पर हो गया लेकिन सैनिक शक्ति के रूप में फिर वे पनप न सके।

इस दौरान मे ही दक्षिण में एक नयी शक्ति का भी अभ्युदय हुआ जिसने अंग्रेजों, मराठों और निजाम से जमकर टक्कर ली। यह शक्ति थी हैदरअली की। हैदरअली पहले मैसूर राज्य के सेनापति नञ्जराज की सेना मे नायक के पद पर था लेकिन धीरे-धीरे अपनी शक्ति बढ़ा कर वह मैसूर का शासक बन गया। उसने अपने प्रभाव-क्षेत्र का खूब विस्तार किया। पाण्डिचेरी पर अंग्रेजों की चढ़ाई के समय उसने फ्रासीसी सेनाधिकारी लैली की मदद की और बीच मे अंग्रेजों द्वारा मार्गावरोध किये जाने पर उसने उन्हे हराया भी। लेकिन मैसूर में ही उपद्रव हो जाने के कारण उसे बीच से ही लौटना पडा। उसने अपना घर संभाल कर पुनः राज्य का विस्तार करना आरम्भ कर दिया। सन् १७६३ मे उसने बेदनूर, सावनूर और धारवाड तक अपना सिक्का जमा लिया और यहाँ कृष्णा नदी की दक्षिणी शाखा मलप्रभा तक जा धमका। सन् १७६४ मे मराठा पेशवा माधवराव ने कृष्णा नदी को पार करके उसका मुकाबिला किया। मराठों से उसका यह पहला युद्ध था। यह युद्ध साल भर तक चलता रहा। अंततः हैदर ने सावनूर और गुत्ती आदि के इलाके छोड दिये और मराठों को हरजाना दिया। इस प्रकार इस युद्ध का अंत हुआ लेकिन आग बुझी नहीं।

हैदरअली के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर मद्रास के अंग्रेज भी घबरा गये। उन्होंने उसका सामना करने की गरज से निजाम से संधि कर ली। निजाम भी हैदरअली से सशंक था। तय हुआ कि निजाम पर अंग्रेजो या मराठों का हमला होने पर अंग्रेज उसकी मदद करेंगे। हैदरअली भी चुप न बैठा रहा। मराठों के सामने हुई हार का बदला चुकाने के लिए उसने एक वर्ष बाद ही मलाबार पर चढ़ाई की और उस पर अपना कब्जा जमा लिया। इसके फल-

स्वरूप मराठों से दूसरी बार उसकी मुठभेड़ हुई। सन् १७६६ में हैदर ने मलाबार पर चढ़ाई की थी। सन् १७६७ में माधवराव ने उसे पुनः जा घेरा और शिरा के इलाके पर अधिकार जमा लिया। इसी समय निजाम को साथ लेकर अंग्रेजों ने भी हैदरअली पर धावा कर दिया। हैदर ने अंग्रेजों से दो वर्ष तक युद्ध किया। यह युद्ध इतिहास में मैसूर के प्रथम युद्ध के नाम से विख्यात है।

दो तरफा युद्ध से बचने के लिए हैदरअली ने वे सारे इलाके पेशवा माधवराव को लौटा दिये जो उसने बालाजी से प्राप्त किये थे और नियमित रूप में चौथ देना भी स्वीकार कर लिया। इस प्रकार माधवराव से उसने समझौता कर लिया और इधर से फुर्सत पाकर वह अंग्रेजों पर टूट पडा। आरम्भ में अंग्रेज कृष्णागिरी तक घुस आये थे। हैदर ने इसका बदला जम कर लिया। उसने अंग्रेजों का वह बेडा तहस-नहस कर डाला जो कन्नड़ तट पर चढ़ाई करने के लिए बम्बई से भेजा गया था। इसके बाद उसने पूर्व में हमला किया। यह देखकर निजाम अली ने अंग्रेजों का साथ छोड़ दिया और हैदर से जा मिला। अंग्रेजों को तिरुवण्णामलै के गढ़ मे शरण लेनी पड़ी। छः मास बाद निजाम पुनः हैदर का साथ छोड़ कर अंग्रेजों से जा मिला। अंग्रेजों ने सन् १७६८ मे पुनः उससे सन्धि कर ली। इससे मद्रास की कौंसिल के सदस्य बहुत परेशान हुए और उन्होंने अंग्रेज सेनाधिकारी से कहा कि 'तुमने ऐसे सकट मे फँसा दिया जिससे बचने का कोई रास्ता नहीं दिखाई देता।' कारण यह था कि इस सन्धि के फलस्वरूप हैदरअली जो पहले से अंग्रेजों का शत्रु था, उनका कट्टर दुश्मन बन गया। निजाम से सन्धि करके अंग्रेज मैसूर की ओर बढ़े तो उसने कर्नाटक के नवाब को जा घेरा और पूरे तामिलनाड पर छापा मारना आरम्भ कर दिया। वह विजय-पताका फहराता हुआ मद्रास की सीमा तक जा धमका। अंग्रेजो की एक न चली। वे उससे सन्धि करने को विवश हुए। इसके अनुसार दोनों ने एक दूसरे के जीते हुए इलाके लौटा दिये। अंग्रेजों ने यह वादा भी किया कि हैदरअली पर किसी शक्ति द्वारा आक्रमण किये जाने पर वे उसकी मदद करेंगे। यह सन्धि सन् १७६९ में हुई और मैसूर के प्रथम युद्ध का अन्त हुआ।

सन् १७६९ की सन्धि हैदर और अंग्रेजों, दोनों के लिए महँगी साबित हुई। इसका लाभ उठाने की गरज से और अंग्रेजों की सहायता प्राप्त होने की कल्पना कर के हैदरअली ने पेशवा माधवराव को सालाना कर भेजना बन्द कर दिया और साथ ही सावनूर पर भी आक्रमण कर दिया। इसके फलस्वरूप उसे तीसरी बार मराठों से टक्कर लेनी पड़ी। सावनूर पर हैदर के

आक्रमण का बदला लेने के लिए पेशवा माधवराव ने सन् १७६९ में उसके राज्य पर हमला कर दिया। माधवराव ने हैदर द्वारा जीते गये जिलों पर कब्जा कर लिया। सन्धि के अनुसार अंग्रेजों ने हैदर की मदद न की। हैदर अकेला जूझ न सका। माधवराव बंगलोर तक जा धमका। अंगेजों पर उसे बहुत गुस्सा आया। उसने खून का घूट पी कर माधवराव से संधि कर ली ( १७७२ ) और बंगलोर तक का पूरा इलाका उसे दे दिया। मैसूर राज्य का विस्तार इस प्रकार घट गया। हैदरअली अंग्रेजों से बदला लेने के मौके की बाट जोहने लगा।

सन् १७७८ में अमेरिका के स्वातंत्र्य युद्ध के कारण अंग्रेजों और फ्रांसीसियों में ठनी हुई थी; क्योंकि फ्रांस, अमेरिका की सहायता करने लगा था। भारत में भी अंग्रेजों और फ्रांसीसियों में भिड़ गयी। फ्रांसीसियों ने पहले चन्द्रनगर पर अधिकार जमा लिया। अंग्रेज इधर फंसे, उधर हैदराबाद के निजाम ने फ्रांसीसियों और मराठों को मिलाकर उनके विरुद्ध संघ-शक्ति तैयार कर ली। १७७९ मे हैदरअली भी इस संघ में शामिल हो गया। इससे उसकी शक्ति काफी बढ़ गयी। इसका लाभ उठाते हुए उसने अंग्रेजों से बदला लेने की गरज से विशाल सेना के साथ सन् १७८० में कर्नाटक पर चढ़ाई कर दी। यहाँ युद्ध में अंग्रेज सेनापति वेली को उसने पराजित किया और कर्नाटक की राजधानी आरकट पर कब्जा जमा लिया। इससे अंग्रेजों को बड़ा धक्का लगा। लेकिन भारत के दुर्भाग्य ने जल्द ही उनका साथ दिया। अलफ्रेड लायल के शब्दों में जिस समय 'भारत मे अंग्रेजों का भाग्य-सूर्य मंद पड़ गया था,' उस समय आपसी फूट के कारण उनके पैर पुनः जम गये।

कर्नाटक की पराजय की सूचना पाकर बंगाल के अंग्रेज गवरनर हेस्टिंगज ने 'विंदवाश' मे फ्रांसीसियों पर विजय प्राप्त करने वाले अंग्रेज सेनापति आयरकूट को मुकाबिला करने के लिए भेजा ( १७८१ )। उसकी कूटनीति ने उस संघ को भी तोड़ दिया जो हैदराबाद के निजाम ने बनाया था। निजाम और मराठे संघ से अलग हो गये। हैदरअली अकेला रह गया। फलतः आयरकूट की सेना के सामने वह हार पर हार खाता गया। पोर्टोनोवो, पोल्ली लोर और शालिंगगढ़ मे उसकी पराजय हुई। अंग्रेजों की विजय का दौर रुका नहीं। इसके बावजूद हैदरअली का साहस न टूटा। वह अंग्रेजों के सामने झुका नहीं। उसने युद्ध जारी रखा। हैदरअली को शालिंगगढ़ में पराजित करने के बाद अंग्रेजों ने डचों से त्रिंकोमाली छीन लिया था। ठीक इसी समय हैदरअली के बेटे टीपू ने मौका पाकर तंजोर में एक अंग्रेज टुकड़ी को मौत के घाट

उतार दिया। मौका अच्छा देख कर फ्रांसीसी कप्तान सूफां और ड्यू चेमां भी अंग्रेजों से बदला लेने के लिए हैदरअली की मदद को आ पहुँचे। सूफां ने दो हजार फ्रांसीसी सैनिक तट पर उतार दिये। उनकी मदद से हैदरअली ने कुड्डलूर पर कब्जा कर लिया। स्वयं सूफां ने भी अंग्रेजों से त्रिंकोमाली छीन लिया।

सम्भव था कि हैदरअली युद्ध का पासा पलट देता; क्योंकि वह न केवल वीर, साहसी और दूरदर्शी था बल्कि ऐसा पहला भारतीय शासक भी था जो यूरोपीय युद्ध-प्रणाली का पूरा-पूरा ज्ञान रखता था। लेकिन भाग्य ने उसका साथ न दिया। ७ दिसम्बर, सन् १७८२ को इस मेधावी, कुशल, लोकप्रिय और शासन-कार्य मे मजहब से प्रभावित न होने वाले वीर सेनानी की मृत्यु हो गयी। उसके पुत्र टीपू ने युद्ध जारी रखा। वह भी अपने पिता के ही समान वीर था। मराठों की अदूरदर्शिता के कारण अन्ततः अंग्रेजो से युद्ध करते हुए वह भी श्रीरंगमूपट्टम के फाटक पर वीरगति को प्राप्त हुआ।

———

# मराठों की राजनीति

**मराठों का आपसी झगड़ा—पेशवा बालाजी राव की नीति—बाजीराव का उत्तर भारत में अभियान—मराठों की भूल—अंग्रेजों ने तुला जी का बेड़ा डुबाया—नादिरशाह की धाक—उत्तर-पूर्व में मराठों का दबदबा—पेशवा बाला जी बाजीराव और उसकी भूलें—मुगलों के विरुद्ध पठानों का विद्रोह—रुहेलखंड पर मराठों की चढ़ाई—मारवाड़ की गद्दी के लिए युद्ध—राजपूतों और मराठों में तनाव—भारत पर अब्दाली का आक्रमण—दिल्ली की राजनीति और मराठा—संघ-शक्ति का अभ्युदय—अफगान आगरे तक आये—दिल्ली पुनः लूटी—मराठों की भूल पर भूल—पानीपत की तीसरी लड़ाई—मराठों की पराजय—माधवराव पेशवा—राघोबा का विद्रोह—मराठों का प्रभुत्व पुनः कायम।**

"अट्ठारहवीं शती के दौरान में भारत में सत्ताधिकार की होड़ में चार वास्तविक प्रतिद्वन्द्वी थे। इनमें दो भारतीय और दो विदेशी थे। भारतीयों में मराठा तथा दक्षिण में हैदरअली और उसका पुत्र टीपू सुलतान थे। विदेशियों में अंग्रेज और फ्रांसीसी थे। इस शती के पूर्वार्द्ध में यह निश्चित-सा प्रतीत होता था कि मराठों के भाग्य में ही भारत में अपनी सत्ता स्थापित करना और मुगल साम्राज्य का उत्तराधिकारी होना बदा है। सन् १७३७ के आरम्भिक काल में उनकी सेना दिल्ली की सीमाओं तक पहुँच गयी थी और उनका सामना करने वाली कोई शक्ति दिखाई न देती थी।"* बासठ वर्ष बाद अर्थात् अट्ठारहवीं शती के अन्त से एक वर्ष पूर्व सन् १७९९ में युद्ध-भूमि में टीपू सुलतान के धराशायी होने के बाद नक्शा और भी साफ हो गया। प्रतिद्वंद्विता के चित्र में केवल मराठे और अंग्रेज ही रह गये। इस समय तक मराठों ने अनेक बार भूल पर भूल की। जिस आदर्श की स्थापना शिवाजी ने की थी तथा जिसका अनुसरण पेशवा बाजीराव प्रथम ने किया था, उसकी ओर प्रबल मराठा सरदारों ने ध्यान नहीं दिया। नतीजा यह हुआ कि जब केवल

---

*जवाहरलाल नेहरू—'डिसकवरी आव इण्डिया' (सिगनेट प्रेस) पृ० सं०—२३३

अंग्रेजों के सामने वे रह गये, तब अंग्रेजों ने उनकी फूट का पूरा-पूरा लाभ उठाया और एक को दूसरे से लड़ाकर उनकी शक्ति छिन्न-भिन्न कर दी। मराठों का पतन हुआ और अंग्रेज एक मात्र सत्ताधिकारी हो गये।

शिवाजी के देहावसान के बाद कुछ समय तक मराठों में अस्थिरता रही। सम्भा जी के पुत्र शाहू जी और ताराबाई के पारस्परिक संघर्ष के कारण मराठों मे फूट पड गयी लेकिन संयोग वश यह महंगी नहीं सिद्ध हुई; क्योंकि इसके ही फलस्वरूप पेशवा-परम्परा का जन्म हुआ जिसने मराठों को संघटित किया। ताराबाई के मुकाबिले में विजयी होने पर शाहू जी ने जो निकम्मा, ऐयाश और अयोग्य था, बालाजी विश्वनाथ को पेशवा और प्रधान मंत्री बना दिया। इस प्रथम पेशवा ने अपनी बुद्धिमत्ता से पेशवा-पद को स्थायी तो बनाया ही, साथ ही मराठों के प्रभाव का विस्तार भी किया। उसने दूरदर्शिता के साथ मुगल बादशाह की दुर्बलताओं का लाभ उठाया और उस इमारत की नींव मजबूत की जिसका निर्माण शिवाजी ने आरम्भ किया था।

मुगल दरबार मे 'सैयद बन्धुओं' का काफी दबदबा था। मराठों ने इन मे से एक को दक्षिण मे खूब तंग किया और उसे संधि करने को विवश किया। इस संधि के अनुसार खानदेश, बरार, गोंडवाना के प्रदेश तथा हैदराबाद और करनाटक के कुछ जिले शाहू जी के अधिकार मे आ गये। दक्षिण मे उसे चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार भी मिल गया। इस स्थिति से उत्साहित होकर पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने मराठा साम्राज्य स्थापित करने की निश्चित योजना बनायी। उसने शक्ति मे वृद्धि के लिए उत्तर भारत में राजपूतों से मित्रता स्थापित की। इस सिलसिले मे उससे थोड़ी सी चूक भी हो गयी जो आगे चलकर महँगी सिद्ध हुई। उसने लम्बी-लम्बी जागीरें देकर, मराठा सरदारों की भी ताकत बढ़ा दी जिसके फलस्वरूप वे स्वयं महत्त्वाकांक्षी हो गये। सन् १७१४ से १७२० तक प्रथम पेशवा के काल मे मराठों पर इसका प्रभाव नहीं पड़ा लेकिन आगे यही स्थिति न रही।

बालाजी विश्वनाथ का पुत्र बाजीराव ( प्रथम ) शासन-सम्बन्धी योग्यता के मामले में अपने पिता से कम न था। बालाजी की मृत्यु के बाद पेशवा की गद्दी उसे मिली और सन् १७२० से सन् १७४० तक वह इस पद पर बना रहा। नियति का यह क्रूर परिहास ही था कि सब से श्रेष्ठ यह पेशवा भी वास्तविक स्थिति को समझने में भूल कर बैठा। मुगल साम्राज्य की लड़-खड़ाती स्थिति से वह इतना अधिक प्रभावित हुआ कि दक्षिण भारत की स्थिति पर उसने ध्यान ही नहीं दिया। उसने यह सोचा तक नहीं कि शक्ति के लिए

वास्तव में संघर्ष दक्षिण में हो रहा है और उत्तर भारत की शक्तियाँ बिखरती जा रही हैं। बाजीराव और बाद में उसके पुत्र बालाजी बाजीराव ने यदि इस ओर ध्यान दिया होता तो निजाम की दुर्बलता, करनाटक की अव्यवस्था, हैदर और टीपू की पराजय तथा फ्रांसीसी शक्ति के पतन से जो लाभ अंग्रेजों को हुआ, वही लाभ निश्चित रूप में मराठों के पल्ले पडता। अवसर को ठीक ठीक न समझने की इस ऐतिहासिक भूल का परिणाम यह हुआ कि जिस समय दक्षिण भारत पर अपना सिक्का जमाने की आवश्यकता थी, उस समय मराठे उत्तर की ओर बढ़े और जिस समय उत्तर भारत की ओर ध्यान देने की आवश्यकता थी, मराठे दक्षिण मे उलझे रहे।

बालाजी विश्वनाथ की भाँति ही बाजीराव ने भी राजपूतों से मैत्री कायम की और हिन्दुओं की सहायता प्राप्त की। उसने निजामुल-मुल्क के विरोध की उपेक्षा करते हुए उत्तर भारत का अभियान आरम्भ किया। पहले दक्षिण मे उसने मालवा पर विजय प्राप्त की और गुजरात को रौंदा। मराठा सरदार त्रम्बक राव धाबादे को उसके विरुद्ध भड़का कर और उसकी सहायता प्राप्त कर के भी निजामुलमुल्क उसका कुछ न बिगाड सका और उसे पेशवा से संधि करनी पड़ी।

इधर से खाली होकर बाजीराव प्रथम अपनी असली योजना पूरी करने के लिए आगे बढ़ा। मालवा और बुन्देलखंड पर कब्जा करके उसने दिल्ली की ओर प्रयाण किया। भयभीत मुगल सम्राट मोहम्मद शाह ने निजाम से सहायता की याचना की। निजाम सेना लेकर उत्तर भारत मे आया भी लेकिन मराठा सेना के सामने उसकी सेना के पैर उखड़ गये। आया था नमाज छुड़ाने, रोजा गले पड़ गया। मालवा तथा नर्बदा और चम्बल नदियों के बीच का प्रदेश मराठों को देकर निजाम ने उनसे संधि की और अपनी जान बचायी। पश्चिम में सालसट और बेसिन ( बसई ) पर उनका अधिकार हो गया।

मराठा शक्ति को स्थायित्व प्रदान करने के लिए बाजीराव प्रथम ने एक संघ की स्थापना की। अनेक सरदार इसमें शामिल हुए लेकिन इंदौर में होलकर, बड़ौदा में गायकवाड़, ग्वालियर मे सिंधिया और नागपुर मे रघुजी भोंसलें ने स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना की। आरम्भ मे यद्यपि इनका भी उद्देश्य पेशवा की सहायता करना ही था तथापि बाद मे व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा के कारण ये पथ-भ्रष्ट हो गये। ये आपस में ही लड़ने लगे। इनकी हरकतों ने मराठों की बढ़ी हुई शक्ति को समाप्त करना आरम्भ कर दिया।

बाजीराव प्रथम के काल में दो महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटीं। मराठों ने इनका

मूल्यांकन सही तरीके से नहीं किया। संयोग-वश दोनों घटनाएँ सन् १७३९ मे घटीं। यह भी कम महत्त्वपूर्ण बात नहीं है कि इनमें से एक घटना दक्षिण और दूसरी उत्तर भारत में घटी। इनके आधार पर बाजीराव को अपनी महत्त्वाकांक्षा को तौलना चाहिये था।

दक्षिण में कोंकण के मराठा सरदार कान्होजी आंग्रे की जल-शक्ति को तोड़ने के लिए अंग्रेजो ने जो उत्सुकता दिखाई, उस पर पेशवा ने उचित ध्यान नहीं दिया। उद्देश्यपूर्ति के लिए अंग्रेजों का बेड़ा इंग्लैण्ड से बम्बई पहुँचा। अंग्रेजों और पुर्तगालियों ने मिल कर कोलाबा के दुर्ग पर आक्रमण किया। अंग्रेज पराजित हुए। बाद में चिमाजी अप्पाराव के नेतृत्व मे महाराष्ट्र दो वर्षों तक पुर्त्तगालियों से जूझता रहा। पुर्तगालियो का पूरा 'उत्तर प्रान्त' मराठों के हाथ में आ गया। इसके बाद चिमाजी का इरादा बम्बई लेने का था लेकिन यहीं शाहूजी ने जिसे दरअसल राजकाज से कोई मतलब न था, ऐसी भूल की जिसके फलस्वरूप अंग्रेजों की शक्ति को छिन्न-भिन्न करने का एक अच्छा मौका मराठों के हाथ से निकल गया। अंग्रेज शाहूजी से गिडगिडाये और शाहूजी ने उनके साथ दोस्ती कर ली। राजनीति का यह तकाजा था कि पेशवा इस मामले मे हस्तक्षेप करता। उसे अंग्रेजों के कारनामों पर ध्यान देना चाहिये था। तब आप से आप यह बात सामने आ जाती कि मुगल बादशाहों के सामने भी अंग्रेज गिडगिडाये थे लेकिन मौका मिलते ही उन्होंने मुगल बादशाहों की सत्ता ठुकरा दी। ऐसी अनेक घटनाएँ घट चुकी थीं। इनकी उपेक्षा मराठों ने की और स्थितिका सही मूल्यांकन न कर सके।

जो भूल बाजीराव ने की, वही बंगाल में सिराजउद्दौला ने भी की। दोनों ने अंग्रेजों की वास्तविक शक्ति का अदाज लगाने की कोशिश नही की। बाजीराव के बाद पेशवा बालाजी बाजीराव ने तो और भी भयंकर भूल की। इसके फलस्वरूप ही अंग्रेजो ने मराठों की समुद्री शक्ति ध्वस्त् कर दी और विजय दुर्ग पर चढ़ाई करके मराठा सरदार तुलाजी का बेडा डुबा दिया।

सन् १७३९ मे ही ईरान के नादिरशाह की सेना लूटपाट मचाती हुई दिल्ली में दाखिल हुई। कमजोर मुगल बादशाह उसका मुकाबिला न कर सका। उसने बाजीराव तथा अन्य हिन्दू राजाओं से सहायता की याचना की लेकिन व्यर्थ! हिन्दू राजाओं ने मुँह घुमा लिया और बाजीराव दक्षिण मे फँसा रहा। जिस समय उसकी सेना दिल्ली के समीप पहुँची, नादरशाह दिल्ली को लूट कर लौट चुका था।

नादिरशाह ने मुगल बादशाह की धाक पर करारी चोट पहुँचायी। इस आक्रमण के फलस्वरूप उत्तर भारत में अपना आधिपत्य कायम करना मराठों के लिए आसान हो गया। उन्होंने पंजाब तक अपनी धाक जमा भी ली लेकिन इसे कायम न रख सके। उत्तर भारत में अपनी सारी शक्ति लगाकर यहाँ अपनी स्थिति मजबूत करने का मौका जब उन्हें मिला, तब पेशवा पुनः दक्षिण भारत में उलझ गया। नतीजा यह हुआ कि नादिरशाह के आक्रमण के फलस्वरूप उन्हें जो सहूलियतें मिली थीं, अहमदशाह अब्दाली ने सन् १७६१ में पानीपत के मैदान में मराठों को गहरी शिकस्त देकर उन पर पानी फेर दिया। अपनी अदूरदर्शिता के कारण मराठों को उस समय पानीपत की तीसरी लड़ाई में पराजय का मुँह देखना पड़ा जिस समय उनका भाग्य-सूर्य बुलंदी पर था। आपसी फूट भी यह स्थिति उत्पन्न करने में सहायक हुई।

बाजीराव प्रथम के देहावसान के बाद उसका पुत्र बालाजी बाजीराव १८ वर्ष की अवस्था में पेशवा बना। सन् १७४० से सन् १७६१ तक वह इस पद पर बना रहा।

बालाजी वीर भी था और साहसी भी। प्रतिभा उसमें न थी। राजनीतिक बुद्धि-चातुरी और दूरदर्शिता का उसमें प्रबल अभाव था। यही कारण है कि सन् १७४६ में शाहू जी की मृत्यु के बाद राज्य का समस्त अधिकार प्राप्त करने के बावजूद पेशवा बालाजी राव सफल न हो सका। निस्संदेह उसने बहुत सी लड़ाइयाँ जीतीं और प्रभुत्व-क्षेत्र का विस्तार भी किया। लेकिन भूलना न चाहिये कि पानीपत के मैदान में अहमदशाह अब्दाली के समक्ष मराठों की पराजय भी इसी समय हुई थी।

बालाजी राव ने राजनीतिक दृष्टि से अनेक घातक भूलें कीं। संक्षेप में उसकी मुख्य भूलें इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती हैं—(१) उसने हिन्दू राज्य स्थापित करने का आदर्श छोड़ दिया तथा हिन्दू राजाओं और सिखों को मित्र बनाये रखने की नीति से विरत हो गया, (२) उसने मराठा सेना में किराये के टट्टुओं को भर्ती किया और इस प्रकार मराठा सेना में फैली राष्ट्रीयता की भावना पर धक्का पहुँचा, (३) कोंकण सरदार तुलाजी को जो अत्याचारी था तथा जिससे प्रजा त्रस्त थी, समाप्त करने के लिए उसने उन अंग्रेजों की सहायता ली जो कोंकण की जलशक्ति को नष्ट करने का प्रयास कर चुके थे। इसके फलस्वरूप मराठों की जलशक्ति नष्ट हो गयी और (४) मुगल बादशाह के पक्ष में होकर उसने प्रबल मराठा सरदार रघुजी भोंसले से दुश्मनी मोल ली और उससे उस समय युद्ध किया जब वह पूर्व में नवाबी

हुकूमत के क्षेत्रों में मराठों का प्रभुत्व कायम करने में लगा था। भविष्य में मराठों की पराजय के बीज इन भूलों में ही निहित मिले।

बालाजी के पेशवा बनने के बाद ताराबाई ने अपने पौत्र को सतारा की गद्दी पर बैठा कर जो आपसी झगड़ा आरम्भ किया, उसे बालाजी राव ने सफलता पूर्वक दबा दिया और पूरी शक्ति अपने हाथ में ले ली। आपसी फूट का यह दौर बारह वर्षों तक कायम रहा। सन् १७५२ तक महाराष्ट्र में शान्ति कायम हो गयी और नयी व्यवस्था स्थापित हो गयी। इस बीच दिल्ली में सफदरजंग और पूर्व में बंगाल के नवाब अलीवर्दी खाँ से हुई संधियों के कारण मराठों का दबदबा भी उत्तर-पूर्व में बढ़ चुका था। इस समय सम्पूर्ण स्थिति पर भलीभाँति विचार करने की आवश्यकता थी लेकिन बालाजी यह नहीं कर सका। उसने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि जैसे फ्रांसीसी हैं, वैसे अंग्रेज। एक नागनाथ था तो दूसरा साँपनाथ। तो वह फ्रांसीसियों से ही उलझता रहा और अंग्रेजों की बढ़ती हुई शक्ति पर उसने ध्यान नहीं दिया। कोई भी राजनीतिज्ञ यह न करता। उत्तर भारत की स्थिति बिलकुल स्पष्ट थी। यहाँ मराठों का काफी दबदबा था। प्रश्न था दक्षिण पर भी हावी हो जाने का। बालाजी ने निजाम को दबाया, कर्नाटक के नवाब को दबाया, मैसूर से भी बत्तीस लाख रुपये वसूल किये लेकिन फिर भी इधर उसका उतना दबदबा न था जितना उत्तर भारत में था। दक्षिण भारत में फ्रांसीसी काफी ताकतवर थे। अंग्रेजों की शक्ति भी उपेक्षणीय न थी। बालाजी राव फ्रांसीसियों को दबाने के लिए अंग्रेजों से मिलता रहा। इससे अंग्रेजों की शक्ति में जो वृद्धि होती गयी, उसे समाप्त करने की चेष्टा उसने नहीं की यद्यपि यह कार्य कठिन न था। फ्रांसीसियों और अंग्रेजों की फौजों में काफी हिन्दुस्तानी सिपाही थे जिन्हें पेशवा चाहता तो आसानी के साथ तोड़ सकता था। इस पर ध्यान जाता तो अनिवार्यतः यह बात भी उसकी समझ में आ जाती कि नयी युद्ध-प्रणाली के कारण ही अंग्रेज और फ्रांसीसी, सैनिकों की सीमित संख्या के बल पर ही मैदान मार लेते थे। तब वह नयी युद्ध-प्रणाली को अपनाने की आवश्यकता महसूस करता। ऐसी दशा में विदेशियों की जलशक्ति का महत्त्व भी उसकी दृष्टि से ओझल न रहता और कोंकण के तुलाजी की विनष्ट जलशक्ति के स्थान पर वह दूसरा शक्तिशाली बेड़ा तैयार करने की कोशिश करता। अदूरदर्शी होने के कारण वह यह सब समझ न सका और उत्तर भारत में पठानों से व्यर्थ ही उलझता रहा। इनकी सहायता लेकर वह विदेशियों पर आसानी से चोट पहुँचा सकता था।

पेशवा के हक में यह भी था कि वह मौका मिलने पर अंग्रेजों और फ्रांसीसियों को कस कर भिड़ा देता और स्वयं शक्ति के संतुलन को बनाये रखने का काम करता। उसने यह भी नहीं किया, उलटे अंग्रेजों की बढ़ती हुई शक्ति को और भी अधिक बढ़ाने में उसने उनकी मदद की। जिस समय सिराजउद्दौला ने अंग्रेजों को कलकत्ता से खदेड दिया था, उस समय फ्रांसीसियो और अंग्रेजों को एक दूसरे से भिडाने का अच्छा मौका था लेकिन पेशवा ने सदा की भाँति अंग्रेजों की मदद और सिराज की सहायता के लिए उत्सुक फ्रांसीसी सेनाधिकारी बुसी को दक्षिण मे उलझा कर अंग्रेजों की मदद की। पलासी की लड़ाई मे अंग्रेजो की धूर्तता देखकर भी उसकी आँखें नहीं खुलीं और एलिस द्वारा पटना पर आक्रमण किये जाने के बाद अंग्रेजो के लिए संकट की स्थिति उत्पन्न हुई तो पेशवा ने पुनः उनकी मदद की। यही कारण है कि दक्षिण भारत मे औरंगाबाद, बीजापुर और बीदर के कुछ भागों तथा अन्य दुर्गों पर जिनमे दौलताबाद का प्रसिद्ध दुर्ग भी शामिल था, अधिकार करने के बावजूद पेशवा दक्षिण में मराठों की शक्ति को स्थायित्व न प्रदान कर सका। इतना ही नहीं तजोर की मराठा रियासत और पूना के बीच एकता कायम करने की दिशा मे भी वह प्रभावशाली कदम उठाने से रह गया।

उत्तर भारत के सम्बन्ध में भी बालाजी बाजीराव की नीति से मराठों की ताकत पर काफी धक्का लगा। सन् १७५२ मे बालाजी राव घरेलू झगड़ों से खाली हो चुका था, यह पहले ही कहा जा चुका है। इससे पूर्व ही वह बुन्देलखंड के बुन्देलो और राजस्थान के राजपूतों को जिनसे शिवाजी और बाजीराव ने मैत्री स्थापित की थी, अपना शत्रु बना चुका था। सन् १७४३ से सन् १७५१ तक उसने जयपुर के उत्तराधिकार के मामले में ऐसी गंदी नीति अपनायी जिसने शिवाजी और बाजीराव द्वारा उत्पन्न की गयी मैत्री-भावना का गला घोट दिया।

सन् १७४३ में सवाई जयसिंह की मृत्यु हुई। उसका बड़ा पुत्र ईश्वरी सिंह जयपुर की गद्दी पर बैठा। इस पर छोटे भाई माधोसिंह ने राज्य के बटवारे की माँग की। उदयपुर के महाराणा जगतसिंह ने जो माधोसिंह के मामा थे, अपने भानजे का पक्ष लिया। ईश्वरीसिंह को पेशवा का समर्थन प्राप्त हुआ और महाराणा जगतसिंह को मराठा सरदार मल्हार होल्कर का। पेशवा का उपर्युक्त कदम सही था। जयसिंह और बाजीराव में गहरी दोस्ती थी। लेकिन पेशवा अपनी नीति पर कायम न रहा। बाद में उसने भी माधोसिंह का समर्थन किया और सन् १७४८ में जयपुर पर चढ़ाई कर दी। ईश्वरीसिंह

ने उसे पुरानी बातों का स्मरण दिलाया लेकिन पेशवा ने एक न सुनी। लाचार होकर ईश्वरीसिंह को झुकना पड़ा। मराठों ने हरजाने के रूप में लम्बी रकम की माँग की। ईश्वरीसिंह दो वर्षों में भी यह रकम चुका न सका। मराठों ने पुनः चढ़ाई कर दी। इससे राजपूत उसके शत्रु बन गये। उधर जयपुर की गद्दी पर कब्जा होते ही माधोसिंह भी बदल गया।

राजपूतों की भाँति ही मराठों ने पठानों और सिखों को भी अपना शत्रु बना लिया जिसका कड़ुवा फल उन्हें अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण के समय चखना पड़ा।

रुहेलखंड के सूबेदार कायम खाँ बंगश की मृत्यु के बाद मुगल बादशाह अहमदशाह के वजीर सफदर जंग ने उसकी जागीर दबा ली। इस पर कायम खाँ के भाई अहमद बंगश के नेतृत्व में पठानों ने विद्रोह कर दिया। सितम्बर, सन् १७५० में इनसे युद्ध करते हुए सफदर जंग को मैदान छोड़ना पड़ा। बदला लेने के लिए उसने मराठों और व्रज के राजा से मदद ली। मराठों और व्रज की सयुक्त सेना के समक्ष पठान टिक न सके। अप्रैल, सन् १७५१ में फतहगढ़ का दुर्ग उनके हाथ से निकल गया। इसके बाद मराठों ने रुहेलखण्ड पर चढ़ाई की और रुहेलों को ( पठानों को ) कुमाऊँ की तराई तक जा खदेड़ा। अंततः मार्च, सन् १७५२ की संधि के अनुसार इटावा आदि के इलाके लेकर मराठा शांत हुए।

सन् १७४६ मे ही मारवाड़ के राजा अभयसिंह की भी मृत्यु हुई। जयपुर की गद्दी की भाँति मारवाड़ की गद्दी के लिए भी युद्ध हुआ। अभयसिंह के भाई बख्तसिंह और पुत्र रामसिंह आपस में भिड़ गये। सन् १७५१ में बख्तसिंह ने बल पूर्वक अधिकार छीन लिया। वह अधिक दिनों तक शासन न कर सका। अगले वर्ष ही उसकी मृत्यु हो गयी और उसका पुत्र विजयसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। मराठे यहाँ भी चुप न रहे। मारवाड़ के गृहयुद्ध में भी उन्होंने हस्तक्षेप किया—आग बुझाने के लिए नहीं किन्तु अपने क्षणिक स्वार्थ की सिद्धि के लिए। दिल्ली से राघोबा ने रामसिंह की मदद के लिए जयप्पा सिंधिया को भेजा जिसने बख्तसिंह के पुत्र विजयसिंह को पराजित किया। विजयसिंह ने नागोरगढ़ में पनाह ली। यदि पेशवा की बात जयप्पा ने मान ली होती तो सम्भव था यह बात यहीं समाप्त हो जाती लेकिन मराठा सरदार तो बेलगाम हो रहे थे। पेशवा के आदेशानुसार उसे विजय सिंह की पराजय के बाद प्रयाग और बनारस की ओर जाना चाहिए था लेकिन वह वहीं अड़ा रहा। इससे राजपूत बहुत रुष्ट हुए और मौका पाकर उन्होंने जुलाई

सन् १७५५ में उसे कत्ल कर दिया। इस घटना ने फूट की आग भड़का दी। जयप्पा का भाई दत्ता जी विजयसिंह से भिड़ गया और जब तक वह भागकर बीकानेर नहीं चला गया, उसने उसका पिण्ड न छोड़ा। फरवरी, सन् १७५६ में एक संधि हुई जिसके अनुसार अजमेर मराठों के कब्जे में आ गया लेकिन यहाँ के राजपूतों का सहयोग मराठों ने खो दिया।

सन् १७४७ में नादिरशाह कत्ल कर दिया गया। उसकी मृत्यु के बाद अफगानों ने ईरानियों की हुकूमत से पिंड छुड़ाया और नादिरशाह के अफगान सरदार अहमदशाह अब्दाली ने हुकूमत सम्भाल ली। वह अफगानिस्तान का शासक हो गया। मुगल साम्राज्य की हिलती हुई नींव का लाभ उठा कर हिन्दुस्तान पर अफगान प्रभुत्व जमाने के लिए उसने आठ बार आक्रमण किया और मुगलों तथा मराठों की शक्ति को काफी क्षति पहुँचायी। उसकी बढ़ती हुई ताकत पर भी मराठों ने भलीभाँति ध्यान नहीं दिया। यह भी पेशवा की अदूरदर्शिता का ही परिणाम था।

जिस समय बादशाह अहमदशाह के वजीर सफदर जंग का पक्ष लेकर मराठे रुहेलों से युद्ध कर रहे थे, उसी समय अहमदशाह अब्दाली ने पुनः पंजाब पर चढ़ाई कर दी (दिसम्बर, १७५१)। पंजाब के मुगल सूबेदार मोइन उलमुल्क का दीवान अब्दाली की फौज से लड़ता हुआ मार्च, सन् १७५२ में मारा गया। मोइन उलमुल्क को दिल्ली से मदद न मिली। उसने अब्दाली के आगे घुटने टेक दिये। कारण यह था कि बादशाह के बुलाने पर भी सफदर जंग लौटा नहीं। वह मोइन का पतन चाहता था। उसकी इच्छा पूरी हुई और अब्दाली ने लाहौर पर कब्जा कर लिया। यह देखकर बादशाह घबराया। उसने सफदर जंग द्वारा मराठों से सहायता प्राप्त करनी चाही। सदा की भाँति मराठे मोलभाव करने से बाज न आये। उनकी समझ में यह न आया कि बादशाह की ताकत तो समाप्त प्रायः है ही, नयी ताकत न पैदा होनी चाहिये। उनकी इच्छानुसार और अपनी दाल गलाने के लिए सफदर जंग ने उनसे संधि की। इसके अनुसार पेशवा को अजमेर और आगरे की सूबेदारी, पंजाब और सिंध में चौथ वसूल करने का अधिकार, हिसार, सम्भल, मुरादाबाद और बदाऊँ की जागीर प्राप्त हुई। बदले में पेशवा ने भीतरी दुश्मनों और बाह्य आक्रमण से दिल्ली साम्राज्य की रक्षा करने का वादा किया। लेकिन वह अपने वादे पर कायम न रहा। कारण यह था कि इस संधि के फलस्वरूप अवध और इलाहाबाद को छोड़कर उत्तर भारत में प्रायः सब जगह उसका आधिपत्य कायम हो चुका था। इसकी रक्षा का उचित प्रबंध किये बिना ही

वह दक्षिण में बुरी तरह से उलझ गया। नतीजा यह हुआ कि जब अब्दाली के आक्रमण से दिल्ली के साम्राज्य की रक्षा का प्रश्न सामने आया, वह अपना वादा पूरा न कर सका। जिस सफदर जंग के कारण मराठों का प्रभाव काफी बढ़ा, उसे भी अंगूठा दिखाने से पेशवा बाज न आया।

सन् १७५३ में बादशाह अहमदशाह और वजीर सफदर जंग के बीच कशमकश पैदा हो गयी। मराठों ने अपने सहायक सफदर जंग का साथ न दिया। बादशाह ने उसे पदच्युत करके इतिजामुद्दौला को वजीर बना दिया। शिहाब ने भी जो दक्षिण के सूबेदार गाजिउद्दीन का पुत्र था तथा एक वर्ष पूर्व अपने पिता की मृत्यु के समय जो अनाथ हो गया था और जिसे सफदर ने अपने प्रभाव से साम्राज्य का मीरबख्शी बनवा दिया था, सफदर का साथ न दिया। वह भी उसका दुश्मन हो गया और मराठों की मदद उसे मिली। मौका देखकर रुहेला सरदार नजीब खा भी बदला चुकाने के लिए सफदर के विरुद्ध बादशाह से जा मिला। नतीजा यह हुआ कि सफदर की फौज दिल्ली से बाहर खदेड दी गयी।

इसके बाद पुनः पासा पलटा। मराठों ने पुनः भूल की। हुआ यह कि बादशाह और उसका वजीर सफदर से समझौता करने लगे। मीरबख्शी की महत्त्वाकांक्षा देखकर वे उससे खिंच गये। सफदर समझौता करने के बाद अवध चला गया। बादशाह और मीरबख्शी में ठनी रही। जब पेशवा की फौज रघुनाथराव (राघोबा) के नेतृत्व में उत्तर भारत पहुँची तो बादशाह ने पिछले वर्ष की सन्धि के अनुसार उससे मदद मिलने की आशा की लेकिन मौदबाज पेशवा ने इस गरज से मीरबख्शी की मदद की कि उससे उसे दक्षिण में सहायता मिलेगी। इस विश्वासघात से उसने मुगलों की निगाह में भी स्वयं को गिरा दिया। इसके परिणाम-स्वरूप व्रज का राजा सूरजमल भी मराठों का शत्रु हो गया; क्योंकि मीरबख्शी की शक्ति न बढ़ने देने की गरज से बादशाह ने उसे मिला लिया था! मीरबख्शी का पक्ष लेकर राघोबा ने व्रज पर चढ़ाई कर दी। तब जनवरी, सन् १७५४ में सूरजमल कुम्भेगढ़ के किले में चला गया और उसने मराठों से सन्धि कर ली। इस प्रकार मराठे बराबर अपना वादा तोड़ते गये। बादशाह मजबूर हो गया और उसे मीरबख्शी शिहाब को अपना वजीर बनाना पड़ा। उसने मौका देखकर अहमदशाह को कैद कर लिया और बहादुरशाह के एक पोते को आलमगीर * के नाम से गद्दी पर बैठा दिया।

---

*सन् १७५९ का अन्त होते होते सरहिन्द पर अब्दाली के कब्जे के समय

इस दौरान में ही पंजाब में सिख शक्ति भी प्रबल होने लगी। इस शक्ति का उद्भव १४६९ में पंजाब में गुरु नानक के जन्म के साथ हुआ था। गुरु नानक धार्मिक और मानवतावादी सिद्धान्तों के प्रणेता थे। एक शती से भी अधिक समय तक उनके शिष्यों ने उनके सिद्धान्तों का प्रचार किया लेकिन सिखों के पाँचवें गुरु अर्जुन देव ( सन् १५८१-१६०६ ) ने जहाँगीर के समय मे इनको राजनीति के रंग मे रंग दिया। जहांगीर ने उन्हें कतल करवा दिया। उनके शिष्य और सिखों के छठवें गुरु हरगोविन्द सिंह ( सन् १६०६–१६४५ ) ने मुगलों से युद्ध किया। जहांगीर ने उन्हें बारह वर्ष तक ग्वालियर के किले में कैद रखा। बाद में उन्होंने शाहजहां से भी युद्ध किया और मुगल फौज को हराया भी लेकिन अंततः वह भी पराजित हुए। सातवे गुरु हरराय और आठवे गुरु हरकिशन के काल में कोई उल्लेखनीय घटना नहीं घटी। नौवे गुरु तेग-बहादुर ( १६६४–१६७५ ) ने मुगलों के विरुद्ध हिन्दुओं को संघटित करना आरम्भ किया। औरगजेब ने उन्हें बंदी बना लिया और इसलाम धर्म कबूल करने को कहा। उनके इनकार करने पर बादशाह ने उनका सिर कलम करवा दिया। उनके पुत्र गोविन्दसिंह से उनकी गद्दी संभाली और वे सिखों के दसवें गुरु हुए ( १६७५–१७०८ )। गुरु गोविन्दसिंह ही खालसा दल के संस्थापक थे। इन्होंने सैनिक ढंग से सिखों का संघटन किया और हिन्दुओं पर औरंगजेब के बढ़ते हुए जुल्म का मुकाबला करने के लिए उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। गुरु गोविन्दसिंह इतिहास मे अपने त्याग और बलिदान, शौर्य और पराक्रम के लिए प्रसिद्ध हैं। उन्होंने मुगलों से जम कर युद्ध किया और इस सिलसिले में पहली बार मुगल बादशाह के विरुद्ध उन्होंने उत्तरी पंजाब के पहाड़ी राजाओं से मदद प्राप्त की। औरंगजेब ने उनके दो पुत्रों को पकड़वा लिया। बहादुर बाप के बहादुर बेटों ने बादशाह के कहने पर इसलाम कबूल नहीं किया। इससे क्षुब्ध होकर औरंगजेब ने उन्हें जीवित ही दीवार में चुनवा दिया।

गुरु गोविन्दसिंह ने मरते समय ( १७०८ ) वीर बंदा वैरागी को अपना उत्तराधिकारी बना दिया था। बन्दा बहुत बहादुर था। उसने कई युद्धों मे मुगलों के छक्के छुड़ा दिये और सरहिन्द पर अधिकार जमा लिया। अंततः बादशाह बहादुरशाह ने उसे गुरुदासपुर के किले में गिरफ्तार करने में सफ-

---

वजीर ने इसे करल कर दिया। इसका पुत्र अजीगौहर भाग कर अवध चला गया और उसने स्वयं को शाहआलम के नाम से बादशाह घोषित कर दिया।

लता प्राप्त की। वह पकड़ कर दिल्ली लाया गया जहाँ पहले उसके सामने उसके पुत्र की हत्या की गयी और बाद में उसे भी हाथी से कुचलवा दिया गया। इसके बाद सिख दब गये लेकिन नादिरशाह के आक्रमण के पश्चात् जो अव्यवस्था फैली, उसका लाभ उठाकर उन्होंने अपनी शक्ति पुनः संघटित की। अब्दाली के हमलों के कारण भी इन्हें खूब लाभ पहुँचा।

पंजाब के प्रबल सूबेदार जकरिया खाँ ने इन्हें दबा रखा था लेकिन सन् १७४५ में उसकी मृत्यु के बाद वे पुनः उभड़ पड़े। सन् १७४६ में पंजाब पर अब्दाली के आक्रमण के बाद उन्होंने पंजाब के काफी हिस्से पर कब्जा कर लिया। इस समय पंजाब का सूबेदार मोइन उलमुल्क था जो अब्दाली के आगे घुटने टेक चुका था। मोइन ने भी इन्हें दबाया लेकिन चुंगी वसूल करने का अधिकार उसे इन्हें देना पड़ा। शीघ्र ही मोइन की मृत्यु हो गयी और उसकी विधवा बेगम पंजाब का शासन चलाने लगी। इसके समय में बहुत अव्यवस्था फैली। मोइन ने अब्दाली को वार्षिक कर देने का वादा किया था। इसमें गड़बड़ी उत्पन्न होते देखकर अब्दाली ने पंजाब में अपना प्रतिनिधि भेजा। मुगल बादशाह के वजीर ने अपने सेनापति आदीना बेग को भेजकर उसे खदेड़ दिया और बेगम को हटाकर पंजाब में अपना सूबेदार नियुक्त कर दिया। इससे अब्दाली बहुत रुष्ट हुआ और सन् १७५६ में उसने पुनः पंजाब पर आक्रमण कर दिया। अब्दाली का यह हमला बहुत भयंकर था। वजीर इसका सामना न कर सका। मराठे दक्षिण में फँसे थे। रुहेला सरदार नजीब खाँ अब्दाली से मिल गया। मराठों के प्रभुत्व की रक्षा के लिए ग्वालियर से अन्ताजी माणकेश्वर तीन हजार सैनिकों को लेकर आया जरूर लेकिन अब्दाली का मुकाबिला करने के लिए यह सेना तुच्छ थी। वजीर ने आत्म-समर्पण कर दिया। अब्दाली ने दिल्ली को जी-भर कर लूटा और दक्षिण की ओर बढ़ा। ब्रज के राजा सूरजमल की सहायता लेकर अन्ताजी उसका मुकाबिला करना चाहता था लेकिन पेशवा ने सूरजमल को जला रखा था, वह चुप बैठा रहा। अब्दाली की सेना ने ब्रज को भी लूटा। सूरजमल के बेटे से यह सहन न हुआ। उसने दस हजार जाट जवानों के साथ मथुरा में अब्दाली का रास्ता रोकने की चेष्टा की लेकिन विफल रहा। अफगान बढ़ते हुए आगरे में घुस गये। वहाँ हैजा फैला और अब्दाली लौट गया। उसने दिल्ली में रुहेला सरदार नजीब खाँ को अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया और पंजाब का शासन अपने बेटे तैमूर को सौंप दिया। मराठों की अदूरदर्शिता के कारण दिल्ली की कमर टूट गयी। जिस प्रकार नादिरशाह ने दिल्ली को लूटा था, उसी प्रकार अब्दाली ने भी उसे

लूटा और करोड़ों रुपये की सम्पत्ति ले गया। पंजाब, कश्मीर, सिंध और सरहिंद पर उसका अधिकार हो गया। पेशवा बालाजी अपनी दिशाविमूढ़ नीति के कारण दक्षिण में ही उलझा रहा।

पंजाब पर अब्दाली के अधिकार का समाचार सुनकर भी पेशवा को समझ न आयी। उसने राघोबा और मल्हार को तो उत्तर भारत में भेज दिया लेकिन स्वयं मुख्य सेना के साथ करनाटक की लड़ाई में ही फँसा रहा।

राघोबा ने आगरा पहुँच कर पहले सूरजमल से संधि की और तब संयुक्त सेना ने रुहेलों से दोआब छीनकर दिल्ली को घेर लिया। रुहेला सरदार नजीब खाँ ने जिसे दिल्ले ने अब्दाली ने अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया था, संधि कर ली और दिल्ली छोड़ दी। उसने मराठों के सामने यह सुझाव भी रखा कि अब्दाली से संधि कर ली जाय। मध्यस्थता करने के लिए वह स्वयं तैयार हो गया। बंगाल-बिहार में अंग्रेजों की बढ़ती हुई शक्ति को चूर करने का यह मौका मराठों को पुनः मिला लेकिन उन्होंने पुनः भूल की। राघोबा ने पूर्व की घटनाओं पर ध्यान देने की आवश्यकता ही नहीं समझी। वह सीधे पंजाब की ओर बढ़ गया। मार्च, सन् १७५८ में उसने सरहिन्द पर अधिकार जमा लिया। एक मास बाद राघोबा ने लाहौर पर अधिकार कर लिया। अब्दाली का पुत्र सूबेदार तैमूर अपने सेनापति के साथ अटक के पार भाग गया। मराठों ने मुलतान में शिविर खड़ा किया लेकिन पुनः पुरानी भूल दोहरायी। इधर की पूरी व्यवस्था पर ध्यान दिये बिना और अब्दाली से फैसला किये बिना राघोबा पंजाब का शासन अदीना बेग को सौंपकर दक्षिण लौट गया। उसकी समझ में इतनी सी बात न आयी कि अब्दाली उसकी मेहनत पर आसानी से पानी फेर देगा और दक्षिण से उत्तर तक का उसका अभियान व्यर्थ हो जायगा। हुआ भी यही। सन् १७५९ का नवम्बर मास बीतते-बीतते अब्दाली ने पुनः सरहिन्द पर कब्जा जमा लिया। इस समय तक काफी उलट-पुलट हो चुका था।

सन् १७५८ के समाप्त होते-होते पेशवा ने पंजाब की समुचित व्यवस्था करने और बिहार को जीतने का काम दत्ताजी सिंधिया को सुपुर्द किया। उधर पंजाब में अदीना बेग की मृत्यु हुई तो दत्ताजी का भाई साबाजी लाहौर का सूबेदार बना दिया गया। दिल्ली के शासन के सम्बन्ध में पेशवा ने अपनी भूल सुधारनी चाही। वजीर को उसने निकम्मा समझा और उसका स्थान शुजा-उद्दौला को सुपुर्द करने का सुझाव दिया लेकिन अवध का नवाब शुजा अपने पिता सफदर जंग के प्रति मराठों के फेरब को देख चुका था। इसलिए जब

दत्ताजी और रुहेला सरदार नजीब में भिड़ गयी तो उसने नजीब का साथ दिया। उत्तर भारत का सबसे अधिक अनुभवी मराठा सेनाधिकारी मल्हार होलकर नजीब को बहुत मानता था। पेशवा ने नजीब को पटानेका काम उसे सौंपा होता तो शायद युद्ध की नौबत ही न आती। लेकिन पेशवा ने दत्ताजी को जो अक्खड़ था, भेज कर भूल की। इसका नतीजा यह हुआ कि वह हरद्वार से ३२ मील दूर शुक्रताल के युद्ध में बुरी तरह फँस गया और पंजाब का प्रबन्ध करने तथा बिहार पर आधिपत्य जमाने का काम खटाई में पड़ गया। मौका देख कर अब्दाली ने पंजाब पर चढ़ाई कर दी। दत्ताजी अपने भाई की सहायता के लिए लाहौर न जा सका। बाध्य होकर साबाजी ने लाहौर छोड़ दिया। यह वाकया नवम्बर, सन् १७५६ के आरम्भ का है। यह मास समाप्त होते-होते अब्दाली ने सरहिन्द पर भी पुनः अधिकार कर लिया। पेशवा की नीति से क्षुब्ध राजपूत और सिख इस अवसर पर भी अलग रहे। रघुजी भोंसले ने भी मदद न की; क्योंकि पेशवा ने उसके विरुद्ध बंगाल के नवाब की मदद बादशाह के कहने से की थी।

दिसम्बर में दत्ताजी सिंधिया जमुना को पार कर के अब्दाली का सामना करने के लिए आगे बढ़ा। अब्दाली भी जमुना पार करके रुहेला सरदार नजीब से जा मिला और दोआब होता हुआ दिल्ली की ओर अग्रसर हुआ। यह जानकर दत्ताजी भी दिल्ली में जमुना के किनारे आ गया और वहीं छावनी डालकर अब्दाली की प्रतीक्षा करने लगा। जनवरी के द्वितीय सप्ताह में अब्दाली की सेना से उसकी मुठभेड़ हुई और वह मारा गया। अब्दाली विजयी हुआ लेकिन शीघ्र ही मल्हार होलकर ने राजस्थान से आकर उसका पीछा किया तो वह दोआब की ओर पीछे हट गया।

दक्षिण के प्रमुख मराठा सेनापति सदाशिव राव भाऊ के जिसने उद्गीर में निजाम को परास्त करने का यश हासिल किया था, नेतृत्व में पेशवा ने एक विशाल सेना अब्दाली का मुकाबला करने के लिए उत्तर भारत में भेजी। अब्दाली यहाँ से लौट जाना चाहता था लेकिन नजीब के आग्रह पर उसने अनूप शहर में डेरा डाल दिया।

अब्दाली के विरुद्ध राजपूतों की सहायता प्राप्त करने की चेष्टा सदाशिव राव भाऊ ने की लेकिन वे पेशवा की नीति से काफी क्षुब्ध थे, अतः भाऊ की मिन्नत पर उन्होंने ध्यान नहीं दिया और युद्ध से अलग रहने का निर्णय किया। अब्दाली को रुहेलों की सहायता मिली ही थी। सदाशिव राव भाऊ के ग्वालियर पहुँचने (मई) के दो मास बाद शुजा भी उससे मिल

गया। जयपुर और मारवाड़ की गद्दी के उत्तराधिकार के मामले में पेशवा का अनुचित हस्तक्षेप और वजीर सफदर जंग के प्रति उसका विश्वासघात ही इसका परिणाम था।

इन परिस्थितियों के बावजूद वीर भाऊ दिल्ली पर कब्जा करने में सफल हो गया। जुलाई में वह आगरा पहुँचा और अगस्त में (सन् १७६०) उसने दिल्ली पर कब्जा कर लिया। इस पर अब्दाली और नजीब, दोनों संधि करने के ख्वाहिशमंद हो गये थे। पेशवा के लिए फिर यह मौका था अपनी स्थिति सम्भालने का और पाण्डिचेरी में फँसे फ्रांसीसी सेनाधिकारी की मदद कर के अंग्रेजों की शक्ति तोड़ने का, लेकिन पेशवा पंजाब पर आधिपत्य के लिए अड़ गया।

जनवरी, सन् १७६१ में पानीपत के मैदान मे अब्दाली और भाऊ की फौजों मे घोर संग्राम हुआ। रुहेला और अवध का नवाब अब्दाली के मददगार था। इब्राहिम खाँ गर्दी, मल्हारराव होलकर और जनकोजी सिंधिया सदाशिवराव भाऊ की सहायता कर रहे थे। प्रारम्भ मे मराठों को कुछ सफलता मिली। इब्राहिम खाँ गर्दी ने रुहेलों को पछाड दिया। स्वयं भाऊ ने भी अफगानों को पीछे ढकेल दिया। यह विजय क्षणिक ही सिद्ध हुई। कहते है कि भाऊ की व्यूह-रचना दोषपूर्ण थी। जो भी हो, इस युद्ध में अततः अहमदशाह अब्दाली की विजय हुई। परिणामतः पंडित जवाहरलाल नेहरू के शब्दों मे "मराठ शक्ति के चुने हुए वीर इस आपद्काल मे काम आये और साम्राज्य स्थापना का उनका स्वप्न कुछ समय के लिए लुप्त हो गया।"*

जून, सन् १७६१ में बालाजी राव की मृत्यु के बाद उसका सोलह वर्षीय द्वितीय पुत्र माधवराव पेशवा की गद्दी पर बैठा लेकिन शासन की बागडोर उसके चाचा राघोबा ने अपने हाथ में रखी।

पानीपत की लड़ाई में मराठों की पराजय का असर तत्काल यह हुआ कि चारों ओर पुनः आपस में मारकाट होने लगी। अब्दाली विजयी होकर भी इस स्थिति को बचाना चाहता था। अफगानिस्तान लौटने से पूर्व इस गरज से ही उसने बालाजी के पुत्र तथा भाऊ की मृत्यु पर समवेदना प्रकट करने के लिए अपने दूत को बालाजी के पास रवाना किया जिसे मथुरा में ही सूरजमल तथा कुछ मराठा प्रतिनिधियों ने रोक लिया।

ब्रज के राजा सूरजमल की महत्त्वाकांक्षा पानीपत के युद्ध के बाद जाग उठी। उसकी निगाह में पेशवा और अब्दाली दोनों की शक्ति क्षीण हो चुकी

---

*डिसकवरी आफ इण्डिया—पृ० संख्या २३४

थी। मराठों से बदला लेने तथा अपने राज्य का विस्तार करने को वह आकुल हो उठा। मार्च में दिल्ली को रुहेला सरदार नजीब के हाथों में सौंप कर तथा आबिद खाँ को पंजाब का सूबेदार बना कर अब्दाली अफगानिस्तान लौटा और जुलाई मे सूरजमल ने आगरे के किले पर कब्जा कर लिया। राजपूताने मे जयपुर के राजा माधोसिंह ने बगावत कर दी जिसे दबाने के लिए इंदौर से मल्हार होलकर को जाना पड़ा। नवम्बर के बाद शुजा ने झाँसी और कालपी पर कब्जा कर लिया। दक्षिण में निजाम अली पूने की ओर बढ़ने लगा जिससे राघोबा को जूझना पड़ा। यह स्थिति थी जब सोलह वर्षीय माधवराव पेशवा की गद्दी पर बैठा।

सन् १७६२ मे उसने राघोबा के हाथ से शासन लेकर उसकी बागडोर खुद संभाल ली। महत्त्वाकांक्षी राघोबा इससे क्षुब्ध हो गया और जिस निजाम अली को उसने पूना की ओर बढ़ने से रोका था, उससे जाकर वह मिल गया और उसने स्वय पूना पर चढ़ाई कर दी। इस विषम स्थिति मे माधवराव ने पुनः राघोबा को शासन का अधिकार दे दिया। राघोबा ने निजाम का साथ छोड़ दिया तो निजाम अली की सेना ने उसे घेर लिया। माधवराव ने ऐन वक्त पर सहायता पहुँचा कर उसकी मदद की और निजाम अली को परास्त किया। इसपर राघोबा ने स्वतः माधवराव को शासन में उसका भाग सुपुर्द कर दिया। माधवराव नाना फडनवीस ( मंत्री ) तथा रामशास्त्री प्रभुणे ( न्यायाधीश ) की सहायता से योग्यतापूर्वक शासन चलाने लगा। उसने आन्तरिक शान्ति तो स्थापित कर ली लेकिन मराठा सरदारों की महत्त्वाकांक्षा और उससे उत्पन्न स्वच्छंद आचरण की आदत को समाप्त न कर सका।

पानीपत के युद्ध मे मराठों की पराजय के बाद व्रज के राजा सूरजमल ने आगरे पर कब्जा कर लिया था। इसके बाद भी वह चुप न बैठा। तैयारी करने के बाद उसने मेवात पर भी अधिकार कर लिया और हरियाना की ओर बढ़ा जहाँ नजीब की सेना से उसका मुकाबिला हुआ। नवम्बर, सन् १७६३ मे गाजियाबाद के युद्ध मे उसकी मौत हुई। उसके पुत्र जवाहरसिंह ने उसकी गद्दी सम्भाली और पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए मराठों और सिखों की सहायता से दिल्ली को जा घेरा ( सन् १७६४ )। पेशवा के कहने पर मल्हार होलकर उसकी मदद कर रहा था जिसने चुपके से नजीब से समझौता कर लिया और जवाहरसिंह के साथ दगाबाजी कर के उसका साथ छोड़ दिया। नजीब को जयपुर के राजा माधोसिंह की भी सहायता मिल गयी; क्योंकि व्रज

और जयपुर के राजाओं में पुरानी शत्रुता थी। लाचार होकर जवाहरसिंह ने घेरा उठा लिया। मराठों से उसकी दोस्ती समाप्त हो गयी। फिर भी भाग्य ने मराठों का ही साथ दिया।

दक्षिण में निजाम अली की सेना के चंगुल में फँसा राघोबा माधवराव की सहायता से छूट कर उत्तर भारत मे आया तो उसने पुनः खुराफात शुरु कर दी। स्थिति का लाभ उठाने के लिए अंग्रेजों ने उसे मिलाने की कोशिश आरम्भ की। यह सब देखकर सन् १७६८ में माधवराव ने उसे नासिक के पास कैद कर लिया और पूना मे लाकर उसे नजरबन्द कर दिया। इस बीच दक्षिण मे हैदरअली से उसका जो युद्ध हुआ, उसका विवरण पिछले अध्याय में दिया जा चुका है। लगभग इसी समय व्रज के राजा जवाहरसिंह की मृत्यु हो गयी। रुहेला नजीब खाँ अपने पुत्र जाबित खाँ को दिल्ली सुपुर्द कर के नजीबाबाद चला गया।

अगले वर्ष जब पेशवा माधवराव ने रामचन्द्र गणेश नामक सेनाधिकारी के साथ अपनी फौज उत्तर भारत में भेजी तो वहाँ कोई मुकाबिला करने वाला न रहा। जाबित खाँ से मराठो ने इलाहाबाद और कड़ा के अतिरिक्त हरजाने मे भारी रकम भी वसूल की। अवध का सूबेदार जाबित खाँ की मदद न कर सका। रुहेलों का दम उखड गया। मराठों का प्रभुत्व पुनः कायम हो गया। उत्तर भारत मे एक बार फिर उनकी तूती बोलने लगी। यह देखकर मुगल सम्राट शाहआलम जो इलाहाबाद की संधि के अनुसार अंग्रेजों का मुँह ताक रहा था, मराठों की शरण मे आ गया। मराठा सेना ने उसे फिर दिल्ली के तख्त पर बैठा दिया। यहाँ यह याद रखना चाहिये कि शाहआलम बादशाह तो था लेकिन पानीपत की तीसरी लड़ाई के बाद जब अब्दाली ने नजीब को दिल्ली सुपुर्द कर दी थी, उसका साहस दिल्ली लौटने का नहीं हुआ था और वह अवध में ही रहा।

यों मराठों का सिक्का एक बार फिर जम गया। उत्तर भारत में अब जाट और पठानों की शक्ति भी समाप्त हो चुकी थी। व्रज के राजा जवाहरसिंह की मृत्यु के बाद वहां कोई मुकाबिला करने वाला रह नहीं गया था। टकराव अंग्रेजों से था; क्योंकि बंगाल और बिहार की ओर मराठों की निगाह घूम चुकी थी। इसी समय मराठों का योग्यतम पेशवा माधवराव अस्वस्थ हुआ और १८ नवम्बर, सन् १७७२ को उसकी मृत्यु हो गयी। अपने शासन-काल (१७६१–१७७२) में उसने न केवल मराठों के खोये हुए प्रभुत्व को प्राप्त किया बल्कि उनकी राजनीतिक स्थिति और भी दृढ़ कर दी। उसमें अपने

दादा और पिता, दोनों के गुण थे। उसकी सफलता का आंशिक कारण यह था। शेष कमी उसके मन्त्री नाना फड़नवीस की दूरदर्शिता और राजनीतिक बुद्धिमत्ता तथा रामशास्त्री की न्यायप्रियता ने पूरी की।

# अंग्रेजों के प्रभुत्व का विस्तार

ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नाजुक आर्थिक हालत—इंग्लैण्ड में बावेला—रेग्यूलेटिंग एक्ट-हेस्टिंग्ज का खूँखार शासन—दोहरा शासन समाप्त—कलक्टरों की नियुक्ति—किसानों के हाथ से जमीन निकली—अंग्रेजों द्वारा शुजा की मदद—मराठों की पराजय—बनारस की संधि—रुहेलों का संहार—अवध पर अंग्रेजों का प्रभुत्व—दक्षिण में भी अंग्रेजों का षड्यंत्र—मराठों में फूट—राघोबा अंग्रेजों की शरण में—सूरत की संधि—पुरंदर की संधि—अंग्रेजों द्वारा संधि भंग—अंग्रेजों की शिकस्त—बड़गाँव की संधि—पूना सरकार की भूल—द्वितीय मराठा युद्ध—नाना फड़नवीस की दूरदर्शिता—अंग्रेजों की हार पर हार—मराठों में फूट जारी—मुधोजी का विश्वासघात—मराठों ने हैदरअली का साथ छोड़ा—सालबाई की संधि—टीपू से अंग्रेजों की संधि—हेस्टिंग्ज द्वारा लूट—बनारस की जनता का विद्रोह—अवध की बेगमों पर जुल्म—हेस्टिंग्ज पर अभियोग—नंद कुमार को फांसी।

बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त होने के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी के मालिक हिन्दुस्तान से लम्बी रकम प्राप्त होने की आशा करते रहे। इस बिना पर अपने खजाने पर ध्यान दिये बिना वे लाभांश की दर बढ़ाते गये। यह दर पहले छ प्रतिशत से बढ़ा कर दस प्रतिशत की गयी और बाद में दस से बढ़ा कर साढ़े बारह प्रतिशत। इधर कम्पनी की बदइंतजामी और अफसरों की लूट-खसोट के कारण मालिकों के पल्ले कुछ न पड़ा। जुलाई, सन् १७७२ में कम्पनी की हालत नाजुक हो गयी। अगले तीन मास में भुगतान के लिए उसे रकम का टोटा पड़ा। ऋण प्राप्ति के लिए उन्होंने बंक आव इंग्लैण्ड से आवेदन किया। इससे काम न चला तो दोबारा ऋण मांगा गया। इस बार बंक ने पूरी रकम न दी। इस पर कम्पनी के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष मंत्री महोदय से मिले और उन्हें बताया गया कि कम्पनी का अस्तित्व ही संकट में पड़ गया है। इंग्लैण्ड में बड़ा बावेला मचा। फलतः कम्पनी की कारस्वाई पर नियंत्रण कायम करने के लिए इंग्लैण्ड की सरकार ने नियमन अधिनियम (रेग्यूलेटिंग एक्ट) बनाया। इसके अनुसार कम्पनी के डाइरेक्टरों की

योग्यता और उनके कार्य-काल की अवधि निर्धारित की गयी। दीवानी और फौजदारी के मामलों में न्याय के लिए सरकार द्वारा नियुक्त चार न्यायाधीशों के सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की गयी। फौजी और नागरिक शासन के लिए चार सदस्यों की कौंसिल के साथ एक गवरनर जेनरल को फोर्ट विलियम ( कलकत्ता ) में नियुक्त करने तथा मद्रास और बम्बई की प्रेसिडेंसियों को भी उसके अधीन करने का निर्णय किया गया। कानून में एक सहायक उपबंध द्वारा यह तय किया गया कि प्रथम गवरनर जेनरल और कौंसिलरों की नियुक्ति पार्लिमेण्ट करेगी और इनका कार्य-काल पांच वर्ष का होगा। इसके पश्चात् सम्राट की सहमति से गवरनर जेनरल और कौंसिलरों की नियुक्ति का अधिकार डाइरेक्टरों को दे दिया गया।

उपर्युक्त अधिनियम जब विधेयक था, तभी डाइरेक्टरों और मालिकों ने उसका तीव्र विरोध किया और उसे अस्वीकृत कराने के लिए अनेक प्रार्थना पत्र भेजे। लेकिन कोशिश बेकार हुई। संसद के दोनों सदनों ने भारी बहुमत से उसे स्वीकार कर लिया और सम्राट ने उस पर अपनी स्वीकृति की मोहर लगाकर उसे कानून का रूप दे दिया। इस प्रकार कम्पनी पर ब्रिटेन की संसद का प्रभुत्व बढ़ गया।

सन् १७७२ में बंगाल का गवरनर वारेन हेस्टिंग्ज था। नये कानून के अनुसार ब्रिटिश संसद ने इसे ही पहला गवरनर जेनरल नियुक्त किया। इसने चौदह वर्षों तक शासन किया। इसके शासन-काल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रभुत्व कलकत्ता से दिल्ली तक फैल गया। दक्षिण में अंग्रेजों का मुकाबिला हैदरअली अवश्य करता रहा जैसा कि दक्षिण की उथल-पुथल से सम्बन्धित अध्याय में बताया जा चुका है।

हेस्टिंग्ज को साम्राज्य-विस्तार का कोई श्रेय अपने देश में न मिला। उलटे अमानुषिक ढंग से शासन करने का अभियोग लगाकर उस पर मुकदमा चलाया गया। इतिहास में यह मुकदमा 'इमपीचमैंट आव वारेन हेस्टिंग्ज' के नाम से प्रसिद्ध है। इस मुकदमे में वह निर्दोष घोषित हुआ और अभियोग से मुक्त कर दिया।

हेस्टिंग्ज का शासन जुल्म और सितम की रोमांचकारी कहानी है। नन्दकुमार की फाँसी और अवध की बेगमों की लूट की निन्दा विदेशी इतिहासकारों ने भी की है। इसके शासन के सम्बन्ध में कम्पनी के ही एक कर्मचारी विलियम बोल्ट्स ने लिखा था कि "देश के असंख्य कारीगर और

बुनकर आदि गुलामों की भाँति कम्पनी की इजारदारी में थे। इन पर ढाये जाने वाले जुल्मों की कल्पना तक नहीं की जा सकती।"

अस्तु, अंग्रेजों की लूट-खसोट का विवरण यथा-स्थान आगे दिया जायगा।

जेनरल क्लेवरिंग, श्री मानसन, श्री बारवेल और श्री फ्रांसिस (बाद में सर फिलिप) गवरनर जेनरल की कौंसिल के सदस्य नियुक्त किये गये। सन् १७७४ में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्त हो गयी। एलिजा इम्पे को सर्वोच्च न्यायाधीश नियुक्त किया गया। राबर्ट चैम्बर्स, स्टीफेन सी० लाय मायस्त्रे और जान हाइड न्यायाधीश नियुक्त किये गये।

कम्पनी की आर्थिक स्थिति का उल्लेख पहले किया जा चुका है। इस सम्बन्ध में कम्पनी के डाइरेक्टर पत्र पर पत्र लिखते थे। इसका अंत करने के उद्देश्य से हेस्टिंग्ज ने क्लाइव के समय का 'दोहरा प्रबन्ध' समाप्त किया। बगाल और बिहार, दोनों के नायब दीवानों का पद तोड़ दिया गया। मालगुजारी की वसूली के लिए उसने हर जिले में कलक्टर नियुक्त किये जो कलकत्ता में स्थापित 'बोर्ड आफ रेवेन्यू' के अधीन होते थे। मालगुजारी के बन्दोबस्त का तरीका भी उसने बदल दिया और वार्षिक बन्दोबस्त के स्थान पर पच वर्षीय बन्दोबस्त का नियम बनाया। इससे बंगाल के बहुत से किसानों के हाथ से जमीन निकल गयी और वे दाने-दाने को मुहताज हो गये, क्योंकि मालगुजारी का बन्दोबस्त नीलामों द्वारा होता था। इसके फलस्वरूप पुरानी जागीरें कलकत्ता के दलालों और गुमाश्तों के हाथ पड़ती गयी।

न्याय के लिए उसने प्रत्येक जिले में दीवानी और फौजदारी अदालतों की स्थापना की। कलकत्ता में सदर दीवानी और सदर निजामत अदालत की स्थापना की गयी। उसने हिन्दू और मुसलिम कानूनों के जानने वालों की सहायता से 'हेस्टिंज कोड' के नाम से एक पुस्तक में कानूनों का संकलन भी करा दिया। इसी समय विलियम जोंस नामक अंग्रेज ने हेस्टिंग्ज के सुझाव पर 'एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल' की स्थापना की जिसका उद्देश्य पूर्वी देशों के बारे में जानकारी प्राप्त कराना था। बनारस में संस्कृत कालेज की स्थापना भी इसी समय हुई। कलकत्ता और मद्रास में भी कालेज खोले गये।

पिछले अध्याय में बतलाया जा चुका है कि उत्तर भारत पर चढ़ाई कर के मराठों ने जाबित खाँ से इलाहाबाद और कड़ा के जिले प्राप्त कर लिये थे। इसके अतिरिक्त पुनः आक्रमण न करने के बदले में उन्होंने रुहेलों से एक बड़ी रकम भी ली थी। इस दौरान में ही नव-प्राप्त जिलों पर अधिकार जमाने के

लिए मराठे गंगा की ओर बढ़े। इससे अवध का सूबेदार शुजा भयभीत हो गया और उसने अंग्रेजों से सहायता माँगी और संकटापन्न क्षेत्र के लिए अपनी भी सेना भेजी। हेस्टिंग्ज ने शुजा की सहायता के लिए सर राबर्ट के नेतृत्व में सेना भेज दी। गंगा के एक किनारे पर अंग्रेजों तथा दूसरे किनारे पर मराठों की फौज ने छावनी डाल दी। अंततः मराठों को हारना पड़ा।

रुहेलों ने मराठों से अपनी रक्षा के लिए शुजा से संधि की थी और बदले मे उसे चालिस लाख रुपया देना स्वीकार किया था। इसमें दस लाख रुपया मराठों के निष्कासन के समय और शेष अगले तीन वर्षों में चुकाया जाने वाला था। यह संधि रुहेलों के लिए बहुत दुर्भाग्यपूर्ण सिद्ध हुई। शुजा ने मदद तो कभी की नहीं लेकिन रुपयों का हकदार बन गया। वास्तव में रुहेलखंड पर जो अवध के उत्तर-पश्चिम का प्रान्त था, वह दाँत गड़ाये हुए था। मराठों के हटने के बाद उसे मौका मिला और उसने बनारस मे मिलने के लिए हेस्टिंग्ज से अनुरोध किया। हेस्टिंग्ज भी मौके की ताक में था। एक राजा को दूसरे से लड़ाकर उससे रुपये वसूल करने तथा अंग्रेजी सेना का खर्च निकालने की नीति उसने अपना ही रखी थी। उसने नवाब की बात मान ली। फलस्वरूप बनारस में संधि हुई जिसके अनुसार शुजा ने अंग्रेजों से कड़ा और इलाहाबाद के जिले पचास लाख रुपये में खरीद लिये और उनकी यह शर्त मान ली कि रुहेलखंड पर कब्जा करने के कार्य में लगी फौज का खर्च देने के अतिरिक्त वह कम्पनी के लिए चालिस लाख रुपये भी देगा और बदले में कम्पनी रुहेलखंड पर अधिकार करने में उसकी सहायता करेगी

शुजा ने मौका पाकर रुहेलों से ४० लाख रुपयों की माँग की और इसकी पूर्ति न होने पर सन् १७७४ मे कम्पनी और नवाब की सेनाओं ने सयुक्त रूप से रुहेलखंड पर चढ़ाई कर दी। मीरन कटरा के समीप रुहेलों ने बड़ी वीरता के साथ दुश्मनों का मुकाबिला किया लेकिन अन्त में वे हार गये। अंग्रेजों और नवाब की मद-मत्त सेना ने रुहेलखंड का खूब संहार किया। गाँव के गाँव लूट लिये गये और फूँक दिये गये। जो प्रान्त से बाहर भाग सके या जंगलों में छिप सकें, केवल उनकी जान ही बच सकी। रुहेलखंड अवध में मिला लिया गया।

रुहेलों के प्रति हेस्टिंग्ज की नीति की तीव्र निंदा मेकाले और बर्क सदृश इतिहासकारों ने की है। हेस्टिंग्ज ने खुद यह स्वीकार किया कि कम्पनी की डाँवाडोल हालत को संभालने के लिए ही उपर्युक्त नीति अपनायी गयी। जो भी हो, यह अत्याचार विस्मृत नहीं किया जा सकता।

रुहेलखंड के युद्ध के परिणाम-स्वरूप कम्पनी को दोहरा लाभ हुआ। एक रुहेला सरदार की वीर पुत्री ने शुजा को मौत के घाट उतार दिया था।* हेस्टिंग्ज ने उसके पुत्र आसफुद्दौला को अवध में अंग्रेजी फौज रखने के लिए बाध्य किया। अवध में रुहेलखंड के मिलने पर बनारस की सन्धि के अनुसार कम्पनी को चालिस लाख रुपये तो प्राप्त हुए ही।

वास्तव में हेस्टिंग्ज ने अवध पर पूरी तरह कब्जा जमा लिया। उसने नवाब से बनारस भी प्राप्त कर लिया। अवध में रखी जानेवाली अंग्रेज फौज के खर्च की पूर्ति के नाम पर उसने गोरखपुर और बहराइच जिलों की माल-गुजारी हथिया ली और बिहार-बंगाल की मालगुजारी की वसूली के लिए किये जानेवाले बन्दोबस्त की ही भाँति इन जिलों का भी बन्दोबस्त कर दिया। फलतः यहाँ के किसान भी भूखों मरने लगे। लगान की वसूली के लिए कारिंदें उन पर तरह-तरह के जुल्म ढाते। कहा जाता है कि लगान न चुका सकने वाले किसान पिंजड़े में बन्द करके जलती धूप में छोड़ दिये जाते थे।

यह बंगाल की अंग्रेज हुकूमत का हाल था। बम्बई कौंसिल की महत्वाकांक्षाएँ भी सोयी हुई नहीं थी। क्लाइव को बंगाल मे मीरजाफर मिला था। बम्बई की कौंसिल भी ऐसे किसी शिकार की तलाश में थी। मराठों की आपसी फूट और व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा के कारण यह अवसर भी उसे मिल गया।

पेशवा माधवराव जिसकी सूझ-बूझ और योग्यता का वर्णन किया जा चुका है, अपना कोई उत्तराधिकारी नहीं छोड़ गया था। उसकी मृत्यु के समय उसका छोटा भाई नारायण राव उसके पास था। चाचा राघोबा उसकी कैद में था ही। मृत्यु से पूर्व उसने राघोबा और नारायणराव दोनों को अपने पास बुलाया। नारायणराव को पेशवा का पद सुपुर्द करके उसको राघोबा के संरक्षण में उसने छोड दिया। उसकी मृत्यु के बाद राघोबा ने फिर विश्वासघात किया। उसके सामने ही षड़यंत्र के फलस्वरूप उसका भतीजा नारायणराव कत्ल कर दिया गया। पूना के दरबार में नियुक्त अंग्रेज दूत मेस्टिन का हाथ इस षड़यंत्र में बताया जाता है। बाद की घटनाएँ इस दोषारोप को निराधार नहीं रहने देती।

नारायणराव की मृत्यु ने फूट को आग और भड़का दी। बारह मराठा सरदारों ने जिनमें मंत्री नाना फड़नवीस तथा सेनाधिकारी हरिबल्लाल फड़के आदि भी थे, पेशवा के हत्यारे को पूना की गद्दी पर न बैठने देने की शपथ

* कुछ इतिहासकारों का कहना है कि सन् १७७५ में बीमारी के कारण उसकी मृत्यु हुई।

खायी। संयोग वश एक नयी स्थिति उत्पन्न हो गयी। यह पता चला कि मृत नारायणराव की विधवा पत्नि गर्भिणी है। मराठों की शासन परिषद ने उसे एक मजबूत किले में सुरक्षा की दृष्टि से भेज दिया और संतान होने तक स्वतः शासन चलाने का दावा किया। राघोबा आसानी से गद्दी हाथ से जाने नहीं देना चाहता था। दोनों ओर से सैनिक तैयारी होने लगी। इसी मौके पर निजामअली और हैदरअली ने भी मराठों की फूट से लाभ उठाना चाहा। राघोबा उनकी ओर बढ़ा। वह हैदरअली के इलाके की सीमा तक पहुँच गया। यहाँ से वह पूना में घुसना चाहता था लेकिन उसे साहस न हुआ। वह बम्बई के अंग्रेजों का मुँह देखने लगा। तभी नारायणराव की विधवा पत्नि को पुत्र उत्पन्न हुआ। चालिसवें दिन नाना फड़नवीस ने उसे पेशवा के वस्त्र धारण करा दिये और महादजी सिंधिया, तुको जी होलकर और हरि फड़के राघोबा को चपेटने बढ़ चले। राघोबा सूरत में अंग्रेजों की शरण में पहुँच गया। अंग्रेजों के साथ उसने संधि कर ली और उनकी सहायता के बदले में उन्हें बेसिन और सालसट देने का वादा किया।

इस संधि के कुछ समय पूर्व भरूच के नवाब से सहायता की रकम जो उसके पूर्वज सूरत को दिया करते थे, वसूल करने के लिए अंग्रेजों ने उस पर आक्रमण किया; क्योंकि नवाब ने उसे देने से इनकार कर दिया था। इसका परिणाम कुछ न हुआ। इस अभिलाषा की पूर्ति के लिए उन्हें मराठों की ही फूट का सहारा मिला।

गोविंदराव गुजरात की गद्दी का वास्तविक उत्तराधिकारी था लेकिन उसके भाई फत्तेसिंह ने उस पर कब्जा कर लिया था। पूना की परिषद के सरदारों द्वारा खदेड़े जाने पर जब राघोबा नर्मदा को पार करके गुजरात में पहुँचा था, गोविंद-राव ने उसकी मदद की थी। वह राघोबा का मित्र था। स्वयं को गुजरात का राजा मान्य कराने की गरज से फत्तेसिंह ने अंग्रेजों से संधि की और तय हुआ कि भरूच अंग्रेज ले लेंगे और बदले में वे फत्तेसिंह को गुजरात का शासक मान लेंगे। राघोबा के लिए यह विषम स्थिति थी। इस फूट का परिणाम उसे सम-झना चाहिये था लेकिन वह लड़ाकू वीर मात्र ही था, कुशल राजनीतिज्ञ नहीं। उसकी समझ में कुछ भी न आया। उसने गोविंदराव को दूसरा इलाका देने का आश्वासन देकर शांत कर किया।

इसके बाद ही अंग्रेजों से राघोबा ने संधि की ( १७७५ ) जो सूरत की संधि के नाम से प्रसिद्ध है। संधि के अनुसार राघोबा ने अंग्रेजी फौज का खर्च देना भी स्वीकार किया। बम्बई के अंग्रेजों ने उसके सहायतार्थ पूना की फौज

के खिलाफ अंग्रेज सेना भेज दी। इस पर कलकत्ता की कौंसिल और बम्बई की कौंसिल में आपसी विवाद छिड़ गया। बंगाल की कौंसिल ने रेग्यूलेटिंग एक्ट के अनुसार ऐसे मामलों के निर्णय का अधिकार अपना बताया। उसने बम्बई की कौंसिल को आदेश दिया कि राघोबा के साथ आगे कारर्वाई रोक दी जाय और स्वयं उप्टन नामक अंग्रेज को संधि के लिए पूना के दरबार में भेज दिया। बम्बई सरकार के विरोध के बावजूद सन् १७७६ में अंग्रेजों और पूना के बीच संधि हुई जो पुरंदर की संधि के नाम से विख्यात है। इस संधि के अनुसार सालसट पर अंग्रेजों का अधिकार बना रहा। पूना की सरकार ने ईस्ट इंडिया कम्पनी को बारह लाख रुपये देना स्वीकार कर लिया। राघोबा पुनः निराश हो गया। कलकत्ता के अंग्रेजों ने राघोबा की सहायता न करने का निर्णय किया और तय हुआ कि राघोबा महाराष्ट्र में रहेगा। पूना की सरकार उसे पेंशन के रूप में पचीस हजार रुपये वार्षिक देगी।

बम्बई की अंग्रेज सरकार अथवा कौंसिल ने पुरन्दर की सन्धि पर अमल नहीं किया और राघोबा को सूरत में शरण दे दी। इसी समय पूना के दरबार में फ्रांसीसी दूत पहुँचे। अंग्रेजों की बेजा हरकत देख कर मराठों ने उन्हें मलाबार के तट पर स्थान देने का इरादा जाहिर किया। पुरंदर की सन्धि व्यर्थ हो गयी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी को जब आपसी विवाद का समाचार मिला तो उसने बम्बई की कौंसिल के पक्ष को उचित ठहराते हुए सूरत की सन्धि का पालन करने का आदेश दिया।

इसी समय अमेरिका के ब्रिटिश उपनिवेशों में बगावत हो गयी। ब्रिटेन की पार्लिमेण्ट ने वहाँ नये कर लगाये तो अमेरिकावासियों ने घोषित किया कि 'प्रतिनिधित्व नहीं है, तो टैक्स भी नहीं लग सकता' ( नोटैक्सेशन, विदआउट रिप्रजेंटेशेन ) अर्थात् हमारे प्रतिनिधि ही टैक्स लगा सकते हैं। अमेरिका का स्वातंत्र्य युद्ध आठ वर्षों तक चला। भारत में इस दौरान में मराठों से अंग्रेजों का युद्ध जारी रहा।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सुप्रीम कौंसिल ने बम्बई की सरकार को पूना के विरुद्ध युद्ध करने की इजाजत दे दी। निश्चित हुआ कि बंगाल से भी बम्बई के सहायतार्थ सेना भेजी जायगी। सिपाहियों की छः बटालियनें, तोपों की एक कम्पनी और घुड़सवार सेना की एक टुकड़ी कर्नल लेस्ली के आदेश से कालपी से रवाना हुई। इस सेना को यह हिदायत दी गयी कि छल-कपट से या अन्य तरीके से, जैसे भी हो उसे बरार और औरंगाबाद से अपना रास्ता निकालना होगा। उधर कई हजार सैनिकों की सेना ने कर्नल इगरटन के नेतृत्व में,

कारनक और मास्टिन जिसके सहायक थे, कालपी से रवाना होने वाली सेना से मिलने के लिए बम्बई से प्रयाण किया। इस सेना के साथ राघोबा की भी सेना थी। कालपी की सेना को सागर के शासनाधिकारी बालाजी गोविन्द बुन्देला ने राह में रोक लिया। यहाँ लेस्ली बीमार पड़ा और उसकी मृत्यु हो गयी और सेना की कमान कर्नल गोडर्ड ने संभाली। कर्नल इगरटन की सेना पूना से इधर अट्ठारह मील तक पहुँच गयी। मराठा सैनिकों की एक टुकड़ी ने कोंकण में उतर कर बम्बई से उसका सम्बन्ध काट दिया। बड़गाँव मे अंग्रेजों की भागती हुई सेना को मराठा घुड़सवारों ने घेर लिया। राघोबा भी फँस गया। कर्नल इगरटन ने आत्म-समर्पण कर दिया। तय हुआ कि अंग्रेज सालसट वापस कर देंगे, राघोबा पेशवा को सुपुर्द कर दिया जायगा, भरूच महाद जी सिंधिया को दे दिया जायगा, बंगाल से आनेवाली फौज रोक दी जायगी और गुजरात पर अपना अधिकार का दावा करने से अंग्रेज बाज आयेंगे। यह सन्धि बड़गाँव की सन्धि के नाम से विख्यात है जो सन् १७७६ मे हुई थी।

बम्बई के अंग्रेजों की शक्ति को विध्वस करने के इस अवसर का लाभ पूना की सरकार ने पूरा-पूरा नहीं उठाया। जो गलती अंग्रेजों ने की, कोंकण के आंग्रे भाइयों के आपसी झगड़े के समय जो गलती बालाजी राव ने दोहरायी, बगाल मे क्लाइव के अभियान के समय मराठों ने जिस पर ध्यान नहीं दिया, वह पुनः दोहरायी गयी। पेशवाई फौज ने सन्धि की शर्तें पूरी कराये बिना कर्नल इगरटन की फौज को लौटाने की इजाजत दे दी—उन्होंने सिर्फ दो अंग्रेज अफसरों को रोक लिया। इस बात पर विचार नहीं किया गया कि कर्नल इगरटन की फौज को बम्बई पहुँच कर कर्नल गोडर्ड की सेना की भी सहायता मिल सकती है और सम्मिलित फौज एक बार पुनः खतरा उत्पन्न कर सकती है। हुआ भी यही। बड़गाँव की सन्धि का समाचार मिलते ही कर्नल गोडर्ड संभल गया और भोपाल के नवाब तथा मुधोजी भोंसले की सहायता से सूरत जा पहुँचा।

गवरनर जेनरल हेस्टिंग्ज बड़गाँव की अपमान-जनक सन्धि का समाचार पाकर आग हो गया। मराठों से बदला लेने के लिए उसने पश्चिमी तट की पूरी अंग्रेजी सेना का सर्वोच्च सेनापति गोडर्ड को नियुक्त किया। पहले तो बम्बई की सरकार ने इस नियुक्ति को लेकर कुछ बावेला मचाया लेकिन गोडर्ड की दूरदर्शिता से मामला तय हो गया।

जनवरी, सन् १७८० में गोडर्ड ने युद्ध छेड़ने का निश्चय किया। राघोबा

साथ में था ही। गुजरात में फत्तेसिंह गायकवाड़ से सहायता मिल ही रही थी। इसकी और अंग्रेजों की सेना ने संयुक्त रूप से गुजरात में पेशवा के इलाके पर आक्रमण कर दिया और २० जनवरी को दामोई पर अधिकार जमा लिया। एकाएक आक्रमण करके अंग्रेज सेना ने १० फरवरी को अहमदाबाद पर भी कब्जा कर लिया। इस प्रकार द्वितीय मराठा युद्ध आरम्भ हुआ।

गोडर्ड की सेना का सामना करने का आदेश महाद जी सिंधिया और तुको जी होलकर को दिया गया। इनकी एक मराठा टुकड़ी ने अंग्रेज सेना की एक टुकड़ी को कोंकण में घेर कर काट डाला।

यही वह अवसर था जब प्रबल कूटनीतिज्ञ नाना फड़नवीस ने संघ-बद्ध होकर अंग्रेजों को मिटा देने का प्रबल प्रयास किया था। उसने पेशवा माधवराव की अधूरी योजना पूरी करने की ठान ली। संयोग वश उसे मैसूर के अधिकारी हैदरअली का सहयोग मिल गया; क्योंकि सन् १७६६ की सन्धि का पालन न किये जाने के कारण हैदरअली अंग्रेजों का कट्टर शत्रु बन गया था।

निजामअली, हैदरअली और पेशवाई फौज ने संयुक्त रूप से अंगेजों को मटियामेट करने के लिए संघ कायम किया। पूर्व के अध्याय मे यह बताया जा चुका है कि हैदरअली इस संघ में बाद में शामिल हुआ था। इस योजना का उद्देश्य यह था कि मद्रास, बम्बई और कलकत्ता की प्रेसिडेंसियों पर एक साथ हमला किया जाय। नाना फड़नवीस की यह योजना बहुत सुविचारित थी। इस के फलस्वरूप अंग्रेजों के पैर दक्षिण में उखड़ने लगे। अंग्रेजों के विरुद्ध हैदरअली को फ्रांसीसियों की भी मदद मिल गयी थी। अंग्रेज फौज हार पर हार खाने लगी थी। इस मौके पर भी मराठों की आपसी फूट ने पिंड न छोड़ा। नाना फड़नवीस ने समझा-बुझा कर बरार के मुधोजी भोंसले को अपने साथ मिलाया था और बंगाल पर आक्रमण करने को उससे कहा था। मुधोजी ने विश्वासघात किया। आक्रमण करना तो दूर रहा, उल्टे उसने नाना फनड़वीस की योजना गवरनर जेनरल हेस्टिंग्ज को बता दी। परिणामतः बंगाल के सम्बन्ध में योजना ढीली पड़ गयी। इधर से फुर्सत पाकर हेस्टिंग्ज ने 'विंदवास' के युद्ध में ख्याति अर्जित करने वाले अंग्रेज सेना पति आयरकूट को दक्षिण में भेजा। इसने कूटनीति से काम लिया। नाना फड़नवीस द्वारा संघटित संघ से उसने सिंधिया को भी अलग कर दिया। भोंसले पहले ही टूट चुका था। दक्षिण में आकर आयरकूट ने हैदरअली की फौज को पराजित करना आरम्भ किया जिसका उल्लेख पिछले आध्याय में किया जा चुका है।

इस पृष्ठ-भूमि से जाहिर है कि अंग्रेजों का भाग्य-सूर्य मन्द पड़ने ही वाला था। हैदरअली को पछाड़ने के लिए गुण्टूर से अंग्रेज सेनापति बेली और मद्रास से बक्सर युद्ध में ख्याति अर्जित करने वाला सेनापति मुनरो, अपनी अपनी सेना लेकर बढ़े थे। हैदर ने इन दोनों सेनाओं को मिलने नहीं दिया। उसने बेली की सेना काट डाली और मुनरो अपनी तोपें फेंक कर भाग खड़ा हुआ। यह मौका था जब हैदरअली अंग्रेजों को उन्मूलित कर देता लेकिन वह यह न कर सका, क्योंकि मराठा सरदारों ने उसका साथ छोड़ दिया। भोंसले अंग्रेजों से घूस के रूप मे पचास लाख रुपये प्राप्त करके चुप बैठ गया। महादजी सिंधिया झारखण्ड के विजेता अंग्रेज सेनापति कैमक से भिड़ने से पीछे हट गया। उत्तर में कप्तान पौफम ने ग्वालियर पर कब्जा कर लिया। तब कोंकण मे गोडर्ड की सेना का पीछा छोड़ कर सिंधिया इधर लौटा। गोडर्ड ने मुक्त होकर बम्बई पर कब्जा कर लिया। इसके उत्तर में नाना फड़नवीस ने हरि फड़के और परशुराम भाऊ पटवर्द्धन के नेतृत्व मे मराठा फौज उधर भेजी। इन दोनों मराठा सेनाधिकारियों ने कोंकण में अंग्रेज सेना साफ कर दी लेकिन इसका लाभ पूना की फौज न उठा सकी; क्योंकि संघ टूट गया था।

मराठों ने १७ मई, सन् १७८२ को संधि कर ली (सालबाई की संधि) इस संधि में मध्यस्थ महाद जी सिंधिया था। हैदरअली ने युद्ध जारी रखा।

सालबाई की सधि के अनुसार अंग्रेजों ने मराठों को वह इलाका लौटा दिया जो उन्होंने पुरंदर की सधि के बाद जीता था। राघोबा मराठों को सुपुर्द कर दिया गया। सिंधिया को भरूच और अहमदाबाद आदि गायकवाड़ को दे दिये गये और उन्होंने पूना कर भेजने रहना स्वीकार किया। पेशवा ने यह वादा किया कि वह तामिलनाद का इलाका हैदरअली से अंग्रेजों को वापस दिला देगा।

इस संधि के दो वर्ष बाद गोदावरी के तटवर्ती कापर गाँव मे राघोबा की मृत्यु हो गयी।

मराठा युद्ध से अंग्रेज मुक्त हो गये। हैदरअली से उनका संघर्ष जारी था। सन् १७८२ के अन्त में हैदरअली की मृत्यु हो गयी। उसके पुत्र टीपू सुलतान ने युद्ध जारी रखा। फ्रांसीसी उसके सहायक थे। सन् १७८३ मे यूरोप में ब्रिटेन और फ्रांसीसियों में सन्धि हो गयी, अतः भारत में भी उनके बीच युद्ध रुक गया। टीपू अकेला रह गया। फिर भी उसने हिम्मत न छोड़ी। अंग्रेजों ने उसकी राजधानी श्रीरंगपट्टम् पर आक्रमण करने की योजना

बनायी। इस बीच लार्ड कार्टनीक मद्रास का नया गवरनर हुआ। उसने टीपू से सन्धि कर ली। यह सन्धि सन् १७८४ में हुई और यह मंगलौर की सन्धि के नाम से प्रसिद्ध है।

द्वितीय मराठा युद्ध ने एक ओर अंग्रेजों की स्थिति स्पष्ट की और दूसरी ओर मराठों की। इस दौरान में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के गवरनर जेनरल हेस्टिंग्ज के रोमांचकारी अत्याचार भी सामने आ गये; जिनसे स्पष्ट हो गया कि अंग्रेज अपनी सत्ता बनाये रखने के लिए बेहरहमी के साथ इंसानियत का भी गला घोंट सकते हैं।

हैदरअली और मराठों के साथ होनेवाले युद्ध के कारण ईस्ट इण्डिया कम्पनी की हालत बहुत डाँवाडोल हो गयी थी। कम्पनी के खजाने में रुपयों का तोडा था। इस कमी की पूर्ति के लिए हेस्टिंग्ज ने बनारस के राजा चेतसिंह और अवध की बेगमों के साथ जल्लाद-सा व्यवहार किया और उन्हें जी भर कर लूटा। अवध के नवाब के अधीन राजा चेतसिह ने अपना इलाका बचाने की गरज से सन् १७७५ मे कम्पनी से संधि कर ली थी और उसे कर के रूप मे २२॥ लाख रुपया सालाना देना स्वीकार किया था। सन् १७७८ में हेस्टिंग्ज ने पाँच लाख की अतिरिक्त धनराशि की माँग की। चेतसिह ने यह रकम चुका दी। सन् १७७९ और सन् १७८० में हेस्टिंग्ज ने पुनः अतिरिक्त रकम की माँग की। राजा चेतसिंह ने पुनः हेस्टिंग्ज की माग पूरी की लेकिन हेस्टिंग्ज का पेट नहीं भरा। उसने अगली बार दो हजार घुडसवारो की मांग की। चेतसिह यह मांग पूरी नहीं कर सकता था। उसने पाँच सौ घुडसवार और पाँच सौ सैनिक देने का इरादा जाहिर किया। गवरनर जेनरल हेस्टिंग्ज को बहाना खोजना था, वह उसे मिल गया। उसने चेतसिह पर पचास लाख रुपया जुर्माना ठोंक दिया और उसे वसूल करने के लिए स्वयं सेना लेकर बनारस पर चढ़ दौडा। चेतसिंह ने मराठों की ओर सहायता के लिए देखा लेकिन व्यर्थ! पूर्व में अंग्रेजों से मुकाबिले के लिए नियुक्त मुधोजी भोंसले ने उसके बदले अंग्रेजों की सहायता की। हेस्टिंग्ज ने बनारस पहुँच कर चेतसिंह को कैद कर लिया। यह देखकर राजनिष्ठ प्रजा ने बगावत कर दी। अंग्रेज सैनिक मौत के घाट उतारे जाने लगे। स्वयं हेस्टिंग्ज की जान सांसत मे पड़ गयी। इस बगावत के परिणाम के सम्बन्ध में यह कहावत प्रसिद्ध है कि 'घोड़े पर हौदा, हाथी पर जीन, ऐसा भागा वारेन हेस्टिंग्ज।' इस आड़े मौके पर मुधोजी भोंसले के दूतों ने जो उसके साथ थे, उसकी मदद की और उसकी जान बचा दी। वह भाग कर चुनार पहुँचा। कुछ दिनों बाद उसने पुनः बनारस पर आक्र-

मण किया। चेतसिंह भाग गया। कहते हैं कि वह ग्वालियर चला गया। हेस्टिंग्ज ने बनारस को जीत कर उसे कम्पनी के राज में मिला लिया। उसने चेतसिंह के एक भतीजे को गद्दी पर बैठा दिया जिसने कम्पनी को चालिस लाख रुपया वार्षिक देना स्वीकार किया।

इसी प्रकार हेस्टिंग्ज ने अवध की बेगमों पर भी बहुत जुल्म ढाया। हेस्टिंग्ज के आदेश से अवध के अंग्रेज रेजिडेण्ट मिडिल्टन ने नवाब आसफुद्दौला की माँ और दादी पर चढ़ाई कर के जो फैजाबाद में रहती थीं, उन पर बहुत जुल्म ढाया। बाध्य होकर बेगमों ने हेस्टिंग्ज को लगभग एक करोड़ रुपये देकर किसी प्रकार अपनी जान बचायी। यह रकम उस ऋण के नाम पर वसूल की गयी जो अंग्रेजों की सेना का खर्च चुकाने का वादा पूरा न कर सकने के कारण नवाब पर चढ़ गया था। दरअसल अंग्रेज सेना के व्यय के रूप में चुकाये जानेवाले टैक्स की रकम इतनी बडी थी कि नवाब उसे चुकता नहीं कर सकता था। यह वादा शुजाउद्दौला ने किया था। वह मर गया लेकिन अंग्रेजों ने रकम नहीं छोडी और इसे वसूल करने के लिए पैशाचिक कृत्य किये। कुछ अंग्रेज इतिहासकारों ने जुल्म और सितम के इस भयावह कारनामें के लिए जिम्मेदार हेस्टिंग्ज को यह बताकर निर्दोष सिद्ध करने की चेष्टा की है कि बेगमों ने अंग्रेजों के विरुद्ध चेतसिंह को उकसाया था लेकिन यह सरासर झूठ है।

पेशवाई हुकूमत से जलने वाले मराठा सरदार न तो अंग्रेजों के उपर्युक्त कारनामों की ओर ध्यान दे सके, न अंग्रेजों की आपसी फूट का लाभ उठा सके। अन्य शक्तियों का ध्यान भी इस ओर आकृष्ट नहीं हुआ। दरअसल रेग्यूलेटिंग एक्ट की खामियों के कारण वारेन हेस्टिंग्ज को शासन में जिन आंतरिक बाधाओं का सामना करना पडा, यह नहीं कहा जा सकता कि भारतीय ताकतें उनका लाभ नहीं उठा सकती थी। उनकी दशा कूप मण्डूक-सी न होती तो निर्विवाद है कि वारेन हेस्टिंग्ज की मुसीबतें बहुत बढ़ जातीं। भारतीय ताकतों में इस दृष्टि से दूरदर्शिता का अभाव था। इसका लाभ हेस्टिंग्ज ने उठाया। उसने न केवल अंग्रेजी राज्य में वृद्धि की बल्कि कौंसिल के सदस्यों की उपेक्षा भी की और नन्दकुमार नामक जिस भारतीय ने उसकी घूसखोरी का पर्दाफाश किया था, उसे फाँसी पर भी चढ़वा दिया।

रेग्यूलेटिंग एक्ट में अनेक दोष थे। इसमें सबसे बड़ा दोष यह था कि कौंसिल के सदस्यों के बहुमत को रद्द करने का अधिकार गवरनर जेनरल को नहीं दिया गया था। कौंसिल के सदस्यों और गवरनर जेनरल के बीच चलने

वाली खींचतान की वजह यह खामी ही थी। कौंसिल और सुप्रीम कोर्ट (सर्वोच्च न्यायालय) में भी झगड़ा चला करता था।

रेग्यूलेटिंग एक्ट को लागू करने वाली घोषणा में यह कहा गया था कि यह पहली अगस्त, सन् १७७४ से भारत में लागू होगा। इस समय तक कौंसिल के चारों मनोनीत सदस्य यहाँ नहीं पहुँच सके थे। तीन सदस्य १६ अक्टूबर, सन् १७७४ को कलकत्ता पहुँचे। चौथे सदस्य बारवेल साहब और देर से यहाँ आये।

हेस्टिंग्ज ने प्रथम तीनों सदस्यों के आगमन पर न तो उनका स्वागत किया, न आवभगत की। नतीजा यह हुआ कि कौंसिल की प्रथम बैठक में ही क्लेवरिंग, मानसन और फ्रांसीस ने हेस्टिंग्ज की नीति पर करारा प्रहार किया। उन्होंने इलाहाबाद को बेचने तथा रुहेला युद्ध में भाग लेने की नीति की करारी भर्त्सना की। इनके विरुद्ध गवरनर जेनरल को केवल बारवेल का समर्थन प्राप्त हुआ। अस्तु, यह तूफान तो टल गया लेकिन शीघ्र ही वह रूप बदल कर पुनः उठ खड़ा हुआ। मुगल बादशाह की शक्ति के समाप्त होने, अवध में कमजोर नवाब आसफुद्दौला के गद्दी पर बैठने तथा उत्तर-पश्चिम सीमा पर किसी का भय न रह जाने के कारण कौंसिल के हेस्टिंग्ज-विरोधी सदस्यों ने उसके शासन-काल तथा व्यक्तिगत आचरण की जाँच करने का फैसला किया। यद्यपि कौंसिल को गवरनर जेनरल पर अभियोग लगाने तथा फैसला करने का अधिकार कानूनन प्राप्त नहीं था तथापि क्लेवरिंग, मानसन और फ्रांसिस ने इस पर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने हेस्टिंग्ज के विरुद्ध चार अभियोग लगाये—(१) बर्दवान के बालक राजा पर से उसकी माँ का संरक्षण हटा कर दीवान को सौंपने के लिए उसने बर्दवान के रेजिडेण्ट से मिल कर दीवान से घूस ली, (२) हुगली के फौजदार द्वारा दी जानेवाली वार्षिक मालगुजारी की रकम में से छिहत्तर हजार रुपये हेस्टिंग्ज ने अपने पाकेट में रख लिये (३) सन् १७७२ में अपनी मुर्शिदाबाद की यात्रा के समय उसने आवभगत के खर्च की आड़ में नवाब की बेगम से पंद्रह हजार रुपये लिये और (४) मीरजाफर की विधवा बेगम से उसने साढ़े तीन लाख रुपये बतौर घूस लिये। इस अन्तिम अभियोग का गवाह नन्दकुमार था। यह उच्च कुलीन ब्राह्मण अंग्रेजों की हुकूमत में कई विश्वस्त पदों पर काम कर चुका था।

हेस्टिंग्ज ने न तो कौंसिल के अभियोगों को स्वीकार किया, न उसने सफाई के लिए उसके समक्ष उपस्थित होना स्वीकार किया। जब विरोधी तीन सदस्यों ने जोर डालना आरम्भ किया और नन्दकुमार की गवाही के आधार

पर उसको पूरी रकम कम्पनी के खजाने में जमा करने का आदेश दिया तो हेस्टिंग्ज ने कौंसिल भंग कर दी। कुछ ही दिनों के अन्दर नन्दकुमार पकड़ कर जेल में बन्द कर दिया गया और उस पर जालसाजी करने का अभियोग लगा कर सुप्रीम कोर्ट में मुकदमा चलाया गया। इस न्यायालय का जज इम्पे हेस्टिंगज का मित्र था। आठ दिनों के अन्दर उसने नन्दकुमार को अपराधी ठहरा कर मृत्यु का दण्ड दिया। कुछ इतिहासकारों का कहना है कि मोहन प्रसाद नामक व्यापारी द्वारा नन्दकुमार पर जालसाजी के अभियोग में चलाये गये मुकदमे में उसे इम्पे ने फाँसी की सजा दी थी।

निष्पक्ष इतिहासकारों ने उपर्युक्त घटना को हेस्टिंग्ज के शासन पर कलंक माना है। उन्होंने लिखा है कि जिस कानून के मातहत नन्दकुमार के मुकदमें की सुनवाई हुई, वह उस समय लागू नहीं था जिस समय नन्दकुमार द्वारा जालसाजी की गयी। प्रचलित कानून में जालसाजी के अपराध पर मृत्यु दण्ड की व्यवस्था नहीं थी। इम्पे ने इन दोनों तत्वों की उपेक्षा की, अतः उसका फैसला न्यायपूर्ण नहीं था। हेस्टिंग्ज के समर्थक इतिहासकारों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि नन्दकुमार की फाँसी में हेस्टिंग्ज का कोई हाथ न था; क्योंकि न्यायालय में इम्पे के अतिरिक्त और भी तीन न्यायाधीश थे। यह कोरी बकवाद है। इतिहास में इस कथन को असत्य सिद्ध करने वाले अनेक प्रमाण भरे पड़े थे।

इतिहास मे इस बात का स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता कि अंग्रेजों से जूझने वाली शक्तियों ने इन बातों पर भी कभी विचार किया था। कारण कुछ भी हो इतना तो स्पष्ट है कि उस समय चारों ओर उथल-पुथल थी। केवल मध्यभारत में इंदौर की महारानी अहिल्याबायी का शासन ही अपवाद रहा; जिसने सन् १६६५ से सन् १७६५ तक शान्तिपूर्वक राज्य किया।

प्रभाव-विस्तार की दृष्टि से हेस्टिंग्ज के शासन-काल की आलोचना के सिलसिले में केवल इतना ही कहना काफी होगा कि क्लाइव ने भारत में अंग्रेजी राज्य की नींव डाली और हेस्टिंग्ज द्वारा यह नींव दृढ़ की गयी।

———

*

# मराठा शक्ति का पराभव

ब्रिटिश सरकार का नियंत्रण—पिट का भारत अधिनियम—न्याय से प्रशासन पृथक—यूरोपियन अफसरों का बाहुल्य—जमीन के बंदोबस्त में परिवर्तन—जमींदार जमीन के मालिक घोषित—मराठों द्वारा टीपू के विरुद्ध अंग्रेजों की मदद—अंग्रेजों की कूटनीति से मराठा परेशान—टीपू अकेला—मैसूर का तृतीय युद्ध—सर जान शोर का विश्वासघात—सिंधिया और नाना फड़नवीस में मतभेद—पूना पर सिन्धिया की चढ़ाई—होलकर की गद्दी के लिए झगड़ा—पेशवा अंग्रेजों के कदमों पर—रणजीतसिंह लाहौर का राजा नियुक्त—वेजेजली की सहायक सन्धि प्रणाली—निजाम ने घुटने टेके—टीपू द्वारा प्राणोत्सर्ग—मुगल बादशाह पुनः अंग्रेजों के चंगुल में—एक-एक मराठा सरदार पराजित—यशवंतराव का शौर्य—सिन्धिया भी मैदान में—अंग्रेज सेना के भारतीय सिपाहियों की बगावत—भरतपुर का घेरा—सिन्धिया पुनः फूटा—रणजीतसिंह की भूल—यूरोपीय युद्ध का प्रभाव—नेपोलियन के आक्रमण का भय—अंग्रेजों से ईरान की सन्धि—अफगानिस्तान के शाह से सन्धि—सिन्ध के अमीरों से संधि—रणजीतसिंह का उत्कर्ष—सिन्धिया की अदूरदर्शिता—अमृतसर की सन्धि—फ्रांसीसी नौ आबादियों पर हमला—त्रावनकोर में विद्रोह।

अमेरिका में अंग्रेजी उपनिवेशों के हाथ से निकलने की नौबत का परिणाम यह हुआ की अंग्रेजों का ध्यान भारत पर केन्द्रित हो गया। संयोगवश इस दौरान में ही रेग्यूलेटिंग एक्ट की खामियां भी सामने आ गयी थीं। इसमें सुधार कर के भारत में अंग्रेजों की स्थिति मजबूत करने की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। फलतः ब्रिटेन की पार्लिमेंट में एक बिल पेश किया गया जिसमें यह प्रस्तावित था कि भारत-सम्बंधी अधिकार पार्लिमेंट द्वारा नियुक्त सात कमिश्नरों को दे दिये जांय। यह बिल आंतरिक कशमकश के कारण जो राजा और पार्लिमेंट के बीच चल रही थी, अस्वीकृत हो गया। इसके फलस्वरूप ही ब्रिटेन में फाक्स और लार्ड नार्थ की संयुक्त सरकार का पतन हुआ और पिट ( छोटा ) ने नयी सरकार संघटित की। उसने सन् १७८४ में संसद के दोनों सदनों ( हाउस आव कामंस और हाउस आफ लार्ड्स ) में एक बिल पेश किया जो स्वीकार

कर लिया गया। इसके अनुसार छः सदस्यों का एक बोर्ड आव कंट्रोल कायम किया गया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन-प्रबन्ध इस बोर्ड को सुपुर्द कर दिया गया। इससे सम्बन्धित विधान के एक उपबन्ध में कहा गया कि बोर्ड के सदस्य 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी के इलाकों एवं प्रदेशों के नागरिक तथा सैनिक प्रशासन तथा आय से सम्बंधित कार्यों एवं संस्थाओं की जांच करेंगे तथा उन पर नियंत्रण रखेंगे।' इस प्रकार भारत की समस्या पहली बार ब्रिटेन के मंत्रि-मंडल की समस्या बनी।

पिट के भारत अधिनियम (इण्डिया एक्ट) के सम्बन्ध में इतिहासकार मिल ने लिखा है—"इस कानून को स्वीकृत कराने के दो उद्देश्य थे। इस अभियोग से बचने के लिए कि इस कानून की भी वही मंशा है जो फाक्स के बिल की थी, यह आवश्यक था कि कम से कम देखने के लिए ताकत का मुख्य भाग कम्पनी के डाइरेक्टरों के हाथ में रहे। दूसरी ओर मंत्रि-मंडल के हित की दृष्टि से यह आवश्यक था कि वस्तुतः कम्पनी के डाइरेक्टर शक्ति-विहीन हो जांय। पिट का बिल अपने प्रतिद्वन्दी के बिल से इस अर्थ में भिन्न था कि जहां वह कम्पनी के डाइरेक्टरों की ताकत को समाप्त करता था, वहीं यह बिल उसको प्रायः यथापूर्व रखता था। फाक्स के बिल के स्वीकृत होने पर स्पष्टतः ताकत मंत्रियों के हाथ में रहती। पिट के बिल द्वारा प्रच्छन्न रूप में यही बात हुई। फाक्स महोदय कम्पनी की ताकत पार्लिमेंट द्वारा नियुक्त कमिश्नरों को सुपुर्द करना चाहते थे। पिट के बिल द्वारा यह ताकत सम्राट द्वारा नियुक्त कमिश्नरों को सौंप दी गयी।"*

पिट के भारत अधिनियम में दो वर्ष बाद अर्थात् सन् १७८६ में एक संशोधन स्वीकार किया गया जिसके अनुसार भारत में नियुक्त गवरनर जेनरल को अपनी कौंसिल के बहुमत को ठुकराने का अधिकार भी दे दिया गया। गवरनर जेनरल की कौंसिल के सदस्यों की संख्या भी घटा कर तीन कर दी गयी। मद्रास और बम्बई के इलाके बंगाल के गवरनर के अधीन कर दिये गये और दोनों क्षेत्रों के गवरनरों के सम्बन्ध में यह निश्चित हुआ कि वे न तो गवरनर जेनरल की अनुमति के बिना युद्ध छेड़ सकेंगे, न सन्धि कर सकेंगे। जाहिर है कि रेग्यूलेटिंग एक्ट के कारण शासन-कार्य में हेस्टिंग्ज को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, वे समाप्त कर दी गयीं। शासन पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अधिकार समाप्त प्रायः हो गया।

---

*'आर्टिक्लस आन इंडिया' (कार्ल मार्क्स) में उद्धरित पृ० सं० ४०–४१.

इसी समय अमेरिका के युद्ध में भाग लेने वाले कार्नवालिस को गवरनर जेनरल बनाकर बंगाल में भेजा गया। मंत्रि-मंडल ने उसकी क्षमता से अधिक ध्यान उसकी ईमानदारी पर दिया। यों यह अजीब-सी बात थी कि अमेरिका के युद्ध में पराजित होने वाला कार्नवालिस यहां गवरनर जेनरल नियुक्त किया गया।

कार्नवालिस सन् १७८६ में गवरनर जेनरल नियुक्त हुआ और सन् १७९३ तक इस पद पर बना रहा। अपने पूर्ववर्ती गवरनर जेनरल की अपेक्षा उसे अधिक अधिकार प्राप्त थे। वह भारत में अंग्रेजी इलाकों का सेनापति और गवरनर जेनरल, दोनों था। यही कारण है कि अपने शासन-काल में उसे उन कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ा जिनका सामना क्लाइव अथवा वारेन हेस्टिंग्ज ने किया था। इस का एक कारण यह भी था कि हेस्टिंग्ज के जमाने में अंग्रेज सेना की धाक काफी जम गयी थी। दक्षिण में टीपू और मराठों के शीघ्र उभड़ने की आशा नहीं थी। बंगाल से अवध तक अंग्रेजों की तूती बोलने ही लगी थी। इस परिस्थिति का यह स्वाभाविक परिणाम रहा कि कार्नवालिस सैनिक कारवाइयों की अपेक्षा नागरिक शासन पर अधिक ध्यान दे सका।

पहले यह बताया जा चुका है कि हेस्टिंगज के शासन-काल में बहुत से दोष थे और कम्पनी के कर्मचारी अपनी थैली भरने में मशगूल थे। वे अवैध रूप से निजी व्यापार करते थे। कलक्टर के हाथों में जो शासन के मेरुदंड थे, न्याय और प्रशासन, दोनों के अधिकार थे, अतः वे भी लूट-खसोट से बाज न आते। कार्नवालिस ने कम्पनी के नौकरों के भ्रष्टाचार को नियंत्रित करने की व्यवस्था की और न्याय तथा शासन-प्रबंध को पृथक्-पृथक् कर दिया। इसके साथ ही उसने ऊँचे ओहदों पर भारतीयों की नियुक्ति रोक दी और इन ओहदों पर यूरोपियनों को ला बैठाया।

लार्ड कार्नवालिस ने लगान की वसूली की प्रणाली में भी परिवर्तन किया। उसने ही जमीन के मालिक के रूप में जमादारों को जन्म दिया जो काफी लम्बे अर्से तक अंग्रेजी हुकूमत की रीढ़ बने रहे और जिन्होंने किसानों को चूसा और अंग्रेज मालिकों का घर भरा। कार्नवालिस की व्यवस्था के फलस्वरूप भारत की पुरानी व्यवस्था जिसके कारण गाँव स्वतन्त्र इकाई के रूप में थे, बिलकुल समाप्त हो गयी।

सन् १७७२ में वारेन हेस्टिंग्ज ने ठीकेदारों के साथ पंच वर्षीय बंदोबस्त किया था। सन् १७८४ में इस में परिवर्तन हुआ और वार्षिक बंदोबस्त शुरु हुआ। सन् १७८६ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने पुनः इसमें परिवर्तन किया और

जमींदारों के साथ दस वर्षीय बंदोबस्त की व्यवस्था की। सन् १७९३ में कार्नवालिस ने इसको भी बदल दिया। उसने बंगाल के जमींदारों के साथ स्थायी बंदोबस्त किया। जमींदार जमीन के मालिक घोषित कर दिये गये और जमीन का लगान निश्चित कर दिया गया। इतिहास में यह व्यवस्था इस्तमरारी-बंदोबस्त (पर्मानेण्ट सेटिलमेंट) के नाम से प्रसिद्ध है। बंगाल के बाद धीरे-धीरे यह बिहार, उड़ीसा, असम और मद्रास के कुछ भागों में भी लागू कर दी गयी। इसके फलस्वरूप अंग्रेज सरकार का लाभ अवश्य हुआ लेकिन काश्तकार तबाह और बरबाद हो गये।

नागरिक शासन में सुधार करने वाला कार्नवालिस कूटनीतिज्ञ नहीं था लेकिन भारत के दुर्भाग्य ने उसे कूटनीतिज्ञ भी बना दिया। आश्चर्य तो यह है कि अंग्रेजों की कूटनीति से सर्वथा परिचित और पेशवा माधवराव की अधूरी योजना पूरी कर के अंग्रेजों की सत्ता को समाप्त करने का प्रयत्न करने वाला नाना फड़नवीस भी जो अपनी कूटनीतिक बुद्धिके लिए प्रसिद्ध था, कार्नवालिस की चाल के आगे मात खा गया और उसने अंग्रेजी सत्ता को समाप्त करने के लिए कटि-बद्ध टीपू के विरुद्ध अंग्रेजों की मदद की! इससे बढ़ कर आश्चर्य की बात तो यह है कि दयनीय और शक्ति-हीन मुगल बादशाह शाहआलम ने भी यह महसूस किया था कि पेशवा को टीपू के विरुद्ध अंग्रेजों के साथ नहीं लड़ना चाहिये था लेकिन नाना फड़नवीस यह महसूस नहीं कर सका! नाना ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि अंग्रेज की शक्ति साधारण होती तो जेनरल गोडर्ड के नेतृत्व में अंग्रेज सेना द्वितीय मराठा युद्ध के दौरान में होलकर और सिंधिया की संयुक्त सेनाके दाँत खट्टे न कर सकती। महाद जी सिंधिया कूटनीतिज्ञ भले ही न रहा तो लेकिन वह अनुपम वीर और कुशल सेनापति तो था ही। उत्तर भारत में मराठों की उखड़ी हुई शक्ति का सिक्का पुनः उसने ही जमाया था।

सन् १७७३ के बाद लगभग दस वर्षों तक मराठा शक्ति राजस्थान और दिल्ली की ओर न देख सकी। इस बीच मौका पाकर अंग्रेजों ने अपने पिट्ठू वहाँ काफी संख्या में तैयार कर लिये। मराठों को इसका भान तब हुआ जब सन् १७८२ की सालबाई की संधि के बाद महाद जी सिंधिया पुनः दिल्ली पहुँचा। कमजोर मुगल बादशाह की जान में जान आयी। वारेन हेस्टिंग्ज उसकी पेंशन बन्द कर चुका था क्योंकि मराठों की सहायता से ही बादशाह अवध से दिल्ली पहुँचा था। महाद जी सिन्धिया के दिल्ली पहुँचने पर उसने उसके हाथ में सारी शक्ति सुपुर्द कर दी और पेशवा को अपना एक मात्र प्रतिनिधि (वकीले मुतलक) नियुक्त कर दिया। लेकिन महाद जी दिल्ली में टिक

न सका। अँग्रेजों के पिट्ठुओं की चालबाजियों का सामना वह न कर सका, क्योंकि वह कूटनीतिज्ञ नहीं था। तीन वर्ष पश्चात अर्थात् सन् १७८५ में उसे वापस लौटना पड़ा। इसके बाद ही अंग्रेजों की चालबाजी के कारण राजस्थान के कई राजा मराठों के विरुद्ध उमड़ पड़े। सन् १७८७ के उत्तरार्द्ध में जयपुर राज्य में एक स्थान पर राजस्थानी विद्रोहियों का सामना करते समय महाद जी सिंधिया की सेना को पराजित भी होना पड़ा। विद्रोहियों को, राजाओं और शासकों को उन राजस्थानी व्यापारियों ने उभाड़ा था जो ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ व्यापार करते थे। इधर अजमेर भी मराठों के हाथ से निकल गया।

एक ओर यह स्थिति थी और दूसरी ओर अंग्रेजों के मुहम्मद बेग हमदानी नामक एक कारिन्दे ने मथुरा और आगरा पर अधिकार जमा लिया। नजीब खाँ रुहेला के जिसको मराठों ने बहुत अपमानित किया था, पौत्र गुलाम कादिर ने दिल्ली पर अधिकार जमा कर शाहआलम को पकड़ लिया और स्वयं उसकी आँखे निकाल ली और उसे बेतों से पीटा।

नाना फड़नवीस के ही कहने पर महाद जी सिंधिया पुनः दिल्ली पहुँचा। उसने शाहआलम की रक्षा की और गुलाम कादिर को दण्डित किया। अपने फ्रांसीसी सेनाधिकारी द'बाय और पेरों द्वारा यूरोपीय ढंग से शिक्षित सेना की सहायता से उसने मारवाड़ और जयपुर में अंग्रेजों के पिट्ठुओं को भी दबाया। यही अवसर था जब मुगल बादशाह ने पेशवा को स्थायी रूप से अपना प्रतिनिधि नियुक्त करने तथा अपने साम्राज्य में गो हत्या बन्द करने की घोषणा की और महाद जी सिंधिया से कहा कि पेशवा को टीपू सुलतान से नहीं लड़ना चाहिये था और उसे मिलाकर अंग्रेजों से युद्ध करना चाहिये था।

सन् १७९२ में महाद जी ने पूना पहुँच कर जब सब हाल बताया तब दक्षिण में मराठा फौज अंग्रेजों के साथ टीपू के विरुद्ध युद्ध-रत थी। यह विचित्र बात है कि सन् १७८२ से सन् १७८५ के दौरान में राजस्थान और दिल्ली आदि में अंग्रेजों के षडयंत्र के कारण महाद जी सिंधिया को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, उससे अवगत होते हुए भी पेशवा ने टीपू के खिलाफ अंग्रेजों की मदद की जब कि यह जाहिर था कि टीपू अंग्रेजों की शक्ति को उध्वस्त करने में लगा है! कुछ इतिहासकारों का जो अंग्रेज है, कहना है कि टीपू ने अपने पिता हैदरअली की नम्रता का परित्याग कर दिया था और हैदर का सहयोग लेने के लिए नाना फड़नवीस ने जो इलाके उसे सौंपे थे, मैसूर का शासक होने के बाद टीपू ने वहां के हिन्दुओं पर बहुत अत्याचार किया था। इससे मराठा रुष्ट थे। यह सन्देहास्पद है क्यों-

कि मराठों की नीति भी स्पष्टतः ढुलमुल थी। आड़े समय म उन्हान हदर-अली का भी साथ छोड़ दिया था। अस्तु, दक्षिण में टीपू सुलतान चुप न बैठा था। वास्तव में एक मात्र वही ऐसा भारतीय शासक था जो नियोजित रूप में अंग्रेजी सत्ता को समाप्त करने की चेष्टा कर रहा था। उसने यूरोपीय ढंग से अपनी सेना शिक्षित करायी थी। सन् १७८७ में उसने अंग्रेजों के विरुद्ध विदेशों से सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से फ्रांस और तुर्की में अपने दूत भी भेजे। सन् १७८९ में वह मैदान में आ गया। उसने त्रावनकोर पर आक्रमण किया और एक वर्ष में उसे रौंद डाला। त्रावनकोर का राजा अंग्रेजों का मित्र था, अतः कार्नवालिस ने उसकी सहायता के लिए कदम उठाया और इस दृष्टि से उसने निजाम और मराठों की सहायता भी प्राप्त कर ली। निजाम को मराठों के विरुद्ध अंग्रेजों ने संरक्षण प्रदान किया था। यह कम आश्चर्यजनक नहीं है कि इस निजाम के साथ ही पेशवा ने भी कार्नवालिस की मदद की! इसका कारण सम्भवतः यही था कि पेशवा टीपू की शक्ति में वृद्धि नहीं चाहता था और वह यह नहीं समझ पाया था कि टीपू से भी अधिक खतरनाक शत्रु अंग्रेज हैं। कुछ इतिहासकारों का यह भी कहना है कि अंग्रेजों ने मराठों से यह वादा कर के उन्हें अपनी ओर मिला लिया था कि टीपू की पराजय होने पर मैसूर का एक भाग उन्हें दे दिया जायगा।

इस 'त्रिगुट' के विरुद्ध टीपू अकेला रह गया। इस आड़े समय में टीपू के यूरोपीय कर्मचारियों ने भी उसे धोखा दिया। फिर भी टीपू के साहस ने उसे जवाब नहीं दिया। जेनरल मेडोज के नेतृत्व में मद्रास की सरकार द्वारा भेजी गयी सेना को उसने परास्त कर दिया। इससे विक्षुब्ध होकर कार्नवालिस स्वयं सेना लेकर आ धमका और बंगलोर पर अधिकार करते हुए उसने टीपू की राजधानी श्री रंगमपट्टम् को घेरने की कोशिश की। टीपू ने कुशलता के साथ उसकी सेना का सम्बन्ध चारों से भंग कर दिया और कार्नवालिस को अपना इरादा बदलने के लिए बाध्य किया। संयोग वश इसी समय मराठा फौज भी पहुँच गयी। तब कार्नवालिस ने सबके साथ मिलकर टीपू की राजधानी को घेर लिया। अकेला टीपू कहाँ तक लड़ता। संधि करने के लिए परिस्थितियों ने उसे मजबूर किया। यह बहुत दुर्भाग्य-पूर्ण सन्धि थी। इसने विदेशी हुकूमत के प्रबल शत्रु की कमर तोड़ दी। सन् १७९३ में उसने तीन करोड़ रुपये और अपना आधा राज देकर सन्धि कर ली। रुपयों की वसूली के लिए अंग्रेजों ने उसके दो पुत्रों को बन्धक के रूप अपने पास रख लिया। निजाम और पेशवा

ने टीपू से प्राप्त इलाकों का अंग्रेजों के साथ मिल कर बटवारा कर लिया। मैसूर के इस तृतीय युद्ध में टीपू की पराजय अन्ततः मराठों के लिए भी महंगी पड़ी। निजाम अली को तो शीघ्र ही इसका फल भुगता पड़ा।

मराठे निजाम से बराबर चौथ वसूल करते आ रहे थे। मैसूर के तृतीय युद्ध से पूर्व ही उसने चौथ देना बन्द कर दिया था। वह अंग्रेजों पर भरोसा करता था। अंग्रेज भी उसे आश्वासन देते रहते थे। कार्नवालिस ने स्वतः इस बात की चेष्टा की कि दोनों में समझौता हो जाय लेकिन वह सफल न हुआ। अंग्रेजों की टालमटोल की नीति से सशंक होकर उसने रेमां नामक फ्रांसीसी अफसर को नियुक्त कर के आधुनिक ढंग से अपनी फौज को संघटित करने का काम आरम्भ कर दिया था।

जिस वर्ष टीपू और कार्नवालिस द्वारा संघटित त्रिगुट में सन्धि हुई, उसी वर्ष कार्नवालिस के स्थान पर सर जान शोर भारत में अंग्रेज गवरनर जेनरल नियुक्त हुआ। लगभग दो वर्ष बाद इसके शासन-काल में ही पेशवा ने निजाम से चौथ चुकाने की मांग की। निजाम ने चौथ नहीं चुकाया। उसके दीवान ने पूना को युद्ध में निपटने की धमकी दी। इससे क्रोधित होकर नाना फड़नवीस ने युद्ध की तैयारी शुरू की। महाद जी सिंधिया की मृत्यु हो चुकी थी। नाना फड़नवीस ने परशुराम भाऊ के नेतृत्व में पूना से मराठा फौज रवाना की। निजाम ने जर सान शोर से मदद मांगी लेकिन उसने मदद नहीं दी। यह शुद्ध विश्वासघात था। कुछ इतिहासकारों का कहना है कि सर जान शोर अहस्तक्षेप की नीति का प्रतिपादक था इसलिए वह निजाम और मराठों के युद्ध में नहीं पड़ा। अस्तु, अंग्रेजों से कोरा उत्तर पा कर निजाम स्वयं ही बीदर से आगे बढ़ा। खुरदा में उसकी मराठा फौज से भिड़ंत हुई और वह बुरी तरह पराजित हुआ। उसने पेशवा को तीन करोड़ रुपया, दौलताबाद का किला तथा काफी इलाका दिया। इसी प्रकार उसने मुधो जी भोंसले के पुत्र रघु जी को भी हरजाना चुकाया और मराठों से सधि कर ली (सन् १७९५)।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि अहस्तक्षेप की नीतिका अनुयायी होने के कारण सर जान शोर ने निजाम की मदद नहीं की, यह कहने वाले इतिहासकारों ने दरअसल उसके विश्वासघात पर पर्दा डालने की कोशिश की है। वस्तुतः वह इस नीति का अनुयायी नहीं था। निजाम की मदद न करना उसने अंग्रेजी राज की रक्षा के लिए उचित समझा इसलिए ही उसने मदद नहीं की। अहस्तक्षेप की नीति का ही वह अनुयायी होता तो अवध के मामले में हस्तक्षेप न करता। सन् १७९७ में अवध के नवाब आसफुद्दौला की मृत्यु

हुई। उसने अपने पुत्र मिर्जा अली को शासनाधिकारी नियुक्त किया था। सर जान शोर ने अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए उसे पूरे चार मास तक भी गद्दी पर नहीं बैठने दिया और उसे पदच्युत कर के सआदत अली को गद्दी पर बैठा दिया; क्योंकि उसने अवध में अँग्रेजी सेना की छावनी के बदले ईस्ट इण्डिया कम्पनी को छिहत्तर लाख रुपया वार्षिक देना स्वीकार किया। इसके अतिरिक्त सआदत अली ने इलाहाबाद का प्रसिद्ध किला भी अँग्रेजों को सुपुर्द कर दिया। इस से स्पष्ट है कि सर जान शोर भी साम्राज्यवादी था। निजाम की मदद या तो उसने इस गरज से नहीं कि वह मराठों से डरता था, या इसलिए कि दो ताकतें आपस में लड़ कर कमजोर होंगी और अंग्रेजों को अपनी धाक बढ़ाने का मौका मिलेगा।

खुरदा के युद्ध के बाद पेशवा सवाई माधवराव की मृत्यु हो गयी। वह सन्तान-विहीन था, फलतः रघुनाथ राव का बेटा बाजीराव (द्वितीय) ही पेशवा की गद्दी का उत्तराधिकारी था जो कैद में था। वह कायर और मूर्ख था। मंत्री नाना फड़नवीस लम्बे अर्से से ही पूना की गद्दी का सच्चा भक्त था। रघुनाथ राव से उसने युद्ध अपनी राज-भक्ति के कारण किया था। वह नहीं चाहता था कि बाजीराव द्वितीय सदृश मूर्ख और कायर पेशवा बने। उसने यह चेष्टा की कि सवाई माधवराव की पत्नी किसी को गोद ले ले लेकिन दौलतराव सिंधिया ने जो महाद जी सिंधिया का उत्तराधिकारी और उसके भाई का पौत्र था, नाना फड़नवीस की योजना का विरोध किया। आपसी कलह बचाने के लिए नाना ने उसे कैद से रिहा कर दिया और पेशवा की गद्दी सुपुर्द कर दी। लेकिन नाना कलह को बचा न सका। बाजीराव की मूर्खता और मंत्री-पद की लालसा ने मराठों में फूट की ऐसी प्रबल ज्वाला धधका दी जिसने पूना की गद्दी की धाक को स्वाहा कर दिया।

बाजीराव ने गद्दी पर बैठ कर नाना को ही मंत्री बनाया। दौलतराव सिंधिया को यह नागवार मालूम हुआ, क्योंकि नाना की नीति के प्रति उसके विरोध के फलस्वरूप ही बाजीराव द्वितीय गद्दी पर बैठा था। दौलतराव मंत्री-पद की गद्दी पर अपना हक समझता था। उसे हाथ से बाहर देख कर वह क्रुद्ध हो उठा। इस आवेश में ही उसने अपने मंत्री बालोबा के साथ पूना पर चढ़ाई कर दी। नाना कुछ न कर सका। वह मैदान से हट गया। दौलतराव ने बाजीराव को कैद कर लिया लेकिन नाना के बहुत समझाने-बुझाने पर कुछ समय के बाद उसने उसे रिहा कर दिया। फिर भी पूना की गद्दी पर

उसकी आँख गड़ी ही रही। बाजीराव की मूर्खता से पूना का सर्वेसर्वा बन बैठने में उसे सफलता भी मिल गयी।

सन् १७९७ में तुको जी होलकर की मृत्यु हो गयी। उसके बेटे बिठु जी और यशवन्तराव होलकर में झगड़ा होने लगा। यशवंतराव ने बाजीराव को पंच मानकर झगड़ा निपटाना चाहा लेकिन मूर्ख बाजीराव ने बिठु जी को पकड़वा कर कतल करवा दिया। इधर उसने दौलतराव द्वारा नाना को भी जिसने उसे दौलतराव की कैद से मुक्त करवाया था, कैद करवा दिया। अपने भाई के कतल से यशवन्तराव होलकर क्षुब्ध हुआ। इसके बाद जब दौलतराव सिंधिया उत्तर भारत की ओर रवाना हुआ तो उसने पूना पर आक्रमण कर दिया। सन् १८०२ में पूना के पास ही उसने बाजीराव पेशवा और सिंधिया की बची-खुची फौजों को शिकस्त दी। पेशवा बाजीराव द्वितीय मैदान छोड़ कर भागा। यह मूर्ख दौलतराव सिंधिया की ओर नहीं गया। भाग कर वह बसई ( बेसिन ) पहुँचा और वहाँ उसने ३१ दिसम्बर, सन् १८०२ में अंग्रेजों से सन्धि कर ली। इसके अनुसार उसने अपने राज्य में अंग्रेजों की फौज रखना स्वीकार किया और वादा किया कि पूना में अन्य विदेशी शक्तियों को स्थान न दिया जायगा। इसके अतिरिक्त उसने अंग्रेजों से अनुमति प्राप्त किये बिना किसी से युद्ध या सन्धि न करने का भी वचन दिया। यह सन्धि की उसने अंग्रेज गवरनर जनरल वेलजली से जो महान् कूटनीतिज्ञ और प्रबल साम्राज्यवादी था। जिस पूना दरबार की धाक अंग्रेजों पर अब भी बनी थी, उसके पेशवा को चंगुल में फँसा देखकर वह कब चूकने वाला था। यह भी ऐसी दशा में जब कि वह दक्षिण में अपने प्रबल शत्रु टीपू सुल्तान का अस्तित्व मिटा चुका था और निजाम को वह पूरी तरह से कब्जे में कर चुका था। इस बीच सन् १८०० में ही नाना-फड़नवीस की मृत्यु हो चुकी थी। मराठा सरदारों में किसी की ऐसी सूझ-बूझ न थी जो वेलजली की चाल को समझ सकता और पेशवा बाजीराव द्वितीय को उसके चंगुल से बाहर निकाल सकता। मजा तो यह है कि पेशवा की उपर्युक्त हरकत से होलकर और सिंधिया आदि सब मराठा सरदार क्षुब्ध हो उठे थे लेकिन जब एक ने युद्ध छेड़ा तो दूसरा खड़ा तमाशा देखता रहा! अनुकूल अवसर पर इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति का विवरण प्रस्तुत किया जायगा। यहाँ पहले उन परिस्थितियों का वर्णन करना आवश्यक है जिनके फलस्वरूप अंग्रेजों की ताकत बढ़ गयी थी।

सन् १७९८ में वेलजली भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त हुआ। इसका नाम मार्निंगटन था लेकिन बाद में यह लार्ड वेलजली कहलाने लगा। जिस

समय वह भारत में आया, उस समय योरप में फ्रांस के सेनापति नैपोलियन बोनापार्ट की तूती बोल रही थी। मई, सन् १७९८ में उसने मिस्र पर चढ़ाई की और तुर्क सेना को परास्त कर के उस पर कब्जा कर लिया। इस विजय के बाद भारत की ओर उसके बढ़ाव की बहुत सम्भावना थी और यह उसके लिए आसान भी थी। भारत में निजाम, टीपू और सिन्धिया आदि की फौजों में फ्रांसीसी अफसर थे। इनसे सहायता मिल सकती थी। उत्तर भारत की स्थिति भी कुछ इस प्रकार की ही थी। अफगानिस्तान का शासक जमनशाह जो अहमद शाह अब्दाली का पौत्र था, भारत की ओर आंख लगाये बैठा था। सर जान शोर के शासन-काल में वह लाहौर तक चढ़ आया था ( १७९६ )। इस लिए ही जान शोर ने अवध और रूहेलखण्ड पर अपना शिकंजा कस लिया था क्योंकि जमनशाह के आगे बढ़ने की पूरी सम्भावना थी। अवध का नवाब आसफुद्दौला अंग्रेजों से त्रस्त था। रुहेलखण्ड को बरबाद करने में अवध के नवाब शुजाद्दौला की वारेन हेस्टिंग्ज ने मदद की थी, रुहेले ( पठान ) यह भूले न थे। यहां का सरदार गुलाम मुहम्मद जमनशाह की सहायता प्राप्त करने के लिए स्वयं काबुल गया था। अंग्रेजों से मुक्ति दिलाने की प्रार्थना आसफुद्दौला ने भी जमनशाह से की थी। इन कारणों से यह अफवाह जोर पकड़ रही थी कि जमनशाह भारत पर चढ़ाई करेगा। जैसा कि कहा जा चुका है सन् १७९६ मे वह लाहौर तक आया भी था लेकिन आंतरिक उपद्रव के कारण वह आगे न बढ़ सका और अफगानिस्तान वापस लौट गया लेकिन मौका मिलते ही वह पुनः १७९८ में लाहौर पहुँच गया। इस बार पुनः उसके सौतेले भाई महमूद ने ईरान के शाह से मदद प्राप्त कर के अफगानिस्तान में उग्र उपद्रव खड़ा कर दिया। जमनशाह पुनः लौटा गया। सन् १८०१ में महमूद उसे गद्दी से उतारने में सफल हो गया और उसने जमनशाह को अन्धा बना दिया। इस बार जमनशाह एक सिख सरदार के पौत्र रणजीतसिंह को लाहौर का राजा नियुक्त कर गया था।

उपर्युक्त दो खतरों के अतिरिक्त वेलजली के सामने तीसरा संकट धन के अभाव के रूप में था। कम्पनी की सेना का खर्च बहुत बढ़ गया था। खर्च की पूर्ति नहीं होती थी।

वेलजली का ध्यान उत्तर से पहले दक्षिण की ओर आकृष्ट हुआ क्योंकि नैपोलियन के आक्रमण का खतरा इधर ही था। इस सम्भावित संकट का सामना करने के लिए उसने फ्रांसीसियों की शक्ति को तोड़ने के उपाय पर ध्यान दिया। इस सिलसिले में स्वाभाविक रूप से निजाम और टीपू उसके

सामने आ गये। अंग्रेजी फौज के खर्च की समस्या हल करने का जो उपाय उसने ढूढ़ा, वह बहुत कारगर साबित हुआ। उसके फलस्वरूप न केवल रुपयों की समस्या हल हुई बल्कि अंग्रेजों का साम्राज्य भी बढ़ गया। यह उपाय सहायक संधि-प्रणाली ( सब्सिडियरी एलायंस ) के नाम से प्रसिद्ध है। इस सन्धि को स्वीकार करने वाली रियासत अंग्रेजों की अनुमति के बिना न तो किसी से युद्ध कर सकती थी, न सन्धि कर सकती थी। अपने खर्च पर उसे अपने राज्य में अंग्रेजी सेना भी रखनी पड़ती थी और दरबार में अंग्रेज रेजिडेण्ट को स्थान देना पड़ता था। ऐसी रियासत से कर अलग से वसूल किया जा सकता था।

किसी की विवशता का लाभ उठा कर तथा किसी को मक्कारी और फरेब के जाल में फँसा कर वेलजली ने इस संधि को लादना शुरु किया। इस प्रकार उसने तंजोर, सूरत और कर्नाटक आदि पर पूरी तरह अधिकार जमा लिया। तंजोर में जब गद्दी के लिए झगड़ा शुरु हुआ तो वेलजली ने तंजोर के राजा को फांस लिया। उसने वेलजली से सन् १७९९ में सन्धि की। यही दशा सूरत और कर्नाटक की भी हुई। अवध के नवाब पर दबाव डाल कर तथा जमनशाह के आक्रमण की सम्भावना बता कर वेलजली ने उसे भी लूटा और सन् १८०१ में नवाब को सन्धि करने के लिए विवश किया जिसके फलस्वरूप रूहेलखण्ड और गोरखपुर के इलाके पर अंग्रेजों का पूरी तरह कब्जा हो गया। इस प्रकार अंग्रेजी सेना के खर्च की समस्या उसने हल की। भारतीय रियासतों के शासकों पर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। अंग्रेजों का संरक्षण प्राप्त कर के वे काहिल हो गये। अंग्रेज रेजीडेण्टों ने भी उन्हें ऐयाश और निकम्मा बनाने में कोई कोर-कसर उठा न रखी। उनमें स्वाभिमान की भावना का अन्त आप से आप होने लगा। उपर्युक्त पूरा इलाका अनायास ही अंग्रेजों के अधिकार में आ गया।

वेलजली की निगाह मुख्यतः हैदराबाद के निजाम और टीपू पर थी। टीपू अंग्रेजों का प्रसिद्ध शत्रु था। मराठों के विरुद्ध युद्ध में सहायता न मिलने के कारण निजाम भी बुरी तरह चिढ़ा हुआ था। दोनों फ्रांसीसियों से मदद ले रहे थे। टीपू ने फ्रांसीसियों से मदद प्राप्त करने के लिए देश से बाहर भी उनके पास संदेश भेजा था। इन्हें लक्ष्य बना कर वेलजली ने कूटनीति से काम लिया।

निजाम की फौजों में रेमां नामक फ्रांसीसी सेनाधिकारी था। वेलजली ने किर्कपैट्रिक और मालकम नामक अंग्रेज दूतों की सहायता से निजाम के वजीर को फांस लिया और षड्यन्त्र रच कर धीरे-धीरे उसने निजाम की सेना

से रेमां की टुकड़ियों को वजीर द्वारा छुँटवा दिया। एक ओर उसने यह किया और दूसरी ओर चुपके-चुपके मद्रास से अंग्रेज सेना हैदराबाद की सीमा पर भेज दी। मौका देखकर उसने निजाम से कहलाया कि या तो निजाम शेष फ्रांसीसी फौजों को तोड़ दे और उनकी जगह अपने खर्च पर अंग्रेज सेना को रखे, या युद्ध के लिए तैयार हो जाय। दुर्भाग्यवश इस समय माधवराव ऐसा पेशवा न था। महाद जी सिंधिया ऐसा साहसी सरदार भी न था। बाजीराव द्वितीय की मूर्खता के कारण नाना फड़नवीस बेकार सा हो गया था और मराठों में आपसी फूट ने जोर पकड़ रखा था। फलतः वेलजली की कूटनीति काम कर गयी। निजाम ने घुटने टेक दिये। सन् १७९८ के सितम्बर मास के आरम्भ में उसने अंग्रेजों की शर्त पर उसने सन्धि कर ली।

अब रह गया टीपू। वेलजली ने टीपू पर अंग्रेजों के विरुद्ध षडयन्त्र-रत रहने का दोषरोप करते हुए सीधे सीधे अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार करने को उससे कहा। स्वाभिमानी टीपू भला यह क्यों स्वीकार करता। उसने इनकार किया। वेलजली ने उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। अंग्रेज सेनापति हैरिस तथा वेलजली के भाई आर्थर वेलजली ने निजाम की सेना के साथ पूर्व से मैसूर पर चढ़ाई की। स्टुअर्ट के नेतृत्व में बम्बई की सेना पश्चिम की ओर से सूरत की ओर बढ़ी। अकेला टीपू यों ही कमजोर था। इस पर उसका सेनापति पूर्णिया उसके राज्य का हिस्सा प्राप्त करने तथा वहाँ का स्वतन्त्र शासक बनने के लोभ में फँस कर अंग्रेजों के हाथ बिक गया। उसके कुछ वफादार नौकरों ने भी इस आड़े समय में उसके साथ विश्वासघात किया और अंग्रेजों से मिल गये। लेकिन वीर टीपू फिर भी नहीं झुका। उसने जम कर अंग्रेजों का मुकाबिला किया। हैरिस की सेना ने उसे मलवल्ली में पराजित किया। तब टीपू अपनी राजधानी श्रीरङ्गपट्टम् में चला गया। अंग्रेजों ने यहाँ भी उसे घेर लिया और पुनः उसके समक्ष सन्धि का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। भाग्य को अपने विपरीत देख कर भी टीपू ने अपमानित होना और कायर बन कर अपनी मा की कोख को लज्जित करना स्वीकार न किया। उसने युद्ध जारी रखा। राजधानी का घेरा जब असह्य हो गया तो उसने किले का फाटक खोल दिया और फाटक पर लड़ते लड़ते वीरता पूर्वक स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर ४ मई, सन् १७९९ को अपना प्राण उत्सर्ग कर दिया।

इस पृष्ठ-भूमि में ही अदूरदर्शी बाजीराव द्वितीय ने जिसने फसाद न खड़ा किया होता तो सम्भव था टीपू के युद्ध में मराठे हस्तक्षेप करते, सन् १८०२ में अंग्रेजों से बेसिन की सन्धि की और उनके आगे घुटने टेक दिये।

इस सन्धि की आलोचना करते हुए सिन्धिया ने कहा था कि पेशवा ने मेरी पगड़ी उतार ली और होलकर ने घोषित किया था कि पेशवा ने अंग्रेज जातिके हाथ मराठों को बेच दिया। लेकिन दुर्भाग्य, ये दोनों भी लम्बे अर्से तक एक दूसरे का साथ न दे सके!

बड़ौदा का आनन्दराव गायकवाड़, बाजीराव पेशवा से पहले ही मार्च में अंग्रेजों के सामने घुटने टेक चुका था। वह गोविन्दराव गायकवाड़ का पुत्र था। सन् १८०० में पिता की मृत्यु के बाद वह गद्दी पर बैठा। वह स्वयं कमजोर था इसलिए अपनी रक्षा के लिए उसने अंग्रेजों का सहारा लिया और बड़ौदा में अंग्रेजी सेना की छावनी डलवा दी।

चंद महीनों में ही अंग्रेजों का साम्राज्यवादी पंजा कस गया। तब बाजीराव को अपनी भूल मालूम हुई। लेकिन तीर हाथ से निकल चुका था। अप्रैल, सन् १८०३ में आर्थर वेलजली की सेना पूना में अपना खेमा गाड़ कर अपने पैर जमा चुकी थी। बाजीराव का अस्तित्व दो कौड़ी का था। नाम को वह पेशवा था लेकिन हुकूमत आर्थर वेलजली की थी। उस समय बाजीराव को अपनी स्थिति का ज्ञान हो गया जब उसने उत्तर भारत से सिंधिया को तथा नागपुर से भोंसले को परामर्श के लिए पूना बुलाया लेकिन अंग्रेजों ने दोनों को पूना में न घुसने की चेतावनी खुले शब्दों में दे दी। इतना ही नहीं, उन्होंने भोंसले और सिंधिया को अपनी-अपनी सेनाएँ पृथक कर लेने को भी कहा। दोनों ने जब इससे इनकार कर दिया तो उसने उन पर चारों ओर से चढ़ाई कर दी। उत्तर भारत का अंग्रेज सेनापति लेक सिंधिया के इलाके को ध्वंस करने के लिए मोर्चेबन्दी करने लगा और दक्षिण भारत का अंग्रेज सनापति आर्थर वेलजली अहमदाबाद को लक्ष्य कर के पूना से आगे बढ़ा। एक सेना उड़ीसा में घुसी और दक्षिण के मराठों को दबाये रखने के लिए दूसरी अंग्रेज सेना मैसूर में तैनात कर दी गयी।

इस आड़े समय में भी होलकर पारस्परिक द्वेष को न भुला सका। होलकर वंश के अधीन पहले के जिलों पर ( बुन्देलखण्ड, हरियाना आदि ) आधिपत्य जमाने की लालच और सिंधिया से अपनी दुश्मनी के कारण वह चुप ही बैठा रहा। एक ओर यह स्थिति थी, दूसरी ओर सिंधिया के यूरोपीय सेनाधिकारियों ने जिनमें फ्रांसीसी मुख्य थे, एक-एक कर विश्वासघात किया और अपनी सेना के साथ अंग्रेजों से मिलते गये। फलतः लेक ने अलीगढ़ के पास के इलाके में विजय पताका फहरायी और आर्थर वेलजली अहमदाबाद पर कब्जा कर के औरंगाबाद की ओर बढ़ा। अलीगढ़ से बढ़ कर लेक दिल्ली पर

जा धमका। सिंधिया का फ्रांसीसी अफसर जमुना के इस पार पराजित हुआ। मुगल बादशाह पुनः अंग्रेजों के चङ्गुल में फँस गया। उस पर नजर रखने के लिए आक्टरलोनी नामक अँग्रेज सेनाधिकारी को उसके दरबार में रेजिडेण्ट नियुक्त कर के लेक आगरे की ओर बढ़ा। अक्टूबर में उसने आगरे पर अंग्रेजों का झण्डा गाड़ दिया। इसके बाद अलवर रियासत के लासवाड़ी नामक स्थान पर उसने सिंधिया की फौजों को पराजित किया। सिंधिया की शक्ति छिन्न-भिन्न हो गयी। उसने अंग्रेजों से सन्धि ( सुर्जी अर्जुनगांव ) कर ली। यही हाल भोंसले का भी हुआ। उड़ीसा के पुरी, कटक आदि स्थानों पर अँग्रेजों ने कब्जा कर लिया। भोंसले की सेना अंग्रेजों का मुकाबिला न कर सकी। अरगांव में पराजित होने के बाद दिसम्बर, सन् १८०३ में भोंसले ने अंग्रेजों से सन्धि कर ली ( देवगांव की सन्धि )।

वस्तुतः असईगांव (बरार ) के युद्ध में पराजय के बाद ही सिंधिया और भोंसले की हिम्मत पस्त हो गयी थी। २३ सितम्बर, सन् १८०३ को इस स्थान पर भोंसले और सिंधिया की संयुक्त सेना से अंग्रेजी सेना का मुकाबिला हुआ। सिंधिया और भोंसले स्वयम् इस युद्ध में नहीं थे। सेना के सेनाधिकारियों ने धोखा दिया। मराठा पराजित हुए। सिंधिया की सेना के तोपखाने तथा भोंसले की पैदल सेना का काफी अच्छा अंश इस युद्ध में तहस-नहस हो गया। असल में सिंधिया का तोपखाना ही अंग्रेजों की आँख में गड़ता था।

सिंधिया और भोंसले को समाप्त करने के बाद स्वाभाविक रूप में वेलजली की नजर होलकर की ओर घूमी क्योंकि "उसका यह मत था कि भारत में सर्वोच्च शक्ति अँग्रेजों की हो और भारतीय राजा अपनी राजनीतिक सत्ता अँग्रेजों के हवाले कर दें" और नाम मात्र के राजा रह कर पेंशन से अपनी गुजर करें। मराठा सरदारों को समझ होती तो सहायक संधि की उसकी नीति का विश्लेषण कर के ही उन्होंने वेलजली का इरादा समझ लिया होता। लेकिन उन्हें आपस में ही लड़ने से फुर्सत न थी, अँग्रेजों को घात पर वे विचार करते तो कैसे करते।

यशवंतराव होलकर, दौलतराव सिंधिया अथवा भोंसले से अधिक समझदार और चुस्त था। इन दोनों की पराजय के बाद उसे अँग्रेजों की ओर से आशंका हुई और उन्हें परखने की गरज से उसने अपने राज्य के हाथ से निकले हुए इलाकों की माँग लेक से की। ये इलाके उसे नहीं मिले तो उसकी आंखें खुल गयी। सिंधिया की सेना के यूरोपीय अफसरों की गद्दारी वह देख चुका था, अतः उसने अपनी सेना के अंग्रेज अफसरों की ओर भी ध्यान दिया तो उसे मालूम

हुआ कि वे भीतर ही भीतर षड्यंत्र रच रहे हैं। यह देख कर उसने तीन अँग्रेजों को फाँसी के तख्ते पर झुला दिया और स्वयं युद्ध की तैयारी करने लगा। इस बार उसने माधवराव और नाना फड़नवीस के पुराने इरादों से प्रेरणा ली और यह चेष्टा आरम्भ की कि सब मिल कर—राजपूत, जाट, सिख, अफगान और रुहेला आदि—अंग्रेजों का सामना करें और भारत में उनकी सत्ता जमींदोज कर दें। वह स्वयं जयपुर में जम गया। आरम्भ में उसे अन्य राजाओं को मिलाने में सफलता न मिली। स्वतः सिंधिया की फौज ने उसके विरुद्ध युद्ध किया। कुछ काल तक बहादुरी के साथ युद्ध कर के और अंग्रेजों को कई स्थानों पर परास्त कर के वह कमसे कम मराठों, रुहेलों और चंद राजपूत राजाओं के स्वाभिमान को जगाने में सफल हो गया। लेकिन दुर्भाग्य, यह सफलता अंत तक बनी न रही!

होलकर की पेशबन्दी देखकर लार्ड वेलजली ने उससे भी युद्ध ठानने का निश्चय किया। उसने अपने भाई आर्थर वेलजली को दक्षिण से आगे भेजने की चेष्टा की और लेक को दोआब में यशवन्तराव की ओर बढ़ाना चाहा लेकिन अपने सेनाधिकारियों की अनिच्छा तथा इस भय के कारण कि महाराष्ट्र और रुहेलखण्ड में बगावत न हो जाय, वह तत्काल ऐसा न कर सका। सन् १८०४ के पूर्वार्द्ध में लड़ाई ठन ही गयी। लेक ने कर्नल मौनसन के अधिनायकत्व में चुनी हुई अंग्रेज सेना राजपूताने की ओर भेजी। उधर आर्थर वेलजली ने कर्नल मरे के नेतृत्व में गुजरात से सेना भेजी। योजना यह बनायी गयी कि दोनों सेनाएँ मालवा में सिन्धिया की सेना से मिलेंगी और संयुक्त रूप में यशवन्तराव पर आक्रमण कर के उसको कुचल देंगी। होलकर ने इसका जवाब बड़ी सतर्कता से दिया। वह जयपुर से हट गया। कर्नल मौनसन मैदान साफ पाकर आगे बढ़ता गया। उसने जयपुर के राजा को मिला कर काफी इलाके पर कब्जा कर लिया। मरे इन्दौर की ओर बढ़ता गया। सिन्धिया के सेनापति बापू सिन्धिया ने मालवा के कई नगरों पर कब्जा कर लिया। यशवन्तराव ने यह सब बरदास्त किया और अंग्रेज सेना को काफी भीतर खींच ले गया ताकि उसे नयी सहायता तत्काल न मिल सके। जब यह हो गया तो उसके छापामार सवारों ने जालौन-झाँसी (बुन्देलखण्ड) के मार्ग में अंग्रेजों की एक छावनी पर पुराने ढङ्ग से छापा मारा। २१ मई, सन् १८०४ में वहाँ के अंग्रेजों के टुकड़े-टुकड़े उड़ा कर उनकी तोपों पर उसने अधिकार जमा लिया। उधर मालवा में जब मौनसन और लेक की सेनाएँ मिलना चाहती थी, होलकर स्वयं सीना तान कर खड़ा हो गया।

बहुत दूर तक बढ़ा हुआ मौनसन पीछे लौटा। इस समय उसे मालूम हुआ कि लम्बा रास्ता तय करके निकल जाना आसान नहीं होता। होलकर ने उसे बुरी तरह खदेड़ा। मौनसन अपने हथियार और तोपें नष्ट-भ्रष्ट कर के भागता हुआ किसी प्रकार जुलाई में जयपुर और बूदीं के इलाके में पहुँच सका। भूलना न चाहिये कि कर्नल लेक ने उसके साथ चुनी हुई अंग्रेज सेना भेजी थी। यह तो नष्ट हुई ही साथ ही उसकी जान भी सांसत में पड़ गयी। लेक की भेजी हुई कुमक उसे जयपुर और बूँदी के इलाके के बीच में न मिल गयी होती तो शायद वह स्वयं भी भाग कर न बच पाता। उसे पलायति देखकर कर्नल मरे की हिम्मत भी पस्त हो गयी। वह मालवा के पश्चिम से वापस लौटा और यशवन्तराव को मौनसन का पीछा करते देख कर उसने इन्दौर पर कब्जा कर लिया।

होलकर को विजयी देखकर बापू सिन्धिया को भी समझ आ गयी। उसने अंग्रेजों का साथ छोड़ा और होलकर से जा मिला। होलकर की शक्ति बढ़ गयी। मौनसन की हिम्मत बिलकुल पस्त हो गयी। लेक द्वारा भेजी गयी नयी सेना को पा कर भी वह होलकर से मोर्चा लेने की हिम्मत न कर सका और जयपुर की ओर भागा। इधर उसके मित्र दौलतराव सिन्धिया की सेना सदाशिव भास्कर के नेतृत्व में डटी थी। लेकिन अँग्रेजों का भाग्य मन्द था। सदाशिव भी होलकर से जा मिला। ठीक इसी समय मौनसन की सेना के भारतीय सिपाहियों ने भी बगावत कर दी। अँग्रेजों के शासन-काल में यह पहला अवसर था जब कि भाड़े के टट्टू कहे जाने वाले भारतीय सिपाहियों ने भी बगावत की थी। मौनसन का भाग्य अधर में था। मौत नजदीक आकर भी दूर हट गयी। वह भाग कर आगरा पहुँच ही गया।

होलकर ने अपना अभियान जारी रखा। वह बढ़ कर भरतपुर पहुँचा। यहाँ का राजा रणजीतसिंह पहले मराठों के मातहत था लेकिन एक वर्ष पूर्व अँग्रेजों ने इधर मराठों की सत्ता हथिया ली थी। यशवन्तराव ने उसे पुनः अपनी ओर मिला लिया और उसे लेकर मथुरा पर चढ़ दौड़ा। अँग्रेज सेना मथुरा छोड़ कर भाग गयी। इसी समय दौलतराव सिन्धिया यशवंतराव से हाथ मिलाने की गरज से स्वयं मथुरा की ओर बढ़ चला। उसके आने के पूर्व ही होलकर दिल्ली की ओर चढ़ दौड़ा। तब कानपुर छोड़कर लेक को भी दिल्ली की ओर आना पड़ा। दिल्ली में आक्टलोनी की सेना से होलकर का मुकाबिला हुआ। वह दिल्ली पर कब्जा न कर सका। लेक की सेना और आक्टरलोनी की सेना के बीच में न पड़ने की गरज से तब वह दिल्ली छोड़ कर दोआब में घुस

गया। लेक ने बड़ी तेजी से उसका पीछा किया। युद्ध का पासा पुनः पलटा। डीग और फर्रुखाबाद में होलकर को पराजय का मुँह देखना पड़ा। वह भरतपुर चला गया। यहाँ के किले में उसने शरण ली। लेक ने जनवरी, सन् १८०५ में भरतपुर के किले को जा घेरा। अँग्रेजों ने चार बार इस ऐतिहासिक किले पर हमला किया लेकिन वे इसका कुछ न बिगाड़ सके। यहाँ भारतीयों ने जिस शौर्य और साहस का परिचय दिया, वह इतिहास की अद्भुत घटना है।

मार्च, सन् १८०५ में अंग्रेजों ने भरतपुर के राजा रणजीतसिंह से सन्धि कर ली। इसके अनुसार यशवन्तराव होलकर को यहाँ से जाने का मार्ग मिल गया। दुर्भाग्य वश दौलतराव सिंधिया समय से भरतपुर न पहुँच पाया। मार्ग में ही उसे सन्धि होने तथा यशवंतराव द्वारा भरतपुर छोड़ देने की सूचना मिली। उसने ब्रज और बुन्देलखण्ड की सीमा पर होलकर से मुलाकात की। इस बात के पर्याप्त प्रमाण इतिहास में मिलते हैं कि अपने अंग्रेज सेनापति फिलोस की हीला हवाली के कारण ही सिंधिया समय से भरतपुर न पहुँच पाया था।

होलकर और सिन्धिया अजमेर की ओर चले आये। इनकी संयुक्त ताकत तथा आक्रमण करने की क्षमता देख कर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कान खड़े हो गये। भरतपुर के ऐतिहासिक युद्ध में कर्नल लेक की विफलता से यों ही कुहराम मचा हुआ था। इधर पेशवा और भोंसले भी होलकर और सिन्धिया से मिलने की चेष्टा करने लगे। यह सब देखकर लार्ड वेलजली को वापस बुला लिया गया और जुलाई, सन् १८०५ में लार्ड कार्नवालिस गवरनर जेनरल बना कर पुनः यहाँ भेजा गया। वह बूढ़ा था। मराठों ने पुरानी भूल न दोहरायी होती तो वे जम कर अंग्रेजों से लोहा ले सकते थे। होलकर के पराक्रम ने उत्तर और मध्य भारत की अनेक सोयी हुई रियासतों को जगा दिया था। मराठों की शक्ति पुनः संघटित हो रही थी। आसन्न विजय के इन क्षणों में सिन्धिया पुनः अपनी बुद्धि का सौदा कर बैठा। ग्वालियर और जयपुर का आधिपत्य उसे सौंपने का प्रस्ताव कार्नवालिस ने इस शर्त के साथ पेश किया कि वह होलकर का साथ छोड़ देगा दौलतराव सिन्धिया ने इसे मान लिया। होलकर ने फिर भी साहस न छोड़ा। पंजाब की रियासतों तथा काबुल के शाह से सहायता प्राप्त कर के अंग्रेजों से भिड़ने का मंसूबा बांध कर वह पंजाब की ओर बढ़ गया। लेक ने अपनी सेना के साथ उसका पीछा किया। होलकर अमृतसर पहुँचा। उसने सिखों की मदद प्राप्त करने की कोशिश की लेकिन राजा रणजीतसिंह की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा—पंजाब पर शासन की लालसा—के कारण वह असफल रहा। तब वह काबुल की ओर बढ़ा। इसी समय लेक ने उसे धोखा देकर फंसा लिया।

उसने उसका इलाका लौटा देने का वादा किया। होलकर वापस लौट आया और दिसम्बर में उसने अंग्रेजों से संधि कर ली। इसके पूर्व ही अक्टूबर में लार्ड कार्नवालिस बीमारी के कारण गाजीपुर में मर चुका था। उसके स्थान पर मद्रास का गवरनर जार्ज बार्लो स्थानापन्न गवरनर जेनरल बना दिया गया था। एक वर्ष तक वह इस पद पर रहा। इसके पश्चात लार्ड मिण्टो सन् १८०७ में गवरनर जेनरल के पद पर नियुक्त हुआ।

इस समय तक भी मराठे कमजोर न हुए थे। 'भारत-स्थित योग्यतम ब्रिटिश अधिकारियों में से एक चार्ल्स मेटकाफ ने सन् १८०६ में लिखा था—भारत में केवल दो शक्तियाँ हैं—ब्रिटिश और मराठा। अन्य प्रत्येक राज्य इनमें से किसी एक का प्रभुत्व स्वीकार करता है। हमारे द्वारा छोड़ी गयी एक-एक इंच भूमि पर मराठों का ही अधिकार होगा। १ इससे स्थिति स्पष्ट हो जाती है। दोनों शक्तियों में फर्क सिर्फ इतना ही था कि अंग्रेजों की शक्ति संघटित थी और मराठों की शक्ति बिखरी हुई थी। इस बात को ही लक्ष्य करके वेलजली के कार्यों की समीक्षा करते हुए मुनरो ने लिखा था—'अब हम पूर्णतः भारत के मालिक हैं। अपनी शक्ति को दृढ़ करने के लिए यदि हम उचित उपायों पर अमल करते हैं तो कोई भी हमारी शक्ति को हिला नहीं सकता।' अवश्य ही मुनरो ने यह विचार भारतीय रियासतों में अंग्रेज रेजिडेण्टों की नियुक्ति, अंग्रेज जासूसों के कार्य तथा सहायक संधि के प्रतिफल को देखते हुए प्रकट किया होगा। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने अंग्रेज रेजिडेण्टों के कार्य का उल्लेख करते हुए लिखा है—'दरबारों में मंत्रियों और अन्य अधिकारियों को घूस देना तथा उन्हें भ्रष्टाचारी बनाना इन रेजिडेण्टों का प्रमुख कार्य था। एक इतिहासकार के कथनानुसार उनका (अंग्रेजों का) जासूसी संघटन दृढ़ था। उन्हें इन दरबारों और अपने शत्रुओं की सेनाओं की गति-विधि का पूर्ण ज्ञान रहता था। जब कि अंग्रेजों के शत्रुओं को न तो यह मालूम रहता था कि अंग्रेज क्या कर रहे हैं, न यह कि वे क्या करने वाले हैं। कम्पनी के पंचमांगी निरंतर कार्य-रत रहते थे। संकट काल में या घोर युद्ध के समय वे अंग्रेजों से मिल जाते थे जिससे स्थिति में बहुत अंतर पड़ जाता था। वास्तव में युद्ध आरम्भ होने से पूर्व ही अंग्रेजों ने अधिकतर लड़ाइयां जीती। पलासी में यही हुआ। सिखों से होने वाले युद्धों तक बार बार इसकी पुनरावृत्ति होती रही।'२

१ जवाहर लाल नेहरू—'डिसकवरी आव इण्डिया'—पृष्ठ संख्या २३५.

२ ,, ,, ,, ,, ,, पृष्ठ संख्या २३८.

अंग्रेजों की शक्ति में वृद्धि की दृष्टि से सहायक संधि-प्रथा का परिणाम भी उनके अनुकूल ही रहा; क्योंकि इससे भारतीय काहिल और परमुखापेक्षी बन गये।

लार्ड मिण्टो जिस समय गवरनर जेनरल होकर आया, मुनरो साहब के कथनानुसार अंग्रेजों की शक्ति को हिलाने वाला कोई न था। इसी समय अंग्रेजों के भारतीय साम्राज्य के लिए बाहर से खतरा पैदा हो गया। यूरोप में फ्रांस के अधिनायक नेपोलियन की तूती बोल रही थी। वह यूरोप में आस्ट्रिया और प्रशिया को पराजित कर चुका था। रूस के शाह अलेक्जेंडर ने उससे संधि कर ली थी (तिलसित की संधि—सन् १८०७)। इस संधि से अंग्रेजों के लिए यूरोप और भारत, दोनों जगह खतरा उत्पन्न हो गया था। यूरोप में ब्रिटेन की सेना युद्ध-क्षेत्र में थी। रूस से नेपोलियन की संधि ने जटिल स्थिति उत्पन्न कर दी, क्योंकि रूस ने न केवल मध्य यूरोप में नेपोलियन के आधिपत्य को स्वीकार किया बल्कि नेपोलियन को ऐसी सुविधाएं देने के लिए भी वह भी तैयार दिखाई देने लगा जो आस्ट्रिया या प्रशिया से संधि कर के प्राप्त नहीं की जा सकती थीं। उसने नेपोलियन से यह वादा भी किया कि यदि ब्रिटेन ने उसकी मध्यस्थता स्वीकार न की तो वह यूरोपीय महाद्वीप में घेरा डाल कर समुद्र का रास्ता ठप करने की उसकी योजना में सहयोग देगा तथा ब्रिटेन के वाणिज्य-व्यापार के विरुद्ध युद्ध-रत होने के लिए डेनमार्क, स्वीडेन और पुर्तगाल आदि को बाध्य भी करेगा। इधर यह तय हुआ और उधर नेपोलियन ने 'सोने के देश' भारत पर जिस पर उसकी निगाह काफी अर्से से थी रूस, तुर्की और ईरान की सहायता से कंदहार, गजनी, डेरा इस्माइल खां होते हुए आक्रमण करने की योजना बनायी।

लार्ड मिण्टो ने यह खतरा देख लिया। इसकी रोकथाम करने के लिए उसने कदम उठाया। सन् १८०८ में जान माल्कम के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि मण्डल भारत से ईरान भेजा गया और दूसरा एलफिंस्टन के नेतृत्व में अफगानिस्तान। ईरान को अपनी ओर मिलाने में उसे कठिनाई न हुई। सम्भव था कि इस समय यूरोप की झंझटों के कारण नेपोलियन को पीछे न हटना पड़ता तो ईरान अंग्रेजों के चक्कर में न फंसता। कारण यह था कि सन् १८०६ में रूस ने उसे चापना आरम्भ कर दिया था। उस समय ईरान ने अंग्रेजों से मदद माँगी लेकिन मदद उसे नहीं मिली। तब उसने सहायता के लिए नेपोलियन के पास अपने दूत भेजे। मध्य यूरोप से नेपोलियन के हटने के कारण इधर अंग्रेजों की स्थिति आप से आप सुविधा-जनक हो गयी। ईरान फिर रूस से

भयभीत हुआ। तिलसित की सन्धि के कारण यह भय पहले ही उत्पन्न हो चुका था। जो थोड़ी सी आशा थी, वह नेपोलियन के हटने से टूट गयी। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक था कि ईरान दूसरे मित्र के रूप में अंग्रेजों की ओर देखता। उसने अंग्रेजों से सन्धि कर ली और बदले में अंग्रेजों ने बाहरी आक्रमण से उसकी रक्षा करने का वचन दिया।

एलफिस्टन मुलतान होकर पेशावर पहुँचा और उसने अफगानिस्तान के शाह शुजा से वहाँ मुलाकात की जिसके अधीन डेरा इस्माइल खाँ आदि था। यहां भी परिस्थितियों के कारण अंग्रेजों का पक्ष सुविधाजनक बना हुआ था। शुजा का भाई महमूद जिसने ईरान की सहायता से अपने सौतेले भाई जमनशाह को गद्दी से उतार कर (सन् १८०१) उसपर कब्जा जमा लिया था, शुजा का शत्रु बना हुआ था, क्योंकि शुजा ने भी उससे ही गद्दी छीनी थी। शुजा को यह डर था कि महमूद ईरान की मदद से फिर उसे अपदस्थ कर देगा। इस संकट का सामना करने के लिए उसे धन की आवश्यकता थी। अंग्रेजों ने धन देना स्वीकार कर लिया। निश्चय हुआ कि फ्रांसीसियों द्वारा आक्रमण होने पर शुजा उनका रास्ता रोकेगा और ईस्ट इण्डिया कम्पनी धन से उसकी सहायता करेगी।

सेटन के नेतृत्व में सिन्ध पहुँचने वाले प्रतिनिधि मंडल की बातचीत के फलस्वरूप सिन्ध के अमीरों ने भी अंग्रेजों से सन्धि कर ली। शाह शुजा के प्रभाव से मुक्ति पाने के लिए यहां के अमीर विकल थे। अंग्रेजों ने उन्हें सहायता देने का वचन दे दिया, अतः अमीरों ने सन्धि कर ली।

उपर्युक्त सन्धियां पहली ही नजर में यह स्पष्ट कर देती हैं कि दूसरों की बेवकूफी से अंग्रेजों ने लाभ उठाया और सफलता अर्जित की। ईरान और अंग्रेजों में मैत्री थी। अफगानिस्तान के शाह शुजा का भाई महमूद ईरान का दोस्त था, फिर भी इसके विरुद्ध शुजा की मदद करने का बचन अंग्रेजों ने दे दिया और शुजा ने उसपर विश्वास कर लिया! यही तमाशा सिन्ध के अमीरों से हुई सिन्ध के सम्बन्ध में भी हुआ। अंग्रेजों ने अफगानिस्तान के शाह शुजा से दोस्ती की और साथ ही शाह के विरुद्ध अमीरों की मदद करने का वचन देने में भी वे पीछे न रहे! अमीरों ने भी उन पर विश्वास भी कर लिया!

अंग्रेजों के विरुद्ध यशवंतराव होलकर के अभियान के समय पंजाब के सिख राजा रणजीतसिंह ने जो गलती की थी, अंग्रेजों के फरेब और उनकी साम्राज्यवादी आकांक्षाओं से परिचित दौलतराव सिंधिया ने वही गलती गवरनर-जेनरल मिण्टों के जमाने में दोहरायी। इस दुर्भाग्य-पूर्ण भूल के फलस्वरूप एक

नवोदित भारतीय शक्ति भी देश से विदेशियों की सत्ता दूर करने के अपने कर्तव्य से विरत हो गयी और कालांतर में इसकी भी वही दुर्गति हुई जो अन्य शक्तियों की हो चुकी थी।

अफगानिस्तान के घरेलू झगड़ों का लाभ उठाते हुए राजा रणजीतसिंह ने धीरे-धीरे पश्चिमी पंजाब पर (सतलज से पश्चिम) पूर्ण अधिकार स्थापित कर लिया था। पूर्व के इलाकों पर उसकी निगाह गड़ी हुई थी। सरहिन्द (सतलज और जमुना के बीच का क्षेत्र) प्रदेश के छोटे-छोटे शासक पहले मराठों को कर चुकाते थे। बाद में मराठों के विरुद्ध अंग्रेजों की कारवाई से वे इस भार से मुक्त हो गये थे। उनकी अपनी ताकत कुछ भी न थी। सन् १८०७ तक दो बार आक्रमण कर के इस इलाके के काफी भाग पर अपनी हुकूमत का सिक्का जमाने में राजा रणजीतसिंह सफलता अर्जित कर चुका था। शेष बचे हुए शासकों ने अँग्रेजों का मुँह देखा। ये सिख रियासतें थीं लेकिन वे आपस में संघटित न हो सकीं, फलतः रणजीतसिंह तक पहुँचने का बहाना भी अंग्रेजों को मिल गया। वास्तव में भारत के बाहर पश्चिम से आने वाले खतरे के विरुद्ध मोर्चेबन्दी करने का काम समाप्त करने के बाद स्वाभाविक रूप में अंग्रेजों की दृष्टि इधर घूमी। अन्य शक्तियों से वे मोर्चा ले चुके थे। उनकी दुर्बलताओं को भी वे समझते थे। उनके पंचमांगी इन शक्तियों के शरीर से जोंक की तरह चिपके हुए थे और रक्त पी-पीकर उन्हें दुर्बल कर चुके थे। राजा रणजीतसिंह के उत्तरोत्तर बढ़ते हुए प्रभाव के रूप में पश्चिम में एक नयी ताकत पैदा हो गयी थी, जिसकी क्षमता का अनुभव अंग्रेजों को न था। सरहिन्द के सरदारों द्वारा सहायता की याचना की जाने पर इस नयी शक्ति को परखने का मौका उन्हें अनायास ही मिल गया। लार्ड मिण्टों ने रणजीतसिंह को फोड़ने के लिए मेटकाफ नामक योग्यतम अंग्रेज अधिकारी को उसके दरबार में भेजा। मेटकाफ ने कूटनीति से काम लिया और राजा रणजीतसिंह को नेपोलियन के आक्रमण का भय दिखा कर अपनी गोटी लाल करनी चाही। लेकिन मेटकाफ की एक न चली। सरहिन्द पर कब्जा जमाने के लिए कटिबद्ध रणजीतसिंह ने मेटकाफ से साफ-साफ पूछा कि सरहिन्द पर अंग्रेजों को मेरा प्रभुत्व स्वीकार है या नहीं। मेटकाफ इस प्रश्न का उत्तर क्या देता। उसकी उड़ती हुई बातें सुनकर रणजीत-सिंह ने उसकी मौजूदगी में ही तीसरी बार सतलज नदी पार की और पूर्व में अम्बाला आदि पर अधिकार जमा लिया। संयोग वश यह वही अवसर था जब रूस के साथ हुई संधि (तिलसित की संधि) का पूरा लाभ उठाने से पूर्व ही फ्रांस का अधिनायक नोपोलियन बोना पार्ट यूरोपीय झगड़ों के कारण पीछे

लौट पड़ा था और फलतः भारत पर उसके आक्रमण का भय समाप्त हो गया था। इससे भारत की अंग्रेज शक्ति का भार हलका हो गया और उसने रणजीत सिंह से निपटने की ठान ली।

अँग्रेजों ने सरहिन्द को संरक्षित क्षेत्र घोषित किया और आक्टरलोनी के नेतृत्व में एक फौज दिल्ली से लुधियाना भेज दी। रणजीतसिंह ने भी तलवार म्यान से बाहर निकाल ली और रणक्षेत्र में ही फैसला करने का निश्चय किया। उसे आशा थी कि अँग्रेजों के विरुद्ध उसे मराठों की सहायता मिल जायगी क्योंकि प्रतिद्वन्द्विता फिर भी मराठों और अँग्रेजों में ही थी। उसने सबसे अधिक शक्तिशाली मराठा सरदार दौलतराव सिंधिया को अपनी ओर मिलाने की चेष्टा की लेकिन सफल न हो सका। अंग्रेजों के साथ गहरा संघर्ष कर के उनकी सत्ता पर आघात करने का एक और मौका सिंधिया ने खो दिया। यही भूल राजा रणजीतसिंह ने उस समय की थी जब अंग्रेजों की लालच में पड़ कर यशवन्तराव होलकर का साथ सिंधिया ने छोड़ दिया था और होलकर काबुल तथा सिखों से सहायता प्राप्त कर के अंग्रेजों को यहाँ से खदेड़ने का मंसूबा बाँध कर अजमेर से अमृतसर पहुँचा था। उस समय पंजाब पर एक छत्र प्रभुत्व की अपनी आकांक्षा के वशीभूत होकर रणजीतसिंह ने होलकर को सिखों से सहायता प्राप्त नहीं होने दी थी।

मराठों की सहायता प्राप्त न होने पर राजा रणजीतसिंह ने अंग्रेजों से सन्धि (अमृतसर की सन्धि, अप्रैल, सन् १८०९) कर ली। सन्धि की शर्तों के अनुसार, पञ्जाब में मेटकाफ की उपस्थिति में जितने इलाके उसने जीते थे, सब मुक्त कर दिये। भविष्य में सतलज को पार न करने और पूर्व की ओर न बढ़ने का वचन भी उसने अंग्रेजों को दिया। रणजीतसिंह ने जीवन पर्यन्त इस वचन का पालन किया। पश्चिम की ओर तो वह बढ़ा और काबुल तक अपनी धाक उसने जमा ली लेकिन पूर्व की ओर उसने आँख नहीं ही उठायी। महमूद द्वारा पदच्युत-किये जाने के बाद अफगानिस्तान का शाह शुजा रणजीतसिंह की ही में शरण आ गया था (१८१३)। दोनों ने पगड़ियां बदल कर भाई चारा कायम किया था। इस प्रकार ही रणजीतसिह को कोहनूर प्राप्त हुआ जिसे लूट कर नादिरशाह ले गया था। गोरखों को भी आगे चल कर रणजीतसिंह की मदद प्राप्त नहीं हुई और अंग्रेजों की ताकत क्रमशः बढ़ती गयी।

भारत में अपने साम्राज्य की रचना का पूरा प्रबन्ध करने के बाद अंग्रेजों ने निकट की फ्रांसीसी नौ-आबादियों को ध्वस्त् कर के नेपोलियन को दबाना चाहा। यूरोप के अधिकतर देशों पर कब्जा कर के नेपोलियन अंग्रेजों के व्यापार को

चौपट करने के उद्देश्य से समुद्र में आर्थिक नाकेबंदी करने की योजना कार्यान्वित कर रहा था। पूर्व में बाबाँ और मारिशस आदि द्वीपों से भारतीय समुद्र मे फ्रांसीसी अंग्रेजों के जहाजों पर छापा मारते थे। इस स्थिति का अन्त करने के लिए मिण्टो ने लगभग पाँच हजार सैनिक बाबाँ मेंउ तार दिये और इस फ्रांसीसी बस्ती की राजधानी सेण्ट डेनिस पर कब्जा कर लिया। नवम्बर के अंत में मेजर जेनरल एबर क्रोम्बाई के नेतृत्त्व में दस हजार सैनिकों ने मारिशस पर चढ़ाई की और उस पर भी कब्जा कर लिया। अमृतसर की संधि के बाद एक वर्ष के अन्दर ये घटनाएँ घटीं। तब मिण्टो का ध्यान जावा की ओर आकृष्ट हुआ। मार्च, सन् १८११ में जावा पर चढ़ाई की तैयारी की जाने लगी और इस मास का अन्त होने से पूर्व ग्यारह हजार सैनिकों ने मद्रास के आस-पास छावनी डाल दी। १८ अप्रैल को अभियान आरम्भ हो गया। अगस्त के पहले सप्ताह में अंग्रेज सेना किनारे पर उतार दी गयी। जावा का गवरनर जैर्सेस बटाविया में एक टुकड़ी छोड़ कर अपने दस हजार सैनिकों की मुख्य सेना के साथ कार्नेलिस में जो प्राकृतिक दृष्टि से बीहड़ स्थान है, डट गया। युद्ध हुआ। जेमेस काफी लड़ा लेकिन अन्ततः कर्नल जिलेस्पी के अधीन सेना ने उसे बुरी तरह खदेड़ा। पराजय निश्चित देख कर जेसेस ने संधि का सन्देश भेजा। १६ सितम्बर को एक समझौते पर दोनों पक्ष से हस्ताक्षर हुए। फलतः जावा और पड़ोस के मदुरा द्वीप पर अंग्रेजो का कब्जा हो गया। मदुरा अन्तिम द्वीप था जिसपर आरम्भ से ही फ्रांसीसियों का अधिकार था।

इस प्रकार भारतीय समुद्र पर भी अंग्रेजों का एकाधिकार कायम हो गया। इन घटनाओं के दौरान मे भारत मे कई छोटी-मोटी घटनाएँ घटीं। अन्धा मुगल सम्राट सन् १८०६ में चल बसा। उसका पुत्र अकबर शाह नाममात्र की बादशाहत का उत्तराधिकारी हुआ। वह अपनी शक्ति बढ़ाने को इच्छुक था लेकिन शीघ्र ही उसे ज्ञात हो गया कि उसकी आकांक्षा बे बुनियाद है उसे किसी से मदद नहीं मिल सकती।

दूसरी घटना का उल्लेख इतिहास में कम मिलता है लेकिन यह महत्वपूर्ण घटना थी। त्रावनकोर की रियासत में अंग्रेज रेजिडेण्ट की हरकतों से ऊब कर वहाँ के दीवान ने 'हिन्दू धर्म और हिन्दू राज' की स्थापना के नाम पर बगावत कर दी। जनता ने उसका साथ दिया और वह स्वतः बागी हो गयी। इस जन-विद्रोह के फलस्वरूप कम से कम एक अंग्रेज अफसर और तीस यूरोपीय सैनिक मौत के मुँह में चले गये। अंग्रेजों ने बड़ी-निर्दयता से इस विद्रोह को दबा दिया और रियासत को पूर्णतः गुलाम बना लिया।

बनारस पर वारेन हेस्टिंग्ज की चढ़ाई के समय के जन-विद्रोह के पश्चात् सम्भवतः यह पहला अवसर था जब कि जनता बागी हो गयी थी और अंग्रेजों के विरुद्ध उसने तलवार उठायी थी।

बुन्देलखण्ड में अंग्रेजों ने अजयगढ़ और कालिन्जर के इलाके पर कब्जा कर लिया। छोटे-छोटे जागीरदार अनायास ही उनके उनके चंगुल में फँस गये।

यशवन्तराव होलकर सन् १८०६ में मानसिक विकार का शिकार हो गया था। वह चिन्तित-सा रहता था। उसके राज्य की हालत बिगड़ने लगी थी। सैनिकों का वेतन बकाया पड़ गया था। बीस हजार घुड़सवारों को विघटित कर के उसने खर्च घटाने की कोशिश की लेकिन सफल न हो सका। इन घुड़सवार सैनिकों ने उसके भतीजे को होलकर परिवार का वैध उत्तराधिकारी घोषित कर के बगावत कर दी। इस दशा में भी यशवतराव ने उन्हें काबू में कर लिया। उसकी पैदल सेना और तोपखाना तब भी बना था। सन् १८११ में उसकी मृत्यु हो गयी। इस बीच उसके तथाकथित सरदार अमीर खां ने जिसे अंग्रेज इतिहासकारों ने लुटेरों का सरदार कहा है, सन् १८०६ में निजाम के इशारे पर नागपुर के राजा पर चढ़ाई कर दी थी। नागपुर यद्यपि अंग्रेजों का आश्रित न था, तथापि धाक जमाने के लिए मिण्टो ने उसकी मदद की और अमीर खां को हटाया। इतिहास में इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि अमीर खां मिण्टों के पूर्ववर्ती गवर्नर जेनरल वेलजली का गुर्गा था और उसने ही उसे होलकर के के साथ मिला रखा था। अमीर खां बाद में स्वतः बदल गया और अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध करता रहा। यशवंतराव की नाजुक हालत देख कर उसकी नियत पुनः खाम हो गयी। उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र के संरक्षक के नाम पर अमीर खां ने राज्य की बागडोर स्वयं सम्भाल ली।

मिण्टों के शासन-काल में ही नेपाल के गुर्खा बुटवल तक ( जो अवध के नवाब का परगना था ) बढ़ आये। उन्होंने बेतिया की सीमा भी पार कर ली। मिण्टों इस समस्या को सुलझाने के लिए प्रयत्नशील हुआ लेकिन इसी समय जून, सन् १८१३ में उसने अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया और उसके स्थान मार-क्विस आव हेस्टिंग्ज गवरनर जेनरल नियुक्त हुआ।

———

*

# हिमालय की सीमा से बरमा तक

**हेस्टिंग्ज की नीयत खाम—रणजीतसिंह से गोरखा मदद न पा सके—गोरखों पर चार ओर से आक्रमण—तीन अंग्रेज सेनाएं पस्त—सगौली की सन्धि—अंग्रेजी साम्राज्य का विस्तार—नागपुर में अंग्रेज सेना की छावनी——पेशवा ने युद्ध ठाना—अप्पा साहब का विद्रोह—पेंशन लेकर पेशवा ने मुँह मोड़ा—रंगून पर कब्जा—बरमा के राजा ने सन्धि की—भरतपुर की गद्दी के लिए झगड़ा—अंग्रेजों की बन आयी।**

"नेपाल के गोरखा शानदार और अनुशासित सैनिक थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की भारत-स्थित सेना के सैनिकों से वे यदि अधिक योग्य नहीं तो उनसे कम भी नहीं थे। यद्यपि उनका संघटन सामंतवादी ढंग का था, तथापि वे मातृभूमि के कट्टर भक्त थे। उसकी रक्षा के प्रश्न ने उन्हें दृढ़ लड़ाकू बना दिया था। उन्होंने अंग्रेजों को आतंकित किया लेकिन भारत में होने वाले मुख्य संघर्ष की समस्या में इससे अन्तर न आया।"*नेहरू जी का यह कथन यथार्थ है। लेकिन इसका एक दूसरा पहलू भी है। अंग्रेजों से होने वाले युद्ध के दौरान में गोरखों ने सन् १८१४-१५ में पंजाब के राजा रणजीतसिंह तथा दौलत राव सिंधिया से सहायता प्राप्त करने की चेष्टा की थी। पंजाब में रणजीतसिंह तब भी पर्याप्त शक्तिशाली था। सिंधिया के सम्बन्ध में स्वयं गवरनर जेनरल हेस्टिंग्ज ( मारक्विस ) का यह कहना था कि 'वह देशी नरेशों में सबसे अधिक शक्तिशाली था। उसके सैनिक सधे हुए थे। तोपें अच्छी और तोपची कुशल थे।' यदि पस्त हिम्मती ने इनकी कमर न तोड़ दी होती और अंग्रेजों से दृढ़ता के साथ गहरा मुकाबिला करने वाले गोरखों को इनकी सहायता प्राप्त होती तो सम्भव था कि इतिहास बदल जाता। इनके खड़्गहस्त होने पर बरमा का राजा भी चटगांव पर आक्रमण कर सकता था। फलतः अंग्रेज चारो ओर से युद्ध में फंस जाते। इतने बड़े मुल्क में चारो ओर एक साथ लड़ना उनके लिए काफी मँहगा सिद्ध होता। लेकिन न तो राजा रणजीतसिंह को सूझ आयी, न सिंधिया ही डोला। जो गलती उसने बार-बार की थी, वह इस मौके

*जवाहर लाल नेहरू—'डिसकवरी आव इण्डिया, पृष्ठ संख्या, २३८

पर भी की। सन् १८१७ में जब उसका अपना गला फंसने लगा तो उसने गोरखो से हाथ मिलाना चाहा लेकिन तीर कमान से निकल चुका था। इस वक्त तक गोरखे अंग्रेजों से संधि कर चुके थे। दूसरी बात यह भी थी कि सिंधिया का पैगाम उन तक पहुँच ही नहीं पाया। उसका पत्र अंगेजों के हाथ लग गया था।

यह पहले ही बताया जा चुका है कि वारेन हेस्टिंग्ज के जमाने में गोरखपुर और बहराइच के इलाके अवध के नवाब से अंग्रेजों को प्राप्त हो चुके थे। इनके सीमावर्ती बुटवल और शिवराज के क्षेत्र पर अधिकार के सम्बन्ध में गवरनर जेनरल बालों ( सन् १८०५ ) के समय से गोरखों और अंग्रेजों में विवाद चल रहा था। इस दावे पर विचार करने के लिए लार्ड मिण्टों के काल में दोनों ओर के प्रतिनिधि नियुक्त किये गये। अंग्रेजों का दावा था कि शिवराज पर गारखों का वैध अधिकार नहीं है। मिण्टों के जमाने में ही उनसे बुटवल और शिवराज से हट जाने को कहा गया था। लेकिन तुरंत बाद ही मिण्टों ने अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया था। सन् १८१४ में लार्ड हेस्टिंग्ज ने गोरखों को उपर्युक्त इलाके खाली करने के लिए पचीस दिनों का समय दिया और इस अवधि के बीतने पर गोरखपुर के कलक्टर ने उन पर अधिकार जमा लिया। गोरखे संधि करना चाहते थे लेकिन हेस्टिंग्ज साम्राज्य का विस्तार करने पर तुला था। उसने गोरखों से आत्म-समर्पण कराना चाहा। स्वाभिमानी गोरखे यह बरदास्त न कर सके और उन्होंने तलवार हाथ में उठा ली।

नेपाल सरकार के मन्त्री का सहायक अमरसिंह पहले से अंग्रेजों को संदेह की दृष्टि से देखता था; क्योंकि नेपाल पर चीन की चढ़ाई के समय अंग्रेजों ने उस संधि का पालन नहीं किया था जो गोरखों ने उनसे की थी। अमर सिंह ने पंजाब के राजा रणजीतसिंह का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया और अंग्रेजों से उसकी संधि को व्यर्थ बताया। नेपाल दरबार ने बदले में मलौन का गढ़ भी देना स्वीकार किया और इस सम्भावना की ओर भी संकेत किया कि सिखों की सेना के आने पर मराठे और रुहेले भी उठ खड़े होंगे। इसका लाभ उठा कर अंग्रेजों की सत्ता को समाप्त करना कठिन न होगा। रणजीतसिंह को तब तक समझ न आयी—जब तक आक्टरलोनी के नेतृत्व में गोरखों पर आक्रमण करने वाली सेना ने मलौन पर गोलाबारी नहीं शुरू कर दी ( सन् १८१५ ) और अमरसिंह संधि करके पीछे नहीं हट गया। लेकिन मौका हाथ से निकल गया था। रणजीतसिंह पश्चाताप् करके चुप रह गया।

अपमान जनक शर्तों को स्वीकार करने के लिए गोरखे जब तैयार न हुए तो अक्टूबर सन् १८१४ में हेस्टिंग्ज ने उन पर चढ़ाई करने की योजना बनायी। आक्टरलोनी ने पलासिया गांव में छावनी डाली जहां अमरसिंह सिख सेना को बुलाना चाहता था। जावा युद्ध का विजेता जिलेस्पी तराई से गोरखों को खदेड़ने के लिए देहरादून में घुसा। बनारस-गोरखपुर से तीसरी अंग्रेज सेना बुटवल होते हुए पालपा-गोरखा भेजी गयी। चौथी सेना पटना और मुर्शिदाबाद से काठमांडू की ओर भेजी गयी। एक सेना पूर्णिया में सीमा-रक्षा के लिए छोड़ दी गयी।

गोरखों ने अंग्रेजों की तीन सेनाओं का जम कर मुकाबिला किया और उनके दांत खट्टे कर दिये। गोरखपुर से पालपा की ओर बढ़ने वाली सेना का अंग्रेज सेनापति मैदान छोड़ कर भाग खड़ा हुआ। पटना–मुर्शिदाबाद की सेना को भी गोरखों ने तराई में जम कर शिकस्त दी। देहरादून से आगे बढ़ने वाला अंग्रेज सेनापति–जावा का विजेता जिलेस्पी, नेपालियों के गढ़ को घेर कर आक्रमण करते समय गोली का शिकार बना। ३१ अक्टूबर, सन् १८१४ को गोरखों की गोली ने उसका सीना चाक किया और दूसरे ही दिन अर्थात् एक नवम्बर को नेपाल के विरुद्ध बाजाप्ता युद्ध-घोषणा कर दी गयी।

आक्टरलोनी की सेना का भी सामना अमरसिंह ने जम कर किया लेकिन अंग्रेजों की बड़ी-बड़ी तोपों ने अंत में उसे विवश कर दिया। दूसरी बात यह थी कि आक्टरलोनी को बराबर कुमुक मिलती जाती थी। इस पर भी अमरसिंह ने अंग्रेजों के दांत खट्टे कर दिये। वह वीर था और साथ ही दूरदर्शी भी। बदकिस्मती यही थी कि कोशिश कर के भी वह सिंधिया और रणजीतसिंह की मदद नहीं प्राप्त कर सका। इसके बावजूद उसकी हिम्मत पस्त नहीं हुई और नेपाल दरबार ने जब देहरादून से सतलज तक का प्रदेश अंग्रेजों को दे कर उनसे संधि करने के लिए उसे लिखा तो उसने उत्तर दिया कि 'संधि की चर्चा व्यर्थ है। अंग्रेज हमारे साथ भी वैसा बर्ताव करेंगे जैसा उन्होंने मैसूर के शासक टीपू सुलतान के साथ किया।' काश्, दौलतराव सिन्धिया और रणजीतसिंह भी यह सोच पाते!

अंतत. अमरसिंह आक्टरलोनी के सामने टिक न सका। मार्च, सन्१८१६ में गोरखा युद्ध बन्द कर दिया गया। नेपाल सरकार ने अंग्रेजों से सन्धि (सगौली की सन्धि) कर ली। इसके फलस्वरूप तराई का काफी बड़ा भाग, गढ़वाल और कुमायूँ अंग्रेजों को मिल गये। अंग्रेजी राज का विस्तार हिमालय की सीमा तक हो गया।

गोरखों के पीछे हटने से भारतीय ताकतों के हाथ से वह मौका निकल गया जिसका लाभ उठा कर वे अंग्रेजों को परास्त कर सकती थीं। अंग्रेजों के प्रभुत्व का विस्तार हुआ लेकिन जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इससे भारत की शेष बची ताकतों पर कोई प्रभाव न पड़ा। गोरखों से निपटने के बाद हेस्टिंग्ज का ध्यान इनकी ओर आकृष्ट हुआ। इनमें मुख्य मराठों, पिंडारियों और सिखों की ताकते थीं।

मराठों की शक्ति के अवसान से पूर्व पिंडारियों के सम्बन्ध में विवरण प्रस्तुत करना अधिक उपयुक्त होगा, क्योंकि यह नयी शक्ति थी। इसके सम्बन्ध में अब भी अनुसंधान की काफी गुंजाइस है। अंग्रेज इतिहासकारों ने पिण्डारियों को लुटेरा, डाकू, खूनी आदि की संज्ञा प्रदान की है। लेकिन इतिहास में ऐसी बातें भी मिलती हैं जिनसे इस पर सन्देह होता है और ऐसा प्रतीत होता है कि इनकी ताकत को निर्दयता पूर्वक कुचलने के लिए ही अंग्रेजों ने उपर्युक्त बहाना ढूढ़ा और अंग्रेज इतिहासकारों ने उनकी हाँ में हाँ मिलायी।

अभी हाल में ही उत्तर प्रदेश की भारतीय स्वातन्त्र इतिहास समिति के मन्त्री श्री नन्दलाल चटर्जी को सन् १८५७ के विद्रोह से सम्बन्धित कुछ कागजात फतेहपुर में मिले थे। इनसे पता चला है कि इस विद्रोह के जमाने में हजारों डकैतों ने अपना पेशा छोड़ कर अंग्रेजों के विरुद्ध बगावत का झण्डा खड़ा किया। प्राप्त कागजात के आधार पर श्री चटर्जी ने फतहपुर के तत्कालीन कार्यकारी मजिस्ट्रेट डब्लू० जी० प्रोबिन के एक पत्र का उद्धरण दिया जो उसने १ अक्टूबर, सन् १८५७ में लिखा था। इस पत्र में लिखा गया था कि "२९ और ३० सितम्बर की रात को लगभग चार सौ डकैतों के दल ने एक राजभक्त कानूनगो के मकान पर आक्रमण किया और उसे फूँक दिया। यह उस घटनावली का शुरुआत है जिसमें डाकू देश-भक्त के रूप में सामने आये।" बाद में लिखे गये कई पत्रों में ऐसी ही घटनाओं का उल्लेख किया गया मिलता है। २४अक्टूबर, १८५७ को लिखे गये एक अन्य पत्र से श्री चटर्जी ने यह उद्धरण पेश किया था कि 'स्थानीय पुलिस इन हिंसाकारी व्यक्तियों' के आक्रमण को दबाने में असमर्थ है। डकैतों को उपद्रवमूलक क्रियाशीलता के कारण जिले का पूरा पश्चिमी भाग अराजकता की स्थिति में है और यहाँ कानून और व्यवस्था का नाम-निशान नहीं रह गया है।'*

इन पत्रों के आधार पर यह प्रश्न उठता है कि डकैत अंग्रेजों के दुश्मन क्यों हो गये? सैकड़ों, हजारों डकैतों के गिरोह कैसे बन गये? अंग्रेजों के

*अंग्रेजी दैनिक 'अमृत बाजार पत्रिका' (इलाहाबाद संस्करण) ११.१२.५५

विरुद्ध उनकी घृणा का कारण क्या था? इनकी परम्परा क्या थी? सन् १८५७ में ही ये बागी क्यों हुए और देश-भक्तों के रूप में सामने कैसे आये? ये बहुत महत्त्व के प्रश्न हैं। इनके प्रकाश में पिंडारियों की गतिविधि का अध्ययन यह सोचने को बाध्य करता है कि सन् १८५७ में देश-भक्तों के रूप में सामने आने वाले डकैतों का सम्बन्ध क्या इनसे नहीं था? पिंडारी, जिन्हें अंग्रेजों ने डाकू, ठग और लुटेरा मशहूर किया, अंग्रेजों के कट्टर शत्रु थे, यह इतिहास से सिद्ध है। यह भी स्पष्ट है कि उन्होंने अंग्रेजों से युद्ध किया। अंग्रेज इतिहासकार यह भी स्वीकार करते हैं कि जनता की सहानुभूति इनके साथ थी और इनके बारे में किसी प्रकार की सूचना अंग्रेजों को असानी से नहीं मिल पाती थी। मध्य भारत और राजपूताने में इनका विशेष दबदबा था, यह भी विवादास्पद नहीं है। इन्हीं के वंशजों ने यदि सन् १८५७ में बगावत की हो तो आश्चर्य क्या। रह गयी बात लूट मार की, सो उसका भी कारण स्पष्ट है।

पिंडारियों का यद्यपि कोई शृंखला-बद्ध इतिहास नहीं है, तथापि मराठों के प्रारम्भिक आक्रमणों के समय से इनके अस्तित्व का आभास मिलता है जब कि वे पेशवा की मदद कुछ उसी प्रकार करते थे जिस प्रकार रूमी सेना की मदद कज्जाक घुड़सवार किया करते थे। जब पेशवा ने इनकी गति-विधि का संचालन करना बन्द कर दिया तो ये विभिन्न मराठा सरदारों के साथ हो गये और कालान्तर में स्वतन्त्र रूप में सिन्धिया या होलकर की युद्ध-पद्धति को अपनाने के कारण सिन्धिया-पन्थी अथवा होलकर-पन्थी कहलाने लगे। इसके पश्चात् आपसी फूट तथा अंग्रेजों की कूटनीति के कारण मराठा सरदारों की शक्ति जब क्षीण हो गयी और वे भारी संख्या में एकत्र सैनिकों को वेतन चुका सकने में असमर्थ हो गये तो ये स्वतन्त्र हो गये तथा किसी रियासत के अधिकारी न होने के कारण अपनी जीविका के लिए संघटित रूप में लूट-मार करने लगे। इस सिलसिले में यह दिलचस्प तथा मननीय बात है कि यशवन्तराव होलकर ने सन् १८०६ के लगभग वेतन चुका सकने में असमर्थ होने के कारण अपनी सेना से लगभग बीस हजार घुड़सवारों को पृथक कर दिया था और इन घुड़सवारों ने उसके खिलाफ भी बगावत की थी। इससे जाहिर होता है कि पिंडारी वास्तव में वैसे न थे, जैसे अंग्रेजों द्वारा बताये गये। चूँकि अंग्रेजों के कारण वे जीविका-विहीन हुए और जिन जागीरों की आय से उनका भरण-पोषण होता था, उनमें से अधिकतर अंग्रेजों के कब्जे में चली गयी, अतः अपने भरण-पोषण के लिए ये लूट मार करते थे। वास्तव

में शत्रुता उनकी अंग्रेजों से थी। यदि सन् १८५७ में अंग्रेजों के विरुद्ध देश-भक्तों के रूप में बगावत करने वाले डाकुओं से इनका सम्बन्ध किसी प्रकार कायम हो सकता हो तो फिर यह तथ्य सिद्ध हो जायगा कि वास्तव में ये भारत में अंग्रेजों की हुकूमत पसन्द नहीं करते थे और लुटेरे बनने के लिए अंग्रेजों ने इन्हें बाध्य किया था।

इस सम्बन्ध में एक और भी तथ्य ध्यान देने योग्य है। पिंडारियों में मराठा और पठान आदि उन सभी जातियों के लोग शामिल थे जिनको अंग्रेजों ने लूटा-खसोटा था। अंग्रेजों के विरुद्ध इनका एक सूत्र में आबद्ध रहना भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। दूसरी बात यह है कि अंग्रेजों ने मराठों तथा स्वयं इनमें भी फूट डालने के लिए एक दो पिंडारी सरदारों को खोज लिया था। गवर्नर जेनरल लार्ड वेलजली के संकेत पर ही अमीर खाँ, यशवन्तराव होलकर के साथ लगा रहा। यह प्रसिद्ध पिंडारी सरदार यशवन्तराव होलकर को धोखा देने के लिए उसके साथ किया गया था लेकिन होलकर को अंग्रेजों के साथ वीरतापूर्वक लड़ते देख कर उसने उसके जीवन-काल में गद्दारी नहीं की। बाद में अंग्रेजों ने इसे पुनः फोड़ लिया। इसके बावजूद इस तथ्य में अन्तर नहीं पड़ता कि पिंडारी मुख्यतः अंग्रेजों के ही शत्रु थे। वे संघटित थे। काफी लम्बे अर्से तक युद्ध में भाग लेना उनका पेशा रहा। बाद में रियासतों में आश्रय प्राप्त न रहने के कारण वे स्वतन्त्र हो गये और अपने बूते पर इधर से उधर जाने लगे। चंगेज खाँ के घुड़सवार जिस प्रकार मध्य एशिया में घूमते थे, उसी प्रकार ये मध्यभारत और राजपूताने में छापे मारते थे। अंग्रेजों ने इन्हें नेस्तनाबूद करने का प्रयत्न किया था। इसके कारण इनमें उनके प्रति घृणा थी। कोन कह सकता है कि सन् १८५७ में बगावत करने वाले डकैतों का इन घटनाओं से कोई सम्बन्ध नहीं ही था?

अस्तु, सन् १८१६ के लगभग पिंडारियों पर दक्षिण में आक्रमण हुआ। उन्होंने बदला चुकाने के लिए आंध्र के तटवर्ती इलाकों पर कब्जा कर लिया। उन्होंने मध्यभारत, मालवा, गुजरात, राजपूताना और बिहार के दक्षिणी जिलों को भी रौंदा। लार्ड हेस्टिंग्ज ने जब यह देख लिया कि अमीर खां ऐसे गुर्गे इनकी ताकत को विघटित नहीं कर सकते तो उसने इनका अन्त करने के लिए एक लाख तेरह हजार सैनिकों की विशाल सेना एकत्र की। आधी सेना का नेतृत्व संभाल कर वह स्वयं उत्तर भारत की ओर बढ़ा और आधी सेना सेनाधिकारी सर टामस हिसलौप की कमान में देकर, उसे उसने दक्षिण भारत में भेजा। इस

प्रकार पिंडारियों की शक्ति का अन्त हो गया। अमीर खाँ ने अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार कर ली। अंग्रेजों ने उसे टोंक का इलाका दे दिया।

इस जमाने की यह घटना भी कम आश्चर्य जनक नहीं है कि जिस पेशवा बाजीराव (द्वितीय) ने अंग्रेजों से बेसिन की संधि कर के मराठों का नाक कटाया, वह भी अंग्रेजों का कट्टर शत्रु हो गया और जो उसकी इस कारवाई से बहुत क्षुब्ध हुए थे, वे मराठा सरदार साहस छोड़ बैठे। यशवंतराव होलकर की मृत्यु हो चुकी थी। उसके पुत्र के नाम पर शासन पर स्वयं कब्जा जमाने वाला अमीर खाँ अंग्रेजों से मिल कर विश्वासघाती हो गया था। होलकर की सेना व्यवहारतः नेतृविहीन सी हो गयी थी। इस आड़े वक्त में अमीर खां ने ही उस पर चढ़ाई कर दी। उज्जैन के पास महीदपुर में दिसम्बर, सन् १८१७ में दोनों ओर की सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। होलकर के स्वामी भक्त सेनाधिकारी रोशन बेग ने जो तोपची सेना का सिपहसालार था, बड़ी बहादुरी से युद्ध किया। लेकिन अमीर खां के दामाद ने इस मौके पर उसकी पीठ में छुरा भोंका और लड़ाई के मैदान में ही होलकर की सेना का साथ छोड़ कर वह अमीर खां से जा मिला। होलकर की सेना ने बाध्य होकर संधि कर ली। इस ओर से राजस्थान के इलाके पर अधिकार का दावा तो त्याग ही दिया गया, साथ ही अंग्रेजों का संरक्षण भी स्वीकार कर लिया गया (मंदसोर की संधि)।

रघुजी भोंसले द्वितीय का उत्तराधिकारी अप्पा साहब पहले ही अंग्रेजों के चंगुल में फँस चुका था। सन् १८१६ में वह भी अंग्रेजों का संरक्षण स्वीकार कर चुका था। इसका लाभ उठा कर अंग्रेज सेना ने नागपुर में छावनी डाल दी, क्योंकि इससे न केवल भोंसले पर ही अंग्रेजों का शिकंजा कस गया बल्कि होलकर और सिंधिया भी दक्षिण की ओर से अंग्रेज सेना के दबाव में पड़ गये। अंग्रेजों ने अप्पा साहब को खूब चूसा और उसे इतना पस्त किया, कि वह मुक्ति पाने के लिए आकुल हो उठा। इसी समय पेशवा के दरबार में मौजूद अंग्रेज रेजिडेण्ट एलिफिस्टन ने लार्ड डलहौजी के संकेत पर उसे अपमानित करना और उस पर दबाव डालना आरम्भ कर दिया। भोंसले की शक्ति टूट चुकी थी। गायकवाड़ सहायक संधि स्वीकार कर के अंग्रेजों का भक्त बना हुआ था। अंग्रेजों के रास्ते में कांटे सिर्फ तीन थे—पेशवा, सिंधिया और होलकर। चूँकि पेशवा अधिक सक्रिय था, इस लिए पहले उसे ही कुचलने की साजिश अंग्रेजों ने की और पिंडारियों के दमन के नाम पर एक बड़ी सेना की मांग उससे की। इससे पूर्व अंग्रेज उससे बल-पूर्वक अनेक गढ़ ले चुके थे। अंग्रेजों की न खत्म होने वाली माँग से पेशवा क्रोधित हो उठा। इस पर एलिफिस्टन

ने पूने से अपनी सेना की टुकड़ी चार मील पीछे हटा ली और बम्बई से भी सेना बुला ली। पेशवा ने युद्ध ठान लिया। उसके सेनापति बापू गोखले ने अंग्रेजों पर धावा बोल दिया लेकिन उसे पराजय का मुँह देखना पड़ा। आष्टी और कोरगांव के युद्ध के बाद पेशवा अपनी सेना के साथ पूना से हट गया और अंग्रेजों से उस की छिटपुट मुठभेड़ होती रही। दुर्भाग्य से इस दौरान में अंग्रेज दौलतराव सिंधिया को फाँसने में भी सफल हो चुके थे। हेस्टिंज ने स्वयं एक विशाल सेना के साथ कालपी से बढ़ कर सिंधिया को घेर लिया। उत्तर में हेस्टिंग्ज स्वयं डटा। दक्षिण में गुजरात से खानदेश होते हुए बराड़ तक अंग्रेज सेना की मजबूत पंक्ति खड़ी कर दी गयी। हेस्टिंग्ज ने यह मोर्चेबन्दी धोखा देकर की। बहाना किया था उसने राजस्थान और बुन्देलखण्ड में पिंडारियों को दबाने का लेकिन घेर लिया उसने सिंधिया को। जब उसका मकसद पूरा हो गया तो सिंधिया को उसने संधि करने के लिए विवश किया। सिंधिया मजबूर हो गया। नवम्बर, सन् १८१७ में उसने संधि कर ली। अजमेर उसके हाथ से गया। राजस्थान के १६ राजपूत राज्य कम्पनी के संरक्षण में चले गये। पहली संधि में दिल्ली और आगरा उसके हाथ से निकल ही चुके थे। ग्वालियर आदि पर उसका अधिकार बना रहा। सिंधिया ने सहायक संधि स्वीकार नहीं की। अपनी सेना रखने का अधिकार भी उसने नहीं खोया। मराठों में केवल सिंधिया ही ऐसा था जिसकी अपनी स्वतंत्र सेना सन् १८४३ तक बराबर बनी रही। शेष सभी हेस्टिंग्ज के आगे घुटने टेक चुके थे। दिसम्बर, में होलकर की भी सेना पराजित कर दी गयी जिसका विवरण पहले दिया जा चुका है।

सिंधिया ने लगभग उसी समय अंग्रेजों से संधि की जिस समय पेशवा पूना से अपनी सेना के साथ हट गया था। अंग्रेज इसको भी तोड़ देने के लिए आकुल थे। इस दौरान में ही नागपुर में अंग्रेजों से त्रस्त अप्पासाहब भी खूब कसा गया। उसे और भी अधिक आतंकित करने के लिए अंग्रेज रेजिडेण्ट ने बाहर से अंग्रेज सेना बुला कर टेकरी के पास छावनी डलवा दी। अप्पा साहब करता क्या? उसकी सेना की एक टुकड़ी ने अंग्रेजों पर गोली चला दी। अंग्रेजों को बहाना मिल गया। उन्होंने अप्पा साहब को आत्म-समर्पण का हुक्म दिया। अप्पा साहब ने घुटने टेक दिये। शासक का निकम्मापन सेना का हौसला भी पस्त कर गया। बगावत के लिए तैयार सेना झुक गयी। अप्पा साहब ने अपना गढ़ छोड़ दिया। नर्बदा का तटवर्ती प्रदेश अंग्रेजों को दे दिया। इस पर भी अंग्रेज संतुष्ट न हुए। उन्होंने अप्पा साहब को कैद कर लिया और

बंदी अवस्था में उसे इलाहाबाद को ओर रवाना किया। रास्ते में जान बचा कर अप्पा साहब किसी प्रकार भाग निकला। अब उसमें कुछ जोश आया। उसने अपनी बिखरी हुए सेना एकत्र की। चौरागढ़ को उसने बल-पूर्वक अंग्रेजों से छीन लिया। उसने पिंडारी सरदार चीतू की मदद लेने की कोशिश भी की। मराठों के एकत्र होने का यह आखिरी मौका था लेकिन अदूरदर्शी पेशवा जो अंग्रेजों के विरुद्ध मराठों को एकत्र करने के लिए सबसे अधिक उतावला था, फिर मूर्खता कर बैठा। वह आप तो डूबा ही, मराठों की को भी उसने डुबाया और भारत को भी ले बड़ा।

अप्पा साहब जिस समय चौरागढ़ पर कब्जा कर नागपुर और छत्तिसगढ़ में अपने सैनिकों के संघटन का जाल बिछा रहा था, असीरगढ़ का मराठा सरदार यशवन्तराव अपनी जान की बाजी लगा कर भी स्वतन्त्रता के युद्धकी ज्योति को जलाने के लिए कृत संकल्प था। उधर अप्पा साहब ने हिम्मत बाँध रखी थी, इधर यशवन्तराव पेशवा को बुलाकर समरांगण में जूझना चाहता था। भीतर ही भीतर उसने अंग्रेजों के खिलाफ नफरत की आग भड़का रखी थी। इस छोटे किन्तु अद्भुत साहसी सरदार के कार्यों से सम्बन्धित विवरण बहुत कम मिलता है लेकिन फिर भी ऐसा मालूम होता है कि उसका व्यापक प्रभाव था। अस्तु, अंग्रेजों ने पेशवा का असीरगढ़ पहुँचना खतरनाक समझा, क्योंकि सब कुछ हाथ से निकल जाने पर भी वह था पेशवा ही और यदि कमर कस लेता तो महाराष्ट्र बगावत कर सकता था। अतः अंग्रेजों ने कूटनीति से काम लिया। उन्होंने उसकी ओर हाथ बढ़ाया और उसे आठ लाख रुपया वार्षिक पेंशन देना स्वीकार करके युद्ध से विरत कर दिया। ( १८ जून, सन् १८१८ की संधि )। उसका राज्य अंग्रेजो ने हड़प लिया और उसे कानपुर के पास बिठूर में भेज दिया। पेशवा का पद सदा के लिए समाप्त कर दिया गया। इसके बाद अंग्रेजों ने सन् १८१९ में असीरगढ़ भी ले लिया और अप्पा साहब को भी खदेड़ा। अप्पा साहब मैदान छोड़कर पश्चिम की ओर चला गया। इस प्रकार एक-एक करके लग भग डेढ़ मास के अन्दर ही चारो मराठा सरदारों की शक्ति कुचल दी गयी। यह भाग्य की ही बात थी। पस्त हिम्मती ने यदि मराठों का दामन न पकड़ रखा होता तो और उनमें तनिक भी सूझ-बूझ होती तो वे पेशेवर लड़ाकू पिंडारियों को मिलाकर सरलता से अंग्रेजों को नेस्तनाबूद कर सकते थे। बहुत बड़े क्षेत्र में अंग्रेज चारो ओर एक साथ लड़ नहीं सकते थे। शिवा जी के मुट्ठी भर घुड़सवार औरंगजेब की विशाल सेना के छक्के जिस रीति-नीति से छुड़ा दिया करते थे, पिंडारियो को मिलाकर वे उसका लाभ उठाते तो अंग्रेजों

के पैर टिक न पाते। फूट उन्हें खा गयी। सफलता अंग्रेजों के हाथ लग गयी। लार्ड हेस्टिंग्ज का नाम रोशन हो गया। लार्ड क्लाइव ने अंग्रेज सत्ता के पैर जमाये। वारेन हेस्टिंग्ज ने प्रभुता का विस्तार किया और लार्ड वेलजली तथा लार्ड हेस्टिंग्ज का नाम भारत में ब्रिटिश साम्राज्य कायम करने वालों में गिना जाने लगा।

लार्ड हेस्टिंग्ज सन् १८१३ में आया था और सन् १८२३ तक वह गवरनर जेनरल पद पर भारत में रहा। इस अर्से में उसने सन १८१८ तक सिखों को छोड़ कर प्रायः सभी शक्तियों को उध्वस्त् कर दिया था। युद्ध से अवकाश मिलने के बाद उसे जो समय मिला, वह उसने नागरिक शासन में उलट-फेर करने में लगाया। उसने मद्रास में रैयतवाड़ी प्रथा का प्रचार किया। बंगाल में किसानों के लिए कुछ किया। कलक्टर और मजिस्ट्रेट के कर्तव्य उसने मिला दिये। अदालतों के सम्बन्ध में नये कानून-कायदे बनाये। शिक्षा के प्रसार के लिए भी उसने कुछ किया। भारत में प्रेस इसके शासन-काल में ही स्थापित हुआ। इसी समय हिन्दी भाषा में एक पत्र भी प्रकाशित हुआ। सड़कों और पुलों के निर्माण की ओर भी ध्यान दिया गया। इन कार्यों को अंग्रेजों ने सुधार और जनता की भलाई की संज्ञा प्रदान की। लेकिन वास्तव में ये कार्य साम्राज्य की रक्षा के लिए अपेक्षित प्रबन्ध के अनिवार्य परिणाम थे। यहां इतना ही कहना पर्याप्त होगा।

लार्ड हेस्टिंग्ज के शासन-काल के अन्त में केवल एक शक्ति शेष रह गयी थी। वह शक्ति सिखों की थी। राजा रणजीतसिंह का दबदबा काफी बढ़ गया था। उसने अब्दाली साम्राज्य का अन्त कर डाला था। दर्रा खैबर तक उसकी तूती बोलने लगी थी। उसने अपनी सेना आधुनिक ढङ्ग से शिक्षित और सज्जित की थी। ईरान के रास्ते से लाहौर पहुँचने वाले फ्रांसीसी सेनापति वांतरां और अलां ने सिख सेना को खूब सुघटित किया था। रणजीतसिंह की तोप सेना अंग्रेजों से अधिक दृढ़ थी। इसकी तोपें अधिक भारी और तोपची अधिक कुशल थे।

राजा रणजीतसिंह में दुर्बलता केवल यह थी कि वह अंग्रेजों को पहचान न सका। लेकिन खूबियां अनेक थीं। पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'डिसकवरी आव इण्डिया' में रणजीतसिंह के चरित्र पर काफी अच्छे ढङ्ग से प्रकाश डाला है और उसके स्वभाव के सन्दर्भ में प्रिन्सेप का यह कथन उद्धरित किया है कि नाम मात्र के अपराध (क्रिमिनैलिटी) पर किसी एक व्यक्ति द्वारा इतने बड़े साम्राज्य की स्थापना नहीं की गयी थी। "उसने मृत्यु

दण्ड बिलकुल समाप्त कर दिया था और किसी भी अपराध के लिए चाहे वह कितना भी वीभत्स क्यों न हो, उसे स्वीकार नहीं किया था जब कि इङ्गलैंड में साधारण सी लूट के अपराधी को भी मृत्यु दण्ड का सामना करना पड़ता था।" *

राजा रणजीतसिंह ने "एक साम्राज्य की स्थापना की (जो कश्मीर और सीमा प्रान्ततक फैला था—ले०) और शक्तिशाली सेना का सङ्गठन किया लेकिन फिर भी रक्तपात से उसे नफरत थी।" † सम्भवतः उस समय संघटन की दृष्टि से रणजीतसिंह की सेना अद्वितीय थी। सिख सैनिकों में साहस भी कूट कूट कर भरा था। उन्होने नेतृविहीन दशा में भी अंग्रेजों को पराजित किया था। राजा रणजीतसिंह के बाद यदि चन्द पञ्चमांगियों ने अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति के लिए स्वतन्त्रता को बलिवेदी पर चढ़ा न दिया होता तो सिख सैनिक सम्भवतः अकेले ही अंग्रेजों का शक्ति-मद बुरी तरह चूर करके उन्हें कौड़ी का तीन बना देते और पंजाब पर किसी भी दशा में अंग्रेजों का आधिपत्य कायम न होता। लेकिन जैसा कि बार बार हुआ, पंजाब में भी अंग्रेजों को पञ्चमांगी मिल गये। उन्होने रणजीतसिंह के जमाने तक तो सिर नहीं उठाया लेकिन उसकी आँखें बन्द होते ही उनके मुँह मे पानी आ गया। पंजाब का सिंह मृत्यु की गोद में सोया ही था कि सियार सिर उठा कर घूमने लगे। अस्तु, यथास्थान इसका विवरण दिया जायगा।

सन् १८२३ में लार्ड हेस्टिंग्ज के बाद लार्ड एमहर्स्ट भारत का गवरनर जेनरल हो कर भारत मे आया और सन् १८२८ तक इस पद पर बना रहा। इसके शासन-काल की सबसे महत्व पूर्ण घटना है—सैनकों का विद्रोह। भाड़े का टट्टू समझे जाने और अपमान-जनक व्यवहार होने के अनुभव ने वेतन भोगी भारतीय सैनिकों के कलजे में क्षोभ की प्रचण्ड ज्वाल धधका दी। उन्होंने सम्मान जनक व्यवहार की माँग की और इसकी उपेक्षा होने पर बागी हो गये (बैरक पुर का विद्रोह सन् १८२४) और बरमा के प्रथम युद्ध में भाग लेने से उन्होंने इनकार कर दिया। अँग्रेजों ने इन्हें तोप से उड़वा दिया। भारतीय नरेशो की बुद्धि यदि एक दम कुन्द न हुई होती और कूटनीति से काम लेने का तनिक माद्दा भी उनमे होता तो इस घटना के सहारे वे अंग्रेजों की पूरी भारतीय सेना में बगावत फैला देते। उस समय शायद वे इसका मुकाबिला न कर सकते; क्योंकि सन् १८५७ के भारतीय विद्रोह तक उनके पैर जितनी दृढ़ता से जम गये थे, उतनी दृढ़ता से इस समय तक नहीं

---

* जवाहरलाल नेहरू 'डिसकवरी आव इण्डिया' पृ० सं० २४१

† ,, ,, ,, पृ० स० २४१

जमें थे। लेकिन भारतीय नरेशों का तो दम टूट चुका था। इधर ध्यान देता कौन?

गोरखा युद्ध के दौरान में ही लार्ड हेस्टिंग्ब को यह आशंका थी कि बरमा का राजा चटगांव पर चढ़ाई करेगा। अट्ठारहवीं शती के उत्तरार्द्ध में बरमा के राजा ने छोटे-छोटे राजों पर विजय प्राप्त कर के अपने साम्राज्य का विस्तार आरम्भ कर लिया था और सन् १७६६ वह तेनासरीम तक बढ़ आया था। सन् १७८४ तक अराकान को और सन् १८१३ में मणिपुर और १८२२ में असम को जीत कर उसने बरमा में मिला लिया था। अपने राज्य को पूर्वी सीमा तक उसे पहुँचा देखकर ही लार्ड हेस्टिंग्ज को यह आशंका हुई थी कि वह चंटगांव पर आक्रमण कर देगा जैसा कि लार्ड एम्हर्स्ट के जमाने में हुआ। पहले एम्हर्स्ट ने उससे संधि करनी चाही और इस उद्देश्य से उसके दरबार में अंग्रेज राजदूत भेजे लेकिन बरमा के राजा ने उन्हें बैरंग वापस लौटा दिय क्योंकि अराकान आदि से भागने वाले विद्रोही चटगांव में शरण लेते थे जिन्हें उभाड़ कर यूरोपीय समय समय पर अराकान में उपद्रव के लिए भेज देते। बरमा के राजा ने अंग्रेजों से यह मांग की कि ये भगोड़े बरमा को सुपुर्द कर दिये जांय। इस घटना के बाद ही बरमा ने असम पर कब्जा कर लिया और वहाँ से बढ़ कर चटगांव के निकट अंग्रेजों के 'शाहपुरी' नामक टापू को भी धर दबोचा। इस पर लार्ड एमहर्स्ट ने सन् १८२४ में युद्ध की घोषणा कर दी। एक अंग्रेज सेना असम में घुसी और दूसरी सेना (कलकत्ता और मद्रास की) ने रंगून पर धावा बोल दिया। समुद्री मार्ग से जाने वाली सेना ने आरचीबाल्ड कैम्पबेल के नेतृत्व में रंगून पर अधिकार कर लिया। बरमा निवासियो ने शहर खाली कर दिया। इस बीच वर्षा शुरू हो गयी। युद्ध बन्द हो गया जो छ मास तक बन्द था। इस बीच बरमी सेना के गोरिल्ला अंग्रेजों को बराबर परेशान करते रहे।

एक ओर यह युद्ध हो रहा था, दूसरी ओर बरमा के राजा का पराक्रमी सेनापति महाबन्धुल चटगांव में घुस कर वहाँ की अंग्रेज सेना को भुट्टे की तरह उड़ाते हुए ढाका और कलकत्ता की ओर बढ़ने की तैयारी कर रहा था। इसी समय उसे रंगून के पतन का समाचार मिला और वह अपने देश में लौट गया। एक इतिहासकार ने इसपर लिखा है कि "शत्रु की कठिनाई का लाभ उठाने की बात न सोच सकने वाले सेनापति से भयभीत होने की कोई गुँजाइश न थी।"

शीघ्र ही अंग्रेज असम, अराकान, और तनासरीम आदि पर अधिकार करने में सफल हो गये। यहाँ रसद आदि काफी परिणाम में अंग्रेजों के हाथ लगी। उनका हौसला बढ़ गया। १ अप्रैल, सन् १८२५ में दोनाबू में युद्ध हुआ और महाबन्धुल इसमें खेत रहा। कैम्पबेल जल तथा स्थल, दोनों मार्ग से इरावती की ओर बढ़ा और लोअर बरमा की राजधानी प्रोम पर अंग्रेजों का कब्जा हो गया। यहाँ से वे याडंबू की ओर बढ़े। इस स्थिति में बरमा के राजा ने सन्धि कर ली और असम, अराकान तनासरीम अंग्रेजों के हवाले कर दिया। उसने अंग्रेजों को हरजाने के रूप में एक करोड़ रुपया भी देना स्वीकार किया। मणिपुर स्वतन्त्र राज बना दिया गया। बरमा के राज दरबार में अंग्रेज रेजिडेण्ट की नियुक्ति हो गयी। उत्तर-पूर्व में सीमा निर्धारित हो गयी और इधर से आक्रमण के भय से अंग्रेज मुक्त हो गये।

लार्ड वेलजली के जमाने मे भरतपुर के जिस किले पर सेनापति लेक ने चार बार हमला किया और चारो बार जहाँ उसे मुँह की खा कर पीछे हटना पड़ा था, वह किला अपने रक्षकों की आपसी फूट के कारण सहज ही अंग्रेजों के हाथ पड़ गया। सन् १८२६ में भरतपुर के राजा की मृत्यु के बाद गद्दी के लिए झगड़ा शुरु हो गया। अंग्रेज ऐसे अवसर की ताक में रहते ही थे। उन्हें किसी ने पूछा नहीं, फिर भी 'मान न मान' मैं तेरा मेहमान की कहावत चरितार्थ करते हुए उन्हों ने राजा के नाबालिक पुत्र का पक्ष लेते हुए भरतपुर में घेरा डाल दिया और डेढ़ मास में उस पर कब्जा कर लिया। आपसी फूट इस अजेय किले को भी ले डूबी। अंग्रेजों ने किले के खजाने को जी भर कर लूटा।

———

# सिखों में फूट और पंजाब का पतन

यूरोप में औद्योगिक क्रांति—कम्पनी के एकाधिकार की समाप्ति—बेण्टिक साम्राज्यवादी परम्परा का अनुयायी—भारत में शोषण का नया चरण—क्लर्कों की फैक्टरियों का निर्माण—रियासतें हड़पी गयीं—कम्पनी का नया अधिकार-पत्र—अफगानिस्तान की राजनीति—सिख सेना सिन्ध की सीमा पर—हिरात पर ईरान का आक्रमण—आकलैण्ड—भारत पर रूसी आक्रमण का भय—अफगानिस्तान पर अंग्रेजों की चढ़ाई—पठानों का देश प्रेम अंग्रेजों का अत्याचार—पठानों ने बदला लिया—साम्प्रदायिकता फैलाने का षड्यंत्र—एलिनबेरो और सिंध—ग्वालियर पर नियंत्रण—कैथल की जनता की बगावत—पंजाब की डांवाडोल स्थिति—जोरावरसिंह का अभियान—रूपकुण्ड की झील के पास मिली लाशों का रहस्य—सिखों में फूट—पंजाब की पीठ में छुरा भोंका गया—सिखों से अंग्रेजों का युद्ध—अंग्रेजों के पैर उखड़े—सिख सरदार की गद्दारी—सुबरांव का ऐतिहासिक युद्ध—नेताओं की गद्दारी से सिख सल्तनत का कलेजा चाक।

लार्ड एमहर्स्ट के बाद लार्ड विलियम बेण्टिक गवरनर जेनरल के पद पर नियुक्त हुआ और लगभग आठ वर्षों तक इस पद पर बना रहा (सन् १८२८ से १८३५ तक)। भारत के आर्थिक शोषण की नियोजित कारवाई पर पर्दा डालने के लिए अंग्रेज इतिहासकारों ने जिनमें मेकाले साहब प्रमुख हैं, बेण्टिक के शासन-काल को सुधार का युग बताया है और उसकी प्रशंसा का लम्बा-चौड़ा पुल बांधा है। व्यक्तिगत रूप में बेण्टिक की भी बड़ी प्रशंसा की गयी है। उसे सुधारवादी और जनता का शुभ-चिंतक सिद्ध करने में कुछ नहीं उठा रखा गया। इस सिलसिले में तथाकथित अदालती सुधार करने, सेना और नागरिक शासन का खर्च घटाने, लगान का ठीक से बंदोबस्त करने, सती प्रथा को समाप्त करने तथा ठगों का अंत करने की खूब चर्चा की गयी है। मेकाले साहब ने लिखा है कि 'बेण्टिक ने भारतीय शासन में अंग्रेजों की स्वतंत्रता की भावना भरी और जन-कल्याण को अपना कर्तव्य समझा'। लेकिन वस्तुस्थिति यह नहीं है।

भारत के व्यापार पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के एकाधिकार पर इंगलैण्ड में चलने वाली कशमश का उल्लेख पहले किया जा चुका है। जिस समय बेण्टिक

यहां गवरनर जेनरल नियुक्त हुआ, वहां औद्योगिक क्रान्ति हो चुकी थी। भारत यद्यपि उपनिवेश बनता जा रहा था, तथापि कम्पनी के एकाधिकार के कारण इंग्लैण्ड का वस्तु निर्माता वर्ग, कारखानेदार पूरा लाभ नहीं उठा पाता था। इस अवसर की प्राप्ति के लिए यह वर्ग बराबर संघर्ष शील रहा। अंततः सन् १८१३ में कम्पनी को जब नया चार्टर प्राप्त हुआ, तब भारत के व्यापार पर उसका एकाधिकार समाप्त हो गया और भारत का बाजार सभी अंग्रेजों के लिए खुल गया। इस समय साम्राज्य-विस्तार का दौर जारी था। लार्ड हेस्टिंग्ज मराठों की ताकत को तोड़ने के प्रयत्न में जी जान से लगा हुआ था। जिस समय बेण्टिक गवरनर जेनरल हुआ, स्थिति बिलकुल बदल चुकी थी। सतलज नदी के पश्चिम पंजाब के भूभाग से सीमा प्रान्त तक के तथा सिंध के कुछ इलाके को छोड़कर प्रायः समस्त भारत पर अंग्रेजों का प्रभुत्व कायम हो चुका था।

एकाधिकार की समाप्ति का यह स्वाभाविक परिणाम था कि कम्पनी व्यापार की अपेक्षा राजस्व में अधिक दिलचस्पी लेती। यह तभी सम्भव था जब युद्ध का दौर दौरा समाप्त हो जाता। बेण्टिक के समय में इसको हम समाप्त प्रायः देखते हैं, फलतः उद्देश्य पूर्ति के लिए अर्थात् ठीक से राजस्व बटोरने के लिए कम्पनी के नुमाइन्दे के रूप में शासन को व्यवस्थित करना उसके लिए लाजिमी था। सन् १८१३ से बीस वर्षों के बाद सन् १८३३ में जब कम्पनी को नया चार्टर (अधिकार-पत्र) मिला तब यह बिलकुल स्पष्ट हो गया कि उसे शासन ही करना होगा; क्योंकि इसके अनुसार कम्पनी का व्यापार उठा दिया गया था। इसलिए उसने अदालतों और जमीन की व्यवस्था के सम्बंध में सुधार किये लेकिन उद्देश्य उसका भी शोषण से परे नहीं था। स्वतः बेण्टिक का कथन ही इस निष्कर्ष को प्रमाणित करता है। सन् १८२६ में उसने कहा था कि 'व्यापक जन विद्रोह के विरुद्ध यदि सुरक्षा की स्थिति अपेक्षित है तो मैं यह कहूँगा की अपनी तमाम खामियों के बावजूद इस्तमरारी बंदोबस्त को कायम रखना जरूरी है; क्योंकि उससे एक जबरदस्त लाभ हुआ है। इसके फलस्वरूप भूस्वामियों की एक लम्बी जमात कायम हो गयी है जो ब्रिटिश शासन को कायम रखने में दिलचस्पी लेती है तथा जनता पर जिसका प्रभुत्व कायम हो गया है।'* इस्तमरारी बंदोबस्त के पक्ष में बेण्टिक की यह वकालत उसकी प्रवृत्ति का भण्डाफोड़ करने तथा यह बताने के लिए काफी है कि वह मूलतः वारेन हेस्टिंग्ज आदि की परम्परा का ही अनुयायी था। भारत की गरीबी और दरिद्रता के सम्बंध में उसने जो कुछ कहा, वह इसलिए नहीं कहा कि वह यहां के लोगों की दयनीय स्थिति से द्रवित

*जवाहर लाल नेहरू 'डिसकवरी आव इण्डिया' पृ० सं २६१

था। ऐसा होता तो इस्तमरारी बंदोबस्त का उसने समर्थन न किया होता। दर-असल उसने जहां सहानुभूति व्यक्त की, वहां इंग्लैण्ड के कारखानेदारों की प्रतियोगिता से कम्पनी के स्वार्थ को बचाने के लिए ही व्यक्त की। उसकी सहानुभूति में भूमि की समस्या का, जो दोहन का पथ प्रशस्त कर रही थी, उल्लेख नहीं मिलता। उसका सम्बन्ध उद्योग की स्थिति से ही पाया जाता है। सन् १८३४ में उसने लिखा था कि 'यहां की दरिद्रता व्यापार-वाणिज्य के इतिहास में अद्वितीय है। बुनकरों की हड्डियों से भारत का मैदान पट गया है।' * इस प्रकार उसने यह सिद्ध करना चाहा था कि भारत में व्यापार की गुंजाइश नहीं है। इंग्लैण्ड के वस्त्र निर्यात ने हिन्दुस्तान को चौपट कर दिया है। यही बात वारेन हेस्टिंग्ज ने भी कही थी। 'सन् १८१३ के चार्टर के अनुसार कम्पनी के एकाधिकार की समाप्ति से पूर्व पार्लिमेण्टरी जांच की कारवाई से यह जाहिर है कि ब्रिटेन के औद्योगिक माल की खपत के लिए भारत का विकास बाजार के रूप में करने की दिशा में लोगों का ध्यान केन्द्रित हो गया था। यह ध्यान देने की बात है कि वारेन हेस्टिंग्ज की भांति पुरानी विचार-धारा के प्रतिनिधियों ने अपने जवाब में बाजार के रूप में भारत के विकास की सम्भावना से इनकार किया।'† बेण्टिक ने कम्पनी के एकाधिकार की समाप्ति के बाद भी इस परम्परा का निर्वाह किया।

शासन के सुधार के सम्बन्ध में बेण्टिक की कारवाई सर्वथा नवीन नहीं थी। बरमा युद्ध में होने वाले व्यय के कारण इंग्लैंड में कम्पनी के डाइरेक्टरों के बीच बहुत चिल्ल-पों मची थी, इसलिए व्यय घटाना लाजिमी भी था। यही उससे पूर्व लार्ड कार्नवालिस ने भी किया था। कारखानेदारों और कम्पनी के व्यापारियों की आपसी कशमकश के संदर्भ में इन सुधारों की समीक्षा करते हुए रजनी पामदत्तने लिखा है 'कि शासन को व्यवस्थित करने के कार्य सुधार बताये गये। वास्तव में ये पूरे पूंजीपति वर्ग के स्वार्थ के लिए भारत के और अधिक शोषण का मार्ग तैयार करने वाले उपाय थे। इनसे औद्योगिक पूँजी द्वारा भारत के शोषण के नये चरण का मार्ग प्रशस्त हुआ'★ यही बात निर्विवाद रूप में बेण्टिक के सुधारों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। फिर, यह बात भूलनी न चाहिए कि सुधार वहीं हुआ, जहाँ से आमदनी बढ़ने की गुंजाइश थी। जहाँ सुधार आमदनी में बाधक होता था, वहाँ बेण्टिक ने भी लूट-खसोट जारी रखी। कम्प-

* जवाहरलाल नेहरू 'डिसकवरी आव इण्डिया' पृ० सं० २५६

† आर. पामदत्त—'इण्डिया टुडे'—पृष्ठ संख्या—१००

★ ,, ,, ,, ,,—९९

नी ने अफीम और नमक के व्यापार पर एकाधिकार की ड्राइव की नीति बराबर जारी रखी। इसका पालन करने के लिए बेण्टिक ने जो मुस्तैदी दिखाई, वह उसके सुधारवादी होने की पोल अच्छी तरह खोल देती है। उसने राजस्थान की सांभर झील और सांभर जिले पर भी कब्जा कर लिया। नमक उत्पादन का यह छोटा-सा टुकड़ा भी वह छोड़ना नहीं चाहता था। उसने अपने कब्जे से झील को मुक्त किया मारवाड़ और जयपुर के जन-विद्रोह से बाध्य होकर लेकिन इससे उसकी प्रवृत्ति नहीं छिपती। अतः बेण्टिक को सुधारवादी बताना वस्तु-तथ्य पर पर्दा डालना ही है।

शिक्षा के विकास, सती प्रथा को बंद करने तथा ठगों का उन्मूलन करने की उसकी कारवाइयाँ भी बाहरी परिस्थितियों के प्रभाव से मुक्त न की। सती प्रथा को बंद करने के लिए प्रसिद्ध समाज सुधारक राजा राममोहन राय ने व्यापक आंदोलन छेड़ रखा था। अतः इस प्रथा को समाप्त करने का सारा श्रेय बेण्टिक को नहीं मिल सकता। शिक्षा के क्षेत्र में जो कुछ किया गया, वह शासन की आवश्यकताओं की पूर्ति की दृष्टि से किया गया। अंग्रेजों को क्लर्कों, कारिन्दों और वकीलों आदि की आवश्यकता थी। अतः अंग्रेजी को माध्यम बना कर शिक्षा देने की व्यवस्था की गयी जिसके फलस्वरूप क्लर्कों की फैक्टरियों का निर्माण हुआ। ठगों की हतायत का नाम लिया जाता है। इतिहासकारों ने बंगाल को इनका गढ़ बताया था। इस सम्बन्ध में अधिक न कह कर इतना ही कहना काफी होगा कि बंगाल पर ही सबसे पहले अंग्रेजों ने कब्जा किया था। ठगी में वृद्धि इनके शासन की देन थी। शासन को सुव्यवस्थित करने के क्रम में इनका उन्मूलन अनिवार्य था। बेण्टिक ने यही किया; क्योंकि यह आवश्यक था। ठग और लुटेरे बढ़ते जाते तो उपनिवेश कैसे कायम होता? लम्बे अर्सेतक शोषण करने के लिए भी शांति और व्यवस्था को बनाये रखना जरूरी होता है। बेण्टिक यह खूब समझता था।

बेण्टिक पक्का साम्राज्यवादी भी था। अंग्रेजों के पिट्ठू जमींदारों को बनाये रखने की उसकी उत्सुकता से यह स्पष्ट है। इस दृष्टि से वह फरेबी और क्रूर भी कम न था। मैसूर के राजा पर झूठी तोहमत लगाकर उसको बेण्टिक ने गद्दी से हटा दिया (१८३१) और शासन एक अंग्रेज कमिश्नर को सौंप दिया। मेजर इवांस बेल के कथनानुसार राजा का कोई दोष न था। भूलना न चाहिए कि मैसूर की रियासत को छिन्न-भिन्न कर के वेलजली ने एक बालक को मैसूर के छोटे से भाग का राजा बनाया था। यह अंश भी बेंटिक ने हड़प लिया। सन् १८३३ में बंगाल के उत्तर-पूर्व की कछार रियासत का राजा गोविन्द चन्द कतल

कर दिया गया। उसको कोई पुत्र न था। बेण्टिक ने यह रियासत भी हड़प ली और उसे अंग्रेजी राज में मिला लिया। अगले वर्ष अर्थात् सन् १८३४ में मैसूर के पास कुर्ग की रियासत को हड़पने के लिए भी उसने छल से काम लिया। प्राकृतिक छटा के कारण बेण्टिक को यह इलाका पसन्द आया। अंग्रेजों के निवास के लिए उसने इसे हड़पना चाहा। फलतः यहाँ के राजा को पागल और विलासी सिद्ध किया गया। यह फरेब था, मक्कारी थी। इसके बल पर बेंटिंक ने कुर्ग को भी अंग्रेजी राज में मिला लिया। इसी प्रकार उसने अवध, भोपाल, झांसी और इन्दौर की रियासतों के मामलों में भी हस्तक्षेप किया लेकिन परिस्थितियों वश वह इन्हें हड़प न सका।

सिंध, पंजाब और अफगानिस्तान पर भी उसकी नजर थी लेकिन वह फूँक-फूँक कर कदम रखाना चाहता था। सन् १८३१ में उसने पंजाब के राजा रणजीतसिंह से सन्धि की और इसके अनुसार उसने सिन्धु और सतलज नदी के ऊपरी भाग तक जल-मार्ग से व्यापार करने की सुविधा प्राप्त कर ली। यह बहाना मात्र था। इरादा उसका सिन्धु की नाप-जोख करने का था; क्योंकि सिन्ध और अफगानिस्तान के युद्ध में इस नदी का काफी महत्व था। इसी प्रकार सन् १८३२ में उसने सिन्ध के अमीरों से भी सन्धि की और इस प्रकार इन क्षेत्रों में अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित करने की कारवाई का उसने श्री गणेश किया।

सन् १८३३ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी को नया आज्ञा-पत्र [चार्टर] मिला। इसके अनुसार भारत में व्यापार करने तथा यहाँ बसने के लिए अंग्रेजों को खूब प्रोत्साहित किया गया। कम्पनी का व्यापार बन्द कर दिया गया। और शासन चलाना ही उसका काम रह गया। कानून बनाने में सहायता देने के लिए गवरनर जेनरल की कौंसिल में एक सदस्य बढ़ा दिया गया। पहला कानून सदस्य मेकाले था। बंगाल का गवरनर जेनरल भारत में पूरे अंग्रेजी राज का गवरनर जेनरल बना दिया गया। उसकी कौंसिल को पूरे भारत के लिए कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो गया। इसी समय यह घोषणा की गयी कि ब्रिटिश साम्राज्य का कोई भी निवासी अपने धर्म या रंग आदि के कारण किसी पद या सरकारी नौकरी से वंचित नहीं किया जायगा। कहना न होगी कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने ही नहीं, ब्रिटेन की सरकार ने भी अपने लम्बे शासन-काल में इस घोषणा पर कभी अमल नहीं किया।

अपने भाई महमूद द्वारा निष्कासित किये जाने के बाद सन् १८१३ में अफगानिस्तान का शाह शुजा पंजाब के राजा रणजीतसिंह की शरण में आ

गया था, यह बताया जा चुका है। सन् १८१६ में वह रणजीतसिंह को छोड़ कर अंग्रेजो की शरण में लुधियाना चला गया। अंग्रेज उसे वार्षिक वृत्ति के रूप में पचास हजार रुपये देने लगे। इसी वर्ष शाह महमूद के पुत्र ने उसके वजीर फतह खां को मौत के घाट उतार दिया। इसका बदला लेनेके लिए फतह खाँ के भाई मुहम्मद अजीम ने जो कश्मीर का नाजिम था, काबुल पर चढ़ाई कर दी। शाह महमूद मैदान छोड़ कर हिरात भाग गया। मोहम्मद अजीम कश्मीर के साथ-साथ पेशावर, काबुल, गजनी तथा कन्दहार पर भी राज्य करने लगा। इसके बाद राजा रणजीतसिंह से उसका युद्ध हुआ और पेशावर उसके हाथ से निकल गया। सन् १८२३ के लगभग मोहम्मद अजीम की मृत्यु हो गयी, तब उसका भाई दोस्त मुहम्मद काबुल का शासक हुआ।

फतह खां का कतल होने के बाद अंग्रेजों ने शाह शुजा को उकसा कर अफगानिस्तान पर चढ़ाई करने को भेजा लेकिन शिकारपुर में पिट कर वह वापस चला आया। बेंटिक के जमाने में शुजा को फिर उभाड़ा गया; क्योंकि अंग्रेज समझते थे कि युद्ध कहीं फँस गया तो कोई न कोई पक्ष उनसे सहायता प्राप्त करने की चेष्टा करेगा और वे इसका लाभ उठा कर अफगानिस्तान पर कब्जा कर लेंगे। शाह शुजा बहावलपुर से होकर सिन्ध में घुसा। शिकारपुर के पास उसने सिन्ध के अमीरों को हराया और वहाँ से कंदहार की ओर बढ़ा। यह देख कर एतिहातन राजा रणजीतसिंह ने अपने प्रसिद्ध सेनापति हरिसिंह नलुवा को जिसके नाम का पठानों पर आतंक छाया हुआ था, आगे भेज कर पेशावर को सीधे-सीधे अपने शासन के अन्तर्गत कर लिया। उधर कंदहार की सीमा पर शाह शुजा पहुँचा और इधर रणजीतसिंह का बहादुर सेनापति हरिसिंह नलुआ खैबर पर जा कर डट गया। अफगानिस्तान का शाह दोस्त मोहम्मद घबड़ा गया और उसे भय हुआ कि दोनों ने मिल कर यदि आगे बढ़ने का प्रयास किया तो अफगानिस्तान हाथ से निकल जायगा। इस आशंका से त्रस्त होकर कन्दहार पर उसने शाह शुजा को रोकने की चेष्टा की और साथ ही अंग्रेजों से सहायता भी माँगी। अंग्रेजों की योजना सम्भवतः इसी समय सफल हो जाती लेकिन इस बीच दोस्त मोहम्मद ने शाह शुजा को कंदहार के पास परास्त कर दिया और साथ ही अंग्रेजो की तरफ से भी मुँह फेर लिया। पराजित शाह शुजा फिर अंग्रेजों की शरण में लुधियाना चला आया। मैदान खाली देखकर दोस्त मोहम्मद ने सिखों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और खैबर पार कर के पेशावर की ओर कदम रखा। इसी समय सिख सेना ने उसे घेरने की प्रबल कोशिश की। जान बचाने के लिए वह भाग गया और

उसने युद्ध नहीं किया। यह घटना मई, सन् १८३५ की है। इसी वर्ष लार्ड विलियम बेंटिक का शासन समाप्त हो गया और उसके स्थान पर सन् १८३६ में लार्ड आकलैण्ड गवरनर जेनरल नियुक्त होकर भारत आया। बीच में चंद महीनों तक के लिए चार्ल्स मेटकाफ ने इस पद पर काम किया था लेकिन अपनी उदार नीति के कारण वह इस पद पर बना न रह सका।

अफगानिस्तान पर शाह शुजा की चढ़ाई के कारण शिकारपुर (सिंध) के शासक को दो बार खतरे का सामना करना पड़ा था। पुनः ऐसी विपत्ति न घहरा सके, इस उद्देश्य से उसने पंजाब के राजा रणजीतसिंह का संरक्षण प्राप्त करना चाहा। इसपर रणजीतसिंह के पौत्र नौनिहालसिंह के नेतृत्व में सिख सेना सिंध की सीमा पर जा डटी। अपनी चाल विफल होती देख अंग्रेजों ने भी पैंतरा बदला और घोषित किया कि एक अंग्रेज रेजिडेण्ट हैदराबाद (सिंध) में रहेगा और सिंध के अमीरों से सम्बंधित बाहरी वाकयात पर नजर रखेगा। रणजीतसिंह अंग्रेजों से न उलझा यद्यपि उसके सरदारों ने अंग्रेजों की उपेक्षा करने की सलाह उसे दी थी। यह रणजीतसिंह की भूल थी। इसके फलस्वरूप अंग्रेजों का हौसला बढ़ गया और उन्होंने सिख मोर्चे में दरार डालने की कोशिश आरम्भ कर दी। सन् १८४६ में इसका फल सिखों ने भोगा। सिखों की स्वतंत्र सत्ता सदा के लिए समाप्त हो गयी।

जिस समय लार्ड आकलैण्ड भारत में गवरनर जेनरल नियुक्त हुआ, उस समय मध्य एशिया में रूस का प्रभुत्व बहुत बढ़ गया था। लिपजिग (यूरोप) में फ्रांस की सेना के विरुद्ध सफलता-पूर्वक युद्ध (सन् १८१३) करने वाला रूसी वीर पैस्किविच ईरान में भी अपने प्रभुत्व का विस्तार कर चुका था। सन् १८२८ की रूस-ईरान संधि (तुर्कमनचाई) के अनुसार ईरान के सीमावर्ती काफी बड़े भू-भाग पर रूस का कब्जा हो गया था और व्यापार की अनेक सुविधाएं उसे मिल चुकी थीं। जमानत के रूप में उसे बहुत-सा धन भी ईरान से प्राप्त हुआ था। इस दौर में ही आकलैण्ड भारत में आया। उसके आगमन के कुछ समय बाद ही रूस के संकेत पर ईरान ने हिरात पर आक्रमण करके उसे घेर लिया (सन् १८३७)। भारत पर रूस के आक्रमण का पुराना भय ताजा हो गया। लार्ड आकलैण्ड, बर्न्स के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि मंडल काबुल भेज चुका था और शाह दोस्त मोहम्मद से संधि करने की कोशिश कर रहा था। बर्न्स अनुभवी अंग्रेज था। सन् १८३२ में वह दिल्ली से पंजाब और अफगानिस्तान होते हुए बोखारा तक की यात्रा कर चुका था और मध्य एशिया की स्थिति से वाकिफ था। दोस्त मोहम्मद इस शर्त पर अंग्रेजों से संधि करने को तैयार हो गया कि वे

रणजीतसिंह से उसे पेशावर का इलाका वापस दिला देंगे। यह बर्न्स और उस के अंग्रेज प्रभुओं के वश की बात न थी, क्योंकि उस समय रणजीतसिंह को छोड़ना खतरे से खाली न था।

अफगानिस्तान को दबाने का दूसरा बहाना मिलना चाहिए था। संयोग वश यह बहाना उन्हें मिल भी गया। ईरानियों द्वारा हिरात घेरे जाने के बाद ही रूसी दूत काबुल पहुँच गया था। अंग्रेजों से निराश दोस्त मोहम्मद ने उसका खूब स्वागत-सत्कार किया। अंग्रेज जल-भुन गये। एक ओर उन्होंने जंगी बेड़ा ईरान का खाड़ी में भेजा, दूसरी ओर दोस्त मुहम्मद को कुचलने की तैयारी आरम्भ की। ईरान की खाड़ी में जंगी बेड़े को देख कर ईरानियों ने हिरात का घेरा तोड़ दिया। इससे जाहिर है कि रूस से अंग्रेजों को उस समय कोई खतरा न था; क्योंकि यदि रूस का इरादा भारत में बढ़ने को होता तो उसने ईरानियो को अंग्रेजों से भिड़ा दिया होता। लेकिन अंग्रेजों को इससे कोई मतलब न था। वे अफगानिस्तान को कुचलने के लिए कृत संकल्प थे। स्वतः ब्रिटेन की सरकार इसके लिए उत्सुक थी। इंग्लैंड के प्रधानमत्री पामर्स्टन द्वारा गवरनर जेनरल लार्ड आकलैंड को लिखे गये कई पत्रों तथा ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डाइरेक्टर बोर्ड के अध्यक्ष द्वारा लिखे गये पत्रों से यह स्पष्ट है। कारण यह है कि अंग्रेज उत्तर में वैज्ञानिक सीमा चाहते थे। उन्होंने रणजीतसिंह से सधि की। आड़ लेने के लिए उन्होंने शाह शुजा से भी संधि कर ली यद्यपि इसका कोई तुक न था क्योंकि शुजा की हालत गुलामों सी थी। वह भगोड़ा था। उसे अफगानिस्तान की जनता का समर्थन भी प्राप्त न था।

अंग्रेजों के प्रधान सेनापति सर जान कीन के नेतृत्व में अंग्रेज सेना फिरोजपुर से सिंध होती हुई अफगानिस्तान की ओर बढ़ी। इसके साथ बर्न्स और मैकनाटन भी थे। मैकनाटन गवरनर जेनरल को कौंसिल का सदस्य था और अफगानिस्तान के विरुद्ध रणजीतसिंह से अंग्रेजों की संधी कराने के लिए इसने बड़ी चतुरता से काम लिया था।

दर्रा बोलन को पार कर के अंग्रेज सेना ने काबुल, कंधार और हिरात पर कब्जा कर लिया। दोस्त मोहम्मद भाग गया। बाद में उसने आत्म-समर्पण कर दिया। अंग्रेजों ने उसे बंदी बनाकर कलकत्ता भेज दिया। शाह शुजा अफगानिस्तान की गद्दी पर बैठा दिया गया। अंग्रेजों ने अफगानिस्तान के मुख्य-मुख्य शहरों में छावनियां डाल दीं। जलालाबाद में अंग्रेज सेनापति सेल, कंधार में सेनापति नाट और गजनी में कर्नल पामर ने अपनी-अपनी सेना

के खेमें गाड़ दिये। मैकनाटन छल-प्रपंच में लग गया। उसने शेष भारत की भाँति यहां भी पंचमांगियों को पैदा करने की कोशिश की। भाड़े के टट्टू सैनिकों को भर्ती करने की कोशिश भी उसने की। शिया-सुन्नियों में फूट पैदा करने की चालबाजी से वह बाज न आया। लेकिन बाहरे पठान! उन्होंने अंग्रेजों की दाल न गलने दी। अफगानिस्तान का इस समय का इतिहास सचमुच स्वर्णाक्षरोंमें लिखा जाने योग्य है। न तो पठान आपस में लड़े, न अंग्रेज, पंचमांगी ही पैदा कर सके। अंग्रेज सर पटक कर रह गये लेकिन एक भी पठान भाड़े की सेना में भर्ती होने के लिए सामने न आया। पूरे दो वर्ष इस प्रकार बीत गये लेकिन अंग्रेज अपने पैर न जमा सके। मातृ-भूमि को परतन्त्रता के बन्धन से मुक्त करने की आग पठानों के कलेजे में धधकती रही। युद्ध वे कर नहीं सकते थे लेकिन अपनी गुरिल्ला कारवाइयों द्वारा उन्होंने अंग्रेजों के नाक में दम कर रखा था। उन पर काबू पाने के लिए अंग्रेजों को भारत से सेना बुलानी पड़ती थी। वे अपनी असफलता से बौखला गये। अंत में उन्होंने आतंक का सहारा लेना आरम्भ किया। अंग्रेज अफसरो ने लूट-मार का बाजार गर्म कर दिया। पठानों पर जुल्म और सितम का पहाड़ टूटा। अंग्रेज पूरे हैवान बन गये और पैशाचिकता पर उतर आये। उन्होंने काबुल में अनेक पठान परिवारों की महिलाओं पर बलात्कार किया और उनका सतित्व लूटा। इस हैवानियत ने घृताहुति का काम किया। स्वाभिमानी और स्वतन्त्रता प्रेमी पठानों के रोष की ज्वाला धधक उठी। क्रोध का ज्वालामुखी फूट पड़ा। बहनों और बेटियों की लाज का बदला लेने के लिए जान हथेली पर रख कर उन्होंने दोस्त मोहम्मद के पुत्र अकबर खां के नेतृत्व में खुले आम बगावत कर दी। २ नवम्बर, सन् १८४१ को सारे खुराफात की जड़ बर्न्स के मकान को उन्होंने घेर लिया और उसे सड़क पर खींच कर तलवार के घाट उतार दिया। काबुल के अंग्रेजों की मदद का रास्ता वीर पठनों ने बन्द कर दिया। अंग्रेजों की हिम्मत छूट गयी। मैकनाटक ने घुटने टेक दिये और बागी नेता अकबर खां के पास सन्धि का पैगाम भेजा। इस सन्धि के अनुसार निश्चित हुआ कि अंग्रेज अफगानिस्तान से अपनी सेना हटा लेंगे और दोस्त मोहम्मद को अपनी कैद से रिहा कर देंगे। मक्कार अंग्रेज इस पर कब कायम रहने वाले थे! संधि के दौरान में ही मैकनाटन कुछ अफगान सरदारों का अकबर खां के खिलाफ भड़काने के षडयन्त्र में लग गया। अकबर खां को इसका पता चल गया। उसने ईंट का जवाब पत्थर से देने का फैसला कर लिया। पहले उसने जनवरी, सन् १८४२ में अंग्रेजों से सन्धि की और शाह दोस्त मोहम्मद की वापसी की शर्त का पालन कराने के लिए १२०

अंग्रेज कैदियों को रोक लिया। इसके पश्चात् अपनी रसद और तोपें उसे सौंप कर अंग्रेजी लाम-लश्कर के सोलह हजार आदमी जब लौटने लगे, तो अफगान उन्हें पहाड़ी दर्रों में घेर-घेर कर मौत के घाट उतारने लगे और इस प्रकार मक्कारी और दगाबाजी का फल भुगतने के लिए उन्हें बाध्य करने लगे। सोलह हजार में केवल ब्राइटन नामक एक अंग्रेज डाक्टर ही शेष रहा जो अपनी दुर्दशा की कहानी सुनाने के लिए किसी प्रकार जलालाबाद पहुँच गया। उधर अफगानों ने जलालाबाद की अंग्रेजी सेना को भी घेर लिया। गजनी में सेनापति पामर की सेना के उन्होंने धुर्रे उड़ा दिये। महाविनाश की इस विभीषिका से मुक्ति पाने के लिए लार्ड आकलैण्ड ने पंजाब के रास्ते से चार रेजिमेंटें पेशावर भेजीं और सिखों से अनुरोध किया कि या तो आप स्वयं जलालाबाद में फँसी अंग्रेज सेना की मदद करें या अंग्रेजों रेजिमेंटों की वहाँ पहुँचने में सहायता करें। सिखों ने अपने कटु अनुभवों के कारण यह अनुरोध ठुकरा दिया। तब आकलैंड ने कंधार के अंग्रेज सेनापति नाट को अफगान युद्ध का अधिनायक बना दिया और जेनरल पोलक को पेशावर भेजा।

इस बीच अफगान युद्ध में हुई तबाही-बरबादी की खबर इंग्लैंड पहुँची तो अंग्रेज सरकार के होश गुम हो गये। बदहवासी में उसे और कुछ तो सूझा नहीं, उसने आकलैंड को वापस बुला लिया और २८ फरवरी, सन् १८४२ में एलिनबरो को गवरनर जेनरल बना कर भारत भेजा। उसे यहाँ पहुँचे चन्द दिन ही हुए थे कि पामर की सेना के पैर भी पूरी तरह उखड़ गये और उसने गजनी को खाली कर दिया। यह देख कर एलिनबरो घबरा गया। उसने पोलक और जेनरल नाट को वापस लौटने का आदेश दिया परंतु वे दोनों नहीं लौटे। सितम्बर, सन् १८४२ के मध्य में पोलक ने काबुल पर और नाट ने गजनी पर कब्जा कर लिया। नाट ने गजनी को तहस-नहस कर डाला और उसे जी भर कर लूटा। इसके बाद वह भी काबुल जा पहुँचा। दोनों ने काबुल को भी खूब लूटा और बाजार को जला कर राख कर डाला और मस्जिदें फूँक दीं। इसके बाद ही उनकी प्रतिहिंसा की ज्वाला ठंडी हो सकी।

नाट ने गजनी में एक और शरारत की। उसने दो विशाल दरवाजों पर कब्जा कर लिया। लौटती समय वह उन्हें अपने साथ ले आया। पंजाब में उसने इनका जलूस निकाला और प्रचार किया कि ये सोमनाथ के प्रसिद्ध मंदिर के वे दरवाजे हैं जिन्हें महमूद गजनवी लूट कर ले गया था। इस फरेब की आड़ में उसने मुसलमानों और पठानों के विरुद्ध हिन्दुओं की साम्प्रदायिक भावना को भड़काने की कोशिश की लेकिन आगरा पहुँचने पर उसका पोल खुल गयी।

जिस समय काबुल से लौटने वाली अंग्रेज सेना ने अटक पार किया, दोस्त मोहम्मद रिहा कर दिया गया। वह काबुल पहुँच कर पुनः वहां का अमीर बन गया।

सन् १८३३ के नये आदेश-पत्र के अनुसार ईस्ट इण्डिया कम्पनी का व्यापार समाप्त हो चुका था। इसके बाद साम्राज्य का विस्तार करके अपनी आय बढ़ाने के अलावा उसके सामने कोई काम न था। गवरनर जेनरल एलिनबरो ही तब कैसे चुप रह सकता था। भय-त्रस्त होने के बावजूद अफगानिस्तान में सफलता मिलने के कारण उसका हौसला बढ़ गया और उसने सिंध के अमीरों की पीठ में छुरा भोंक कर उन्हें भी समाप्त कर दिया। सिंध के अमीरों ने अंग्रेजों के साथ हुई संधि की अवहेलना कभी नहीं की थी लेकिन अंग्रेजों को इससे वास्ता क्या था? उनका धर्म और ईमान पैसा था और पैसा सिंध के अमीरों के पास खूब था। दूसरा कारण यह था कि सिंधु के किनारे तक पहुँचने पर उत्तर-पश्चिम सीमा की रक्षा का प्रश्न सुगम हो जाता था। अफगानिस्तान उनकी आंख में खटकता था ही। यहां से वे उसका विनाश कर सकते थे।

भूलना न चाहिये कि अफगानिस्तान पर आक्रमण करने के लिए रवाना होने वाली फौज सिंध से होकर ही गुजरी थी। यह कार्य लार्ड विलियम बटिक के जमाने में हुई संधि के सर्वथा विपरीत था। लेकिन अंग्रेजों ने संधि की परवाह कब की? संधि का पालन वे तभी तक करते जब तक उनका हाथ दबा रहता। ताकतवर होने पर वे भूखे भेड़िये का रूप धारण कर लेते। सिंध के मामले में भी उनकी यह दशा हुई। सिंध के अमीरो ने उन्हें रास्ता दिया। सेना के खर्च के लिए नकद रुपये तथा रसद दी लेकिन उन्हें मुक्ति न मिली। विश्वासघात अंग्रेजों ने ही किया लेकिन गवरनर जेनरल एलिनबरो ने इसका अभियोग लगाया अमीरों पर और चार्ल्स नेपियर के अधीन एक विशाल सेना सिंध में भेज दी। नेपियर ने यह फरमान जारी किया कि अंग्रेजी सेना के लिए अमीरों को सिंध का एक हिस्सा अंग्रेजों को सुपुर्द करना होगा। इस साजिश से सिंध के अमीर जल उठे। मरता क्या न करता। उन्होंने युद्ध की दुदुंभी बजा दी और अंग्रेज रेजिडेण्ट के निवास-स्थान पर आक्रमण कर दिया। रेजिडेण्ट आउटरम भाग कर एक जहाज में छिप गया। लेकिन अमीरों का दुर्भाग्य! उनकी सेना का एक भाग जिसमें तोपची भी थे, अंग्रेजों से मिल गया था। १७ फरवरी, सन् १८४३ को मियानी के युद्ध में नेपियर ने उन्हें पराजित कर दिया। इसके बाद उसने हैदराबाद पर कब्जा किया और अमीरों की दौलत के इस घर को खूब लूटा। कहते हैं कि अंग्रेज महिलाएं अमीरों के जनानखाने में भेजी गयीं जहां उन्होने बेगमो के शरीर के जेवर तक उतरवा लिये और नाक-कान तक

नोच-नोच कर 'मनोविनोद' किया। मीरपुर का बहादुर अमीर शेर मुहम्मद भी जिसने अंग्रेजों से सामने घुटने नहीं टेके थे, अधिक दिनों तक टिक न सका। एक मास के बाद ही मार्च, सन् १८४३ में डाबो के युद्ध में उसकी भी पराजय हुई। सिंध पर अंग्रेजों का कब्जा हो गया।

सिंध पर अंग्रेजों का आक्रमण विश्वासघात और अमानुषिकता से भरा था। सिंध पर जुल्म और सितम के अंगारे बरसा कर उसे फूंकने वाले नेपियर ने भी अपनी डायरी में लिखा था—'सिंध पर आक्रमण करने का हमें कोई अधिकार नहीं है, फिर भी यह कार्य हम करेंगे अवश्य।'

सिंध समाप्त हो गया। रह गया पंजाब का वह इलाका जिसकी शक्ति का निर्माण पंजाब के शेर राजा रणजीतसिंह ने किया था। लेकिन इसकी ओर देखने के पहले एलिनबरो ने ग्वालियर से निपटना जरूरी समझा, क्योंकि एक यही ऐसी भारतीय रियासत थी जिसकी ताकत अब भी बनी थी, जिसने सहायक संधि स्वीकार न की थी और जिसके पास चालिस हजार सैनिकों की संघटित और सुसज्जित सेना थी। सतलज के दक्षिण में इसका बना रहना अंग्रेज घातक समझते थे, क्योंकि सतलज से बढ़ने वाली शत्रु-सेना (रणजीतसिंह की सेना) का रास्ता रोकने वाली अंग्रेज सेना के वह आड़े आ सकती थी। भाग्यवश ग्वालियर के मामले में हस्तक्षेप करने का मौका भी उन्हें मिल गया था।

फरवरी, सन् १८४३ के प्रथम सप्ताह में ग्वालियर के राजा जंकोजी राव सिंधिया की मृत्यु हो गयी थी। कुछ इतिहासकारों का कहना है कि उसे विष दे दिया गया था। उसकी विधवा पत्नि ने जयाजी राव नामक आठ वर्ष के बालक को गोद लेकर गद्दी पर बैठाया। रानी की उम्र बहुत कम थी। राजकाज दरबार के हाथ में था। एलिनबरो ने इस स्थिति का लाभ उठा कर अपने पिट्ठू कृष्णराव को जो मृत जंकोजी राव का मामा था, ग्वालियर का मंत्री बनाना चाहा लेकिन दरबार ने उसकी उपेक्षा की और मंत्री के पद पर योग्य, अनुभवी, दक्ष और न्यायप्रिय खासजीवाला को नियुक्त किया। खासजीवाला ने बड़ी योग्यता से शासन करना और पंचमांगियों तथा दोगले यूरोपीय अफसरों को छांटना आरम्भ कर दिया। यह देख कर एलिनबरो ने उस पर अनेक झूठे इलजाम लगाये और रानी से यह मांग की कि खासजीवाला अंग्रेजों के हवाले कर दिया जाय। रानी ने पहले तो इनकार किया लेकिन बाद में युद्ध की धमकी से पस्त हो कर उसने सिंधिया राज्य के हितचिंतक खासजीवाला को अंग्रेजों के हवाले कर दिया। अंग्रेजों ने उसे कैद में डालकर खूब सड़ाया। दस वर्ष के बाद बनारस के जेल में इस व्यक्ति की मृत्यु हो गयी।

खासजीवाला को हाथ में पाकर एलिनबरों का दिमाग सातवें आसमान पर चढ़ गया और उसने ग्वालियर पर हल्ला बोल दिया। सिंधिया राज्य की नेत्रविहीन सेना जी तोड़ कर लड़ी लेकिन अंततः दिसम्बर, सन् १८४३ में पनियार और महाराजगंज के युद्ध में उसकी पराजय हुई। सिंधिया राज्य की स्वतंत्र सत्ता भी समाप्त हो गयी। ग्वालियर के शासन-प्रबंध के लिए अंग्रेजों ने एक कौंसिल बनायी। यह भी संरक्षित राज्य हो गया। इसके सैनिकों की संख्या घटा कर नौ हजार कर दी गयी और दस हजार सैनिकों की ब्रिटिश फौज इन पर लाद कर ग्वालियर में ठहरा दी गयी। कौंसिल के लिए अंग्रेज रेजिडेण्ट की आज्ञा का पालन करना अनिवार्य कर दिया गया और रानी को राजकाज से पृथक करके तीन लाख रुपया वार्षिक पेंशन के रूप में देना स्वीकार किया गया। यह हाल हुआ महापराक्रमी महाद जी सिंधिया की रियासत का जो अंग्रेजों की ताकत के साथ मिल कर भारतीय ताकतों के साथ युद्ध करता रहा और जिसके बेटे दौलतराव सिंधिया ने अंग्रेजों के परम शत्रु यशवंतराव होलकर का साथ कई बार छोड़ कर अंग्रेजो से गठ बंधन किया था। अहसानफरामोशी और मक्कारी के ऐसे उदाहरण भारत मे अंग्रेजी शासनकाल के इतिहास मे भरे पड़े हैं।

अंग्रेजी राज में तीसरी बार जनता ने बगावत एलिनबरो के शासन-काल में की। पहली बार वारेन हेस्टिंग्स के शासन काल मे बनारस की जनता बागी हुई की। दूसरी बार लार्ड मिंटो के शासन-काल में त्रावनकोर की जनता ने बगावत की थी और तीसरी बार गवरनर जेनरल एलिनबरो के शासन-काल में सतलज नदी की सीमावर्ती कैथल रियासत की जनता ने अंग्रेजी सेना को मार कर पीछे खदेड़ा। यहां का राजा पुत्र-विहीन था। उसकी मृत्यु के पश्चात् एलिनबरो ने अपनी सेना वहां भेज दी जिसे जनता ने मार कर पीछे खदेड़ दिया। अंत में इस पर एलिनबरो ने कब्जा कर लिया। इसी प्रकार बुंदेलखंड की एक रियासत के मामले मे भी उसने हस्तक्षेप किया; अवध के नवाब को लूटा और मुगल बादशाह बहादुर शाह द्वितीय को जलील किया। परम्परा के अनुसार बादशाह से भेंट के समय गवरनर जेनरल एक हजार अशर्फियां भेट करता था। एलिनबरो ने यह परम्परा भी समाप्त कर दी।

पहले कहा जा चुका है कि सिंध पर काबिज होने के बाद एलिनबरो की आंख पंजाब पर लग गयी थी। वह बीच के कांटे को साफ करना चाहता था। अवकाश मिलते ही उसने पंजाब की ओर आंख उठायी और थानेश्वर से अंग्रेज सेना लाहौर पर चढाई करने के लिए रवाना की। लेकिन इसी वर्ष (१८४३) वह अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो गया। सन् १८४४ में उसके

स्थान पर लार्ड हार्डिंज गवरनर जेनरल होकर यहां आया। बीस वर्षों तक वह पार्लिमेण्ट का सदस्य रह चुका था और भारत की स्थिति से वाकिफ था।

अफगानिस्तान पर शाह शुजा के दो आक्रमणों के समय अपनी रियासत शिकारपुर (सिंध) की तबाही से परेशान होकर वहां के शासक ने रणजीतसिंह का संरक्षण प्राप्त करना चाहा था और रणजीतसिंह ने अपने पौत्र नौनिहाल सिंह के नेतृत्व में अपनी सेना सिंध की सीमा पर भेजी भी थी। इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है और बताया जा चुका है कि इसी समय अंग्रेजों ने हैदराबाद में अंग्रेज रेजिडेण्ट को नियुक्त करने तथा उसके द्वारा सिंध के बाहरी मामलों को नियंत्रित करने की घोषणा की थी। रणजीतसिंह के सरदारों ने यद्यपि अंगजों की सलाह की उपेक्षा करने की सलाह दी थी तथापि रणजीतसिंह ने इस पर ध्यान नहीं दिया था। यह उसकी भूल थी जिसका कुफल सिख सलतनत को आगे चलकर भुगतना पड़ा। वह यह समझ न सका कि अंग्रेज पूर्व, पश्चिम और दक्षिण की ओर उसकी प्रगति को रोकने की वंदिश कर चुके हैं और सिख सलतनत घिरती जा रही है। नौनिहालसिंह को भी जिसकी उम्र महज १७-१८ वर्ष की थी, यह बहुत अखरा था।

जून, सन् १८३९ में रणजीतसिंह की मृत्यु हो गयी। उसका बड़ा पुत्र खड़्गसिंह गद्दी पर बैठा और ध्यानसिंह उसका मंत्री बना। ध्यानसिंह डोगरा सरदार गुलाबसिंह का छोटा भाई था। गुलाबसिंह सैनिक के रूप में रणजीतसिंह की सेना में भर्ती हुआ था। योग्यता के कारण वह कुछ दिनों में जम्मू का जागीरदार बना दिया गया था। फलतः उसके दोनों भाइयों, ध्यानसिंह और सुचेतसिंह को ऊँचे पद प्राप्त हो गये थे। गुलाबसिंह के सेनापति जोरावरसिंह ने ही सन् १८३५ में तिब्बत के सुदूर पश्चिमी प्रदेश लद्दाख पर कब्जा किया था।

नौनिहालसिंह खड़्गसिंह का ही पुत्र था। अपने दादा के शासन-काल में उसे तरजीह मिली हुई थी, क्योंकि वह पराक्रमी, साहसी और तेजस्वी था। उसके पिता खड़्गसिंह की दशा ठीक इसके विपरीत थी। फलतः पिता नाम मात्र का राजा रह गया और शासन की वास्तविक बागडोर नौनिहालसिंह के हाथ में आ गयी। वह अंग्रेजों से बदला लेने के लिए तथा सिखों और पठानों को लड़ाने की उनकी योजना विफल करने के लिए सन्नद्ध हो गया लेकिन भाग्य ने इस रणबांकुरे का साथ न दिया और अकाल मृत्यु ने पंजाब के इस 'नौनिहाल' को उससे छीन लिया।

नवम्बर, १८४० में खड़्गसिंह की मृत्यु हो गयी और इसके बाद ही

तत्काल एक दुर्घटना में पड़ कर नौनिहालसिंह भी परलोक सिधारा। तब उसकी माता चाँदकौर राजकाज देखने लगी। जैसा कि भारतीय रियासतों में अनेक बार हुआ—महिला को राज का मालिक देखकर कुछ महत्वाकांक्षी सरदार उछलने लगे। स्वयं राज के मंत्री ध्यानसिंह और उसके नायब शेरसिंह ने जिसे इतिहासकारों ने रणजीतसिंह का दत्तक बताया है, आंखें फेर ली। उन्हों-ने सेना में फूट डाली और काफी सैनिकों को अपने पक्ष में करके सन् १८४१ में लाहौर को घेर लिया। विधवा रानी क्या करती? राज को छिन्न-भिन्न होने से बचाने के लिए वह झुक गयी और जागोर लेकर पृथक हो गयी। शेरसिंह गद्दी का मालिक बन बैठा। वह निकम्मा और प्रभावहीन था। सेना में उच्छृंखलता फैलने लगी। इसे दबाने के लिए उसने सिपाहियों का वेतन बढ़ा दिया लेकिन इसका कोई नतीजा न निकला। सेना की मनमानी बढ़ने लगी। सारे राज में आतंक-सा छा गया। रणजीतसिंह के गढ़ अमृतसर के बनियों की बस्ती में सिख राज की नीव धंसने लगी। वे अंग्रेजों की ओर देखने लगे चालाक अंग्रेज इस मौके की ताक में थे ही। लुधियाने के पोलिटिकल एजेण्ट ने शेरसिंह के पास पैगाम भेजा— मदद के लिए अंग्रेज सेना लाहौर आ सकती है।' यह बात सेना से छिपी न रही। वह शांत हो गयी। सिख सेना में दोष एक था लेकिन गुण अनेक थे। स्वाभिमान और स्वदेश-गौरव उस समय उसमें कूट-कूट कर भरा था। अंग्रेजों की कूटनीति की गंध मिलते ही वह सजग हो गयी।

विक्षुब्ध सैनिकों ने कश्मीर में कुछ अफसरों को मौत के घाट उतार दिया था। शांति स्थापनार्थ गुलाबसिंह वहां भेजा गया। उसने वहां शांति स्थापित की और शासन करने लगा। सन् १८४१ में उसका सेनापति जोरावरसिंह मानसरोवर तक बढ़ गया। पंजाब सरकार ने गुलाबसिंह को पेशावर भी सौंप दिया। तभी तिब्बत की राजधानी लासा की चीनी सेना ने जोरावरसिंह को घेर लिया और कहते हैं कि जोरावरसिंह को उसने मौत के घाट उतार दिया। उसकी समाधि अब भी वहां है।

एक शती से अधिक समय के बाद इतिहास की इस घटना पर सन् १९५५ में नया प्रकाश पड़ा। यह काफी दिलचस्प है और इस पर काफी विवाद भी हुआ। है

उत्तर प्रदेश ( गुलाम भारत में संयुक्त प्रांत ) के वन विभाग के उपमंत्री श्री जगमोहन सिंह ने गढ़वाल-अलमोड़ा की सीमा का दौरा करने के बाद सन् १९५५ के जुलाई मास के प्रथम सप्ताह में बताया कि 'त्रिशूल पर्वत की

तलहटी में अट्ठारह हजार फुट की ऊँचाई पर एक झील के किनारे मनुष्यों की सैकड़ों लाशें इधर-उधर बिखरी पड़ी हैं। इनकी शिनाख्त नहीं हो सकी है। अनुमान है कि ये लगभग सौ वर्ष से वहाँ पडी है।'

'उपर्युक्त झील का नाम रूप कुण्ड है जो खड़ी ढाल पर स्थित है और जहाँ तक चढ़ कर जाना अत्यन्त कठिन है।'

'राज्य के जंगल अफसर एफ. के. मधवल ने भी उस झील के किनारे लाशों के अस्तित्व की पुष्टि की। आपने बताया कि सन् १९४२ में मैं एक अप्राप्य फूल की खोज में ऊपर गया था, तब ये लाशें देखी थीं जो अतीत की किसी अज्ञात घटना की साक्षी हैं।'

'जंगल अफसर मधवल ने इस बात की सूचना तत्कालीन जिला मजिस्ट्रेट आर. वी. वर्गोंड को दे दी थी। उस समय द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ा हुआ था, अतः इस ओर ध्यान नहीं दिया गया।'

'सन् १९४२ में कुमायूँ के कमिश्नर एकरान साहब का कहना था कि लाशें सिख कमाण्डर जोरावरसिंह के सैनिकों की हैं जो तिब्बत जाते समय मार्ग में ही समाप्त हो गये थे।'*

उत्तर प्रदेश सरकार ने बाद में उपर्युक्त लाशों की कुछ हड्डियां मँगवायी और उनकी वैज्ञानिक जांच करायी। उसके वन विभाग के उपमंत्री जगमोहन सिंह नेगी ने पुनः उपर्युक्त स्थान का भ्रमण किया और लाशों के सम्बन्ध में एक लेख लिखा। आपने बताया कि 'रूप कुण्ड में बिखरे हुए मानवीय अवशेष जेनरल जोरावरसिंह के आदमियों के ही हो सकते हैं।' अपने कथन के प्रमाण में आपने दो पुस्तकों की ओर ध्यान दिलाया। पहली पुस्तक सन् १८८५ में प्रिंसेप द्वारा लिखी गयी थी जिसका नाम है 'तिब्बत टेरटरी एण्ड मंगोलिया।' इसके २३ वें और २४ व पृष्ठ का सारांश इस प्रकार है—जोरावर सिंह ने गरतोक पर कब्जा कर लिया था। शिशिर ऋतु के आगमन के कारण उसने स्वयं को तथा अपनी सेना को गरतोक के पास एक दुर्ग में सुरक्षित कर लिया। चीनी सेना ने उसे घेर लिया और उसकी रसद का रास्ता बन्द कर दिया। इस प्रकार उसने सिख सेना पर विजय पायी और जोरावरसिंह को मार डाला। लगभग १२० सिख बर्फीली हवाओं से पीड़ित होकर ब्रिटिश प्रदेश, गढ़वाल की नीती घाटी की ओर भागे। यह सब सन् १८४१-४२ में हुआ।' नेगी साहब के कथनानुसार रूप कुण्ड में प्राप्त अवशेष इनके ही थे।

---

* 'बनारस' हिन्दी दैनिक, ३ जुलाई, सन् १९५५ (नगर संस्करण)

दूसरा उद्धरण नेगी साहब ने रेवरेण्ड एच. फ्रैंक द्वारा लिखित 'हिस्ट्री आव वेस्टर्न तिब्बत' नामक पुस्तक से दिया। इसके पृष्ठ १६१ और १६४ पर लिखी बातों का आशय इस प्रकार है--'बाल्ती युद्ध के पश्चात् जोरावरसिंह जम्मू नहीं गया बल्कि लद्दाख में मध्य एशिया विजय की तैयारी करता रहा। उसकी सेना में बाल्ती, लद्दाखी तथा छः-सात हजार डोगरा थे। १२ दिसम्बर को जोरावरसिंह को गोली लगी जिससे उसका अन्त हो गया। उसकी सेना तितर-बितर हो गयी। भयभीत सैनिकों को जिस ओर रास्ता मिला, उस ओर भागे।'.....नेगी साहब के कथनानुसार 'सारे भू-भाग का ध्यान करने के बाद स्पष्ट हो जाता है कि गरतोक-स्थित सेना के लोग केवल नीती घाटी से ही लौट सकते थे और पश्चिम वाले लेह से। ताकला कोट वाले सैनिक जो कप्तान वस्तीराम के साथ थे, लेपूलेख की घाटी से अलमोड़ा जिले में ही लौट सकते थे; क्योंकि वैसी स्थिति में गरतोक वालों के लिए यह सम्भव नहीं था कि वे शत्रुओं के देश में दो सौ मील तक बर्फीली चट्टानों को पार कर के लेह या लेपूलेख की ओर जाते। अतः निश्चित बात है कि वे नीती से निकटतम मार्ग रूप कुण्ड होते हुए लौटे और रूप कुण्ड के बर्फीले तूफान में उनका अन्त हो गया।'*

कलकत्ता के बी॰ आर. चटर्जी ने जिन्होंने उपर्युक्त प्रदेश की यात्रा सन् १६२२ में की थी, भिन्न मत कायम किया और लिखा कि 'युद्ध में (लेपूलेख दर्रा और मानसरोवर के बीच पश्चिमी तिब्बत में) जोरावरसिंह की पूरी फौज नष्ट कर दी गयी थी। यह असंभव है कि शेष बचे लोग हिमालय के पार दूरस्थ रूप कुंड की ओर भागे हों।'†

यह भी कहा जाता है कि युद्ध हुआ ही नहीं। तकलाकोट (तिब्बत) मठ के एक उच्च लामा के कथनानुसार 'गरतोक छोड़ने के बाद' जोरावरसिंह रास्ता भूल गया और ग्यानिमा मौदो होते हुए कारदुङ्ग दर्रे से गुजर कर वह चिलचिलाती गर्मी से पुरंग घाटी में पहुँचा। सूरज ढलने के बाद वह प्यासी और थकावट से चूर अपनी सेना के साथ तोयो गाँव में पहुँचा। कैलाश और मानसरोवर की पहाड़ियों के बीच के तंग मैदान में गरतोक-ल्हासा सड़क पर मुख्य तिब्बती फौज उसकी प्रतीक्षा में थी, लेकिन पहरेदारों के रूप में मठ में और उसके चारो ओर नियुक्त चार हजार तिब्बती सैनिकों ने जोरावरसिंह को

---

* 'बनारस' हिंदी दैनिक पत्र, १६ अक्तूबर, '१५५, पृ० सं० २.

† अंग्रेजी दैनिक 'स्टेट्समैन' (दिल्ली संस्करण), १६ जुलाई, १९५५

सेना पर आक्रमण कर दिया और पचीस डोगरों के अतिरिक्त जो किसी प्रकार काश्मीर भाग निकले, सब को कतल कर दिया ।'

'वस्तुतः युद्ध ही नहीं। जोरावरसिंह कैद कर लिया गया था। तिब्बतियों का विश्वास था कि उसे दैवी शक्ति प्राप्ति है और साधारण गोली उसे चोट नहीं पहुँचा सकती। मंत्र-सिद्ध सोने की एक गोली उस पर चलायी गयी और बाद में तिब्बती प्रथा के अनुसार उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े काटे गये और दफना दिये गये। दलाई लाम के आदेशा के अनुसार उस भूमि पर पैगोडा-नुमा समाधि बना दी गयी जहां जोरावरसिंह मारा गया था और पैगोडा समाधि पर यह लिखा गया—'ओम् मनि पद्म हम्।'

'गरतोक के पूर्व छावनी डालने से पहले ही जोरावरसिंह की मृत्यु हो गयी। दलाई लाम के विरुद्ध युद्ध में विजयी होने की उसे पूरी आशा थी, क्योंकि वह जानता था कि ब्रिटेन के साथ होने वाले युद्ध में चीन फंसा है * और तिब्बत को उससे सहायता प्राप्त नहीं हो सकती। .....रूप कुण्ड में प्राप्त लाशें तीर्थ यात्री हिन्दुओं अथवा बौद्धों की हो सकती है।'†

इस सम्बन्ध में और भी मत प्रकट किये जा चुके हैं। ★इस सम्बन्ध इतिहास

* सन् १८३८ में चीन सम्राट ने अफीम का व्यापार बंद करने की कोशिश की। ईस्ट इण्डिया कम्पनी का भारत में अफीम के व्यापार पर एकाधिकार था। इस प्रकार अंग्रेजों का दोहरा लाभ था। चीन के सम्राट ने अंग्रेज व्यापारियों की अफीम जब्त कर ली और भविष्य में अफीम न लाने के लिए जमानत मांगी। भारतीय सिपाहियों के बल पर अंग्रेजों ने युद्ध छेड़ दिया। इस दौरान में ही वे अफगानिस्तान में पिटे। इसलिए अगस्त, सन् १८४२ में उन्होंने चीन से भी संधि कर ली। उन्हें हांककांग का बंदरगाह मिला। क्वांगतुङ्ग से शांघाई तक के पांच बंदरगाह खोल दिये गये और इनमें मुक्त व्यापार का अधिकार भी उन्हें मिल गया। यही युद्ध चीन के इतिहास में प्रथम अफीम युद्ध के नाम से विख्यात है।

† एस० सी० सेन, कलकत्ता—अंग्रेजी दैनिक 'स्टेट्समैन' के २१ जुलाई, सन् १९५५ के अंक में पत्र।

★भारत सरकार के पुरातत्व विभाग के डाइरेक्टर डा० एन० दत्त मजूमदार के कथनानुसार अवशेष नंदादेवी या गौरी के तीर्थयात्रियों के ही होंगे —'स्टेट्समैन' दिल्ली संस्करण—पृ० सं०७—१५ जून, १९५६.

में उनका विवरण अनावश्यक है। उपर्युक्त बातों का उल्लेख भी केवल इस दृष्टि से किया गया है कि लगभग सौ वर्षों से अधिक समय के बाद इस घटना पर नया प्रकाश पड़ा है जो इतिहास के पाठकों के लिए काफी रुचिकर है।

सन् १८४१ में शेरसिंह के गद्दी पर बैठने के बाद राज्य में जो अव्यवस्था और मारकाट, खून-खराबी शुरु हुई, वह बंद नहीं हुई। अंग्रेजों की दाल न गलने देने के लिए कुछ समय तक सिख सेना संभल अवश्य गयी लेकिन शीघ्र ही उपद्रव का क्रम शुरु हो गया। फिर भी सिखों की ताकत में अंतर न पड़ा। डोगरा सरदार गुलाबसिंह के सेनापति जोरावरसिंह के अभियान का उल्लेख किया जा चुका है। इस समय तक गुलाबसिंह स्वतंत्र शासक न था बल्कि सिख सलतनत के मातहत ही रहा। उधर डोगरा गरतोक तक बढ़ गये थे और इधर सिखों ने सन् १८४३ में उत्तर-पश्चिम में गिलगित पर कब्जा कर लिया था। यह उनकी अंतिम विजय थी। इसके पश्चात् आपसी फूट ने जोर मारा। अंग्रेजों ने अपना कुचक्र जारी किया। सितम्बर, सन् १८४३ में शेरसिंह उसका बेटा और वजीर ध्यानसिंह एक षड्यन्त्र में फंसकर मारे गये। ध्यानसिंह का बेटा हीरासिंह वजीर बना और रणजीतसिंह की छोटी रानी जिन्दा के पंचवर्षीय पुत्र दिलीपसिंह का राज तिलक हुआ। यह जमाना गवरनर जेनरल एलिनबरो का था। पंजाब पर विजय की जिसकी अभिलाषा का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है।

सिखों में फूट की आग भड़कती रही। उन्हें सम्भालने वाला कोई न रहा। दिसम्बर, सन् १८४४ में रानी के भाई जवाहरसिंह ने वजीर हीरासिंह को गोली मार दी और लालसिंह नामक व्यक्ति से मिल कर उसने नया शासन कायम कर लिया। सेना के पंचों का रुख डोगरा सरदार गुलाबसिंह के विरुद्ध था और वे राज्य की आय बढ़ाने के लिए उससे जागीर वापस लेना चाहते थे। जवाहर-सिंह ने समझौता करके मामला निपटाना चाहा लेकिन पंचों ने जम्मू पर चढ़ाई कर दी। गुलाबसिंह ने काफी धन देकर अपना पीछा छुड़ाया और दो वर्ष बाद उसने सन् १८४६ में जम्मू-कश्मीर राज्य की स्थापना की।

जवाहरसिंह के किये कुछ होता न था। सेना का प्रभाव सर्वोपरि था। इस बीच ऐसी घटना घटी कि जवाहरसिंह को जान से हाथ धोना पड़ा। अटक में विद्रोह करने वाले रणजीतसिंह के एक दत्तक पुत्र को पकड़वा कर उसने कतल करवा दिया। इससे क्षुब्ध हो कर सिख सेना की पंचायत ने उसे गोली मरवा दी। उसका पद डोगरा गुलाबसिंह को सौंपने का निश्चय हुआ लेकिन वह नहीं आया। तब यह पद लालसिंह को और प्रधान सेनापति का पद तेजसिंह नामक व्यक्ति

को सौंपा गया ( सन् १८४५ )। इन दोनों ने अंग्रेजों से मिल कर पंजाब की पीठ में छुरा भोंका और सिख सेना को धोखा दे कर उसका विनाश किया। दर असल ये उन स्वार्थी जागीरदारों में से थे जो शस्त्र-सज्जित सेना के तेजोबल से घबरा उठे थे और चाहते थे कि किसी प्रकार अंग्रेज इसका अन्त कर दे।

पंजाब पर आक्रमण की तैयारी एलिनबरो के समय में ही शुरु हो गयी थी। पहली अगस्त, सन् १८४४ में जब हार्डिंज गवरनर जेनरल हो कर आया तो उसने भी तैयारी जारी रखी। उसके समय में लालसिंह के वजीर बनने तक जो घटनाएँ राजा रणजीतसिंह की सलतनत मे घटीं, उनकी ओर संकेत किया जा चुका है। अन्ततः वह दिन भी आ पहुँचा जब अंग्रेजों ने अपना अभियान आरम्भ कर दिया। अक्तूबर, सन् १८४५ में गवरनर जेनरल हार्डिंज पंजाब की ओर रवाना हुआ। एक मास में वह अंबाले में अंग्रेजी सेना के प्रधान सेनापति गफ से आ मिला। इस बीच लाजसिंह और तेजसिंह ने सिख सेना को धोखा देने की पूरी तैयारी कर ली। पहले तो वतन और धर्म के नाम पर उन्होंने सिखों को अंग्रेजों के विरुद्ध उभाड़ा और जब वे अंग्रेजों से लोहा लेने के लिए कमर कस कर मैदान में उतरे तो धोखा देकर उनका नाश करा दिया।

अम्बाले से अंग्रेज सेना फिरोजपुर की ओर बढ़ी। इसी समय सिख सेना फिरोजपुर के ऊपर सतलज के पार आ गयी। यहाँ पर थोड़ी सी अंग्रेज सेना थी। सिख सेना सरलता से अंग्रेजों की यह छावनी उध्वस्त् कर सकती थी। लेकिन लालसिंह और तेजसिंह उसे बहका कर फिरोजपुर से आगे लगभग बीस मील दूर मुदकी गांव मे ले गये। यहां लालसिंह ने गफ के नेतृत्व मे रहने वाली अंग्रेज फौज से सिख सेना के एक अंश को भिड़ा दिया। कहा जाता है कि लालसिह के षडयंत्र के कारण सिखों को यहां छर्रों की जगह पर सरसों के दाने और बारूद की जगह रंगा हुआ आटा मिला। फलतः सिख सेना पीछे ढकेल दी गयी और गफ फिरोजपुर की सेना से आ मिला। सिखों ने भी लौट कर फिरोजशहर में अंग्रेजों का जबरदस्त मुकाबिला किया। लालसिंह के विश्वासघात के बावजूद उनका साहस भंग नहीं हुआ था। उनकी शूरता, उनका सधा हुआ निशाना और उनकी जवाँमर्दी देखकर अंग्रेजों के होश फाख्ता हो गये। वे बचाव का युद्ध करने लगे लेकिन सिखों ने उन्हें दबोचना बन्द न किया। वे जहां छावनी डालते, सिख सेना वहां धमक जाती और आग बरसाने लगती। अंततः अंग्रेजों के पैर उखड़ गये और विजय श्री ने अपने नायकों से ही धोखा खाने वाली सिख सेना के ही गले में जयमाल डाली।

अंग्रेज सेना फिरोजपुर की ओर लौटी। इस समय तेजसिंह बची हुई सेना को लेकर उपर्युक्त सिख सेना से मिल कर अंग्रेजों पर हमला करता तो वह अंग्रेजों के टुकड़े-टुकड़े उड़ा देती लेकिन उस गद्दार ने उल्टे आक्रमणकारी सिख सेना का रास्ता उस समय रोक लिया जिस समय गवरनर जेनरल हार्डिंज स्वयं भागने की तैयारी कर रहा था। सिखों के हाथ से जीती हुई बाजी निकल गयी वे सतलज के उस पार चले गये।

लालसिंह और तेजसिंह की गद्दारी के सम्बन्धमें विलियम एडवर्ड्स ने लिखा है—'यदि सिख सेना रात को आगे बढ़ आती तो निस्सन्देह हमारे लिए परिणाम घातक होता, क्योंकि हमारी यूरोपियों की सेना बहुत घट चुकी थी। तोपों और बन्दूकों के लिए गोला-बारूद करीब-करीब खत्म हो चुका था। उस समय हम यह न समझ सके कि सिखों की नयी सेना अपने साथियों की सहायता के लिए आगे क्यों न बढ़ सकी। किन्तु बाद में मुझे लाहौर में पता लगा कि सिखों के नेताओं ने यह बहाना लेकर सिखों को रोक रखा था कि आज का दिन लड़ाई के लिए अशुभ हैं। कारण यह था कि लालसिंह अपनी फौजों की विजय नहीं चाहता था। इसके विपरीत वह चाहता था कि अंग्रेज फौजें सदा के लिए सिख सेना को समाप्त कर दें।'*

सिखों की वीरता और सूरता से लार्ड हार्डिंज दहल गया था। उसने प्रचंड सैनिक तैयारी आरम्भ की और पटियाला के राजा को मिला लिया। वह सरहिन्द के प्रदेश में रसद आदि जुटाने लगा। इसी समय सिख सेना ने जिसका कोई नेता नहीं था, लुधियाने के सामने सतलज नदी पार की। मेजर जेनरल हैरी स्मिथ लुधियाना की रक्षा के लिए भेजा गया लेकिन अपने कौशल से सिखों ने उसे दम न लेने दिया और वह सामने से हट गया। इसके बाद ही सुबरांव का वह ऐतिहासिक युद्ध हुआ जिसमें सिख नेताओं ने सिख सेना अंग्रेजों से घिरवा कर कटवा दी और वीर सिख सैनिकों के खून से दरिया ए सतलज का रंग लाल हो गया।

लालसिंह और तेजसिंह को विश्वासघाती समझ कर सिखों ने जम्मू के राजा गुलाबसिंह को अपना नेता बनाना तय किया और उसे लाहौर आने को लिखा। राजा गुलाबसिंह ने आमंत्रण स्वीकार किया और डोगरों की

* विलियम एडवर्ड्स—'रेमिनिसेंसेज आव ए बंगाल सिविलियन' पृ० संख्या ६७, श्री सुन्दर लाल लिखित 'भारत में अंग्रेजी राज' नामक पुस्तक में उद्धरित।

विश्वस्त पहाड़ी सेना के साथ लाहौर पहुँचा लेकिन उसे देर हुई। इस बीच लुधियाना वापस लौट कर नयी ना के साथ हैरी स्मिथ अलीवाल और बुन्दरी गांव पहुँच गया था जहां उपर्युक्त सिख सेना के दस्ते से उसकी मुठभेड़ हुई। यहां दर असल लड़ाई हुई नहीं किन्तु अपनी गिरी हुई प्रतिष्ठा ऊँची करने के लिए अंग्रेजों ने इसका खूब प्रचार किया। इसका असर सिख सेना पर तो न पड़ा लेकिन गुलाबसिंह की हिम्मत पस्त हो गयी और वह भी गद्दार हो गया।

लाहौर पहुँच कर उसने दरबार को यह समझाया कि किले की रक्षा मैं कर लूँगा। मुख्य सेना अंग्रेजों का मुकाबला करने के लिए सुबरांव भेज दी जाय। यह उसका बहाना था। वास्तव में वह अंग्रेजों के इरादे से उसी तरह परिचित था जिस तरह लालसिंह और तेजसिंह परिचित थे। सुबरांव में इन तीनों ने सिख सेना के साथ जबरदस्त विश्वासघात किया। इसके संदर्भ में इतिहास लेखक कनिंघम ने लिखा है—'अंग्रेजी और सिख सेनाओं के नेताओं में यह पहले ही तय हो चुका था कि अंग्रेजों का हमला होने पर सिख नेता फौज छोड़ कर अलग हो जाय, उसे कट जाने दें, सतलज पार करने में अंग्रेजों का विरोध न करें और लाहौर तक की सड़क अंग्रेजों के लिए मुक्त कर दें।'*

गुलाबसिंह के सुझाव के अनुसार सिखों की मुख्य सेना सतलज के पूर्व सुबरांव में जमा हुई। वहां उन्होंने मोर्चेबन्दी की। बांये ओर मोर्चेबन्दी सुदृढ़ थी लेकिन दूसरी ओर बालू के कारण मोर्चेबन्दी ठीक न हो सकी। इधर षड़यंत्रकारी तेजसिंह आ डटा। १० फरवरी, सन् १८४६ को एकदम तड़के इस ओर ही अंग्रेज सेना बढ़ी और सूर्योदय होते-होते उसकी तोपों ने आग उगलनी शुरू की। सिखों ने ईंट का जवाब पत्थर से दिया। तीन घण्टे तक की लगातार गोलाबारी के बावजूद अंग्रेज सिखों को दहला न सके। तब पैदल अंग्रेज सेना आगे बढ़ी। तेजसिंह मौका देख कर सतलज पार भाग गया। इस पर अंग्रेज दाहिनी ओर से भी बढ़े। इधर डटी सिख सेना ने उनको अनेक बार पीछे ढकेल दिया लेकिन सिख नेतृ-विहीन थे और अंग्रेज सेना का संचालन कुशल सेनापति कर रहे थे। अंततः बाजी अंग्रेजों के हाथ रही। सिखों की तोपों पर उनका कब्जा हो गया। इस पर भी सिख सैनिकों ने मैदान

---

* कनिंघम— 'हिस्ट्री आव सिक्खस' पृ० सं० ३२४

न छोड़ा। अपनी तलवार और छिटपुट तोपों के बल पर वे अंग्रेजों का मुकाबिला करते रहे। लेकिन यह मुकाबिला कब तक चलता! दगाबाज सिख नेताओं के कारण पूर्व योजना के अनुसार सिख सेना दोनों ओर से घिर गयी और नदी की ओर ढकेली जाने लगी। इस पर भी उसने हथियार नहीं रखे। एक-एक सिख सैनिक अखिरी दम तक लड़ता रहा। उनका हौसला देख कर अंग्रेजों ने दाँतों तले अंगुली दबा ली। सतलज नदी लाशों से भर गयी। वीर सिख सैनिकों के रक्त से नदी का रंग लाल हो गया। गद्दार नेताओं के विश्वासघात ने राजा रणजीतसिंह की सलतनत का कलेजा चाक कर डाला।

मक्कारी और फरेब के कारण पराभूत सिख सैनिकों की लाशों को रौंदते हुए अंग्रेज सेना सतलज पार कर के लाहौर में दाखिल हुई। किले की रक्षा का वचन देने वाले गुलाबसिंह का पर्दा फाश हो गया। किसी ने अंग्रेज सेना पर गोली तक न चलायी। लाहौर दरबार ने मार्च, सन् १८४६ में अंग्रेजों के साथ संधि कर ली। बाद में यह संधि उन्हें ना काफी मालूम हुई क्योंकि खतरा था कि बची-खुची सिख सेना पुनः संघटित हो जायगी। फलतः दिसम्बर, १८४६ में उन्होंने दरबार को दूसरी संधि करने के लिए मजबूर किया। इस संधि के अनुसार जालंधर और सतलज नदी के पूर्व का प्रदेश अंग्रेजों को मिल गया। लड़ाई के हरजाने के लिए लाहौर दरबार से उन्होंने डेढ़ करोड़ रुपये लेने का भी फैसला किया। दरबार इतनी बड़ी रकम दे नहीं सकता था, अतः कश्मीर का प्रान्त गुलाबसिंह के हाथ एक करोड़ रुपये में बेच दिया गया। इसके बाद ही गुलाबसिंह जम्मू के साथ-साथ काश्मीर का भी राजा हो गया। रानी जिंदा शासन-कार्य से पृथक कर दी गयी और उसे वार्षिक पेंशन के रूप में डेढ़ लाख रुपये देना तय किया गया। दिलीपसिंह की नाबालिगी तक के लिए आठ सरदारों की एक परिषद बना दी गयी और तय किया गया कि अंग्रेज रेजिडेण्ट के आदेशानुसार परिषद काम करेगी। सिख सेना प्रायः समाप्त कर दी गयी और कम्पनी की सेना ने लाहौर में छावनी डाल दी। इस प्रकार प्रथम सिख युद्ध समाप्त हुआ।

इस युद्ध में सिखों की लगभग सवा दो सौ तोपें अंग्रेजों के हाथ लगी। इनमें से कुछ के सम्बन्ध में गवरनर जेनरल हार्डिंज ने यह मत प्रकट किया था कि इतनी बड़ी तोपें उस समय यूरोप में भी कहीं न थीं। इनकी मार प्रबल थी और काफी देर तक इनसे लगातार गोलंदाजी की जा सकती थी। अंग्रेजों की तोपें इनके सामने तुच्छ थीं।

पंजाब पर विजय प्राप्त करने के कारण गवरनर जेनरल हार्डिंज को 'लार्ड' की उपाधि मिली और वह लार्ड हार्डिंज कहलाने लगा। कम्पनी ने उसे तीन हजार पौण्ड वार्षिक पेंशन के रूप में देना भी इसलिए ही स्वीकार किया।

हार्डिंज ने शिवाजी के वंशज और सतारा के पदच्युत राजा को भी जेल में घुला घुला कर मार डाला।

१८ जनवरी, सन् १८४८ को वह भारत से वापस लौट गया और लार्ड डलहौजी उसके स्थान पर गवरनर जेनरल नियुक्त हो कर भारत आया।

———

# डलहौजी की अपहरण नीति

**द्वितीय सिख युद्ध—चिलियानवाला में अंग्रेजों की पराजय—पंजाब अंग्रेजी राज में—पेगू पर अंग्रेजों का अधिकार—डलहौजी की अपहरण नीति—वाजिद अलीशाह पर जुल्म।**

लार्ड डलहौजी भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार करने वाला अंतिम गवरनर जेनरल था। उसने अपहरण नीति अपना कर भारत को पूरी तरह ब्रिटिश शासन के पंजे में जकड़ दिया। इस नीति के फलस्वरूप ही उसके आगमन के नौ वर्षों के बाद सन् १८५७ में भारत के एक बड़े भाग में विद्रोहाग्नि की प्रचंड ज्वाला धधक उठी। यह विद्रोह सफल हो जाता तो सम्भवतः लार्ड डलहौजी ही यहाँ ब्रिटिश साम्राज्य के ध्वंस का मूल भी माना जाता।

साम्राज्य-विस्तार की अपनी आसुरी पिपास को शान्त करने के लिए उसने न्याय का गला घोंटा, मनुष्यता का रक्त चूसा और बचे-खुचे भारतीय राजाओं की हस्ती को फना कर डाला। पंजाब को पामाल करके ब्रिटिश राज्य मे मिलाने का श्रेय इसको ही है।

लाहौर का अंग्रेज रेजिडेण्ट करी बहुत धूर्त था। पंजाब की शेष ताकत उसकी आँख मे शूल की तरह चुभती थी। वह इसे भी नेस्तनाबूद करना चाहता था। उसके प्रभुओं का इस इरादे से विरोध नहीं था। उनकी संगीने सदा उसकी मदद के लिए तैयार थीं। इसके भरोसे पंजाब के शासन पर शिकंजा कसने की काररवाई में वह लिप्त हुआ। शासन के सभी महत्त्वपूर्ण पदों से देशियों को हटाकर उसने अंग्रेजों को सत्तारूढ़ करना आरम्भ कर दिया। दूसरी ओर उसने पश्चिमी पजाब के मुसलमानों को सिखों के विरुद्ध उभाड़ना शुरू कर दिया। उसकी इन काररवाइयों से पंजाबियों मे असन्तोष बढ़ने लगा। अपने ही देश मे अपना अपमान उन्हें जहर का घूँट प्रतीत होने लगा। भीतर ही भीतर वे उबाल खाने लगे। इसी समय एक घटना घटी जिसके बाद अंग्रेजों और सिखों में एक बार और ठन गयी।

मुलतान को हड़पने के इरादे से अंग्रेज तरह-तरह की चालें चलने लगे थे। रणजीतसिंह ने सावनमल को यहाँ का दीवान बनाया था। उसकी मृत्यु

के बाद उसका पुत्र मूलराज उत्तराधिकारी हुआ। अपने पिता की भाँति वह भी बहुत योग्य था। उसकी प्रजा संतुष्ट, सुखी और समृद्ध थी। अंग्रेज यह कैसे गवारा करते ? करी ने अनेक षड़यंत्र रच कर उसे त्याग-पत्र देने को बाध्य किया और काहनसिंह तथा एगन्यू और एण्डरसन नामक दो अंग्रेजों को मुलतान का शासन संभालने के लिए वहाँ रवाना किया। काहनसिंह को मुलतान का शासन मूलराज ने सुपुर्द कर दिया। अंग्रेज अफसरों ने शहर के सब रास्तों पर अंग्रेज सैनिक तैनात कर दिये। मुलतान निवासियों का वीरोचित अभिमान अंग्रेजों की षड़यंत्र पूर्ण काररवाई को गवारा न कर सका। वे बागी हो गये और १९ अप्रैल, सन् १८४८ में उन्होंने अंग्रेज अफसरों पर हमला कर दिया। अंग्रेजों के रक्षक भारतीय सैनिक उनसे मिल गये। प्रजा के आह्वान पर मूलराज ने उसका नेतृत्व संभाल लिया। एगन्यू और एण्डरसन मौत के घाट उतार दिये गये। इस घटना की आड़ में अंग्रेजों ने एक ढेले से दो शिकार मारने चाहे। उन्होंने नाबालिग राजा दिलीपसिंह की मा रानी जिन्दा पर मूलराज को उभाड़ने का दोषारोप करते हुए उसे नुरुद्दीन नामक दरबारी की सहायता से गिरफ्तार कर के बनारस भेज दिया जहाँ से भाग कर उसने नेपाल में शरण ली। नुरुद्दीन रणजीतसिंह के विश्वस्त मन्त्री अजीजुद्दीन का भाई था।

महारानी की गिरफ्तारी का समाचार सुन कर खालसा सैनिक विचलित हो उठे। उनका जोश भड़क उठा। तलवारें म्यान से बाहर खींचने के लिए भुजाएँ फड़क उठीं लेकिन वे किंकर्तव्यविमूढ़ थे। उन्हें यह सूझ नहीं पड़ता था कि लड़े तो किस के नेतृत्व में लड़े और किस के लिए लड़े। रानी बंदिनी थी। राजा दिलीपसिंह अंग्रेजों के कब्जे में था।

करी ने सिखों को सिखों से लड़ा कर उनका जोश समाप्त करने की कुटिल चाल चली। शेरसिंह नामक दरबारी के नेतृत्व में लाहौर से एक सेना मुलतान का विद्रोह दबाने के लिए वहाँ भेजी गयी। यह सेना मूलराज से जा मिली। अंग्रेज इस बात को जानते थे कि शेरसिंह भी बागी है, क्योंकि रानी की गिरफ्तारी के बाद बगावत के लिए वह सिखों का आह्वान कर चुका था। यह जानते हुए भी उसे मुलतान इसलिए भेजा गया था कि उसके साथ ही पंजाब पर भी कब्जा करने का बहाना सरलता से मिल जायगा। अंततः हुआ भी यही।

शेरसिंह का पिता चतरसिंह हजारा का हाकिम था। कप्तान ऐबट उसका सलाहकार बना कर उसके पास ही नियुक्त किया गया था। चतरसिंह हरिपुर

में था। ऐबट मुसलमानों के धार्मिक जोश को उभाड़ कर और उन्हें प्रलोभन दे कर सिखों के विरुद्ध भड़का चुका था। उसने इनसे चतरसिंह को घिरवा दिया। यह समाचार पाकर शेरसिंह उत्तर की ओर बढ़ा और उसने अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। उधर चतरसिंह के मातहत सेना के अंग्रेज अफसर कर्नल कैनोरा ने विश्वासघात किया और ऐलान किया चतरसिंह की मदद करने वाला गोली से उडा दिया जायगा। तब चतरसिंह ने उसके हथियार छीनने के लिए अपने कुछ सैनिक भेजे। कैनोरा ने इन पर गोली चलाने का आदेश अपनी टुकड़ी के पंजाबी हवलदार को दिया। उसने हुक्म मानने से इनकार किया तो कैनोरा ने उसे कतल कर दिया। इसका बदला दो सैनिकों ने कैनोरा को मौत के घाट उतार कर लिया। चतरसिंह ने इन घटनाओं की ओर लाहौर दरबार और रेजिडेण्ट का ध्यान आकृष्ट किया। वहाँ होता क्या ? अंग्रेज तो पंजाब को हड़पने की फिराक में थे। बाध्य होकर चतरसिंह भी बागी हो गया।

रानी की गिरफ्तारी अफगानिस्तान के अमीर दोस्त मोहम्मद को भी बुरी लगी। उसने हजारा के कप्तान ऐबट को लिखा—'दिलीपसिंह की मा को कैद करके उसके साथ बेजा सलूक किया गया है। तमाम मजहबों के लोग इस सलूक को बेजा समझते हैं और छोटे-बड़े सभी, इसकी निस्बत मर जाना बेहतर समझते हैं....।' अंग्रेजों पर इसका कोई असर नहीं हुआ। यह कप्तान ऐबट की उपर्युक्त चालों से जाहिर है।

मुलतान से उत्तर की ओर आगे बढ़ने वाले बागी शेरसिंह का मुकाबिला करने के लिए अंग्रेजों का प्रधान सेनापति गफ लाहौर से रवाना हुआ। उधर मुलतान में मूलराज डटा रहा। चनाब के तट पर रामनगर में गफ और शेरसिंह की सेना में मुठभेड हुई लेकिन लड़ाई का फैसला न हो सका। कुछ समय बाद चिलियानवाला में फिर दोनों सेनाओं में मुठभेड़ हुई। अंग्रेजों के पास यद्यपि शेरसिंह से अधिक सैनिक थे तथापि अपने कौशल और अपनी वीरता के बल पर शेरसिंह ने अंग्रेज सेना का धुर्रा उड़ा दिया और उसे बुरी तरह परास्त किया ( १३ जनवरी, सन् १८४६ )। इस युद्ध में अंग्रेजों के तेइस हजार से अधिक सैनिक मारे गये या घायल हुए। बहुत से अंग्रेज अफसर भी खेत रहे। सिखों का दबदबा बढ़ गया। अंग्रेजों की जान पर आ बनी। महान् विजय की इस शुभ बेला में सिख सरदारों में मतभेद पैदा हो गया। गफ की बचीखुची सेना को जहन्नुम भेजने का सुनहला अवसर त्याग कर के न जाने क्यों शेरसिंह लाहौर की ओर रवाना हुआ। कहते हैं कि कुछ सिख सरदारों

ने उसे लाहौर की ओर बढ़ने को मजबूर किया था। अस्तु, गुजरात नामक स्थान पर फिर दोनों सेनाओं में भिड़न्त हुई। इस युद्ध में सिख सेना की पराजय हुई। वह पीछे हटी तो अंग्रेजों ने पीछा किया। अंत में रावलपिण्डी में सिखों ने आत्म-समर्पण कर दिया। मुलतान में नौ मास तक वीरतापूर्वक अंग्रेजों का सामना करते रहने के बाद मूलराज ने भी स्वयं को अंग्रेजों के हवाले कर दिया। इस प्रकार द्वितीय सिख युद्ध का अन्त हुआ। २९ मार्च, सन् १८४९ को गवरनर जेनरल डलहौजी ने लाहौर दरबार की समाप्ति और पंजाब को अंग्रेजी साम्राज्य मे मिलाने की घोषणा कर के सिखों के इस स्वतन्त्र राज्य को भी समाप्त कर दिया। पहले इसके शासन के लिए एक बोर्ड नियुक्त किया गया, बाद में इसे चीफ कमिश्नर का प्रान्त बना दिया गया।

मक्कारी और फरेब की कहानी का अत यही नहीं हो जाता। उसकी पुनरावृत्ति पुनः हुई। इस बार शिकार बना बरमा। बरमा के पेगू प्रान्त पर अंग्रेजों की नजर गडी हुई थी। इसे स्वर्ण भूमि कहा जाता था। अंग्रेज समझने लगे थे कि यहाँ सोने की खानें हैं। अपना इरादा पूरा करने के लिए वे बहाना ढूढ़ रहे थे। वह भी उन्हें मिल गया। रंगून की अदालत ने शैपर्ड और लुई नामक दो अंग्रेजों को हत्या के जुर्म मे १०१ और ७० पौंड जुर्माने की सजा दी। डलहौजी के लिए इतना काफी था। अपना काला इरादा पूरा करने के लिए उसने यह फैसला किया कि बरमा की सरकार शैपर्ड और लुई को क्रमशः ३५० और ५६० पौण्ड बतौर हरजाना दे। इसका कोई अधिकार उसे प्राप्त न था। रंगून की अदालत उसके मातहत न थी और अपने अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत होने वाले अपराधों के दोषियों को दण्डित करने का उसे पूर्ण अधिकार था।

हरजाने की वसूली के लिए डलहौजी ने दो जहाज भेजे। बरमा का राजा युद्ध नहीं करना चाहता था। उसने हरजाना देना और साथ ही रंगून के गवरनर को हटा देना भी स्वीकार किया। डलहौजी को भला इससे सन्तोष क्यों होता? उसने एक झूठा इलजाम लगा कर बरमा का जहाज छीन लिया और इसके बाद ११ अप्रैल, सन् १८५२ को अकारण ही अंग्रेजों के जंगी जहाजों ने रंगून और उसके समीपवर्ती क्षेत्र पर गोले बरसाना आरम्भ कर दिया। अंग्रेजों ने खूब नर-संहार किया। उन्होंने बरमी लोगों को भी लूटा और राजा से हरजाने के रूप में एक लाख पौण्ड की माँग की। यह भी बहाना था। इसकी आड़ में उन्होंने अन्ततोगत्वा पेगू पर कब्जा कर के उसे भारत के अंग्रेजी

साम्राज्य में मिला ही लिया। अनेक अंग्रेज इतिहासकारों ने भी डलहौजी के इस कार्य की निन्दा खुले शब्दों में की है।

युद्धों का यहीं अन्त हो गया। इसके पश्चात् डलहौजी ने कहीं युद्ध तो नहीं छेड़ा लेकिन जालसाजी और दगाबाजी के सहारे आठ और रियासतें ब्रिटिश साम्राज्य में अवश्य मिला ली। 'अपहरण नीति' का सहारा लेकर उसने सतारा, नागपुर, झाँसी, सम्बलपुर, जैतपुर, तंजोर, बरार और कर्नाटक को हड़प लिया। इसे इतिहास में 'लैप्स' की नीति बताया गया है। संक्षेप में इसका मतलब यह रहा कि जिन देशी नरेशों ने अंग्रेजों से मित्रता की थी अथवा यों कहा जाय कि जिनके पूर्वजों के बल पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी अपना साम्राज्य कायम कर सकी थी, उनमें से जिसका उत्तराधिकारी नहीं था, वह उपर्युक्त नीति के अनुसार किसी को गोद नहीं ले सकता था। अंग्रेज ऐसे गोद लिये जाने वाले को उत्तराधिकारी मानने से इनकार कर देते जो उनकी रजामन्दी से गोद नहीं लिया जाता था। गोद लेने की अनुमति वे अधीन राज्यों के शासकों को ही देते। यह नयी नीति नहीं थी। डलहौजी से पूर्व अंग्रेजों ने इसके बल पर ही कोलाबा, माण्डवी और अम्बाला की रियासतों पर कब्जा किया था। सन् १८३४ में लार्ड विलियम बेंटिक ने इसकी आड ले कर ही कचार और कुर्ग को अंग्रेजी राज्य मे मिलाया था।

सबसे पहले डलहौजी ने सतारा पर कब्जा किया। यह पहले ही बताया जा चुका है कि सतारा के राजा प्रतापसिंह को उसने बनारस की जेल मे सड़ा कर मार डाला (१८४८)। बन्दी पति के गम मे घुल-घुलकर रानी पहले ही मर चुकी थी। अपनी मृत्यु से पूर्व प्रतापसिंह ने एक बालक को गोद लिया था लेकिन इसके लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी की अनुमति नहीं प्राप्त की थी। अंग्रेज हुकूमत ने उसे उत्तराधिकारी मानने से इनकार कर दिया और सतारा को हड़प लिया।

११ दिसम्बर, सन् १८५३ मे नागपुर के अंतिम राजा राघोजी भोंसले की मृत्यु हुई। उसका कोई पुत्र न था। रानो ने विधिवत् यशवंतराव नामक सम्बन्धी को गोद लिया। इसने ही राघोजी का पिंडदान और श्राद्ध किया। अंग्रेज हूकूमत ने इसको भी अँगूठा दिखा कर नागपुर पर कब्जा जमा लिया। नागपुर की रियासत के सम्बंध में सन् १८४४ मे गवरनर जेनरल ने यह स्वीकार किया था कि पुत्रहीन राजा को या इस अवस्था मे उसकी मृत्यु होने पर उसके सम्बन्धियों को यह अधिकार होगा कि उत्तराधिकार के लिए किसी को भी गोद

ले लिया जाय। डलहौजी ने इस वचन की हत्या कर के न केवल नागपुर पर कब्जा ही किया, वरन् उसे जी भर कर लूटा भी।

२१ नवम्बर, सन् १८५३ में झाँसी के निःसन्तान राजा गंगाधरराव की मृत्यु हो हुई। मृत्यु से पूर्व वह दामोदर राव नामक बालक को गोद ले चुका था लेकिन सतारा और नागपुर की भाँति डलहौजी ने झाँसी पर भी कब्जा जमा लिया। इसी प्रकार सम्बलपुर, जैतपुर, तंजोर और कर्नाटक की रिसायतों पर भी डलहौजी ने कब्जा किया। बरार पर उसने निजाम पर कम्पनी के कर्ज की वसूली के बहाने कब्जा किया। नवाब वाजिद अलीशाह पर अयोग्य होने का दोषारोप करके सन् १८५६ में उसकी रियासत हड़पने का ऐलान भी डलहौजी ने कर दिया। वाजिद अलीशाह ने इसका विरोध किया तो अंग्रेजों ने उसके महल में घुस कर लूट-पाट की, बेगमों को बेइज्जत किया और वाजिद अलीशाह को कैद करके कलकत्ता भेज दिया। यह सलूक उस नवाब खानदान के साथ किया गया जिसने अंग्रेजों की मदद आँखें बन्द कर के की थी और सदा संधियों का पालन किया था।

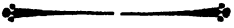
नवाब वाजिद अलीशाह पर अंग्रेजों ने जो जुल्म किये, हाल में उनका कुछ प्रमाणिक विवरण प्रकाश में आया है। अंग्रेजों ने जो दोष लगाये थे, नवाब वाजिद अलीशाह ने उनका लम्बा जवाब लिखकर ब्रिटेन की सम्राज्ञी विक्टोरिया के पास भेजा था। हाल ही में लखनऊ की अमीरुद्दौला पब्लिक लाइब्रेरी के के हाथ १८५७ के विद्रोह तथा उसके पूर्व का कुछ साहित्य लगा है। इसमें वाजिद अलीशाह द्वारा विक्टोरिया को लिखे गये पत्र की प्रतिलिपि भी है जो उर्दू में है। पत्र कई पन्नों का है। नवाब वाजिद अलीशाह ने इसमें लिखा था—"मेरे राज्य में फिरंगी अत्याचार कर रहे हैं। रेजिडेण्ट अपनी मनमानी कर रहा है। उनके दखल देने से मेरी रियाआ की तकलीफ बढ़ गयी है; अनाज के भाव बढ़ गये हैं। कुछ मनमाने कर लगा कर उससे धन वसूल किया जा रहा है।...लखनऊ के पास एक गाँव में एक अंग्रेज अफसर शिकार खेलने गया। उसके साथ एक कुत्ता भी था। गाँव की एक स्त्री ने साहब को नहीं देखा। कुत्ता स्त्री पर भौंकने लगा। स्त्री के हाथ में डंडा था। स्त्री कुत्ते को मारने दौड़ी। इसी वक्त अफसर ने स्त्री को गोली मार दी।"* यह पत्र सन् १८५५ में लिखा गया था। यह अंग्रेजों के अत्याचार पर अच्छी रोशनी डालने वाला है।

---

* नवजीवन' दैनिक ( नेशनल हेराल्ड प्रेस ) ३-११-५५ के अंक में।

बिठूर में सन् १८५१ में बाजीराव द्वितीय की मृत्यु हो गयी। उसने नाना साहब को गोद ले रखा था। जो पेंशन अंग्रेज बाजीराव को देते थे, डलहौजी ने वह बन्द कर दी और नाना साहब को उत्तराधिकारी स्वीकार नहीं किया। नाना साहब ने इस पर अपना प्रतिनिधि लन्दन भेजा। यही नाना साहब सन् १८५७ के विद्रोह के मुख्य संचालकों में थे।

मार्च, सन् १८५६ में लार्ड डलहौजी के स्थान पर लार्ड कैनिंग गवरनर जेनरल हुआ जिसके शासन-काल में अंग्रेजों के विरुद्ध भारत के बहुत बड़े भू-भाग में विद्रोह की ज्वाला धू-धू कर जल उठी और अंग्रेजी साम्राज्यवाद उसमें भस्मसात् होता प्रतीत होने लगा।



# प्रथम स्वातन्त्र्य युद्ध

सुनियोजित प्रयास—३१ मई—पादरियों का प्रचार—विद्रोह की चिनगारी मंगल पाण्डेय—मेरठ छावनी के सिपाही दंडित—१० मई को बगावत आरम्भ—बागी दिल्ली की ओर—दिल्ली की आजादी की घोषणा—अलीगढ़ में आग धधकी—बरेली में आजादी का झंडा लहराया—विद्रोह व्यापक—बंगाल में अंग्रेजी फौज का जमाव—अंग्रेजों द्वारा कत्ले आम - सिख पलटन की अंग्रेजपरस्ती—बनारस में अत्याचार—इलाहाबाद में अंग्रेजों के खूनी कारनामें - कानपुर में नाना की तैयारी—झाँसी में कम्पनी राज समाप्त—पुरुषों के वेश में औरतें लड़ाई के मैदान में—बागी अवध—दिल्ली के पास अंग्रेजों की हार—देशी नरेशों की गद्दारी—कानपुर हत्याकांड—अजनाला हत्याकांड—अंग्रेज सेना दिल्ली में दाखिल—बहादुर बख्त खां—बहादुर शाह पंचमांगियों के चक्कर में—शाहजादों का कत्ल और बहादुरशाह की गिरफ्तारी—नादिरशाह का कत्ले आम फीका—कानपुर में नाना का प्रचंड युद्ध—लखनऊ में घमासान—तात्यां ने कानपुर में अंग्रेजों को पछाड़ा—कुँअरसिंह का शौर्य—मौलवी अहमदशाह के साथ दगाबाजी—झांसी की रानी का ऐतिहासिक युद्ध—महाप्रतापी तात्यां अकेला ही भिड़ता रहा—राजपूत राजा की गिरफ्तारी—तात्यां का प्राणोत्सर्ग।

सन् १८५७ का सैनिक विद्रोह अंग्रेजी शासन के विरुद्ध प्रथम संघटित बगावत थी। इतिहास के अध्ययन की दृष्टि से इस विद्रोह के कई पहलू बहुत दिलचस्प हैं। इसमें दिल्ली से बनारस तक की जनता ने अच्छा-खास हिस्सा लिया। अंग्रेज शासन-सत्ता-जन्य अत्याचारों से पीड़ित सामन्तों और राजाओं का हाथ इसमें था ही। इस बगावत में धार्मिक भेद-भाव का कहीं पता तक न था। अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध जहाँ भी हुआ, हिन्दू और मुसलमान कन्धे से कन्धा भिड़ाकर लड़े। बीस-बाइस वर्षीया झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के युद्ध कौशल, उसकी निर्भीकता और वीरता की प्रशंसा युद्ध में भाग लेने वाले अंग्रेज सेनाधिकारियों ने भी की। नवाबों की बेगमें भी अपने कर्तव्य-पालन में पीछे न रहीं। दिल्ली के अन्तिम सम्राट बहादुरशाह और बेगम जीनत

महल का इसमें खासा हाथ था और भारत की सभी रियासतों को अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध-रत करने की उन्होंने पर्याप्त कोशिश की थी।

बंगाल और दक्षिण भारत को छोड़कर, शेष भाग की जनता भी युद्ध में भाग लेने को व्याकुल थी लेकिन इस क्षेत्र के सामन्त और राजा ही कापुरुष निकले। ग्वालियर, इंदौर, भरतपुर, टोंक, जयपुर और झालावाड़ आदि रियासतों मे घटने वाली घटनाओं ने यह सिद्ध किया कि जनता अंग्रेजों से जूझने के लिए तैयार थी। उसे राजाओं ने दबा रखा था। सैनिकों और जनता को जब-जब किसी बागी नेता का सहारा मिला, तब-तब वह राजाओं की अवहेलना कर के उससे मिल गयी और उसने बागी सेना का साथ दिया।

इस प्रसंग मे यह बहुत दिलचस्प बात है कि बागियों के विरुद्ध अंग्रेजों को सिखों से पर्याप्त सहायता मिली। बनारस को सिखों ने बचाया, दिल्ली में सिखों ने अंग्रेजों को फतह हासिल करायी, इलाहाबाद में सिख सैनिकों के बलबूते पर ही किले पर अंग्रेजी झण्डा लहराता रहा। यह आश्चर्य की बात है कि यह कैसे हुआ! डेढ़-दो वर्ष पहले ही अंग्रेजों ने खालसा सलतनत को तहस-नहस किया था। उनकी दगाबाजी की कहानी ताजी थी। उनके जुल्मों का दास्तां सिख डेढ़-दो वर्ष की अल्प अवधि मे भूल कैसे गये? यह अनुसंधान का विषय है। ऐसा प्रतीत होता है कि अंग्रेजो का साथ प्रायः सतलज के पूर्वी क्षेत्र के सिखों ने ही दिया था जो छः-सात वर्षों से अंग्रेजों के मातहत थे और जिनमे विभीषण काफी थे। सिखों के विरुद्ध होने वाले युद्ध में भी अंग्रेजों को इनसे सहायता मिली थी। पटियाला, नाभा और जिंद के राजाओं ने १८५७ मे खुले आम अंग्रेजों की मदद की। भूलना न चाहिए कि सन् १८४५ में फिरोजशहर के युद्ध के बाद ही अंग्रेजों ने पटियाला के राजा को अपनी ओर मिला लिया था।

कहा- कहीं काफी आड़े समय में मराठों की भी मदद अंग्रेजों को मिली। सिखों की भाँति ही गोरखों ने भी अंग्रेजों की मदद की।

सन् १८५७ के विद्रोह के सम्बन्ध में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण यह तथ्य अभी हाल में ही प्रकाश में आया है कि लुटेरे और डाकू कहे जाने वालों ने भी संघटित रूप में अंगेजों से युद्ध किया, उनके हमदर्दों को मौत के घाट उतारा और अंग्रेजी शासन पर चोट पहुँचायी। लार्ड हेस्टिंग्ज के शासन-काल में पिंडारियों की स्थिति का उल्लेख करते समय इस नये तथ्य का जिक्र किया जा चुका है और इस सम्बन्ध में हाल में ही प्राप्त विद्रोह-कालीन पत्रों से दो-तीन

उदाहरण दिये जा चुके हैं। इनके सम्बन्ध में होने वाला अनुसंधान काफी महत्त्वपूर्ण होगा।

विद्रोह व्यापक था। यह शक्तिशाली भी काफी था। फिर भी यह असफल रहा। इसका मुख्य कारण यह है कि विद्रोही सैनिक असंघटित और नेतृ-विहीन थे। पूरे विद्रोह को एक सूत्र में आबद्ध कर के सैनिक काररवाई का संचालन करने वाला प्रशाभावली व्यक्तित्व पूर्ण सेनाधिकारी कोई न था। फलतः अनेक अवसरों पर विजयी होने की स्थिति मे रहते हुए बाजी विद्रोहियों के हाथ से निकल गयी। दूसरी ओर मजे हुए अंग्रेज सेनाधिकारी थे।

यह कोरी बकवाद है कि मुसलमान बहादुरशाह के नेतृत्त्व मे मुगलराज्य और हिन्दू नाना साहब के नेतृत्त्व में हिन्दू राज्य स्थापित करने की चेष्टा कर रहे थे। यह निराधार कल्पना है। हिन्दू-मुसलमानों मे विभेद पैदा करने के लिए ही अंग्रेजों ने यह बेहूदा प्रचार किया होगा। उन्होंने सन् १८५७ की बगावत की, भारत के प्रथम स्वातत्र्य युद्ध की ही रगत बदलने मे कौन-सी कोर-कसर उठा रखी ? इससे सम्बन्धित तथ्यों को दबाने के लिए अंग्रेज शासकों ने क्या नहीं किया ? विद्रोह मे हिन्दू-मुसलमान का कोई सवाल न था। नाना साहब ने स्वयं नवाबों और बहादुरशाह के पास अंग्रेजों के विरुद्ध खड्गहस्त होने का पैगाम भेजा था। स्वयं बहादुरशाह ने प्रथम स्वातत्र्य सग्राम से पृथक रहनेवाले हिन्दू राजाओं का आह्वान किया था और ऐलान किया था कि 'अंग्रेजों को भारत से निकालने के बाद संघ कायम कर के भारत के शासन की व्यवस्था की जाय। सघ का निर्णय मुझे मान्य होगा।' अंग्रेजों ने विद्रोह के तथ्यों को जिस प्रकार छिपाने की चेष्टा की, उससे भी उनकी पोल खुल जाती है। उन्होंने हमेशा सन् १८५७ की बगावत को आकस्मिक बताने की कोशिश की। जब तक शासन-सत्ता पर कब्जा होने के कारण उनका वश चला, तब तक भारत मे जबान से यह कहना तक गुनाह समझा जाता रहा कि १८५७ की बगावत चंद सिपाहियों के दिमाग की फितूर न थी, बल्कि सुनियोजित संघटन और रचना का परिणाम था। अंग्रेज शासकों ने अपने शासन-काल में वे बातें भी न कहने दी, जो अंग्रेज इतिहासकार लिख गये हैं।

सर जान के ने लिखा है कि "महीनों मे, बल्कि वर्षों से वे अपने षडयंत्र का जाल सारे भारत में फैला रहे थे। एक देशी दरबार से दूसरे देशी दरबार, विशाल महाद्वीप भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक नाना साहब के एजेंट— सम्भवतः रहस्य-पूर्ण भाषा में लिखे पत्र विभिन्न जातियों और धर्मों के राजाओं

के पास पहुँचाते थे और उन्हें युद्ध में भाग लेने के लिए आमन्त्रित करते थे।"*

सर जार्ज ला ग्राण्ड जैकब ने लिखा है—"जिस आश्चर्यजनक गुप्त ढंग से षड़यंत्र रचा गया और जिस दूरदर्शिता से योजनाएँ बनायी गयी, जिस सावधानी से षड़यंत्रकारियों के प्रत्येक गुट ने एक में आबद्ध करने वाले सूत्रों को छिपा कर तथा उद्देश्य को ध्यान में रख कर पर्याप्त सूचना द्वारा हिदायतें देते हुए पृथक-पृथक काम किया, उसका वर्णन करना कठिन है। इन कार्यों की तुलना केवल उस सचाई से की जा सकती है जो वे एक दूसरे के प्रति बर्तते थे।"†

इसमें संदेह नहीं है कि सन् १८५७ का विद्रोह पूर्व नियोजित था और उसके लिए अत्यंत दूरदर्शिता, साहस और समझदारी से काम लिया गया था। मौलवियों, फकीरों, और भिखारियों के रूप में षड़यंत्रकारियों के नेताओं ने इसका व्यापक प्रचार किया था। इनमें अहमदशाह का नाम मुख्य है जिसे फैजाबाद के जेल में अंग्रेजों ने फाँसी पर लटकाने के लिए बंद कर दिया था किन्तु जो विद्रोहियों द्वारा मुक्त किया गया था और जिसने अंग्रेजों से जम कर लोहा लिया था।

यह कह सकना कठिन है कि षड़यंत्र की रचना का आरम्भ कैसे हुआ। अब तक इसके सम्बन्ध में यथेष्ट तथ्य प्रकाश में नहीं आये हैं। अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि इसमें नाना साहब के पैरवी कार अजीमुल्लाखाँ, और सतारा की रियासत के पैरवी-कार रंगों बापूजी, नाना साहब, वाजिद अलीशाह और बहादुरशाह आदि का मुख्य हाथ था।

जे० सी० विलसन और ह्वाइट आदि इतिहास लेखकों के कथनानुसार ३१ मई, सन् १८५७ का दिन सभी स्थानों पर एक साथ बगावत करने के लिए निर्धारित था। लेकिन बगावत पहले ही हो गयी। असमय में ही ज्वाला धधकने की पृष्ठ-भूमि बिलकुल साफ है। उसका परिणाम भी बिलकुल स्वाभाविक था। सन् १८५६ में ईसाई धर्म के प्रचार का हथकण्डा पूरी रफ्तार से चालू था। इस बात की काफी शोहरत हो चुकी थी कि अंग्रेज भारतीयों को धोखा दे कर धर्म-भ्रष्ट कर रहे हैं। यह दिखाई भी देता था। ईसाई पादरी खुले आम

---

* जान के—'इण्डियन म्युटिनी' प्रथम खण्ड, पृष्ठ संख्या—२४—श्री सुन्दरलाल लिखित 'भारत में अंग्रेजी राज' में उद्धरित—पृष्ठ सं० १३८७

† उपर्युक्त पुस्तक में उद्धरित—पृष्ठ संख्या—१३८६

मुसलमानों के पैगम्बरों तथा हिन्दुओं के देवताओं का मजाक उड़ाते थे। इसी पृष्ठ-भूमि में बैरकपुर की पलटन के मंगल पाण्डेय नामक सिपाही के सामने यह बात आयी कि पलटन को जो नये कारतूस दिये गये हैं और जिन्हें दाँत से काटना पड़ता है, उनमें सूअर और गाय की चर्बी मिली है। मंगल पाण्डेय यह सुन कर तमतमा उठा। उसने छावनी के अन्य सिपाहियों को यह समाचार सुनाया। उन लोगों को भी क्रोध आया। छानबीन करने पर बात सही पायी गयी। बगावत के नेताओं को यह समाचार मिला तो उन लोगों ने गुप्त रीति से इस बात की काफी कोशिश की कि कारतूसों का मामला तूल न पकड़े लेकिन उनकी सारी चेष्टा विफल हुई। फरवरी, सन् १८५७ को बैरकपुर की १९ वीं पलटन ने नये कारतूसों को व्यवहार में लाने से इनकार कर दिया। अंग्रेज घबरा गये; क्योंकि बंगाल में उस समय गोरी पलटन न थी। उन्होंने तुरन्त बरमा से पलटन मँगा कर सिपाहियों से हथियार रखवाने का इरादा पक्का किया। इसका पता जब सिपाहियों को चला तो उनका रोष और भड़क उठा। उन्हें ३१ मई तक शान्त रखने की काफी कोशिश फिर भी की गयी लेकिन क्षुब्ध सिपाहियों का रोष काबू में न आया। २९ मार्च, सन् १८५७ को मंगल पाण्डेय ने विद्रोह के लिए अपने सहयोगियों का आह्वान किया और स्वयं सारजेंट मेजर ह्यूसन को अपनी गोली का निशाना बना डाला। हस्तक्षेप करने के उद्देश्य से गोली चलाने वाले एक अन्य अंग्रेज अफसर के वार से बच कर मंगल पाण्डेय ने अपनी तलवार से उसे भी ढेर कर दिया। इस अवसर पर सिपाहियों ने अपने अंग्रेज अफसरों का हुक्म न माना और मंगल पाण्डेय को गिरफ्तार करने से इनकार तो किया लेकिन स्वयं बगावत न की। हो सकता है कि ३१ मई की तिथि उनके दिमाग में चक्कर काट रही हो। मंगल पाण्डेय ने आत्महत्या करने की कोशिश की लेकिन कामयाब न हुआ। अंग्रेजों ने उसे पकड़ कर फाँसी पर लटका दिया। बैरकपुर की १९वीं और ३४वीं पलटनों से अंग्रेजों ने हथियार रखवा लिये और षड़यंत्र करने का अभियोग लगा कर दोनों पलटनों के सूबेदारों को भी फाँसी पर लटका दिया। दोनों पलटनें विघटित कर दी गयीं। इन्हें क्रान्ति के लिए वाजिद अलीशाह के वजीर अली-नकी खाँ ने तैयार किया था। इनके विघटन से बंगाल में खाई पड़ गयी।

यह बात सारे उत्तर भारत में फैल गयी। सभी जगह भारतीय सैनिक बेताब हो गये। अंग्रेज भी गाफिल न थे। परीक्षा के लिए ६ मई को उन्होंने मेरठ की छावनी के ९० सैनिकों को इस्तेमाल के लिए नये कारतूस दिये। सिपाहियों ने इनकार किया तो अंग्रेज अफसरों ने चालाकी से उनके सामने तोपें रखवा-

कर उनकी वर्दी उतरवा ली और उन्हें दस-दस साल की सख्त कैद की सजा दी। शेष सैनिक क्रोध का घूंट पीकर रह गये। तीन दिनों के बाद ९ मई को वे शहर में निकले तो स्त्रियों ने ताना कसा—'तुम्हारे भाई जेल में हैं और तुम मक्खियाँ मार रहे हो।' यह बात उन्हें लग गयी। उन्होंने उसी रात को अपने आदमी नाना साहब और बहादुरशाह के पास रवाना कर दिये और दूसरे दिन अर्थात् १० मई को उन्होंने बगावत कर दी। जेल खाने तोड़ डाले गये। अंग्रेजों के बँगले फूक दिये गिये। कई अफसर मौत के घाट उतार दिये गये। चारो ओर क्रान्ति की आवाज गूंज उठी। मेरठ की बागी घुड़सवार पल्टन दिल्ली की ओर रवाना हुई। वह दिल्ली पहुँच ही रही थी कि ५४वीं पल्टन का अधिकारी कर्नल रिपले, उसका सामना करने के लिए आगे बढ़ा लेकिन उसकी पलटन विद्रोहियों से मिल गयी। रिपले का काम तमाम कर दिया गया। संयुक्त सेना दिल्ली में दाखिल हुई और यहाँ पुनः मेरठ काड की पुनरावृत्ति हुई। शीघ्र ही मेरठ की पैदल सेना और तोपखाना भी दिल्ली पहुच गया। पहले तो बहादुरशाह कुछ परेशान हुआ लेकिन फिर उसने उनका नेतृत्त्व करना स्वीकार कर लिया।

दिल्ली मे अंग्रेज पलटन न थी लेकिन गोला-बारूद का बहुत बड़ा भंडार वहाँ अवश्य था। लेफ्टिनेंट विलोबी चंद सिपाहियों के साथ उसका रक्षक था। विद्रोही सेना ने उससे इस भंडार को सौंपने की माँग की। उसने इनकार किया। विद्रोहियों से देशी सिपाही मिल गये। रह गये केवल नौ अंग्रेज। उन्होंने गोला-बारूद के भंडार मे आग लगा दी। अंग्रेज तो मर ही गये। बहुत से नगर-निवासी भी परलोक सिधारे। इसके बावजूद हजारों बूंदके बागियों के हाथ लग गयी। इस काम मे जरा जल्दबाजी न की गयी होती तो गोला-बारूद का यह विशाल भंडार विद्रोही सेना के हाथ लग सकता था। अस्तु, १६ मई को दिल्ली की आजादी की घोषणा कर दी गयी। बिजली की तरह यह समाचार बनारस और पटना तक फैल गया।

२० मई को अलीगढ़ की पलटन ने भी बगावत कर दी लेकिन उसने अंग्रेजों को अपनी जान बचा कर शहर से निकल जाने का मौका दे दिया। २३ मई को मैनपुरी की सेना ने भी यही किया और वहाँ का गोला-बारुद लेकर दिल्ली की ओर बढ़ी। इसी दिन इटावा में भी बगावत हो गयी। बागियों ने कम्पनी के खजाने पर कब्जा कर लिया और जेल के फाटक तोड़ दिये। इन्होंने भी असैनिक अंग्रेज स्त्री-पुरुषों-बच्चों को कुछ नहीं कहा और उन्हें भाग जाने का मौका दिया।

२८ मई को अजमेर के निकट नसीराबाद में मेरठ के कुछ सिपाही बगावत

का पैगाम लेकर पहुँचे। फलतः यहाँ भी सैनिकों ने अंग्रेजों पर हल्ला बोल दिया और दिल्ली की ओर रवाना हुए।

बागी सिपाही यद्यपि १४ मई को ही बरेली पहुँच गये थे यथापि यहाँ की सेना पूर्व निर्धारित तिथि तक शान्त रही। ठीक ३१ मई को उसने अंग्रेज अफसरों पर हमला करना आरम्भ कर दिया। कई अफसर मारे गये। बचे-खुचे अंग्रेज जान बचा कर नैनीताल भागे। यहाँ बगावत का नेतृत्व रुहेला नवाब के वंशज खानबहादुर खाँ ने किया। इसने अंग्रेजों के साथ इतनी होशियारी से व्यवहार किया कि किसी तरह का शक अन्त तक न पैदा हो सका। ३१ मई को मुगल सलतनत का झण्डा बरेली मे लहरा दिया गया। तोपखाने के सूबेदार बख्त खाँ ने सैनिकों की कमान सम्भाल ली और सैनिकों ने खान बहादुर खाँ को सूबेदार स्वीकार कर लिया गया। इसी दिन शाहजहाँपुर भी स्वाधीन हो गया। मुरादाबाद की पल्टन ने परेड के मैदान मे ही दो घंटे के अन्दर शहर छोड़ने का अल्टिमेटम अंग्रेजों को इसी दिन दिया। यहाँ का अंग्रेज कमिश्नर जान बचाने के लिए मुसलमान हो गया। पहली जून को बदायूँ में भी कम्पनी का राज समाप्त होने का ऐलान कर दिया गया।

उपर्युक्त सभी स्थानों के बागी सिपाही मिल गये। वे तोपें तथा खजाना आदि एकत्र करके बख्त खाँ के नेतृत्व में दिल्ली की ओर रवाना हो गये।

उधर बनारस और आजमगढ़ में भी बगावत हो गयी। आजमगढ़ मे कुछ अंग्रेज मारे भी गये। कम्पनी के खजाने और गोला-बारूद आदि पर बागियों ने कब्जा कर लिया।

पंजाब में भी बगावत हुई। मियाँ मीर की सेना के हथियार तो १३ मई को अंग्रेजों ने रखवा लिये लेकिन फिरोजाशहर की छावनी मे विद्रोह हो ही गया और कम्पनी के देशी सैनिकों ने दिल्ली की ओर कूंच किया।

इस विद्रोह के दौरान में ही ईरान से कम्पनी का युद्ध समाप्त हुआ था। गवरनर जेनरल कैनिग अपनी सेना चढ़ाई के लिए चीन भेजना चाहता था। भारत में विद्रोह की ज्वाला धधकते देख कर उसने चीन भेजी जानेवाली सेना रोक ली और मद्रास, बम्बई एवं रंगून से गोरी फौज बुलाकर बंगाल में एकत्र कर दी। एक बड़ी सेना लेकर इधर से जनरल नील बनारस की ओर रवाना हुआ। उधर शिमला-स्थित जंगी लाट ऐनसन को गवरनर जेनरल ने दिल्ली पर चढ़ाई करने का हुक्म दिया। जंगी लाट अम्बाला पहुँचा। पटियाला, नाभा और जिंद के राजाओं की सहायता से यहाँ उसने रसद-पानी एकत्र किया। २५ मई

को अंग्रेज सेना दिल्ली की ओर बढ़ी। प्रतिहिंसा के वशीभूत होकर उसने मार्ग में कत्ले आम किया और गाँव के गाँव जला डाले।

बगावत का समाचार ४ जून को बनारस पहुँचा। इस दिन अंग्रेजों ने देशी सिपाहियों से हथियार रखवाने की कोशिश की। सिपाहियों ने खुले आम बगावत कर दी और अफसरों पर टूट पड़े। यहाँ सिख पलटन ने अंग्रेजों की मदद की। इसके अलावा उन्हें चेतसिंह के वंशज बनारस के राजा तथा अन्य रईसों से भी मदद मिली। जनता ने बागियों का साथ दिया। बागी बनारस पर कब्जा करने में तो असफल रहे लेकिन आसपास के इलाके में उन्होंने कम्पनी की हुकूमत का नाम निशान-मिटा दिया।

५ जून को जौनपुर मे भी बागियों ने अंग्रेजों पर हल्ला बोल कर उन्हें शहर से खदेड़ दिया और कम्पनी के खजाने पर कब्जा कर लिया। दूसरे दिन, ६ जून को ६ नम्बर की पलटन ने इलाहाबाद मे भी बगावत कर दी। इस पलटन ने इतनी होशियारी से काम किया कि इस पर शक करने के बजाय अंग्रेज अफसर इस पर भरोसा करते रहें। इलाहाबाद का उन दिनों मे काफी महत्त्व था। कलकत्ता से पश्चिम-उत्तर के प्रदेशों मे आने वाली प्रायः सभी मुख्य सड़के इलाहाबाद से गुजरती थीं। इसके अलावा यहाँ का किला बहुत मजबूत था और उसमें शस्त्रास्त्रों तथा गोला-बारूद का भण्डार जमा था। ६ नम्बर की पलटन के विद्रोही होने पर किले मे शरण लेने वाले अंग्रेज अफसरों ने घुड़सवार सेना से मदद लेनी चाही लेकिन यह सेना भी बागियों से मिल गयी। दोनों ने अपने अनेक अफसरों को सदा के लिए सुला दिया।

इलाहाबाद के विद्रोहियों और जनता ने इलाहाबाद पर कब्जा किया। जेल के फाटक खोल दिये। कम्पनी के खजाने में रखे तीस लाख रुपये हस्तगत कर लिये गये। कम्पनी का शासन समाप्त होने का ऐलान कर दिया गया। यह सब कुछ हुआ किन्तु वे किले पर कब्जा न कर सके। उसमें टिकी सिख पलटन अंग्रेजों की वफादार बनी रही। देश-भक्ति के नाम पर उसका आह्वान बेकार सिद्ध हुआ। सिख पलटन ने विद्रोहियों से जम कर मोर्चा लिया और किले पर उन्हें कब्जा न करने दिया।

बंगाल से एक विशाल सेना को लेकर जेनरल नील बनारस पहुँचा। वहाँ उसने जुल्म और सितम का पहाड़ ढा दिया। गाँव फूँक दिये गये। सामने पड़ने वाले सैनिक-असैनिक मौत के घाट उतारे गये। स्थान-स्थान पर फाँसी के फन्दे लटका कर उनमें लोग झुला दिये गये और लाशें लटकती छोड़ दी गयीं। तोपों से गाँव उड़ा दिये गये। चार्ल्स बाल ने अपनी पुस्तक 'इण्डियन म्युटिनी'

में लिखा है—'एक गांव लोगों से भरा था। हमने इसमें आग लगा दी। जब लोगों ने गाँव से निकल कर भागने की कोशिश की, हमने उन्हें गोलियों से भून दिया।' यह साधारण उदाहरण है। प्रतिशोध की भावना से पागल नील ने न तो बच्चों पर रहम किया, न महिलाओं पर। उसने सबको अपने खूनी आक्रोश की ज्वाला में भून डाला। न जाने कितने दिनों तक सड़कों के कितने पेड़ों पर लोगों की लाशें झूलती रहीं।

११ जून को बनारस से इलाहाबाद पहुँच कर नील ने वहाँ भी अपने खूनी कारनामें दोहराये। सिख सैनिक विद्रोहियों से मिल जाते तो यह नौबत न आती। किले का अपरिमित गोला-बारूद विद्रोहियों के हाथ लगता और वे सरलता से नील की सेना को विनष्ट करते। लेकिन सिख पलटन की गद्दारी से नील के इलाहाबाद पहुँचने पर अंग्रेजों की बन आयी। उसने सिखों से ही इलाहाबाद के अनेक गाँव फूँकवा दिये। विद्रोहियों ने १७ जून को खुसरोबाग में जमकर नील की सेना का सामना किया। वे उसे हरा तो न सके लेकिन अपने आदमियों को इतना मौका उन्होंने जरूर दिला दिया कि वे तीस लाख रुपये का खजाना लेकर कानपुर की ओर निकल गये।

इलाहाबाद में अंग्रेजों के खूनी कारनाओं की कहानी को दोहराना व्यर्थ है। इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि आगजनी, बलात्कार और लूँरेजी—अंग्रेजों ने सबका सहारा लिया। इतने पर भी बदला लेने की उनकी आग जब ठण्डी नहीं हुई तो उन्होंने छोटे-छोटे मासूम बच्चों तक को सरे आम पेड़ों पर फाँसी से लटका दिया और नदी के रास्ते से नावों पर भागने वालों पर किले से गोलियाँ बरसा कर उन्हें ढेर कर दिया। इलाहाबाद के सर्वव्यापी संहार में स्त्री, बच्चा, बूढ़ा कोई न बच सका। युवतियाँ नंगी करके छोड़ दी जातीं और जब वे भागतीं तो संगीनधारी गोरे उनके केशों में आग लगा कर उनका छटपटाना देखते। इलाहाबाद में अंग्रेजों के अत्याचारों का वर्णन करना निर्जीव कलम की ताकत से बाहर की बात है।

पाँच जून को कानपुर में अंग्रेजों के शस्त्र-भंडार और उनके खजाने पर नाना साहब का अधिकार हो गया था। सूबेदार टिकासिंह के नेतृत्व में सैनिकों ने बगावत की और वे नाना साहब के सैनिकों से मिल गये। नाना साहब बिठूर से कानपुर आ गये। वहाँ उनके साथ उनका भतीजा राव साहब, विप्लव का प्रवर्त्तक अजीमुल्ला खाँ और प्रसिद्ध मराठा वीर तांत्या टोपे भी थे। नाना साहब ने अंग्रेजों को ऐसा फाँस रखा था कि वे उन पर तनिक भी अविश्वास न कर सके।

ह्यू ह्वीलर कानपुर की अंग्रेज सेना का सेनापति था। ६ जून को नाना साहब ने उसके पास संदेश भेजा कि किला हमारे हवाले कर दो, वरना आक्रमण किया जायगा। इसके बाद शहर के अंग्रेजों पर हमला किया गया। ह्वीलर को झुकते न देखकर नाना की तोंपे किले पर आग बरसाने लगीं। किले में केवल एक कुँआ था। नाना की तोपों की मार ने उसे ध्वस्त् कर दिया। किले में टिके अंग्रेज प्यास से छटपटाने लगे। उनकी बुरी हालत थी। एक-एक कर अंग्रेज मौत के मुँह में पहुँच रहे थे। इस आड़े वक्त में एक हिन्दुस्तानी नौकर ने उनकी सहायता की और उनकी दुर्दशा की खबर लखनऊ पहुँचायी।

कानपुर मे विद्रोह की कारवाई जितनी खूबसूरती से हुई, उतनी खूबसूरती से जनता ने भी काम किया। नाना के पास कोने-कोने से दौलत चली आ रही थी। स्त्रियाँ भोजन बना-बनाकर सैनिकों को पहुँचाने में जुटी हुई थी। वे इधर से उधर गोला-बारुद पहुँचाने मे भी सैनिकों की मदद करतीं। अजीजन नामक वेश्या ने इस दौरान मे जिस वीरता से काम किया, अंग्रेज इतिहासकारों को भी उसकी प्रशंसा करनी पड़ी। हथियारों से सज्जित अजीजन घोड़े पर सवार होकर द्रुतवेग से इधर से उधर घूमती और सिपाहियों का हौसला बढ़ाने की जी तोड कोशिश करती। इन कारवाइयों का परिणाम यह हुआ कि २५ जून को जेनरल ह्वीलर ने घुटने टेक दिये। किले के अंग्रेजों ने स्वयं को नाना साहब के सुपुर्द कर दिया। नाना ने किले के गोला-बारुद, शस्त्रास्त्र और खजाने पर कब्जा कर लिया और अंग्रेजों को किश्तियों पर बैठ कर रसद के साथ इलाहाबाद रवाना करने का आदेश दिया। इस सम्बन्ध मे २७ जून को प्रातःकाल तक सब तैयारी भी पूरी हो गयी। ठीक ऐन वक्त पर नील के अत्याचारों की रोमाचकारी कहानी सुनाने वाले अनेक लोग इलाहाबाद से कानपुर पहुँचे। उनकी बातें सुनकर भारतीय सिपाहियों का खून खौल उठा। जनता बदला लेने के लिए पागल हो गयी। अंग्रेजों पर हमला कर दिया गया। नाना साहब के आदेश को मानकर भारतीय सिपाहियों ने अंग्रेज महिलाओं और बच्चों की जान तो बख्श दी लेकिन अंग्रेज पुरुष मौत के घाट उतार दिये गये। केवल चार अंग्रेज किसी प्रकार अपनी जान बचाकर भाग निकले।

अंग्रेजों ने बाद में इस घटना पर खूब रंग चढ़ाया और अंग्रेजों की औरतों को बेइज्जत करने का इलजाम तक भारतीयों पर लगाया। लेकिन इन इलजामों की जाँच के लिए नियुक्त कमीशन के सदस्य जस्टिस मैकार्थी ने जाँच के बाद इन्हें बे बुनियाद बताया और लिखा कि—"अनाज पिसवाने के सिवा अंग्रेज

महिलाओं के साथ कोई ज्यादती नहीं की गयी। किसी महिला पर अत्याचार नहीं किया गया। न तो कोई अंग्रेज महिला विवस्त्रा की गयी, न किसी की बेइज्जती की गयी। जान-बूझकर किसी महिला का अंग-भंग करने का इलजाम भी झूठा है।"

कानपुर में अंग्रेजों की सत्ता की समाप्ति के बाद पहली जुलाई, सन् १८५७ को बिठूर में नाना साहब धुधुपंत् सविधि पेशवा की गद्दी पर आरुढ़ हुआ।

झाँसी की रानी के साथ लार्ड डलहौजी ने जो ज्यादती की, उसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। ४ जून को झाँसी में क्रान्ति हुई। देशी पलटन के हवलदार गुरुबख्शसिंह ने किले के शस्त्र-भण्डार और खजाने पर कब्जा कर लिया। तत्पश्चात शस्त्रधारण करके झाँसी की रानी, प्रातःस्मरणीया महारानी लक्ष्मीबाई, स्वयं मैदान में उतर आयी और उसने विद्रोही सेना की कमान सम्भाल ली। ८ जून को झाँसी मे कम्पनी के शासन का नामनिशान तक मिटा दिया गया।

सन् १८५७ में सबसे अधिक प्रचंड विद्रोह अवध के इलाके में हुआ। विद्रोह के दमन और महारानी विक्टोरिया की घोषणा के कई वर्ष बाद तक अवध की जनता किसी न किसी रूप में बागी बनी ही रही। ३० मई, सन् १८५७ को लखनऊ के देशी सिपाहियों ने बगावत की। हेनरी लारेंस नामक अंग्रेज अवध का चीफ कमिश्नर था और उसका प्रधान कार्यालय लखनऊ मे था। मेरठ की बगावत के बाद ही उसने लखनऊ की रेजिडेंसी और वहाँ के प्रसिद्ध मच्छी-भवन में किले-बंदी आरम्भ कर दी थी। सेना की बगावत के बाद लारेंस अंग्रेज सिपाहियों के साथ रेजिडेंसी मे जाकर डट गया। उसने ही नेपाल दरबार के प्रधान सेनापति जगबहादुर से सहायता माँगी थी जिसे स्वीकार कर के जंगबहादुर ने गोरखों की सेना अंग्रेजों के सहायतार्थ भारत भेजी थी।

बगावत के दिन के बाद दस दिनों के अन्दर अर्थात् दस जून तक लखनऊ को छोड़ कर अवध के प्रायः समस्त हिस्से पर बागियों ने कब्जा कर लिया। सीतापुर, फर्रुखाबाद, बहराइच, गोंडा आदि स्थानों के बागी लखनऊ में आकर बेगम हजरत महल के झण्डे के नीचे एकत्र होने लगे। यहाँ महल की औरतें भी पुरुषों के वेश में मैदान में उतर पड़ीं।

लारेंस के पास गोरी फौज के अलावा सिखों की दो पलटनें और तोपखाना भी लखनऊ में था। उसे कानपुर से सहायता मिलने की आशा थी। वहाँ नाना ने अंग्रेजों का बेड़ा गर्क कर के उसकी आशा पर तुषारापात कर दिया था।

२६ जून को उसने बागियों से घमासान युद्ध किया लेकिन अंततः उसे भाग-कर रेजिडेंसी में आश्रय ग्रहण करना पड़ा। इसके बाद बागियों ने मच्छीभवन पर भी कब्जा जमा लिया और रेजिडेंसी को घेर लिया।

इस विद्रोह ने नवाब वाजिदअली शाह की लोकप्रियता स्पष्ट कर दी। कहते हैं कि अवध का बच्चा-बच्चा अंग्रेजों के विरुद्ध खड्गहस्त हो गया था।

पहले यह लिखा जा चुका है कि जंगीलाट ऐनसन २५ मई को सिखों की और गोरी सेना के साथ अम्बाला से दिल्ली रवाना हुआ। दो दिनों बाद करनाल पहुँचने पर हैजे से उसकी मृत्यु हो गयी। उसका स्थान हेनरी बरनार्ड ने लिया। दिल्ली पर उसकी चढ़ाई का समाचार मिलते ही बागी सेना ने आगे बढ़कर ३० मई को उसकी सेना पर हमला कर दिया। मेरठ की किंकर्तव्य विमूढ़ गोरी सेना भी बरनार्ड की सेना से मिलने के लिए दिल्ली की ओर बढ़ी। यहाँ पहले दिन साधारण सी लड़ाई हुई। एक मार्के की घटना भी घटी। एक ओर बागियों की पाँच तोपें थी। यह पक्ष कमजोर था। अंग्रेज इधर बढ़े तो बागी सेना पीछे हट गयी। केवल एक सिपाही तोपों के बीच छिपा रह गया। जब अंग्रेज तोपों पर कब्जा करने चले तो उसने बारूद में आग लगा दी। इस अज्ञात वीर ने हँसते-हँसते मृत्यु का वरण किया और अपने साथ ही उन अंग्रेजों को भी ले बीता जो तोपों पर कब्जा करने के लिए आतुर थे।

दूसरे दिन मेरठ की अंग्रेजी सेना से दिल्ली की सेना की दूसरी बार मुठभेड़ हुई। इस युद्ध में अंग्रेजों को काफी क्षति उठानी पड़ी। उनके पैर उखड़ गये। इस अनमोल अवसर को विद्रोही सेना ने हाथ से खो दिया। अंग्रेजों को खदेड़ने और रात को पुनः हमला करने के बजाय वह दिल्ली में लौट आयी। परिणाम यह हुआ कि दूसरे दिन अर्थात् पहली जून को मेजर रीड के अधीन एक गोरखा सेना भी अंग्रेजों की मदद के लिए वहाँ पहुँच गयी। जंगी लाट बरनार्ड, मेरठ की गोरी सेना तथा मेजर रीड की सेना—तीनों का विशाल समूह दिल्ली की ओर अलीपुर तक पहुँच गया। ८ जून को बहादुरशाह के पुत्र मिर्जा मुगल के नेतृत्व में विद्रोही सेना ने दिल्ली से निकल कर बुन्देला की सराय के निकट अंग्रेज, सिख और गोरखा सेना का मुकाबिला किया। मिर्जा मुगल ने लड़ाई का मैदान कभी देखा न था। दूसरी ओर मजे हुए सेनानी थे। यहाँ विद्रोही सेना का काफी शस्त्रास्त्र अंग्रेजों के हाथ लगा। सेना दिल्ली में लौट आयी। अंग्रेज सेना दिल्ली के निकट तक जा पहुँची। अब भी विद्रोहियों का कुछ न बिगड़ा था। उनका हौसला जैसे का तैसा था। उत्साह में रंच मात्र की भी कमी न थी। स्थान-स्थान से बागी सिपाही खजाना लिये हुए दिल्ली

पहुँच रहे थे। गोला-बारूद काफी परिमाण में बन रहा था। बन्दूकें और तोपें ढालने वाले अनेक कारखाने तेजी से काम कर रहे थे। बादशाह बहादुरशाह ने दो एलान किये जिनकी प्रतियाँ सारे भारत में वितरित की गयीं। इनमें अंग्रेजों से युद्ध करने और भारत को गुलामी से छुड़ाने का दृढ़ इरादा जाहिर किया गया था। हिन्दू, मुसलमान-सबके साथ समानता का व्यवहार करने का वादा करते हुए जंग में कूदने के लिए बादशाह ने सबका आह्वान किया था। यह सब था। साज भी था और सामान भी। गोला-बारूद भी था और सेना भी लेकिन नहीं था तो प्रभावशाली और अनुभवी सेनापति। इस अभाव के कारण ही जीती हुई बाजी हाथ से निकल गयी। इसके बावजूद अंग्रेजों का साहस दिल्ली में घुसने का न हुआ। १२, १७, २० और २३ जून को भारतीय सैनिकों ने दिल्ली से बाहर निकल कर बार-बार अंग्रेजों पर हमला किया, उन्हें शिकस्त दी। उनके अनेक सैनिक और अफसरों को मौत के घाट उतारा लेकिन अंग्रेजी सेना को पूरी तरह खत्म करने का रास्ता कभी अख्तियार न किया गया। उन्हें मौका मिल गया। पंजाब से विशाल सेना अंग्रेजों के सहायतार्थ पहुँच गयी। फिर भी भारतीय सैनिकों का पक्ष कमजोर न हुआ; क्योंकि रुहेलखण्ड की सेना भी मोहम्मद बख्त के नेतृत्व में दिल्ली पहुँच गयी थी। बख्त खाँ योग्य और अनुभवी था। बादशाह ने उसे प्रधान सेनापति बनाया। इस साहसी वीर ने ४ जुलाई को दिल्ली में एकत्र विशाल सेना को लेकर अंग्रेजों पर हमला कर दिया। इस युद्ध ने ताजी कुमक प्राप्त अंग्रेज सेना के छक्के छुड़ा दिये। उनका बढ़ता हुआ हौसला काफूर हो गया। इसी समय जनरल बर्नार्ड की मृत्यु हो गयी। उसका स्थान रीड ने लिया। भारतीय सैनिक फिर भी चारों ओर से हमलावर न हो सके। बख्त खाँ इसके लिए चेष्टाशील था। ६ जुलाई को उसने प्रचण्ड प्रहार किया। अंग्रेजी सेना के पाँव उखड़ गये। उसने लड़ाई का मैदान छोड़ दिया। चन्द दिनों बाद १४ जुलाई को बख्त खाँ ने फिर प्रचण्ड हमला किया। जनरल रीड का हौसला पस्त हो गया और दूसरे दिन छुट्टी लेकर वह पलायित हो गया। विद्रोहियों के लिए यह सुनहला अवसर था। उन्होंने गलती की लेकिन साथ ही देशी नरेश भी गद्दारी से बाज न आये। वे उठ खड़े होते तो अंग्रेजों की ताकत बँट जाती और बाजी भारतीयों के हाथ रहती। यहाँ यह याद रखना चाहिये कि १४ जून को ही ग्वालियर की भारतीय सेना ने बगावत कर दी थी और अंग्रेजों से बदला लेना आरम्भ कर दिया था लेकिन उनका सरदार, ग्वालियर की गद्दी का मालिक जयाजीराव सिंधिया खामोश बैठा रहा। सेना ने उससे बार बार दिल्ली चलने

का आग्रह किया लेकिन उसकी आँखें न खुली। वह यदि कमर कस कर निकल पड़ता तो दिल्ली में जमा अंग्रेज सेना दो पाटों के बीच में पड़ कर पिस जाती। लेकिन दुर्भाग्य, वह कापुरुष न उठा, न उठा!

यही हाल भरतपुर और इन्दौर की रियासतों का भी रहा। उनकी सेनाओं ने बगावत की लेकिन राजा अंग्रेजों के ही पिट्ठू बने रह गये।

डूबते के लिए तिनके का सहारा काफी होता है। उनकी वफादारी से गवरनर जेनरल कैनिंग का ढाढ़स बँधा रहा और वह स्वयं कलकत्ता से इलाहाबाद लगभग उसी समय पहुँचा जिस समय इलाहाबाद में जनरल नील के अत्याचारों का बदला कानपुर का अंग्रेज सेना से लिया गया। कैनिंग ने थोड़ी-सी सेना इलाहाबाद में रखी और शेष सेना मेजर रेनाड के नेतृत्व में कानपुर भेज दी। इलाहाबाद और बनारस की पैशाचिक कारवाइयाँ पूरी करते हुए यह सेना कानपुर पहुँची। उसके पीछे सजित सिख सेना और विशाल तोपखाने के साथ जेनरल हैवलाक की सेना भी कानपुर की ओर रवाना हुई। ये दोनों सेनाएं मार्ग में मिल गयीं। कानपुर में बगावत का श्री गणेश करने वाले टीकासिंह के अधीन विद्रोही सेना ने १२ जुलाई को फतेहपुर के पास रेनाड और हैवलाक की सेना का सामना किया लेकिन उसे पीछे हट जाना पड़ा। अंग्रेजों ने फतहपुर में खून की नदी बहा दी और उसे उजाड खंड बना दिया। इसका बदला कानपुर में अंग्रेजों से लिया गया। यह कलंकपूर्ण घटना है। नाना द्वारा बचाये गये सवा सौ स्त्रियों-बच्चों को कत्ल कर के विद्रोहियों ने कुँए में छोड दिया। नाना का इस घटना से किसी प्रकार का सम्बन्ध न था। फिर भी अंग्रेजों ने उसे ही दोषी ठहराया।

हैवलाक जब अपनी सेना लेकर कानपुर के निकट पहुँचा तो नाना ने विद्रोहियों का नेतृत्व स्वयं किया और उससे जम कर मोर्चा लिया। उसे एक बार पीछे हटना पडा। दोबारा फिर वह साहस के साथ आगे बढ़ा। हैवलाक का तोपखाना बहुत प्रबल था। नाना की सेना उसका सामना न कर सकी और और हटकर बिठूर चली गयी। १७ जुलाई को हैवलाक कानपुर में घुसा और उसने यहाँ ऐसे-ऐसे अत्याचार किये जिन्हें देखकर शैतान की आत्मा भी काँप गयी होगी। सैकडों व्यक्ति गोलियों से उड़ाये गये। सैकड़ों फाँसी पर लटका दिये गये। खून की नदी बह निकली।

जुलाई के अंत में अंग्रेजों ने अजनाले में सिखों की सहायता से जो जुल्म ढाया, उसने तो गजब ढा दिया।

मई में ही लाहौर की चार देशी पलटनों के हथियार रखवा लिये गये थे।

और सैनिक सिखों और अंग्रेजों के पहरे मे थे। इनमे से एक पलटन के सिपाही ३० जुलाई को छावनी से निकल गये। २६ नवम्बर को भूख और प्यास से विकल होकर ये अमृतसर की अजनाला तहसील मैं रावी के किनारे पड़े हुए थे। अंग्रेजो ने उन्हें घेर कर गोलियाँ चलायी। लगभग पाँच सौ सिपाहियों मैं से डेढ़ सौ घायल होकर जान बचाने के लिए रावी में कूदे लेकिन अशक्त होने के कारण तेज धार में टिक न सके और डूब गये। शेष खदेड़ कर पकड़ लिये गये। उन्हें एक गुम्बद मे कैद कर दिया गया। इनमे से कुछ तो दम घुट जाने से वहीं मर गये। शेष को अंग्रेज जेनरल कूपर ने दस-दस की टुकड़ी मे बाँट कर गोलियो से उड़वा दिया। अफसास यह है कि इन्हे गोलियों से उड़ाया सिखों ने। इनकी लाशें जो सख्या मे लगभग तीन सौ थी, एक कुँए मे डलवा दी गयीं। कुँआ मिट्टी से पाट दिया गया। कानपुर मे जहाँ कुँए मे अंग्रेजों की लाशें डाली गयीं थी, वहाँ अंग्रेजी हुकूमत ने स्मारक बनवाया और जिस कुँए मे कूपर ने हिन्दुस्तानी सिपाहियों की लाशें डलवा दी थीं, उसका नाम-निशान मिटवाने की कोशिश की।

यह बताया जा चुका है कि दिल्ली की सेना बाहर-निकल-निकल कर अंग्रेजों पर हमला करके उन्हे नुकसान तो पहुँचाती लेकिन उन्हे फना करने की कारवाई न करती। इसका कारण यह था कि योग्यता के बावजूद विद्रोही सैनिकों पर बख्त खाँ का पूरा असर न था। जोधपुर, सिंधिया अथवा होलकर मे से कोई यदि इनका नेतृत्व करता तो पासा पलट जाता। बहादुरशाह ने यह कमी पूरी करने की जी तोड़ कोशिश की लेकिन वह असफल रहा। उसने स्वय अलवर, बीकानेर, जोधपुर और जयपुर के नरेशों का पत्र भेजे और वादा किया कि अंग्रेजों के पतन के बाद आप लोग जैसे चाहेंगे, देश की हुकूमत बनेगी लेकिन इन गद्दारों ने क्रांतिकारियों का साथ नहीं ही दिया। इस ऊहापोह मे लगभग एक मास बीत गया। इस बीच पञ्जाब से नयी सेना लेकर निकोलसन भी दिल्ली पहुँच गया। इसके बावजूद अब भी अंग्रेजों के अधीन सैनिको की सख्या से भारतीय सैनिकों की सख्या कहीं अधिक थी। लेकिन दुर्बलता यह थी कि अंग्रेजों की ओर चुने हुए सेनापति थे और विद्रोहियों की ओर एक बख्त खाँ था; उसका भी पूरा असर न था। यही कारण है कि दिल्ली मे जमी बरेली और नीमच की सेनाओं मे प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो गयी। २५ अगस्त को बख्त खाँ ने अंग्रेजी सेना के केन्द्र नफजगढ़ पर जब हमला किया तो नीमच की सेना ने उसकी आज्ञा की अवहेलना की और उसके बताये हुए स्थान पर जाने के बजाय एक गाँव में चली गयी। नतीजा यह हुआ कि निकोलसन ने

स पर पूरी ताकत से हमला कर दिया और नीमच की सेना का एक-एक सिपाही काट डाला।

इसमें संदेह नही है कि नीमच की सेना बहादुरी से लड़ी और उसने अंग्रेजों के दाँत खट्टे कर दिये लेकिन अपनी मनमानी का मूल्य उसे चुकाना ही पड़ा जो न केवल उसके लिए किन्तु दिल्ली की पूरी सेना के लिए बहुत महँगा सिद्ध हुआ। इसके बाद ही अंग्रेजो को विभीषण भी मिल गये। इनसे लूट का समाचार पाकर अंग्रेजों ने दिल्ली पर हमला बोल दिया। एक सप्ताह तक उन्होंने दिल्ली में घुसने का प्रयत्न कई बार किया और कई बार वे पीछे खदेड़े गये। ७ सितम्बर को यह अभियान आरम्भ हुआ और १४ सितम्बर को अंग्रेज सेना दिल्ली मे दाखिल होने मे सफल हो गयी। यहाँ एक-एक इञ्च के लिए घनघोर युद्ध हुआ। अंग्रेजों के बहुत सैनिक और अनेक अफसर मारे गये। स्वयं मेजर रीड भी घायल हो गया। इसी युद्ध मे घायल निकोलसन कुछ दिनों बाद अस्पताल में मर गया। दिल्ली के चौथाई हिस्से पर जब अंग्रेजों का कब्जा हो गया तो सेनापति बख्त खाँ ने बहादुरशाह से कहा कि 'दिल्ली से निकल चलिये। सारे हिन्दुस्तान मे आग लगी है। अब भी कुछ नहीं बिगडा है। हम मौके के स्थान पर जम कर अंग्रेजों से लोहा लेंगे।'

बादशाह बहादुरशाह राजी हो गया। बख्त खाँ ने जमुना के किनारे अपनी सेना तैयार की और बादशाह को लेने के लिए हूमायूँ के मकबरे मे गया, जहाँ वह टिका था। इस बीच इलाहीबख्श नामक गुर्गे ने बादशाह को गुमराह कर दिया। अंग्रेजो ने उसे बहुत बडी लालच दी थी; क्योंकि बहादुरशाह की गिरफ्तारी बागियो का दिल तोड़ने के लिए बहुत जरूरी थी। बख्त खाँ आरजू-मिन्नत कर के भी बादशाह को निकाल न सका। नतीजा यह हुआ कि उसका भी दिल टूट गया।

बख्त खा हूमायूं के मकबरे से निकला ही था कि दूसरी ओर से इलाहीबख्श के संकेत पर हडसन अंग्रेज सैनिकों के साथ मकबरे में घुसा और उसने बहादुरशाह को गिरफ्तार कर लिया। तब उसकी आँखे खुली लेकिन वक्त हाथ से निकल चुका था—बख्त खा जा चुका था।

अंग्रेजों ने बहादुरशाह, उसकी बेगम जीनतमहल और शाहजादे को दिल्ली के लाल किले मे कैद कर दिया। इसके बाद लगभग पाँच मांस के अन्दर अंग्रेजों ने दिल्ली पर पूरी तरह कब्जा कर लिया। फिर तो उन्होंने ऐसे ऐसे जुल्म ढाये कि नादिरशाह का कत्ले आम भी फीका पड़ गया। गद्दार इलाहीबख्श ने छिपे हुए शाहजादों का पता लगाकर उन्हें भी कैद करवा दिया

हडसन ने तीन शाहजादों को गोलियों से उडवा दिया। उसने उनके सिर कटवा लिये और कम्पनी के तोहफे की शक्ल मे बुड्ढे बहादुरशाह के सामने पेश किये जिन्हें देखकर भगवान का धन्यवाद करते हुए भारत के इस अन्तिम सम्राट ने कहा था—'तैमूर की सन्तान इस प्रकार मुख्य उज्ज्वल कर के ही पिता के सामने आया करती थी।'

हडसन ने बाद मे शाहजादो के सिर दिल्ली के दरवाजे पर तथा धड़ कोतवाली पर लटकवा दिये। कहते हैं कि कई दिनो तक सिर और धड़ इसी हालत मे रहे। दिल्ली शहर लाशों से पट गया। किसी जीवित दिल्ली-निवासी की आवाज तक नहीं सुनायी देती थी। गली-गली मे खून की नदी बह निकली। लाशों को कोई देखने वाला न रहा। कुत्तो और शृंगालों के झुड के झुंड उन पर मँडराने लगे।

अग्रेजों ने बहादुरशाह को रंगून भेज दिया। जहाँ एक तनहा कैदखाने मे उसकी मृत्यु हो गयी। इस जगह उसके स्मारक के रूप मे संगमरमर का टुकडा लगा हुआ है जिसपर लिखा है—'[illegible]शाह, एक्स किंग आव देलही डाइड एट रंगून, नवम्बर सेवेंथ, १८६२ एण्ड बरीड नियर दिस स्पाट' अर्थात् दिल्ली का भूतपूर्व बादशाह बहादुरशाह ७ नवम्बर, १८६२ को रंगून मे मरा और इस स्थान के समीप दफनाया गया।

दिल्ली से बहादुरशाह के निष्कासन के बाद वह खत्म हो गयी। मुगल वश का अन्तिम चिराग बुझ गया।

इस अध्याय के आरम्भ मे ही अवध के लम्बे संघर्ष की ओर संकेत किया जा चुका है। दिल्ली के पतन के बाद भी लगभग छः मास तक अवध मे स्वाधीनता झण्डा लहराता रहा।

रेजिडेंसी मे लारेंस के पनाह लेने तक लखनऊ और अवध की बगावत का विवरण दिया जा चुका है। तत्पश्चात् विद्रोहियो ने सारे अवध मे अग्रेजी सत्ता का नाम-निशान मिटा दिया और फुरसत पाकर रेजिडेंसी को अपना लक्ष्य बनाया। २० जुलाई को हमला आरम्भ हुआ। अग्रेजो की सहायक सेना ने रेजिडेंसी के अन्दर से बागियो का जी तोड़ मुकाबला किया। दोनो ओर से तोपें गोले बरसाती रहीं। कमिश्नर लारेंस मारा गया। उसका स्थान सँभालने वाला मेजर बैंक्स भी मारा गया। रेजिडेंसी की दीवार कई स्थानों पर ध्वस्त् हो गयी। लेकिन बागी फिर भी रेजिडेंसी पर कब्जा करने में असफल रहे। उधर अंग्रेजों की हालत भी नाजुक हो गयी। कानपुर से हैवलाक के आने की आशा ने उनका साँस बांध रखा था। उसकी ओर टकटकी

लगाये वे मौत से जूझ रहे थे। हैवलाक भी लखनऊ पहुँचने के लिए आतुर था। २६ जुलाई को वह कानपुर से रवाना हुआ। उसके पास काफी तोपें थीं और इनके बल पर वह लखनऊ पहुँचना आसान समझता था। जब वह मैदान में आया तो उसे मालूम हुआ कि लखनऊ दूर है; वहां पहुँचना लोहे का चना चबाना है। अवध निवासी चप्पा-चप्पा भूमि के लिए लडने को दृढ़ संकल्प थे। उन्होने हैवलाक को उन्नाव में रोका, वहाँ से वह बढ़ा तो अवध-निवासियों ने बशीरगंज मे उसके सामने मोर्चेबंदी की। हैवलाक ने अपनी पूरी ताकत से तीन बार उनका सामना किया लेकिन तीनो बार उसे पीछे हटना पड़ा। आजादी के दीवानों ने उसे छठी का दूध याद करा दिया। इधर यह हाल था, उधर ग्वालियर आदि की जनता से सहायता प्राप्त होने पर नाना साहब ने एक बार पुनः कानपुर पर हमला बोल दिया। हैवलाक बशीरगंज में था। कानपुर में नाना का सामना अकेले करने की ताकत नील में न थी। फलतः हैवलाक को पुनः कानपुर वापस लौटना पड़ा। १७ अगस्त को उसने नाना की सेना पर चढ़ाई की। नाना ने ऐसा प्रचड युद्ध किया कि हैवलाक के छक्के छूट गये। रक्षा के लिए उसने कलकत्ता से सहायता मांगी। वहाँ से जेनरल ओटरम के अधीन नयी सेना १५ सितम्बर को कानपुर पहुँच गयी। इस बीच नाना कालपी में सैनिक तैयारी करने में ही लगा रहा। हैवलाक की जान में जान आयी और उसने इस बार कुछ अधिक ताकत के साथ लखनऊ जाने का निश्चय किया। बीस सितम्बर को वह लखनऊ के लिए रवाना हो गया। नाना ने उसे फँसा लिया होता तो अवध से उसे सहायता भी मिल जाती और हैवलाक लखनऊ की ओर बढ़ भी न सकता। यह न हुआ। उलटे हुआ यह कि हैवलाक के पलायन के बाद बशीरगंज में उसका मुकाबिला करने वाले अधिकतर लोग लखनऊ जा पहुँचे। फलतः इस बार उसे रास्ते मे कठिनाई न हुई यद्यपि पहले की ही भाँति इस बार भी अवध निवासियों ने हर जगह उससे मोर्चा लिया। बिना सेनापति के सेना लड़ती कितना और फिर सेना भी अनयमित सैनिकों की जिनके पास पर्याप्त हथियार तक न थे! तीन दिनों के अन्दर ही हैवलाक लखनऊ के निकट आलमबाग तक जा पहुँचा। यहाँ घमासान युद्ध हुआ। इस बीच दिल्ली के पतन का समाचार यहाँ पहुँच गया। हैवलाक का हौसला बढ़ गया। विद्रोहियो को इससे धक्का लगा। अंग्रेज जी तोड़ कर लड़े। विद्रोहियों ने भी खूब गोले बरसाये जिनकी चपेट में आकर अंग्रेजों के अनेक सैनिक तथा प्रसिद्ध सेनापति जेनरल नील आदि मारे गये। इतना नुकसान उठाने के बाद अंग्रेज सेनापति रेजिडेंसी

में पहुँचने में सफल हो गया। रेजिडेंसी में बचे-खुचे अंग्रेजों की जान में जान आयी लेकिन शीघ्र ही उनकी ही नहीं, उनके सहायक हैवलाक की भी हिम्मत टूटने लगी, क्योंकि लखनऊ के विद्रोहियों ने एक बार फिर रेजिडेंसी घेर ली। पहले हैवलाक की सेना बाहर थी। इस बार वह भी रेजिडेंसी में घिर गयी। इनकी बडी दुर्दशा हुई। इसका अन्दाज इसी से लगाया जा सकता है कि इनकी मुक्ति के लिए कम्पनी के नव-नियुक्त प्रधान सेनापति कालिन कैम्पबेल को १२ अगस्त को स्वयं कलकत्ता से लखनऊ की ओर प्रयाण करना पड़ा। ३ नवम्बर को वह कानपुर पहुँचा और ९ नवम्बर को वहाँ से आलमबाग पहुँच गया। इसके पूर्व जनरल ग्रांट के अधीन एक दूसरी सेना आलमबाग पहुँच गयी थी। इस समय तक प्रधान सेनापति कैम्पबेल के अतिरिक्त हैवलाक, ओटरम, दिल्ली में विजयी होनेवाला हडसन और ग्रांट आदि छः सात सेनापति पहुँच चुके थे। इनके पास शिक्षित विशाल सेना हो गयी थी। बाहर की सेना से विद्रोहियों ने सिकन्दरबाग में प्रचंड संघर्ष किया। इसके बाद अन्य स्थानों पर भी घनघोर युद्ध हुआ। नौ दिनो तक विद्रोहियों ने कैम्पबेल का मार्ग रोका लेकिन अंततः २३ नवम्बर को उसकी सेना रेजिडेंसी की सेना से मिल गयी। लखनऊ में खून की नदी बह निकली। दूसरे दिन के युद्ध में हैवलाक मारा गया। तब कैम्पबेल ने रेजिडेंसी को छोड पुनः आलमबाग में सेना एकत्र की और लखनऊ पर हमला करने की तैयारी में जुट गया। इसी समय कानपुर में मराठा सरदार तात्या टोपे ने अंग्रेजो को पछाड़ कर वहाँ अपना कब्जा जमा लिया। बाध्य होकर कैम्पबेल ने लखनऊ का भार ओटरम पर छोड़ा और स्वयं कानपुर की ओर बढ़ा।

जिस दिन कैम्पबेल कानपुर से आलमबाग पहुँचा (९ नवम्बर) उसी दिन तात्या टोपे ने कालपी पर कब्जा जमा कर नाना की ताकत बढ़ा दी। तात्यां अद्‌भुत वीर, पराक्रमी और दूरदर्शी था। कालपी पर कब्जा करके उसने कानपुर पर दृष्टि डाली। वहाँ केवल विंढम नजर आया। अन्य सेनापति कानपुर से लखनऊ चले गये थे। उसने विंढम को घेर लिया और उसके पास रसद पहुँचने का मार्ग बन्द कर दिया। तब विंढम ने बाहर निकल कर पाडु नदी के पास उससे घमासान युद्ध किया। तात्या की इस युद्ध में काफी क्षति हुई फिर भी इसने विंढम की सेना को घेर कर उसे पीछे ढकेलने में सफलता अर्जित कर ही ली। विंढम टिक न सका। उसकी सेना के पैर उखड़ गये। मराठा वीर तात्यां ने एक बार फिर कानपुर में स्वाधीनता का झडा गाड़ दिया। अंग्रेजों की इस पराजय का समाचार पाकर ही प्रधान सेनापति कैम्पबेल

लखनऊ छोड कर कानपुर की ओर रवाना हुआ। उधर नाना भी अपनी सेना लेकर तात्यां के सहायतार्थ कानपुर जा पहुँचा।

तात्यां टोपे ने गंगा के तट पर कैम्पबेल को घेर लिया लेकिन सिख सेना ने उसका हमला विफल कर दिया। तात्यां पीछे हट कर दक्षिण की ओर निकल गया। उसकी कुछ तोपें अंग्रेजों के हाथ लगी और कानपुर पर पुनः उनका कब्जा हो गया।

धीरे-धीरे दिल्ली से प्रयाग तक जमुना के तट-वर्ती क्षेत्र पर अंग्रेजों ने पुनः अधिकार जमा लिया। जनता और बागी सिपाहियों ने जी भर कर युद्ध किया लेकिन उनका कोई सघटन न था, अतः वे तितर-बितर होते गये।

इस ओर से मुक्त हो कर कैम्पबेल ने रुहेलखण्ड और अवध पर नजर डाली। २३ फरवरी, सन् १८५८ को वह १७ हजार पैदल सैनिकों, ५ हजार घुड़सवारों और १३४ तोपों के साथ लखनऊ की ओर रवाना हुआ। यह अभियान पश्चिम की ओर से आरम्भ हुआ और दक्षिण से जंगबहादुर के नेतृत्व में गोरखों की विशाल सेना रवाना हुई। इससे ही अन्दाज लगाया जा सकता है कि अवध के केन्द्र लखनऊ में जमा क्रान्तिकारियों की ताकत कितनी प्रचंड थी।

इससे पूर्व अगस्त, १८५७ में ही गोरखा सेना अंग्रेजों के सहायतार्थ आना चाहती थी और आजमगढ़ तथा जौनपुर में आ भी चुकी थी लेकिन हिन्दू और मुसलमान क्रान्तिकारियों ने उसे मार भगाया था।

घाघरा के पास अम्बरपुर दुर्ग पर २५ फरवरी को गोरखों और अंग्रेजों की सम्मिलित सेना जा धमकी। इस दुर्ग की रक्षा केवल ३४ सिपाही कर रहे थे। गोरखों ने इन्हें मौत के घाट उतार दिया और पूर्वी अवध पर कब्जा जमाते हुए लखनऊ की ओर बढ़े।

११ मार्च को गोरखों के साथ की अंग्रेज सेना, गोरखा सेना और कैम्पबेल की सेना लखनऊ पहुँच गयी। युद्ध शुरू हुआ और १५ मार्च तक कई स्थानों पर क्रान्तिकारियों ने अंग्रेजों से जम कर लोहा लिया। बहादुरशाह के शाहजादों के सर काट कर तोहफे के रूप में उन्हें बादशाह के सामने भेजने वाला खूनी हडसन मारा गया। क्रान्तिकारियों के भी कई नेता काम आये। अंग्रेजों की शक्ति बहुत प्रबल थी। अकेले होते तो अंग्रेज भाग कर भी जान न बचा पाते लेकिन उनके साथ गोरखों और सिखों की भी, जो प्रबल लड़ाकू थे, सेनाएँ थी। अंततः लखनऊ पर उनका कब्जा हो गया। उन्होंने महल को लूटा। लखनऊ शहर को लूटा। महल की अनेक महिलाएँ अंग्रेजों का मुका-

बला करते हुए मारी गयी। शेष के साथ अंग्रेजों ने जैसा पाशविक व्यवहा किया, साधारण मनुष्य उसकी कल्पना तक नहीं कर सकता। वह शैतान क ही काम था।

दिल्ली गया, कानपुर गया और लखनऊ भी हाथ से निकल गया लेकि फिर भी अंग्रेजों से बदला लेने की तमन्ना लिए हथेली पर सिर लेकर घूमने वालों की कमी न थी। अवध के कई भागों तथा भारत के कई हिस्सों में क्रांति की ज्वाला तब भी धधकती रही।

बिहार प्रान्त में शाहाबाद जिले के अन्तर्गत जगदीशपुर रियासत के जो डलहौजी की अपहरण नीति की चक्की में पिस चुकी थी, ८० वर्षीय राज कुँवरसिंह ने जिस अद्भुत शौर्य और पराक्रम का परिचय दिया, उसे देखक अंग्रेजों को तो क्या स्वयं जवानी को भी पसीना छूट गया। जुलाई में पटना और दानापुर आदि में भी विद्रोह हुआ था लेकिन अंग्रेजों ने सिखों की मदद से उसे दबा दिया था। न दबाया जा सका था शेर कुंवरसिंह। उसने दानापुर की क्रान्तिकारी सेना का जो पीछे हटकर जगदीशपुर चली आयी थी, नेतृत्व किया और आरा में अंग्रेजी हुकूमत और उसके एक-एक निशान को जमींदोज कर दिया। उसके पास सेना कम थी। अधिक दिनों तक वह आरा पर कब्जा कायम न रख सका। आठ दिनों के बाद कप्तान हेस्टिंग्ज की सेना ने उस पर फिर अधिकार जमा लिया। यह बहुत बड़ी सेना थी। इसके पूर्व दानापुर से कैप्टन डनबर के नेतृत्व में एक छोटी सी सेना ने प्रयास किया था लेकिन कुँवरसिंह ने चालाकी से उसके टुकड़े टुकड़े उड़ा दिये थे। यह बात ध्यान देने योग्य है कि आरा में भी सिखों ने जो अंग्रेजों की चाकरी करने की कसम खाकर बैठे थे, उनकी खूब मदद की।

कुँवरसिंह जगदीशपुर का महल खाली कर के निकल गया। मार्च के उत्तरार्द्ध में उसने आजमगढ़ जिले के अतरौलिया नामक स्थान पर आकर डेरा जमाया। यह समाचार पाकर बिहार से मिलमैन के अधीन अंग्रेज सेना उसका सामना करने के लिए भेजी गयी। कुँवरसिंह के पास गिनेगिनाये सैनिक थे। अतरौलिया के मैदान में घमासान हुआ। अंग्रेज बाजी जीत चुके थे लेकिन वाहरे कुँवरसिंह! बुढ़ापे में भी उसने अपने बुद्धि-कौशल से उस समय अंग्रेजी सेना को तहसनहस कर डाला जिस समय विजय उसका चरण चूमने वाली थी। मिलमैन मैदान छोड़ कर भागा। उसे कहीं से शीघ्र सहायता मिलने की आशा न थी क्योंकि गोरखों और कप्तान फ्रैंक के मातहत अंग्रेज सेना इधर से गुजर कर अवध की ओर बढ़ चुकी थी।

कुँवरसिंह ने मिलमैन की बचीखुची सेना को खदेड़ा। लेकिन मिलमैन के अनुमान के विपरीत २८ मार्च को करनल डेम्स अंग्रेज सेना के साथ बनारस और गाजीपुर हो कर उसकी सहायता को पहुँच गया। आजमगढ़ से कुछ दूर कुँवरसिंह से इस सेना की मुठभेड़ हो गयी। बूढ़े शेर ने इस सेना को भी मार भगाया और शान के साथ उसने आजमगढ़ नगर मे प्रवेश किया। यहाँ कुछ सैनिकों को छोड़ कर वह उस समय बनारस की ओर बढ़ा जब इससे सटे हुए नगर इलाहाबाद मे गवरनर जेनरल कैनिंग स्वयं मौजूद था। कैनिंग ने यह समाचार सुना तो उसे पर्सीना छूटने लगा। उसे यकीन न था कि ८० वर्ष का बूढ़ा कुंवरसिंह इस प्रकार मैदान पर मैदान मार सकता है। उसने लार्ड मार्क के अधीन एक तगड़ी सेना और तोपखाना कुँवरसिंह का मुकाबला करने के लिए भेजा। इधर लखनऊ से हटने वाले सैकड़ों सैनिक कुँवरसिंह से आ मिले। कुंवरसिंह का हौसला दूना हो गया। ६ अप्रैल को मार्क की सेना से उसका युद्ध हुआ। कुँअरसिंह ने सफेद रंग के घोड़े पर सवार होकर स्वयं युद्ध के मैदान मे सैनिको का सचालन किया और मार्क को मार भगाया। मार्क जान बचा कर भागा। जोश मे कुँवरसिंह ने उसका पीछा किया। इस प्रकार बनारस की ओर उसका अभियान अधूरा ही रह गया।

पलायित डेम्स आजमगढ़ के किले मे पनाह ले रहा था। जान बचा कर लड़ाई के मैदान से भागनेवाला मार्क भी वहाँ पहुँच गया। कुँवरसिंह ने इस किले को घेर लिया।

कुँवरसिंह अपनी रियासत जगदीशपुर पर कब्जा करने के लिए भी आतुर था। इसके लिए उसे गंगा को पार करना था। यह आसान काम न था। डेम्स और मार्क के सहायतार्थ पश्चिम से लगर्ड के अधीन अंग्रेज सेना चल चुकी थी। वाहरे कुँवर सिंह! उसने अपने युद्ध-कौशल से इस सेना को भी तमसा के पुल पर छट्ठी का दूध याद करा दिया। विद्रोही सैनिक लगर्ड की सेना को पराजित करने में सफल रहे। तब दूसरी नयी सेना डगलस नामक सेनाधिकारी के नेतृत्व मे कुँवरसिंह का मुकाबिला करने को आयी। किन्तु कुँवरसिंह ने इसको भी पराजित कर दिया और बलिया जिले के सिकन्दरपुर कस्बे तक बढ़ गया। घाघरा नदी के पार एक स्थान पर डगलस की सेना से पुनः उसकी मुठभेड़ हुई। अनेक युद्धों का संचालन दम पर दम करने के कारण श्लथ कुँवरसिंह यहाँ से पीछे हट गया। उसने अपनी सेना कई भागों में बाँट दी ताकि डगलस सबका पीछा न कर सके। हुआ भी यही। डगलस मुँह ताकता रह गया और अलग अलग रास्तों से कुँवरसिंह की सेना को

टुकड़िया गंगा-तट पर पहुँच कर एक दूसरे से मिल गयीं। यहाँ से उसने नाव पर गंगा पार की। मार्ग में उसकी बाँह में एक गोली लगी। ८०–८१ वर्ष के इस बूढ़े बागी ने अपने हाथ से अपनी बाँह काट कर गंगा को अर्पित कर दी। कहते हैं कि पूरे शरीर में विष फैलने की आशंका से ही उसने यह किया था।

२२ अप्रैल को कुँवरसिंह ने अपनी रियासत जगदीशपुर में पुनः प्रवेश किया और रियासत पर कब्जा कर लिया। आठ महीने तक लगातार मैदान पर मैदान मारने और हर जगह अंग्रेजों को शिकस्त देने वाले इस वीर को जगदीशपुर में पहुँचे पूरे चौबिस घण्टे भी न हुए थे कि आरा से ली-ग्रैण्ड के अधीन अंग्रेज और सिख सेना जगदीशपुर की ओर बढ़ी। कुँवरसिंह फौलाद का बना था शायद! इस दशा में भी वह मुट्ठी भर सैनिकों के साथ जिनकी संख्या एक हजार से अधिक किसी भी दशा में न थी, बिना आराम किये तलवार लेकर एक बार और उठ खड़ा हुआ। और जगदीशपुर से बाहर निकल कर उसने ली ग्रैंड की सेना पर हमला कर दिया और पहले हमले में मैदान मार लिया। अंग्रेज सेना की तोपें और उसकी रसद आदि उसके हाथ लगी। अंग्रेजों ने गहरी हार खायी। दूसरे दिन से अर्थात् २३ अप्रैल से वह जगदीशपुर पर फिर से शासन करने लगा। तीन दिन बीतते-बीतते यह वीर सदा के लिए सो गया। जिस समय मृत्यु ने उसे अपनी गोद में लिया, जगदीशपुर पर आजादी का झण्डा लहरा रहा था। सारे विद्रोह में यही एक ऐसा वीर नजर आता है जिसने अंग्रेजों को अनेक बार शिकस्त दी और आजादी के झंडे के नीचे ही अपनी मौत से मरा।

१७ अक्तूबर को अंग्रेजों ने कई ओर से जगदीशपुर पर हमला कर के उस पर कब्जा जमा लिया। कुँवरसिंह के भाई अमरसिंह ने युद्ध किया। उसके सैनिक मुट्ठी भर थे। एक बार उसने मैदान मारा लेकिन अंततः जीत अंग्रेजों की हुई। जगदीशपुर की वीरांगनाओं ने हँसते-हँसते स्वयं अपने प्राण होम कर दिये।

इस समय भारत में कम्पनी के पास चतुर और सुशिक्षित अंग्रेज अफसरों की लम्बी जमात के अलावा लगभग एक लाख अंग्रेज सैनिक जमा हो चुके थे। सिखों और गोरखों की विशाल सेना उनके साथ थी ही। मुख्य-मुख्य स्थानों पर वे कब्जा कर चुके थे। रह गये थे रुहेलखण्ड और अवध के बागी जिन्होंने खुले मैदान से हट कर गुरिल्ला युद्ध करना आरम्भ कर दिया था। तात्यां और झांसी की रानी लक्ष्मीबाई की सैनिक शक्ति अब भी कायम थी।

अंग्रेजों के प्रधान सेनापति कालिन कैम्पबेल को दो बार परास्त करने वाला बहादुर मौलवी अहमदशाह अब भी जिन्दा था। वह कई जगह अंग्रेजों से घिरा और कई बार बचा। क्रान्तिकारी सैनिके उसे अपनी आँखों का तारा समझते थे। वे हर जगह प्राण देकर उसकी रक्षा करते। अन्तिम दिनों में अहमदशाह फिर अवध में घुस कर अपनी शक्ति संघटित कर रहा था। इस दौरान में पवन नामक एक छोटी सी हिन्दू रियासत के राजा जगन्नाथसिंह से मिलने के लिए मौलवी अहमदशाह उसके पास गया। उसके भाई ने धोखे से मौलवी अहमदशाह को गोली मार दी और सन् ५७ की बगावत के नक्षत्रालोक का यह चमकता सितारा सदा के लिए लुप्त हो गया। राजा जगन्नाथसिंह ने स्वयं उसका सिर अंग्रेजों के शिविर में पहुँचाया और अंग्रेजों ने दूसरे दिन उसे शाहजहाँपुर की कोतवाली के सामने टँगवा दिया। फैजाबाद का यह अद्भुत वीर, अनुपम देश-भक्त और कुशल सेनापति उस समय अपने ही देशवासी द्वारा धोखे से मार डाला गया, जब सारे देश को उसकी आवश्यकता थी। इतिहासकारों ने लिखा है कि जन-आन्दोलन और बड़ी सेना—दोनों का नेतृत्व करने की अद्भुत योग्यता अहमदशाह में थी।

इस दौरान में ही विन्ध्याचल पर्वतमाला के उत्तर और जमुना के दक्षिण के हिस्से में भारतीय नरेशों ने, अंग्रेजों के हाथ बिके हुए गद्दारों ने भी भारत की पीठ में छुरा भोंका। दस मास तक विद्रोहियों की सहायता से महारानी लक्ष्मी बाई ने इस भू-भाग पर कब्जा जमा रखा था। इसके बाद भूपाल और हैदराबाद आदि की सेनाओं के साथ एक विशाल अंग्रेज सेना ह्यूरोज के नेतृत्व में इस ओर भेजी गयी। रानी ने मार्ग का बहुत बड़ा भाग वीरान कर रखा था। यह सेना भूखी-प्यासी मार्ग में ही शेष हो जाती लेकिन ग्वालियर के सिन्धिया राजा और अंग्रेज-भक्त ओरछा नरेश ने उसके लिए अपना खजाना खोल दिया। फलतः ७ जनवरी को रवाना होने वाली ह्यूरोज की सेना २० मार्च को झाँसी पहुँच गयी। रानी ने किलेबन्दी की और किले पर तोपें चढ़वा दी। तात्या टोपे उसकी मदद को आया लेकिन अंग्रेजों ने उसे पीछे हटा दिया। आठ दिनों तक दोनों ओर की धुँआधार गोलाबारी के बीच महारानी लक्ष्मी बाई अद्भुत वीरता के साथ अंग्रेजों से जूझती रही। किले का जो हिस्सा प्रातः गिरता, रानी उसे रातोरात ठीक करवा देती। वह घायलों की देखभाल करती, सैनिकों का उत्साह बढ़ाती, मोर्चे ठीक करती, गोलाबारी का निर्देशन करती—गरज यह कि कोई भी काम ऐसा न था, जिसे वह पूरा न करती। लेकिन विभीषण यहाँ भी थे। एक गद्दार भारतीय की सहायता

पाकर अंग्रेज किले में घुसने में समर्थ हो गये। रानी एक हजार चुने हुए सैनिकों को साथ लेकर अंग्रेजों पर टूट पड़ी। यहाँ दस्तबदस्त लड़ाई हुई जिसमें अंग्रेज सेना को पीछे हटना पड़ा लेकिन इसी समय सदर प्रवेश-द्वार के प्रहरी बहादुर खुदाबख्श और तोपखाने के सरदार गुलाम गौस की मृत्यु होने का दुर्भाग्य पूर्ण समाचार रानी को मिला। रानी हताश हो गयी। रात को उसने झाँसी को प्रणाम किया और बाहर निकल कर कालपी की ओर बढ़ी। वह घोड़े पर सवार थी। उसका दत्तक पुत्र दामोदर उसकी कमर से बँधा था। साथ में सिर्फ चुने हुए दस-पन्द्रह सवार थे। लेफ्टिनेण्ट बोकर ने कुछ चुने हुए सैनिकों के साथ उसका पीछा किया। दूसरे दिन वह रानी के एकदम समीप पहुँचा गया। भूखी-प्यासी रानी ने इस दशा मे ही तलवार से उस पर ऐसा आघात किया कि बोकर घायल होकर घोड़े की पीठ से नीचे गिर गया। रानी का घोडा उसे ले उड़ा। यह घोडा शायद वैसा ही समझदार और स्वामीभक्त था जैसा महाराणा प्रताप का घोडा चेतक था। कालपी पहुँचते ही यह घोड़ा सदा के लिए सो गया। चेतक की मौत भी उसी समय हुई थी जब वह लड़ाई के मैदान से बाहर काफी दूरी पर महाराणा प्रताप को पहुँचा चुका था।

कालपी मे तात्यां टोपे, नाना साहब का भतीज राव साहब, बुन्देलखण्ड के अनेक सरदार तथा बांदा का नवाब आदि जमा थे। रानी लक्ष्मीबाई भी इनसे मिल गयी। इनकी सम्मिलित सेना काफी बडी थी जो अंग्रेजो से मोर्चा ले सकती थी। यहाँ पहुँचे-पहुँचे ह्यूरोज को डेढ़ मास लग गये। इस बीच मे ये लोग इतना भी निश्चय न कर सके कि सेनापति कौन हो। इसमें सन्देह नहीं था कि तात्यां टोपे सर्वथा योग्य था और अंग्रेजों पर भी उसका आतंक भी था तथा वे उसकी दक्षता के कायल थे। लेकिन वह था बिलकुल साधारण कुल का इसलिए मुख्य सेनापति कैसे हो सकता था! रानी लक्ष्मीबाई तो इनकी निगाहो में 'लडकी' थी—२२ वर्ष की युवती मात्र! शेष लोग इस काबिल ही न थे कि काफी विशाल युद्ध का संचालन कर सकते। अतः फैसला न हुआ। सब मरने मारने के लिए तैयार थे। वीरता की कमी न थी लेकिन बुद्धि का अभाव था। इन्हें यह भी समझ न आयी कि इस मूर्खता के कारण ही दिल्ली का पतन हुआ। अस्तु, ह्यूरोज कालपी के पास कोंच (कंचगाँव) तक बढ़ आया। यहाँ पहुँच कर रानी लक्ष्मीबाई ने उसका मुकाबिला किया। उसे अन्य लोगों से या तो सहायता मिली ही नहीं या मिली भी तो नाममात्र की। फलतः बाजी अंग्रेजों के हाथ रही। रानी पुनः कालपी लौट आयी।

उसकी सेना में न तो घबराहट थी, न परेशानी। इसके सुव्यवस्थित ढंग को देख कर अंग्रेज भी आश्चर्यचकित रह गये थे।

तब अंग्रेजों ने कालपी पर हमला किया। यहाँ रानी ने एकबार ह्यूरोज की सेना को परास्त कर दिया लेकिन अंततः २४ मई, सन् १८५८ को क्रान्तिकारियों के इस गढ़ पर अंग्रेजों का कब्जा हो गया। किले में काफी परिमाण में गोला-बारूद था जो उनके हाथ लगा। क्रान्तिकारियों के पास युद्ध का साधन न रह गया। इसके बावजूद रानी और तांत्या की हिम्मत न टूटी।

तांत्या ग्वालियर पहुँचा। वहाँ की सेना और प्रजा अंग्रेजों से युद्ध करने को आतुर थी ही। वह तांत्या से मिल गयी। इसके बाद ही उसकी भेंट रानी लक्ष्मीबाई और राव साहब आदि से हुई। उन्होंने ग्वालियर नरेश जयाजीराव सिंधिया को पूर्व के सम्बन्धों की याद दिलाते हुए सहायता के लिए पत्र लिखा। सिंधिया ने सहायता देने के बदले युद्ध ठान दिया। रानी लक्ष्मीबाई तब उस पर टूट पड़ी। सिंधिया की सेना तात्यां से मिली हुई थी, अतः उसे मैदान छोड़ कर भागना पड़ा। तब दरबार हुआ। राव साहब पेशवा बनाया गया और तात्या उसका मंत्री। पेशवाई बहुत महँगी सिद्ध हुई। तुरंत अंग्रेजों पर हमला-वर होने की रानी की योजना खटाई मे रह गयी; क्योंकि पेशवा होने की खुशी में राव साहब दावतों से ही फुर्सत न पा सका। रानी और तात्यां ने क्रान्ति-कारियों का जो नया और शक्तिशाली केन्द्र बनाया, उसका पूरा लाभ न उठाया जा सका। १७ जून को ह्यूरोज ग्वालियर पर आ धमका। तात्यां ने ग्वालियर की सेना के साथ उसका मुकाबला करने की जी तोड़ कोशिश की लेकिन यह सेना टिक न सकी। तब रानी लक्ष्मीबाई ने बिखरी हुई सेना एकत्र की और नगर के पूर्वी फाटक के रक्षार्थ स्वयं वहाँ डट गयी। अंग्रेजों ने कई बार जनरल स्मिथ के नेतृत्व मे इस फाटक पर हमला किया और कई बार उन्हें पीछे हटना पड़ा। घोड़े पर सवार चण्डी रूपिणी रानी लक्ष्मीबाई जिधर टूट पड़ती, उधर बिजली गिर पडती। उसने मैदान मे निकल कर भी शत्रुओं को परास्त किया। उसकी अलौकिक वीरता देखकर अंग्रेजों का दिल भी काँप उठा। दूसरे दिन उन्होंने जान हथेली पर रख कर अपनी पूरी ताकत से हमला किया। थोड़े से सैनिकों की सहायता से युद्ध-रत रानी घिर गयी। उसने अंग्रेजों का घेरा चीर कर क्रान्तिकारियों की दूसरी सेना से मिलने की चेष्टा की। उसके साथ उसकी पाँच सहेलियाँ और लगभग बीस सवार शेष थे। तलवार से अपना मार्ग साफ करते हुए विद्युत् वेग से वह आगे बढ़ी। उसकी एक सहेली

को गोली लगी। रानी ने पीछे घूम कर गोली चलाने वाले अंग्रेज का सिर कलम कर दिया। वह फिर आगे बढ़ी। घोड़े ने धोखा दिया। यह घोड़ा कालपी में मरने वाले घोड़े के समान न था। सामने छोटा-सा नाला देख वह ठिठक कर खड़ा हो गया। लक्ष्मीबाई यहीं घिर गयीं। उसने तलवार से अंग्रेजों का मुकाबला जम कर किया। एक अंग्रेज घुड़सवार ने पीछे से उसके सिर पर वार किया। सर के दो टुकड़े हो गये लेकिन रानी की तलवार न थमी। वह बिजली गिराती ही रही। तब रानी के वक्षस्थतः पर वार हुआ। इन दो सांघातिक वारों ने उसे शिथिल कर दिया। गिरते-गिरते भी उसने उस अंग्रेज का काम तमाम कर दिया जिसने उसकी छाती पर वार किया था।

रानी का स्वामीभक्त नौकर अचेत रानी को लेकर लड़ाई के मैदान से निकल गया और गंगा तट पर उसने सविधि रानी का अंतिम संस्कार सम्पन्न किया। थोड़ी देर में वीरांगणा महारानी लक्ष्मीबाई के पार्थिव शरीर के स्थान पर राख की ढेर मात्र रह गयी।

तात्यां टोपे बांदा के नवाब और राव साहब के साथ राजस्थान की ओर बढ़ा। अंग्रेजों ने उसका पीछा किया। टोंक के नवाब ने उसका रास्ता रोकना चाहा लेकिन उसके सैनिक तात्या से मिल गये। तात्यां मेवाड की वीर प्रसूता भूमि की ओर बढ़ा। उसके पीछे होम्स के नेतृत्व में अंग्रेज सेना बढ़ रही थी। राजपूताने से सेनापति राबर्ट्स उसकी ओर बढ़ रहा था। सामने वर्षा के जल से भरी चम्बल नदी उबाल खा रही थी। वीर तात्यां ने इन तीनों बाधाओं को अँगूठा दिखाया और बूँदी की ओर जा निकला। ७ अगस्त को यहाँ पहुँच कर राबर्ट्स के अधीन सेना ने उस पर हमला किया लेकिन तात्यां उदयपुर के अन्तर्गत कोटरा ग्राम में निकल गया। यहाँ पुनः उसे अंग्रेजो ने घेरने की चेष्टा की। वह एक बार फिर चम्बल की ओर बढ़ा। राबर्ट्स की सेना उसके पीछे थी। दूसरी दक्षिण से उसकी ओर बढ़ रही थी। तीसरी अंग्रेज सेना चम्बल के किनारे उसका रास्ता रोके खड़ी थी। लेकिन वीर तात्यां ने इस बार फिर सभी बांधाओं पर विजय पायी और वह चम्बल पार कर गया। तब झालरापाटन का राजा उसका रास्ता रोकने को आगे बढ़ा। तात्यां की रसद और तोपें पीछे छूट गयी थी। मुमकिन था कि यहाँ वह घिर जाता या मारा जाता। लेकिन झालरापाटन की सेना अपनी तोपों, सामान और रसद के साथ उससे मिल गयी। यह सहारा पाकर उसकी भुजाएँ फिर फड़क उठी। राव साहब और बांदा के नवाब के परामर्श से, जो उनके साथ थे, तात्यां नयी सेना और तोपें लेकर इन्दौर की ओर बढ़ा। इस समय छः अंग्रेज सेनापति उसे घेरने की चेष्टा

एक साथ कर रहे थे। रायगढ़ में उसे माइकेल को अंग्रेज सेना का सामना करना पड़ा। वह पीछे हटा। तोपें पुनः हाथ से निकल गयीं। तब उसने उत्तर की ओर बढ़ कर सिंधिया के ईशगढ़ पर हमला कर के वहाँ की तोपों पर कब्जा कर लिया। इसके बावजूद ललितपुर में वह पाँच ओर से घिरता मालूम हुआ। विजय अंग्रेजों के हाथ लगना ही चाहती थी कि अपने बुद्धि-कौशल से तात्या फिर बच निकला और होशंगाबाद में नर्मदा को पार कर के नागपुर जा पहुँचा। उसे यहाँ कोई मदद न मिली, यद्यपि अंग्रेज बहुत आतंकित हो गये थे। गवरनर जेनरल कैनिंग की पेशानी पर भी बल पड़ गये थे, क्योंकि महाराष्ट्र के अन्तिम पेशवा का भजीता राव साहब भी महाराष्ट्र की भूमि पर सेना के साथ पहुँच गया था। यदि क्रान्ति के आरम्भ के समय ही यह घटना घटी होती तो महाराष्ट्र में अंग्रेजों का टिक सकना मुश्किल हो जाता। लेकिन घटना घटी एक वर्ष के बाद, जब अंग्रेज क्रान्तिकारियों के प्रायः सभी मुख्य केन्द्रों पर अधिकार जमा चुके थे। दक्षिण भारत में निराशा फैली हुई थी। लोग तात्यां के पास जाने में भी डरे। वह बड़ौदा की ओर गया। वहाँ से राजस्थान में घुसा। छः मास तक तात्या इधर से उधर घूमता रहा। इस बीच कई बार उसके हाथ से ताकत निकली और कई बार हाथ में आयी। सब कुछ हुआ लेकिन अंग्रेज उस पर काबू न पा सके। १६ जनवरी को देवास में तात्या, राव साहब और दिल्ली के राजकुल का प्रसिद्ध शाहजादा फिरोज खाँ जो अवध की लड़ाई में भाग ले चुका था और जो सेना सहित गंगा-जमुना पार करके १३ जनवरी, १८५९ को बड़े कौशल से साथ अंग्रेजों से मिल गया था, जिस खेमे में बैठे थे, उसमें अंग्रेज घुस गये। शोर हो गया कि तात्या पकड़ा गया लेकिन चन्द अंग्रेज उसे कैसे पकड़ सकते थे! वह उन्हें मार कर अपने साथियों के साथ निकल भागा। अलवर के पास शिखरजी में अंग्रेजों से जागीर प्राप्त करने की लालच में फँसे राजपूत कुलकलंक मानसिंह ने उसे धोखा देकर ७ अप्रैल, १८५९ को गिरफ्तार करा दिया। अंग्रेजों की बाछें खिल गयीं। १८ अप्रैल को वीर तात्यां फाँसी पर चढ़ा दिया गया। शाम तक उसकी लाश लटकती रही। अंग्रेजों से अन्त तक लोहा लेने वाला यह वीर भी अपने देश के ही विभीषण के षड्यंत्र का शिकार हुआ। तात्यां अद्भुत पराक्रमी और अत्यधिक कुशल सेनापति था। कई धुरंधर अंग्रेज सेनापति एक साथ मिलकर भी कभी उसका कुछ न बिगाड़ सके थे।

अप्रैल में ही नाना साहब, बाला साहब, और बेगम हजरत महल ने लगभग साठ हजार स्त्री-पुरुषों के साथ अवध का त्याग कर के नैपाल में प्रवेश

किया। उसने नेपाल के महाराज जंगबहादुर सिंह से सहायता प्राप्त करने के लिए लिखा-पढ़ी की। सहायता देना तो दूर रहा, जंगबहादुर सिंह ने उन्हें पनाह भी नहीं दी। उलटे नेपाल में घुस कर इनका संहार करने की इजाजत जंगबहादुर सिंह ने अंग्रेजों को दे दी। बहुत से लोग कतल कर दिये गये। बहुत से जंगलों में भटक-भटक कर मर गये। नाना का क्या हुआ, यह कोई नहीं जानता। आज तक इसका पता नहीं चल सका। कुछ समय बाद बेगम हजरत महल और उसके पुत्र को किसी प्रकार नेपाल में संरक्षण मिल गया।

तात्या की मृत्यु के बाद शाहजादा फिरोजशाह और राव साहब ने एक मास तक अंग्रेजों से युद्ध किया। फिरोजशाह के गुरिल्ला युद्ध ने बड़े-बड़े अंग्रेज सेनापतियों को भी चक्कर में डाल दिया। बाद में वे भी जगलों में निकल गये। १८६२ में राव साहब को अंग्रेजों ने पकड़ लिया और कानपुर में उसे फाँसी दे दी गयी। शाहजादा फकीर के भेष में सन् १८६४ में अरब चला गया। इस प्रकार सन् १८५७ के महान् स्वातंत्र्य युद्ध का अन्त हुआ और अगले सौ वर्षों के लिए भारत गुलामी की जंजीरों में जकड़ा गया।

इस महान् क्रान्ति के समय की भारतीयों की प्रायः सभी दुर्बलताओं की ओर संकेत किया जा चुका है। इतना ही और कहना पर्याप्त होगा कि अंग्रेजों ने जहाँ वीरता दिखाई, वहाँ भी वे कुछ कर न सकते यदि उन्हें भारतीय सिपाहियों अथवा विभीषणों की मदद न मिली होती। इस क्रान्ति को दबाने में वीरता दिखाने के नाम पर कैप्टेन डब्ल्यू० ए० कर को 'विक्टोरिया क्रास' से विभूषित किया गया। वास्तव में इसने जो कुछ किया, वह दक्षिण मराठा घुड़सवार और कोल्हापुर लाइट इनफैंट्री के बल पर किया।* ऐसी ही बात या इस प्रकार की अन्य बात 'विक्टोरिया क्रास' से विभूषित किये जाने वाले प्राइवेट हेनरी वार्ड, लेफ्टिनेन्ट एण्ड्रू कैथकार्ट बाग्ले, टी० हेनरी कैवना, लेफ्टिनेन्ट बटलर, और रास एल० मैंग्लेस (पटना का सहायक मजिस्ट्रेट) के सम्बन्ध में भी कही जा सकती हैं। इनके सम्बन्ध में विस्तृत विवरण हार्ड, लाक एण्ड कं० द्वारा प्रकाशित 'ब्रेव ब्रिटिश सोलजर्स एण्ड विक्टोरिया क्रास' नामक पुस्तक से प्राप्त किया जा सकता है। अंग्रेजों द्वारा लिखित

---

* १. 'ब्रेव ब्रिटिश सोलजर्स एण्ड विक्टोरिया क्रास'—हार्ड, लाक एण्ड कं० पृष्ठ संख्या १६९, १७०।

और अंग्रेज कम्पनी द्वारा प्रकाशित इस पुस्तक में उपर्युक्त तथाकथित वीरों की वीरता (!) पर रंग चढाने की काफी कोशिश की गयी है, लेकिन उनकी सफलता का वास्तविक रहस्य चतुर पाठक की निगाह से छिपा नहीं रहता।



# भारत की आर्थिक लूट

**कम्पनी के शासन की समाप्ति की घोषणा—विक्टोरिया के ऐलान—बेगम हजरत महल का उत्तर—वाइसराय का नया पद—कम्पनी के शासन-काल में भारत की आर्थिक लूट—भीषण अकाल—बुनकरों का विनाश—भारतीय वस्त्र-व्यापार पर नियंत्रण—मुद्रा-विनिमय की दर में ह्रास—पचास वर्षों में २४ बार अकाल पड़ा।**

भारत पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन समाप्त कर के उसे इंग्लैण्ड के बादशाह को सुपुर्द करने का आंदोलन इंग्लैण्ड में बहुत दिनों से चल रहा था। सन् १८५७ के विद्रोह ने इसे बल प्रदान किया। सन् १८५८ में भारत में अंग्रेजी सत्ता के सम्भलते ही उपर्युक्त आन्दोलन ने पुनः जोर पकड़ लिया और शासनाधिकार के परिवर्तन के लिए पार्लिमेण्ट में एक प्रस्ताव पेश कर दिया गया। कम्पनी के डाइरेक्टरों ने बहुत चीख-पुकार मचायी लेकिन वह व्यर्थ सिद्ध हुई। भारत में क्रान्ति समाप्त भी नहीं हुई थी कि पहली नवम्बर, सन् १८५८ को इंग्लैण्ड की सम्राज्ञी ने भारत में कम्पनी के शासन की समाप्ति की घोषणा कर के शासन स्वयं सम्भाल लिया। महारानी ने घोषित किया कि—"ईश्वर की कृपा से भारत में पुनः शान्ति स्थापित होने पर हमारा यह इरादा है कि यहाँ का कला-कौशल बढ़ाया जाय जिससे साधारण जनता लाभान्वित हो। शासन इस प्रकार किया जाय की जनता को लाभ हो और उसकी उन्नति हो।"

विक्टोरिया के इस ऐलान के उत्तर में ही बेगम हजरत महल ने इस आशय की घोषणा की थी कि—"हमारी प्रजा को इस पर विश्वास न करना चाहिये। कम्पनी के कानून, उसका गवरनर जेनरल, अंग्रेज कर्मचारी और अंग्रेज अदालतें पहले की भाँति ही कायम रहेंगी।"

विक्टोरिया की घोषणा वास्तव में बेदम थी। इंग्लैण्ड के कानून में कोई ऐसी व्यवस्था न थी जिसके अन्तर्गत पार्लिमेण्ट सम्राट अथवा सम्राज्ञी की इच्छा पर अमल करने के लिए बाध्य होती। विफल क्रान्तिकारियों को राहत पैगाम सुना कर उनका हौसला तोड़ने के लिए ही उपर्युक्त झूठी घोषणा

प्रसारित की गयी थी। बाद में यह स्पष्ट भी हो गया; क्योंकि भारत के अंग्रेजों ने विक्टोरिया की घोषणा की एक भी बात पर अमल नहीं किया।

शासनाधिकार में परिवर्तन के साथ-साथ गवरनर जेनरल वाइसराय भी बना दिया गया। कैनिंग प्रथम वाइसराय हुआ। इंग्लैण्ड के मंत्रिमण्डल में एक भारत मंत्री की भी नियुक्ति हुई। देशी रियासतों के राजाओं को विश्वास दिलाया गया कि अंग्रेज, रियासतों से की गयी संधियों पर कायम रहेंगे। प्रजा के धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप न किया जायगा। इसके बावजूद अगले छः मास तक क्रान्ति की आग न बुझी।

भारत में विक्टोरिया का प्रशासन दो भागों में विभाजित है—(१) १८५८ से १८७६ तक और (२) १८७६ से १९०१ तक। सन् १८७६ तक विक्टोरिया का सम्बन्ध भारत से इंग्लैण्ड की रानी के रूप में रहा। सन् १८७६ में प्रधान मंत्री डिजरेली के शासन-काल में विक्टोरिया जाब्ते से भारत की भी सम्राज्ञी घोषित की गयी। तत्कालीन गवरनर जेनरल लिटन ने सन् १८७७ में दिल्ली में धूमधाम से दरबार किया और भारतवासियों को राज-भक्ति का पाठ पढ़ाया। इसके पीछे बहुत बड़े उपनिवेश का मालिक बनने का स्वप्न था जो प्रायः पूरा भी हुआ।

यहाँ विक्टोरिया शासनकालीन घटनाओं के विवरण से पूर्व ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन-काल में भारत की आर्थिक दशा का वर्णन करना आवश्यक है, अन्यथा शासनाधिकार परिवर्तन के पूर्व का इतिहास अधूरा रह जायगा।

कम्पनी के शासन से पूर्व भारत की ग्रामीण-व्यवस्था उसकी अर्थ-व्यवस्था की रीढ़ थी। कम्पनी के शासन-काल में यह व्यवस्था नष्ट-भ्रष्ट हो गयी। "सामुदायिक ग्राम-व्यवस्था जो अब तक भारतीय अर्थ-व्यवस्था का मूलाधार थी, विघटित हो गयी। उसका आर्थिक और प्रशासकीय प्रयोजन समाप्त हो गया। सन् १८३० में सर चार्ल्स मेटकाफ ने लिखा था—ग्रामीण बस्तियाँ छोटे-छोटे प्रजातन्त्र हैं जो पूर्णतः स्वावलम्बी हैं और बाहरी सम्बन्धों से पूर्णतः मुक्त हैं।"*

इन स्वावलम्बी ग्रामीण बस्तियों का उल्लेख प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता, दार्शनिक कार्ल मार्क्स ने बड़े प्रभावशाली ढंग से किया है। उसने लिखा है—"भारत की ये छोटी-छोटी और अति प्राचीन बस्तियाँ...जमीन के सामूहिक अधिकार, खेती तथा दस्तकारी की मिलावट और ऐसे क्रम-विभाजन पर आधारित हैं जो

---

* जवाहरलाल नेहरू 'डिसकवरी आव इण्डिया'—पृष्ठ संख्या २९०।

कभी नहीं बदलता।...प्रत्येक बस्ती अपने में पूर्ण होती है तथा अपनी आवश्यकता की सभी वस्तुएँ स्वयं उत्पन्न कर लेती है। उत्पादन का अधिकतर भाग बस्ती के काम में आता है और वह बाजार का माल नहीं बनता। अतः माल को बेचने और उसे खरीदने से समाज में जो श्रम-विभाजन आता है, वास्तव में जो भारतीय समाज में आ भी चुका है, उसका प्रभाव यहाँ के उत्पादन पर नहीं पड़ता।...पैदावार का एक हिस्सा बतौर लगान राज्य को दे दिया जाता है।...सब लोग मिल कर खेती करते है और आपस में पैदावार बाँट लेते हैं। इसके साथ-साथ, कातने और बुनने का काम प्रत्येक परिवार में सहायक धन्धे के रूप मे होता है।"*

इस व्यवस्था के फलस्वरूप भारत जैसा सम्पन्न था, उसका उल्लेख भारत में अंग्रेजी सत्ता का बीजारोपण करने वाले क्लाइव ने स्वयं किया है। सन् १७५७ में बगाल की पुरानी राजधानी मुर्शिदाबाद में प्रवेश के बाद उसने लिखा था—"यह शहर उतना ही विस्तृत, घनी बस्ती वाला और धनी है जितना लन्दन। लेकिन फर्क यह है कि यहाँ के लोगो के पास लन्दन के लोगों से बहुत अधिक सम्पत्ति है।"†

टैवर्नियर ने लिखा था—"छोटे से छोटे गाँवों में भी चावल, आटा, मक्खन, दूध और चीनी आदि अत्यधिक परिमाण में उपलब्ध हो सकती है।‡

मुगल साम्राज्य के पतन से पूर्व सत्रहवीं शती मे दो बार बगाल का भ्रमण करने वाले फ्रांसीसी पर्यटक बर्नियर ने लिखा था—"अपनी दो यात्राओं के दौरान में मैं बगाल के सम्बन्ध मे जो ज्ञान प्राप्त कर सका हूँ, वह मुझे यह विश्वास दिलाता है कि यह मिस्र से भी अधिक धनी है। यह बहुत अधिक परिमाण में कपास, सिल्क, चावल, चीनी और मक्खन का निर्यात करता है।"↑

धन-धान्य से पूरित भारत के इस भूखंड मे अंग्रेज अधिकारियों और कर्म-

---

* मार्क्स, 'कैपिटल' खण्ड १, अध्याय १४, अंश ४—'आर्टिकल्स आन इण्डिया' में उद्धरित।

† इण्डियन इण्डस्ट्रीयल कमीशन रिपोर्ट में उद्धरित—पृष्ठ संख्या २४९।

‡ टैवर्नियर 'ट्रैवेल्स इन इण्डिया' पृ० सं० २३८

↑ विलियम विल्कॉक्स, 'लेक्चर्स आन दि एससमेंट आव इर्रीगेशन इन बंगाल' में उद्धरित—पृ० सं० १८०

चारियों ने जैसी लूट मचा रखी थी, आरम्भ में उनकी ओर संकेत किया जा चुका है। उसका एक उदाहरण इस प्रकार है। पलासी के युद्ध में पराजय के बाद बंगाल के नवाब ने कम्पनी के कर्मचारियों की लूट के सम्बन्ध में कम्पनी को लिखा—"वे किसानों और व्यापारियों की वस्तुएँ और उनका माल जबरदस्ती छीन कर ले जाते हैं और उन्हें मारपीट कर तथा प्रताड़ित करके पाँच रुपये के सामान का मूल्य एक रुपया लेने को बाध्य करते हैं।"*

सन् १७६५ में बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त होने पर कम्पनी की लूट-खसोट और बढ़ गयी। लगान के नाम पर किसानों का खून खूब चूसा गया। उनकी तबाही और बरबादी का अन्दाज प्रति वर्ष बढ़ने वाली मालगुजारी की रकम के तत्कालीन आंकड़ों से लगाया जा सकता है। बंगाल के अन्तिम भारतीय शासक ने अपने शासन के अन्तिम वर्ष ( १७६४–६५ ) में मालगुजारी के रूप मे ८ लाख १७ हजार पौण्ड वसूल किये थे। कम्पनी के शासन-काल के प्रथम वर्ष ( १७६५–६६ ) मे यह रकम बढ़ कर १४ लाख १७ हजार, और १७७१–७२ में २३ लाख ४१ हजार तथा १७७५–७६ तक यह रकम २८ लाख १८ हजार पौण्ड हो गयी। जब १७९३ मे लार्ड कार्नवालिस ने इस्तमरारी बंदोबस्त लागू किया, तब ८ लाख १७ हजार की उपर्युक्त रकम बढ़ कर ३४ लाख पौण्ड हो चुकी थी। इस दौरान मे ही बंगाल मे भीषण अकाल पड़ा ( १७७० )। कम्पनी ने इस अकाल मे लगभग एक करोड़ व्यक्तियों के नष्ट होने का अनुमान लगाया था। पूर्णिया के हरेभरे प्रान्त की लगभग एक तिहाई आबादी काल के गाल मे समा गयी थी। अन्य भागों मे भी बरबादी इससे कम नही थी। इसके बावजूद सन् १७७१ में अर्थात् अकाल के अगले वर्ष कम्पनी ने सन् १७६८ की मालगुजारी की तुलना मे अधिक मालगुजारी वसूल की। नतीजा यह हुआ कि खेती-बारी सब चौपट हो गयी और "भारत में कम्पनी के अधीन क्षेत्र का एक तिहाई भाग जंगल के रूप मे बदल गया जिसमे केवल जंगली जानवर रहते थे।"†

अठारहवीं शती के उत्तरार्द्ध मे पहले इंग्लैंड में और फिर सारे यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति हुई। उत्पादन के नये-नये साधनों का अविष्कार हुआ। औद्योगिक माल की खपत के लिए बाजार की आवश्यकता हुई। इंग्लैंड ने हिन्दुस्तान के बाजार को अपने माल से पाटना शुरु किया। इसका इतिहास

---

* 'मेमोरेण्डम आव दि नवाब आव बंगाल टू दि इंग्लिस गवरनर' मई, १७६२

† लार्ड कार्नवालिस—'मिनट आव सेप्टेम्बर १८, १७८९'

बड़ा रोमांचकारी है। यहाँ के बुनकरों के अंगूठे काट लिये गये। उन्हें मजदूरी करने के लिए बाध्य किया गया। "विलियम तृतीय के शासन काल में कानून बना कर निश्चय किया गया कि भारत, ईरान और चीन से आने वाला कढ़ा हुआ रेशमी तथा छपा या रंगा हुआ सूती कपड़ा पहनने पर रोक लगा दी जाय और जो लोग ऐसा कपड़ा बेचे या अपने पास रखें उन पर २ सौ पौण्ड जुर्माना किया जाय। जार्ज प्रथम, द्वितीय और तृतीय के शासन-काल में भी अंग्रेज कारखानेदारों की चीख-पुकार के परिणामस्वरूप इस प्रकार के कानून बनाये गये और इस प्रकार अठारहवीं शती के अधिकांश भाग में भारत का माल, आमतौर पर यूरोप में बेचने के लिए इंग्लैण्ड लाया जाता था और स्वतः इंग्लैण्ड के बाजारों से उसे बाहर रखा जाता था।" ❀ इसके बावजूद भारत में बने हुए वस्त्र का मुकाबला इंग्लैण्ड में बना हुआ वस्त्र न कर सका। भारत के व्यापार पर कम्पनी के एकाधिकार की समाप्ति की जांच के सिलसिले में सन् १८१३ में जो संसदीय पड़ताल हुई, उसमें दी गयी "गवाही में बताया गया कि भारत का सूती और रेशमी वस्त्र इंग्लैण्ड में अंग्रेजी वस्त्र के मूल्य के ५० से ६० फी सदी कम मूल्य पर नफे के साथ बिक सकता था। परिणामतः अंग्रेजी वस्त्र व्यापार को बचाने के लिए भारतीय माल पर उसके मूल्य की ७० और ८० फी सदी चुंगी लगाना आवश्यक हो गया। ऐसा न होता और ऐसी निरोधात्मक कारंवाई न की जाती तो पाइस्ले और मैनचेस्टर की मिलों का काम आरम्भ में ही ठप पड़ जाता और और बाद में वाष्पशक्ति के आधार पर भी ये शायद ही चालू की जा सकती।" †

इस प्रकार भारतीय वस्त्र-निर्यात व्यापार का गला घोटा गया। इंग्लैण्ड की सरकार पर दबाव डाल कर कम्पनी के अतिरिक्त अन्य लोगों ने भी भारत में व्यापार करने की इजाजत प्राप्त कर ली—भारत का व्यापार, कुछ शर्तों के साथ सभी व्यापारियों के लिए खुल गया। थोड़े ही समय में व्यापार का नक्शा बिलकुल बदल गया। सन् १८१३ तक भारत निर्यात करने वाला देश था। उपर्युक्त परिवर्तन के बाद वह आयात करने वाला देश रह गया। यह परिवर्तन बहुत तेजी से हुआ। फलतः मुद्रा-विनिमय की दर भी गिर गयी। पहले एक रुपया २ शिलिंग ६ पेंस के बराबर होता था जो घट कर २ शिलिंग का रह गया।

---

❀कार्लमार्क्स—'आर्टिकल्स आन इण्डिया'—पृ० सं०—४३-४४

†एच० एच० विलसन—'हिस्ट्री आव ब्रिटिश इण्डिया'—खंड—१ पृ० संख्या २८५

सारी दुनिया को सूती वस्त्र भेजने वाले भारत का बाजार इंग्लैण्ड के वस्त्र से पट गया। उसका मुख्य व्यापार तहस-नहस हो गया। बुनकर भूखे मरने लगे। संसदीय जांच के समय सन् १८४० में सर चार्ल्स ट्रेविलियन ने बताया था कि "ढाका (भारतीय वस्त्रोत्पादन का प्रमुख केंद्र) की आबादी डेढ़ लाख से घट कर तीस या चालिस हजार रह गयी है। ढाका, भारत का मैनचेस्टर, जंगल होता जा रहा है। अत्यधिक सम्पन्नता की यह दशा भयावह बरबादी मे बदल गयी है।" तत्कालीन इतिहासकार मांटगोमरी मार्टिन ने इसी जाँच के समय यह बयान दिया था—"सूरत, ढाका और मुर्शिदाबाद तथा अन्य स्थानों की जहाँ भारतीय उत्पादक रहते थे, बरबादी और सर्वनाश इतना अधिक दर्दनाक तथ्य है कि कुछ कहा नहीं जा सकता। मैं इसे व्यापार का न्यायपूर्ण तरीका नहीं मानता। मेरे विचार मे यह निर्बल पर सबल का बल प्रयोग है।" सन् १८६० में सर हेनरी कानट ने लिखा था—"एक सौ वर्ष से भी कम समय से पूर्व ढाका में लगभग एक करोड़ रुपये का व्यापार होता था। उसकी आबादी लगभग दो लाख थी। सन् १७८७ में ढाका में बनी ३० लाख रुपये की मलमल इंग्लैण्ड भेजी गयी और सन् १८१७ में निर्यात् बिलकुल समाप्त हो गया। कताई और बुनाई की कारीगरी बिलकुल समाप्त हो गयी। औद्योगिक बस्तियों के लाखों व्यक्ति सदियों तक इससे काम पाते रहे। अब सम्पन्न-परिवार जीविका के लिए नगर त्याग कर गाँवों में चले गये हैं।"* "इसके परिणाम स्वरूप हिन्दुस्तान का कपड़े का अपना व्यवसाय जो एक समय अत्यन्त प्रसिद्ध था, एकदम तबाह हो गया। १७८० में ब्रिटेन और आयरलैण्ड से हिन्दुस्तान आने वाले माल की कीमत केवल ३ लाख, ८६ हजार, १५२ पौंण्ड होती थी। इसी साल इंग्लैण्ड से १५ हजार ४१ पौण्ड का सोना-चाँदी बाहर गया। इसी वर्ष इंग्लैण्ड से बाहर जाने वाले कुल माल की कीमत १ करोड़, २६ लाख, ४८ हजार, ६१६ पौण्ड रही, अर्थात् भारत से होने वाला व्यापार इंग्लैण्ड के कुल व्यापार का बत्तीसवाँ भाग था। सन् १८५० मे ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैण्ड से भारत भेजे गये कुल माल की कीमत ८० लाख २४ हजार पौण्ड थी जिसमें अकेले सूती माल की कीमत ५२ लाख २० हजार पौण्ड थी, अर्थात् १८५० तक हिन्दुस्तान जाने वाले सूती माल की कीमत विदेशों को जाने वाले कुल सूती सामान की एक चौथाई हो गयी।"†

इस औद्योगिक विनाश के फलस्वरूप देहातों में बेकारों की संख्या में

---

* रजनी पामदत्त—'इंडिया टुडे' में उद्धृत—पृ०—सं० १०२

† कार्ल मार्क्स—'आर्टिक्लस आन इंडिया'—पृ० सं० ४५

प्रबल वृद्धि हुई। लाखों व्यक्ति अकाल के मुँह मे समा गये। कम्पनी के राज में "उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में सात बार अकाल पड़ा जिनमे कुल मिला कर १५ लाख व्यक्ति भूख से तड़प कर मर गये। उन्नीसवी शती के उत्तरार्द्ध मे अकाल की संख्या में और भी वृद्धि हुई और पचास वर्षों के अन्दर लगभग २४ बार अकाल पड़ा जिनमे सरकारी आँकड़ों के अनुसार लगभग दो करोड़ व्यक्ति अकाल में ही मृत्यु की गोद मे सो गये।"*

यह बताया जा चुका है कि अकाल के जमाने मे भी अंग्रेजों ने माल-गुजारी कम नहीं बल्कि अधिक वसूल की। लेकिन पैशाचिकता यही तक सीमित न थी। एक ओर भारतीय दाने-दाने के लिए मुहताज होकर मर रहे थे और दूसरी ओर अंग्रेज भारत का गल्ला विदेशों में भेज रहे थे। निर्यात् किये जाने वाले गल्ले के परिमाण में बराबर वृद्धि होती रही। "सन् १८४६ मे ८ लाख ५८ हजार पौण्ड का गल्ला निर्यात किया गया। इसमे गेहूँ और चावल मुख्य था। इसके मुकाबले मे सन् १८५८ में निर्यात् किये जाने वाले गल्ले का मूल्य ३८ लाख पौण्ड और १८७७ मे ९३ लाख पौण्ड था।"† इन आँकड़ों से भी अधिक अच्छी तरह अंग्रेजों की खूनी लूट की कहानी और कौन सुना सकता है? किसान का अस्तित्व ही नहीं रह गया था। कम्पनी के राज के पहले किसान जमीन का मालिक था। गाँव मे सरकारी मालगुजारी की वसूली और उसका बँटवारा पंचायतें करती थी। अंग्रेजों ने यह व्यवस्था नष्ट कर दी और जमींदार कायम कर दिये जिनके गुर्गे निर्दयता पूर्वक किसानों का खून चूसते थे और अंग्रेजों का घर भरते थे। किसान बाध्य होकर ही खेती करता था, क्योंकि उसके सामने और कोई जरिया न था। बुनकर तो मजदूर हो ही चुके थे। अपना पेट भरने के लिए वे किसी भी शर्त पर मजदूरी करने को बाध्य थे। ऐसी दशा में अंग्रेज बस्तियों मे तेजी से वृद्धि हुई जिनका उल्लेख आगे मिलेगा। नमक पर कम्पनी का एकाधिकार था ही। उसके उत्पादन पर ३ सौ या २५० फी सदी कर लगाया जाता था। इंग्लैण्ड में जब नमक का भाव ३० शिलिंग प्रति टन था, भारत मे वह २१ पौण्ड प्रति टन बिकता था। नमक का व्यापार कम्पनी द्वारा भारत की लूट के षड़यन्त्र का एक आवश्यक अंग हो गया था। इस आर्थिक पृष्ठ भूमि में ही महारानी विक्टोरिया ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन की समाप्ति की घोषणा की।

---

* रजनी पामदत्त–'इण्डिया टुडे'—पृष्ठ सं० १०६

† रजनी पामदत्त–'इंडिया टुडे'—पृ० सं० १०६

# अंग्रेजी सत्ता-विरोधी आंदोलन

**फूट डालो और शासन करो राजाओं को प्रलोभन—साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन—अंग्रेज बस्तियों का निर्माण—शाह वली उल्लाह—अंग्रेजों का दमन चक्र—वाइसराय मेयो की हत्या—पहला असहयोग और स्वदेशी प्रचार आन्दोलन—नामधारी आन्दोलन—सिखों का दमन—गुरु रामसिंह।**

ब्रिटेन के इतिहास में विक्टोरिया का शासन-काल उत्कर्ष का युग माना जाता है। काफी अशों में यह बात सही भी है। भारत के राजनीतिक उतार-चढ़ाव की दृष्टि से भी इसका स्थान अलग है। इस काल में न केवल अंग्रेजी शासन का तौर-तरीका बदला बल्कि भारतीयों के दृष्टिकोण में भी व्यापक परिवर्तन हुआ। विक्टोरिया के शासन-काल को भारत के सामाजिक पुनर्जागरण का युग कहा जा सकता है। बंगाल के प्रसिद्ध सुधारक राजा राममोहनराय (१७७२–१८३३) के प्रगतिशील विचारों का प्रभाव देश के एक कोने के समाज पर पड़ चुका था। शिक्षा के सम्बन्ध में उनके दृष्टिकोण ने लगभग पूरे भारत को प्रभावित किया था। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में स्वामी रामकृष्ण परमहंस के मानवीय विचार एवं सामाजिक कार्य समाज को एक नयी दिशा प्रदान कर रहे थे। मुसलमानों के उत्थान-सम्बन्धी कार्यों के प्रति सर सैयद अहमद खाँ (१८१७–१८९८) की लगन ने मुल्क में एक नयी फिजा पैदा कर दी थी। श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर (१८२०–१८९१), श्री केशवचन्द्र सेन (१८३६–१८८४), श्री बदरुद्दीन तैय्यबजी (१८४१–१९०६), के० वीरेशलिंगम् पांतुलु (१८४८–१९१९), श्री काशीनाथ त्र्यम्बक तैलंग (१८५०–१८९३), और श्री गोपालकृष्ण गोखले (१८६६–१९१५), प्रभृति महान् व्यक्तित्व वाले शिक्षाविद् अथवा समाज सुधारक समाज की मोहनिद्रा को तोड़ने में लगे थे। स्वामी दयानन्द का शुद्धि आन्दोलन भी समाज पर प्रभाव डाल रहा था। सारा भारतीय समाज जीवन के नये मूल्यों की ओर आकृष्ट होने लगा था। बौद्धिक विकास-जन्य चेतना जीवन-गति को नयी दिशा की ओर ले जाकर अधिकारों के प्रति जागरूकता का पथ प्रशस्त करने में संयोजित हो रही थी।

विक्टोरिया के शासन-काल में अंग्रेजी शासन का रवैया भी बदल गया था। सन् १८५७ के भारतीय विद्रोह को दबाने में जो अनुभव अंग्रेजों को प्राप्त हुए, उनका लाभ उठाते हुए उन्होंने सैनिक शक्ति के बजाय फूट की नीति पर जोर देना शुरू किया। इस युग में एलिनबरो और डलहौजी की 'फूट-डालो' की नीति ने 'फूट डालो और शासन करो' की नीति का रूप ग्रहण कर लिया। मुसलमानों को भड़काया जाने लगा। देशी रियासतों को शासन के ढाँचे का पाया बनाया गया। उनकी राजनीतिक गतिविधि को नियन्त्रित रखने की बंदिश बाँध कर जनता को अन्धकार में रखने के लिए रियासती राजाओं की पीठ थपथपायी गयी। देहातों के गरीब मजदूरों और उजड़े हुए किसानों को आत्महीनता का शिकार बनाने के लिए स्थान-स्थान पर गोरों की बस्तियाँ बनायी गयी। भारत के आर्थिक शोषण के निमित्त वैज्ञानिक उपायों का सहारा लिया गया जो देखने में सुधारवादी लगते किन्तु जिन पर अमल का उद्देश्य शोषण करना था।

विक्टोरिया की घोषणा (१८५८) में कहा गया था—"हम देशी राजाओं के गौरव, उनके अधिकार और उनके सम्मान की इज्जत करेंगे।" यह प्रलोभन निष्प्रयोजन न था। इसका प्रयोजन था और वह स्पष्ट था। प्रथम वाइसराय लार्ड कैनिंग ने सन् १८६० में स्वयं यह कहा था—"सर जान मैलकम ने काफी पहले ही यह कहा था कि यदि हम पूरे भारत को जिलों (ब्रिटिश जिलों) में विभाजित कर दें तो यह अस्वाभाविक होगा और तब साम्राज्य पचास वर्षों तक भी न टिक सकेगा; किन्तु यदि हम राजनीतिक अधिकार-विहीन कुछ देशी रियासतें शाही हथियार के रूप में कायम रख सकें तो भारतमें हमारा साम्राज्य तब तक बना रहेगा जब तक हम अपनी नौशक्ति को कायम रख सकेंगे। इस राय की यथार्थता में मुझे संदेह नहीं है और हाल की घटनाओं के फलस्वरूप यह और भी अपेक्षित है कि हमारा ध्यान इस ओर आकृष्ट हो।"*

सन् १८५८ में विक्टोरिया की घोषणा के बाद सेना के संघटन के सम्बन्ध में जो नीति अपनाया गयी, उसका इरादा हिन्दू-मुसलमानों में फूट डालना और वक्त पड़ने पर एक के विरुद्ध दूसरे को खड़ा करना था। सेना के पुनर्संघटन के सम्बन्ध में सन् १८५९ में नियुक्त पील कमीशन को दी गयी गवाहियों में भारत की विभिन्न जातियों की फौजों को संतुलित रखने पर खास तौर

* रजनी पामदत्त—'इण्डिया टुडे'—पृ० सं० ३५९

से जोर दिया गया। इसके आधार पर ही सन् १८६१ में सेना के पुनर्संघटन के सिलसिले में सेना में विभिन्न सम्प्रदायों के लोगों को 'इस प्रकार संघटित किया गया कि सम्प्रदाय' अथवा जाति के प्रति उनकी निष्ठा तो कायम रहती है किन्तु साथ ही वे एक दूसरे की शक्ति को संतुलित भी करते रहते हैं।' *

देश के विभिन्न भागों में गोरों को माफी जमीन दी गयी। इसका उद्देश्य भी स्पष्ट था। भारत को अंग्रेजों के पंजे में फँसा कर उपनिवेश बनाने के इरादे से ही ऐसा किया गया। इसका परिणाम विभिन्न रूपों में सामने आया। अंग्रेजी बस्तियों के मजदूरों और समीपवर्ती किसानों पर जो जुल्म और सितम ढाया गया, भारत के कई हिस्सों में आज भी उसकी याद ताजी होगी। गोरों का यह जुल्म सौ वर्षों के बाद गांधीजी के नेतृत्व में प्रसिद्ध चम्पारन ( बिहार ) सत्याग्रह का कारण बना। इस सत्याग्रह के एक सौ वर्ष पूर्व से अर्थात् विक्टोरिया के शासन के समय से 'चम्पारन जिले में अंग्रेज खेती करते और कराते थे। प्रायः सारे जिले में जहाँ-जहाँ नील हो सकती थी, उन्होंने नील बनाने के अपने कारखाने खोल दिये थे और बहुत-सी जमीन भी अपने कब्जे में कर ली थी।.....जिन गाँवों पर उनका कब्जा हो गया उनमें रहने वाले रैयतों को वे मजबूर करते कि वे अपनी जमीन में भी नीलवरों के लिए नील बोया करें।... किसी रैयत की हिम्मत नहीं पड़ती थी कि वह नील बोने से इनकार करे। अगर कोई हिम्मत करता तो उस पर हजार तरह के जुल्म कर के उसे मजबूर कर दिया जाता, घर और खेत लूट लिये जाते। खेत मवेशियों से चरा दिया जाता। झूठे मुकदमे लगा दिये जाते। जुर्माना किया जाता। पीटा भी जाता।"†

विक्टोरिया के शासन-काल में रेलों, नहरों और सड़कों के विकास की ओर ध्यान दिया गया। इसका भी मंतव्य स्पष्ट था। यह इंग्लैण्ड के औद्योगिक पूंजीवाद द्वारा भारत के शोषण का अनिवार्य परिणाम था। मार्क्स ने लिखा था—"मैं जानता हूँ कि अंग्रेज कारखानेदार केवल इस उद्देश्य को सामने रख कर हिन्दुस्तान में रेले बनवा रहे हैं कि उनके द्वारा कम

---

* नीरदचंद्र चौधरी—'डिफेंस आव इण्डिया' श्री अशोक मेहता और अच्युत पटवर्द्धन लिखित 'दि कम्युनल ट्रैंगिल' में उद्धरित, पृ० सं० ५४

† डा० राजेन्द्र प्रसाद—'आत्मकथा'—पृ० सं० ८९

खर्च में अधिक कपास और दूसरा कच्चा माल अपने उद्योग-धंधों के लिए निकाल सकें।"*

सरकार चलाने के लिए यह भी आवश्यक था कि कुछ भारतीय ऐसे तैयार किये जाय जिन्हें अंग्रेजी भाषा और यूरोपीय विज्ञान की जानकारी हो। यह काम वारने हेस्टिंग्ज के जमाने से ही शुरू हो गया था और आवश्यकतानुसार इसे बढ़ाया जाता रहा। विक्टोरिया के शासन-काल में इसने स्वयं गति पकड़ ली क्योंकि सुधारकों ने ज्ञान-प्राप्ति की पिपासा जागरित कर दी थी और लोग यह महसूस करने लगे थे कि देश के विकास के लिए पाश्चात्य सभ्यता और उसके तौर-तरीकों का ज्ञान होना आवश्यक है। अंग्रेजो ने विभिन्न कानूनों द्वारा ज्ञान के प्रवाह-क्षेत्र में समय-समय पर अवरोध उत्पन्न करने की चेष्टा की लेकिन वे विफल रहे।

यह स्पष्ट है कि विक्टोरिया के शासन-काल मे जहाँ एक ओर भारत के आर्थिक शोषण का पक्का मार्ग बना, भौतिक सभ्यता अग्रसर होने लगी, वहीं दूसरी ओर शोषण और साम्राज्यवादी तत्त्व भी जन्म लेने लगे। यह नयी भौतिक परिस्थितियों का अनिवार्य परिणाम था।

सन् १८५७ के विद्रोह के पश्चात् भारत मे युद्धों का दौर प्रायः समाप्त हो गया। थोड़-सा विद्रोह हुआ लेकिन वह वर्ग-विशेष तक सीमित था। विद्रोह की नयी प्रवृत्तियों ने जन्म अवश्य लिया जो कालातर में बहुत प्रबल हो गयीं और जिनके फलस्वरूप सन् १९४७ में भारत मे अंग्रेजी राज का नाम-निशान मिट गया।

सन् १७१९ मे शाह वली उल्लाह ने आर्थिक समानता की आवाज उठायी थी और मजहबी झण्डे के नीचे मुसलमानों को एकत्र करने का आन्दोलन आरंभ किया था। १९ वीं शती मे इस परम्परा का प्रमुख व्यक्ति सैयद अहमदशाह हुआ जो बरेली का निवासी था। उसकी बढ़ती हुई ताकत को देखकर अंग्रेजों ने उसके मजहबी जजबात को सिखों के विरुद्ध उभाड़ा। यही समय था जब पंजाब में राजा रणजीतसिंह के शासन मे सिखों की ताकत बढ़ रही थी और अंग्रेज उसे मुसलमानों से भिड़ाने तथा सीमान्त में विद्रोह कराने की चालें चल रहे थे। रणजीतसिंह मुसलमानों के धर्म का विरोधी नहीं था। उसके तोपखाने का ही प्रधान अधिकारी इलाहीबख्श नामक व्यक्ति था। सीमा-प्रान्त के अफगानों को भी इस सम्बन्ध में उससे कोई शिकायत न थी। फिर

---

* कार्ल मार्क्स—'न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून' में प्रकाशित पत्र—८ अगस्त, १८५३

भी अंग्रेजों का प्रचार काम कर गया और अहमदशाह के अनुयायी यह समझने लगे कि सिख लोग "मुसलमानों के साथ अनुचित व्यवहार करते हैं। उन्हें अपना धार्मिक कर्तव्य पूरा नहीं करने देते। उनके उपासना-गृहों को अपवित्र करते हैं।"* यह जान-मान कर सन् १८२६ में अहमदशाह दिल्ली में अपने अनुयायियों का एक बड़ा समूह एकत्र कर के सिंध होता हुआ कंदहार के रास्ते पेशावर पहुँचा जहाँ सिखों से उसका युद्ध हुआ और वह मारा गया ( १८३१ )।

अहमदशाह के अनुयायियों ने जिन्हें वहाबी कहा जाता था, सन् १८५७ में पुनः अपना संघटन कायम कर लिया। इस बार उनका संघटन उत्तर-भारत मे काफी जोरदार हो गया। प्रसिद्ध इतिहासकार डब्लू डब्लू हंटर के कथनानुसार दक्षिण भारत तक इस आंदोलन का असर पहुँच चुका था। इसमें सन्देह नहीं है कि सीमांत मे इनकी शक्ति बढ़ी हुई थी। इसे देख कर पंजाब का लेफ्टिनेंट गवरनर परेशान हो गया और उसने सन् १८६२ में भारत सरकार को सीमान्त प्रदेश में युद्ध कर के इन्हें दबाने का परामर्श दिया। वाइसराय एलगिन ( १८६२–६३ ) ने विद्रोहियों के विरुद्ध एक फौज भेज दी। वहाबियों ने अंग्रेजों से भीषण युद्ध किया लेकिन वे पराजित हो गये और अंग्रेजों ने 'मल्का' नामक उनके प्रसिद्ध किले पर कब्जा कर लिया।

इसके पश्चात् तथाकथित वहाबियों ने जो सक्रियता दिखाई, उसने अंग्रेजों की आँखे खोल दी और उन्हें मालूम हुआ कि गाँव-गाँव में इनका संघटन है। पटने में इनका जबरदस्त प्रचार केन्द्र था जहाँ से प्रत्येक जिला केन्द्र में प्रचार साहित्य भेजा जाता था। इसके द्वारा विद्रोह को मुसलमानों का कर्तव्य बताते हुए जिहाद के लिए उन्हें आमन्त्रित किया जाता था। अंग्रेजों ने इनके बहुत से प्रचारकों को पकडा। सन् १८६४ मे कोड़े लगाने का कानून पास हो गया था। इसके अनुसार प्रचारकों को टिकटी पर बाँध कर बेरहमी से कोड़े लगाये जाते थे। कुछ को कालेपानी की सजा भी दी गयी।

अंग्रेजों को उपर्युक्त विद्रोहियों के प्रचार केन्द्रों का पता भी दमन के कारण ही चला। सन् १८६३ के युद्ध में पकड़े गये विद्रोहियों मे से ग्यारह पर राजद्रोह का अभियोग लगा कर उनके विरुद्ध मुकदमा चलाया गया। इस मुकदमें के दौरान में ही अंग्रेजों को गुप्त प्रचार केन्द्रों का पता चला। प्रचारकों को पकड कर अंग्रेजों ने उन पर तरह-तरह के जुल्म ढाये और उपर्युक्त ग्यारह विद्रोहियों में से तीन को फासी पर लटका दिया और शेष आठ को आजीवन

---

* डा० राजेन्द्र प्रसाद—'इंडिया डिवाइडेड'—पृ० सं० ८७

कारावास की सजा दी। इसके बावजूद यह आन्दोलन बढ़ता गया। सन् १८६८ में अंग्रेजों ने बहुत कड़ा रुख अख्तियार किया। जिले जिले में विद्रोही नेताओं की सूची बनायी गयी। अनेक प्रचारकों को हिरासत मे लेकर प्रचार-कार्य की कमर तोड़ दी गयी। अनेक व्यक्तियों पर मुकदमें चलाये गये और विद्रोह के नेता जेलों में ठूस दिये गये। जब-जब मुकदमा चलता, तब-तब अंग्रेजों को नयी नयी बातों का पता लगता। इस क्रम ने अन्ततोगत्वा आंदोलन को समाप्त कर दिया। सन् १८६८ से १८७२ तक इसका रूप बहुत उग्र था। इस सिलसिले में ही २० सितम्बर, सन् १८७१ को बंगाल के चीफ जस्टिस की हत्या कर दी गयी और ८ फरवरी, सन् १८७२ को शेरअली नामक पठान द्वारा स्वयं गवरनर जेनरल और वाइसराय लार्ड मेयो (१८६९-७२) भी उस समय मौत के घाट उतार दिया गया जब वह अडमान जेल का निरीक्षण कर के लौट रहा था। इसी समय अवध (उत्तर प्रदेश) के बरेली आदि कुछ स्थानों में साम्प्रदायिक दंगा भी हुआ। अमृतसर मे सिख और मुसलमानों मे थोड़ी कटा-मरी हुई। कुछ इसलिए और कुछ इसलिए कि शासन मे मुसलमानों को तरजीह दिलाने के लिए सर सैयद अहमद खाँ ने जोरदार आन्दोलन छेड़ रखा था जो अपना असर दिखाने लगा था, विद्रोह धीरे धीरे बैठ गया।

विद्रोही दरअसल शाह वली उल्लाह के अनुयायी थे। मुसलमानों की निगाह में गिराने की गरज से ही अंग्रेजों ने उन्हें वहाबी घोषित किया और इसका गहरा प्रचार किया गया। वहाबी कहे जाने वालों के विरुद्ध मुसलमानों की नफरत का कारण यह था—१८ वीं शती में अरब मे अब्दुल वहाब नामक सुधारक हुआ था। वह 'खुदा' की जगह 'मोहम्मद' (मुसलमानों के पैगम्बर) की उपासना का विरोधी था। उसके अनुयायियों ने 'मोहम्मद' की कब्र उखाड़ फेंकी थी। ये अनुयायी ही वहाबी कहलाते थे।

जिस समय वली उल्लाह पथियों का दमन निरंकुशता के साथ किया जा रहा था, उसी समय मलेर कोटला (पंजाब) पर कूका सम्प्रदाय के सिखों ने आक्रमण किया। अंग्रेजों ने उन्हें दबा दिया और बड़े जालिमाना ढंग से उनका दमन किया। इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक गुरु रामसिंह थे और यह कहा जा सकता है कि भारत में सबसे पहले अंग्रेजों के विरुद्ध असहयोग और स्वदेशी-प्रचार आन्दोलन गुरु रामसिंह ने ही आरम्भ किया था और उनके अनुयायियों ने सशस्त्र क्रान्ति के लिए व्यक्तिगत रूप में सबसे पहले विदेशियों से सम्पर्क स्थापित किया था।

सिख सम्प्रदाय के अनुयायियों के अनुसार गुरु गोविन्दसिंह उनके अन्तिम गुरु थे लेकिन नामधारी सिख यह नहीं मानते। उनके मतानुसार गुरु बालक सिंह सिखों के ११ वें तथा गुरु रामसिंह १२ वें गुरु थे।

गुरु रामसिंह पहले महाराज रणजीतसिंह की सेना में थे। अप्रैल, सन् १८४९ में पंजाब पर अंग्रेजों का अधिकार होने के बाद गुरु रामसिंह की भेंट गुरु बालकसिंह से हुई। कहा जाता है कि गुरु बालकसिंह ने उनसे कहा कि "देश को अंग्रेजों के चंगुल से मुक्त करना तुम्हारा कर्तव्य है लेकिन यह समझ लो कि अब यह कार्य तलवार की ताकत के बाहर है।" इस पर रामसिंह ने ३२ वर्ष की उम्र में सैनिक जीवन का त्याग किया। कुछ अर्से के बाद आपका प्रभाव जब सिखों में फैलने लगा तो आपने सिखों को अंग्रेजों से असहयोग करने की सलाह दी। आप कहा करते थे कि 'इस युग में तलवार का शासन नहीं चल सकता। अपने बच्चों को सरकारी स्कूलों में मत भेजो। उन पर विदेशी संस्कृति की छाप पड़ती है जो गुलामी के बन्धनों को और मजबूत बना देती है। खादी का व्यवहार करो। विदेशी माल का बहिष्कार करो; क्योंकि उससे भारतीय उद्योग का मार्ग अवरुद्ध होता है। दुर्बलों की सहायता करो। शराब से परहेज करो। गाय की रक्षा करो।'

१३ अप्रैल, सन् १८५७ को जब कि देश के अनेक स्थानों में अन्दर ही अन्दर बगावत की आग सुलगने लगी थी, गुरु रामसिंह ने वैशाखी मेले के अवसर पर एक सार्वजनिक सभा (भैणी साहब) में अपने राजनीतिक कार्य-क्रम की घोषणा की और उपर्युक्त बातों को दोहराने के साथ-साथ रेलों, तार-डाकखानों और अस्पतालों का बहिष्कार करने के लिए भी लोगों का आह्वान किया और हाथ का कता तथा हाथ का बुना कपड़ा पहनने तथा यंत्रों से बने माल का बहिष्कार करने की सलाह दी।

रामसिंह के उपदेशों का व्यापक प्रभाव पड़ते देख कर अंग्रेजों ने उन्हें तंग करना आरम्भ किया। भैणी साहब में उनके आश्रम की तलाशी ली गयी। उन्हें डराया, धमकाया गया और गाँव से बाहर निकलना निषिद्ध कर दिया गया। इसका उन पर कोई प्रभाव न पड़ा। उनका प्रचार-कार्य जारी रहा। सैकड़ों नामधारी उनके आश्रम पर जुटते और उनका उपदेश सुनते।

सम्भव था कि यह असहयोग आन्दोलन काफी बढ़ जाता लेकिन संयोग वश सन् १८७२ में तत्कालीन वाइसराय मेयो के जमाने में मलेर कोटला (वर्तमान समय में पेप्सू के अन्तर्गत) कांड के कारण आन्दोलन पर असमय में ही करारा धक्का पहुँचा। जनवरी, सन् १८७२ में भैंणी साहब जाने वाले

एक नामधारी सिख को जानबूझ कर चिढ़ाने के लिए मलेर कोटला में एक मुसलमान ने गाय की कुरबानी की। माघी मेले के अवसर पर भैणी साहब में जुटे अपने गाँव के नामधारी सिखों से उपर्युक्त सिख ने मलेर कोटल की घटना का जिक्र किया। इस पर बीसियों सिख क्षुब्ध हो कर मलेर कोटला पर चढ़ गये। अंग्रेजों को मौका मिल गया। लुधियाना के डिप्टी कमिश्नर कोवन ने इनमें से ६०-६५ नामधारियों को पकड़ लिया। पचास के लगभग बिना किसी प्रकार का अभियोग लगाये और मुकदमा चलाये तोपों के मुँह के आगे बाँध कर उड़ा दिये गये और शेष फाँसी पर चढ़ा दिये गये।

इस अत्याचार को ले कर जब नामधारियों ने आन्दोलन किया तो अंग्रेज हुकूमत उनका मूलोच्छेद करने पर तुल गयी। गुरु रामसिंह तथा उनके १७ प्रधान शिष्यों को जो 'सूबा' कहलाते थे, सन् १८१८ के रेग्यूलेटिंग एक्ट के अन्तर्गत पकड़ कर अंग्रेजों ने इलाहाबाद भेज दिया; गुरुद्वारा की सम्पत्ति जब्त कर ली और वहाँ पुलिस का पहरा बैठा दिया। दो मास तक इलाहाबाद में नजरबन्द रखने के बाद अंग्रेजों ने गुरु रामसिंह को रंगून भेज दिया। उनके १७ शिष्य भिन्न भिन्न जेलों में भेजे गये और उन्हें अनेक प्रकार की यातनाएँ दी गयीं।

रंगून में यद्यपि अंग्रेजो ने कड़ा पहरा लगा रखा था तथापि अनेक नामधारी सिख गहरा आर्थिक भार उठा कर और मुसीबतें सह-सह कर उनसे मिलते रहते थे। इस प्रयास में अनेक बार कई सिख पकड़े गये। कुछ को सात-सात वर्ष की कड़ी कैद और कुछ को आजीवन कारावास की सजा भी दी गयी। कुछ सिख इस सिलसिले में ही फाँसी पर भी चढ़ाये गये।

गुरु रामसिंह बड़ी चतुरता के साथ रंगून से पंजाब में अपने अनुयायियों के पास पत्र भेजा करते थे।* इनमें से कई पत्र अंग्रेजों के हाथ भी लगे। इनमें से एक में लिखा था—'सिखों को इस सीमा तक अहिंसक होना चाहिये कि कोई उन पर कायर होने का लांछन भी लगाये तो उनका ध्यान इस ओर आकृष्ट न हो।'

रंगून में ही गुरु रामसिंह की मृत्यु हुई। उनके अनुयायी कुछ निराश से हो गये। क्रान्ति की सफलता में उनका विश्वास न रहा। यह देख कर गुरु रामसिंह के उत्तराधिकारी गुरु हरिसिंह ने रूस से सहायता प्राप्त करने का

---

* नामधारी सम्प्रदाय के वर्तमान गुरु प्रतापसिंह के पास गुरु रामसिंह द्वारा रंगून से पंजाबी भाषा में लिखे गये कुछ पत्र अब भी सुरक्षित हैं।

प्रयत्न आरम्भ किया। रंगून की जेल से किसी प्रकार रूस में पत्र भेजे गये। इस कार्य में गुरुचरनसिंह, शंकरराव और बुधसिंह नामक गुरु के अनुयायियों ने प्रमुख भाग लिया। रूसी तुर्कीस्तान की राजधानी ओरनबर्ग इनकी क्रियाशीलता का मुख्य अड्डा बना। अंग्रेजों को इसका पता चल गया। साधारण नागरिकों द्वारा क्रान्ति की रचना के इस प्रथम प्रयास का एक प्रमुख नायक गुरुचरनसिंह काबुल मे पकड लिया गया और रावलपिंडी की जेल में ठूँस दिया गया। अंततोगत्वा यह आन्दोलन भी आपसे आप उसी प्रकार दब गया जिस प्रकार वलीउल्लाह पथियों का विद्रोह दबा था'

लगभग पचास वर्षों के बाद महात्मा गांधी के नेतृत्व मे सारे देश ने उसी मार्ग को अपनाया जिसकी ओर गुरु रामसिंह ने निर्देश किया था और इस मार्ग पर चलकर ही भारत ने अन्त में आजादी हासिल की।

गुरु रामसिंह के समय की घटनाओं का अनुसंधान अभी भलीभाँति नहीं हुआ है। भारत की आजादी के पूरे इतिहास मे इनका स्थान विशिष्ट होगा, इनमें सदेह नहीं है।



# विक्टोरिया काल-राजनीतिक और आर्थिक पक्ष

**उड़ीसा में अकाल—भूटान से युद्ध—विदेश में युद्धों का खर्च भारत के सिर—नमक-कर में वृद्धि—बड़ौदा का राजा पदच्युत—दिल्ली दरबार—दक्षिण भारत में अकाल—आबकारी और स्टाम्पकर—प्रेस कानून—अफगानिस्तान पर चढ़ाई—भारत के खर्च पर मिस्र में युद्ध—लार्ड रिपन के सुधार—तृतीय बरमा युद्ध—इलबर्टबिल—नया इण्डियन कौंसिल एक्ट—चिन्राज में विद्रोह—भारत की मुद्रा पर निमंत्रण—सुधारों की माँग—वैधानिक आन्दोलन की प्रवृत्तियाँ—'केसरी' और 'मराठा'—कांग्रेस का जन्म।**

सन् १८५७ में बगावत होने के कारण भारत से चीन भेजी जाने वाली सेना यहीं रोक ली गयी थी। विक्टोरिया की घोषणा के लगभग डेढ़ वर्ष बाद भारत की आँतरिक स्थिति पर काबू पाकर वाइसराय लार्ड कैनिंग ने सन् १८६० में उसे चीन भेज दिया। पहले की भाँति भारत के खर्च पर वहाँ दूसरा अफीम युद्ध हुआ और अंग्रेज, चीन के बन्दरगाहों पर कब्जा जमाने में सफल हो गये। इसी प्रकार सन् १८६०-६१ में न्यूजीलैंड के मूल निवासियों को दबाने के लिए वहाँ भी सेना भेजी गयी। यह सारा खर्च भारत के सिर मढ़ा गया।

सन् १८६२ में अस्वस्थ होने के कारण कैनिंग ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया। तीन मास बाद उसकी मृत्यु हो गयी। तब उसके स्थान पर सन् १८६२ में लार्ड एलगिन वाइसराय नियुक्त हुआ लेकिन सन् १८६३ में वह भी 'धर्मशाला' (पंजाब) में चल बसा। तब प्रथम भारतीय विद्रोह में ख्याति प्राप्त अंग्रेज सेनापति जान लारेंस वाइसराय बनाया गया जो सन् १८६४-६९ तक इस पद पर बना रहा। वह सेनापति था, अतः मुल्की शासन में सफल न हो सका। रेलों, सड़कों नहरों, आदि में उसने जो थोड़ा सा सुधार किया, उसका कारण बताया जा चुका है। इसके शासन-काल में सन् १८६६ में उड़ीसा में भयानक अकाल पड़ा। इसका प्रभाव कलकत्ता से मद्रास तक फैला और लाखों व्यक्ति मर गये। पंजाब के किसानों की सुविधा के नाम पर इसने अवध और पंजाब टेनेंसी एक्ट पास किया, जो व्यर्थ सिद्ध हुआ।

लारेंस के शासन-काल में ही भूटान से अंग्रेजों का युद्ध हुआ। एलगिन ने इस मामले में समझौतावादी रुख अख्तियार किया था। लारेंस को यह अपमान जनक लगा। उसकी आँखें भूटान की तराई पर लगी थी जहाँ बाद में अंग्रेजों ने चाय बागान कायम किया। वह तिब्बत के लिए सीधा रास्ता भी चाहता था। अतः उसने भूटान पर चढ़ाई करने के लिए एक फौज भेजी। पहले तो देवनगिरी में भूटानियों इस फौज को शिकस्त देने में सफलता प्राप्त कि लेकिन बाद में उन्हें संधि करनी पड़ी। दुआर ( तराई ) अंग्रेजों को मिला और बदले में उन्होंने भूटान को वार्षिक कर देना स्वीकार किया।

इस वाइसराय के जमाने में ही अंग्रेजों ने अबीसीनिया में ( अफ्रिका में ) युद्ध छेड़ा ( १८६७ ) जिसमें भाग लेने के लिए बम्बई से सेना भेजी गयी और उसका भी खर्च भारत के मत्थे मढ़ा गया।

सन् १८६९ में लार्ड मेयो वाइसराय नियुक्त हुआ जो सन् १८७२ तक इस पद पर कायम रहा। युद्धों के कारण डाँवाडोल आर्थिक स्थिति पर काबू पाने के लिए इसने आय कर और नमक कर बढ़ा दिया। एक ओर कर बढ़ा कर उसने पिसी हुई भूखी जनता को चूसा और दूसरी ओर विक्टोरिया के द्वितीय पुत्र ड्यूक आव एडिनबरा के भारत आगमन के अवसर पर उसके स्वागत में खूब दौलत लुटायी। देशी रियासतों के राजकुमारो को पक्का गुलाम बनाने के लिए उसने उनकी शिक्षा-दीक्षा के बहाने अजमेर मे मेयो कालेज की स्थापना भी करायी।

मेयो के शासन-काल में ही प्रथम बार बंगाल में जनगणना भी हुई।

सन् १८६३ में अफगानिस्तान के शासक दोस्त मोहम्मद की मृत्यु हो गयी थी। उसके तीन पुत्र थे —( १ ) शेरअली, अफजल खाँ और अजीम खाँ। अफजल खाँ का एक पुत्र रहमान खाँ था। दोस्त मोहम्मद की मृत्यु के बाद गद्दी पर काबिज होने के लिए चारों आपस मे लड़ने लगे और अंग्रेजों का मुँह ताकने लगे। जमाना वाइसराय लारेंस का था। उसने हस्तक्षेप न किया। गृहयुद्ध में सन् १८६९ में अन्ततः विजय शेरअली के हाथ में रही। इस समय तक मध्य एशिया मे रूस का प्रभाव बढ़ गया था। सन् १८६५–६८ तक उसने बुखारा, ताशकंद और समरकंद आदि पर कब्जा कर लिया था। यह देख कर तत्कालीन वाइसराय लारेंस ने प्रभाव-क्षेत्र बाँटने का प्रस्ताव रूस के सामने रखा जिसको मान कर रूस ने अफगानिस्तान की ओर आमू दरिया तक अपनी सीमा निर्धारित कर दी।

मेयो के समय में अफगानिस्तान का अमीर शेरखाँ भारत में आया।

अम्बाला में मेयो ने उसका शाही स्वागत किया। यहाँ शेरअली ने वाइसराय के सामने यह प्रस्ताव रखा कि अंग्रेज उसे आर्थिक सहायता दे और समय पड़ने पर सैनिक सहायता देने का आश्वासन दे तथा उसके छोटे पुत्र अबदुल्लाजान को अंग्रेज उसका उत्तराधिकारी स्वीकार करें। मेयो ने यह प्रस्ताव टाल दिया। केवल इतना ही आश्वासन उसने शेरअली को दिया कि रूस का आक्रमण होने पर भारत की अंग्रेज सरकार उसकी सहायता करेगी।

अण्डमान में सन् १८७२ में मेयो की हत्या का विवरण पहले दिया जा चुका है। उसके स्थान पर लार्ड नार्थब्रुक वाइसराय नियुक्त हुआ और प्रायः चार वर्षों तक वह इस पद पर बना रहा। इसके शासन-काल में पुराने मामले फिर उभड़े। रूस ने लारेंस कालीन संधि की उपेक्षा करके कैस्पियन के पूर्वी तट से बढ़ते हुए निर्धारित सीमा से लगभग छः सौ मील उत्तर की ओखीव पर अधिकार कर लिया। यह देख कर अफगानिस्तान के शासक शेरअली ने अंग्रेजों से सहायता प्राप्त करनी चाही लेकिन नार्थब्रुक ने कोई स्पष्ट आश्वासन न दिया, यद्यपि ब्रिटिश सरकार यह चाहती थी कि अफगानिस्तान में अंग्रेज रेजिडेण्ट नियुक्त कर दिया जाय। तब अमीर रूस की ओर झुका। ब्रिटिश सरकार नार्थब्रुक से अप्रसन्न हो गयी। इस पर वाइसराय त्याग पत्र देकर अपने पद से हट गया। उसे अंग्रेज [illegible] का कोपभाजन भी बनना पड़ा। कारण यह था कि उसके शासन-काल में भी बिहार में जबरदस्त अकाल पड़ा था (१८७५)। अंग्रेज हुकूमत की आर्थिक हालत बहुत खराब थी जिसका सामना करने के लिए वह मैनचेस्टर के माल पर कर बढ़ाना चाहता था।

नार्थब्रुक ने बड़ौदा के शासक मल्हारराव पर यह दोषारोप किया था कि उसने अंग्रेज रेजिडेण्ट को जहर देने का षड्यन्त्र रचा। इसकी जाँच के लिए छः सदस्यों का एक कमीशन नियुक्त किया गया। इसके अंग्रेज सदस्यों ने मल्हारराव को दोषी ठहराया और भारतीय सदस्यों ने उसे निर्दोष माना। फिर भी मल्हारराव पदच्युत कर दिया गया। वाइसराय ने उसके वंश के सयाजीराव को जो नाबालिग था, गद्दी पर बैठाया।

नार्थब्रुक के इस्तीफा दे देने पर लार्ड लिटन वाइसराय बनाया गया (१८७६–८०)। इस समय ब्रिटेन का प्रधान मन्त्री डिजरेली था जो पक्का साम्राज्यवादी था। लिटन उसका ही अनुयायी रहा। उसके शासन-काल में ही ब्रिटेन की सरकार ने विक्टोरिया को भारत की सम्राज्ञी घोषित किया। लिटन ने सन् १८७७ में इसपर बड़ी धूम-धाम से दिल्ली में दरबार किया।

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि बिहार के अकाल के एक वर्ष बाद ही सन् १८७६ में जिस वर्ष विक्टोरिया भारत की सम्राज्ञी घोषित की गयी, यहाँ पुनः अकाल पड़ा था। इस बार अकाल का प्रकोप दक्षिण भारत में रहा जहाँ लाखों व्यक्ति भूख से तड़प-तड़प कर मर गये। अंग्रेज सरकार ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया और अकाल पीड़ितों की लाश पर दरबार-सम्बन्धी जश्न का साज-सामान मुहैय्या करने में तनिक भी हिचक नहीं दिखाई। भारतीयों की आँखों में धूल झोंकने के लिए अकाल के कारणों का पता लगाने की आड़ में कमीशन नियुक्त करने की फर्जी कारवाई अवश्य पूरी की गयी।

लिटन ने भारतीयों के शोषण का मार्ग और पक्का किया। भारत में आयात की जाने वाली कई वस्तुओं पर उसने कर हटा दिया। फलतः यहाँ के उद्योग-धन्धे और चौपट होने लगे। दूसरी ओर अंग्रेज सरकार ने आबकारी का और स्टैम्प कर भी वसूल करना आरम्भ कर दिया। नमक कर में समानता लायी गयी।

लिटन इतने से ही संतुष्ट नहीं हुआ। बढ़ती हुई सामाजिक सजगता पर प्रहार करने के लिए उसने कुछ काले कानून भी बनाये जिनमें 'प्रेस कानून' और शस्त्र कानून प्रसिद्ध है। पहले कानून द्वारा भारतीय भाषाओं में प्रकाशित होने वाले समाचार-पत्रों को प्राप्त नाम-मात्र की आजादी भी छीन ली गयी और दूसरे कानून द्वारा भारतीयों के लिए लाइसेंस लिए बगैर शस्त्रास्त्र रखना वर्जित कर दिया गया। इस कानून का व्यापक विरोध हुआ लेकिन इससे वाइसराय की निरंकुशता में कोई परिवर्तन न हुआ।

गृहनीति की भाँति ही लार्ड लिटन की परराष्ट्र-नीति भी साम्राज्यवादी थी। वाइसराय होकर कलकत्ता पहुँचने के बाद वह सीधे अम्बाला आया। यहाँ से उसने अफगानिस्तान के अमीर शेरअली के पास एक संदेश भेजा जिसमें काबुल तथा हिरात में अंग्रेज रेजिडेण्ट नियुक्त करने का इरादा जाहिर किया गया था। इधर उसने बातचीत का नाटक रचा और उधर अफगानिस्तान को घेरना भी आरम्भ कर दिया। दिसम्बर, १८७६ में उसने कलात और लास बेला के पठान और बलोच सरदारों से एक संधि पर जबरन हस्ताक्षर कराये और इस प्रकार अंग्रेज वास्तव में कलात के मालिक बन बैठे तथा बोलन होकर क्वेटा में घुसने का रास्ता उन्हें मिल गया। यह सहूलियत प्राप्त होने पर उसने काश्मीर के महाराज को चित्राल के मार्ग के दर्रे पर अधिकार करने के लिए उभाड़ा, स्वयं गिलगित में एजेंसी कायम की और क्वेटा पर अधिकार कर लिया।

लिटन की इस कारवाई से अमीर बहुत रुष्ट हुआ। फलतः उसने अंग्रेज दूत की उपेक्षा करके रूसी दूत की आवभगत की। लिटन को बहाना मिल गया। उसने तीन दिशाओं से अफगानिस्तान पर चढ़ाई कर दी। शेरअली भाग गया। उसके बड़े पुत्र याकूब खाँ ने सन् १८७६ में लिटन से संन्धि कर ली। उसने काबुल मे अंग्रेज रेजिडेण्ट की नियुक्ति तथा अफगानिस्तान के परराष्ट्र-सम्बन्धी मामलों पर वाइसराय का अधिकार स्वीकार कर लिया। सन्धि के अनुसार अफगानिस्तान के तीन मुख्य जिले भी प्राप्त हो गये।

स्वतन्त्रता प्रेमी पठानों को अंग्रेजों का हस्तक्षेप और उनका अधिकार बरदास्त न हुआ। मई मे याकूब खाँ ने संधि की थी। चार मास बाद ही सितम्बर मे पठानों ने विद्रोह किया और अफगानिस्तान के अंग्रेज रेजिडेण्ड कैवगनैरी को मौत के घाट उतार दिया। इस पर अंग्रेज सेनापति राबर्ट्स ने काबुल पर कब्जा कर लिया और ८७ विद्रोही पठानों को पकड़ कर उन्हें फाँसी पर लटका दिया। याकूब खाँ बन्दी बना कर मेरठ भेज दिया गया। इसके फलस्वरूप पठानों का रोष एक बार फिर भड़का और उन्होने बहादुरी के साथ काबुल में राबर्ट्स को घेर लिया। विद्रोहियों का नेता स्वयं याकूब खाँ का भाई अयूब खाँ था। राबर्ट्स की सहायता के लिए स्टिवर्ट कन्दहार से काबुल की ओर बढ़ा। उसने राबर्ट्स को तो निकाल लिया लेकिन स्वयं फँस गया। पूरे अफगानिस्तान पर कब्जा करना मुश्किल था और किसी कठपुतली सरकार को कायम किये बिना पीछे लौटना भी खतरे से खाली न था। सन् १८४२ मे अंग्रेजों के सोलह हजार सैनिकों को पठानों ने पहाड़ियों मे घेर कर जिस प्रकार मौत के घाट उतार दिया था, उसे अंग्रेज भूले न थे। फलतः स्टिवर्ट की हालत 'साँप-छछुंदर' की हो गयी। इसी बीच ब्रिटेन मे ग्लैडस्टन प्रधान मन्त्री के पद पर बैठा और भारत मे लिटन के स्थान पर लार्ड रिपन वाइसराय नियुक्त होकर यहाँ आया (१८८०-८४)। उधर अफगानिस्तान मे शेरअली का भतीजा अब्दुर्रहमान भी पहुँच गया जो तुर्किस्तान मे शरणागत था। अंग्रेजों ने इसको फँसा कर अफगानिस्तान की 'चूहेंदानी' से निकलना चाहा।

शेरअली के बेटे अयूब खाँ ने जो हिरात पर काबिज था, २७ जुलाई, सन् १८८० को कन्दहार पर आक्रमण कर दिया और मावँद में अंग्रेज सेनापति जनरल बरोज को गहरी शिकस्त दी। यह देख कर वाइसराय ने राबर्ट्स को कन्दहार पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी और शेष सेना काबुल से लौटा ली। कन्दहार में अयूबखाँ राबर्ट्स की सेना से पराजित हुआ। अंग्रेजों से सहायता प्राप्त कर के अब्दुर्रहमान ने कन्दहार और हिरात पर कब्जा जमा लिया। अंग्रेजों

ने उससे सन्धि कर ली। अफगानिस्तान की विदेश नीति पर तो उन्होंने अधिकार कायम रखा लेकिन काबुल में अंग्रेज रेजिडेण्ट को नियुक्त करने के इरादे से बाज आ गये।

सन् १८८२ में स्वेज नहर पर अधिकार के प्रश्न को लेकर मिस्र निवासियों ने फ्रांसीसियों और अंग्रेजों के विरुद्ध बगावत की। फ्रांसीसी सरकार पीछे हट गयी लेकिन ब्रिटेन ने भारत के खर्च पर भारत की सेना मिस्र भेजी और विद्रोह दबा दिया।

सन् १८३१ में गवरनर जेनरल विलियम बेंटिंक ने मैसूर के राजा को पदच्युत करके राज्य पर कब्जा जमा लिया था। सन् १८८१ में रिपन ने उसके पुत्र को मैसूर की गद्दी सौंप दी लेकिन इस शर्त के साथ कि वाइसराय का परामर्श मानना उसके लिए अनिवार्य होगा।

ब्रिटेन का प्रधान मंत्री ग्लैडस्टन उदार पंथी था। यह स्वाभाविक ही था कि भारत में लार्ड रिपन उसका अनुगमन करता। उसने भारत के आयात पर लगाया जाने वाला पाँच प्रतिशत शुल्क हटा दिया और नमक कर भी कम कर दिया। उसने जमीन की पैमाइश के आधार पर निश्चित की गयी लगान से सम्बन्धित जिलों में लगान न बढ़ाने का सुझाव भी दिया लेकिन भारत मन्त्री ने उसे ठुकरा दिया। तब रिपन ने दूसरी ओर ध्यान दिया। समाचार पत्रों की स्वतन्त्रता का गला घोंटने वाला काला प्रेस कानून जिसका निर्माता लिटन था, सन् १८८२ में रद्द कर दिया गया। कारखाना कानून बना कर उसने यह नियम लागू कराया कि ७ और १२ वर्ष की उम्र के बीच के बालकों से प्रति दिन नौ घण्टे से अधिक काम न लिया जायगा। शिक्षा के विकास के लिए हण्टर साहब की अध्यक्षता में एक कमीशन नियुक्त किया गया और उसकी सिफारिशों के आधार पर प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा की पाठशालाओं की संख्या में वृद्धि की गयी।

लार्ड रिपन के जमाने की सबसे मशहूर घटना 'एलबर्ट बिल' की प्रस्तुति मानी जाती है। अंग्रेजों का मुकदमा सुनने का अधिकार भारतीय मजिस्ट्रेटों को प्राप्त न था। उपर्युक्त बिल द्वारा उसने भारतीय मजिस्ट्रेटों को भी यह अधिकार देना चाहा। अंग्रेजों ने इसका प्रचण्ड विरोध किया। बाध्य होकर रेपन को मध्यम मार्ग का सहारा लेना पड़ा। उपर्युक्त बिल उसने वापस ले लेया। यह निर्णय हुआ कि यूरोपियन जूरी की सहायता से भारतीय मजिस्ट्रेट और जज यूरोपियनों का मुकदमा सुन सकते हैं।

इसमें शक नहीं है कि अन्य वाइसरायों की अपेक्षा रिपन को भारतीयों का अधिक समर्थन प्राप्त था। इसका कारण उसका उदार दृष्टिकोण ही रहा।

अफगानिस्तान की अस्थिर दशा के कारण रूस की साम्राज्य-विस्तार की आकांक्षा में एक बार फिर उबाल आ गया और उसने अफगानिस्तान की सीमा से लगभग १५० मील दूर स्थित मर्व नगर पर अधिकार कर लिया। इसी समय एक गाँव में अफगानों और रूसियों में मुठभेड़ हो गयी और रूसी पंजदेह गाँव कब्जा करने में भी सफल हो गये। इससे बड़ी सनसनी फैली। आशंका उत्पन्न हुई कि ब्रिटेन और रूस में युद्ध छिड़ जायगा। इस बीच लार्ड रिपन के स्थान पर लार्ड डफरिन (१८८४-८८) आ चुका था और क्वेटा के पास उसने भारी सेना जमा कर ली थी। मुमकिन था कि रूस-ब्रिटेन जूझ पड़ते लेकिन अब्दुर्रहमान ने स्थिति बचा ली: क्योंकि वह समझता था कि युद्ध में जो विजयी होगा, वही अफगानिस्तान को धर दबोचेगा। इस स्थिति से छुटकारा पाने के लिए उसने दक्षिण में वही सीमा मान ली जो रूसी चाहते थे। इस प्रकार युद्ध टल गया।

हिन्दचीन पर फ्रांसीसियों का अधिकार अंग्रेजों को खटकने लगा क्योंकि बरमा उनकी नजर में था जो हिन्दचीन के पड़ोस में है। तनासरिम, पेगू और अराकान पर वे अधिकार कर ही चुके थे। अपर बरमा पर उनकी आँख जमी थी। इसका मौका भी उन्हें मिल गया। अंग्रेजों से बचने के लिए बर्मा के राजा ने फ्रांस, जर्मनी और इटली से इस उद्देश्य से व्यापारिक सन्धि कर ली कि मौका पड़ने पर अंग्रेजों के विरुद्ध इनसे सहायता ली जा सकेगी। बरमा का राजा थीबो मूर्ख और क्रूर था। दम्भ भी उसमें कम न था। स्थिति का सही अन्दाज वह न लगा सका। अंग्रेजों ने उस पर दबाव डाला तो वह तन गया। फलतः बरमा की तीसरी लड़ाई छिड़ी। सन् १८८५ में लार्ड डफरिन ने बेड़ा भेज कर उत्तरी बरमा पर कब्जा कर लिया। थीबो कैद कर के भारत भेज दिया गया। इसके बाद बरमी काफी लम्बे अर्से तक छापा मार युद्ध करते रहे। इनको दबाने में जो रकम खर्च हुई; उसका भार भी भारत पड़ा।

बरमा पर अंग्रेजों की विजय के कारण लुशाई-चिन प्रदेश घिर गया। इस स्थिति का लाभ अंग्रेजों ने नौवें वाइसराय लार्ड लैंसडाउन के शासन-काल (१८८८-९४) में उठाया।

आसाम की दक्षिण-पूर्वी सीमा पर स्थित मणिपुर रियासत के राजा को वहाँ के सरदारों ने सन् १८९० में पदच्युत कर दिया। अंग्रेजों ने मौका अच्छा देखकर हस्तक्षेप किया। बागी सरदारों के यह सह्य न हुआ और उन्होंने एक

अंग्रेज को मार डाला। लैंसडाउन को बहाना मिल गया। उसने वहाँ फौज भेज कर विद्रोह को दबाया और विद्रोहियों को फाँसी पर चढ़वा दिया। राजघराने का एक नाबालिग बालक मणिपुर का राजा घोषित किया गया। उसकी 'देखरेख के लिए' अंग्रेजों ने वहाँ अपना पोलिटकल एजेण्ट (राजनीतिक प्रतिनिधि) नियुक्त कर दिया। इसके बाद सीमाँत के लुशाई आदि प्रदेशों पर उनका प्रभुत्व जम गया।

लैंसडाउन ने पश्चिमोत्तर सीमा की ओर भी ध्यान दिया। बलोचिस्तान संरक्षित प्रदेश बना दिया गया। चित्राल के परराष्ट्र-सम्बन्ध का मामला अंग्रेजों ने अपने हाथ मे ले लिया। कलात पर भी उन्होंने कब्जा कर लिया। इसके बाद दर्रों में मोर्चेबन्दी की गयी। रेलवे लाइन बोलन दर्रे को पार करके क्वेटा और चमन तक पहुँचादी गयी। यह देख कर अमीर जब भड़का तो अंग्रेजों ने उसको दी जाने वाली वार्षिक रकम में वृद्धि कर के उसे शान्त कर दिया। अफगानिस्तान और अंग्रेजी साम्राज्य की सीमा निर्धारित करने के लिए मार्टिमर डूरेण्ड अफगानिस्तान भेजा गया। उसने जो सीमा निर्धारित की वह आज तक 'डूरेण्ड लाइन' के नाम से प्रसिद्ध है। अब (१९५५-५६) अफगानिस्तान इस सीमा-निर्धारण को उचित नहीं मानता। उसका कहना है कि 'डूरेण्ड लाइन' द्वारा निर्धारित सीमा अफगानिस्तान ने दबाव में पड़ कर स्वीकार की थी।

लैंसडाउन के समय मे ही भारत मन्त्री लार्ड क्रास के प्रयत्न से सन् १८९२ मे 'इण्डियन कौंसिल एक्ट' नये रूप में स्वीकृत हुआ। सन् १८६१ के 'इण्डियन कौंसिल एक्ट' के अनुसार कानून आदि बनाने के लिए लेजिस्लेटिव कौंसिलों की व्यवस्था की गयी थी। इसमें भारतीय भी नियुक्त किये जाते थे। सन् १८९२ मे 'इण्डियन कौंसिल एक्ट' द्वारा कौंसिलों में भारतीयों का प्रतिनिधित्व कुछ बढ़ा दिया गया। उन्हे बजट पर बहस करने का अधिकार भी प्राप्त हो गया।

सन् १८९४ में लैंसडाउन के लौटने के बाद उसके पद पर एलगिन द्वितीय वाइसराय बना (१८९४-९९)। उसके समय मे चित्राल में विद्रोह हुआ जिसे दबाने के लिए गिलगित से एक फौजी टुकडी वहाँ भेजी गयी। विद्रोहियों ने इसे भी घेर लिया। तब १८९५ में मलाकंद और गिलगित से एक बड़ी फौज चित्राल में भेज कर उस पर अंग्रेजों ने कब्जा जमा लिया। सन् १८९७ में अफरीदी, वजीरी और स्वाती आदि कबायली क्षेत्रों में विद्रोह हुआ। दो सेनापति विद्रोहियों को दबाने के लिए भेजे गये लेकिन इन

अफरीदियों का, पठानों का दम न तोडा जा सका। एक बार पुनः पठान रक्त ने अपना शौर्य दिखाया। अंग्रेजों ने भयंकर युद्ध किया लेकिन व्यर्थ! एलगिन इंग्लैण्ड लौट गया और उसके स्थान पर लार्ड कर्जन वाइसराय बनकर (सन् १८९९ मे) भारत आया। इस समय युद्ध जारी था। उसने खैबर, कुर्रम और वजीरिस्तान से सेना हटा ली और पश्चिमोत्तर इलाकों को पंजाब से पृथक कर के पृथक से सीमा प्रान्त बना दिया। अंग्रेज, कबायलियों पर अन्त तक काबू न पा सके। कर्जन के शासन से लेकर लार्ड बावेल (१९४६) के शासन तक के ४६ वर्षों में कबायलियों को दबाने के लिए उन्हें प्रति चार या पांच वर्ष के बाद कबायली क्षेत्र पर बमबारी करनी पड़ती थी।

विक्टोरिया के शासन-काल के राजनीतिक पक्ष का यही स्वरूप है। इस काल में ही कई महत्त्वपूर्ण सामाजिक आन्दोलन भी शुरू हुए जिनके नेताओं के नामों का उल्लेख विक्टोरिया की घोषणा के विवरण के बाद पहले दिया जा चुका है। इन आन्दोलनों का भारतीय समाज पर व्यापक प्रभाव पडा। इनके फलस्वरूप जागरित चेतना ने धीरे धीरे राजनीतिक सक्रियता का रूप ले लिया। राजनीतिक जागरण मे आर्थिक दोहन का भी हाथ था। इससे कोई इनकार नहीं कर सकता। अस्तु, एक ओर वैधानिक आन्दोलन आरम्भ हुआ और दूसरी ओर लुक-छिपे सशस्त्र क्रान्ति को जन्म देने की चेष्टा की जाने लगी।

विक्टोरिया के काल को उत्कर्ष का काल माना जाता है। इस जमाने में भारत का रक्त जिस निर्दयतापूर्ण आसुरी वृत्ति से चूसा गया, उसका समुचित विवरण उस स्मृति-पत्र में मिलता है जो बम्बई असोसिएशन की ओर सन् १८७१ में ब्रिटेन के हाउस आव कामस (लोकसभा) को भेजा गया था। इसमें लिखा गया था "गत बारह वर्षों में नमक कर मद्रास मे शत प्रतिशत, बम्बई में ११ प्रतिशत और शेष भारत में पचास प्रतिशत बढ़ा दिया गया है; शक्कर पर शुल्क शत प्रतिशत बढ़ाया गया है; शराब पर आबकारी कर दूना कर दिया गया है, स्टाम्प ड्यूटी अनेक बार बढ़ायी गयी है जो चरम सीमा पर पहुँच चुकी है.....। हाल में कोर्ट फीस भी बढ़ा दी गयी है। दो प्रतिशत उत्तराधिकार कर भी लगा दिया गया है। भूमि पर 'सेस' ६॥ प्रतिशत है। गॉव सेवा 'सेस' भी इतना ही है। देहाती-कस्बा 'सेस', व्यापार और पेशाकर, गृह कर, चुंगी तथा अनेक प्रकार के अन्य म्युनिसिपल और स्थानीय कर देश के विभिन्न भागों में लागू हैं।.....बहुत से प्रान्तों को भारत सरकार से प्राप्त होने वाले अनुदान की रकम भी कम हो गयी है। इससे होने वाला घाटा

पूरा करने के लिए नये स्थानीय कर लगाने का प्रस्ताव सामने है।.....सरकार का खर्च सन् १८५६–५७ की तुलना में इस समय एक करोड़, नब्बे लाख पौण्ड अधिक हो गया है।''*

विक्टोरिया द्वारा पहली नवम्बर, सन् १८५८ को की गयी घोषणा से पूर्व की आर्थिक लूट के प्रकाश में उपर्युक्त विवरण पर ध्यान देने से स्थिति स्पष्ट हो जाती है और यह अन्दाज मिल जाता है कि भारत की जनता की कमर किस प्रकार तोड़ी जा रही थी। उपर्युक्त स्मृति-पत्र में किये गये रुदन से भी अंग्रेजों का कलेजा न पसीजा। उन्होंने भारत का दोहन और शोषण जारी रखा। अकाल बार-बार पड़ता। बार-बार लाखों व्यक्ति अन्न के अभाव में मौत के मुंह में चले जाते। लेकिन अंग्रेजों को लाखों, करोड़ों लोगों की तनिक भी परवाह नहीं थी। डब्ल्यू एस० लिले ने अपनी पुस्तक 'इण्डिया एण्ड इट्स प्राब्लम' में लिखा है कि १८५० और '७५ के बीच ५० लाख व्यक्ति और १८७५ तथा १९०० के बीच डेढ़ करोड़ व्यक्ति अकाल से मरे।'† इसके बावजूद भारत का गल्ला बाहर भेजा जाता रहा—कच्चा माल लूटा जाता रहा। अकाल के दौरान में गल्ले का निर्यात कितना बढ़ा यह पहले बताया जा चुका है। कच्चे माल की दशा यह रही—सन् १८३३ और १९१४ के बीच कपास का निर्यात ३ करोड २ लाख पौण्ड (वजन) से बढ़ कर ९६ करोड ३ लाख पौण्ड तक हो गया था। जूट का निर्यात सन् १८४९ और १९१४ के बीच ६८ हजार पौण्ड (मूल्य) से बढ़ कर ८६ लाख पौण्ड (मूल्य) तक हो गया था। खेतिहर बना दिये जाने वाले देश की बरबादी का हाल सुनाने के लिए ये आँकड़े काफी हैं। एक ओर यह स्थिति थी, दूसरी ओर भारती की आमदनी पर डाका डाला जाता था। इस प्रकार भारत को दो पाटों के बीच पीसा गया। इग्लैण्ड से भारत भेजे जाने वाले सूत और कपड़े के आयात कर को समाप्त करना इसका प्रमाण है। इससे भारत को सिर्फ ८ लाख पौण्ड वार्षिक की आय थी। अंग्रेजों को यह भी सह्य न हुआ। सन् १८७७ में ब्रिटेन की लोकसभा ने एक प्रस्ताव स्वीकार कर के इसे समाप्त करने का आदेश भारत सरकार को दिया। इस अन्याय के विरोध में ही वाइसराय नार्थब्रुक ने त्याग-पत्र दिया था।

---

* रमेशचन्द्र दत्त—'इण्डियन ट्रेड, मैन्यूफैक्चर एण्ड फिनांस' पृष्ठ सं० १७६–१७७

† रजनी पामदत्त—'इण्डिया टुडे' में पृ० सं० १०६ पर उद्धरित।

वाइसराय लिटन के जमाने में यहां चांदी का भाव गिरा। मद्रास में भयं-
र अकाल पड़ा। इससे सरकार की आय को धक्का लगा। इसकी पूर्ति के लिए
बरदस्त फरेब रचा गया। १८९३ से सन् १८९९ तक के लिए टकसालें
द कर दी गयीं और "१ आने के सच्चे रुपये को १६ आने का झूटा रुपया
ा कर करदाता को धोखा दिया गया और उससे ४५ प्रतिशत अधिक कर
सूल किया जाने लगा।" रुपये में अपने मूल्य के बराबर चाँदी न रह गयी
ौर वह पौण्ड पर आश्रित हो गया अथवा उसका मूल्य पौण्ड के मूल्य पर
र्भर हो गया। इस प्रकार अंग्रेजों ने भारत की मुद्रा पर नियंत्रण कायम
या जो प्रकारान्तर से भारत के आर्थिक जीवन पर नियंत्रण था। परिणाम
इका यह हुआ कि बाजार में मन्दी आ गयी। मालगुजारी मे कोई परिवर्तन
हीं किया गया। किसान को मालगुजारी पहले जितनी ही देनी पड़ती लेकिन
इके लिए उसे गल्ला अधिक बेचना पड़ता। यो भारत मे मालगुजारी की
कम जैसी की तैसी रह गयी लेकिन पौंड में वह ६४२॥ लाख से बढ़ कर ७६३॥
ाख हो गयी। जनता को लूटने का यह पोशिदा तरीका उस दौरान में अप-
'या गया, जब एक करोड से भी अधिक व्यक्ति अकाल की प्रचण्ड ज्वाला
झुलस कर सदा के लिए सो गये।

उपर्युक्त विनाशकारी नीति से किसानों पर कर्ज का गहरा बोझ लद
या। लाभ हुआ अंग्रेज नौकरशाही का और अंग्रेज व्यापारियों का।

अंग्रेज शासकों की इन कारस्तानियों की ओर देश का ध्यान शिक्षित समु-
य द्वारा उदारपंथी ढंग से आकृष्ट किया जाता रहा। इस समय तक देश
कुल मिलाकर ४७५ अखबार प्रकाशित होते थे जिनमें अधिकतर भारतीय
षाओं मे थे। इन अखबारों मे प्रायः अंग्रेजों के उन कानूनों का हवाला
या जाता जो भारतीयों के अधिकारों का हनन करने वाले होते और
जिजी के साथ सुधारों की माँग की जाती। बँगाल मे राजा राममोहन राय
सुधारों की माँग की जो ज्योति जगायी थी, उसका प्रकाश बढ़ रहा था।
ामिक आन्दोलन की प्रवृत्तियाँ जन्म ले चुकी थीं। सन् १८३७ मे बंगाल मे
ापित जमींदारी असोसिएशन के माध्यम से लोगों को वैधानिक ढंग से लड़ने
ौर साहस के साथ अपने अधिकारों की माँग करने की प्रेरणा दी जा चुकी
। लगभग इसी उद्देश्य से सन् १८४३ में स्थापित 'बंगाल-ब्रिटिश इण्डिया
साइटी' ने भी लोगों की आँखें खोल दी थी। इसमें अंग्रेज भी शामिल थे।
ारों के कारण जब उनके स्वार्थों पर असर पड़ने लगा तो उन्होंने इससे
नारा कसा लेकिन भारतीय समाज को रास्ता मिल चुका था। वह इस पर

बढ़ता रहा। फलतः शीघ्र ही सन् १८५१ में केवल भारतीयों ने 'ब्रिटिश इण्डियन असोसिएशन' नाम की संस्था कायम कर ली थी। इसके नेता डा० राजेन्द्रलाल मित्र और रामगोपाल घोष प्रभृति दशकों तक इसके तत्त्वावधान में काम करते रहे। लगभग पचास वर्षों तक यह संस्थान प्रेरणा का स्त्रोत बना रहा। बम्बई में इसी प्रकार बम्बई असोसिएशन की स्थापना हो चुकी थी। अंग्रेजों द्वारा भारत के आर्थिक शोषण पर इसके द्वारा सन् १८७१ में ब्रिटेन की लोकसभा को भेजे गये स्मृति पत्र का उल्लेख किया जा चुका है। १८७६ में बंगाल में 'इण्डियन असोसिएशन' की स्थापना हुई जिसके जीवन-प्राण सुरेन्द्रनाथ बनर्जी * थे जिन्होंने वैधानिक आन्दोलन में जबरदस्त हिस्सा लिया। १८८३ के कुख्यात बिल से उत्पन्न विरोध के वातावरण में कलकत्ता के अलबर्ट हाल में राजनीतिक परिषद का जो आयोजन हुआ था, उसमें सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और 'इण्डियन असोसिएशन' के मन्त्री आनन्दमोहन बसु भी उपस्थित थे। इससे पहले कलकत्ता में ही अन्तराष्ट्रीय परिषद हो चुकी थी। मद्रास भी इस दृष्टि से पीछे न था। सन् १८८१ में वहाँ मद्रास महासभा की स्थापना हुई और मद्रास में इसका प्रान्तीय अधिवेशन हुआ। सन् १८८५ में 'मेहता, तैलंग और तय्यबजी की मशहूर मण्डली ने मिल कर बम्बई प्रसिडेंसी असोसिएशन की स्थापना की।

पूना में राष्ट्रीय शिक्षा का प्रसार करने की कोशिश सन् १८८० में आरम्भ हो गयी थी। चिप्लुंकर, लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, माधवराव नामजोशी, वासुदेव शास्त्री खरे, नन्दर्शिकर शास्त्री, हरिकृष्ण दामले प्रभृति समाज सेवी परिश्रम और लगन के साथ इस कार्य में लगे थे। इनके द्वारा स्थापित 'न्यू इंगलिश स्कूल' की देख रेख में 'केशरी' और 'मराठा' पत्रों का प्रकाशन हुआ। वैधानिक आन्दोलन को आगे बढ़ाने तथा अंग्रेजों के अन्याय का विरोध करने में इन दोनों पत्रों का योगदान इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। अपने प्रकाशन के प्रथम वर्ष में ही 'केशरी' और 'मराठा' ने कोल्हापुर रियासत की लूट का जबरदस्त विरोध किया। इस पर मुकदमा चला और प्रतिवादी लोकमान्य तिलक की ओर से फिरोजशाह मेहता सदृश्य व्यक्ति ने वकालत की। तिलक का सम्बन्ध 'मराठा' से था और आगरकर का 'केशरी' से। दोनों

---

* अदालत की मानहानि में आपको सजा मिली थी जिसका जन-जागरण पर बड़ा अनुकूल प्रभाव पड़ा था और आपका भाषण सुनने के लिए लोग टूट पड़ते थे।

को मानहानि के अभियोग में चार-चार वर्ष की सादी कैद की सजा मिली। इससे "जनमत उत्तेजित हो उठा। विरोध में सभाएँ की गयीं और प्रिंसपल बर्ड्सवर्थ तथा माननीय श्री मण्डलिक सदृश्य लोगों ने सर जेम्स फर्गूसन (गवरनर) के पास दोनों को रिहा करने के लिए प्रार्थना पत्र भेजे। प्रार्थना पत्र व्यर्थ सिद्ध हुए। जनमत और उत्तेजित हो उठा। जनता ने दोनों बन्दियों की रिहाई के बाद उनका जैसा शानदार स्वागत किया, उससे उनके प्रति उसकी मान्यता पूरी तरह स्पष्ट हो गयी। रिहाई के दिन जेल के फाटक पर सैकड़ों व्यक्तियों का समूह उमड़ पड़ा था।" * यह जन-जागरण का ही प्रमाण था, क्योंकि न केवल अंग्रेजों के शोषण और दमन से भारतीय पीड़ित थे बल्कि उनके साथ व्यवहार भी ऐसा अपमानजनक किया जाता था जैसा आज रंगभेद की नीति अपनाने वाली दक्षिण अफ्रिका की सरकार वहाँ की रंगीन जातियों के लोगों के साथ कर रही है। डब्ल्यू सी ब्लंट ने इस स्थिति का उल्लेख करते हुए लिखा था—"कोई भी भारतीय, उसकी वेशभूषा और ओहदा चाहे जितना भी उँचा क्यों न हो, अपमानित होने के भय से मुक्त होकर वहाँ घूम नहीं सकता जहाँ अंग्रेज घूमते हैं।" † इतना ही नहीं, क्रुद्ध अंग्रेजों द्वारा भारतीयों की हत्या मामूली बात थी।

भारतीयों मे चेतना उत्पन्न हो रही थी। वे वैधानिक आन्दोलन का आश्रय लेना सीख रहे थे। ऐसी दशा में अंग्रेजो की निरकुशता का उन पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। यही हुआ भी। इन परिस्थितियो के बीच ही 'कांग्रेस' ने जन्म लिया जिसके नेतृत्त्व में ६१ वर्षों तक अनवरत सघर्ष-रत रहने बाद अन्ततः भारतीय अपने देश को अंग्रेजों के शासन के चगुल से मुक्त कर सकने में सफल हुए।

---

* एन० सी० केलकर—'लाइफ एण्ड टाइम्स आव लोकमान्य तिलक' प्रथम खण्ड पृ० सं० १३६

† डब्लू० सी० ब्लंट—'इण्डिया अंडर रिपन' पृ० सं २६३

# कांग्रेस

**कांग्रेस की पहली बैठक—दूसरा और तीसरा अधिवेशन—साम्प्रदायिकता के आधार पर कांग्रेस का विरोध—अंग्रेज सशंक—कांग्रेस का इलाहाबाद अधिवेशन—बम्बई अधिवेशन—कलकत्ता और नागपुर अधिवेशन—जंगल कानून का विरोध—इल्बर्ट बिल का बिल—अंग्रेजी शासन का पर्दाफाश—न्याय प्रशासन में भारतीयों की नियुक्ति की माँग—वंदे मातरम् राष्ट्र गान के रूप में—दमन के कानून।**

सन् १८८५ मे कांग्रेस का जन्म हुआ। डा० पट्टाभि सीतारमय्या के शब्दों मे "यह तो अभी तक रहस्य ही है कि अखिल भारतीय कांग्रेस की कल्पना वास्तव में किसके मस्तिष्क से निकली। १८७७ के दरबार* या कलकत्ता की अन्तर्राष्ट्रीय परिषद के अलावा थियासोफिकल कनवेशन का नाम भी इस विषय में लिया जाता है जो दिसम्बर, सन् १८८४ मे मद्रास मे हुआ था। एलेन आक्टेवियन ह्यूम ने सिविल सर्विस से अवकास ग्रहण करने के बाद जो इण्डियन यूनियन कायम किया था, वह भी कांग्रेस के जन्म का निमित्त बताया जाता है।"† इसमें सन्देह नहीं है कि कांग्रेस की स्थापना मे ह्यूम का भी हाथ था और तत्कालीन वाइसराय लार्ड डफरिन उनसे सहमत थे। ह्यूम मूलतः किस उद्देश्य से प्रेरित थे, यह कहना कठिन है। उन्होंने सन् '५७ का विद्रोह अपनी आँखों से देखा था और उसके दमन में भी हिस्सा लिया था। वेडरबर्न द्वारा लिखित उनकी जीवनी में इस बात का उल्लेख भी मिलता है कि उन्हें दूसरे विद्रोह के आसार नजर आ रहे थे और सबूत भी उनके पास थे।

---

* सन् १८८३ में कलकत्ता के अलबर्ट हाल में आयोजित राजनीतिक परिषद में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने बताया था कि किस प्रकार दिल्ली दरबार ने उनके सामने एक राजनीतिक संस्था, जो भारत के हित-साधन में तत्पर रहे, बनाने का नमूना पेश किया था।

† डा० पट्टाभि सीतारमय्या—'कांग्रेस का इतिहास' प्रथम खण्ड—पृष्ठ संख्या ६–१०

वेडरबर्न के कथनानुसार ह्यूम ने अपनी जानकारी के आधार पर यह चेतावनी भी दी थी कि".....अराजकता फैलेगी। सरकार और सम्मानित वर्गों के लोगों का काम ठप पड़ जायगा। स्थान-स्थान पर छोटे-छोटे समूह पत्ते पर पड़ी पानी की बूँदों की भाँति ढुलक कर एक होने वाली बूँद की भाँति बड़े बड़े समूह बन जायँगे।.....सरकार से क्षुब्ध कुछ पढ़े-लिखे लोग भी नैराश्य-जनित उन्माद के फलस्वरूप इनके साथ हो जायँगे। ये उपद्रवियों के नेता बनेंगे और उपद्रव को सूत्र-बद्ध आन्दोलन का रूप दे कर विद्रोह के रूप में उसका संचालन करेंगे।"*

ह्यूम साहब लार्ड डफरिन से भी मिले (१८८४) थे जो जनता का असंतोष कम करने का उपाय ढूढ़ने के लिए चेष्टाशील थे। दोनों सन् १८८५ में एक सम्मेलन करने की राय पर सहमत हुए, इसका प्रमाण मिलता है। गलतफहमी न हो, इसलिए यह कह देना जरूरी है कि सुधारों के लिए ह्यूम साहब सक्रिय थे। इस सिलसिले में वे इंग्लैण्ड भी गये थे। अस्तु, लार्ड डफरिन से वार्ता करने के साथ-साथ ह्यूम साहब ने बम्बई, मद्रास और कलकत्ता आदि के गण्यमान्य नेताओं से भी बातें की। मार्च, सन् १८८५ में यह निश्चय हुआ कि बड़े दिन की छुट्टियों में देश के सभी भागों के प्रतिनिधियों की सभा की जाय। सम्मेलन का स्थान पूना चुना गया। इसके लिए एक परिपत्र सब जगह भेजा गया जिसका मुख्य अंश इस प्रकार था:

"२५ से ३१ दिसम्बर, सन् १८८५ तक पूना में इंडियन नेशनल यूनियन की एक सभा की जायगी। इसमें बंगाल, बम्बई और मद्रास प्रदेशों के अंग्रेजी जानने वाले प्रमुख राजनीतिज्ञ प्रतिनिधि सम्मिलित होंगे।

"इस परिषद के प्रत्यक्ष उद्देश्य ये होंगे:—राष्ट्र की प्रगति के कार्य में जी-जान से लगे लोगों का एक-दूसरे से परिचय (२) इस वर्ष कौन कौन से कार्य किये जाँय, इसकी चर्चा करना और निर्णय करना।

"अप्रत्यक्ष रूप से यह सभा देशी पार्लिमेण्ट का बीज रूप होगी और कार्य यदि सुचारु रूप में चलता रहा तो थोड़े ही दिनों में यह इस बात का मुहतोड़ जवाब हो गी कि भारत प्रतिनिधिमूलक शासन संस्थाओं के अयोग्य है। पहली सभा में यह तय होगा कि दूसरी सभा पूना में ही की जाय या ब्रिटिश असोसिएशन की भाँति प्रत्येक वर्ष देश के प्रधान-प्रधान भागों में की जाय। अनुमान है कि पूना के मित्रों के अतिरिक्त बम्बई, मद्रास और

---

* डब्लू. वेडरबर्न—'एलेन ऑक्टेवियन ह्यूम' पृष्ठ संख्या—२

बंगाल से लगभग बीस-बीस प्रतिनिधि आयेंगे और इनसे आधे युक्त प्रान्त एवं पंजाब से।"*

बड़े दिन से पूर्व ही पूना में हैजा फैलने के कारण सभा का जिसे पाठकों की सहूलियत के लिए अब से कांग्रेस कहा जायगा, अधिवेशन वहाँ न हो सका। २८ दिसम्बर को बम्बई के गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कालेज में कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन उमेशचन्द्र बनर्जी की अध्यक्षता में आरम्भ हुआ। कुल ७२ प्रतिनिधियों ने इसमें भाग लिया और नौ प्रस्ताव स्वीकार किये। प्रथम प्रस्ताव में भारत के शासन-कार्य की जांच के लिए रायल कमीशन नियुक्त करने की माँग की गयी।। दूसरे प्रस्ताव द्वारा इण्डिया कौंसिल को भंग करने की माँग की गयी। तीसरे प्रस्ताव में कहा गया कि धारा सभा में नामजद सदस्यों के स्थान पर चुने हुए सदस्य हों। चौथे प्रस्ताव में कहा गया कि इण्डियन सिविल सर्विस (भारतीय नागरिक सेवा) की परीक्षा इङ्गलैण्ड और भारत में एक साथ हो और परीक्षार्थियों की उम्र की सीमा बढ़ा दी जाय।† और छठवां प्रस्ताव सैनिक खर्च के सम्बन्ध में था। इनमें बताया गया था कि पिछले सत्ताइस वर्षों में सैनिक खर्च १ करोड १४ लाख, ३६ हजार पौण्ड से बढ़ कर १ करोड़ ६६ लाख ७५ हजार ७५० पौण्ड हो गया है। इसे घटाया जाय। सातवें प्रस्ताव में उत्तरी बर्मा को भारत में मिलाने के प्रस्ताव का विरोध था। आठवें प्रस्ताव में उपर्युक्त प्रस्तावों को सभी स्थानों में भेजने का निर्णय था और नौवां अगले अधिवेशन के सम्बन्ध में था।

कांग्रेस का दूसरा अधिवेशन १८८६ में कलकत्ता में हुआ। इसके अध्यक्ष दादाभाई नौरोजी थे। आप इसी वर्ष फिंसबरी (इंगलैंड) से ब्रिटिश पार्लिमेंट में चुने गये थे। इस वर्ष ब्रिटिश सरकार ने पब्लिक सर्विस कमीशन की स्थापना कर दी थी। कलकत्ता अधिवेशन में भी कांग्रेस ने पुराने प्रस्ताव दोहराये। उसने कौंसलों में आधे निर्वाचित सदस्य रखने की भी माँग की और 'अप्रत्यक्ष' चुनाव का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया लेकिन शर्त यह रखी कि प्रान्तीय कौंसिल की अपील भारत सरकार से तथा बड़ी कौंसिल की अपील हाउस आव कामंस (ब्रिटेन की लोकसभा) से करने का अधिकार रहेगा। न्याय-प्रशासन में उसने जूरी प्रथा का विकास करने तथा उसका निर्णय स्वीकार करने की माँग की।

---

* डा० पट्टाभि सीतारमय्या—'कांग्रेस का इतिहास' खण्ड १ पृष्ठ सं० १४

† सन् १८५३ में सिविल सर्विस के लिए प्रतिस्पर्द्धी परीक्षाएँ जारी की गयी जो थीं इंग्लैण्ड में होती थी।

तीसरा अधिवेशन १८८७ में मद्रास में हुआ। इसके अध्यक्ष बैरिस्टर बदरुद्दीन तैयबजी हुए जो १८९५ में बम्बई हाईकोर्ट के सदस्य बने। यह ऐसा समय था जब साम्प्रदायिकता के आधार पर कांग्रेस का विरोध आरम्भ हो चुका था और सर सैयद अहमद खाँ के अनुयायी-कांग्रेस में शामिल न होने का आग्रह मुसलमानों से कर रहे थे। तैयबजी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में इसका उल्लेख करते हुए कहा था कि 'पिछले दो अधिवेशनों में मुसलिम समाज ने कोई खास हिस्सा नहीं लिया।'

यह अधिवेशन एक और दृष्टि से भी विशिष्ठ रहा। कांग्रेस के नेता और अध्यक्ष प्रथमतः अंग्रेजों के 'सभ्य शासन' की प्रशंसा और वफादारी का ऐलान करते, इसके पश्चात् ही सुधारों की माँग की जाती। भाषा संयमित और प्रशंसा-मूलक होती। गरम-गरम बातें सुनायी न पड़ती। मद्रास अधिवेशन में दूसरा पक्ष भी सामने आ गया। नार्टन नामक मद्रास के वकील ने इस अधिवेशन में बहुत जोरदार भाषण किया—ऐसा भाषण जो बंग-भंग के बाद के कांग्रेस अधिवेशनों में ही सुनायी पड़ा। नार्टन साहब ने कहा था—"यदि अन्याय के विरुद्ध विद्रोह करना राजद्रोह है, यदि स्वदेश के शासन-कार्य में अपना स्थान प्राप्त करने की माग करना विद्रोह है, यदि शासन की क्रूरता और जनता के दलन के विरुद्ध आवाज बुलन्द करना विद्रोह है, यदि व्यक्ति स्वातंत्र्य की माँग करना विद्रोह है, यदि प्रताडन और अनाचार के विरुद्ध बगावत करना विद्रोह है, तो मुझे राजद्रोही होने में प्रसन्नता है।" *

मद्रास अधिवेशन में मांग की गयी कि शस्त्र कानून में संशोधन किया जाय। इस विषय पर बहुत गरम विवाद हुआ जिसमें बंगाल के सुरेशचन्द्र बनर्जी तथा विपिनचन्द्र पाल ने मुख्य रूप से हिस्सा लिया। इनका मत था कि शस्त्र कानून रद्द किया जाना चाहिये लेकिन अततः समझौतावादी रुख अख्तियार किया गया।

तीसरे अधिवेशन की कारवाई के फलस्वरूप अंग्रेज अधिकारी कुछ सशंक हो गये। चौथे अधिवेशन के समय जो १८८८ में जार्ज यूल की अध्यक्षता में इलाहाबाद में हुआ, यह बात सामने आ गयी। इस विषय पर ह्यूम साहब और पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त के गवरनर आकलैण्ड कालविन के बीच काफी लम्बा पत्र-व्यवहार हुआ। इस पर सार्वजनिक विवाद भी आरम्भ हो गया। गरम विचारों के प्रतिबिम्ब देखकर अंग्रेज परस्त अखबार भी भड़क उठे और उन्होंने कांग्रेस पर प्रहार किया। इसके बावजूद इलाहाबाद अधिवेशन में पहले

* एनी बेसेंट—'हाउ इंडिया फॉट फॉर फ्रीडम' पृ० सं० ४०-४१

अधिवेशनों की अपेक्षा अधिक सरगर्मी रही। इसमें भाग लेने वाले प्रतिनिधियों की संख्या भी अधिक थी। सरकार की नीति के विरोध में वक्ताओं ने खूब जम कर भाषण किया। कारण यह था कि पिछले तीन वर्षों में अंग्रेज हुकूमत ने कांग्रेस की माँगों पर ध्यान नहीं दिया था और जनता की भलाई के लिए कुछ न किया था। उलटे उसके पिट्ठू कांग्रेस में भाग ले कर उसमें फूट डालने की चेष्टा करने लगे थे। बनारस के उपाधिधारी राजा शिवप्रसाद ऐसे ही लोगों में थे जिन्हें सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने 'अंग्रेजों का विश्वासी मित्र' बताते हुए उनकी उपस्थिति 'कूटनीतिक चाल' बतायी थी। अधिवेशन में राजा शिवप्रसाद की खूब भर्त्सना हुई; क्योंकि वे इस आशय का प्रस्ताव पेश करना चाहते थे कि 'सरकार राजद्रोहात्मक भाषणों पर रोक लगा दे।'

इलाहाबाद अधिवेशन की दूसरी विशेषता थी—पुलिस की दमनात्मक कारवाईयों की कटुतम आलोचना। इसमें लखनऊ से प्रकाशित होने वाले 'पंच' के सम्पादक सज्जाद हुसैन ने मुख्य भाग लिया। इसी अधिवेशन में महामना पंडित मदन मोहन मालवीय का यह ऐतिहासिक उद्घोष भी सुनायी दिया था कि 'विक्टोरिया ने जो घोषणा की थी, वह ईमानदारी और शुभेच्छा के कारण नहीं बल्कि तात्कालिक नीति-वश की थी।'

इस अधिवेशन में पुलिस के दमन की जाँच के लिए समिति नियुक्त करने, मादक द्रव्यों की बढ़ती हुई खपत पर रोक लगाने औद्योगिक स्थिति की जाँच करने, नमक कर में कमी करने और शिक्षा पर अधिक रकम व्यय करने की माँग की गयी। पुराने प्रस्ताव भी दोहराये गये।

अगले वर्ष अर्थात् सन् १८८९ में कांग्रेस का पाँचवा अधिवेशन बम्बई में हुआ जिसकी अध्यक्षता विलियम वेडनबर्न ने की। भारत के राजनीतिक जागरण के आन्दोलन को बल प्रदान करने में आपका मुख्य हाथ था। ह्यूम साहब के जीवन पर आप द्वारा लिखित पुस्तक में तात्कालीक अवस्था का विवेचनात्मक विवरण प्रभावकारी ढग से दिया गया है।

वेडनबर्ग का अध्यक्षीय भाषण बहुत महत्त्वपूर्ण था और स्पष्ट शब्दों में राजकीय कर्मचारियों और भारत की जनता के हितको परस्पर-विरोधी बताते हुए इसमें कहा गया था कि 'ब्रिटिश सरकार की शक्ति हमारे विरोधियों के हाथों में है।' इस अधिवेशन में भाग लेने वालों में लोकमान्य बालगंगाधर तिलक भी थे जिन्होंने आगे चल कर भारत के वैधानिक आन्दोलन को एक नयी दिशा प्रदान की और यह नारा बुलन्द किया—'स्वराज्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है।'

बम्बई अधिवेशन में कौंसिलों के सुधार की योजना तैयार की गयी और अध्यक्ष से आग्रह किया गया कि सुधार की योजना को रूप-रेखा चार्ल्स ब्रैडला के पास इंग्लैण्ड भेज दें और उनसे अनुरोध करें की इसके आधार पर वे पार्लिमेण्ट में बिल पेश करें। चार्ल्स ब्रैडला ब्रिटेन की लोकसभा के सदस्य थे और भारतीय शासन में सुधार के जोरदार समर्थक थे।

चार्ल्स ब्रैडला ने कांग्रेस के सुझावों के आधार पर ब्रिटेन की पार्लिमेण्ट मे अगले वर्ष एक बिल पेश भी किया। इसी वर्ष कांग्रेस का छठवाँ अधिवेशन सन् १८९० में बम्बई प्रेसिडेंसी असोसिएशन के जन्मदाता फिरोजशाह मेहता की अध्यक्षता मे कलकत्ता में हुआ जिसमे ब्रैडला द्वारा पार्लिमेण्ट मे प्रस्तुत बिल का समर्थन किया गया। इस बिल पर विचार न हो सका और यह छोड़ दिया गया। ब्रैडला ने इस दिशा मे पुनः प्रयास किया, लेकिन १८९१ के प्रथम मास मे ही उनकी मृत्यु हो गयी और यह काम आपसे आप ठप पड़ गया।

सन् १८९१ मे सातवाँ अधिवेशन नागपुर मे हुआ जिसकी अध्यक्षता पी० आनन्द चारलू ( मद्रास ) ने की। इसमें कांग्रेस ने अपना यह निश्चय पुनः दोहराया कि "जब तक अपने देश की कौंसिलों में हमारी आवाज जोरदार न होगी और हमारे प्रतिनिधि निर्वाचित न होंगे, तब तक भारत का शासन सुचारू रूप मे न्याय-पूर्वक नहीं चल सकता।" इस अधिवेशन मे जंगलों की व्यवस्था के सम्बन्ध में अंग्रेजों के जंगली कानूनों का उल्लेख भी बड़े मार्मिक ढंग से किया गया। श्रीमती बेसेण्ट ने इसके सम्बन्ध मे लिखा था--"किसान जंगल कानून के कारण अंग्रेजी शासन के जितने विरोधी हुए, उतने अन्य किसी बात से नहीं। नमक कर बुरा है। मालगुजारी का बन्दोबस्त निर्दयतापूर्ण और कठोर है लेकिन 'जंगल कानून' किसानों के हित पर कदम-कदम पर कुठाराघात करता है।"* यह सही भी था। अंग्रेजों ने कलम की नोक मात्र से दक्षिण के किसानों वे अधिकार समाप्त कर दिये थे जिन्हें वे सदियों से भोगते आ रहे थे। चरागाह बन्द कर दिये गये थे। किसानों के जानवर वहाँ पाये जाते तो उनपर जुर्माना किया जाता। इसका स्वरूप कितना भयंकर था, यह इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि मद्रास सरकार ने चरागाह कर के रूप मे सन् १८९० में कुल डेढ़ लाख रुपया वसूल किया और जब्त चरागाहों मे जाने वाले जानवरों के कारण किसानों पर किये गये जुर्माने की रकम साढ़े तीन लाख थी!

* श्रीमती बेसेंट—'हाउ इण्डिया फाट फॉर फ्रीडम'—पृ० सं० १३२

सन् १८९२ में कांग्रेस का अधिवेशन पुनः इलाहाबाद में हुआ और कांग्रेस के प्रथम अध्यक्ष उमेशचन्द्र चन्द्र बनर्जी इसके अध्यक्ष चुने गये। इसी वर्ष ब्रिटेन की पार्लिमेण्ट में कौंसिलों के सुधार से सम्बद्ध लार्ड क्रास का बिल पास हो गया और कानून बन गया। इसके फलस्वरूप चुनाव-सम्बन्धी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ, फिर भी कांग्रेस ने इसे स्वीकार कर लिया और साथ ही यह घोषित कर के अपना विरोध भी प्रकट कर दिया कि "स्वतः इस एक्ट के द्वारा लोगों को कौंसिलों के लिए अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार नहीं दिया गया है।"

अगले वर्ष ( १८९३ ) दादाभाई नौरोजी की अध्यक्षता में कांग्रेस का अधिवेशन लाहौर में हुआ। इस समय तक नौरोजी ब्रिटेन की लोकसभा के सदस्य चुने जा चुके थे। इंग्लैण्ड में आयरलैण्ड के लिए 'होम रूल' का आन्दोलन चल रहा था और पार्लिमेण्ट के अनेक सदस्य इसके जोरदार समर्थक थे। अखिल भारतीय कांग्रेस को भी इनका समर्थन प्राप्त था। नौरोजी अधिवेशन में शामिल होने के लिए जब इंग्लैण्ड से भारत के लिए रवाना हुए तो पार्लिमेण्ट के उपर्युक्त सदस्यों ने उन्हें विदा किया और कांग्रेस को यह सन्देश सुनाने का आग्रह किया कि "होम रूल आन्दोलन के समर्थक भारतीय जनता की मांगों के भी समर्थक हैं।"

लाहौर अधिवेशन की विशेषता यह रही कि इसमें महामना मालवीय जी, जी सुब्रमण्य ऐयर और गोपाल कृष्ण गोखले प्रभृति नेताओं ने भारत की आर्थिक दुर्दशा का करुण चित्र प्रभावोत्पादक ढंग से खींचा और अंग्रेजों की लूट-खसोट का पर्दा फाश किया। गोखले महोदय ने सिविल सर्विस की परीक्षा की समस्या पर जो भाषण किया, उसके कारण सरकार उन्हें शत्रु समझने लगी। आपने कहा था—"यदि हर बात को अविश्वास की दृष्टि से देखने वाला शासन शीघ्र नहीं बदलता तो इस गरीब देश का भविष्य अंधकार-पूर्ण हो जायगा।" नौरोजी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में ब्रिटिश सत्ता को 'निरंकुश' बताया था।

सन् १८९३ में ब्रिटेन की लोकसभा ने एक प्रस्ताव पास कर के कांग्रेस की यह माँग स्वीकार कर ली कि सिविल सर्विस की परीक्षा इंग्लैंड और भारत में साथ-साथ हो लेकिन भारत मंत्री ने इसे कार्यान्वित नहीं होने दिया क्योंकि इसके कार्यान्वित होने पर भारत के प्रशासन में अंग्रेजों की भरमार सम्भव न थी। उदाहरणार्थ १८९३ में ही एक हजार यूरोपियनों के मुकाबिले में केवल बीस भारतीय सिविल सर्विस परीक्षा में बैठे थे।

सन् १८९४ के मद्रास अधिवेशन के अध्यक्ष अलफ्रेड वेब थे। आप आयरलैण्ड के निवासी और ब्रिटिश पार्लिमेंट के सदस्य थे।

इस अधिवेशन में अध्यक्ष का भाषण बहुत मार्के का था। उन्होंने प्रमुख रूप में भारत की दरिद्रता का ही उल्लेख किया और भारतीयों के रक्त से सींची जाने वाली ब्रिटेन की बाटिका की खुशहाली का मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत किया। आपने बताया कि 'ब्रिटेन ने कर के रूप में सन् १८८२ में जहाँ १,७३,६६००० रुपये वसूल किये थे, वहीं सन् १८९२ में २,२६,११००० रुपये वसूल किये।' ब्रिटेन और भारत की तुलना करते हुए आपने कहा था—'इंग्लैंड में प्रति व्यक्ति की वार्षिक आय ३३ पौण्ड १४ शि० है और भारत में प्रति व्यक्ति की आय सिर्फ २ पौं० !'

सन् १८९४ में काँग्रेस ने यह माँग की कि वकीलों में से जो उच्च हों, वे न्याय प्रशासन में नियुक्त किये जाँय, उपनिवेशों में भारतीयों की स्थिति सुधारी जाय, सन् १८९१ में देशों राज्यों के प्रेसों के सम्बन्ध में भारत सरकार द्वारा प्रकाशित अधिसूचना वापस ली जाय।* ये माँगे भी केवल माँगे ही रह गयी।

सन् १८९५ में काँग्रेस का अधिवेशन पूना में हुआ। इसके अध्यक्ष सुरेन्द्र नाथ बनर्जी थे। इसके सिलसिले में गोखले और तिलक में मनमुटाव हो गया। तिलक पर दोषारोप किया गया कि वह अधिक समय शिवाजी स्मारक के लिए धन एकत्र करने में लगाते है। तिलक प्रबन्ध-कार्य से पृथक हो गये। फिर भी उन्होंने काँग्रेस अधिवेशन की सफलता के लिए पूरा प्रयास किया। इस विवाद के सम्बन्ध में मद्रास के 'हिन्दू' पत्र में प्रकाशित एक समाचार के आधार पर तिलक ने पत्र पर मान-हानि का मुकदमा भी चलाया था।

पूना अधिवेशन में 'किसानों का कर्ज दूर करने वाले उपायों पर अमल करने, रेल के तीसरे दर्जे के यात्रियों की स्थिति में सुधार करने, दक्षिण अफ्रिका के भारतीयों की स्थिति में सुधार करने और भारत के बाहर होने वाले युद्धों का सारा खर्च भारत पर न डालने की माँग की गयी और उस बिल (लीगल प्रैक्टिशनर्स बिल) का विरोध किया गया जिसमें प्रान्तों में

---

* १८९१ में भारत सरकार ने यह सूचना प्रकाशित की थी कि पोलिटिकल एजेंट की आज्ञा के बिना किसी समाचार पत्र का मुद्रण, सम्पादन या प्रकाशन न होगा। यह नियम न मानने वाले को रियासत से निकालने तक का दंड देने की व्यवस्था की गयी थी। कारण यह था कि रियासतों के अखबारों ने अंग्रेजों की निरंकुशता का विरोध दृढ़ता के साथ करना आरम्भ कर दिया था।

वकीलों को जिला जजों और मालगुजारी के कमिश्नरों के अधीन कर दिया गया था।

सन् १८९६ मे अधिवेशन कलकत्ता मे हुआ। इसकी अध्यक्षता बम्बई के वकील और केंद्रीय विधान सभा के सदस्य रहीमतुल्ला एन० सयानी ने की। इस अधिवेशन मे ही रवी बाबू ( रवीन्द्रनाथ टैगोर ) ने बकिम बाबू का अमर गीत 'वंदे मातरम्' गाया जो वर्षों तक राष्ट्र गान रहा और जिसे गाते हुए अनेक क्रान्तिकारी हँसते-हँसते फाँसी के तख्ते पर लटक गये।

इस वर्ष ही देश मैं भयकर अकाल पड़ा जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। इस सम्बंध मे काग्रेस के अधिवेशन मे एक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ जिसमे कहा गया कि 'कम खर्च की नीति अपना कर, देश के साधनो का उपयोग कर के, देशी उद्योग-धंधे और कलाओ को प्रोत्साहन दे कर अकाल की पुनरावृत्ति रोकी जा सकती है।' अन्य प्रस्तावों द्वारा प्रान्तों के लिए आर्थिक स्वतंत्रता और भारतीयों के साथ न्याय करने की दृष्टि से शिक्षा विभाग की नौकरियों का पुनस्सघटन करने की माग की गयी। एक अन्य प्रस्ताव मे कहा गया कि जब तक जाच द्वारा किसी देशी रियासत के राजा का शासन, कुशासन न सिद्ध हो, उसे गद्दी से न हटाया जाय। बम्बई और मद्रास की प्रशासन कार्यकारिणी मे भारतीय सदस्यों को लेने की माँग भी उपर्युक्त अधिवेशन मैं की गयी।

सन् १८९७ मे अमरावती, १८९८ मे मद्रास, १८९९ मे लखनऊ, सन् १९०० मे लाहौर, १९०१ मे कलकत्ता, १९०२ मे अहमदाबाद, १९०३ मे मद्रास और १९०४ मे बम्बई मे काग्रेस के अधिवेशन हुए जिनके अध्यक्ष क्रमशः शकरन् नायर, आनन्द मोहन बसु, रमेशचन्द्र दत्त, नारायण गनेश चंदावरकर, दिनशा ईदल जी वाचा, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, लालमोहन घोष और सर हेनरी काटन थे। इन अधिवेशनों मे बहुत सी मागे की गयीं जिनमें अनेक १९१८ तक अर्थात् प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के बाद तक स्वीकृत नहीं हुई। उपर्युक्त अधिवेशनों मे की गयी मुख्य मागे इस प्रकार हैं—

अमरावती—१८१८, १८१९ और १८२७ के क्रमशः बंगाल, मद्रास, और बम्बई के रेगुलेशन वापस लिये जाय।

मद्रास—अखबारों के दमन के लिए स्थापित गुप्त समितियों ( सीक्रेट प्रेस कमेटीज ) की निंदा की गयी।

लखनऊ—इस अधिवेशन का महत्त्व इस दृष्टि से माना गया कि इसमें

भाग लेने वाले ७८६ प्रतिनिधियों में तीन सौ मुसलमान थे। माग की गयी कि आयकर कम किया जाय, व्यय घटा दिया जाय, करो मे कमी हो।

लाहौर—(इस वर्ष बहुत भयंकर अकाल पड़ा था। उत्तर प्रदेश मे प्लेग का जोर था और इससे त्रस्त लोगों के साधारण से उपद्रव का दमन अमानुषिक ढग से किया जा रहा था)। इस अधिवेशन मे माग की गयी कि छोटी सरकारी नौकरियों में अधिक भारतीय भर्ती किये जाय, निर्माण विभाग (पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट) मे उच्च पदो पर भारतीयो की नियुक्ति-सम्बन्धी प्रतिबन्ध हटा दिये जाय।

कलकत्ता—इग्लैण्ड मे होने वाली पुलिस प्रतियोगिता परीक्षाओ मे भारतीयों को भी लिया जाय और उच्च पदो पर उनकी नियुक्ति की जाय।* न्याय विभाग को प्रशासन से पृथक करने पर जोर दिया गया। अध्यक्ष ने अपने भाषण मे कहा था—'उन्मत्त साम्राज्यवाद दमनात्मक, प्रतिक्रियावादी और शैतानियत से भरी नीति का अनुसरण करता हुआ अधिक शक्तिशाली हो रहा है।'

अहमदाबाद—इण्डियन युनीवर्सिटी कमीशन की सिफारिशों की निंदा की गयी। कर्जन ने १६०१ मे शिमला मे एक शिक्षा सम्मेलन बुलाया था जिसमे केवल अग्रेजों ने भाग लिया था। इसके फल स्वरूप उपर्युक्त कमीशन नियुक्त हुआ जिसकी सिफारिशे इस प्रकार थी—(१) माध्यमिक शिक्षा कालेज तोड़ दिये जाय, (२) सिण्डिकेट कालेज मे शिक्षा शुल्क नियंत्रित करें (३) कानूनी शिक्षा समाप्त कर दी जाय।

लार्ड कर्जन भारत का दमन करने पर तुला हुआ था। भारतीयों की बढ़ती हुई चेतना को कुचल देने के लिए उसने सेडीशन' (राजद्रोह) एक्ट और 'आफिशियल सीक्रेट्स' एक्ट लागू (१६०४) किया। फलतः अभियोग लगाने वाला जुर्म सिद्ध करने की जिम्मेदारी से बरी हो गया और अपने को निर्दोष सिद्ध करने का भार अभियुक्त पर पडा। सन् १६०३ के अहमदाबाद अधिवेशन मे काग्रेस ने 'आफिशियल सीक्रेट्स' एक्ट का विरोध किया था।

बम्बई अधिवेशन (१६०४) में यह माग की गयी कि भारत के प्रत्येक प्रान्त और प्रेसिडेंसी को ब्रिटेन की लोकसभा मे कम से कम दो सदस्यों को भेजने का अधिकार हो। केंद्रीय और प्रान्तीय कौसिलों में गैर सरकारी सदस्यों की

---

* लार्ड कर्जन द्वारा नियुक्त पुलिस समिति ने 'विशेष पुलिस विभाग' में भारतीयों की नियुक्ति भी वर्जित कर दी थी।

संख्या बढ़ा दी जाय और उनको यह अधिकार रहे कि वे आर्थिक मसलों पर मत विभाजन की माँग कर सकें। कौंसिल के निर्वाचित सदस्यों द्वारा मनोनीत भारतीय लंदन की इण्डिया कौंसिल में रखे जॉय। भारत सरकार की शासन परिषद् तथा बम्बई और मद्रास की प्रेसिडेंसी सरकारों में भारतीय भी रखे जाय।

इन प्रस्तावों को लेकर वाइसराय लार्ड कर्जन से मिलने का अधिकार अधिवेशन के अध्यक्ष सर हेनरी काटन को दिया गया। उन्होंने वाइसराय से मिलने की चेष्टा की लेकिन वाइसराय ने मिलने से इनकार कर दिया।

सन् १९०५ में भारत के प्रधान सेनापति किचनर और वाइसराय के बीच सेना के प्रश्न पर गहरा मतभेद उत्पन्न हो गया। भारत मन्त्री ने किचनर का पक्ष लिया, अतः लार्ड कर्जन ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया और इंग्लैण्ड लौट गया।

---

# बंगभंग और उसके बाद

**रैण्ड की सख्ती—लोकमान्य तिलक द्वारा विरोध—रैण्ड हत्या कांड—तिलक की गिरफ्तारी—बंगभंग—बंगाल में व्यापक आन्दोलन—सरकारी दमन—लाला लाजपत राय को देश निकाला—कांग्रेस द्वारा स्वशासनाधिकार की माँग—स्वदेशी आन्दोलन—आतंकवादी कार्य—विदेश में भारतीय युवक संघटित—वाइसराय पर बम—'गदर पार्टी'—'कोमागातामारु' के यात्री—क्रान्तिकारियों के प्रयास—विद्रोह की योजना विफल—फाँसी और कालेपानी की सजाएँ।**

भारत से जाते-जाते लार्ड कर्जन ( वाइसराय ) ने ऐसी नीति अपनायी जिससे विदेशी शासन-सत्ता के विरुद्ध रोष और क्षोभ की ज्वाला भड़क उठी। इसके फलस्वरूप यहाँ का वैधानिक आन्दोलन राजनीतिक आन्दोलन के रूप मे परिवर्तित हो गया। हिंसात्मक प्रयत्नों से देश को विदेशी शासन से मुक्त करने के लिए नौजवानों का दिल उबाल खाने लगा जिसके फलस्वरूप सशस्त्र क्रान्ति का भी सूत्र-पात हो गया। यों इसकी शुरूआत पूना मे रैण्ड हत्या-काड से ही हो चुकी थी। अक्तूबर, १८९६ मे पूना मे प्लेग फैला। लोग धड़ाधड़ मरने लगे। एक तो इससे लोगों की रक्षा के प्रबन्ध का अभाव था। दूसरे, लोग अस्पतालों मे जाने और टीका लगवाने से हिचकते थे। प्लेग की रोक-थाम के लिए सरकार ने १७ फरवरी, १८९७ को रैण्ड को विशेष अधिकारी नियुक्त किया जो सतारा के सहायक जिला मजिस्ट्रेट के रूप मे अपनी कठोरता के लिए विख्यात हो चुका था। रैण्ड ने इंग्लैण्ड से आने वाले आदेशों का पालन कठोरता से करना आरम्भ किया। अंग्रेजों को अपने व्यापार की चिंता थी। लोकमान्य तिलक ने रैण्ड के जालिमाना तरीकों का विरोध कस कर करना आरम्भ किया लेकिन "अंग्रेजों ने उनकी चेतावनी पर ध्यान न दिया। पृथक्करण शिविरो ( सिग्रेशन कैम्प ) मे लोगो की मुसीबतें उत्तरोत्तर अधिकाधिक असह्य होने लगी। प्लेग का पता लगाने के लिए बनाये गये परीक्षणगृह अपमान के केन्द्र हो गये। प्लेग-पीडित व्यक्ति के सम्बन्धियों की मुसीबत का कोई ठिकाना न रहा। छूत की बीमारी के चिह्न से चिह्नित मकान मे

रोग के कीटाणु नष्ट करनेवालों का दल जब घुसता तो मालूम पड़ता कि डकैतों और लुटेरों के दल ने आक्रमण किया है।''*

इस जुल्म और सितम का परिणाम यह हुआ कि जिस समय रैण्ड सम्राज्ञी की रजत जयन्ती के समारोह के सिलसिले में आयोजित दावत से लौट रहे थे, उस समय उनकी हत्या कर दी गयी। यह राजनीतिक हत्या थी। अंग्रेजों ने इस दृष्टि से ही इसे देखा। उन्होंने इसे षड़यन्त्र का परिणाम बताया। अंग्रेज भक्तों ने उनकी हाँ में हाँ मिलायी। लोकमान्य तिलक इसकी लपेट में ले लिये गये। ''२७ जुलाई को ताजीरात हिन्द की धारा १२४ ए के अन्तरगत बम्बई के चीफ प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट की अदालत में उनके विरुद्ध अभियोग-पत्र दाखिल कर दिया गया और गिरफ्तारी तथा तलाशी के लिए वारट जारी कर दिये गये। वारट जारी करने का काम गुप्त रखा गया। यद्यपि यह ज्ञात था कि तिलक बम्बई में हैं, तथापि काफी रात गये तक वारंट उन पर तामील नहीं किया गया।''† रात को उन्हें हिरासत में लिया गया। १४ सितम्बर को राजद्रोह के अभियोग में उन्हें अट्ठारह मास की कडी कैद की सजा दी गयी। प्रिवी कौंसिल में अपील करने की इजाजत नहीं मिली और लोकमान्य तिलक को सजा भुगतनी पड़ी। मुकदमे के दौरान में जनता में व्यापक जोश फैल गया था। सहायता कोष के लिए प्रकाशित अपील का असर न केवल महाराष्ट्र पर बल्कि उसकी सीमा से बाहर बंगाल आदि में भी हुआ। 'अमृत बाजार पत्रिका' के सम्पादक शिशिर कुमार घोष और मोती लाल घोष तथा बंगाल के लोकप्रिय नेता सुरेन्द्रनाथ बनर्जी प्रभृति ने तिलक की पर्याप्त सहायता की। पैरवी के लिए कलकत्ता से बैरिस्टर भेजे गये। दोनों प्रान्त एक सूत्र में आबद्ध हो गये।

इस पृष्ठ-भूमि में ही लार्ड कर्जन ने सन् १९०५ में बंगाल को दो भागों में विभक्त कर दिया। एक भाग पश्चिमी बंगाल और बिहार का बना और दूसरा पूर्वी बंगाल और आसाम का। यह 'फूट डालो और राज करो' की नीति का ही परिणाम था। पश्चिमी बंगाल राजनीतिक क्रियाशीलता का केन्द्र था। पूर्वी बंगाल में मुसलमानों की आबादी अधिक थी। उन्हें अधिक सुविधाएं

---

* एन सी० केलकर—'लाइफ एण्ड टाइम्स आव लोकमान्य तिलक'—पृ० सं० ३५८

† एन० सी० केलकर—'लाइफ एण्ड टाइम्स आव लोकमान्य तिलक'—पृ० सं० ३७१

देकर राजनीतिक आन्दोलनों से पृथक रखने की गरज से ही लार्ड कर्जन ने बंगाल का विभाजन किया था। लेकिन कर्जन की आशा पूर्ण न हुई। २० जुलाई, सन् १९०५ को बंगभंग की घोषणा हुई और ७ अगस्त, १९०५ को उसका सक्रिय विरोध आरम्भ हो गया। इस दिन कलकत्ते में हड़ताल हुई और बहुत बड़ा जलूस निकाला गया। जलूस में शामिल लोगों की संख्या इतनी अधिक थी कि एक स्थान पर सभा न की जा सकी। जलूस तीन भागों में बाँट दिया गया और तीन सभाएँ हुई जिनमें सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने जोरदार भाषण किये। विद्यार्थी समाज क्षोभ से पागल हो गया। उसने विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार आन्दोलन छेड़ दिया। कोई छात्र विदेशी कपड़ा पहन कर निकलता तो उसका कपड़ा फाड़ दिया जाता। रिपन कालेज में परीक्षा के समय प्राप्त विदेशी कागज और कापियाँ तक छात्रों ने फाड़ डाली। "जहाँ जनता में व्यापक और जबरदस्त आन्दोलन आरम्भ हुआ, वहाँ सरकार ने भी उग्रता से दमन शुरू कर दिया। एक ओर जलूस, सभा तथा अन्य प्रदर्शन किये जाते थे, दूसरी ओर सरकार उन्हें रोक देती थी। हड़तालें होती थीं। विद्यार्थी तथा नागरिक एक सी सजा पाते थे। शिक्षण संस्थाओं के नियम और भी कठोर कर दिये गये तथा विद्यार्थियों को राजनीति में भाग लेने से रोक दिया गया। पूर्वी बंगाल के लेफ्टिनेण्ट गवरनर सर बैमफील्ड फुलर ने बड़े-बड़े प्रतिष्ठित नागरिकों को बुलाकर धमकी दी कि 'सम्भव है खून खराबी करनी पड़े।' इसके साथ पूर्वी बंगाल में गोरखा पलटन के आने की भी घोषणा की गयी।...सरकार के दमन का देश में उलटा असर हो रहा था। पूरे भारत ने बंगाल के प्रश्न को अपना प्रश्न बना लिया था। प्रत्येक प्रान्त ने बंगाल के प्रश्न के साथ अपनी समस्याओं को जोड़ कर आंदोलन को और ज्यादा गहरा रंग दे दिया। 'कैनल कालोनाइजेशन बिल' ने पंजाब के सैनिक प्रदेश में जनता के अंदर एक नया तूफान खड़ा कर दिया जिसके सिलसिले में लाला लाजपतराय और सरदार अमरसिंह को देश निकाले की सजा दी गयी" *

प्रारम्भिक दिनों में कांग्रेस उदासीन रही। सन् १९०५ में बनारस में गोपाल कृष्ण गोखले के सभापतित्व में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ जिसमें किसी प्रकार की ठोस कारवाई करने का निश्चय नहीं हुआ था। कांग्रेस में ही इसकी गहरी प्रतिक्रिया हुई। अगले अधिवेशन के लिए जो सन् १९०६ में कलकत्ता में हुआ, बंगाल के उग्र और तरुण प्रतिनिधियों ने अध्यक्ष

* पट्टाभि सीतारमय्या—'कांग्रेस का इतिहास' खंड १, पृ० संख्या ६४-६९

पद के लिए लोकमान्य तिलक का नाम पेश किया। बंगाल के प्रसिद्ध नेता और प्रभावशाली वक्ता विपिनचन्द्र पाल ने चेतावनी भी दी। कांग्रेस में उदार और उग्र पंथियों के बीच रेखा खिंच गयी। किसी तरह यह विभेद मिटा और दादा भाई नौरोजी अध्यक्ष चुन लिये गये। तिलक उनका विरोध नहीं करना चाहते थे, क्योंकि उन्हें नौरोजी के विवेक पर विश्वास था। नौरोजी ने भी इस विश्वास पर आघात नहीं पहुँचने दिया। उन्होंने राष्ट्रीय सम्मान पर आघात पहुँचाने वाला रुख अख्तियार करने से इनकार कर दिया और उग्र पंथियों के विचारों और लक्ष्य से सहमति प्रकट की। फलतः इस अधिवेशन में 'स्वशासन' का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। सरकार और भी जल-भुन उठी। दमन ने उग्र रूप धारण कर लिया।

विपिनचन्द्र पाल अपने व्यक्तित्व और सहयोगियों के बल पर सन् १९०६ में अंग्रेजी शिक्षा एवं विदेशी बहिष्कार का आन्दोलन आरम्भ कर चुके थे। उन्हें अरविंद बाबू का सहयोग भी मिल गया था। उनका तूफानी दौरा जारी था। बंगाल में ही नहीं सारे देश में इसका व्यापक प्रभाव हुआ। १९०७ में कांग्रेस ने भी विदेशी बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा के प्रचार पर ठोस रूप से अमल करना आरम्भ कर दिया। महाराष्ट्र में भी यह आंदोलन भड़क उठा। सन् १८९७ में तिलक पर चलने वाले मुकदमें के दौरान में बंगाल ने महाराष्ट्र की जो मदद की थी, महाराष्ट्र ने उसका पूरा-पूरा बदला चुकाया। इसके अतिरिक्त मध्यप्रान्त, पंजाब आदि में भी स्वदेशी का आंदोलन जोरों से उमड़ पड़ा।

१९०७ में कांग्रेस का अधिवेशन डा० रासबिहारी घोष की अध्यक्षता में सूरत में हुआ।

बंगाल में युवकों को संघटित करने वाले नौ नेता निर्वासित कर दिये गये। दमन-नीति से पोषण पाकर राष्ट्रीय अभ्युत्थान क्रमशः बलशील होने लगा। उग्रपंथियों ने अपना संघटन अलग कर लिया और तेजी के साथ अपने विचारों का प्रचार करने लगे। सरकार ने सन् १९०८ में राजद्रोही सभा बंदी कानून और प्रेस कानून पास कर के दमन को भी उग्र कर दिया। राष्ट्रीय पत्र धड़ाधड़ जब्त किये जाने लगे। सम्पादकों पर मुकदमे चला कर उन्हें सजाएँ दी गयी। सभा-बन्दी बिल पर बहस करते हुए गोपाल कृष्ण गोखले ने सरकार को चेतावनी दी थी कि 'युवक हाथ से निकलते जा रहे हैं। हम उन्हें वश में न रख सके तो हमें दोष मत देना।' हुआ भी यही। सन् १९०८ में "मुजफ्फरपुर में दो स्त्रियों श्रीमती और कुमारी कैनडी पर दो बम गिरे। ये

बम जिला जज किंग्स फोर्ड को मारने के लिए बनाये गये थे। इस राजनीतिक हत्या-काण्ड के अपराध में ही १८ वर्षीय युवक खुदीराम बोस फांसी पर चढ़ा दिया गया।.....स्वामी विवेकानन्द के भाई युवक भूपेन्द्रनाथ दत्त के सम्पादकत्व में निकलने वाले 'युगान्तर' के स्तम्भों मे खुल कर हिंसावाद का प्रचार किया जाने लगा। इस युवक को सजा देकर कैदखाने में डाल दिया गया... महाराष्ट्र मे १३ जुलाई, १९०८ को लोकमान्य तिलक राजद्रोह के अपराध मे गिरफ्तार कर लिये गये और पॉच दिनों की सुनवाई के बाद उन्हे ६ वर्ष का निर्वासन दंड दिया गया।"*

यह जमाना वाइसराय लार्ड मिंटो का था। उनके दमन ने जनता को कुचल दिया। प्रत्यक्ष आन्दोलन ठढा पड़ने लगा और उसका स्थान गोली और पिस्तौल के अप्रत्यक्ष आन्दोलन ने लेना आरम्भ किया। देश मे ही नहीं, बाहर भी इसका असर हुआ। मदनलाल धीगडा नामक युवक ने लन्दन की एक सभा मे सर कर्जन वाइली का खून कर दिया और स्वय फॉसी के तख्ते पर झूल गया। धींगरा लन्दन की भारतीय सस्था 'इडिया होम रूल सोसाइटी' के सदस्य थे।

भारतीय युवकों की स्वदेश-भक्ति का यह इतिहास कम रोमाचकारी नहीं है। पूना मे रैंड की हत्या के बाद वहॉ बहुत आतक फैलाया गया। पुलिस ने इस सिलसिले में ही कठियावाड़ के एक धनी परिवार के श्याम जी कृष्ण वर्मा नामक युवक को भी फसाना चाहा। पुलिस के चंगुल से बचने के लिए यह लदन चले गये। यहाँ सन् १९०५ मे उन्होंने 'इण्डिया होमरूल सोसाइटी' की स्थापना की। संस्था का उद्देश्य भारतीयों की माँग के पक्ष मे इंग्लैंड के जनमत को जागरित करना था।

थोड़े ही दिनों में 'इण्डिया होमरूल सोसाइटी' का कार्यालय उन देशभक्त भारतीय युवकों का केन्द्र हो गया जो इंग्लैण्ड मे थे। इनमे विनायक दामोदर सावरकर भी शामिल रहे जो आज हिन्दू महासभा के नेता हैं।

श्याम जी कृष्ण वर्मा की सक्रियता अंग्रेजों की निगाह मे खटकी। पार्लिमेण्ट में उनकी काररवाई पर प्रश्न पूछे गये। इन्होने एक पत्र भी प्रकाशित कर रखा था। लन्दन मे भी वातावरण प्रतिकूल देख कर आप पेरिस चले गये। अंग्रेज सरकार ने लन्दन से प्रकाशित होने वाले इनके पत्र के सम्पादक पर मुकदमा चला कर उसे सजा दी (१९०९)। सन् १९०८ में

---

* पट्टाभी सीतारमय्या—'कांग्रेस का इतिहास' खण्ड १, पृष्ठ संख्या ६६।

'इण्डिया होम रूल सोसाइटी' में बड़ी धूमधाम से '१८५७ विद्रोह दिवस' मनाया गया था। सावरकर को सन् १९१० में भारत भेज दिया गया। राजद्रोह के अपराध में उन पर मुकदमा चला और आजीवन कारावास की सजा सुनायी गयी। २३ दिसम्बर, सन् १९१२ को भारत के तत्कालीन वाइसराय लार्ड हार्डिज पर दिल्ली के चाँदनी चौक में बम फेंकने का प्रयास किया गया। दो वर्ष बाद १९१४ में दिल्ली षड्यंत्र केस चला और इसके कथित अभियुक्त देश-भक्त भारतीय मास्टर अमीरचन्द, अवध बिहारी और भाई बालमुकुंद शहीद हुए।

यूरोप में युद्ध के आसार देख कर विदेशों में फैले भारतीयों का जोश उमड़ पड़ा। अंग्रेजों से बदला लेने के लिए उन्होंने जो प्रयास किया उसकी झलक दिखाई जा चुकी है। यह कार्य यूरोप तक ही सीमित न रहा। सन् १९११ में लाला हरदयाल ने अमेरिका में भी भारत की आजादी की लड़ाई की योजना बनायी। जीविका की तलाश में प्रायः १५ हजार भारतीय अमेरिका और कनाडा में बसे हुए थे। लाला हरदयाल ने इनका संघटन किया और सन् १९१३ में कैलिफोर्निया में 'गदरपार्टी' की स्थापना की। इस कार्य में बाबा जवालासिंह, सोहनसिंह, केहरसिंह, कर्तारसिंह, और जगतराम इनके सहयोगी थे।

प्रथम महायुद्ध से पूर्व कनाडा ने यह घोषणा की थी कि भारतीय कनाडा में न बसने दिये जाँयगे। सिंगापुर के बाबा गुरुदत्तसिंह ने कनाडा सरकार के आदेश को अपमान समझा। उन्होने गुरु नानक स्टीम नेवीगेशन कम्पनी की स्थापना की। कम्पनी ने 'कोमागाता मारू' नामक जापानी जहाज को ठीके पर लिया। इस जहाज पर कलकत्ता में ३७१ सिख और २१ पंजाबी मुसलमान सवार हुए और जहाज २३ मई, सन् १९१४ को वान कूवर पहुँच गया। कनाडा सरकार ने अपना आदेश लागू करने के लिए बन्दरगाह पर पुलिस दल भेजा। जहाज के यात्रियो से इसकी मुठभेड हुई। अत में जहाज के लोग लंगर उठाने पर मजबूर हो गये। जहाज क्षोभ से भरे भारतीयो को ले कर भारत की ओर रवाना हुआ। इनकी गतिविधि पर नियंत्रण रखने के लिए भारत सरकार ने 'इम्रेस' आर्डिनेन्स जारी किया।

२९ सितम्बर को 'कोमागाता मारु' बजबज पहुँचा। अंग्रेजी हुकूमत के गुर्गे वहाँ पहले से ही मौजूद थे। उन्होंने यात्रियों को हुक्म दिया कि रेल-गाड़ी खड़ी है। इस पर सब लोग सवार हो जाँय। वे पञ्जाब पहुँचा दिये जाँयगे। यात्रियों ने इसे अपना अपमान समझा। उन्होंने कलकत्ता में घुसने की चेष्टा की। इस पर उनका रास्ता रोका गया तो जम कर युद्ध हुआ। १८ सिख

घटना स्थल पर मर गये। कुछ भाग गये। कुछ पकड कर नजरबन्द कर दिये गये। ७७ व्यक्ति जेलों मे ठूस दिये गये। बाबा गुरुदत्तसिंह फरार हो गये। सात वर्षों तक इस दशा मे रहने के बाद सन् १६२१ मे आपने महात्मा गांधी के निर्देश पर आत्म-समर्पण कर दिया।

'कोमागाता मारु' के यात्रियों के विद्रोह की खबर बिजली की भाँति विदेशों मे रहने वाले भारतीयों तक पहुँच गयी। इनमे अनेक क्रान्तिकारी थे जिनका सम्बन्ध भारत के प्रसिद्ध क्रातिकारी नेता और दिल्ली षड़यन्त्र केस के मुखिया रासबिहारी बोस से पहले से ही था। ये अपने ढग से काम कर रहे थे। यूरोप मे युद्ध शुरू होते ही ये भारत मे शस्त्रास्त्र भेजने की व्यवस्था मे लग गये। इसके फलस्वरूप विष्णु गणेश पिंगले नामक पूना-निवासी युवक और उसका साथी सत्येन्द्र सेन अमेरिका से भारत आये। भोलानाथ चटर्जी नामक युवक बंकाक आदि के क्रान्तिकारियों से सम्पर्क स्थापित करने के लिए वहाँ भेजा गया। लाला हरदयाल जरमनी में पहुँच चुके थे और वहाँ उन्हे जर्मनी का उपराष्ट्र मत्री बना दिया गया था। यतीन्द्रनाथ लाहिडी उनसे और जापान से सहायता प्राप्त होने का वचन लेकर भारत लौटे।

इनकी योजना थी कि विदेशों से प्राप्त सहायता से भारत मे रेलवे पुल आदि उडा दिये जॉयगे और भारत के क्रातिकारी सेना को भडका कर बगावत कर देगे।

क्रातिकारियों के एक दूसरे दल ने रंगून मे शस्त्रास्त्र संग्रह-कार्य आरम्भ किया। तुर्की से भी सहायता प्राप्त करने की चेष्टा जारी थी।

पचमागियों ने क्रान्तिकारियों की सारी कोशिशें बेकार कर दी। उनसे प्राप्त समाचारो के आधार पर अंग्रेजो ने चारों ओर मोर्चे बन्दी कर ली। २१ फरवरी, सन् १६१५ विद्रोह का दिन मुकर्रर था। इससे दो दिन पूर्व पुलिस ने रासबिहारी बोस के लाहौर-स्थित सदर कार्यालय पर छापा मारा। बहुत से काग-जात उसके हाथ लगे और देश-व्यापी षड़यन्त्र का भंडा फूट गया। देश के विभिन्न भागों मे कुल मिला कर भारत के लगभग नौ क्रान्तिकारी दलों के प्रायः डेढ़ सौ व्यक्तियों पर विशेष अदालतों मे मुकदमे चलाये गये। इस मुकदमे को लाहौर षड़यन्त्र केस (प्रथम) कहा गया। २८ व्यक्तियों को फाँसी की सजा दी गयी। ८० व्यक्तियो को आजीवन कारावास का दण्ड मिला और २६ व्यक्ति रिहा कर दिये गये।

इसी प्रकार मनीला, बकाक और रंगून में जमा क्रान्तिकारियों का प्रयत्न

भी विफल हो गया। हजारों राइफल, पिस्तौलें, कारतूस और हथगले जहाजों में भरे थे जो भारत आने वाले थे। लेकिन रंगून आदि में क्रान्तिकारियों की गिरफ्तारी के कारण सारी योजना विफल हो गयी और विदेशों से सहायता प्राप्त कर के सारे देश में सशस्त्र-क्रान्ति करने का प्रयास ठप पड़ गया। इसके बाद कई क्रान्तिकारी नेता विदेशों में चले गये जिनमें रासबिहारी बोस भी थे। द्वितीय महायुद्ध के समय जापान में इनकी मुलाकात सुभाषचन्द्र-बोस से हुई जिनके शौर्य का विवरण यथास्थान मिलेगा।

# गांधी-युग का आरम्भ

**मार्ले-मिण्टो सुधार—होमरूल लीग—बंग-भंग की घोषणा वापस—यूरोप में महासमर-युद्ध में भारत की सहायता—मुसलिम लीग—कांग्रेस-लीग समझौता—होमरूल आन्दोलन की तेजी—मांटेगू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट—रौलट कमीशन और दमनकारी कानून—अद्भुत जन जागृति—पंजाब हत्याकाण्ड—बहिष्कार आन्दोलन—खिलाफत सम्मेलन—मोपला—विद्रोह—हिन्दू-मुसलिम एकता—चौरी-चौरा काण्ड—सत्याग्रह स्थगित—गांधी जी को छः वर्ष का कैद—स्वराज्य पार्टी की स्थापना—आतंकवादी मैदान में—चुनाव में सफलता—साम्प्रदायिक दंगे।**

ब्रिटिश सरकार का दमन-चक्र भारतियों का हौसला पस्त न कर सका। बंग भंग आन्दोलन किसी न किसी रूप में जारी रहा, यद्यपि तीव्रता उसकी कम हो गयी थी। इस स्थिति का लाभ उठाने के लिए भारत सरकार ने कूट-नीति का सहारा लिया और १९०९ के मार्ले-मिण्टो सुधारों की घोषणा कर के भारत को गुमराह करना चाहा। मार्ले साहब भारत मन्त्री थे और मिण्टो वाइसराय।

१९०९ का सुधार 'इण्डिया कौंसिल एक्ट' के रूप में सामने आया। इसके अनुसार इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल और प्रान्तीय लेजिस्लेटिव कौंसिल (विधान परिषद) में सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गयी। इम्पीरियल (केन्द्रीय) कौंसिल के सदस्यों की संख्या २१ से बढ़ा कर साठ कर दी गयी। पंजाब और बरमा की कौंसिलों के सदस्यों की संख्या तीस तथा अन्य प्रान्तों की कौंसिलों के सदस्यों की संख्या पचास निर्धारित हुई। व्यवस्था की गयी कि प्रत्येक कौंसिल में तीन वर्ग के सदस्य होंगे—(१) नामजद (२) निर्वाचित (३) सरकारी कर्मचारी। केन्द्रीय कौंसिल में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत न होने दिया गया। आर्थिक मामलों पर उन्हें बहस करने का अधिकार दिया गया लेकिन छूछा, क्योंकि वे 'वोट' न दे सकते थे। अतः आन्दोलन जारी रहा। इसी समय मद्रास में 'होमरूल लीग' की स्थापना हुई।।

इन सुधारों का कोई प्रतिफल नजर न आया; क्योंकि इनसे वस्तुस्थिति

में अन्तर न पड़ा। कांग्रेसी नेताओं में केवल गोखले सदृश लोगों का कुछ समर्थन सरकार को अवश्य प्राप्त हुआ।

सन् १९१० में मिण्टों के स्थान पर लार्ड हार्डिंज की नियुक्ति हुई। हार्डिंज ने भी अपने पूर्व-वर्ती वाइसराय के चरण-चिन्हों पर चलना आरम्भ किया लेकिन इसी समय घटनाओं ने पलटा खाया। ब्रिटेन के सम्राट सप्तम एडवर्ड की मृत्यु हो गयी। राजगद्दी उनके पुत्र जार्ज पंचम को प्राप्त हुई। १९११ में जार्ज पंचम ने भारत का भ्रमण किया। इसी समय 'राज्याभिषेक महोत्सव' के नाम पर बंग-भंग की लार्ड कर्जन की घोषणा रद्द कर दी गयी लेकिन स्थिति यथावत् नहीं हुई। पहले बिहार को पश्चिमी बंगाल के साथ मिलाया गया था और पूर्वी बंगाल को आसाम के साथ। नयी घोषणा के बाद बिहार को छोटा नागपुर के साथ मिला दिया गया और बंगाल-आसाम पृथक पृथक कर दिये गये। इस प्रकार तीन नये प्रान्त अस्तित्व में आये। यह कांग्रेस की प्रथम विजय थी। सम्भव था कि जो सुधार हुए थे उनका क्रम बॉधने में तुरन्त ही कांग्रेस कुछ अधिक सफल होती लेकिन शीघ्र ही अंग्रेजों को दमन करने का एक नया बहाना मिल गया। सन् १९१२ में दिल्ली में लार्ड हार्डिंज पर बम फेंकने की घटना ने अंग्रेज हुकूमत का रुख प्रतिहिंसात्मक कर दिया। इसका विवरण दिया जा चुका है।

जुलाई, सन् १९१४ में यूरोप में महासमर छिड़ गया। इसके बाद कांग्रेस की हालत विचित्र थी। कोई भी प्रभावशाली नेता मैदान में न था। फरवरी, १९१५ को गोखले चल बसे थे। इसी वर्ष नवम्बर में फिरोजशाह मेहरा भी इस दुनिया से कूच कर गये। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी नयी विचार-धारा से खिंचे थे। पण्डित मदन मोहन मालवीय उदार रह कर कांग्रेस का नेतृत्व कर सकने की स्थिति में न थे। मोहनदास कर्मचन्द गाधी जो बाद में महात्मा गाधी के नाम से प्रसिद्ध हुए और जिनके नेतृत्व में सन् १९४७ में देश ने स्वतन्त्रता अर्जित की, अफ्रिका में भारतीयों के अधिकारों के लिए संघर्ष करके भारत में आये ही थे। लाला लाजपत राय निर्वासित थे और अमेरिका में रह रहे थे। सन् १९१४ में नरम और गरम दल को मिलाने का श्रीमती बेसेण्ट का उद्योग विफल हो चुका था। लोकमान्य तिलक जो जून, सन् १९१४ में माण्डले में ६ वर्ष की सजा पूरी कर के भारत आये थे, 'होमरूल' का आन्दोलन चलाने में लगे थे जिसमें उनको सफलता नहीं मिल रही थी। फलतः कांग्रेस का नेतृत्व उन लोगों के हाथ में ही रहा जो प्रस्ताव पास करने की रस्म अदा करना तो जानते थे लेकिन जिनके सामने कोई निश्चित कार्यक्रम न था।

सन् १६१४ में यूरोप में महासमर आरम्भ होने के कुछ समय बाद वाइसराय चेम्सफोर्ड ने युद्ध मे भारत की सहायता प्राप्त करने के लिए भारतीयों की एक सभा बुलाई जिसमें यह प्रस्ताव पेश किया गया कि युद्ध मे ब्रिटिश सरकार की सहायता के कार्य मे भारतीय सक्रिय रूप मे भाग ले।

१६१५ मे बम्बई मे सत्येन्द्र प्रसन्नसिंह की अध्यक्षता में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इसमे कुल बाइस प्रस्ताव स्वीकृत हुए। 'पॉचवे प्रस्ताव द्वारा जनता की राजभक्ति प्रकट की गयी। छठवे प्रस्ताव द्वारा उस पुनीत कार्य में दृढ़ विश्वास प्रकट किया गया जिसे ग्रेट ब्रिटेन तथा उसके मित्र-राष्ट्र महायुद्ध कर के सिद्ध करने जा रहे थे।' * इस अधिवेशन की एक विशेषता यह भी थी कि गांधी जी विषय समिति के सदस्य न चुने जा सके। इसका कारण स्पष्ट नहीं हुआ।

वाइसराय राय द्वारा बुलायी गयी सभा में सहायता-सम्बन्धी प्रस्ताव का गाधीजी ने समर्थन किया था और कहा कि "साम्राज्य की हिस्सेदारी हमारा निश्चित लक्ष्य है। हमे योग्यतानुसार अधिक से अधिक कष्ट उठाना चाहिये और साम्राज्य की रक्षा मे अपनी जान तक दे देनी चाहिये।... साम्राज्य नष्ट हो जाता है तो उसके साथ हमारी अभिलाषाएँ भी नष्ट हो जाती है।...अतः साम्राज्य की रक्षा के कार्य मे सहयोग देना स्वराज्य प्राप्ति का सरलतम और सीधा मार्ग है।" † अस्तु, संकट-काल में कांग्रेस ने अपना क्रोध भुला दिया। अंग्रेजो ने देश के कोने कोने से ब्रिटिश सरकार के सहातार्थ धन एकत्र किया गया और लगभग दस लाख व्यक्ति सेना में भर्ती हुए चन्दा वसूलने और फौज की भर्ती मे बहुत ज्यादती और जुल्म हुए। ‡ सशस्त्र क्रान्ति मे विश्वास रखने वालों ने अपना प्रयत्न जारी रखा जिसका उल्लेख किया जा चुका है।

भारत द्वारा की गयी सहायता की प्रशंसा करते हुए ब्रिटेन के तत्कालीन प्रधान मंत्री लायड जार्ज ने कहा था—"मुसीबत के समय भारत ने अपनी इच्छा से युद्ध में जो अमूल्य सहायता प्रदान की है, वह युद्ध के बाद भुलायी न जायगी...शान्ति सम्मेलन के समय भारत की आवश्यकताओं पर ध्यान दिया जायगा।" लेकिन ब्रिटिश सरकार ने अपना वादा पूरा नहीं किया। युद्ध की

---

* पट्टाभि सीतारमय्या—'कांग्रेस का इतिहास खण्ड १,—पृ०सं० १००

† 'स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स आव एम० के० गान्धी' पृ० सं० ४१२

‡ डा० राजेन्द्र प्रसाद—'बापू के कदमों में' पृष्ठ सं० ६९

समाप्ति के बाद उसने विशुद्ध पैशाचिक नीति अपना कर भारत को पूर्णतः कुचल देना चाहा।

युद्ध-काल में शांति बनाये रखने के लिए सरकार ने नागरिक स्वतन्त्रता का अपहरण करने वाले जो जलिमाना प्रतिबन्ध लगाये थे, उन्हें जारी रखने के लिए इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल में प्रसिद्ध 'रौलट बिल' पेश किया गया जिसने पंजाब हत्याकांड की सृष्टि की।

सन् १९१६ में कांग्रेस का अधिवेशन लखनऊ में हुआ जिसके अध्यक्ष अम्बिकाचरण मजूमदार थे। इस अधिवेशन को हिन्दू-मुसलिम एकता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माना गया, क्योंकि इसमें मुसलिम लीग ने भाग लिया था।

बंगभंग के समय हिन्दू-मुसलिम झगड़ा लगाकर लार्ड कर्जन ने अपना उल्लू सीधा करना चाहा था। इस उद्देश्य में उन्हें सफलता नहीं मिली किन्तु फिर भी कुछ तोताचश्म अंग्रेजों को मिल ही गये। ३० सितम्बर, १९०६ में ढाका के नवाब सलिमुल्ला ने मुसलिम नेताओं की सभा बुलायी थी और उसमें अखिल भारतीय मुसलिम संघ ( आल इंडिया मुसलिम कानफेडरेसी ) कायम करने का प्रस्ताव रखा था। इस सभा के अध्यक्ष नवाब बकारुल मुल्क थे। इसमें ही प्रस्ताव स्वीकार करके मुसलिम लीग की स्थापना की गयी थी। इस अवसर पर अध्यक्ष तथा उनके साथियों ने खूब कस कर साम्प्रदायिक जहर उगला था। लीग का प्रथम अधिवेशन कराची में हुआ था जिसमें उसके लक्ष्यों की घोषणा की गयी थी जो मुख्यतः इस प्रकार थे (१) भारतीय मुसलमानों के राजनीतिक और अन्य अधिकारों की रक्षा करना, (२) अंग्रेज सरकार के प्रति मुसलमानों में निष्ठा उत्पन्न करना। इसके पोषकों में आगा खाँ भी रहे। सन् १९१३ में लीग ने कांग्रेस के निकट आना आरम्भ किया। सन् १९१५ में वह श्रीमती बेसेंट के 'होमरूल आन्दोलन' से भी सहमत हुई और सन् १९१६ में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में उसने भाग लिया। शासन के सुधार के सम्बन्ध में कांग्रेस और लीग में समझौता हुआ और इससे सम्बद्ध प्रस्ताव अधिवेशन में स्वीकृत हुआ।

इस समय तक श्रीमती 'बेसेंट का' होमरूल आन्दोलन काफी जोर पकड़ चुका था। उग्रपन्थी 'विधानवादी' जी-जान से उसे आगे बढ़ाने में लगे हुए थे। पंजाब के अतिरिक्त देश के सभी प्रान्तों में आन्दोलन की शाखाएं स्थापित हो चुकी थीं। इसके बढ़ते हुए प्रभाव का एक परिणाम यह भी हुआ कि लखनऊ में कांग्रेस में नरम और गरम दल वाले मिल गये।

सन् १९१७ में 'होमरूल' आन्दोलन अपनी जवानी पर आ गया। हर

जगह झुण्ड के झुण्ड विद्यार्थी इसकी ओर आकृष्ट होने लगे। श्रीमती बेसेंट ने इसके व्यापक प्रचार के लिए 'न्यू इण्डिया' नामक दैनिक और 'कामनवील' नामक साप्ताहिक पत्र भी निकाले। सरकार का दमन-चक्र भी तेजी से जारी था जिसकी चपेट मे ये दोनों पत्र आ गये। "प्रेस और पत्र के लिए बीस हजार की जमानत माँगी गयी और वह जब्त भी कर ली गयी।" ❀ फिर दूसरी जमानत माँगी गयी। कारण यह था कि श्रीमती बेसेंट के लेख बड़े जोशीले होते थे और उनमे अंग्रेजों की 'अफसर शाही' का विरोध एवं भारत को बर्बादी से बचाने' का समर्थन खुल कर धड़ल्ले से किया जाता था।

अंग्रेज सरकार द्वारा किये जाने वाले दमन के कारण 'होमरूल' आंदोलन का प्रभाव दिन-दूना रात चौगुना बढ़ने लगा। शीघ्र ही यह प्रभावशाली ढंग से सामने भी आ गया। दिसम्बर, सन् १९१७ मे कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ता मे हुआ और श्रीमती बेसेंट अध्यक्षा चुनी गयी। एक वर्ष पूर्व ही अर्थात् १९१६ मे अम्बिकाचरण मजूमदार की प्रतिद्वन्द्विता मे उनकी हार हुई थी। उन्हे २५ और मजूमदार को ६१ मत प्राप्त हुए थे।

उपर्युक्त चुनाव से पूर्व १५ जून, सन् १९१७ को श्रीमती बेसेंट और उनके सहयोगी अरण्डेल और वाडिया साहब की नजरबन्दी का हुक्म जारी हुआ और वे कोयम्बटूर और उटकमण्ड मे नजरबन्द कर दिये गये। इस कारवाई ने घृताहुति का-सा काम किया। आंदोलन दावानल की तरह धधक उठा। मुसलिम लीग के नेता जिना भी मैदान मे आ गये। कांग्रेस सत्याग्रह आंदोलन करने पर विचार करने लगी। इस पर माण्टेगु ने जो बाद में भारत मंत्री भी हुए, अपनी डायरी मे लिखा—"शिव ने अपनी पत्नि के ५२ टुकड़े कर दिये थे परन्तु अंत में उन्हें पता चला कि एक नहीं ५२ पार्वती मौजूद हैं। वास्तव में यही बात भारत सरकार पर घटी जब उसने श्रीमती बेसेण्ट को नजरबन्द किया।†"

लीग, कांग्रेस और होमरूल आंदोलकारियों को मिलते देख कर भारत सरकार थर्रा गयी। उसने श्रीमती बेसेण्ट को रिहा किया। माण्टेगु भारत मत्री बनाये गये। अगस्त के महीने मे उन्होंने घोषणा की—"सम्राट की सरकार की यह नीति है और उससे भारत सरकार सहमत है, कि भारत के शासन के प्रत्येक विभाग में भारतीयों का सम्पर्क उत्तरोत्तर बढ़े और उत्तरदायी शासन

---

❀ पट्टाभी सीतारमय्या—'कांग्रेस का इतिहास' खंड १,—पृष्ठ संख्या १०८।

† " " " " " " १०९।

प्रणाली का धीरे-धीरे विकास हो जिससे अधिकाधिक प्रगति के साथ भारत में स्वशासन-प्रणाली कायम हो और वह ब्रिटिश साम्राज्य के अंग के रूप मे रहे।"

जिस समय होमरूल आन्दोलन अपनी उन्नति के शिखर पर था, गांधी जी उससे अलग थे। राजेन्द्र बाबू ( वर्तमान राष्ट्रपति ) बृजकिशोर बाबू, अनुग्रह बाबू और गोरख बाबू आदि उनके सहयोगी भी उनके साथ थे और ये लोग चम्पारन मे निलहे गोरों के अत्याचार की जाँच के कार्य मे गांधी जी की सहायता कर रहे थे। इस सम्बन्ध में राजेन्द्र बाबू ने लिखा है—"गांधी जी हम लोगों से कहा करते, तुम लोग यह सबसे बड़े होमरूल का काम कर रहे हो। ( यह निष्कर्ष आगे चलकर अक्षरशः सत्य सिद्ध हुआ—ले० )। अगर तुम लोग उस आंदोलन में शरीक न होगे तो कोई हर्ज नहीं है।"*

सन् १९१७ के अंतिम महीनों में माण्टेगु और लार्ड चेम्सफोर्ड (वाइसराय) ने भारत का दौरा किया और उन्होंने राजनीतिक परिस्थिति की जाँच-पड़ताल की। सन् १९१८ में उनकी रिपोर्ट प्रकाशित हुई। इस पर विचार करने के लिए हसन इमाम की अध्यक्षता में २९ अगस्त, १९१८ को बम्बई में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ। चार दिन के वाद-विवाद के पश्चात् कांग्रेस ने अपने आधारभूत सिद्धान्तों को दोहराया और घोषित किया साम्राज्य के अन्तर्गत स्वशासन से कम किसी बात पर भारत को सन्तोष नहीं हो सकता। उसने माण्टेगु रिपोर्ट के इस कथन का भी प्रतिवाद किया कि भारत उत्तरदायी शासन के योग्य नहीं है। दिसम्बर, १९१८ में दिल्ली में कांग्रेस का नियमित अधिवेशन हुआ जिसमें उपर्युक्त घोषणा दोहरायी गयी। इस अधिवेशन की अध्यक्षता के लिए लोकमान्य तिलक को चुना गया था लेकिन उन्होंने लेन्टाइन चिरोल नामक अंग्रेज पर मुकदमा चला रखा था। इस सिलसिले में उन्हें लन्दन जाना था, अतः उन्होंने असमर्थता प्रकट की तो महामना मालवीय जी अध्यक्ष चुने गये।

अंग्रेज सरकार यह सब देख रही थी और भारत में होने वाले दो तरफा आंदोलन—क्रांतिकारी और वैधानिक—पर उसकी दृष्टि थी। दमनकारी कानूनों से उसने क्रान्तिकारियों को कुचलने का प्रयास किया और सुधार द्वारा वैधानिक आंदोलकारियों को भुलावा देने की चेष्टा की। इसके साथ ही भविष्य के लिए भी वह तैयारी करने लगीं ताकि महायुद्ध की समाप्ति के बाद अपनी कुर्बानी के बदले मे भारत की आजादी की मांग करने वाले सबल

* 'आत्मकथा'—पृष्ठ संख्या ९४।

न हो जाँय। उसने सन् १९१७ मे रौलट कमीशन नियुक्त किया। जाहिर तो यह किया गया कि लड़ाई के दौरान में शान्ति बनाये रखने के उपायों का सुझाव देने के लिए कमीशन की नियुक्ति की गयी है लेकिन इरादा यह था कि लड़ाई के बाद कमीशन के सुझावों पर अमल किया जायगा ताकि कोई सिर न उठा सके। हुआ भी यही। लड़ाई समाप्त होने के छः मास के बाद कमीशन की रिपोर्ट सामने आयी। इसकी सिफारिशों के अनुसार सरकार ने दो बिल तैयार किये। "उसमें यह विधान था कि क्रान्तिकारियों के मुकदमे हाई कोर्ट के तीन जजों की अदालत मे पेश हो।...जिन स्थानों मे क्रान्तिकारी अपराध बहुत हो, वहाँ अपील भी न हो सके।...राज्य के विरुद्ध अपराध करने का जिस व्यक्ति पर सन्देह हो, उससे जमानत ले ली जाय"* आदि-आदि। "इनके द्वारा सरकार को बहुत व्यापक और जुल्मी अधिकार मिलते थे। वह जिसको चाहे, बिना अदालत मे गये ही नजरबन्द कर सकती थीं।"†

पहला बिल मार्च १९१९ में पास हो गया। दूसरा रोक लिया गया। जुल्म ढाने के लिए पहला बिल ही कम न था। देश मे इसका प्रचंड विरोध हुआ। "सारे देश मे आवाज उठी कि हिन्दुस्तान ने लड़ाई जीतने मे सरकार की कितनी मदद की और उसका फल काले कानूनों के रूप में सरकार दे रही है।"‡

बिल स्वीकार होने से पूर्व ही गांधी जी ने घोषित कर दिया था कि "रौलट कमीशन की सिफारिशों को अमली रूप दिया गया तो मैं सत्याग्रह छेड़ दूँगा।" इसकी उपेक्षा हुई। सरकार ने बिल स्वीकार कर लिया। गाधी जी मैदान मे आ गये। गांधी-युग शुरू हो गया। उन्होंने सारे देश का दौरा किया। हर जगह उनका स्वागत हुआ। यह देख कर ही सरकार ने दूसरा बिल रोक दिया।

"उस समय की वे विरोधी सभाएँ जो देश के कोने-कोने में हुई, एक नयी जागर्ति और नव-जीवन की द्योतक था। इतनी बड़ी-बड़ी सभाएँ जिनमें सभी वर्ग और जाति के तथा धर्म के लोग इतनी अधिक संख्या में शामिल होते हों, शायद ही पहले कभी देखी गयी थीं।"↑

---

* पट्टाभि सीतारमय्या—'कांग्रेस का इतिहास' खण्ड १—पृ० सं० १२९

† डा० राजेन्द्र प्रसाद—'आत्म कथा'—पृ० सं० ११५

‡ डा० राजेन्द्र प्रसाद—'बापू के कदमों में'—पृ० सं० ७०

↑ डा० राजेन्द्र प्रसाद—'आत्मकथा'—पृ० सं० ११५

सक्रिय विरोध के लिए गांधी जी ने "अहिंसात्मक सत्याग्रह की घोषणा कर दी। छः अप्रैल का दिन उन्होंने सारे देश में उपवास, प्रार्थना और सभा करने के लिए निश्चित किया।...इस दिन की हड़ताल इतनी जबरदस्त हुई कि शायद ही पहले कभी ऐसी हड़ताल देखी गयी हो।" और "छ अप्रैल की हड़ताल और सभाएँ देश में बड़ी सफलता और समारोह के साथ हुईं। दिल्ली मे जो सभा हुई, वह बड़े मार्के की थी। हिन्दू-मुसलिम एकता इतनी बढ़ गयी कि दोनों ने साथ ही साथ गोली खायी। जलूस के नेता स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपना सीना खोल दिया था कि सरकार यदि चाहे तो उन्हें गोली मार दे। मुसलमानों पर इतना असर पडा कि उन्होंने स्वामी श्रद्धानन्द को जुमा मसजिद में ले जा कर वहाँ उनका भाषण कराया।"* ऐसी ही एकता बम्बई आदि में भी दिखाई दी।

यह पहला अवसर था जब गांधी जी ने भारत लौटने के बाद सामूहिक रूप मे कानून तोडने का कार्य-क्रम देश के सामने रखा था।

७ अप्रैल को गाधी जी दिल्ली के लिए रवाना हुए लेकिन दिल्ली से कुछ ही पहले 'पलवल' स्टेशन पर वह गिरफ्तार कर लिये गये। पुलिस की निगरानी में उन्हे वापस बम्बई भेज दिया गया लेकिन इस बीच यह खबर उड़ चुकी थी कि वह किसी अज्ञात स्थान मे भेज दिये गये हैं। बम्बई मे उन्हें देख कर भीड उमड पड़ी। इधर अहमदाबाद मे अनुसूया बेन की जिनका जनता बहुत आदर करती थी, गिरफ्तारी की अफवाह उड़ी। इसकी व्यापक प्रतिक्रिया हुई। सरकारी दफ्तरों में आग लगा दी गयी। टेलीफोन-तार के खम्भे धराशायी कर दिये गये। फौजियों से भरी रेलगाड़ी पटरी पर से उतार दी गयी। यूरोपियनों पर हमला हुआ। एक सार्जेंट मार डाला गया। जनता पर गोली चलायी गयी। २८ व्यक्ति मरे और लगभग डेढ़ सौ घायल हुए। अहमदाबाद में मार्शल लागू हुआ। यह देख कर गाधी जी बहुत दुःखी हुए। "पश्चाताप" के लिए तीन दिन तक अनशन करने की उन्होंने घोषणा की।

इधर यह हाल था, उधर पंजाब मे १० अप्रैल को अमृतसर के जिला मजिस्ट्रेट ने डाक्टर किचलू और डाक्टर सत्यपाल को अपने बँगले पर बुला कर गिरफ्तार किया और उन्हें अज्ञात स्थान में भेज दिया। यह खबर शहर में फैली तो हड़ताल हो गयी। झुण्ड के झुण्ड लोग अधिकारियों के बंगलों

---

* डा० राजेन्द्र प्रसाद—'आत्मकथा'—पृ० सं० ११६-११७

की ओर बढ़ने लगे। रेलवे क्रासिंग के पास निरस्त्र भीड़ को रोक कर गोली चलायी गयी। कुछ मरे, कुछ घायल हुए। इससे क्षोभ और भड़का। अहमदाबाद की घटनाओं की पुनरावृत्ति यहाँ भी हुई। तब भीड़ के विरुद्ध फौज से काम लिया गया। गोली चलायी गयी। दस व्यक्ति मरे। न जाने कितने घायल हुए। ११ अप्रैल को शहर फौजी अफसर डायर को सुपुर्द कर दिया गया। १२ अप्रैल को शहर भर में लोग गिरफ्तार किये जाने लगे। सभा और प्रदर्शन पर रोक लगा दी गयी। जनता को यह सह्य न हुआ। नेताओं ने १३ अप्रैल को सभा करने की घोषणा की। इस पर जनरल डायर ने बड़ी क्रूरता से काम लिया। उसने भीड़ जालियानवाला बाग में एकत्र होने दी। यह स्थान तीन ओर से घिरा है। एक ओर से मैदान में जाने का संकरा मार्ग है—इतना संकरा कि एक गाड़ी भी उसमें से होकर नहीं निकल सकती। जब लगभग बीस हजार स्त्री-पुरुष और बच्चे यहाँ एकत्र हो गये, तो जनरल डायर ने इसमें प्रवेश किया और गोली चलाने का आदेश दे दिया। गोली तब तक चलायी गयी, जबतक कारतूस समाप्त नहीं हो गये। मृतक और घायलों को रात भर वहीं पड़े रहने दिया गया। जनरल डायर ने कहा था—"कारतूस होता तो मैं और भी गोली चलवाता। मैं एक 'आरमर्डकार' ले गया था लेकिन वह बाग में घुस नहीं सकती थी, इसलिए मैंने उसे बाहर ही छोड़ दिया।"

इस हत्या-काण्ड की जाँच के लिए कांग्रेस द्वारा नियुक्त जाँच समिति के अनुसार एक हजार और सरकार द्वारा नियुक्त हण्टर कमेटी की जाँच के अनुसार ३७९ व्यक्ति मारे गये। घायलों की संख्या लगभग डेढ़ हजार थी। हण्टर कमेटी के आँकड़े झूठे सिद्ध हुए, क्योंकि सेवा-समिति ने ही ५ सौ लाशें उठायी थी। सरकार ने यही आँकड़ा मान लिया।

जनरल डायर ने जो जुल्म ढाया उसे देख कर शैतान भी काँप उठा होगा। "अमृतसर में नलों में पानी बन्द कर दिया गया था। बिजली का सिलसिला काट दिया गया था। सबके सामने बेंत लगाना आमतौर से चालू था। लेकिन 'पेट के बल रेंगने के हुक्म' ने इन सब को मात कर दिया। मिस शेरवुड नामक एक पादरी लेडी डाक्टर पर उस समय कुछ लोगों ने आक्रमण किया था जब वह साइकिल पर सवार होकर एक गली से गुजर रही थी। इसलिए इस गली से निकलने वाले हर व्यक्ति को पेट के बल रेंग कर जाने की आज्ञा दी गयी थी। उस गली में जितने भी आदमी रहते थे, सभी को पेट के बल रेंग कर जाना और आना पड़ता था।"*

---

* पट्टाभि सीतारमय्या—'कांग्रेस का इतिहास' खंड १, पृ० सं० १३३–३४

१५ अप्रैल को अमृतसर में फौजी कानून लागू कर दिया गया और तरह-तरह के अत्याचार किये गये। संगीन जुर्म के अभियोग में विशेष अदालत द्वारा २९८ व्यक्तियों पर मुकदमें चलाये गये और निरंकुशतापूर्वक २१८ व्यक्ति दण्डित किये गये। ५१ को फाँसी, ४६ को आजीवन कारावास, २ को १०-१० वर्ष की कड़ी कैद, ७९ को ७-७ वर्ष की कड़ी कैद, १० को ५-५ और १३ को ३-३ वर्ष की कड़ी कैद की सजा तथा शेष को अल्प अवधि की कैद की सजा दी गयी। अगणित लोगों को सरेआम नंगा कर के बेंत लगाये गये। बेंत लगाने के लिए शहर मे जगह-जगह टिकटियाँ लगा दी गयी थीं।

पंजाब के अन्य नगरों मे भी खूनी दमन हुआ। लाहौर, कसूर, शेखूपुरा, गुजरांवाला और वजीराबाद आदि में भी फौजी कानून लागू किया गया और गोलियाँ चलायी गयीं। ऐसे-ऐसे जुल्म ढाये गये, मनुष्य शायद जिनकी कल्पना भी नहीं कर सकता। सारा पंजाब यंत्रणा के हर साज से सजी काल कोठरी के रूप मे बदल दिया गया जिसके सामने 'ब्लैकहोल' की हजारों-लाखों घटनाएँ मात थी!

इन घटनाओं से गाँधी जी को बहुत धक्का लगा। उन्होंने घोषित किया कि मैंने हिमालय सदृश बड़ी भूल की है। सत्याग्रह कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया गया।

सारे देश की जनता की माँग थी कि पंजाब हत्याकाण्ड के लिए उत्तरदायी अधिकारियों को दण्ड दिया जाय। इसका जवाब सरकार ने दिया 'इनडेमनिटी' बिल उपस्थित कर के जिसका उद्देश्य अफसरों को बचाना था। इससे एक बार क्षोभ फिर भड़क उठा। पंडित मदन मोहन मालवीय ने इसे स्थगित कराने के लिए बहुत जोर लगाया। बड़ी कौंसिल मे आपने अपने ४॥॥ घण्टे के ऐतिहासिक भाषण में पंजाब हत्याकाण्ड की बहुत कड़ी आलोचना की और हत्याकाण्ड का मार्मिक विवरण प्रस्तुत किया।

महायुद्ध आरम्भ होने के समय ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री लायड जार्ज ने भारत के मुसलमानों को कुछ वचन दिये थे! इस पर भारतीय मुसलमान देश से बाहर गये और उन्होने तुर्कों से युद्ध किया। युद्ध समाप्त होने के बाद अंग्रेज सरकार ने अपने वचन का पालन नहीं किया। तुर्की के शाह मुसलमानों के खलीफा थे। उनके अहित को मुसलमान अपना अहित मानते थे। अंग्रेजों ने तुर्की के कुछ इलाकों पर कब्जा कर लिया। इससे भारत के मुसलमानों में बडा क्षोभ फैला। दिल्ली में हिन्दू-मुसलमानों का संयुक्त सम्मेलन हुआ और अंग्रेज हुकूमत का विरोध करने के मार्ग पर विचार हुआ।

इसमें गांधी जी ने पहली बार 'असहयोग' शब्द का प्रयोग किया। विदेशी वस्तुओं का वहिष्कार करने का व्रत लेने का एक प्रस्ताव सम्मेलन में स्वीकृत हुआ। इस सम्मेलन में ही जमैयत उलउलेमा का जन्म हुआ।

दिसम्बर, १९१९ मे पंडित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में कांग्रेस का अधिवेशन अमृतसर में हुआ। इसी समय 'खिलाफत' वालों का भी सम्मेलन वहाँ हुआ। गांधी जी ने कांग्रेस को सलाह दी कि खिलाफत आन्दोलन का साथ दिया जाय। इसके प्रमुख नेता मौलाना मोहम्मद अली और शौकत अली थे। गाधी जी कि सलाह तिलक को पसन्द नही आयी। वे मुसलमानों के धार्मिक आन्दोलन को राजनीतिक आन्दोलन के साथ मिलाने के पक्ष मे नहीं थे।

पंजाब हत्या-काण्ड की जांच के लिए सरकार द्वारा नियुक्त हण्टर कमेटी की रिपोर्ट २८ मई, १९२० को प्रकाशित हुई। भारतीय सदस्यो ने जनरल डायर को दोषी माना और अंग्रेजों ने निर्दोष। भारत मंत्री माण्टेगु ने घोषणा की कि—"जनरल डायर ने बिलकुल नेकनियती से काम किया। हॉ, परिस्थिति को ठीक-ठीक समझने में उनसे गलती हो गयी।" ३० मई को बनारस में कांग्रेस की महासमिति की बैठक हुई जिसमे उपर्युक्त मामले पर क्षोभ प्रकट किया गया और इस पर विचार करने के लिए कांग्रेस का विशेष अधिवेशन करने का निश्चय हुआ। इस सिलसिले मे गाधी जी ने इलाहाबाद में २ जून को सर्वदल सम्मेलन बुलाया। इसमें असहयोग आंदोलन आरम्भ करने का निर्णय हुआ। कार्यक्रम तैयार करने के लिए एक समिति बनी जिसमे गांधी जी भी थे। इस समिति ने स्कूलों, कालेजो और अदालतों का वहिष्कार करने की सलाह दी। खिलाफत कमेटी पहले ही कौसिलों आदि के वहिष्कार के पक्ष मे अपना मत प्रकट कर चुकी थी। पहली अगस्त से आंदोलन आरम्भ भी हो गया। गांधी जी, मोहम्मदअली और शौकत अली आदि ने सारे देश का दौरा किया। इससे एक दिन पूर्व लोकमान्य तिलक का देहान्त हो चुका था। उन्होंने वहिष्कार आंदोलन मे साथ देने का वचन गांधी जी को दिया था।

पूर्व निश्चय के अनुसार असहयोग की नीति पर विचार करने के लिए ४ से ९ सितम्बर तक लाला लाजपतराय की अध्यक्षता में कलकत्ता मे कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ। इसमें देशबन्धु दास आदि ने गांधी जी के मत से असहमति प्रकट की। फिर भी असहयोग और वहिष्कार-सम्बन्धी गांधी जी का प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। कांग्रेस के अगले नागपुर अधिवेशन (दिसम्बर,

१६२० ) में इस प्रस्ताव की पुष्टि हुई। गांधी जी ने घोषित किया कि मैं इस वर्ष हुकूमत को खत्म कर देना चाहता हूँ।

नागपुर अधिवेशन के प्रस्ताव कार्यान्वित करने के लिए बाद में कांग्रेस महासमिति की कई बैठकें हुईं। जुलाई, सन् १६२१ में कराची में अखिल भारतीय खिलाफत सम्मेलन हुआ जिसमें घोषित किया गया कि—"आजसे किसी भी ईमानदार मुलसमान के लिए फौज में नौकर रहना, उसमें भर्ती होना या उसकी सहायता करना हराम है।" इस बीच भारत के कई हिस्सों में आंदोलन तेजी से चल रहा था। युक्त प्रांत ( उत्तर प्रदेश ) में किसान आंदोलन ने काफी जोर पकड़ लिया था। जवाहरलाल नेहरू इसमें भाग ले रहे थे। यहां दमन भी जबरदस्त हुआ। कई जगह गोली चली। सैकड़ों व्यक्ति बिना मुकदमा चलाये जेलों में ठूंस दिये गये थे। सारे देश में असहयोग आंदोलन को सामूहिक रूप से छेड़ने की माँग की जाने लगी।

खिलाफत आंदोलन भी तेजी से बढ़ रहा था। मलाबार में इसका व्यापक प्रभाव हुआ। अगस्त में यहाँ मोपला जाति के लोगों ने जो मुसलमान थे, यह समझा कि अंग्रेज हुकूमत समाप्त हो गयी है और वे स्वतंत्र हो गये हैं। उन्होंने बगावत कर दी और खिलाफत राज कायम कर लिया। उन्होंने महाजनों और जमींदारों को जो हिन्दू थे, लूट लिया। यहाँ कई अंग्रेज मारे गये और कुछ दिनों के लिए अंग्रेजी हुकूमत का नाम-निशान मिट गया। अंततोगत्वा अंग्रेजों ने किसी प्रकार स्थिति नियंत्रित की। सन् १६२२ के प्रथम मास में खिलाफत राज के शाह मोहम्मद हाजी और उनके २१ अनुयायियों को फौजी अदालत ने गोली से उडवा दिया। इसके बाद और भी कई लोग गोलियों से उडाये गये। विद्रोह में २२६६ मोपला काम आये, १६१५ घायल हुए, ५६८८ पकड़े गये और ३८२५६ ने आत्म-समर्पण किया। विद्रोह की व्यापकता पर प्रकाश डालने के लिए ये आँकड़े पर्याप्त हैं।

सितम्बर मे महात्मा गांधी ने मोहम्मद अली के साथ मलाबार जा कर मोपलाओं को शान्त करने का प्रयास करने का निर्णय किया। १४ सितम्बर को मार्ग में ही वेलटेयर में मोहम्मद अली गिरफ्तार कर लिये गये। इसके बाद ही बम्बई में हुकूमत ने उनके भाई शौकत अली को भी गिरफ्तार कर लिया। जिस भाषण के कारण इनकी गिरफ्तारी हुई, गाधी जी ने त्रिचनापल्ली की सभा में उसे स्वयं दोहराया। इतने पर भी उन्हें शान्ति न मिली। सरकार की भर्त्सना करने के लिए घोषणा-पत्र जारी करने के उद्देश्य से उन्होंने ४ अक्तूबर को बम्बई में नेताओं का सम्मेलन बुलाया। इस सम्मेलन में स्वीकृत

घोषणा-पत्र में कहा गया कि—"हमारी राय में किसी भारतीय के लिए 'सिविलियन' की भाँति काम करना राष्ट्रीय गौरव के विरुद्ध है, विशेष रूप में सैनिक के रूप में ऐसी सरकार के मातहत जो भारत के आर्थिक, नैतिक और राजनीतिक पतन का कारण है और जिसने राष्ट्रीय अभिलाषाओं को कुचलने के लिए पुलिस और सेना का उपयोग किया है।...हमारी यह भी राय है कि सैनिक या 'सिविलियन' के रूप मे काम करने वाले प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है कि वह सरकार से सम्बन्ध तोड़ ले और जीविका-निर्वाह का अन्य मार्ग ग्रहण करे।" * इस घोषणा-पत्र पर अन्य लोगों के अतिरिक्त इन नेताओं के हस्ताक्षर भी थे—महात्मा गांधी, अब्दुल कलाम आजाद, हकीम अजमल खाँ, लाला लाजपत राय, मोतीलाल नेहरू, श्रीमती नायडू, अब्बास तैयबजी, एन० सी० केलकर, विट्ठल भाई पटेल, वल्लभ भाई पटेल, एम० आर० जयकर, जवाहरलाल नेहरू, गंगाधरराव देशपाण्डे, उमर सोबानी, जमना लाल बजाज, एम० एस० अणे, डाक्टर अंसारी, खलिकुज्जमा, अब्दुल बारी, सी० राजगोपालाचारी, जितेन्द्रलाल बनर्जी, राजेन्द्र प्रसाद, हसरत मोहानी, याकूब हसन, डाक्टर मुन्जे और जयराम दास दौलत राम।

२ अक्टूबर को कांग्रेस कार्यकारिणी ने प्रस्ताव पास कर के इसकी पुष्टि की। नौकर शाही भौंचक्की रह गयी। उसे आशा न थी कि देश-व्यापी ज्वाला भड़क उठेगी।

अली बंधुओं और उनके साथियों पर कराची में मुकदमा चलाया गया और पहली नवम्बर को दो-दो वर्ष की कड़ी कैद की सजा दी गयी। इससे असहयोग आंदोलन को और बल मिला। ४ नवम्बर को दिल्ली में कांग्रेस की महासमिति की बैठक हुई और उसने प्रांतीय कांग्रेस कमेटियों को अपनी अपनी जिम्मेदारी पर सत्याग्रह आरम्भ करने का अधिकार दे दिया। सत्याग्रह में कर-बंदी आंदोलन भी शामिल था। गांधी जी ने स्वयं बारडोली में सामूहिक सत्याग्रह का नेतृत्व करने की घोषणा की और सारे देश से इसकी प्रतीक्षा करने की अपील की। कुछ दिनों बाद वे बम्बई होते हुए बारडोली के लिए रवाना हुए। सहयोग आंदोलन आरम्भ होने ही वाला था कि इस बीच १७ नवम्बर को 'प्रिंस आव वेल्स' ने बम्बई की भूमि पर पैर रखा। इस पर सारे देश ने असंतोष प्रकट किया और व्यापक हड़ताल हुई। बम्बई में बहिष्कार किया था। कुछ यूरोपियनों और एंग्लो इण्डियन आदि की दूकाने ही खुली थीं।

---

*डी० जी० तेंदुलकर—'महात्मा' खण्ड २, पृ० सं० ८२

देश के विभिन्न भागों में तरह-तरह के उपद्रव भी हुए। इससे गांधी जी को स्थिति का अंदाज लगा। उन्होंने १६ नवम्बर को उपवास करने की घोषणा की। २२ नवम्बर तक स्थिति ठीक हो गयी। २३ नवम्बर को बम्बई में काग्रेस कार्यकारिणी की बैठक हुई जिसमें बारडोली सत्याग्रह स्थगित करने का निर्णय किया गया। उधर "यूरोपियनों ने कड़ाई करने के लिए वाइसराय से आग्रह किया। प्रिंस आव वेल्स की यात्रा के दौरान में वातावरण को शात बनाये रखने के लिए बहुत से और विभिन्न प्रकार के उपायों पर अमल किया गया। १६ नवम्बर को बंगाल सरकार ने कांग्रेस और खिलाफत के अन्तर्गत सभी स्वयंसेवक संघटनों को गैर कानूनी करार दिया और राजनीतिक सभाओं का दमन करने का आदेश दिया। पंजाब, युक्त प्रान्त, बिहार और आसाम की सरकारों ने बंगाल सरकार का अनुकरण किया। इस अधिसूचना की खुलेआम अवहेलना कर के चुनौती स्वीकार की गयी। इलाहाबाद में आयोजित विशेष बैठक मे स्वयंसेवकों-सम्बन्धी प्रस्ताव पर विचार करते समय युक्त प्रांत की प्रांतीय कमेटी के २५ सदस्य एक साथ गिरफ्तार कर लिये गये। १० दिसम्बर को काग्रेस के मनोनीत अध्यक्ष सी० आर० दास गिरफ्तार कर लिये गये। सारे देश मे लाला लाजपत राय, मोतीलाल नेहरू, मौलाना आजाद और जवाहर लाल नेहरू सदृश देश के प्रमुख नेता गिरफ्तार कर लिये गये।"*

"दिसम्बर के अंतिम सप्ताह मे जब कांग्रेस का अधिवेशन अहमदाबाद मे हुआ, सारे देश में क्राति की चिनगारियाँ छिटकी हुई थी जो ज्वाला का रूप धारण करने के लिए तैयार थी। बड़े उत्तेजना पूर्ण वातावरण मे गांधीजी के—इस एक नेता के, जिसे गिरफ्तार करने का साहस सरकार मे नही थी, निर्देश के अन्तर्गत यह अधिवेशन हुआ (२७ दिसम्बर, १६२१)। मनोनीत अध्यक्ष सी० आर० दास जेल मे थे, अतः हकीम अजमल खाँ कार्यकारी अध्यक्ष रहे।"† खिलाफत का पंडाल भी पास ही मे था। हिन्दू-मुसलिम एकता यहाँ उमड़ पड़ी थी।

अधिवेशन में कांग्रेस को प्रभावित करने के लिए दो प्रकार के विचार सामने थे। मालवीय जी चाहते थे कि काग्रेस गोलमेज सम्मेलन बुलाने के लिए प्रस्ताव पास करे। बहुत अधिक मतों से यह प्रस्ताव ठुकरा दिया गया। गांधी जी ने कहा—"मैं शान्ति प्रेमी हूँ लेकिन मैं ऐसी शान्ति नही चाहता जो कब्र मे होती है।"

---

* डी० जी० तेन्दुलकर—'महात्मा' खण्ड २, पृ० सं० ९४

† जी० डी० तेन्दुलकर—'महात्मा' खण्ड २, पृ० सं० ९५

अगले संघर्ष के लिए गांधी जी अधिनायक बनाये गये। गांधी जी ने वाइसराय लार्ड रीडिंग को पत्र लिखा—"एक सप्ताह के अन्दर सरकार अपनी नीति में परिवर्तन की घोषणा कर देगी तो मैं बारदोली में सत्याग्रह आन्दोलन तब तक के लिए स्थगित कर दूँगा, जब तक राजनीतिक बन्दी कैद से छूट कर नये सिरे से सभी बातों पर विचार न कर लेंगे।"

"ब्रिटिश सरकार आन्दोलन को कुचलने के लिए दृढ़ थी। भारत के लोग कड़ा से कड़ा दमन सहने के लिए कृत-संकल्प थे। वर्ष के अन्त में गिरफ्तारियों कि धूम थी। ३० हजार व्यक्ति गिरफ्तार किये जा चुके थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के लक्ष्य में अपना विश्वास प्रकट करने के लिए हजारों व्यक्ति जेल जाने के लिए तैयार खड़े थे। स्वराज्य का उदय नहीं हुआ था लेकिन गुलामी की जंजीरों से जकड़ा मस्तिष्क स्वतन्त्र हो गया था।"‡

सन् १९२१ के समाप्त होते होते कुछ उदार पन्थियों ने कांग्रेस और सरकार में समझौता कराने की इच्छा प्रकट की। अगले वर्ष १४ जनवरी को मालवीय जी और जिना ने बम्बई में सर्वदल सम्मेलन बुलाया। सभी दलों के तीन सौ प्रतिनिधियों ने सम्मेलन में भाग लिया। गांधीजी, अली बन्धुओं तथा अन्य राजनीतिक बन्दियों की रिहाई के बिना कोई समझौता करने पर तैयार न हुए। "सम्मेलन ने एक ऐसा प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकार किया जिसमें सरकार की दमन नीति को धिक्कारा गया था और साथ में यह भी सलाह दी गयी थी कि जब तक समझौते की बात चलती रहे, अहमदाबाद के प्रस्ताव के अनुसार सत्याग्रह शुरू न किया जाय।"† कांग्रेस ने ३१ जनवरी तक सत्याग्रह स्थगित रखना स्वीकार कर लिया। इस अवधि तक कुछ न हुआ। ३१ जनवरी को सूरत में कांग्रेस की कार्यकारिणी की बैठक हुई और उसने बारदोली की जनता को सत्याग्रह आरम्भ करने की सलाह दी।

गांधी जी बारदोली चले गये। तभी ८ फरवरी को युक्त प्रांत में गोरखपुर जिले के अन्तर्गत चोरीचौरा में एक पुलिस थाने के अन्दर जमा सिपाहियों को फूँक दिये जाने का समाचार उन्हें मिला। सिपाहियों ने गोली चलायी थी। गोली समाप्त होने पर शरण लेने के लिए वे थाने में चले गये थे। उत्तेजित भीड़ ने थाना फूँक दिया था। सिपाही या तो जलभुन गये या मार डाले गये। ११ फरवरी को कांग्रेस की कार्यकारिणी ने गांधी जी के

---

‡ जी० डी० तेंदुलकर—'महात्मा' खण्ड २, पृ० सं० १००

† पट्टाभि सीतारमय्या—'कांग्रेस का इतिहास' खंड १—पृ० सं० १८९

आग्रह पर सामूहिक सत्याग्रह छेड़ने का निश्चय स्थगित कर दिया, यद्यपि वह गांधी जी के मत से सहमत न थी।

इस आकस्मिक निर्णय से देश को धक्का लगा। साधारण कार्यकर्त्ताओं से लेकर कांग्रेस नेता तक इस पर बहुत क्षुब्ध हुए। गांधी जी पर चारों ओर से बौछार होने लगी। उनके निर्णय का विरोध करते हुए जेल से मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपत राय और अन्य नेताओंने क्रोध से भरे पत्र भेजे। मोतीलाल जी ने लिखा—"केप कामोरिन के एक गाँव के लोग अहिंसा पर अमल करने में विफल हुए हों तो इसके लिए हिमालय की तलहटी में बसे गाँव को दण्डित क्यों किया जाय? चौरीचौरा और गोरखपुर को छोड़ दीजिये और सामूहिक एवं व्यक्तिगत सत्याग्रह आरम्भ कीजिये।"*

२४ और २५ फरवरी को दिल्ली में महासमिति की बैठक हुई जिसमें बारदोली-विषयक सभी प्रस्तावों का समर्थन हुआ। इसमें व्यक्तिगत रूप से सत्याग्रह करने की इजाजत भी दे दी गयी। विदेशी कपड़े पर पिकेटिंग की भी इजाजत उन्हीं शर्तों पर दी गयी जो बारदोली-प्रस्ताव में शराब पर पिकेटिंग के लिए निर्धारित थी। इस बैठक में डाक्टर मूंजे ने गांधीजी के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव भी पेश किया था जो गिर गया।

१३ मार्च को गांधी जी और सहयोगी शंकर लाल बैंकर गिरफ्तार कर लिये गये। राजा-द्रोह के अभियोग में १८ मार्च को अहमदाबाद में उनके विरुद्ध मुकदमा आरम्भ हुआ। जज ने गांधी जी को छः वर्ष की कैद और शंकरलाल जी को एक वर्ष की कैद और एक हजार रुपये जुर्माने की सजा दी।

इस घटना ने राष्ट्रीयता की उमड़ती हुई भावना को एक नयी मोड़ दी। जनता आन्दोलन करने के लिए तैयार थी किन्तु नेताओं में मतभेद था। जून, १९२२ में आन्दोलन पर एक रिपोर्ट तैयार करने के लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने एक समिति संघटित की जिसने छः सप्ताह तक दौरा करने के बाद नवम्बर में अपनी रिपोर्ट दी। समिति में दो मत थे। मोती लाल नेहरू, हकीम अजमल खाँ और विट्ठल भाई पटेल आदि का मत था कि कांग्रेस कौंसिल का चुनाव लड़ने की घोषणा कर दे और डा० अंसारी, राजगोपालाचारी तथा कस्तूरी रंगा आयंगर आदि बहिष्कार की नीति को जारी रखने के पक्ष में थे। यह मतभेद मिट न सका। १ जनवरी, सन् १९२३ को मोतीलाल

---

* जी० डी० तेंदुलकर—'महात्मा' खंड २ पृ० सं० ११७

नेहरू और सी० आर० दास ने स्वराज्य पार्टी कायम कर ली। दास साहब अध्यक्ष बने और मोतीलाल नेहरू मंत्री। महासमिति में इनका बहुमत न था, अतः उपयुक्त अवसर की राह देखते हुए इन्होंने कौंसिल प्रवेश का आंदोलन जारी रखा। अंततः सितम्बर में दिल्ली में आयोजित कांग्रेस अधिवेशन में स्वराज्य पार्टी की विजय हुई और उसे चुनाव लड़ने की अनुमति मिल गयी। इस बीच देश में छिटपुट कई स्थानों पर संघर्ष हुआ। बोरसद और नागपुर में सत्याग्रह भी हुआ जिसका नेतृत्व वल्लभ भाई पटेल ने किया।

"सन् १९२३ का वर्ष प्रसन्नता का वर्ष न था। हिन्दु-मुसलमानों में सहयोग क्षीण हो रहा था और मतभेद की खाई चौड़ी होती जाती थी। खिलाफत का विवाद तुर्कों ने स्वयं हल कर लिया था। नवम्बर, सन् १९२२ में तुर्क अपने नेता मुस्तफा कमालपाशा के नेतृत्व में उठ खड़े हुए और उन्होंने सुलतान को जो खलीफा भी था, गद्दी से उतार दिया।"* इस प्रकार धार्मिक गुरु की सत्ता का प्रश्न आपसे आप समाप्त हो गया।

इसी वर्ष "बड़े नगरों में कई साम्प्रदायिक दंगे हुए जो अत्यन्त निर्दयतापूर्ण थे। कई प्रकार के सम्प्रदायवादी जिनमें अधिकतर राजनीतिक प्रतिक्रियावादी थे, सामने आ गये। राष्ट्रीय स्वार्थ पर साम्प्रदायिकता विजयी हुई। प्रतिक्रिया का अनुसरण प्रतिक्रिया ने किया। हिन्दू महासभा ने शुद्धि आंदोलन शुरू कर दिया। मालवीय जी की अध्यक्षता में हिन्दू महासभा का महत्त्वपूर्ण अधिवेशन अगस्त, १९२३ में बनारस में हुआ।"

"आतंकवाद ने एक बार पुनः सिर उठाना आरम्भ कर दिया। गांधीजी के आदर्शों और उनके व्यक्तित्व ने बंगाल के भावुक युवकों की विचारधारा को प्रभावित किया लेकिन राजनीतिक शस्त्र के रूप में हिंसा की उपादेयता में उन्होंने अपना विश्वास कायम रखा।...गांधीजी के आंदोलन के उखड़ने पर आतंकवादी मैदान में आ गये और हिंसा की आवश्यकता का प्रचार करने करने लगे। मई में राजनीतिक डकैती की घटना घटी जिसकी चरम सीमा हत्याएँ थीं। अलीपुर षड़यंत्र केस चला कर आतंकवादियों को दंडित करने का सरकार का प्रयास विफल हुआ। सशस्त्र युवकों ने चटगाँव में बहुत गम्भीर डाका डाला और बाद में एक पुलिस अफसर की हत्या की। पुलिस कमिश्नर के धोखे में दिन-दहाड़े श्री डे की कलकत्ता में हत्या कर दी गयी।"†

---

* जी० डी० तेंदुलकर—'महात्मा'—खण्ड २ पृ० सं० १५५

† ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, १५५

एक ओर देश की यह स्थिति थी; दूसरी ओर खबर मिली कि गांधीजी भयानक रोग से पीड़ित हैं। जनवरी, १९२४ में यह अशुभ समाचार मिला। ५ फरवरी को गाधीजी बिना शर्त रिहा कर दिये गये। देश ने राहत की साँस ली। इस बीच दिसम्बर, १९२३ मे कांग्रेस के कोकनाडा अधिवेशन में दिल्ली प्रस्ताव दोहराया जा चुका था और कौंसिल-प्रवेश के प्रश्न पर मतभेद तीव्र हो गया था। स्वराज्य पार्टी के प्रस्ताव के अनुसार चुनावों में भाग लिया जा चुका था।

"विधान के अन्तर्गत प्राप्त सीमित अधिकारों को देखते हुए स्वराज्य पार्टी ने चुनाव मे प्रशंसनीय सफलता प्राप्त की। सारे देश में प्रमुख कांग्रेस जन नगर-पालिकाओं के अध्यक्ष बन गये। सी० आर० दास कलकत्ता के प्रथम मेयर चुने गये। विट्ठलभाई पटेल बम्बई कारपोरेशन के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। वल्लभ भाई पटेल अहमदाबाद पालिका, राजेन्द्र बाबू पटना पालिका, और जवाहरलाल नेहरू इलाहाबाद पालिका के अध्यक्ष चुने गये। सरकार के आदेश की उपेक्षा करते हुए पूना की नगर पालिका ने अपने बाजार मे तिलक की प्रतिमा स्थापित करने का निर्णय किया। बम्बई कारपोरेशन और अहमदाबाद पालिका ने गाधीजी को मानपत्र भेट किया। कराची, बम्बई और कलकत्ता पालिकाओं के अध्यक्षों ने वाइसराय के सम्मान में आयोजित समारोह मे भाग लेने से इनकार कर दिया। सारे देश मे नगर पालिकाओं ने उत्साह के साथ काम किया और राजकीय अधिकारियों से उनका संघर्ष हुआ।"※

"बड़ी कौंसिल मे ४५ स्वराजी पहुँचे।...वे राष्ट्रीय दल का सहयोग और सहानुभूति प्राप्त कर के कौंसिल मे आसानी से बहुमत प्राप्त कर सके। पहली विजय तब हुई जब टी० रंगाचारी ने शासन-व्यवस्था मे तत्काल परिवर्तन करने के सम्बन्ध मे एक प्रस्ताव पेश किया और पंडित मोतीलाल तेहरू ने यह संशोधन पेश किया कि भारत मे पूर्ण उत्तरदायी सरकार की सिफारिश करने के लिए एक गोलमेज परिषद बुलायी जाय।

"सरकार को यों तो कई बार हार खानी पडी, परंतु इन प्रस्तावों पर उसकी हार विशेष रूप मे उल्लेखनीय है—कुछ राजनीतिक कैदियों को छोड़ने का प्रस्ताव, १८१८ के रेगुलेशन ३ को रद्द करने का प्रस्ताव, दक्षिण अफ्रीका से भारत आने वाले कोयले पर कर लगाने का प्रस्ताव और सिख आंदोलन की व्यवस्था के सम्बन्ध में जाँच करने के लिए कमेटी बैठाने का प्रस्ताव।...

---

※ डी० डी० तेंदुलकर—'महात्मा' खंड २—पृ० सं० १८०

स्वराज्य पार्टी ने सरकारी मागों की चार मदों को भी नामंजूर कर दिया। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था, यह तो मानों रसद बंद करना हुआ।"†

राष्ट्रीय शक्तियों के बढ़ते हुए इस वेग को दबाने के लिए सरकार ने एक ओर क्रान्तिकारियों को दबाने की प्रबल भयावह नीति का सहारा लिया और दूसरी ओर उसके एजेंटो ने साम्प्रदायिकता को खूब भड़काया। सन् १९२४ मे साम्प्रदायिकता की चिनगारियों ने एक बार पुनः ज्वाला का रूप धारण कर लिया और देश के कई प्रमुख नगरों में यह ज्वाला धाँय-धाँय कर धधक उठी। "दिल्ली, गुलबर्ग, नागपुर, लखनऊ, शाहजहाँपुर, इलाहाबाद और जबलपुर मे भयानक दंगे हुए। सबसे अधिक भयकर दंगा कोहाट में हुआ। कोहाट के दगे ने तो भारत की कमर ही तोड दी।"* इसमें "१५५ व्यक्ति घायल हुए और मारे गये। नौ लाख रुपये की सम्पत्ति बरबाद की गयी। सारे हिन्दुओ ने कोहाट खाली कर दिया।"† पट्टाभि सीतारमय्या के कथनानुसार "९ और १० सितम्बर के गोली काड और रक्तपात के बाद एक स्पेशल ट्रेन द्वारा ४००० हिन्दू हटाये गये। इनमे से २६०० दो महीने बाद तक रावलपिण्डी की जनता और १४०० अन्य स्थानो की जनता की दानशीलता पर जीते रहे।"‡

इस वर्ष गाधीजी बहिष्कार के मामले में सी० आर० दास और मोतीलाल नेहरू के आगे झुक गये; क्योंकि वह काग्रेस को फूट से बचाना चाहते थे। इसी वर्ष बेलगाँव में काग्रेस का अधिवेशन हुआ जिसके अध्यक्ष गाधी जी ही थे।

———

† पट्टाभि सीतारमय्या—'कांग्रेस का इतिहास' खं० १—पृ० सं० २१८-१९

* पट्टाभि सीतारमय्या—'कांग्रेस का इतिहास'—खंड १ पृ० सं० २२२

+ जी० डी० तेंदुलकर—'महात्मा' खंड-२-पृ० सं० १९६

‡ 'कांग्रेस का इतिहास' खंड १—पृ० सं०—२२२

# औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग

**गाँधीजी का अनशन—लीग द्वारा पृथक प्रतिनिधित्व की माँग—हिन्दू महासभा—स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या—स्वराज्य पार्टी में फूट—गोलमेज सम्मेलन बुलाने की माँग—साइमन कमीशन के बहिष्कार का निश्चय—स्थान-स्थान पर कमीशन विरोधी प्रदर्शन—लाहौर में लाला लाजपतराय पर अंग्रेज अफसर का हमला—नेहरू कमेटी और औपनिवेशिक स्वराज्य से सहमति।**

सन् १९२४ के साम्प्रदायिक दंगों से मर्माहत हो कर गाँधीजी ने २१ दिनों का अनशन करने का व्रत लिया तथापि यह रोग घटा नहीं। अंग्रेजों को यह अमोघ शस्त्र प्राप्त हो गया था। इसका सहारा उन्होंने जम कर लिया और बराबर तब तक लेते गये जब तक भारत आजाद नहीं हो गया। भारत से जाते जाते भी उन्होंने साम्प्रदायिकता की भीषण ज्वाला भड़कायी जिसके परिणाम का रोमांचकारी विवरण यथास्थान मिलेगा।

सन् १९२३ तक तो मुसलिम लीग निष्क्रिय-सी रही लेकिन १९२४ में वह पुनः मैदान में आ गयी। इस वर्ष जाहिरा तौर पर कोई खास बात सामने नहीं आयी लेकिन साम्प्रदायिकतावादी भीतर ही भीतर खीचड़ी पकाते रहे। जिना साहब काग्रेस द्वारा असहयोग आन्दोलन और कौंसिल बहिष्कार का आन्दोलन छेड़े जाने के बाद उससे पृथक हो गये थे। सन् १९२४ के लीग के बम्बई अधिवेशन में उन्होने भाग लिया। स्वयं पर लगाये गये साम्प्रदायिकता के दोषारोप का खंडन करते हुए उन्होंने स्वधर्मियों का यह इरादा जाहिर किया कि "वे कौंसिलों और नौकरियों में पृथक प्रतिनिधित्व चाहते हैं।" इस जहर ने आगे चल कर खूब रंग पकड़ा।

मई, १९२५ में बंगाल में फजलुल हक की अध्यक्षता में बंगाल मुसलिम कांफ्रेंस हुई जिसमें हक साहब ने यह जहर उगला कि 'जिस गति से भारत स्वराज्य की ओर अग्रसर होता जायगा, उसी गति से हिन्दू, राज्य-सत्ता पर काबिज होते जाँयगे।' इसी वर्ष 'सर' की उपाधि से विभूषित अब्दुर्रहीम के नेतृत्व में मुसलिम लीग का अधिवेशन हुआ। अध्यक्षीय भाषण शुरू से अंत तक साम्प्रदायिकता के जहर में सराबोर था। अध्यक्ष ने आत्म-रक्षा के

सभी साधनों को अपनाने की सलाह मुसलमानों को देते हुए यह ऐलान किया कि 'मुसलमान अपना भाग्य हिन्दुओं के हाथों में नहीं छोड़ सकते।' उन्होंने यह घोषणा भी की कि 'मुसलमानों की भलाई के लिए हिन्दुस्तान में अंग्रेजी हुकूमत का बने रहना जरूरी है।'

पंजाब, सीमा-प्रान्त और बंगाल के दंगों में हिन्दुओं की जो बरबादी हुई थी, उससे हिन्दू भी घबरा उठे थे। हजारों की संख्या में हिन्दू जबरदस्ती धर्म-परिवर्तन के लिए मजबूर किये गये थे। उन पर भी इसका गहरा असर हुआ। बनारस में सन् १९२३ में हिन्दू सभा का अधिवेशन हो चुका था। सन् १९२५ में वह अखिल भारतीय संस्था के रूप में सामने आयी। लाला लाजपत राय की अध्यक्षता में उसकी बैठक हुई और हिन्दुओं के धर्म की रक्षा की घोषणा की गयी। इस प्रकार 'तंजीम' और तबलीग' की कशमकश शुरू हुई जो बराबर बढ़ती गयी। अगले वर्ष अर्थात् सन् १९२६ में पुनः कई स्थानों मे दंगे हुए। कलकत्ता मे इनका रूप बहुत भयानक रहा। इसमें लगभग एक सौ व्यक्ति मारे गये और प्रायः एक हजार घायल हुए। आगजनी की घटनाओं की संख्या करीब सवा सौ रही। दिल्ली में हिन्दुओं के अत्यन्त लोकप्रिय राष्ट्रीय नेता स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या अब्दुल रशीद नामक मुसलमान ने कर दी। ( २३ दिसम्बर, १९२६ ) इससे हिन्दुओं का जोश भड़का। मुसलमानों ने इसका जवाब हत्यारे रशीद को 'गाजी' घोषित करके दिया जो फाँसी पर चढ़ा दिया गया था।

इस शरारत के पीछे अंग्रेज हुकूमत का पूरा-पूरा हाथ था। यह बात छिपी नहीं रही। सन् १९१९ के एक्ट के अन्तर्गत प्रशासन सुधार तथा अन्य सम्बन्धित मामलों की जाँच के सम्बन्ध में साइमन कमीशन की नियुक्ति की घोषणा के सिलसिले में तत्कालीन भारत मन्त्री लार्ड बर्कनहेड ने वाइसराय को स्वयं यह लिखा था कि "राजनीतिक सौदेबाजी अथवा स्वराज्य पार्टी मे फूट डालने के लिए आप कमीशन का उपयोग कर सकें तो जरूर करें। इससे आपको मदद मिल सकती हो तो सरकार आपकी सहायता जरूर करेगी।"*

साइमन कमीशन के भारत आगमन का जो परिणाम हुआ उसका उल्लेख यथा स्थान मिलेगा।

स्वराज्य पार्टी के महारथी सी० आर० दास देश को अपना तन अर्पण कर ही चुके थे। सन् १९२५ में उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति भी उसके चरणों

---

* बर्कनहेड—'दि लास्ट फेज' खंड २, पृ० सं० २५

पर रख दी। उनकी शोहरत आसमान को छूने लगी थी लेकिन दुर्भाग्यवश इसी वर्ष १६ जून को उनकी आत्मा पार्थिव शरीर को छोड़ कर चली गयी। भारतीय जनता की नब्ज पर हाथ रखने वाले गाँधी जी को इससे बड़ा सदमा पहुँचा। मोतीलाल नेहरू के तो वह अन्यतम सहयोगी थे ही। देश की राजनीति पर इसका असर यह पडा कि गॉधीजी ने सारी सत्ता मोतीलाल नेहरू के हाथों मे छोड दी। अगस्त मे विट्ठलभाई पटेल बडी कौंसिल के अध्यक्ष चुने गये।

राजनीतिक क्रियाशीलता केवल कौंसिलों तक सीमित रही। श्री दास की मृत्यु के बाद इसमे भी दरार पडी। मध्य प्रान्तीय कौंसिल के अध्यक्ष श्रीपाद बलवन्त ताबे ने स्वराज्य पार्टी के सिद्धान्त के विरुद्ध मध्य प्रान्त सरकार की कार्यकारिणी मे पद स्वीकार कर लिया। इस पर आपस में खूब चख-चख हुई। मोतीलाल नेहरू ने इस पर गहरी आपत्ति प्रकट की और अनुशासन भंग की कारवाई करने की धमकी दी। पार्टी मे फूट पड़ गयी। उसके कई सदस्यों ने स्वराज्य पार्टी के साथ-साथ कौंसिलों से भी इस्तीफा दे दिया। यह सब हुआ नवम्बर मे नागपुर मे हुई अखिल भारतीय स्वराज्य पार्टी की बैठक के बाद।

दिसम्बर मे श्रीमती सरोजनी नायडू की अध्यक्षता मे कानपुर मे काग्रेस का अधिवेशन हुआ। इसके पूर्व सितम्बर मे महासमिति की बैठक पटना मे हो चुकी थी जिसमे यह निश्चय किया गया था कि कौंसिल के 'स्वराजी' सदस्य कांग्रेस सदस्य कहलायेंगे।

सन् १६२४ में स्वराज्य पार्टी के सदस्यों ने बडी कौसिल में एक प्रस्ताव पेश किया था जिसमे देश में उत्तरदायी शासन कायम करने की दृष्टि से विधान में उचित सशोधन की माँग करते हुए 'शीघ्र ही गोलमेज सम्मेलन बुलाने तथा बडी कौंसिल को भंग करने की भी माँग की गयी थी।' सन् १६२५ के कानपुर अधिवेशन मे काग्रेस ने इस पर स्वीकृति की मोहर लगा दी और यह प्रस्ताव स्वीकार किया कि "स्वराज्य पार्टी जल्दी से जल्दी बड़ी कौंसिल मे सरकार से उन शर्तों पर अपना निर्णय सुनाने का अनुरोध करेगी। फरवरी के अन्त तक सरकार निर्णय न दे सके या जो निर्णय दे वह कार्यसमिति अथवा उसके द्वारा नियुक्त समिति की दृष्टि में असंतोषजनक हो तो स्वराज्य पार्टी पूर्व की भांति कौंसिल में काम न करने का निर्णय सरकार को सूचित कर देगी। बड़ी कौंसिल और राज्य परिषद के 'स्वराजी' सदस्य बजट की नामंजूरी के लिए वोट देंगे और तत्काल अपना स्थान छोड़ कर चले जायेंगे। जिन प्रान्तीय कौंसिलों की

बैठक इस अवसर पर हो रही हो, उसके सदस्य फिर उन कौंसिलों में न जायेंगे।"*

घटना-चक्र के कारण इस प्रस्ताव का असली रूप दूसरी शक्ल में सामने आया। बड़ी कौंसिल ( सेंट्रल असेम्बली ) का अधिवेशन जनवरी, १९२६ में आरम्भ हुआ। एक रिक्त स्थान पर लाला लाजपतराय चुने गये। यह स्थान उनके लिए एक 'स्वराजी' सदस्य ने ही खाली किया था। उनके आने से स्वराज्य पार्टी के नेता मोतीलाल नेहरू ने यह समझा कि 'मेरे हाथ मजबूत हुए हैं।' लेकिन इसी समय अकल्पित घटना घटी। 'उत्तरदायी सहयोग' की नीति के समर्थकों ने जिन्होंने ताजे कांड पर हुए विवाद के कारण त्याग-पत्र दे दिया था, एम० आर० जयकर की अध्यक्षता में 'प्रति सहयोगी' ( रिसपांसिविस्ट ) पार्टी कायम की। आगे चल कर लाला लाजपतराय ने इसका ही साथ दिया।

६ मार्च को कांग्रेस महासमिति की बैठक दिल्ली में हुई जिसने गवरनर जेनरल ( वाइसराय ) के उद्घाटन भाषण को सुधार की दृष्टि से असंतोषजनक बताया और कौंसिल के स्वराजी सदस्यों को बैठक का बहिष्कार करने का आदेश दिया। ८ मार्च को मोतीलाल नेहरू ने कौंसिल में घोषित किया—"सुधारों के प्रश्न पर स्वराज्य पार्टी को बैठक का त्याग करने का आदेश मिला है। इससे पूर्व हमने बजट की बहस में दो बार भाग लिया। हमने ब्रिटिश सरकार से कहा कि हम ऐसे प्रशासन का समर्थन करने से इनकार करते हैं जो बल-पूर्वक हम पर लादा गया है। हमने युनाइटेड किंगडम के लोगों को अपना यह संदेश सुनाने का अवसर प्रदान किया कि यदि भारत की इच्छाओं के अनुकूल शासन-प्रणाली में सुधार न हुआ तो देश को संतोष न होगा। अब तक इस संदेश की सुनवाई नहीं हुई और हाल में सरकार के जिम्मेदार एवं उच्च सदस्यों द्वारा कही गयी बातों से जाहिर है कि इस सभा की कोई कारवाई कारगर न होगी। अखिल भारतीय कांग्रेस का यह संदेश सरकार को सुनाने के लिए हम निश्चित आदेश के अन्तर्गत इस सभा में आये हैं। हम महसूस करते हैं कि इन निरर्थक संस्थाओं की कोई उपयोगिता नहीं है और देश की इज्जत तथा उसके आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए हमारे सामने केवल यही मार्ग रह गया है कि देश का काम करने के लिए हम बाहर लौट जायें। हम ऐसे उपाय ढूढ़ निकालने की कोशिश करेंगे जो देश की मांग स्वीकार करने के लिए किसी सरकार को बाध्य कर सकते हैं।"†

---

* पट्टाभि सीतारमय्या—'कांग्रेस का इतिहास' खंड १, पृ० सं० २३७

† जी० डी० तेंदुलकर—'महात्मा' खंड २—पृ० सं० ३०६

१३ मार्च को दिल्ली में अखिल भारतीय हिन्दू महासभा का अधिवेशन हुआ जिसमें कौंसिल-प्रवेश के सम्बन्ध में प्रस्ताव स्वीकार कर के हिन्दुओं के स्वार्थ की रक्षा के लिए सभी उचित उपायों का जिनमें चुनाव में अपने उम्मीदवारों को तैयार करना भी था, अधिकार महासभा को दिया गया। इसमें उन लोगों ( जयकर आदि ) ने प्रमुख भाग लिया जो तांबे कांड के फलस्वरूप स्वराज्य पार्टी से असंतुष्ट थे।

राजनीतिक क्षेत्र में मतभेद ३ अप्रैल को और भी साफ हो गया जब कि बम्बई में इण्डियन नेशनल पार्टी का जन्म हुआ और लाला लाजपत राय एवं मालवीय जी प्रभृति नेता इसमें शामिल हो गये। नवम्बर के चुनाव में इन लोगों ने काग्रेस के उम्मीदवारों का विरोध किया।

अगले वर्ष यह स्थिति एक बार आप से आप मिट गयी। नवम्बर, १९२७ में सरकार ने माटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों की जाँच के लिए एक कमीशन ( साइमन कमीशन ) नियुक्त करने की घोषणा की। कमीशन में सात सदस्य थे जिनमें एक भी भारतीय न था। इस पर काग्रेस तो नाराज हुई ही, अन्य दलों ने भी इसका विरोध किया। कमीशन की नियुक्ति को श्रीमती बेसेण्ट ने 'जले पर नमक छिड़कना' बताया। "श्री दिनशा वाचा सदृश अखिल भारतीय नरम दलीय नेताओं ने कमीशन के विरुद्ध एक घोषणा-पत्र निकाला। काग्रेस के सिवा भारत के सब राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियो ने घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर किये।"*

काग्रेस ने अपने मद्रास अधिवेशन में जो डाक्टर अंसारी की अध्यक्षता में हुआ, यह घोषित किया कि "चूंकि भारत सरकार ने भारत के स्वभाग्य निर्णय के अधिकार की पूर्ण उपेक्षा कर के एक शाही कमीशन नियुक्त किया है, अतः यह काग्रेस निश्चय करती है कि भारत के लिए आत्म-सम्मान पूर्ण एक मात्र मार्ग यही है कि वह कमीशन का हर हालत में और हर तरह बहिष्कार करे।" इस अधिवेशन में भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता-सम्बन्धी प्रस्ताव भी काग्रेस ने स्वीकार किया।

कमीशन की नियुक्ति की घोषणा करते हुए तत्कालीन वाइसराय लार्ड अरविन ( १९२६–३१ ) ने कहा था कि "भारतीय सम्मान तथा भारतीय गौरव को जानबूझ कर अपमानित करने का सरकार का कोई इरादा नहीं है।...यदि कमीशन के कार्य में भारतीयों की सहायता न प्राप्त हुई तो भी

* पट्टाभि सीतारमय्या—'कांग्रेस का इतिहास' खंड—१ पृ० सं० २५३–५४

कमीशन अपना काम करता रहेगा और अपनी रिपोर्ट पार्लिमेंट में पेश करेगा। पार्लिमेंट इच्छानुसार उस पर अपना निर्णय देगी।"

३ फरवरी को कमीशन बम्बई में पहुँचा तो सारे देश में विरोध प्रदर्शित करने के लिए जबरदस्त हड़ताल हुई। मद्रास में पुलिस ने भीड पर गोली चलायी। कलकत्ता में छात्रों और पुलिस की मुठभेड़ हो गयी। योंही देश में विरोध की ज्वाला धधक रही थी। उपर्युक्त घटनाओं ने घृताहुति का काम किया। दिल्ली में कमीशन को काले झण्डे दिखाये गये। विरोध में प्रबल प्रदर्शन हुआ और साइमन 'गो बैक' (वापस जाओ) के गगन भेदी नारे लगाये गये। उत्साह एवं राष्ट्रीयता की उमडती हुई लहर को देख कर सरकार के कान खड़े हो गये। उसने दमन से काम लेने का निश्चय किया।

"लाहौर में साइमन-विरोधी प्रदर्शन का नेतृत्व लाला लाजपत राय ने किया। जब वह सड़क के किनारे हजारों प्रदर्शनकारियों के आगे खड़े थे, एक नौजवान अंग्रेज पुलिस अफसर ने उन पर हमला किया और उनकी छाती पर डण्डे लगाये। लाला जी का तो कहना ही क्या, भीड की ओर से भी किसी प्रकार का झगडा करने की कोई कोशिश नहीं हुई थी। फिर भी, जब वह एक ओर शान्ति से खड़े थे, पुलिस ने उनको और उनके कई साथियों को बुरी तरह मारा।...जिस ढंग से उन पर हमला किया गया, उससे और उस हमले के वहशियाने रूप से हिन्दुस्तान के करोड़ों लोगों को धक्का लगा।...हमारे सबसे बड़े नेता, पंजाब के सबसे बड़े और सबसे अधिक लोकप्रिय व्यक्ति के साथ ऐसे बुरे व्यवहार का होना बिलकुल हैवानियत मालूम पडी। इस व्यवहार को देखकर हिन्दुस्तान भर में, खासतौर से उत्तरी हिन्दुस्तान में जबरदस्त गुस्सा उमड पड़ा।"* आम खयाल है कि इस हमले के कारण ही पंजाब केशरी लाला लाजपत राय की मृत्यु हुई।

लखनऊ में भी विरोधी प्रदर्शन का रूप कुछ कम उग्र न रहा। यहाँ प्रदर्शन का नेतृत्व स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधान मंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू तथा उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व मुख्य मन्त्री एवं भारत के वर्तमान (१९५५-५६) गृह मंत्री पंडित गोविन्द वल्लभ पंत ने किया था जिन पर पुलिस ने घोड़े दौड़ाये और जी भर कर लाठियाँ बरसायीं।

पटना में उलटा नक्शा दिखाने के लिए सरकार के गुर्गे देहातों से लारियों में किसानों को भर कर लाये लेकिन ये किसान लारियों से उतरते ही प्रदर्शन-

---

* जवाहरलाल नेहरू—'मेरी कहानी'—पृ० सं० २५३-५४

कारियों में जा मिले और ५० हजार व्यक्तियों को प्रबल भीड़ ने कमीशन विरोधी जबरदस्त प्रदर्शन किया।

इसी वर्ष मद्रास कांग्रेस के निर्णयानुसार भारत का शासन विधान बनाने के लिए फरवरी, १९२८ में दिल्ली मे सर्वदल सम्मेलन हुआ जिसमें सब दल इस बात पर सहमत हो गये कि भारत की वैधानिक समस्या पर विचार 'पूर्ण उत्तरदायी शासन' को आधार मान कर होना चाहिये। विधान बनाने के लिए पं० मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता मे एक कमेटी संघटित की गयी। अगस्त में नेहरू कमेटी ने अपनी रिपोर्ट प्रकाशित कर दी। इस कमेटी की रिपोर्ट पर विचार करने के लिए सर्वदल सम्मेलन की बैठकें २८, २९ और ३० अगस्त को लखनऊ में हुईं जिनमें औपनिवेशिक स्वराज्य के पक्ष में मत प्रकट किया गया।

दिसम्बर मे पडित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता मे कलकत्ता में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इसमे 'पूर्ण स्वतत्रता और औपनिवेशिक'' पद के प्रश्नों को लेकर गहरी सरगर्मी थी। स्वतः पडित जवाहरलाल नेहरू अपने पिता के मत के विरोधी और पूर्ण स्वतंत्रता के पक्ष मे थे। अत मे बहुमत से नेहरू कमेटी की रिपोर्ट इस शर्त के साथ स्वीकार कर ली गयी कि यदि दिसम्बर, १९२९ से पूर्व सरकार इस विधान को स्वीकार न कर ले तो कांग्रेस असहयोग और सविनय अवज्ञा आंदोलन आरम्भ कर देगी तथा कर-बंदी एवं लगान बदी को सत्याग्रह की योजना का अग बनाया जायगा।

सन् १९२८ मे ही सरदार पटेल के नेतृत्व मे बारडोली के किसानों ने जबरदस्त सत्याग्रह किया था जिसके परिणाम-स्वरूप मालगुजारी की दर सरकार को घटानी पड़ी थी।

''राजनीतिक दृष्टि से १९२८ का साल भरा-पूरा साल था। देश भर में तरह-तरह की हलचलों की भरमार थी। ऐसा मालूम पड़ता था कि एक नयी प्रेरणा, एक नयी जिदंगी जो विभिन्न प्रकार के समूहों में एक-सी मौजूद थी, लोगों को आगे की तरफ बढ़ा रही है।...१९२६ के आरम्भ में भारत सुप्त और निष्क्रिय था। शायद उस समय तक उसकी १९२१-२२ की मेहनत की थकान दूर नहीं हुई थी। १९२८ में वह तरोताजा, क्रियाशील और नयी जिंदगी से पूर्ण हो गया। इस बात का सबूत हर जगह मिलता था —कारखानों के मजदूरों में और किसानों में भी, मध्यम वर्ग के नौजवानों और आमतौर से पढ़े लिखे लोगों में भी।...१९२८ में भारत में एक और खास बात थी—नौजवानों के आंदोलन में तीव्रता। हर जगह युवक संघ कायम हो रहे

थे और युवक सम्मेलन हो रहे थे। ये संघ और सम्मेलन तरह-तरह के थे। कोई अर्द्धधार्मिक था तो कोई क्रान्तिकारी विचारों और उनके शास्त्रों पर विचार करने वाला। उनकी उत्पत्ति कैसी भी रही हो और इनका नियंत्रण किसी के हाथों में रहा हो, युवकों की ऐसी संस्थाएं हमेशा अपने आप सजीव सामाजिक और आर्थिक समस्याओं पर विचार करने लगती और आमतौर पर उनका झुकाव इस ओर ही रहा कि एकदम काया पलट दी जाय।"*

———

* जवाहर लाल नेहरू—'मेरी कहानी'—पृ० सं० २४७-४८

# पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा और सत्याग्रह

**काकोरी में सरकारी खजाना लुटा—सैंडर्स की हत्या—असेम्बली में बम मजदूरों की हड़तालें—असेम्बली में संघर्ष—वाइसराय की घोषणा—ऐतिहासिक लाहौर अधिवेशन—स्वाधीनता दिवस पर प्रतिज्ञा—कांग्रेस की शर्तें—गांधीजी का दाण्डी अभियान—नमक कानून तोड़ने की धूम—नेताओं और सत्याग्रहियों की गिरफ्तारी—व्यापक असहयोग आंदोलन—दमन का दौरदौरा कांग्रेस गैर कानूनी घोषित—क्रांतिकारियों की कुरबानियाँ—लंदन में गोलमेज सम्मेलन—गांधी-अरविन समझौता—सरकार की ओर से हमला बंद नहीं दूसरी गोलमेज कांफ्रेंस—गांधीजी की खरी बातें—कम्यूनल आवार्ड की घोषणा गांधीजी का अनशन—पूना में सर्वदल सम्मेलन—पूना पैक्ट—गांधीजी द्वारा २१ दिन का अनशन—गांधीजी रिहा—सत्याग्रह स्थगित करने की घोषणा व्यक्तिगत सत्याग्रह की छूट—स्वराज्य पार्टी पुनः सक्रिय—सत्याग्रह समाप्त कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना—समाजवादी पार्टी।**

सन् १९२९ का वर्ष अपनी गोद में प्रबल राजनीतिक तूफान को लेकर आया। देश की आजादी पर हँसते-हँसते मर मिटने वाले नौजवानों की रोमांचकारी कहानियों को सुन-सुन कर यह तूफान बढ़ने लगा। बागियों के सिर कलम हुए। धरती खून से लाल हुई और कुछ अर्से के लिए क्रान्तिकारियों की हैरत अंगेज कुर्बानियों की जोशभरी कहानियों से भारत की दरोदीवार गूंज उठी।

सन् १९१९ मे सशस्त्र विद्रोह की तैयारी विफल होने पर भी क्रान्तिकारियों का काम रुका नहीं था। छोटी-सी उम्र मे जेल के अंदर बेत की मार का जुल्म सह कर बाहर आने वाला अद्भुत वीर चंद्रशेखर 'आजाद' पराधीनता की बेड़ियाँ काटने की सौगन्ध खा चुका था। उसने बचे हुए क्रान्तिकारियों के साथ मिल कर 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' की स्थापना के कार्य को आगे बढ़ाया और सशस्त्र क्रान्ति का बीडा उठाया। सन् १९२५ में इस दल ने अपने शौर्य का परिचय दिया, काकोरी में ट्रेन से सरकारी खजाना लूट कर। गिरफ्तारियाँ आरम्भ हुई। बहुत से नौनिहाल पकड़े गये। तलाशियों

के नाम पर जुल्म का पहाड़ ढाया गया। जेलों में भी भारत के इन सपूतों पर जुल्म का पहाड ढाया गया। उनकी आत्मा को कुचलने की पूरी-पूरी कोशिश की गयी लेकिन अंग्रेज सरकार का दम टूट गया। वीर अडिग रहे। लगभग दो वर्ष तक मुकदमा चला। रामप्रसाद 'बिसमिल' और असफाकउल्ला खाँ आदि फांसी पर लटका दिये गये। कई युवकों को काले पानी की सजा मिली। लेकिन आजादी की ज्योति इस क्षेत्र मे भी ठंढी न हुई। काकोरी अभियान के मुखिया चन्द्रशेखर आजाद और भगतसिंह आदि पुलिस के हाथ न आये। पार्टी का काम जारी रहा। साइमन कमीशन के लाहौर भ्रमण के समय लाला लाजपत राय की छाती पर लाठियों का वार करने वाले असिस्टेण्ट पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट सैन्डर्स को लाहौर में कोतवाली के सामने गोली मार दी गयी और लाला लाजपत राय की मृत्यु का बदला लिया गया।

इसके बाद सरकारी दमन ने और जोर पकड़ा। २० मार्च, १९२९ को सरकार ने संघटित मजदूरों और युवक नेताओं पर हमला किया। "बम्बई की गिरनी कामगर यूनियन के नेता तथा बगाल, युक्त प्रात और पजाब के मजदूर नेता गिरफ्तार कर लिये गये।"* सभी गिरफ्तार व्यक्ति जिनमें काग्रेस महा-समिति के आठ सदस्य भी थे, मेरट ले जाये गये और 'मेरट षड़यंत्र केस' के नाम से उन पर मुकदमा चलाया गया जो लगभग ४॥ वर्ष तक चला।

इस अत्याचार के दौरान मे ही दिल्ली की असेम्बली मे दो बम फेंके गये और साथ ही फेंके गये 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' के लाल पर्चे जिनमें अंग्रेज हुकूमत को चेतावनी दी गयी थी। बम फेंकने वाले थे दो नौजवान—स्वर्गीय सरदार भगतसिंह जो सन् १९३१ में अपने दो साथियो के साथ फाँसी पर लटका दिये गये (लाहौर षडयंत्र केस) और बटुकेश्वर दत्त जिन्हें आजीवन कारावास की सजा दी गयी। भगतसिंह को फासी की सजा सैंडर्स हत्याकाड मे मिली। असेम्बली बम काड मे उन्हे भी आजीवन कारावास की सजा दी गयी थी। लाहौर षडयंत्र केस के अन्य बन्दी यतीन्द्रनाथ दास ने जेल मे होने वाले अत्याचार के विरोध मे ६१ दिन तक अनशन कर के प्राण उत्सर्ग किया (१९२९)।

बमकाड के मुकदमे मे सरदार भगतसिंह ने बहुत शानदार वक्तव्य दिया था जिससे सारा भारत हिल उठा था।

"आकाश गर्ज उठा। सरकार घबड़ा गयी। अप्रैल में १५ हजार कपड़ा मजदूरों ने बम्बई में हड़ताल शुरू की जो छः मास तक जारी रही। जमशेदपुर

* जवाहरलाल नेहरू—'मेरी कहानी'—पृ० सं० २७५

में ताता के लोहे और इस्पात के कारखाने में, ईस्ट इण्डियन रेलवे में, बंगाल की जूट मिलों मे भी हड़तालें हुईं—कलकत्ता के मेहतरों और पालिका कर्मचारियों ने भी हड़ताल की। सरकार ने दमन शुरू किया। गिरफ्तारियाँ और तलाशियाँ हुईं। साहित्य जब्त किया जाने लगा। सरकारी अधिकारियों की हिम्मत पस्त हो गयी। सन् १८५७ के वार्षिकोत्सव के दिन विद्रोह होने का डर उन्हें सताने लगा। मेरठ में ६ मई को असाधारण दृश्य नजर आया। चारों ओर सेना और पुलिस फैली हुई थी। बिना कड़ी जाँच पड़ताल के न तो कोई शहर से बाहर जा सकता था, न शहर में आ सकता था।"*

इनकी पृष्ठ-भूमि में दो बिल थे जिन्हें पास करने पर सरकार तुली हुई थी—(१) पब्लिक सेफ्टी बिल और (२) ट्रेड डिस्प्यूट बिल। जिस दिन ट्रेड डिस्प्यूट बिल असेम्बली में पास हुआ, उसी दिन अर्थात् ८ अप्रैल को असेम्बली में बम फेंका गया था।

पब्लिक सेफ्टी बिल को मेरठ षड्यंत्र केस पर प्रभाव डालने वाला बता कर असेम्बली के अध्यक्ष विट्ठल भाई पटेल ने दो अप्रैल को 'मेरठ षड्यंत्र केस' की समाप्ति तक उस पर विचार न करने की व्यवस्था दी। सरकार न मानी। ८ अप्रैल को बम काड के बाद कड़े पहरे मे असेम्बली की बैठक जब पुनः आरम्भ हुई तो अध्यक्ष ने फिर यह व्यवस्था दी कि 'बिल अनियमित है।' उन्होने सरकार के रूख को अध्यक्ष की सत्ता के लिए चुनौती कहा। "दूसरे दिन वाइसराय लार्ड अरविन ने दोनों धारा सभाओं मे भाषण किया और घोषणा की कि 'सरकार के लिए पब्लिक सेफ्टी बिल मे प्रस्तावित अधिकारों को अविलम्ब प्राप्त करना अत्यावश्यक है।' तदनुसार उन्होने अध्यादेश (आर्डिनेन्स) जारी करके अधिकारियों को अपनी इच्छा के अनुसार अनियंत्रित सत्ता सौंप दी।"†

बढ़ते हुए सरकारी दमन को देखते हुए २४ मई, १९२९ को गांधी जी की प्रतिरोध योजना पर विचार करने के लिए बम्बई मे कांग्रेस की [illegible] की बैठक हुई। गांधीजी के प्रस्ताव का सार यह रहा कि अगले अगस्त मास तक कांग्रेस के रजिस्टर मे ७॥ लाख स्त्री-पुरुषों का नाम चढ़ा होना चाहिये। महासमिति ने निश्चय किया कि प्रातीय कांग्रेस कमेटियों मे प्रात की जनसंख्या

---

* जी० डी० तेंदुलकर—'महात्मा' खंड २, पृ० सं० ४७२

† पट्टाभि सीतारमय्या—'कांग्रेस का इतिहास' खंड १, पृ० सं० २७२

के चौथाई से कम चार आने वाले सदस्य होने चाहिये और प्रांतीय कमेटी में कम से कम आधे जिलों के प्रतिनिधि होने चाहिये।

बम्बई मे मेरठ षड़यंत्र केस के बंदियों की सहायता करने का भी निश्चय हुआ। एक समिति बनायी गयी जिसके अध्यक्ष मोतीलाल नेहरू थे।

३१ अगस्त, १९२९ को वाइसराय लार्ड अरविन ने घोषणा की—"ब्रिटिश सरकार ने मुझे स्पष्टतः यह घोषित करने का आदेश दिया है कि १९१७ की घोषणा मे यह अभिप्राय असदिग्ध है कि भारत को अन्त मे उपनिवेश का दर्जा मिले।" इस घोषणा मे भारत का विधान तैयार करने के सम्बन्ध में गोलमेज सम्मेलन बुलाने का भी संकेत था लेकिन तिथि का पता नहीं था। जवाहरलाल नेहरू के शब्दो मे इस "ऐलान के शब्द बडी चालाकी से भरे थे जिनका मतलब 'बहुत कुछ' भी और 'कुछ नहीं' भी हो सकता था और हममे से कई को तो यह साफ मालूम होता था कि 'कुछ नहीं' मिलेगा।"*

इस घोषणा के बाद १ नवम्बर को दिल्ली मे काग्रेस कार्यसमिति की बैठक हुई और बाद मे हुआ नेताओ का सम्मेलन। सयुक्त सम्मेलन ने कुछ शर्तों के साथ वाइसराय की घोषणा मंजूर की।

२३ दिसम्बर को कई नेता वाइसराय से मिलने वाले थे। इसी दिन दिल्ली से एक मील दूर वाइसराय की ट्रेन के नीचे बम फटा। वाइसराय बच गये किन्तु उनका एक नौकर घायल हुआ। फिर भी वार्ता हुई। कांग्रेस की ओर से गाधी जी और मोतीलाल नेहरू तथा अन्य लोगों की ओर से जिना, तेजबहादुर सप्रू और विट्ठल भाई पटेल ने उनसे मुलाकात की। गाधी जी ने यह 'आश्वासन मागा कि गोलमेज सम्मेलन की काररवाई पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य को आधार मान कर होगी, वाइसराय ने यह वचन देने में असमर्थता प्रकट की।

२५ दिसम्बर, १९२९ को पडित जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में काग्रेस का लाहौर अधिवेशन आरम्भ हुआ। कलकत्ता में राष्ट्र की माग को स्वीकार करने के लिए सरकार को एक वर्ष का समय दिया गया था। ३१ दिसम्बर को ठीक मध्य रात्रि मे यह अवधि समाप्त हुई और कांग्रेस ने 'पूर्ण स्वतंत्रता' को अपना लक्ष्य घोषित कर दिया। इस सम्बंध मे स्वीकृत प्रस्ताव मे कहा गया "कांग्रेस यह घोषणा करती है कि नेहरू कमेटी में वर्णित सारी योजना समाप्त समझी जाय। काग्रेस आशा करती है कि अब समस्त काग्रेस

---

* 'मेरी कहानी'—पृ० सं० २८४

पंथी अपना सारा ध्यान भारत की पूर्ण स्वाधीनता को प्राप्त करने में ही लगायेंगे। चूंकि स्वाधीनता का आन्दोलन संघटित करना और कांग्रेस की नीति को उसके नये ध्येय के अधिक से अधिक अनुकूल बनाना आवश्यक है, इसलिए यह कांग्रेस निश्चय करती है कि कांग्रेस पंथी और आन्दोलन में भाग लेने वाले दूसरे लोग भावी निर्वाचनों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में भाग न लेंगे। काग्रेस कौंसिलों और कमेटियों के मौजूदा काग्रेस सदस्यो को अपने पदो से इस्तीफा देने का आदेश देती है। यह काग्रेस अपने रचनात्मक कार्य-क्रम को उत्साह पूर्वक पूरा करने के लिए राष्ट्र से अनुरोध करती है और महासमिति को अधिकार देती है कि वह जब और जहां चाहे, आवश्यक प्रतिबंधों के साथ सविनय अवज्ञा और कर-बंदी तक का कार्य आरम्भ कर दें।"*

इस अधिवेशन के तुरंत बाद श्रीनिवास आयंगर और सुभाषचन्द्र बोस ने काग्रेस डेमोक्रेटिक पार्टी के नाम से एक नये दल की स्थापना की घोषणा की और कहा कि "नया दल भारत की पूर्ण स्वाधीनता के ध्येय को हानि पहुँचाये बिना ध्येय की पूर्ति के लिए अन्य दलों से भी सहयोग करने का भरसक प्रयत्न करेगा।"

काग्रेस ने २६ जनवरी को स्वतत्रता दिवस मनाना तय किया। इसके लिए प्रतिज्ञा पत्र भी तैयार किया गया जिसमें अन्य बातों के अतिरिक्त यह भी कहा गया कि "हमारा पक्का विश्वास है कि यदि हम केवल अपना स्वेच्छापूर्ण सहयोग वापस ले लें और उत्तेजना के वातावरण में भी हिंसा के बगैर कर देना बंद कर दें तो अमानवीय शासन का अंत निश्चित है।"

"स्वाधीनता दिवस, २६ जनवरी १९३०, आया और बिजली की चमक की तरह उसने हमे बता दिया कि देश में सरगर्मी और उत्साह है। उस दिन हर जगह बड़ी-बड़ी सभाएँ हुई जिनमें बगैर भाषणों और प्रवचनों के शान्ति और गम्भीरता से लोगो ने आजादी की प्रतिज्ञा की। सभाएँ और जलूस बड़े प्रभावशाली थे।....इसके बाद तो घटनाएँ एक के बाद एक इस तरह घटने लगी जैसे नाटक में रस की पराकाष्ठा के समय होता है।" ‡

फरवरी, सन् १९३० तक काग्रेस की कार्य-कारिणी आन्दोलन के सम्बंध में किसी निर्णय तक न पहुँच सकी। अंततः आन्दोलन के सम्बन्ध में उसने सम्पूर्ण अधिकार महात्मा गांधी को सौंप दिये। ६ मार्च, १९३० को महात्मा

---

* पट्टाभि सीतारमय्या—'कांग्रेस का इतिहास'—खंड १, पृ० सं० २८४

‡ नेहरू—'मेरी कहानी'—पृ० सं०—३०७

गांधी ने वाइसराय को एक पत्र लिखा जिसमें नमक कानून तोड़ने का अपना इरादा उन्होंने जाहिर कर दिया और साथ ही उन शर्तों का भी उल्लेख कर दिया जिनको स्वीकार करने पर आन्दोलन रुक सकता था। शर्तें इस प्रकार थीं—(१) सम्पूर्ण मद्य निषेध ( २ ) विनिमय की दर घटा दी जाय और एक रुपया एक शिलिंग चार पेंस के बराबर माना जाय, ( ३ ) जमीन का लगान आधा कर दिया जाय और उस पर कौंसिल का नियत्रण रखा जाय ( ३ ) नमक कर उठा दिया जाय ( ५ ) सैनिक व्यय में अविलम्ब पचास प्रतिशत कमी की जाय, (६) बड़ी-बड़ी नौकरियों का वेतन कम से कम आधा कर दिया जाय ( ७ ) भारतीय समुद्र तट को केवल भारतीय जहाजों के लिए सुरक्षित रखने का कानून पास किया जाय ( ८ ) राजनीतिक मुकदमे वापस ले लिये जॉय, ( ६ ) १२४ ए. धारा और १८१८ का तीसरा रेगुलेशन उठा दिया जाय और निर्वासित भारतीयों को लौट आने दिया जाय ( १० ) खुफिया पुलिस उठा दी जाय अथवा उस पर जनता का नियत्रण हो ( ११ ) आत्मरक्षार्थ हथियार रखने का लाइसेंस दिया जाय और इस पर जनता का नियंत्रण रहे।

नमक कानून को तोड़ने का गांधी जी का इरादा लोगों को बड़ा अटपटा लगा। शर्तें पेश करने की बात भी समझ में न आयी। लेकिन इनमें राष्ट्र को जगाने की अद्भुत शक्ति थी जो समय पर आपमें आप प्रकट हो गयी।

वस्तुतः आंदोलन फरवरी में ही आरम्भ हो गया था। कांग्रेस के आदेश के अनुसार फरवरी, १९३० तक कौंसिलों के १७२ सदस्य त्याग-पत्र दे चुके थे। कलकत्ता में सुभाष बाबू और उनके ११ साथियों को एक-एक वर्ष की कड़ी कैद की सजा मिल चुकी थी। गांधी जी की उपर्युक्त घोषणा के बाद इस आंदोलन को बल मिल गया।

१२ मार्च को साबरमती आश्रम से गांधी जी का दाण्डी ( गॉव ) अभियान आरम्भ हुआ जहाँ पहुँच कर नमक कानून तोड़ना था। इससे पूर्व सरदार पटेल रवाना हो चुके थे जिन्हें बीच में ही सरकार ने गिरफ्तार कर लिया था।

५ अप्रैल को गांधी जी दाण्डी पहुँचे। ६ अप्रैल को उन्होंने समुद्र तट पर पड़े नमक को उठा कर कानून तोड़ा। यहाँ कोई गिरफ्तार नहीं किया गया। इसी दिन देश के अनेक भागों में नमक कानून तोड़ा गया। "नमक सत्याग्रह की छुट्टी क्या मिली, देश में एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक आग-सी लग गयी।"* "ऐसा मालूम हुआ कि जैसे कोई बटन दबा दिया गया। अचानक

---

* पट्टाभि सीतारमय्या—'कांग्रेस का इतिहास' खंड १, पृष्ठ संख्या ३१०

सारे देश में, शहरों और गाँवों मे, जिधर देखो रोज नमक बनाने की धूम मच गयी।"*

सत्याग्रहियों को पीटने और उन्हें यातनाए देने मे सरकार भी पीछे न रहीं। समाचार-पत्रों का मुँह बन्द करने के लिए उसने १९१० का प्रेस कानून लागू किया।

दाण्डी यात्रा के बाद महात्मा जी ने धरसाना के नमक कारखाने पर धावा करने का निश्चय किया और इस सम्बन्ध में वाइसराय को जो पत्र लिखा उसमे स्पष्ट कर दिया कि—"ईश्वर ने चाहा तो धरसाना पहुँच कर नमक के कारखाने पर अधिकार करने का मेरा इरादा है। मेरे साथी मेरे साथ रवाना होगे। जनता को बताया गया है कि धरसाना व्यक्तिगत सम्पत्ति है। यह महज धोखा है। धरसाना पर सरकार का उतना ही नियत्रण है जितना वाइसराय की कोठी पर।"

५ मई को रात मे १ बज कर १० मिनट पर महात्मा गांधी गिरफ्तार कर लिये गये। काग्रेस अध्यक्ष पडित जवाहरलाल नेहरू १४ अप्रैल को ही गिरफ्तार किये जा चुके थे और उनका स्थान मोतीलाल नेहरू ने ले लिया था। गाधी जी की गिरफ्तारी की खबर बिजली की तरह फैल गयी जिसकी व्यापक प्रतिक्रिया हुई। पूरे देश मे हडताल हुई यद्यपि इसके लिए प्रयास नही किया गया था। बम्बई मे ५० हजार से अधिक मजदूरों ने कारखानों से बाहर निकल कर प्रदर्शन किया। रेलवे कर्मचारियों ने भी वहाँ यही किया, शोलापुर मे भीड ने पुलिस को छः चौकिया जला डाली। पुलिस ने गोली चलायी। फलस्वरूप २५ व्यक्ति मरे और एक सौ घायल हुए। हावड़ा मे भी गोली चली। जनता के क्षोभ की ज्वाला धू-धू कर दहक उठी।

गांधी जी की गिरफ्तारी के बाद उनका स्थान अब्बास तैय्यबने ग्रहण किया। वे भी गिरफ्तार कर लिये गये। तैय्यब जी के स्थान पर श्रीमती सरोजनी नायडू आयी और उन्होंने धरसाना के नमक कारखाने पर धावा किया। वे भी गिरफ्तार कर ली गयी। लेकिन संघर्ष जारी रहा। ६२ वर्षीय इमाम साहब के नेतृत्व में पाँच सौ स्वयंसेवको ने धरसाना पर धावा किया। पुलिस ने लाठियाँ चलाई लेकिन सत्याग्रही विचलित न हुए। दो बार लाठियाँ चलाने के बाद पुलिस ने इमाम साहब तथा अन्य नेताओं को गिरफ्तार कर लिया।

इसी प्रकार बड़ाला के कारखाने पर १५ हजार स्वयंसेवकों ने धावा किया,

---

* नेहरू 'मेरी कहानी'—पृ० संख्या ३०६।

गिरफ्तार हुए, लाठियाँ खायी और घायल हुए लेकिन उनका उत्साह न टूटा। वे पूर्णतः अहिंसक बने रहे। पुलिस और फौज के जुल्म का वर्णन चंद शब्दों में नहीं किया जा सकता। उसके लिए तो पृथक से एक पोथा ही लिखना होगा। सक्षेप मे केवल गोलीकांड का मामूली ब्योरा इस प्रकार है—१ अप्रैल के गोलीकाड में कलकत्ता में ८ मरे, ५६ घायल हुए; १५ अप्रैल को कलकत्ता मे ही ३ घायल हुए; १६ अप्रैल के गोलीकाड मे कराची मे २ मरे, ६ घायल हुए; १८, १६, २० अप्रैल को चटगॉव के गोलीकाड मे १२ की मृत्यु, दो घायल; २३ अप्रैल को पेशावर गोलीकांड मे सरकारी आँकड़ों के अनुसार ३० मरे, ३३ घायल: गैर सरकारी ऑकडों के अनुसार यह सख्या ७-८ गुनी अधिक बतायी गयी; २४ अप्रैल को २४ परगना मे १ मरा, ३ घायल; इसी दिन चटगॉव मे भी एक व्यक्ति की मृत्यु; २७ अप्रैल को मद्रास गोलीकाड के फलस्वरूप ३ की मृत्यु, कई घायल; ६ मई को हावडा मे पॉच घायल; ७ मई को चटगॉव मे ७ की मृत्यु, ६ घायल; ८ मई को शोलापुर मे १२ की मृत्यु, २८ घायल; १४ मई को मेमनसिंह मे एक की मृत्यु, ३० से ४० तक घायल; १८ मई को कुर्दू ( झेलम-पंजाब ) मे एक घायल; ६ मई को दिल्ली मे ४ मरे, ४० घायल; २४ मई को बड़ाला मे एक घायल; २६ मई को लखनऊ गोलीकाड के फलस्वरूप ३ की मृत्यु, ४२ घायल; २६, २७ मई को बम्बई ( भिण्डी बाजार ) मे ५ मरे, ६७ घायल; ३० मई को मद्रास मे दो घायल; ३१ मई को मेदिनीपुर मे २ मरे, २ घायल। इनके अतिरिक्त मई के अंतिम सप्ताह मे सीमा प्रान्त मे १७ मारे गये और ३७ घायल हुए। रंगून मे यह सख्या क्रमशः ५ और ३७ रही।

ये सरकारी आकड़े हैं। वास्तविक सख्या कहीं अधिक रही होगी, यह असंदिग्ध है।

३० जून को काग्रेस गैर कानूनी घोषित कर दी गयी और स्थानापन्न अध्यक्ष पंडित मोतीलाल नेहरू को गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हे छः मास की सजा दी गयी।

अगस्त मे बम्बई मे कांग्रेस नेताओं के अतिरिक्त कई सौ महिलाएँ गिरफ्तार की गयी। बारडोली और बोरसद ( गुजरात ) ताल्लुकों में करबन्दी आंदोलन चलाने वालों पर इतना अधिक जुल्म ढाया गया कि ८० हजार व्यक्ति अंग्रेजी सीमा त्याग कर बड़ौदा राज्य के गांवों में चले गये। इस आन्दोलन का नेतृत्व सरदार वल्लभ भाई पटेल ने किया था और यह कांग्रेस को गैर कानूनी घोषित करने की लार्ड अरविन की घोषणा का मुँहतोड

जबाब था। उन्होंने कहा भी था कि 'आज से भारत के प्रत्येक घर को कांग्रेस का दफ्तर और हर व्यक्ति को काग्रेस संस्था होना चाहिये।'

भारत के इस वीर सपूत की वीरोचित घोषणा का बदला अंग्रेजी हुकूमत ने उससे ही नहीं, बल्कि उसकी ८० वर्षीया मा से भी लिया। उनकी मा खाना पका रही थी। उसके खाना पकाने के बर्तन को पुलिस ने उलट दिया और चावल मे पत्थर, बालू और मिट्टी का तेल मिला दिया।

जून मे मकानो की जब्ती और तलाशियों के अतिरिक्त गोलीबार और लाठी चार्ज का भी खूब दौर दौरा रहा। खेरखाई (बंगाल) में गोली चलायी गयी। चेचना मे गोली काड से ६ मरे, १८ घायल हुए। कण्टाई मे गोली काड से २५ व्यक्ति घायल हुए। देशबन्धु मृत्य दिवस (२२जून) पर पुलिस ने कलकत्ता में जलूस पर निर्दयता पूर्वक लाठियां बरसायी। बारीसाल मे एक ही दिन के लाठी चार्ज के फलस्वरूप ५ सौ व्यक्ति घायल हुए। सत्याग्रहियों और उनके सहायको की जायदाद मे पुलिस ने आग लगा दी। कुछ ही दिनों पूर्व एक वर्ष की सजा भुगत कर छूटने वाले सुभाष बाबू पर ३१ दिसम्बर को कलकत्ता मे बेतहास लाठिया बरसायी गयीं। बिहार, मध्य प्रात, युक्त प्रात और पजाब मे भी दमन का बोलबाला रहा। सारा देश अग्रेजो की शक्ल मे खूखार दमन-राक्षस की खूनी काररवाइयों का क्रीडा-स्थल बन गया था!

इसी वर्ष सीमा प्रान्त मे यह प्रसिद्ध घटना घटी कि सीमात गाधी खॉ अब्दुल गफ्फार के अद्भुत अनुशासन प्रिय और अहिंसक अनुगामी पठानों पर गढ़वाली रेजिमेण्ट ने गोली चलाने से इनकार कर दिया। इस सैनिक विद्रोह के नेता चन्द्रसिंह गढ़वाली थे।

सन् १९३० मे क्रान्तिकारी भी चुप न बैठे थे। वे अपने तरीके से काम कर रहे थे। अप्रैल मे ११ सौ युवकों ने चटगाव मे पुलिस शस्त्रागार को लूट लिया था। इन युवकों की बहादुरी और आत्म-त्याग की कहानी बडी रोमांचकारी है। बम्बई, हावड़ा, मद्रास, मुल्तान, लाहौर, बारीसाल, लायलपुर, कानपुर, ढाका, झासी, पेशावर, कलकत्ता, दिल्ली, शेखूपुरा, रावलपिण्डी, अमृतसर, गुजरानवाला आदि मे ट्रेन रोकने, बम फेंकने और अधिकारियों की हत्या की कोशिश की कई घटनाएँ घटी थी। पंजाब विश्वविद्यालय के दीक्षात समारोह के अवसर पर गवरनर पर गोली चलायी गयी थी।

क्रान्तिकारियों की काररवाइयाँ सन् १९३४ तक बराबर जारी रहीं।

जुलाई, १९३० में जब आंदोलन अपनी चरम सीमा पर था, उदारदल के दो नेताओं, सर तेज बहादुर सप्रू और एम. आर. जयकर ने वाइसराय में तथा गाँधी जी अथवा सरकार और कांग्रेस में समझौता कराने की चेष्टा की। दोनों नेता जेल में कांग्रेस नेताओं से मिले। वाइसराय से लिखा-पढ़ी की गयी। नैनी से मोतीलाल नेहरू और जवाहरलाल नेहरू आदि यरवदा जेल में गाँधी जी के पास बात-चीत के लिए भेजे गये। जनवरी तक इस दौड़ धूप का कोई परिणाम नजर न आया। इस बीच नवम्बर में लार्ड अरविन की मई की घोषणा के अनुसार गोलमेज सम्मेलन लन्दन में आरम्भ हो चुका था जो लगभग दो मास तक चला। इसमें कुल ८६ प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इनमें १६ रियासतों के, ५७ ब्रिटिश भारत के और १३ इंग्लैंड के विभिन्न दलों के थे; ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री ने भारत के भावी शासन विधान के सम्बन्ध में जनवरी के तीसरे सप्ताह में ब्रिटिश सरकार की नीति और उसके इरादों की घोषणा इस रूप में की—

"ब्रिटिश सरकार का यह विचार है कि भारत के शासन का उत्तर-दायित्व प्रान्तीय और केन्द्रीय विधान सभाओं पर रखा जाय। सक्रमण काल में खास-खास जिम्मेदारियों का ध्यान रखने की गारण्टी देने के लिए और दूसरी खास-खास परिस्थितियों का मुकाबला करने के लिए उसमे आवश्यक गुंजाइस रखी जाय। अपनी राजनीतिक स्वाधीनता की और अधिकारों की रक्षा के लिए अल्पसंख्यकों को जितनी गारंटी की आश्यकता है, वह भी उसमें हो।

"संक्रमण काल की आवश्यकताएं पूरी करने के लिए जो कानूनी संरक्षण रखे जायेंगे उनमें यह ध्यान में रखना ब्रिटिश सरकार का प्रथम कर्त्तव्य होगा कि सुरक्षित अधिकार इस प्रकार के हों और उन्हें इस प्रकार काम में लाया जाय कि नये शासन-विधान द्वारा निजी शासन की पूरी जिम्मेदारी की ओर बढ़ने में भारत के मार्ग में कोई बाधा न आये।" *

प्रधान मन्त्री ने यह भी कहा था कि "यदि इस बीच वाइसराय की अपील का जवाब उन लोगों की ओर से भी मिला, जो इस समय सविनय अवज्ञा आंदोलन में लगे हैं तो उनकी सेवाएं स्वीकार करने की भी काररवाई की जायगी।"

२६ जनवरी की आधी रात से पूर्व कार्यसमिति के २६ स्थायी और

---

* पट्टाभि सीतारमय्या 'कांग्रेस का इतिहास' खण्ड १ पृ० सं०, ३३६-३७

अस्थायी सदस्य जेल से रिहा कर दिये गये। कड़ी बीमारी के कारण पंडित मोतीलाल नेहरू पहले ही रिहा किये जा चुके थे। ३१ जनवरी और १ फरवरी को कार्यसमिति की बैठकें हुईं जिनमें आन्दोलन जारी रखने का निश्चय किया गया। गोलमेज सम्मेलन का कार्यसमिति पर इतना ही प्रभाव पड़ा कि किसी नये आंदोलन पर उसने जोर नहीं दिया।

६ फरवरी को देश पर वज्रपात हुआ। उसके महान् और अन्यतम नेता पंडित मोतीलाल नेहरू को मौत ने उससे छीन लिया।

१७ फरवरी को लार्ड अरविन से गाँधी जी की समझौता-वार्ता हुई जो १५ दिनों तक चली। अंततः ५ मार्च, १९३१ को दोनों में समझौता होने की घोषणा की गयी।

समझौता-वार्ता के दौरान मे गांधी जी ने भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को, जिन्हें लाहौर षड्यन्त्र केस में फांसी की सजा मिली थी, बचाने की पूरी चेष्टा की लेकिन वाइसराय पर इसका कोई असर नहीं हुआ और सारे देश की माँग ठुकरा कर अंततः अंग्रेज सरकार ने भारत के इन नौनिहालों को चुपके से फांसी पर चढ़ा दिया। लोगों को इसका पता तब चला जब रावी-तट पर इन वीरों की राख मात्र शेष रह गयी।

गांधी-अरविन समझौते से प्रत्यक्षतः कोई लाभ नहीं हुआ किन्तु अप्रत्यक्ष रूप में इससे बहुत बड़ा लाभ हुआ और वह इस रूप मे कि अंग्रेज सरकार ने कांग्रेस की सत्ता स्वीकार की और देश की प्रतिनिधि संस्था के रूप में उससे समझौता करने को बाध्य हुई। जनता के साथ सरकार का समझौता जनता की बढ़ती हुई राजनीतिक शक्ति का प्रतीक था।

जिन शर्तों पर गांधी-अरविन समझौता हुआ, संक्षेप मे वे इस प्रकार हैं—(१) सविनय अवज्ञा आंदोलन बन्द हो। भारत सरकार तथा प्रांतीय सरकारें भी इस सम्बन्ध में अपनी ओर से कोई कारवाई करें (२) भारत में वैध शासन की उसी योजना पर विचार किया जायगा जिस पर गोलमेज कांफ्रेंस मे पहले विचार किया जा चुका है (३) आंदोलन के समय में जिन्होंने ब्रिटिश माल की खरीद-फरोख्त बन्द कर दी थी वे यदि अपना निश्चय बदलना चाहें तो अबाध रूप से उन्हें ऐसा करने दिया जायगा, (४) मादक द्रव्यों के व्यवहार को रोकने के लिए ऐसे उपाय काम में न लाये जायेंगे जिनसे कानून की मर्यादा भंग होती हो, (५) सविनय अवज्ञा आंदोलन के सिलसिले में जो अध्यादेश जारी किये गये हैं, वे वापस ले लिये जायेंगे (६) अध्यादेश नं० १ (१९३१) जो आतंकवादी आन्दोलन के सम्बन्ध में हैं, इस धारा के अन्तर्गत

नहीं आता, (७) १९०८ के क्रिमिनल ला अमेण्डमेंट के मातहत संस्थाओं को गैरकानूनी करार देने के हुक्म वापस लिये जायेंगे, शर्त यह है कि वे सविनय अवज्ञा आन्दोलन के सिलसिले मे जारी किये गये हों, (८) सविनय अवज्ञा के सिलसिले मे चलाये गये मुकदमे वापस लिये जायगे (९) सविनय अवज्ञा के सिलसिले मे ऐसे अपराधों के लिए कैद काटने वाले जिनमे नाममात्र की हिंसा को छोड़ कर और किसी प्रकार की हिंसा या हिंसा के लिए उत्तेजना का समावेश न हों, छोड़े जायेंगे। (१०) जुर्माने, जो वसूल नहीं हुए माफ कर दिये जायेंगे (११) लगान या अन्य करों के सम्बन्ध मे जो चल और अचल सम्पत्ति जब्त की गयी है, वह लौटा दी जायगी, (१२) नमक कानून मे कोई खास परिवर्तन न किया जायगा।

मार्च मे सरदार वल्लभ भाई पटेल की अध्यक्षता मे काग्रेस का अधिवेशन कराची मे हुआ। सरकार समझौते की शर्तों का पूरी तरह पालन नहीं कर रही थी, अतः राजबंदियों को जेलों से रिहा करने के सम्बध मे एक प्रस्ताव इस अधिवेशन मे पास हुआ। कानपुर में साम्प्रदायिक दंगा हुआ जिसकी ज्वाला को शात करने का प्रयास करते समय गणेशशंकर विद्यार्थी शहीद हुए। काग्रेस ने प्रस्ताव स्वीकार कर के इनके बलिदान का आदर करने का भी अनुरोध जनता से किया। डा० भगवानदास की अध्यक्षता मे दंगे की रिपोर्ट तैयार करने के लिए छ व्यक्तियों की कमेटी बनायी गयी। सरकार ने यह रिपोर्ट प्रकाशित नहीं होने दी।

समझौते के सम्बन्ध में कांग्रेस ने यह स्पष्ट किया कि उसका "पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने का उद्देश्य ज्यों का त्यो बना है।" इस अधिवेशन मे ही काग्रेस ने मौलिक अधिकारों के संबंध में महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव भी स्वीकार किया जिसके अनुसार जनता के नैसर्गिक अधिकारों की व्याख्या की गयी।

लार्ड अरविन १८ अप्रैल को भारत से विदा हुए। इससे एक दिन पूर्व लार्ड विलिंगडन ने उनसे चार्ज ले लिया था।

एक ओर दूसरी गोलमेज मे कांग्रेस के भाग लेने की चर्चा थी; दूसरी ओर दमन भी जारी था। "हिन्दुस्तान मे परिस्थितियाँ तेजी से बदल रही थीं। सारे देश में यह हो रहा था—खास कर बंगाल, युक्त प्रांत और सीमा प्रांत मे। बंगाल में तो दिल्ली समझौते से कोई खास फर्क नहीं पड़ा और तनाव जारी रहा बल्कि और भी ज्यादा हो गया। सविनय अवज्ञा के कुछ कैदी छोड़े गये लेकिन हजारों कैदी जेल मे ही रहे! नजरबंद भी जेलों या कैम्पों में पड़े सड़ते रहे। राजद्रोहात्मक भाषणों या दूसरी राजनीतिक प्रवृत्तियों के कारण अक्सर

गिरफ्तारियां होती थीं और आमतौर पर यही महसूस हो रहा था कि सरकार की तरफ से हमला अभी बंद नहीं हुआ है।"*

युक्त प्रांत में किसानों की स्थिति खराब होती जा रही थी। लगान वसूली में जबरदस्ती जारी थी। सामूहिक बेदखलियाँ और कुर्की हो रही थी। सीमा प्रांत में विक्षोभ का वातावरण बना रहा। वहाँ की हुकूमत फौजी हुकूमत सी थी। इसका विरोध करने के लिए खा अब्दुल गफ्फार खा ने—जिन्होंने खुदाई खिदमतगारों को जिन्हें लाल कुर्ती वाले कहा गया, संघटित कर रखा था—आन्दोलन उठाया जिससे यहाँ की सरकार का पारा और चढ़ गया।

६, १० और ११ जून की बैठक मे कार्यसमिति ने यह प्रस्ताव स्वीकार किया था कि "कांग्रेस के रुख के सम्बन्ध में किसी तरह की गलतफहमी फैलने की संभावना को समाप्त करने के लिए गाधी जी गोलमेज सम्मेलन में काग्रेस का प्रतिनिधित्व करें, यदि वहाँ काग्रेस के प्रतिनिधित्व की आवश्यकता हो।"

दमन का दौर जारी रहने पर इस मामले मे पुनः खींचतान आरम्भ हुई। गाधी जी ने वाइसराय को तार द्वारा सूचित किया कि "संयुक्त प्रात, सीमा प्रान्त आदि मे जारी दमन से लगता है कि गोलमेज सम्मेलन मे भाग लेने के लिए मुझे नहीं जाना चाहिये।" इसका एक कारण और भी था। अरविन ने स्वीकार किया था कि काग्रेस प्रतिनिधि मंडल मे मदनमोहन मालवीय, डाक्टर अंसारी और सरोजनी नायडू भी रहेंगी। विलिंगडन ने डाक्टर अंसारी का नाम काट दिया। उनका उद्देश्य काग्रेस को हिन्दुओं की संस्था सिद्ध करना था। गाधी जी ने इसका विरोध किया, फलतः पुनः वाइसराय से उनकी वार्ता हुई। अन्त मे २७ अगस्त, १९३१ को एक समझौता हुआ और गांधी जी गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए लंदन रवाना हो गये।

"सम्मेलन के अधिकतर प्रतिनिधि सरकारी चालों के जाल में फँस गये। सम्मेलन क्या था; भानमती का पिटारा था। उसमें शायद ही ऐसा कोई रहा हो जो अपने अलावा दूसरे का भी प्रतिनिधि रहा हो। कुछ काबिल आदमी थे और मुल्क में उनकी इज्जत भी थी लेकिन शेष बहुत से लोगों के सम्बन्ध मे यह बात नही कही जा सकती थी। कुल मिलाकर राजनीतिक और सामाजिक दृष्टिकोण से वे भारत में राजनीतिक उन्नति के सबसे ज्यादा विरोधी दलों के प्रतिनिधि थे। वे इतने फिसड्डी और प्रगति विरोधी थे कि भारत के लिबरल, जो भारत में बहुत ही 'माडरेट' और फूक फूक कर कदम रखने वाले माने जाते थे, इनकी जमात मे प्रगति के हामी बन कर चमके। ये लोग भारत

* नेहरू—'मेरी कहानी' पृ० सं० ३८७-८८

में ऐसे स्थिर-स्वार्थी वर्ग के प्रतिनिधि थे जो ब्रिटिश सामाज्यवाद से बँधे हुए थे। सबसे ज्यादा प्रतिनिधि तो साम्प्रदायिक झगड़ों के सिलसिले में जो छोटी और बड़ी जातियाँ थी, उनके थे।.....उन्होंने खुल्लमखुल्ला ऐलान कर दिया था कि जब तक उनकी साम्प्रदायिक माँगे पूरी न की जॉयगी, तब तक वे राजनीतिक आजादी लेने को राजी न होंगे।" *

सम्मेलन की अल्पसंख्यक समिति में भाषण करते हुए "गांधी जी ने खरी बातें पेश की। उन्होंने असंदिग्ध भाषा मे स्थिति को साफ करते हुए यह कह दिया कि विभिन्न जातियों को अपने पूरे बल के साथ अपनी-अपनी माँग पर जोर देने के लिए उत्साहित किया गया है।" गांधी जी ने यह भी घोषित किया कि "कांग्रेस किसी ऐसे प्रस्ताव या योजना पर जिससे खुली हवा मे पैदा होने वाली आजादी और उत्तरदायी शासन का वृक्ष कभी न पनप सकेगा, अपनी सहमति प्रकट करने की अपेक्षा, चाहे जितने वर्ष तक भी हो, जंगल में भटकना स्वीकार कर लेगी।" †

पहली दिसम्बर को सम्मेलन समाप्त हो गया। इससे लाभ कुछ न हुआ। साम्प्रदायिक और स्थिर-स्वार्थी वर्गों के तत्वो को उभाड़ने का मौका सरकार को अवश्य मिल गया।

इधर भारत में, गुजरात, युक्त प्रांत, बंगाल और सीमा प्रांत की समस्याएँ बनी रहीं। १४ दिसम्बर, १९३१ को सरकार ने युक्त प्रान्तीय इमरजेंसी आर्डिनेन्स जारी किया। इसके द्वारा प्रान्तीय सरकार को अधिकार दिया गया कि वह स्थानीय अधिकारी या जमींदार को दी जाने वाली किसी बकाया रकम को पावना करार देकर उसे बकाया मालगुजारी के रूप मे वसूल करे। २४ दिसम्बर, १९३१ को सीमा प्रान्त-सम्बन्धी तीन आर्डिनेन्स जारी किये गये। इनमे एक युक्त प्रान्तीय आर्डिनेन्स की भाँति ही था। दूसरे के अनुसार कोई भी अधिकार प्राप्त व्यक्ति किसी भी संदिग्ध व्यक्ति को बिना कारण गिरफ्तार कर के एक दिन तक हिरासत में रख सकता था और प्रान्तीय सरकार द्वारा यह अवधि दो मास तक बढ़ायी जा सकती थी; आदेश की अवहेलना करने वाले को दो वर्ष की कैद की सजा दी सकती थी; किसी भी निर्जा इमारत को प्रान्तीय सरकार अपने अधिकार मे ले सकती थी। इसी प्रकार के और भी व्यापक अधिकार प्रान्तीय सरकार और उसके द्वारा जिला मजिस्ट्रेट को दिये गये थे

---

* नेहरू—'मेरी कहानी'—पृ० सं० ४११-१२

† पट्टाभि सीतारमय्या—'कांग्रेस का इतिहास'—खण्ड १, पृ० सं० ३९९

जो सार्वजनिक जीवन को पंगु बनाने के लिए काफी थे । अन्य आर्डिनेन्स द्वारा प्रान्तीय सरकार को किसी भी संस्था को गैर कानूनी करार देने तथा उसका रुपया-पैसा-सम्पत्ति आदि जब्त करने का अधिकार दिया गया था। ४ जनवरी, १९३२ को चार नये आर्डिनेन्स जारी किये गये (१) इमरजेंसी पावर्स आर्डिनेन्स, (२) अनलाफुल इंस्टीगेशन आर्डिनेन्स, (३) अनलाफुल असोसिएशन आर्डिनेन्स और (४) प्रिवेंशन आव मोलेस्टेशन एण्ड बायकाट आर्डिनेन्स। इसके कारण सरकार के हाथ में व्यापक अधिकार आ गये। यह मालूम हो गया कि सरकार दमन करने पर तुली है और हुआ भी यही।

गांधी जी देश में पहुँचे भी नहीं थे और दमन आरम्भ हो गया था। २५ दिसम्बर, १९३१ को सीमान्त गांधी खाँ अब्दुल गफ्फार खाँ १८१८ के तीसरे रेगुलेशन के अन्तर्गत गिरफ्तार कर लिये गये। उनके भाई डा० खाँ साहब भी पकड़ लिये गये। पं० जवाहरलाल नेहरू और टी० के० शेरवानी कार्यसमिति की बैठक में भाग लेने तथा गांधी जी का स्वागत करने बम्बई गये थे। २८ दिसम्बर को गान्धी जी बम्बई पहुँचे। यहाँ नेहरू जी और टी० के० शेरवानी २६ दिसम्बर को ही पकड़ लिये गये थे।

काग्रेस कार्यसमिति की बैठक २९ दिसम्बर को आरम्भ हुई और तीन-चार दिनों तक चलती रही। उसने फैसला किया कि दमन के सम्बन्ध मे सरकार का सन्तोषजनक उत्तर न मिलने पर सविनय अवज्ञा आन्दोलन फिर आरम्भ कर दिया जायगा। इसपर ४ जनवरी सन् १९३२ को गाधी जी और काग्रेस अध्यक्ष सरदार पटेल भी गिरफ्तार कर लिये गये। फिर सारे देश में बड़े पैमाने पर गिरफ्तारियाँ आरम्भ हो गयी। काग्रेस और उससे सम्बधित संस्थाएँ गैर कानूनी करार दी गयी। कांग्रेस भवनों पर सरकार ने कब्जा कर लिया। उसकी सम्पत्ति जब्त कर ली गयी। "इस प्रकार देखते देखते कांग्रेस के पास न तो नेता रहे, न रुपया पैसा, न निवास-स्थान।"*

दमन के बावजूद आन्दोलन आपसे आप भडक उठा। युक्त प्रान्त और बंगाल में जोर-शोर से लगान बन्दी शुरू हो गयी। बिहार मे चौकीदारी टैक्स देना बन्द हो गया। मद्रास, बिहार, मध्य प्रान्त आदि में जंगल कानून भी तोड़ा गया। "बहिष्कार ने बहुत जोर पकडा। इसके एक-एक अंग को चुनकर उस पर शक्ति केन्द्रित की गयी। कई स्थानों में विदेशी कपड़े, ब्रिटिश दवाइयों, ब्रिटिश बंकों, बीमा कम्पनियों, विदेशी शक्कर, मिट्टी का तेल और आम

* 'कांग्रेस का इतिहास' खण्ड १, पृ० संख्या, ४२७—२८

तौर पर ब्रिटिश माल के बहिष्कार का जोरदार आन्दोलन करने के लिए अलग-अलग सप्ताह भी निश्चित किये गये।"* सरकार ने भी आर्डिनेन्सों का पूरा उपयोग किया और लगभग एक लाख व्यक्ति जेलों में ठूस दिये गये।

इस आन्दोलन में महिलाओं और बालकों ने बहुत बड़ी संख्या में भाग लिया। सन् १९३० का आन्दोलन प्रायः नगरों तक सीमित था, लेकिन '३२ का आन्दोलन सुदूर देहातों तक फैल गया। एक विशेषता और थी। पहले राष्ट्रवाद हमलावर होता था, इस बार साम्राज्यवाद हमलावर हुआ।

"कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन मार्च में होने वाला था।...सरकार तुली हुई थी कि अधिवेशन किसी प्रकार भी न होने दिया जायगा। लोगों ने निश्चय किया कि अधिवेशन दिल्ली में होगा। उसके लिए निश्चित दिन घोषित कर दिया गया। पंडित मदनमोहन मालवीय सभापति घोषित किये गये। बहुत से लोग भिन्न-भिन्न सूत्रों से, किसी न किसी तरह नियत दिन के पहले ही दिल्ली पहुँच कर जहाँ-तहाँ ठहर गये। लोगो ने इस बात की घोषणा भी कर दी कि नियत तिथी पर, १० बजे दिन को, घण्टाघर के सामने, चाँदनी चौक मे अधिवेशन होगा। मालवीय जी दिल्ली के लिए रवाना हुए। वह सीधे रेल से दिल्ली तक नही गये, कहीं रास्ते मे मोटर पर हो लिये। गाजियाबाद और दिल्ली के बीच वह गिरफ्तार कर लिये गये। इसकी सूचना भी लोगो को मिल गयी। ठीक अधिवेशन के दिन भीतर-भीतर यह खबर उडा दी गयी कि चाँदनी चौक मे अधिवेशन न हो कर कहीं नयी दिल्ली मे होगा। खबर इस तरह फैलायी गयी कि पुलिस को इस पर विश्वास हो गया। इसलिए उस दिन पुलिस की तैयारी चाँदनी चौक मे न हो कर, दूसरे स्थान पर रही। ठीक समय पर बाहर से आये हुए प्रतिनिधि, जो घण्टाघर के पास ही गलियों मे जहाँ-तहाँ थे, चारो ओर से निकल आये। घटाघर के सामने बीच सड़क पर ही वे जमा हो गये। कांग्रेस के नियमानुसार, मनोनीत सभापति की गैरहाजिरी मे अहमदाबाद के एक मिल मालिक सेठ रणछोरदास सभापति चुने गये। उनका छोटा सा भाषण हुआ।" ‡ इस अधिवेशन में कांग्रेस की रिपोर्ट पढ़ी गयी। प्रस्ताव भी पास हुआ; जिसमें गांधीजी के नेतृत्व मे विश्वास प्रकट किया गया।

काररवाई समाप्त होने पर पुलिस आ गयी। गिरफ्तारियाँ हुईं और लाठियाँ चलायी गयीं। यह काररवाई अप्रैल मे हुई।

---

* 'कांग्रेस का इतिहास' खण्ड १, पृ० सं०, ४२९

‡ डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद—'आत्मकथा' पृ० सं० ३६७

पहले गोलमेज सम्मेलन में अछूत नेता डाक्टर भीमराव अम्बेदकर आदि ने हरिजनों के लिए पृथक निर्वाचन का अधिकार माँगा था। दूसरे सम्मेलन में इस पर और भी जोर दिया गया था। समाज में फूट पैदा करने वाले इस प्रस्ताव का विरोध गाँधी जी ने सम्मेलन में ही किया था। इस पर ध्यान नहीं दिया गया। निर्वाचन और सीटों के सम्बन्ध में निर्णय करने के लिए जनवरी १७ को लोथियन कमेटी भारत में आयी। इस पर गाँधी जी ने भारत मंत्री सैमुएलहोर को सूचित किया कि दलित जातियों के लिए पृथक निर्वाचन की व्यवस्था हुई तो मैं आमरण अनशन करूँगा।

१७ अगस्त को ब्रिटेन के प्रधान मंत्री मैकडानल्ड ने साम्प्रदायिक पंचाट (कम्यूनल अवार्ड) की घोषणा की। इसके अनुसार धारा-सभा में हिन्दुओं और मुसलमानों की सीटें निश्चित की गयी। दलित जातियों को पृथक निर्वाचन में उम्मीदवार होने तथा दोहरे मत प्राप्त करने का हक भी उन्हें हासिल कराया गया। दूसरे ही दिन गाँधी जी ने मैकडानल्ड को यह सूचना भेज दी कि मैं 'अवार्ड' के विरोध में २० सितम्बर को अनशन शुरू करूँगा।

निश्चित तिथि को गाँधी जी ने अनशन आरम्भ कर दिया। इससे देश में हलचल मची। दलित वर्ग, उदार दल तथा अन्य वर्ग के नेता चिंतित हो गये। अततः पूना मे सर्वदल सम्मेलन हुआ। इंग्लैंड में भी ऐसी ही काररवाई हुई। पूना सम्मेलन मे डा० अम्बेदकर भी शामिल हुए। गाँधी जी के अनशन के पाचवे दिन सम्मेलन मे भाग लेने वाले नेताओं ने सर्व सम्मति से एक योजना स्वीकार की। इसके अनुसार दलित वर्गों ने पृथक निर्वाचन का अधिकार त्याग देना स्वीकार किया। बदले में सवर्ण हिन्दुओं ने उन्हें संरक्षण प्रदान करना स्वीकार किया। निश्चय हुआ कि सरकारी निर्णय के अनुसार साधारण निर्वाचनों मे कुल जितनी सीटे दी गयी "उनमें से १४८ दलित जातियों को दी जांय। अवार्ड में इनके लिए ७१ सीटें सुरक्षित की गयी थीं। दूसरी बात यह तय हुई कि प्रत्येक सुरक्षित सीट के लिए दलित जातियाँ प्रारम्भिक चुनाव में उम्मीदवार चुने और आम निर्वाचन में उनमें से एक चुन लिया जाय। पूरा समझौता तब तक कायम रहे जब तक सब की सलाह से उसमें परिवर्तन न किया जाय। दलित जातियों का प्रारम्भिक निर्वाचन दस वर्षों तक जारी रहे।" *

यह समझौता पूना पैक्ट के नाम से मशहूर हुआ। यह यरवदा जेल में

---

* 'कांग्रेस का इतिहास'—खंड १, पृ० सं० ४३४

गाँधी जी के पास भेजा गया और उनकी स्वीकृति के बाद ब्रिटिश सरकार के पास इसे भेज दिया गया। इसके अनुसार ब्रिटिश सरकार ने साम्प्रदायिक पंचाट में संशोधन करना स्वीकार किया और २६ सितम्बर को इसकी घोषणा भी कर दी। गाँधी जी ने अपना अनशन भंग कर दिया। उधर बम्बई में सर्वदल सम्मेलन हुआ जिसमें यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया कि "भविष्य में हिन्दू जाति में किसी को जन्म से अछूत न समझा जायगा। जिन्हें अब तक अछूत समझा जाता रहा है उन्हें अन्य हिन्दुओं की भाँति ही कुओं, पाठशालाओं सड़कों और अन्य सार्वजनिक संस्थाओं का उपयोग करने का अधिकार रहेगा। मौका मिलते ही इस अधिकार को कानून का स्वरूप दिया जायगा।"

इसके बाद गाँधी जी ने जेल से ही हरिजन-उत्थान आन्दोलन आरम्भ किया। सरकार ने तीन-चार दिनों के अन्दर उनसे यह सुविधा छीन ली। उनसे लोगों का मिलना-जुलना बन्द कर दिया गया। दूसरी ओर कट्टर हिन्दुओं ने वाइसराय के पास एक स्मृति-पत्र भेजा और उनसे प्रार्थना की कि हिन्दुओं के धार्मिक मामलों मे हस्तक्षेप न किया जाय।

सन् १९३३ के आरम्भ मे सविनय अवज्ञा और कर-बन्दी आंदोलन शिथिल पड़ गया। फिर भी वह युक्त प्रांत, बंगाल, बम्बई, मद्रास, बिहार और उडीसा आदि प्रान्तों मे किसी न किसी रूप मे जारी रहा अवश्य।

इस वर्ष निषेधाज्ञा के बावजूद कलकत्ता में मार्च मे कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इसकी अध्यक्षता करना मालवीय जी ने स्वीकार किया लेकिन पूर्व की भाति ही इस बार भी मार्ग में ही उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। उनके साथ सैयद महमूद और जवाहरलाल नेहरू की माता स्वरूपरानी आदि कई व्यक्ति थे। वे भी गिरफ्तार कर लिये गये। कांग्रेस के कार्यकारी अध्यक्ष अणे भी गिरफ्तार कर लिये गये। अधिवेशन के लिए विभिन्न स्थानों से निर्वाचित लगभग एक हजार प्रतिनिधि भी कलकत्ता पहुँचने से पूर्व ही जेलों मे पहुँचा दिये गये। कलकत्ता मे भी लगभग पाच सौ व्यक्ति गिरफ्तार हुए। श्रीमती नेली सेन गुप्ता और डा० मुहम्मद आलम आदि पर प्रतिबंध लगा दिया गया। इस प्रकार के अंधाधुन्ध दमन के बावजूद लोग कलकत्ता में अधिवेशन के स्थान पर एकत्र हो ही गये। श्रीमती नेली सेन गुप्ता तथा अन्य बहुत से लोग गिरफ्तार कर लिये गये। यहाँ अजीब दृश्य था। बाहरी भीड़ पर पुलिस लाठियाँ चला रही थी और भीतरी समूह अधिवेशन की कारवाई सम्पन्न कर रहा था।

अधिवेशन की समाप्ति के बाद सरकार ने बहुत से गिरफ्तार व्यक्तियों को

रिहा कर दिया। कुछ पर मुकदमें चला कर उन्हें सजाएँ दी गयीं। नेताओं में मालवीय जी भी रिहा हुए जिन्होंने पुलिस के अमानुषिक कृत्यों की तीव्र आलोचना की और सरकार को कलकत्ता अधिवेशन के समय किये जाने वाले दमन की जाँच कराने की चुनौती दी। भारत-मंत्री ने ब्रिटिश पार्लिमेण्ट में मालवीय जी के उत्तर को द्वेषपूर्ण बताया लेकिन उनके अभियोगों की जाच कराने की हिम्मत उन्होंने नहीं दिखाई।

हरिजनोत्थान में लगे कार्यकर्त्ताओं को नैतिक बल प्रदान करने के उद्देश्य से गांधी जी ने स्वेच्छया ८ मई से २१ दिन का अनशन जेल मे पुनः आरम्भ कर दिया। इसी दिन सरकार द्वारा प्रकाशित विज्ञप्ति में कहा गया कि "उपवास जिस उद्देश्य से किया गया है, उसको सामने रख कर तथा उसके द्वारा प्रकट होने वाली प्रवृत्ति पर ध्यान देते हुए सरकार ने गांधी जी को रिहा करने का निश्चय किया है।" गांधी जी इसी दिन रिहा भी कर दिये गये।

जेल से बाहर आकर गांधी जी ने नैतिक आधार पर आन्दोलन चलाने में असमर्थता प्रकट की। अपनी रिहाई पर उन्हें प्रसन्नता नहीं हुई। उन्होंने अपील की कि आंदोलन छः सप्ताह के लिए स्थगित कर दिया जाय। साथ ही उन्होंने यह भी घोषित किया कि जबतक वल्लभ भाई पटेल, जवाहरलाल नेहरू, खाँ अब्दुल गफ्फार खां प्रभृत्ति नेता रिहा न होंगे, आदोलन का निश्चय वापस न लिया जायगा। सरकार से उन्होंने कहा कि "यदि देश मे शांति अभिष्ट हो तो आदोलन स्थगित होने का लाभ उठा कर उसे चाहिये कि जेलों में बन्द सत्याग्रहियों को रिहा कर दे।"

६ मई, १९३३ को प्रकाशित सरकारी विज्ञप्ति में कहा गया कि "केवल सत्याग्रह स्थगित करने से वे शर्तें पूरी नहीं होती जो कैदियों की रिहाई के लिए रखी गयी हैं। सरकार कांग्रेस से इस मामले मे सौदा करने को तैयार नही है।"

वियेना से विट्ठल भाई पटेल और सुभाष चन्द्र बोस ने जो वही थे, इस आशय का वक्तव्य प्रकाशित कराया कि "सत्याग्रह को बन्द करके गांधी जी ने असफलता स्वीकार की है।" उन्होंने राजनीतिक नेता के रूप में गॉधी जी को असफल घोषित किया।

इस अवस्था मे गाँधी जी ने अपना २१ दिनों का उपवास पूरा किया। तब स्थिति पर विचार करने के लिए १२ जुलाई को पूना में कांग्रेसजनों की गैररस्मी बैठक हुई जिसमें बिना शर्त सत्याग्रह को वापस लेने का प्रस्ताव

रद्द कर दिया गया लेकिन व्यक्तिगत सत्याग्रह की अनुमति भी नहीं दी गयी।

काफी विचार-विमर्श के बाद यह तय हुआ कि वाइसराय से बातचीत करने का अधिकार गाँधी जी को दिया जाय।

इस निश्चय के अनुसार गाँधी जी ने वाइसराय के पास तार भेज कर उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की लेकिन वाइसराय ने उन्हें दो टूक जवाब दे दिया और उन्हें सूचित किया कि 'जब तक कांग्रेस की नीति सविनय अवज्ञा की है, तब तक बातचीत से कोई लाभ न होगा।' फलतः राष्ट्रीय सम्मान की रक्षा के लिए कांग्रेस को कारर्वाई जारी रखनी पड़ी। कार्यकारी अध्यक्ष अणे ने सामूहिक सत्याग्रह और लगान बन्दी आंदोलन तो बन्द कर दिया लेकिन व्यक्तिगत सत्याग्रह की छूट काग्रेसजनों को दे दी गयी।

जुलाई, १९३३ के पूना सम्मेलन के बाद ऐसे कांग्रेसजनों की संख्या में वृद्धि हो रही थी जो निष्क्रियता से मुक्ति प्राप्त करने के लिए कौंसिल-प्रवेश का कार्यक्रम पुनः अपनाने को उत्सुक थे। अंततः ३१ मार्च, १९३४ को डा० अंसारी की अध्यक्षता में दिल्ली में ऐसे काग्रेसजनों का सम्मेलन हुआ जिसमे निश्चय हुआ कि स्वराज्य पार्टी का कार्यक्रम पुनः आरम्भ किया जाय।

२ और ३ मई को रांची मे पुनः काग्रेसजनों का बृहत् सम्मेलन आयोजित हुआ। इसमे स्वराज्य पार्टी की सशोधित नियमावली अपनायी गयी और यह तय हुआ कि आन्तरिक व्यवस्था और आय-व्यय के मामले मे काग्रेस की राय लेने को स्वराज्य पार्टी बाध्य न होगी। नीति-सम्बन्धी व्यापक प्रश्नों पर काग्रेस का ही निर्देश प्राप्त करने तथा उसके अनुसार काम करने का निश्चय भी सम्मेलन में किया गया। सम्मेलन मे जो कार्यक्रम स्वीकृत हुआ, उसके अनुसार कुल राजनीतिक बंदियों की रिहाई, देश का शोषण करने वाले कानूनों और प्रस्तावों का विरोध, मजदूर संघटन, मुद्रा-व्यवस्था और कृषि आदि के मामलों मे सुधार करने की चेष्टा करना तथा कांग्रेस का रचनात्मक कार्य पूरा करना पार्टी के सदस्यों का कर्तव्य माना गया।

कांग्रेस से सम्बद्ध सभी संस्थाएं गैरकानूनी करार दी गयी थी लेकिन स्वतः कांग्रेस की महासमिति इस बंदिश से मुक्त रह गयी थी। १८ और १९ मई को पटना में कांग्रेस महासमिति की बैठक हुई जिसमें स्वराज्य पार्टी के कार्यक्रम की चर्चा हुई और यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ—"चूँकि कांग्रेस मे ऐसे सदस्यों की संख्या बहुत काफी है जो देश की लक्ष्य-सिद्धि के मार्ग मे कौंसिल प्रवेश को आवश्यक समझते हैं, इसलिए महासमिति पंडित मदनमोहन माल-

वीय और डा० अंसारी को एक बोर्ड बनाने के लिए नियुक्त करती है।...यह बोर्ड कांग्रेस की ओर से कौंसिलों के लिए उम्मीदवार खड़ा करेगा और इसे अपना काम पूरा करने, चंदा एकत्र करने, उसे रखने तथा खर्च करने का अधिकार होगा।..."

महासमिति ने गांधी जी की सिफारिश मान कर सत्याग्रह बंद करना स्वीकार कर लिया। इससे पूर्व ७ अप्रैल को गांधी जी स्वयं सत्याग्रह बंद करने की अपील कांग्रेसजनों से कर चुके थे। कांग्रेसजनों ने महासमिति के आदेश का पालन करते हुए २० मई को सत्याग्रह बद कर दिया। जून मे सरकार ने कांग्रेस से सम्बद्ध अधिकतर संस्थाओं पर से प्रतिबंध हटा लिया। सीमा प्रान्त की संस्थाओं तथा हिदुस्तानी सेवादल आदि पर प्रतिबंध कायम रहा। कुछ प्रान्तों की इमारतों पर भी सरकार ने कब्जा कायम रखा। इनमे से कुछ सन् १९३५ के मध्य तक सरकार के अधिकार मे रहीं। कही बंदी रिहा किये और कहीं नहीं। निर्वासन का दण्ड भोगने वालों को भारत आने की इजाजत फिर भी नहीं मिली।

पटना के निश्चय के बाद कांग्रेस कमेटियों का पुनस्संघटन भी आरम्भ हुआ। जून में प्रायः सभी प्रान्तो मे कांग्रेस कमेटियाँ काम करने लगीं।

सन् १९३२, १९३३ और १९३४ मे आतंकवादी कारवाइयाँ भी जारी थीं लेकिन इनकी तीव्रता क्रमशः कम होती गयी। बंगाल मे इनका जोर अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक था। इनका स्थान कांग्रेस के अन्दर एक नयी विचार धारा ले रही थी जो सन् १९३४ मे कांग्रेस के अन्दर ही संघटित नयी संस्था के रूप में सामने आ गयी।

सन् १९१७ की रूसी राज्य-क्राति के प्रभाव से भारत मुक्त न रहा। मार्क्स के सिद्धान्तों ने यहां के विचारको को भी प्रभावित किया जिनके दो भिन्न-भिन्न स्वरूप थे—कम्युनिस्ट और समाजवादी। सन् १९२४ के लगभग यहाँ कुछ युवकों ने कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की जो बराबर सन् १९४२ तक अवैध मानी जाती रही। द्वितीय महायुद्ध मे सरकार की सहायता करने के फलस्वरूप, १९४२ में यह प्रतिबंध-मुक्त हुई।*

सन् १९२५ के दिसम्बर मास मे अखिल भारतीय कम्युनिस्ट सम्मेलन कानपुर में आयोजित हुआ। इसके बाद मजदूरों और किसानों में कम्युनिस्टों ने काम करना आरम्भ किया। कुछ अन्य लोगों का झुकाव भी इस ओर था

---

* डा० एम० बी० राजकुमार–'इण्डियन पोलिटिकल पार्टीज'–पृ० सं० ७०

जो समाजवादी कहलाये। इसके फलस्वरूप सन् १९२८-२९ तक भारत में मजदूर आंदोलन ने काफी जोर पकड़ लिया। इन दो वर्षों में राष्ट्रीय आन्दोलन के सिलसिले में कई बड़ी-बड़ी हड़तालें हुईं। सरकार ने इनका दमन करने के लिए विशेष आर्डिनेन्सों से काम लिया। इस सम्बंध में सन् १९२९ का मेरठ षड्यंत्र केस उल्लेखनीय है। इस मुकदमे के अभियुक्तों में अधिकतर प्रसिद्ध मजदूर नेता थे। मुजफ्फर अहमद को कालेपानी की सजा मिली। एस० एस० डांगे, एन० जोगलेकर प्रभृति को १७-१७ वर्ष की कड़ी कैद की सजा दी गयी। अन्य लोगों को भी भिन्न-भिन्न प्रकार की सजा मिली। अपील में सजा की अवधि कम कर दी गयी। सन् १९३३ तक कई कम्युनिस्ट कार्यकर्त्ता बाहर आ गये। उन्होंने फिर अपना काम जारी किया। जवाहरलाल नेहरू का झुकाव भी मार्क्स के सिद्धान्तों की ओर था। उनकी वजह से भी कम्युनिस्टों और समाजवादियों को बल मिला।

सन् १९३३ के बाद से कम्युनिस्ट विचार धारा का प्रचार अबाध-गति से आगे बढ़ने लगा। कम्युनिज्म पर अनेक लेख प्रकाशित हुए जिनका काफी प्रभाव लोगों पर पड़ा।

सन् १९२६ में युक्त प्रांत की कांग्रेस कमेटी का झुकाव समाजवादी सिद्धान्तों की ओर हुआ। इसकी वजह सम्भवतः इस प्रदेश की भूमि-व्यवस्था थी जैसा कि आगे चल कर उसकी इस मांग से स्पष्ट हुआ कि 'वर्तमान जमींदारी प्रथा नष्ट होनी चाहिये तथा किसान और सरकार के बीच किसी अन्य वर्ग की आवश्यकता नहीं है।' सन् १९२९ में युक्त प्रान्त की कांग्रेस ने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी से समाजवाद के सिद्धांत पर आधारित उपर्युक्त सिफारिश स्वीकार करने का आग्रह भी किया।

सन् १९३०-३१ में वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्त ने काफी जोर पकड़ा और कांग्रेस में ऐसे लोगों की जमात भी एकत्र हो गयी जो गांधी जी द्वारा निर्दिष्ट रचनात्मक कार्यक्रम के बजाय साम्राज्यवाद और उसके पिट्ठू शोषक वर्ग के विरुद्ध मजदूरों और किसानों की सेना खड़ी करने के पक्ष में थे। इन लोगों ने कांग्रेस के अन्दर ही सन् १९३१ में समाजवादी पार्टी की स्थापना की। बिहार के मजदूर नेता प्रोफेसर अब्दुल बारी इसके अध्यक्ष बने। लेकिन शीघ्र ही आन्दोलन आरम्भ हो जाने के कारण यह कार्य आगे न बढ़ाया जा सका।

सन् १९३२ के आन्दोलन में भाग लेने के कारण या इससे अन्य रूप में सम्बद्ध होने के कारण जो लोग गिरफ्तार किये गये, उनमें से समाजवादी विचार-धारा से प्रभावित अनेक प्रमुख व्यक्ति संयोग वश नासिक जेल में रखे

गये। "इनमें अच्युत पटवर्द्धन, अशोक मेहता और जय प्रकाश नारायण आदि शामिल थे। इन लोगों ने नासिक जेल में ही अखिल भारतीय समाजवादी पार्टी कायम करने की योजना बनायी।" * पार्टी के विधान का प्रारूप जेल में तैयार किया गया जो 'तिकडम' से बाहर भेज दिया गया। फलतः इनकी रिहाई से पूर्व ही सन् १९३३ मे बम्बई प्रजा समाजवादी पार्टी की स्थापना हो गयी। इस कार्य में कमला देवी चट्टोपाध्याय और पुरुषोत्तमदास त्रिकमदास आदि का प्रमुख हाथ रहा। मई १९३४ में यह पार्टी अखिल भारतीय पार्टी के रूप में सामने आ गयी। "१७ मई, १९३४ को इसका अखिल भारतीय अधिवेशन पटना में आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता मे हुआ। इसमें यह निश्चय प्रकट किया गया कि कांग्रेस के अन्दर एक अखिल भारतीय समाजवादी संस्था कायम करने का समय आ गया है। एक मसविदा कमेटी नियुक्त की गयी जिसको उक्त सस्था के योग्य कार्यक्रम और विधान तैयार कर के बम्बई अधिवेशन के समय पर पेश करने का भार सौंपा गया। पटना की बैठक के बाद समाजवादी दल की शाखाएं अनेक प्रान्तों में कायम हो गयी।' ‡

नयी विचार-धारा के अन्तर्गत कांग्रेस मे कशमकश का पैदा होना लाजिमी था और कशमकश पैदा हुई। यह कशमकश अपने साथ विनाश का बीज लेकर नहीं आयी बल्कि इसने राष्ट्रीय आन्दोलन को बल प्रदान किया। भारत के राजनीतिक आकाश मे एक नयी चमक पैदा हुई। पहले इसकी झलक अस्पष्ट थी। लेकिन मार्च, १९३४ में कांग्रेस अधिवेशन के समय इसकी चमक साफ-साफ सामने आ गयी जब कि इसी अवसर पर बम्बई में ही सम्पूर्णानन्द जी की अध्यक्षता में समाजवादियों का सम्मेलन हुआ और उन्होंने अपना प्रगतिशील कार्य-क्रम सामने रखा।

यह पहला अवसर था जब न केवल देश की हुकूमत पर अपने अधिकार को जायज बताया गया बल्कि उस व्यवस्था का नक्शा भी पेश कर दिया गया जो वांछनीय थी। निश्चय ही यह राजनीतिक दृष्टि से ही नही बल्कि आर्थिक दृष्टि से भी क्रान्तिकारी कदम था। इसकी दृष्टि व्यापक थी।

उस समय ये माँगे भले ही अजीब लगी हों लेकिन आज इनका महत्व-साफ हो गया है—(१) साम्राज्यवादी युद्धों का विरोध, (२) बड़े-बड़े प्रधान उद्योगों का राष्ट्रीयकरण (३) वैदेशिक-व्यापार पर सरकार का एकाधिकार

---

* डा० एन० बी० राजकुमार—'इण्डियन पोलिटिकल पार्टीज'—पृ० सं० ६१

‡ 'कांग्रेस का इतिहास' खण्ड १—पृ० सं० ४५१

(४) बिना मुआवजा जागीरदारी और जमींदारी की समाप्ति, (५) भूमि का नये सिरे से बटवारा और (६) बालिग मताधिकार। समाजवादियों द्वारा प्रस्तुत कार्य-क्रम में और भी बातें थी। इनका उल्लेख इसलिए किया गया कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के आठ वर्षों के बाद इनमें से कुछ आज भी विवादास्पद बनी हैं।

समाजवादियों के संघटन से कांग्रेस के शरीर में नया खून आया और देश की जिन्दगी को नयी राह मिल गयी। कांग्रेस का सबल पक्ष असेम्बली के चुनावों में ताकत की आजमाइश के लिए तत्पर हुआ लेकिन समाजवादी पक्ष ने इसे व्यर्थ बताया। तत्काल इसका प्रभाव भले ही न पड़ा हो लेकिन युवकों को, जो आन्दोलन की रीढ़ थे, अपनी ओर आकृष्ट करने की इसमें काफी शक्ति थी।

काग्रेस के बम्बई अधिवेशन के बाद गाधी जी उससे अलग हो गये हालांकि काग्रेस को राय मशविरा देते रहना उन्होंने स्वीकार किया।

इसके बाद कौंसिलों में काग्रेस का संघर्ष शुरू हुआ। १ जनवरी, १९३५ को बड़ी असेम्बली का अधिवेशन शुरू होने पर काग्रेस ने वहाँ भूलाभाई देसाई के नेतृत्त्व मे मोर्चेबंदी की और शत्रु-पक्ष को चुनौती देने के लिए तैयार हो गयी। इस कार्य मे उसे कुछ सफलता भी मिली और कई प्रश्नों पर उसने सरकार को शिकस्त दे भी दी लेकिन उस प्रश्न पर उसकी हार हो गयी जिसका सम्बंध 'साम्प्रदायिक निर्णय' से था और जो अगले चंद वर्षों के अन्दर पहाड़ बन कर राष्ट्रीयता की लहर से टक्कर लेनेवाला था।

# चुनाव, मंत्री मण्डल और विचार-संघर्ष

**'स्वराज्य' के नाम पर निरंकुश शासन की प्रतिष्ठा—कांग्रेस में नया जोश नया शासन-विधान ठुकराया गया—चुनाव में कांग्रेस की शानदार विजय देश व्यापी हड़ताल—मुसलिम लीग का रवैया—प्रान्तीय शासन में हस्तक्षेप के सम्बन्ध में वाइसराय की घोषणा—सात प्रान्तों में कांग्रेस की हुकूमत बंगाल में हक सरकार का दमन-चक्र—पंजाब में भी दमन का दौर दौरा—हरिपुर कांग्रेस और वामपंथी—कांग्रेस में आन्तरिक संघर्ष—फारवर्ड ब्लाक का जन्म—देशी रियासतों की स्थिति—अखिल भारतीय देशी राज्य प्रजा परिषद का जन्म—कांग्रेस से सम्बन्ध।**

बहस-मुबाहसा, कमीशनों की जाच और कमेटियों की सिफारिश का नाटक समाप्त करने के बाद ब्रिटेन की संसद ने भारत सरकार अधिनियम ( गवर्नमेंट आव इण्डिया एक्ट ) १९३५ सामने रखा। इसमें कुछ सीमा तक 'स्वशासनाधिकार' प्राप्त प्रान्तों के साथ संघीय शासन-व्यवस्था का स्वरूप निर्दिष्ट था। जो कुछ भी था, महज नाम के लिए, क्योंकि इसमें भी प्रभुसत्ता 'संघ' ( फेडरेशन ) मे निहित नहीं मानी गयी। वह तब भी 'ब्रिटिश-ताज' में निहित रखी गयी। गवरनर जेनरल के निरंकुश अधिकारों में कोई कमी नहीं की गयी। वास्तव में इसमें ब्रिटिश सरकार के अधीन भारत की शासन परिषद के अधिकार बढ़ा दिये गये थे। "ढाँचा ऐसा तैयार किया गया था कि भारतीय जनता के प्रतिनिधि ब्रिटिश नियंत्रित प्रशासन में न तो हस्तक्षेप कर सकते थे, न उसमें सुधार कर सकते थे।"* संघीय विधान सभा में देशी रियासतों की जनता को अँगूठा दिखा दिया गया और प्रतिनिधित्व का अधिकार दिया गया राजाओं को—राज्य परिषद मे कुल सीटों का २।५ और विधान सभा में १।३। "अनुमान लगाया गया था कि संघ की आय का ९० प्रतिशत भाग ब्रिटिश भारत से प्राप्त होगा और १० प्रतिशत देशी रियासतों से।"† फिर

---

* जवाहर लाल नेहरू—'दि डिसकवरी आव इण्डिया' पृ० सं० ३१८

† रजनी पामदत्त—'इण्डिया टुडे' पृ० सं० ४१२

भी उनको उपर्युक्त प्रतिनिधित्व प्रदान करने की व्यवस्था की गयी और यह भी उस दशा मे जब कि रियासतों की आबादी भी भारत की आबादी के १/४ भाग से भी कम थी।

इस प्रतिक्रियावादी सुधार में खराब था ब्रिटिश सरकार से रियासतों, जमीदारों, स्थिर-स्वार्थी वर्ग के लोगों के मजबूत गठबंधन का, ब्रिटिश व्यापार-व्यवसाय के अप्रतिहत संरक्षण का, भारत की वित्तीय और सैनिक शक्ति पर एकाधिकार का। इसके अनुसार वाइसराय साधारण शासक नहीं बल्कि सर्वाधिकार प्राप्त निरंकुश शासक बनाया गया।

'प्रान्तीय स्वशासन' के नाम पर स्वशासन का निर्मम मजाक उडाया गया १९३५ के विधान मे! अनुत्तरदायी केन्द्रीय सत्ता के सर्वशक्तिमान अधिपति वाइसराय को इच्छानुसार कुछ भी करने की छूट तो दी ही गयी, प्रान्तों में उसका गुटका संस्करण भी तैयार कर दिया गया। महामहिम वाइसराय की भाँति प्रान्त के गवरनर को भी वहां के शासन मे हस्तक्षेप करने का, मंत्रिमडल के निर्णय को ठुकराने का तथा प्रान्तीय धारा सभा और मंत्रिमंडल की उपेक्षा कर के अपने विशेषाधिकार द्वारा किसी भी तरह का कानून लागू करने का अधिकार दिया गया। व्यवस्था ऐसी की गयी कि मत्री सिविल सर्विस के अधिकारियों और पुलिस का जो ब्रिटिश शासन की रीढ़ थी, कुछ भी बिगाड़ न सके। मतदान का अधिकार मिला जनता के सिर्फ ११ प्रतिशत लोगों को—यही विधान था जिसे ब्रिटिश हुकूमत ने कहा—'स्वराज्य है!'

भारत के सभी वर्गों के लोगों ने—सभी दलों ने १९३५ के विधान का विरोध किया। बम्बई अधिवेशन मे काग्रेस ने भी सिद्धान्ततः अपना मत प्रकट कर दिया और कहा कि 'केवल संविधान परिषद द्वारा तैयार की गयी शासन-व्यवस्था ही संतोषजनक हो सकती है।' लेकिन फिर भी इस प्रश्न पर काग्रेस मे बहुत तीव्र विवाद हुआ कि क्या १९३५ के विधान के अन्तर्गत प्रान्तों मे सरकार बनाने की जिम्मेदारी ली जाय?

कांग्रेस ने चुनाव लड़ने का निश्चय किया लेकिन नया दृष्टिकोण अपना कर—ब्रिटिश शासन को पंगु बनाने का फैसला करके। उसका यह इरादा छिपा न रहा और आइने की तरह साफ हो गया। सन् १९३६ के लखनऊ अधिवेशन में अध्यक्ष-पद से भाषण करते हुए पंडित जवाहरलाल नेहरू ने स्पष्ट शब्दों में यह सुझाव पेश किया कि 'सभी साम्राज्य-विरोधी ताकतो का संयुक्त मोर्चा बनाया जाय, मध्यम वर्ग के लोग' जिनकी संख्या कांग्रेस मे अधिक थी, 'मजदूरों और किसानों के साथ एक सूत्र में आबद्ध कर दिये

जांय।' उन्होंने समाजवाद में अपनी आस्था भी प्रकट की। यह ऐलान था जिसने निष्क्रिय कांग्रेस में प्राण फूँक दिया और १९३६ से उसकी शक्ति दिन दूनी, रात चौगुनी बढ़ने लगी। नये जोश का दमकता रूप भी चन्द महीनों के अंदर ही सामने आ गया—जब चुनाव घोषणा-पत्र पर स्वीकृति की मोहर लगाने के लिए सन् १९३६ में ही फैजपुर में कांग्रेस के विशेष अधिवेशन का आयोजन हुआ।

दिसम्बर, १९३६ में फैजपुर अधिवेशन द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव में चुनाव के सम्बन्ध में कांग्रेस का यह निश्चित मत घोषित हुआ—"यह कांग्रेस सन् १९३५ के एक्ट और भारत की जनता की इच्छा के विरुद्ध उस पर जबरदस्ती लादे गये विधान को पूरी तरह ठुकराने का अपना निश्चय दोहराती है। कांग्रेस की राय में इस विधान के साथ किसी प्रकार का भी सहयोग भारत की आजादी के संघर्ष के साथ विश्वासघात है। इससे ब्रिटिश साम्राज्यवाद का शिकंजा मजबूत होगा, और होगा और भी अधिक भारतीय जनता का शोषण जो साम्राज्यवादी शासन द्वारा घोरतम दरिद्रता के किनारे पहुँचा दी गयी है। इसलिए कांग्रेस इस विधान को अस्वीकार तथा इससे असहयोग करने का अपना निर्णय पुनः दोहराती है और इसकी समाप्ति के लिए धारा सभाओं के अंदर तथा बाहर दोनों स्थानों पर संघर्ष करने का निश्चय करती है।" घोषणा पत्र में संविधान परिषद द्वारा स्वीकृत शासन-व्यवस्था को ही स्वीकार करने का निर्णय भी पुनः दोहराया गया और घोषणा की गयी कि "विधान सभाओं के लिए निर्वाचित कांग्रेस सदस्य नये विधान के अन्तर्गत पद ग्रहण करें या नहीं, इसका निर्णय चुनाव समाप्त होने के बाद यथासम्भव शीघ्र ही महासमिति करेगी।"

नया विधान, १ अप्रैल, १९३७ को लागू होनेवाला था। फैजपुर कांग्रेस ने तय किया कि इस दिन देश-व्यापी हड़ताल की जाय।

चुनाव-काल में कांग्रेस का विरोध करने के लिए अंग्रेजों के इशारे पर स्थिर-स्वार्थी वर्गों के अनेक दल तैयार हो गये। पानी की तरह रुपया बहाया गया। मतदाताओं के मतों को नीलाम की बोली पर चढ़ाने की नापाक कोशिश की गयी। गाँवों को जमींदारों और उनके गुर्गों ने जी भर कर उधम मचाया। लेकिन सब व्यर्थ। राष्ट्रीयता ने साम्राज्यवाद को धर चपेटा। पण्डित नेहरू के तूफानी दौरे ने प्रतिक्रियावादियों का हर मोर्चा उध्वस्त कर दिया और कांग्रेस की शानदार विजय हुई। अंग्रेज हुकूमत का होश फाख्ता हो गया।

कांग्रेस ने मद्रास, बम्बई, संयुक्त प्रांत बिहार, मध्य प्रान्त और उड़ीसा में

पूर्ण बहुमत प्राप्त किया। सीमा प्रान्त, बंगाल और आसाम में सर्वाधिक शक्तिशाली दल के रूप में उसका अवतरण हुआ! उदार पंथी हर जगह उड़ गये। जस्टिस पार्टी और 'नेशनल एग्रीकल्चरिस्ट पार्टी' आदि सरकार के पिट्ठू दलों ने मुँह की खायी। केवल मुसलिम बहुल सिंध और पंजाब में कांग्रेस विजयी न हो सकी।

अब प्रश्न यह था कि कांग्रेस मंत्रि-मंडल बनाये या न बनाये? इस प्रश्न पर दक्षिण पंथी और वाम पंथी एक मत न थे। इस आड़े समय में महात्मा गाँधी का सहारा लिया गया। उन्होंने समझौते का मार्ग ढूढ़ निकाला। महासमिति में अततः ७० के मुकाबिले में १२७ मत से यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ—

"जिन प्रांतो के विधान मंडल में काग्रेस का बहुमत है, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी वहाँ पद-ग्रहण करने का अधिकार प्रदान करती है और इसके लिए अनुमति देती है लेकिन शर्त यह है कि मंत्रित्व तब तक स्वीकार न किया जायगा जब तक कांग्रेस दल का नेता इस बात से संतुष्ट न हो जाय और सार्वजनिक रूप मे यह घोषित न कर सके कि गवरनर न तो हस्तक्षेप-सम्बन्धी अपने विशेषाधिकार का उपयोग करेगा, न वैधानिक काररवाइयो के सम्बन्ध मे अपने मत्रियों की राय को ठुकरायेगा।"

इस निर्णय के आधार पर सरकार से कांग्रेस की वार्ता शुरू हुई। तीन मास बीत गये। इस बीच १ अप्रैल को जब विधान लागू होनेवाला था, काग्रेस के आह्वान पर सारे देश में व्यापक हड़ताल हुई। मुसलिम लीग ने इस हड़ताल का विरोध किया।

जनवरी, १९३७ को पडित जवाहरलाल नेहरू ने मोहम्मदअली जिना को एक पत्र लिखा। इस पत्र में उन्होने यह विचार प्रकट किया कि "भारत मे केवल दो शक्तियाँ है—( १ ) ब्रिटिश साम्राज्यवाद और ( २ ) कांग्रेस जो भारतीय राष्ट्रवाद का प्रतिनिधित्व करती है।"

कुछ लोगों का यह मत है कि काग्रेस के अध्यक्ष की इस उक्ति से मुसलिम लीग चिढ़ गयी। यह गलत और भ्रामक धारणा है। दर असल उसका रवैया काफी पहले ही बदल चुका था। १९२९ मे जिना द्वारा प्रस्तुत १४ सूत्रीय योजना ने ही यह स्पष्ट कर दिया था कि सम्प्रदायवाद सिर उठाने लगा है और अल्पसंख्यक मुसलमानों के अधिकार की रक्षा के नाम पर मुसलिम लीग उस ओर ही बढ़ने लगी है जिस ओर अंग्रेज और प्रतिक्रियावादी जमीदार उसे बढ़ते देखना चाहते थे।

नेहरू जी ने जो कुछ कहा, वह चुनाव-फल के विश्लेषण पर आधारित

था। चुनाव में कांग्रेस को जहाँ सात प्रान्तों में बहुमत प्राप्त हुआ, वहीं मुसलिम लीग मतदाताओं में से ४.६ प्रतिशत के मत ही प्राप्त कर सकी थी। नेहरू जी के कथन पर मुँह फुलाना बहाना मात्र था। वास्तव में चुनाव के दौरान मे ही वह असली शक्ल में सामने आ चुकी थी। प्रचार के सिलसिले मे वह यह नारा बुलन्द कर चुकी थी कि "इसलाम खतरे मे है और कांग्रेस इसलाम को समाप्त करना चाहती है।"* बिजनौर के चुनाव में यू० पी० मुसलिम लीग पार्लिमेटरी बोर्ड के संयुक्त मंत्री द्वारा प्रकाशित घोषणा-पत्र में साफ-साफ लफ्जों मे ऐलान किया गया था कि "काग्रेस ने मुसलमानों का दमन करने, उन पर हुकूमत करने और अंततः उन्हें पशु बनाने का फैसला किया है।...वह मुसलमानों के धार्मिक दृष्टिकोण मे ऐसा परिवर्तन (ट्रासफारमेशन) करने के लिए कृत-सकल्प है कि अल्लाह के सामने सिजदा करने के बजाय वे हिन्दुओं की भाँति गाँधी और जवाहरलाल के सामने ऐसा करें।"† चुनाव मे लीग की ओर से घडल्ले से ये नारे लगाये गये थे— "काग्रेस-मुर्दाबाद, गाँधी-मुर्दाबाद, हिन्दू काफिर हैं, उन्हें मारने से हम बहिस्त मे जायेंगे।"

इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि नेहरू जी द्वारा प्रस्तुत विश्लेषण को लीग की नाराजी का कारण बताना भ्रमपूर्ण है। वास्तविक बात यह है कि सुरक्षित स्थानों के अनुपात पर ध्यान देते हुए मत्रिमंडलों का संघटन करने की माँग काग्रेस ने ठुकरा दी थी और मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करने का उसका दावा भी काग्रेस ने ठुकरा दिया था। अस्तु, यह आग भड़की तो भड़कती ही गयी। आगे क्रमशः इसका रूप अधिकाधिक भयावह होता गया।

प्रान्तीय शासन मे गवरनर के हस्तक्षेप के सम्बन्ध मे काग्रेस की महासमिति द्वारा निर्दिष्ट आश्वासन प्राप्त किये बिना मंत्रिमंडल न बनाने का काग्रेस का इरादा पक्का देख कर अन्ततः २२ जून, १९३७ को तत्कालीन वाइसराय लार्ड लिनलिथगो (१९३६-४२) ने इस आशय की घोषणा की कि गवरनर अपने मत्रियो से चाहे वे जिस दल के भी हों, झगड़ा मोल न लेगे और विवाद न उत्पन्न होने देने अथवा उसे निपटाने की कोशिश करने मे कुछ भी उठा

---

* अखिल भारतीय कांग्रेस का प्रकाशन—'नेहरू–जिना करेसपौंडेंस' पृ० सं० ३

† वही पृ० सं० ४

‡ वही पृ० सं० ५

न रखेंगे। इस आश्वासन पर कांग्रेस ने पद ग्रहण करना मजूर कर लिया। ब्रिटिश भारत के सात प्रान्तों में उसने अपने मंत्रिमण्डल संगठित किये। कांग्रेस द्वारा मंत्रि-पद ग्रहण किये जाने के बाद प्रत्येक प्रान्त की विधान सभा ने सर्व प्रथम यह घोषणा की—

"१९३५ का कानून विधान सभा की राय में राष्ट्रीय भावनाओं का प्रतीक नहीं है। यह भारत की दासता को कायम रखने वाला है, अतः पूर्णतः असन्तोष-प्रद है। विधान सभा कानून को रद्द करने की माँग करती है। उसकी यह भी माँग है कि वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित संविधान परिषद द्वारा स्वीकृत कानून लागू किया जाय ताकि जनता को अपनी इच्छा और आवश्यकता के अनुसार अपना विश्वास प्रकट करने का अवसर प्राप्त हो।"

बंगाल में फजलुल हक की प्रजा पार्टी का तथा पंजाब में यूनियनिस्ट पार्टी का शासन कायम हुआ। कांग्रेसी सरकार ने अधिकतर राजबन्दियों को मुक्त कर दिया। अखबारों पर लगा प्रतिबन्ध हटा लिया। उसने चेष्टा इस बात के लिए की कि नागरिक स्वतन्त्रता का विकास हो और इसकी आबोहवा में राष्ट्रीय ताकत बलशील हो ताकि आने वाले जमाने में ब्रिटिश साम्राज्यवाद से वह जम कर लोहा ले सके।

पंजाब और बंगाल की हालत बिलकुल उलटी थी। बंगाल में फजलुल हक की सरकार थी जो कलकत्ता में आयोजित 'मुसलिम स्टूडेण्ट्स काफ्रेंस' में प्रत्यक्ष संघर्ष के लिए तैयार रहने के वास्ते मुसलमानों का आह्वान कर चुके थे और इसका विरोध करने वालों से बुरी तरह समझ लेने की धमकी दे चुके थे। * उनके शासन में गिरफ्तारियों का दौर दौरा जारी रहा। युवकों को कुचलने के लिए तरह तरह के आसुरी उपाय अमल में लाये गये। केवल मिदनापुर के २५ हजार युवकों को अपने पास परिचय पत्र रखने और इस प्रकार बराबर आत्मग्लानि की आग में झुलसते रहने के लिए बाध्य किया गया। लगभग दो सौ संस्थाएँ गैरकानूनी बनी रहीं। प्रतिबन्धात्मक आदेशों की संख्या लगभग २५ सौ थी।

पंजाब भी बंगाल से पीछे न था। यहाँ की हुकूमत ने अपने चन्द दिनों के शासन में राजद्रोह के मुकदमों की लम्बी तालिका बना डाली—कई व्यक्ति निर्वासित किये गये। गिरफ्तारियों और तलाशियों का सिलसिला तो न खत्म होने वाला ही दिखाई देता था।

---

* 'नेहरू—जिना करेसपौंडेंस'—पृ० सं० २२

गांधी जी, जो कांग्रेस के चवन्नियाँ सदस्य भी न थे, इन घटनाओं की ओर से उदासीन न थे। उन्होंने राजबन्दियों की ओर से काफी पैरवी की। १९३७ में वह बंगाल में १५ सौ कैदियों को रिहा कराने में सफल हुए। अनशनकारी अण्डमान के बन्दियों का अनशन भी उन्होंने समाप्त कराया और सरकार को इस बात के लिए राजी कर लिया कि यहाँ के बन्दी अपने अपने प्रांत में भेज दिये जाँय। उनका यह प्रयास जब तक सफल हुआ; तब तक अंडमान में बन्दी जीवन की नारकीय यंत्रणाओं का विरोध करने वालो में से तीन बन्दी अपनी जान से हाथ धो चुके थे।

राजबदियों की रिहाई के मामले में बिहार और संयुक्त प्रान्त के गवरनरों ने हस्तक्षेप किया तो स्थिति बिगड़ गयी। मन्त्रिमंडलों ने जब त्याग-पत्र देने की ठानी, गवरनर तभी झुके। फिर भी उनका अधिकार असीम था। प्रान्त की अर्थ-व्यवस्था पर उनका पूर्ण नियत्रण था। कांग्रेसी मन्त्रिमडल बिना थैली के शाह थे। इनकी स्थिति के सम्बन्ध में अगस्त, १९३८ में गाधी जी ने स्वयं यह लिखा था कि "जहाँ तक वास्तविक नियंत्रण का सम्बन्ध है, मन्त्रिगण कठपुतलियों की भाँति ही हैं, कलक्टर और पुलिसवाले गवरनर के संकेत मात्र पर मन्त्रियों को अपदस्थ कर सकते हैं, उन्हें गिरफ्तार कर सकते हैं और जेलों में बन्द कर सकते हैं।"

केवल गाधी जी का ही यह मत न था। काग्रेस के अन्दर भी इस मामले पर कशमकश थी। १९ फरवरी, १९३८ को काग्रेस के हरिपुर अधिनेशन में अध्यक्ष-पद से भाषण करते हुए स्वयं सुभाषचन्द्र बोस ने कहा था—"हम विकट परिस्थिति में पड़े हैं। काग्रेस के अन्दर राष्ट्रवादी और समाजवादी दल में मतभेद है और इस मतभेद की हम अवहेलना नहीं कर सकते। काग्रेस के बाहर ब्रिटिश साम्राज्यवाद हमें ललकार रहा है और हमें उसका सामना करना है।"*

अगले वर्ष यह मतभेद तीव्र रूप में सामने आ गया। वास्तव में लक्ष्य के सम्बन्ध में मतभेद न था—मतभेद था उसे प्राप्त करने के सम्बन्ध में। उद्देश्य तो सामने था ही काग्रेस १९३५ के विधान को ठुकरा ही चुकी थी। हरिपुर अधिवेशन में उसने अपना यह मत पुनः दोहराया और महासमिति ने सर्व सम्मति से यह प्रस्ताव स्वीकार किया—

---

* हरिपुर अधिवेशन की स्वागत समिति का प्रकाशन—'अध्यक्ष श्री सुभाषचन्द्र बोस का अभिभाषण'—पृ० सं० ४८

"कांग्रेस ने नये शासन विधान को ठुकरा दिया है और घोषित कर दिया है कि भारतीय जनता भारत के लिए वही राष्ट्रीय विधान स्वीकार करेगी जो स्वाधीनता की नींव पर खड़ा हो और जिसे जनता विदेशी शक्ति के हस्तक्षेप के बिना संविधान परिषद द्वारा तैयार करेगी। शासन विधान को अस्वीकार करने की इस नीति को मानते हुए भी कांग्रेस ने अनेक प्रान्तों में इसलिए मंत्रित्व ग्रहण किया है कि स्वाधीनता के संग्राम में राष्ट्र की शक्ति बढ़े। प्रस्तावित संघ-योजना के विषय में स्थायी रूप से या थोड़ी अवधि के लिए भी ऐसा विचार नहीं किया जा सकता। भारत के सिर यह संघ-योजना मढ़ी जायगी तो उससे महान् क्षति होगी और उसके वे बंधन और भी मजबूत होंगे जिनके द्वारा साम्राज्यवादी सत्ता ने उन्हें अपने अधीन कर रखा है। संघ शासन की यह योजना शासक के मुख्य-मुख्य कर्तव्यों का उत्तरदायित्व हमसे छीन लेती है

"कांग्रेस संघ शासन के आदर्श के विरुद्ध नहीं है, पर उत्तरदायित्व के सवाल छोड़ देने पर भी सच्चे संघ में ऐसे स्वतन्त्र प्रान्त होने चाहिए जिनकी स्वतंत्रता और जहाँ नागरिक अधिकार प्रायः समान हो और उनके प्रतिनिधि प्रजातांत्रिक निर्वाचन द्वारा चुने गये हों। जो भारतीय रियासतें इस संघ में शरीक हों, उन्हें भारतीय प्रान्तों के समान ही प्रतिनिधि संस्थाएँ, उत्तरदायी शासन, नागरिक स्वतंत्रता और संघीय संसद के लिए प्रजातांत्रिक निर्वाचन पद्धति स्वीकार करनी चाहिये, नहीं तो प्रस्तावित संघ शासन भारत की एकता को बढ़ाने के बदले फूट की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देगा और राष्ट्र को घरेलू तथा बाहरी झगड़ों के दलदल में फँसा देगा।

"इसलिए कांग्रेस प्रस्तावित योजना की पुनः तीव्र निन्दा करती है और प्रान्तीय तथा स्थानीय कांग्रेस कमेटियों, देश की जनता, प्रान्तीय सरकारों तथा मंत्रियों से अनुरोध करती है कि इस योजना का श्रीगणेश ही न होने दें।

"जनता की स्पष्ट रूप से प्रकट की हुई इच्छा के विरुद्ध यदि यह योजना लादने की चेष्टा की जाय तो उसका तरह-तरह से सामना किया जाना चाहिये तथा प्रान्तीय सरकारों और मंत्रियों को चाहिये वे उसके साथ सहयोग करने से अपना हाथ खींच लें।

"यदि ऐसा संकट उपस्थित हो तो अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को यह अधिकार है और उसे यह अनुमति दी जाती है कि इस मामले में किये जाने वाले विरोध का कार्यक्रम वह ठीक करे।"

हरिपुर अधिवेशन के बाद ही कांग्रेस का वामपक्षी दल उपर्युक्त प्रस्ताव के अनुरूप आचरण करने पर तुल गया। दक्षिण पंथियों को यह आशा थी

कि इस प्रश्न पर सरकार से समझौता हो जायगा। सन् १९३८ के दौरान में सरकार के प्रतिनिधियों तथा कांग्रेस के कुछ नेताओं के बीच कई बार व्यक्तिगत रूप में बातचीत भी हुई जो वाम पंथियों को रुचिकर न प्रतीत हुई। इसका परिणाम भी सामने आ गया।

अगले वर्ष अर्थात् सन् १९३९ में दक्षिण पंथियों की समझौतावादी नीति के विरुद्ध तथा सरकारी संघ योजना के विरुद्ध देश-व्यापी आंदोलन आरम्भ करने के राजनीतिक प्रश्न के आधार पर सुभाषचन्द्र बोस ने पुनः कांग्रेस के अध्यक्ष-पद का चुनाव लड़ने का फैसला किया। यह अभूतपूर्व बात थी। कांग्रेस के अध्यक्ष का निर्वाचन निर्विरोध होता आया था। इस बार पट्टाभि सीतारमय्या को अध्यक्ष चुना जाने वाला था। कांग्रेस की कार्यकारिणी और स्वयं गांधी जी उनके पक्ष में थे। इसके बावजूद सुभाषचन्द्र बोस अपने निश्चय से विरत न हुए। उन्होंने प्रचण्ड विरोध का सामना करते हुए चुनाव लड़ा और विजयी हुए। उन्हें १५७५ मत प्राप्त हुए और उनके प्रतिद्वंद्वी पट्टाभि सीतारम्मया को १३७६। इस हार पर गांधी जी ने कहा था 'पट्टाभि की हार मेरी हार है।'

मार्च, १९३९ मे कांग्रेस का अधिवेशन त्रिपुरी में हुआ। कांग्रेस अध्यक्ष की सवारी यद्यपि खूब ठाटबाट से निकली तथापि मतभेद की खाई न पट सकी। सुभाष बाबू आन्दोलन छेड़ने के पक्ष में थे। यूरोप में युद्ध होने वाला था और उनकी दृष्टि मे यह समय आंदोलन के अनुकूल था। गांधी जी का मत था कि अभी आन्दालन आरम्भ करने का समय नहीं है। दोनों पक्ष मे गहरी कशमकश पैदा हो गयी। पंडित गोविन्द वल्लभ पंत ने १६० प्रतिनिधियों द्वारा हस्ताक्षरित एक प्रस्ताव अध्यक्ष को दिया। यह महासमिति में पेश किये जाने के लिए था लेकिन अध्यक्ष ने इसकी अनुमति न दी। हाँ, विषय समिति में इसे पेश करने की इजाजत उन्होंने दे दी जिसने १३५ के मुकाबिले में २१८ मतों से इसे स्वीकार कर लिया। इस प्रस्ताव में गांधीजी के नेतृत्व तथा उनकी नीति में पुनः विश्वास प्रकट किया गया था और कहा गया था कि अध्यक्ष गांधी जी की सलाह से कांग्रेस की कार्यकारिणी के सदस्यों को चुने।

सुभाष बाबू और गांधीजी के बीच कांग्रेस कार्यकारिणी के संघटन के प्रश्न पर होने वाली वार्ता विफल हुई। गांधी जी ने यह मत प्रकट किया कि इस विषय पर राय देना अध्यक्ष पर दबाव डालना होगा। उन्होंने पुरानी कार्यकारिणी की बैठक बुलाने का सुझाव दिया जिसे सुभाषबाबू ने स्वीकार कर लिया। सरदार वल्लभ भाई पटेल ने इस बैठक में भाग नहीं लिया। दोनों

पक्षों की मिली-जुली कार्यकारिणी संघटित करने के अपने प्रयास में विफल होने पर अप्रैल, १९३९ में सुभाष बाबू ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। कांग्रेस की महासमिति ने उनके स्थान पर डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद को अध्यक्ष चुना। सुभाष बाबू ने 'फारवर्ड' ब्लाक नामक सस्था का संघटन करना आरम्भ किया। इसका कार्यक्रम त्रि-सूत्री था—( १ ) कांग्रेस का बहुमत अपने पक्ष में करने की चेष्टा करना, (२) वाम पंथियों का संघटन और (३) स्वतन्त्रता के लिए आन्दोलन छेड़ना।

कांग्रेस समाजवादियों ने अध्यक्ष के चुनाव में तो सुभाष बाबू का समर्थन किया था लेकिन गोविन्द वल्लभ पंत के प्रस्ताव पर मतदान के समय वे तटस्थ रहे। जब फारवर्ड ब्लाक संघटित हुआ तो उन्होंने इसका समर्थन किया।

काग्रेस महासमिति की बैठक जून मास में बम्बई में हुई जिसमें काग्रेसजनों को हिदायत दी गयी कि प्रान्तीय काग्रेस के आदेश के बिना किसी प्रकार के आन्दोलन में वे भाग न ले। इसका मतलब फारवर्ड ब्लाक के कार्यक्रम से उन्हें विरत रखना था। सुभाष बाबू बंगाल प्रान्तीय काग्रेस के अध्यक्ष थे। उन्होंने और उनकी कार्यकारिणी ने महासमिति के आदेश का विरोध किया और सारे देश से इसका विरोध करने की अपील की।

अगस्त में काग्रेस कार्यकारिणी की बैठक वर्धा में हुई। उसने बंगाल के कांग्रेस अध्यक्ष को मुअत्तल कर दिया और यह निर्णय किया कि 'सुभाषचन्द्र बोस अगले तीन वर्ष तक किसी भी चुनाव में भाग न ले सकेंगे।' कांग्रेस द्वारा परित्यक्त इस अनूठे देश भक्त ने अंग्रेजी हुकूमत से लोहा लेने के लिए तब दूसरा रास्ता अख्तियार किया जिसके फलस्वरूप आजाद हिंद फौज की रोमांचकारी गाथा सामने आयी।

जब ब्रिटिश भारत की यह दशा थी, देशी रियासतों में दमन का बोल बाला था। ब्रिटिश भारत में जागी चेतना का असर यद्यपि रियासतों की जनता पर पड़ा था और वह भी जाग उठी थी, फिर भी उसकी परिस्थितियाँ ब्रिटिश भारत की जनता की परिस्थितियों से सर्वथा पृथक थी। ब्रिटिश भारत में आन्दोलन एक साथ उठ खड़ा होता था लेकिन शेष भारत की जनता सैकड़ों छोटी-बड़ी रियासतों में बटी थी। लगभग छः सौ एक रियासतों में छोटे-बड़े निरंकुश राजाओं का प्रभुत्व था। इन रियासतों में चूं तक करना भी गुनाह समझा जाता। पुरानी सामंतवादी प्रथा की तेज तलवार हमेशा जनता के सिर पर लटकती रहती। सार्वभौम सत्ता के रूप में ब्रिटिश हुकूमत का इशारा मात्र जनता पर जुल्म का पहाड़ ढाने के लिए काफी होता।

"कांग्रेस की नीति शुरू से यह रही कि वह देशी रजवाड़ों और रियासतों के अन्दरूनी मामलों में हस्तक्षेप न करेगी।"* लेकिन जब ब्रिटिश भारत में जागर्ति उत्पन्न हुई तो उसका असर देशी रजवाड़ों की प्रजा पर पड़े बिना नहीं रह सकता था। वहां भी राज्य के शासन में अधिकार पाने की इच्छा और अभिलाषा उत्पन्न हुई। वहाँ की नादिरशाही के कारण इस अधिकार की आवश्यकता भी खूब महसूस होने लगी। वहाँ भी लोगों ने कुछ संघटन शुरू किया। वहाँ की जनता भी ब्रिटिश भारत के राजनीतिक आंदोलन मे भाग लेने लगी और इस प्रकार यहाँ के विचारों को अपने साथ रियासतों मे ले जाने लगी। इस प्रकार कांग्रेस की यह नीति कि वह हस्तक्षेप न करेगी, खटकने लगी।"† फलतः, १९२० मे काग्रेस ने रियासतों की प्रजा को अपनी रियासत के पास के ब्रिटिश भारत के प्रान्त की काग्रेस कमेटी मे भाग लेने का अधिकार दे दिया। बाद मे कुछ रियासतों मे काग्रेस कमेटियाँ बन गयी। सन् १९२१ मे काग्रेस ने इस शर्त के साथ इन कमेटियों को स्वीकार कर लिया कि महासमिति के आदेश के बिना वे कोई आन्दोलन आरम्भ न करेगी। बड़ौदा में 'प्रजा मण्डल' की नींव पड़ी। दक्षिण की रियासतो मे जन संघटन अस्तित्व मे आये लेकिन कुल मिलाकर रियासतों की जनता काफी पीछे रही।

चेतना का स्त्रोत फूट चुका था। धीरे धीरे उसने धारा का रूप धारण किया और १९२६ मे अखिल भारतीय देशीराज्य प्रजा परिषद का जन्म हुआ। इस प्रकार रियासतों के नरेशो के संघटन—चैम्बर आव प्रिंसेज के, जो प्रथम महायुद्ध के समय कायम हुआ था,‡ मुकाबले मे एक जनसघटन भी सामने आ गया। इसका प्रथम अधिवेशन एलोर के उदारपथी नेता दीवान बहादुर एम० रामचन्द्रराव की अध्यक्षता मे अगले वर्ष (१९२७) बम्बई मे हुआ जिसमे दक्षिण की कई छोटी रियासतों और हैदराबाद, मैसूर, त्रावनकोर-कोचीन, बड़ौदा आदि के अतिरिक्त राजपूताना की रियासतो के प्रतिनिधियो ने भी भाग लिया। यह क्रम मंदगति से दूसरे वर्ष तक चला। १९२९ मे इसने रियासतों मे भी उत्तरदायी शासन की स्थापना की माग की। कहीं कुछ सुधार हुए, कहीं इनकी चर्चा छिड़ी। कुछ रियासते शिक्षा आदि की दृष्टि से ब्रिटिश भारत के प्रान्तों से आगे बढ़ी किन्तु जनता को शासन में अधिकार न मिला।

---

* डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद—'आत्मकथा' ४३६

† डा० राजेन्द्रप्रसाद—'आत्मकथा'—पृ० सं० ४३७-३८

‡ के० एम० पणिक्कर—"इण्डियन स्टेट्स"—पृ० सं० २४

सन् १९३७ में मैसूर में रियासती जनता पर गोली चली। फलतः दस मरे और बीस घायल हुए। अन्य रियासतों में भी दमन हुआ। इस हवा का सहारा पाकर राजनीतिक चेतना की आग आपसे आप भड़क उठी। मामला १९३८ में कांग्रेस के हरिपुर अधिवेशन में उठा और कांग्रेस को अपनी नीति में कुछ परिवर्तन करने के लिए बाध्य होना पड़ा। उसने यह यह स्वीकार किया कि "रियासतों में कांग्रेस कमेटिया, कांग्रेस की कार्यकारिणी के अन्तर्गत और उसके निर्देश के अनुसार काम करेगी।" साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि "वे कांग्रेस के नाम पर किसी प्रकार की प्रत्यक्ष काररवाई न कर सकेगी।" इससे रियासती जनता को सन्तोष न हुआ और उसने कांग्रेस की तीव्र आलोचना की। यह सही भी था; क्योंकि देशी रियासतों की जनता को अपने से पृथक रखने का कोई नैतिक आधार कांग्रेस के पास नहीं था। वह भी देशी राज्य प्रजा परिषद के तत्त्वावधान मे स्वतन्त्रता की लडाई लड़ने के लिए उत्सुक थी। उसका आन्दोलन वृहत्तर भारत की आजादी की लडाई का ही अंग था। उसने भी आन्दोलन किया था। मैसूर गोली काण्ड के बाद त्रावनकोर मे भी सन् १९३८ मे उसकी क्रियाशीलता सामने आ गयी थी। यहाँ की कांग्रेस को रियासती हुकूमत ने अवैध घोषित कर दिया था। रियासती जनता ने तरह-तरह से इस आज्ञा का उलंघन किया। हुकूमत ने लाठी चार्ज किया। इससे भी आन्दोलन न रुका तो उसने गोली चलायी। लगभग सात सौ व्यक्ति जेल में ठूँस दिये गये। इन परिस्थितियों में १९३९ तक आन्दोलन चलता रहा और अन्त मे गांधी जी के हस्तक्षेप से बन्द हुआ।

इसी प्रकार मैसूर, काठियावाड़ की रियासतों, उड़ीसा और राजपूताना की रियासतों तथा हैदराबाद आदि की जनता ने भी अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए ब्रिटिश भारत की जनता की भाँति आन्दोलन किया और राजाओं के जुल्म और सितम को बरदास्त किया। राजकोट के आन्दोलन मे स्वयं गाँधी जी को हस्तक्षेप करना पडा और हुकूमत द्वारा जनता को दिया गया वचन पूरा कराने के लिए उन्होंने स्वयं अनशन भी किया।

जून, १९३९ मे महासमिति के निश्चय के विरुद्ध सुभाष बाबू के विद्रोह के समय तक देशी राज्य-प्रजा सम्मेलन पूर्णतः चेतनाशील हो गया था। कांग्रेस के इस विग्रह-काल में उसकी स्थायी समिति ने एक वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमें कहा गया कि "छोटी और बड़ी रियासतों में, अत्यल्प को छोड़कर, व्यक्तिगत, कुलतन्त्री शासन कायम है। यहाँ जंगल कानून लागू है। टैक्सों का बोझ बहुत अधिक और असह्य है। नागरिक स्वतन्त्रता कुचल दी जाती है। शासकों

का राजाधिदेय ( प्रिवीपर्स ) निश्चित नहीं है। जहाँ यह निश्चित है भी, वहां इस पर कायम नही रहा जाता। एक ओर देशी नरेशों की फिजूल खर्ची और शान-शौकत जारी है और दूसरी ओर जनता अत्यन्त दरिद्र है। दरिद्रता प्रताड़ित दयनीय जनता की गाढ़ी कमाई के धन से शासक विदेशों में मौज लेते हैं और गुलछर्रे उड़ाते हैं। यह व्यवस्था कायम नहीं रह सकती। सभ्य जनता इसे बरदास्त नहीं कर सकती। इतिहास का सारा तर्क इसके विरुद्ध हैं, भारत की जनता का स्वभाव इसके आगे सिर नहीं झुका सकता"—(जून १९३९)।

ब्रिटिश हुकूमत इस व्यवस्था को कायम रखना चाहती थी और इसलिए ही उसने १९३५ के विधान के अन्तर्गत देशी नरेशों को व्यापक प्रतिनिधित्व प्रदान किया था और जनता की नितान्त उपेक्षा की थी। जनता को यह स्वीकार न था और वह इसके विरुद्ध बगावत करने को तैयार थी।

ऐसे ही समय मे यूरोप मे द्वितीय महायुद्ध का श्री गणेश हुआ।

# द्वितीय महायुद्ध और भारत

**द्वितीय महायुद्ध—भारत भी घसीटा गया—वाइसराय की शरारत भरी कारवाई—कांग्रेस की मांग—मुसलिम लीग की घोषणा—कांग्रेसी मंत्रिमंडलों के त्याग-पत्र—राष्ट्रवाद बनाम सम्प्रदायवाद—वाइसराय की घोषणा—लीग का 'मुक्ति दिवस'—देशी नरेशों की राजभक्ति—मुसलिम लीग द्वारा भारत के विभाजन की मांग—हिन्दू महासभा की नीति—युद्ध में सहयोग के लिए कांग्रेस की शर्त—व्यक्तिगत सत्याग्रह आरम्भ—दमनचक्र की तेजी—नरमदल नेता सम्मेलन—वाइसराय द्वारा शासन परिषद संघटित—सभी दलों द्वारा विरोध-प्रकाश—नेताओं की रिहाई—युद्ध भारत के द्वार पर - गांधी जी जिम्मेदारी से मुक्त—क्रिप्स प्रस्ताव।**

३ सितम्बर, १९३९ को इंग्लैण्ड ने जरमनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। भारत की, भारत के किसी वर्ग की राय लिये बगैर उसे भी निरकुश ढग से युद्ध-लिप्त राष्ट्र घोषित कर दिया गया। उसी दिन वाइसराय लिनलिथगो ने अपना भाषण किया और भारत की सभी पार्टियो एव वर्गों से युद्ध में सहयोग देने की अपील की। इसके बाद उन्होंने शिमला में गाधी जी से मुलाकात की। मुसलिम लीग के प्रतिनिधि के रूप में उन्होंने मोहम्मद अली जिना से भी वार्ता की। 'चेम्बर आफ प्रिंसेज' के चासलर से भी मिलना वह नहीं भूले।* जाहिर है कि वाइसराय की पहली ही कारवाई शरारत से भरी थी। 'फूट डालो और राज करो' की नीति उस समय भी उनके दिमाग में चक्कर काट रही थी।

नयी स्थिति पर विचार करने के लिए ८ से १४ सितम्बर तक वर्धा में कांग्रेस की कार्यकारिणी की बैठके हुई। १४ सितम्बर को कार्यकारिणी ने एक प्रस्ताव स्वीकार किया जिसमे उसने घोषित किया—

"कार्यकारिणी ऐसे युद्ध में सहयोग नहीं प्रदान कर सकती जो साम्राज्यवादी आधार पर चलाया जा रहा है और जिसका अभिप्राय भारत मे तथा अन्य देशों

---

* अनिलचन्द्र बनर्जी—'दि मेकिंग आव दि इण्डियन कांस्टीट्यूशन' खंड १, पृ० सं० ५

में साम्राज्यवाद को दृढ़ बनाना है।...इसलिए कार्यसमिति ब्रिटिश सरकार को असंदिग्ध शब्दों में यह घोषित करने के लिए आमंत्रित करती है कि लोकतंत्र और साम्राज्यवाद के संबंध मे उसके युद्ध का उद्देश्य क्या है, नयी व्यवस्था कैसी होगी, ये उद्देश्य भारत पर किस रूप में लागू होंगे और वर्तमान मे इन पर किस प्रकार अमल किया जायगा। क्या उसके उद्देश्यों में साम्राज्यवाद का अंत शामिल है और क्या भारत के साथ स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में व्यवहार किया जायगा जिसकी नीति उसकी जनता की इच्छा के अनुसार परिचालित होगी?"* अपने इस प्रस्ताव मे काग्रेस ने नाजी आक्रमण का विरोध भी खुले शब्दों मे किया।

युद्ध मे सहयोग के सम्बन्ध मे १८ सितम्बर को मुसलिम लीग की कार्यकारिणी ने भी एक प्रस्ताव स्वीकार किया जिसमे कहा गया था कि "यदि मुसलमानों का पूर्ण प्रभावकारी और सम्मानप्रद सहयोग अपेक्षित है तो मुसलमानों मे सुरक्षा और संतोष का भाव उत्पन्न किया जाना चाहिये।"† प्रस्ताव मे विशेष रूप से कांग्रेस शासित मद्रास, बम्बई, मध्य प्रान्त, संयुक्त प्रान्त, बिहार, उड़ीसा, असम और सीमाप्रात के मुसलमानो की स्थिति का उल्लेख किया गया था और तत्कालीन शासन-विधान मे किसी प्रकार का संशोधन करने मे मुसलमानों से परामर्श करने, उनकी सहमति और स्वीकृति प्राप्त करने पर जोर दिया गया था।

इस पर वाइसराय साहब टालमटोल करते रहे। उनका इरादा नापाक और नियत खाम थी। यह जान कर भी काग्रेस ने उतावलापन जाहिर नहीं किया। ६ और १० अक्टूबर को उसकी महासमिति की बैठक पुनः वर्धा में हुई जिसमें स्वीकृत युद्ध-सम्बन्धी प्रस्ताव में उसने कहा—"युद्ध के सम्बन्ध में काग्रेस द्वारा बारबार की गयी घोषणाओं के बावजूद, ब्रिटिश सरकार ने भारत की जनता की सहमति के बगैर उसे युद्ध-लिप्त राष्ट्र घोषित कर दिया और... धारा सभाओं पर व्यापक प्रभाव डालने वाले तथा प्रांतीय सरकारों के अधिकार सीमित करने वाले अध्यादेश (आर्डिनेन्स) जारी कर दिये।... फिर भी, महासमिति, युद्ध और शाति के सम्बंध मे अपने उद्देश्यों का, विशेष रूप से भारत के सम्बन्ध मे, स्पष्टीकरण करने का प्रत्येक अवसर ब्रिटिश सरकार को दिये बगैर अंतिम रूप से किसी निर्णय पर नहीं पहुँचना चाहती। महासमिति अपनी कार्यसमिति द्वारा १४ सितम्बर, १९३९ को दिये गये वक्तव्य

---

* अनिलचन्द्र बनर्जी—'दि मेकिंग आव इण्डियन कांस्टिट्यूशन', खंड १, पृ० सं० ३

† वही पृ० सं० ६

का समर्थन करती है और उस पर अपनी स्वीकृति प्रदान करती है तथा युद्ध एवं शांति के उद्देश्यों को घोषित करने के लिए उसके द्वारा ब्रिटिश सरकार को दिया गया निमंत्रण दोहराती है।"*

लेकिन ब्रिटिश सरकार को इस निमंत्रण की परवाह क्या थी। वह तो युद्ध में भारत के साधनों का पूरा-पूरा उपयोग करने के लिए दृढ़-संकल्प थी। उसने महासमिति के प्रस्ताव की फिर उपेक्षा की और भारत में आर्डिनेन्स राज कायम रखने की कसम खा ली। १८ अक्टूबर को नयी दिल्ली में वाइसराय ने वक्तव्य दिया; लेकिन बिलकुल ऊलजलूल—वास्तविक प्रश्न से परे।

कॉंग्रेस चुप कैसे रह सकती थी? भारत की आजादी की प्राप्ति का पथ प्रशस्त करने की चेष्टा के बिना उसके अस्तित्व का मूल्य क्या था? फिर, इस समय तो साम्राज्यवाद ने उसे खुल्लमखुल्ला चुनौती दे दी थी। उसने यह चुनौती स्वीकार थी।

२२ और २३ अक्टूबर को कांग्रेस की कार्यकारिणी की बैठक पुनः वर्धा में हुई और उसने इस्तीफा देने के लिए कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों का आह्वान किया। फलतः नवम्बर के प्रथम सप्ताह तक सभी कांग्रेसी सरकारों ने त्यागपत्र दे दिये और गवरनरों की निरंकुश सत्ता कायम हो गयी।

इसी दिन मुसलिम लीग ने वाइसराय के १८ अक्टूबर के वक्तव्य की कुछ बातों का स्पष्टीकरण माँगने का फैसला किया और अपने अध्यक्ष को अधिकार दिया कि वह यदि संतुष्ट हों तो भारत के मुसलमानों की ओर से युद्ध में सहयोग और सहायता देने का विश्वास ब्रिटिश सरकार को दिला दें।

इस प्रकार एक ओर भारतीय राष्ट्रवाद का प्रतिनिधित्व करने वाली कांग्रेस साम्राज्यवाद से संघर्ष करने के लिए आगे बढ़ रही थी और दूसरी ओर मुसलिम लीग का सम्प्रदायवाद उसकी पीठ में छुरा भोंकने की तैयारी कर रहा था।

वाइसराय ने अपनी १८ अक्टूबर की घोषणा में कहा था:

"सम्राट की सरकार यह मानती है कि भविष्य में भारत में संघ सरकार की योजना पर विचार आरम्भ करने का मौका आने पर तत्कालीन परिस्थितियों के प्रकाश में इस बात पर पुनः विचार करना आवश्यक होगा कि सन् १९३५ के अधिनियम में निहित योजना की विस्तृत बातें किस हद तक माकूल रहती हैं। सम्राट की सरकार से अब मुझे यह कहने का अधिकार मिला है कि युद्ध का अंत होने पर ब्रिटिश सरकार भारत के विभिन्न समुदायों, पार्टियों और स्वार्थों

* 'पुनश्च रजिस्टर'—१९३९, पृ० सं० २३१

के प्रतिनिधियों से परामर्श करना चाहेगी ताकि विधान मे अपेक्षित सुधार करने की दृष्टि से उनकी सहायता और उनका सहयोग प्राप्त हो सके।"* वक्तव्य में संविधान परिषद का उल्लेख तक नहीं था। औपनिवेशिक स्वराज्य की बात भी गोल-मटोल शब्दों में कही गयी थी।

इसको असन्तोष-जनक मानते हुए काग्रेस कार्यकारिणी ने २२-२३ अक्टूबर को एक फैसला किया जिसके अनुसार काग्रेस मन्त्रिमण्डलों ने त्याग-पत्र दे दिये। इस पर देश की हर गली और हर कूचे में मारु बाजा बजाने की तैयारी लोग करने लगे लेकिन मुसलिम लीग और उसके विधाता जिना ने खुशी की शहनाइयाँ बजाने का फैसला किया! जिना साहब ने २ दिसम्बर, १९३९ को ऐलान किया "मैं चाहता हूं कि सारे भारत में मुसलमान २२ दिसम्बर को 'मुक्ति दिवस' मनाये—इस अभिप्राय से कि अन्ततः काग्रेस शासन का अन्त हुआ और उन्हे त्राण मिला।"†

यह निश्चय देश के लिए मातम का पैगाम था और साम्राज्यवादी हुकूमत के लिए खुशियाँ मनाने का। अग्रेजो ने जरूर खुशियाँ मनायी लेकिन देश ने जिना और मुसलिम लीग की गद्दारी की परवाह न की। वह केसरिया बाना धारण करने के लिए उतावला बना ही रहा।

केवल लीग ने ही गद्दारी नहीं की। उसके साथ अन्य प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ भी थी जिनका यशोगान स्वयं भारतमत्री लार्ड जेटलैण्ड ने किया। १४ दिसम्बर १९३९ को उन्होने हाउस आव लार्डस् (सरदार सभा) मे कहा था—

"ब्राडकास्टिंग और अन्य ऐसे साधनों से जिनका उपयोग अवरुद्ध नहीं है, जरमनी द्वारा किये जाने वाले प्रचार के बावजूद, भारत के देशी नरेश और वहाँ की जनता दैविक और मानवीय विधियों के विरुद्ध नाजी जरमनी द्वारा किये जाने वाले अपराधों के प्रति असंदिग्ध शब्दों मे बराबर अपनी घृणा व्यक्त कर रही है। वाइसराय के युद्ध-कोष में जिसके लिए अभी तक न तो वाइसराय, न गवरनरों द्वारा कोई अपील की गयी है, ७॥ लाख पौंड की रकम एकत्र हो चुकी है।...इसमें गोंदल के महाराज ने 'रायल ओक' (जहाज) के साथ

---

* अनिलचन्द्र बनर्जी—'दि मेकिंग आव दि इण्डियन कांस्टिट्यूशन' खण्ड १—पृ० सं० ४-५

† अनिलचन्द्र बनर्जी—'दि मेकिंग आव दि इण्डियन कांस्टिट्यूशन' खण्ड १, पृ० सं० ७

नष्ट होने वालों के आश्रितों के सहायतार्थ ७५ सौ पौंड दिये हैं। हवाई युद्ध के लिए 'हैदराबाद स्क्वाड्रन' के संघटनार्थ हैदराबाद के निजाम ने उड्डयन मंत्रालय (एयर मिनिस्ट्री) को एक लाख पौंड की रकम दी है। मोटर एम्बुलेंस के लिए रामपुर के नवाब ने एक लाख रुपये दिये हैं—इसी प्रकार के अन्य दान मैं से यह एक है।"* लार्ड जेटलैंड ने कश्मीर और बीकानेर के नरेशों की भी प्रशस्ति की जो साम्राज्यवादी युद्ध में भारतीय सैनिकों का बलिदान कराने को उत्सुक थे।

साम्राज्यवादियों के ऐसे वक्तव्यों की कमी न रही। कांग्रेस के नेताओं ने इनका जवाब दिया लेकिन धैर्य और सजिदगी से। इस वातावरण मे ही मार्च १९४० में उसका अधिवेशन रामगढ़ मे हुआ जिसकी अध्यक्षता के लिए मनोनीत मौलाना अबुलकलाम आजाद का मुकाबला मानवेन्द्र नाथ राय ने किया। चुनाव मामूली था। राय को १८३ और आजाद को १८६४ वोट मिले।

इस अधिवेशन मे मौलाना आजाद ने घोषित किया—"भारत नाजीवाद और फासिस्टवाद को कभी सहन नहीं कर सकता, लेकिन वह ब्रिटिश साम्राज्यवाद से भी ऊब चुका है। यदि भारत स्वतन्त्रता के अपने नैसर्गिक अधिकार से वंचित रहा तो इसका स्पष्ट अर्थ यह होगा कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद अपनी परम्परागत विशेषताओं के साथ, और इन परिस्थितियों मे भी, फूलता-फलता रहा। भारत किसी भी तरह ब्रिटिश साम्राज्यवाद के पनपने मे हाथ नहीं बटा सकता।...स्पष्ट है कि हमारा इरादा असहयोग की दिशा मे आगे कदम बढ़ाना है। जिस स्थिति मे हम आज हैं, हमे यह फैसला करना है कि इस दिशा में हमें आगे बढ़ना चाहिये या पीछे कदम लौटाना चाहिये? लेकिन एक दफा कदम उठा लेने पर उसे पीछे नहीं हटाया जा सकता। कदम रोकने का मतलब पीछे हटना है और हम पीछे हटने से इनकार करते हैं।"†

अंग्रेज सरकार पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। फूट की आग मे भारत को झुलसा कर वह अपना उल्लू सीधा करने मे लगी थी। महायुद्ध आरम्भ होने के बाद वाइसराय ने पृथक-पृथक ५२ नेताओं से मिलने का जो नाटक रचा था, उसका दुष्परिणाम भी क्रमशः सामने आता रहा। दिसम्बर, १९३९ में जिना ने 'मुक्ति दिवस' मनाने की अपील की थी। लगभग तीन मास बाद

---

* 'एनुअल रजिस्टर'—१९३९ पृष्ठ संख्या ४१७

† पट्टाभि सीतारमय्या—'कांग्रेस का इतिहास' खंड २, पृष्ठ संख्या १७९

उन्होंने भारत के विभाजन का प्रस्ताव साफ-साफ शब्दों में सामने ला पटका। मार्च, १९४० में लाहौर में होने वाले मुसलिम लीग के अधिवेशन में अध्यक्ष-पद से जिना ने घोषित किया था—"साधारणतः जैसा समझा जाता है, मुसलमान अल्पसंख्यक नहीं है। राष्ट्र के किसी भी सिद्धान्त के अनुसार वे एक 'राष्ट्र' हैं और उनका अपना देश (होम लैंड), अपना प्रदेश और अपना राज्य होना ही चाहिये। हम चाहते है कि अपने आदर्शों के अनुरूप और अपने लोगों के ज्ञान के अनुसार वे पूर्णतः अपनी राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक उन्नति करें।"*

इस भाषण के आधार पर ही मुसलिम लीग ने लाहौर अधिवेशन में वह प्रस्ताव स्वीकार किया जिसने पाकिस्तान को जन्म दिया।

लीग का मुकाबला करने के जोश में हिन्दू महासभा और भी आगे बढ़ी हुई थी। फरवरी, १९४० मे उसकी कार्यकारिणी ने अंग्रेज सरकार से सहयोग करने का आश्वासन वाइसराय को दिया और साथ ही सभी प्रान्तों से हिन्दुओं को अधिकाधिक संख्या में सेना मे भर्ती करने की माँग तक कर डाली! † इतने से ही उसे सतोष नहीं हुआ। लीग ने काग्रेस का मुकाबिला करने की ठानी थी, फिर वह क्यों पीछे रहती! १८ मई, १९४० को बम्बई मे उसकी कार्यकारिणी की बैठक हुई और उसने घोषित किया कि "काग्रेस हिन्दुओं की ओर से नहीं बोल सकती। उसने वाइसराय से यह निश्चित आश्वासन देने को कहा कि मुसलिम लीग और कांग्रेस के बीच में होने वाला कोई ऐसा समझौता जिसमें हिन्दू सभा एक 'पार्टी' नहीं रहती और जिस पर वह स्वीकृति नहीं प्रदान करती, आमतौर से हिन्दुओं पर लागू न होगा।"‡

यह हाल था उस समय भारत की आन्तरिक राजनीति का, जिस समय यूरोप, जर्मन सैनिकों के पदाघात से थर्रा उठा था। युद्ध-चक्र वहाँ तेजी से चल रहा था। डेंजिग का पतन, चेकोस्लोवाकिया की पराजय, पोलैंड का विनाश हालैंड, बेलजियम और नार्वे पर आक्रमण—ये सभी युद्ध की उस प्रगति-शृंखला की कड़ियाँ थीं जिसकी इति श्री १४ जून, १९४० को फ्रांस के पतन के रूप मे हुई। डनकर्क में मित्रराष्ट्रों की महान् पराजय हो ही चुकी थी। ठीक इसी दिन

---

* अनिलचन्द्र बनर्जी 'दि मेकिंग आव दि इण्डियन कांस्टिट्यूशन'—खंड १, पृ० सं० २२

† 'एनुअल रजिस्टर' १९४० खंड २, पृ० सं० ३३३

‡ वही पृ० सं० ३३४

( १४ जून ) वर्धा में कांग्रेस की कार्यकारिणी की बैठक हो रही थी। दूसरे ही दिन फ्रांस के धराशायी होने का समाचार भारत पहुँचा। कांग्रेस नेताओं की बेचैनी बढ़ गयी, क्योंकि वे स्पष्टतः फासिज्म के विरोधी थे। भारत की सुरक्षा का सवाल सामने आ गया। अहिंसा के प्रयोग के सम्बन्ध में उलझन उत्पन्न हो गयी। लेकिन गाँधी जी का दिमाग साफ था। वह अपने सिद्धान्त पर चट्टान की तरह दृढ़ थे।

कांग्रेस यह समस्या सुलझा न सकी। फलतः बीच का मार्ग निकाला गया और जून, १९४० के प्रस्ताव में कहा गया कि "वह (गांधीजी) स्वीकार करते हैं कि उन्हें अपने ही तरीके से अपने महान् लक्ष्य को प्राप्त करने की आजादी होनी चाहिये इसलिए कांग्रेस उन्हें उस कार्य-क्रम और कारवाई की जिम्मेदारी से मुक्त रखना चाहती है जिस पर उसे बाहरी आक्रमण और देश के भीतर की गड़बड़ी का खयाल रखते हुए भारत की तथा संसार की मौजूदा परिस्थितियों में अमल करना है।"*

इस प्रस्ताव से एक नयी समस्या उत्पन्न हो गयी। लोग सोचने लगे कि क्या कार्यसमिति और गाधी जी एक दूसरे से पृथक होकर अपने-अपने रास्ते, पर चलने के लिए स्वतंत्र हो गये? इस असमंजस की स्थिति मे ही जुलाई १९४० में पुनः कार्यकारिणी की बैठक दिल्ली मे हुई। यहां भी उनके प्रस्ताव के मसविदे की जगह दूसरा मसविदा स्वीकार किया गया। कार्यकारिणी ने पूरी स्थिति की विवेचना करते हुए अपना यह अनुभव प्रकट किया कि "इस समय ब्रिटेन और भारत को जिन समस्याओं का सामाना करना पड रहा है, हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि उन्हें सुलझाने का एक मात्र उपाय ब्रिटेन द्वारा भारत की पूर्ण स्वतंत्रता की स्वीकृति है और इसे तत्काल कार्यरूप मे परिणित करने के लिए उसे केंद्र में एक अस्थायी सरकार कायम करनी चाहिये जो यद्यपि अस्थायी साधन के रूप में बनायी जाय, तथापि वह इस रूप मे स्थापित की जाय कि उसे केंद्रीय विधान सभा के सभी निर्वाचित वर्गों का विश्वास प्राप्त हो और इसके अतिरिक्त प्रान्तों की जिम्मेदार सरकारों का सहयोग भी उसे मिलता रहे।" कार्यकारिणी ने घोषित किया कि इन सुझावों पर अमल हुआ तो कांग्रेस देश की रक्षा के लिए प्रभावशाली संघटन बनाने मे पूरा-पूरा सहयोग देने को तैयार हो जायगी।

कांग्रेस का इशारा साफ था। वह गाधी जी की पूर्ण अहिंसा के सिद्धान्त से

---

* 'कांग्रेस का इतिहास'—खंड २, पृ० सं० २०७-८

भिन्न था। फिर भी सरकार की हालत कुत्ते की टेढ़ी दुम सी ही बनी रही जो लम्बे अर्से तक पत्थर के नीचे दबी रहने पर भी टेढ़ी ही रहती है। ८ अगस्त, १९४० को वाइसराय ने जो वक्तव्य प्रकाशित किया, उसमें पुरानी बातें ही दोहरायी गयीं—पूर्ण स्वाधीनता के प्रस्ताव का जिक्र तक नहीं किया गया। नतीजा यह हुआ कि इसके बाद उन्होंने जब वार्ता करने के लिए कांग्रेस अध्यक्ष मौलाना आजाद को आमंत्रित किया तो आजाद साहब ने आमंत्रण अस्वीकार कर दिया।

दमन का दौर दौरा कभी नहीं रुका। गिरफ्तारियां और तलाशियां जारी थीं। बिना मुकदमा चलाये नजरबंद रखना भी साधारण बात थी। दो हजार से अधिक व्यक्ति जेलों में ठूंसे जा चुके थे। बाध्य होकर कांग्रेस ने अपना रुख पलटा। १५ सितम्बर को बम्बई में महासमिति की बैठक हुई जिसमें आंदोलन शुरू करने का पूरा अधिकार गांधी जी को दे दिया गया।

अपनी नीति के अनुसार गांधी जी ने इस बात की पूरी चेष्टा की कि समझौते का कोई रास्ता निकल आये। सितम्बर के अंतिम सप्ताह में वह दो बार वाइसराय से मिले भी, लेकिन व्यर्थ!

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, दमन जारी था ही। सुभाष बोस, जयप्रकाश नारायण, डाक्टर लोहिया आदि नेता गिरफ्तार किये जा चुके थे। ऐसी दशा में समझौता-वार्ता में गांधी जी की विफलता के कारण लोगों की आँखें उनकी ओर टग गयीं।

गांधी जी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू करने का फैसला किया। १७ अक्तूबर को रण-भेरी बज उठी। इस दिन प्रथम सत्याग्रही विनोबा भावे ने गांधी जी के निर्देश के अनुसार यह ऐलान किया कि "जन या धन से युद्ध में सहायता नदेा हराम है।" चार दिनों तक वह इसे दोहराते रहे और पाँचवें दिन गिरफ्तार कर लिए गये। समाचार पत्रों पर सेंसर की कड़ी चाप चढ़ा दी गयी। सरकार ने मैदान में भी मोर्चे-बंदी कर ली। ६ नवम्बर को नेहरू जी सत्याग्रह करने वाले थे लेकिन इससे पूर्व ही ३१ अक्तूबर को गोरखपुर के वारण्ट पर वह गिरफ्तार कर लिये गये और यहाँ के जिला मजिस्ट्रेट मॉस ने राजद्रोहात्मक भाषण के अभियोग में उन्हें साढ़े चार वर्ष की कैद की सजा दी।

यह आंदोलन कोई बड़ा आंदोलन न था। हर सत्याग्रही गांधी जी की अनुमति से ही सत्याग्रह कर सकता था। फिर भी सरकार ने दमन-चक्र की गति तीव्र कर दी। १७ नवम्बर को उसने सरदार पटेल को नजरबंद कर दिया। ३० दिसम्बर को कांग्रेस अध्यक्ष मौलाना आजाद भी गिरफ्तार कर

लिये गये और उन्हें डेढ़ वर्ष की कड़ी कैद की सजा दी गयी। इस बीच विभिन्न प्रांतों में कांग्रेस के भूतपूर्व मंत्री, सभा सचिव, विधान सभाओं के सदस्य, प्रमुख कांग्रेस कार्यकर्त्ता, कांग्रेस कमेटियों के पदाधिकारी जेलों में ठूंस दिये गये थे। जहाँ जनता ने इसके विरोध में प्रदर्शन किया, वहाँ लाठियाँ चलायीं गयीं और जनता का खून बहाया गया।

तब निर्दल नेता पुनः मैदान में आये और स्थिति को सुधारने का रास्ता ढूँढ़ने लगे। इस बीच नवम्बर के लगभग सुभाष बाबू जो २ जुलाई को ही गिरफ्तार कर लिये गये थे, रिहा कर दिये गये। गांधी जी से उनका पत्र-व्यवहार हुआ जिसमें सुभाष बाबू ने कहा कि "सत्याग्रह के लिए मेरी सेवाएँ आप के अधीन है। लेकिन गांधी जी ने यह कह कर उनकी सेवाएँ अस्वीकार कर दी कि हम दोनों की विचार-धाराओं में महत्त्वपूर्ण और बुनियादी अंतर है।"* इसके बाद जनवरी में सुभाष बाबू गायब हो गये और उनका पता तभी चला जब आजाद हिंद फौज की काररवाइयाँ सामने आयीं।

नमक सत्याग्रह के समय निर्दल नेता तेजबहादुर सप्रू और जयकर ने समझौता कराने की कोशिश की थी। गांधी-अरविन समझौते में भी उनका हाथ था। इस बार उन्होंने फिर कदम उठाया। उनके सुझाव पर मार्च, १९४१ में बम्बई में नरमदल के नेताओं का सम्मेलन आयोजित हुआ। सम्मेलन ने गवरनर जनरल ( वाइसराय ) से शासन परिषद के पुनस्संघटन की माँग की और यह अनुरोध किया कि शासन-परिषद के सदस्य भारतीय हों, रक्षा विभाग भी भारतीयों को सौंपा जाय, युद्ध-काल में यह परिषद सामूहिक रूप से सम्राट के प्रति जिम्मेदार मानी जाय, इसको अन्य उपनिवेशों की सरकारों सी मान्यता दी जाय और ब्रिटिश सरकार घोषित करे कि युद्ध की समाप्ति के बाद निश्चित अवधि के अन्दर भारत को पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य दे दिया जायगा।

इन माँगों में कम से कम एक मांग ऐसी थी जिस पर क्रिप्स प्रस्ताव पर विचार के समय खूब विवाद हुआ और यह माँग थी रक्षा विभाग के सम्बन्ध में। अंग्रेज सरकार यह नहीं समझती थी कि भारतीय इसके योग्य है। वह किसी भी दशा में रक्षा विभाग की जिम्मेदारी छोड़ने के लिए तैयार न थी।

नरम दल नेता सम्मेलन के सुझावों को अस्वीकार करने की घोषणा २२ अप्रैल को भारत मंत्री एमरी ने की और कहा कि "इनमें वर्तमान सरकार में रद्दोबदल की नहीं बल्कि उसके स्थान पर नयी सरकार बनाने की बात कही

---

* 'कांग्रेस का इतिहास'—खंड २, पृ० सं० २५२

गयी है और लड़ाई के दौरान में यह असम्भव है। इनको स्वीकार करने से आन्तरिक वैधानिक समस्याएं पैदा हो जायेंगी। भावी विधान के सम्बन्ध में भी नयी समस्याएं उत्पन्न हो जायंगी।"*

२२ जून, १९४१ को रूस पर जरमनी के आक्रमण के साथ परिस्थितियों ने एक बार फिर पलटा खाया। ब्रिटेन में मजदूर दलों के नेताओं और कुछ अखबारों ने भारत मंत्री एमरी को यह समझाना आरम्भ किया कि बदली हुई स्थिति में भारत-सम्बन्धी नीति भी बदल दी जानी चाहिये। भारत में कम्युनिस्ट तथा उनके समर्थक दो नावों पर सवार हो गये। 'इन लोगों ने रूस की तन-मन और धन से पूरी मदद करने के लिए प्रस्ताव पास किये' यद्यपि इनके सभी-प्रमुख नेता तब भी जेलों में थे।

भारत में उभड़ने वाले विचार-भेद का लाभ उठाने के लिए सदा सतर्क ब्रिटिश साम्राज्यशाही ने भी जल्द ही पैंतरा बदल दिया। २१ जुलाई, १९४१ को वाइसराय ने सर सुलतान अहमद, सर होमी मोदी, सर अकबर हैदरी, श्री अणे, श्री एन० आर० सरकार, श्री राघवेन्द्र राव, सर फिरोज खां नून और रामस्वामी मुदालियर को अपनी शासन परिषद् में शामिल करने की घोषणा की।

वाइसराय की इस काररवाई का कोई अनुकूल प्रभाव यहां नहीं पड़ा। उदारदलीय नेताओं के दूसरे सम्मेलन में जो २६ जुलाई को पूना में हुआ, तेजबहादुर सप्रू ने इसकी कड़ी आलोचना की। जिना साहब इसलिए नाराज हो गये कि वाइसराय ने उनसे बातें नहीं की और उनके अनुयायियों को फोड़ लिया। उन्होंने बंगाल, असम और पंजाब के मुख्य मंत्रियों के विरुद्ध अनुशासन भंग की काररवाई करने की धमकी भी दी, यद्यपि यह व्यर्थ थी; क्योंकि असम के मुख्यमंत्री सादुल्ला के अतिरिक्त अन्य दोनों प्रान्तों के मुख्य मंत्रियों में से कोई भी लीग की टिकट पर निर्वाचित नहीं हुआ था।

सिखों ने वाइसराय की काररवाई को अपना अपमान समझा; क्योंकि एक भी सिख शासन परिषद में नहीं लिया गया था। दलितवर्गों के नेता डा० अम्बेदकर भी लाल-पीले हुए और उन्होंने घोषित किया कि वाइसराय पर भरोसा नहीं किया जा सकता। अस्तु, भारत के सभी वर्गों में असंतोष व्याप्त रहा। कांग्रेस का व्यक्तिगत सत्याग्रह तो जारी था ही। दमनचक्र भी नहीं रुका।

---

* 'कांग्रेस का इतिहास', खंड २—पृ० सं० २६९

१६ अक्तूबर तक कार्यसमिति के सदस्य रिहा होकर वर्धा पहुँच चुके थे। उनका मस्तिष्क डांवाडोल था। गांधी जी को इधर-उधर से सलाह मिल रही थी कि सत्याग्रह बंद कर दिया जाय लेकिन उनका दिमाग दुरुस्त और लक्ष्य साफ था। अक्तूबर के अन्तिम सप्ताह में उन्होंने भ्रम का निवारण करते हुए साफ तौर घोषित किया कि "कि सत्याग्रह को त्याग देना बेवकूफी होगी।"

नवम्बर आरम्भ होने के साथ ही सरकार ने कैदियों को रिहा करना आरम्भ कर दिया। नयी दिल्ली से एक विज्ञप्ति प्रकाशित की गयी जिसमें कहा गया कि "सरकार इस नतीजे पर पहुँची है कि आंदोलनकारियों का अपराध रस्मी और सांकेतिक था, इसलिए उन्हें रिहा किया जाता है। इनमें पंडित नेहरू और कांग्रेस अध्यक्ष मौलाना आजाद भी शामिल है।" मौलाना आजाद तुरंत रिहा कर दिये गये। ४ दिसम्बर को नेहरू जी भी रिहा कर दिये गये। उन्होंने कहा—"जेल की तंग चहारदीवारी से बाहर निकल कर भारत जैसे विशाल कैदखाने में आना कोई खुशी की बात नहीं है।"

ब्रिटिश सरकार ने भारत पर मेहरबानी नहीं की थी। दिसम्बर में सुदूरपूर्व में जो घटनाएं घटीं, उनसे ब्रिटेन का सिंहासन डोल उठा था। सत्याग्रहियों की रिहाई सम्भवतः इनका ही प्रतिफल रहा।

७ दिसम्बर को बिना चेतावनी दिये पर्लहाबर (हवाईद्वीप) पर जापान ने आक्रमण कर दिया था। उसने मित्र राष्ट्रों के २४० वायुयान नष्ट-भ्रष्ट कर डाले थे, फौजी अड्डों को उड़ा दिया था। फलतः ३३०३ व्यक्ति मरे अथवा लापता हुए। दूसरे दिन ब्रिटेन, अमेरिका आदि ने जापान के विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी। बस, जापानियों ने तूफान की तरह बढ़ना आरम्भ कर दिया था। एक दिन के ही अंतर पर जापानी हवाई जहाजों ने मलाया के पास 'ब्रिटिश नौसेना की शान के प्रतीक 'प्रिंस आव वेल्स' और 'रिपल्स' को समुद्र के गर्भ में विलीन कर दिया था। इस घटना से ब्रिटेन में बड़ा हाहाकार मचा। इसका शोर शांत भी नहीं हुआ था कि १५ दिसम्बर को ब्रिटिश सैनिकों ने होनोलूलू (हांगकांग) खाली कर दिया। जापानी आगे बढ़े और एक सप्ताह के बाद ही २३ दिसम्बर को उनके एक बड़े हवाई दस्ते ने रंगून पर प्रचंड रूप से गोलाबारी की। इससे युद्ध भारत के द्वार तक आ गया था।

भारत के राष्ट्रीय नेता फासिज्म और सैनिकवाद की विजय के विरुद्ध थे। उनकी सहानुभूति लोकतांत्रिक देशों के साथ थी। वह नहीं चाहते थे कि ब्रिटिश सरकार की सैनिक कारवाई में बाधा पड़े। इसके साथ ही वे भारत के राष्ट्रीय सम्मान का सौदा भी नहीं कर सकते थे। यही कारण है कि

राष्ट्रीय सरकार और बाद में संविधान सभा को आमंत्रित करने की मांग पूरी होने पर हर तरह से ब्रिटिश सरकार की सहायता करने का आश्वासन उन्होंने अनेक बार दिया था। ब्रिटिश सरकार ने हर बार देश में फूट भड़काने की ही कोशिश की। इस पर भी गांधी जी तथा अन्य नेताओं ने हुकूमत को परेशानी में नहीं डाला। व्यक्तिगत सत्याग्रह में लगभग २५ हजार व्यक्ति जेल गये लेकिन इससे सरकार के काम में कोई बाधा नहीं पहुँची। यही उनके पाक मकसद का सबूत था।

सत्याग्रह में दमन के बावजूद फासिज्म और सैनिकवाद के बढ़ते हुए खतरे की ओर से उन्होंने आंखे नहीं फेरी।

२३ दिसम्बर, १९४१ को बारदोली में कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक हुई। यह वही समय था जब युद्ध भारत के द्वार के निकट पहुँच रहा था। कांग्रेस कार्यकारिणी ने अपने सम्मान को बचाते हुए एक बार फिर बीच का रास्ता ढूढ़ने की कोशिश की। फासिज्म का विरोध करने के लिए इस सिलसिले में उसने गांधी जी के नेतृत्व से पृथक हो जाना भी स्वीकार किया। यह बात थी जो युद्ध में ब्रिटेन की मदद करने के उसके इरादे को अच्छी तरह जाहिर करती थी।

कार्यकारिणी ने घोषित किया—"हाल में हुई राजनीतिक बंदियों की रिहाई महत्त्वहीन है।...क्योंकि सरकारी घोषणा से साफ जाहिर है कि इसका सम्बंध नीति में किसी प्रकार के परिवर्तन से नहीं है।...फिर भी कार्यकारिणी उस नयी परिस्थिति पर पूरी तरह ध्यान देना चाहती है जो इस लड़ाई के विश्व-व्यापी रूप धारण कर लेने तथा भारत के द्वार तक उसके आ पहुँचने के कारण पैदा हो गयी है। स्वाभाविक है कि भारत की सहानुभूति आक्रान्त लोगों और स्वाधीनता की रक्षा के लिए लड़ने वालों से हो। किन्तु आजाद भारत ही राष्ट्रीय आधार पर देश की रक्षा की जिम्मेदारी अपने कंधों पर उठा सकता है और लड़ाई के परिणाम-स्वरूप जो बड़े-बड़े उद्देश्य सामने आ रहे है, उनकी रक्षा कर सकता है।"*

सैनिक जिम्मेदारी लेने के पक्ष में गांधी जी न थे। इसकी सूचना उन्होंने कार्य-कारिणी को दी जिस पर उसने गांधी जी के नेतृत्व की महत्ता स्वीकार करते हुए भी "उन्हें उस जिम्मेदारी से" मुक्त कर देने का फैसला किया "जो बम्बई के प्रस्ताव के अनुसार उन्हें सौंपी गयी थी।"

---

* 'कांग्रेस का इतिहास' खण्ड २, पृ० सं०, ३३२

जिन परिस्थितियों में कांग्रेस ने यह फैसला किया, उनके प्रकाश में प्रजातंत्र के प्रति उसकी आस्था साफ नजर आ जाती थी लेकिन फिर भी ब्रिटिश सरकार के कानों पर जूँ न रेंगी यद्यपि उसके दोस्त अमेरिका के कुछ महापुरुष भी उसकी हठवादिता को अनुचित समझने लगे थे।

अगस्त, १९४१ में ब्रिटेन के प्रधान मंत्री चर्चिल तथा अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने अतलान्तक समझौते पर हस्ताक्षर कर के पीड़ित राष्ट्रों के प्रति अपनी नीति घोषित की जो बाद में संयुक्त राष्ट्रों द्वारा भी स्वीकार की गयी। यह घोषणा-पत्र क्या था ? इसमें क्या कहा गया था ? यह एक महत्त्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय दस्तावेज है जिसमे कहा गया था—"अपनी इच्छानुसार अपने देश की सरकार बनाने के लोगों के अधिकार की हम इज्जत करते है। हम यह चाहते उन्हें सार्वभौम सत्ता और स्वशासन पुनः प्राप्त हो जिनसे यह बल-पूर्वक छीन लिया गया है।"†

लेकिन भारत के लिए इसमे क्या था ? ९ सितम्बर, १९४१ को सरकार की ओर से अधिकृत रूप मे दिये जाने वाले अपने वक्तव्य मे चर्चिल ने अतलातक घोषणा-पत्र की परिधि से भारत, बरमा तथा साम्राज्य के अन्य भागों को पृथक कर दिया और कहा कि "अतलान्तक सम्मेलन मे आरम्भिक रूप मे हमारे दिमाग मे यह बात थी कि यूरोप के जो राष्ट्र इस समय नाजी जुए के नीचे हैं उनके राष्ट्रीय जीवन में सार्वभौम सत्ता और स्वशासन का पुनः सस्थापन हो।"‡

यह आचरण भारत की आत्मा पर निर्दयता पूर्वक बर्छी चलाने जैसा ही था। भारत ने तो यह महसूस किया ही, साथ ही विदेशो के सुलझे हुए कुछ राजनीतिज्ञों को भी चर्चिल की बात खटकी। इनमे वेंडेल विल्की भी थे जिन्होंने १९४२ में यूरोप, पश्चिमी एशिया और सुदूरपूर्व का दौरा किया था तथा जो अमेरिका के राष्ट्रपति-पद के लिए रूजवेल्ट के मुकाबिले मे चुनाव लड़ चुके थे।

विल्की साहब ने चर्चिल के भाषण की आलोचना इस रूप मे की थी—

"प्रायः प्रत्येक देश के जिसका भ्रमण मैंने किया, प्रधान मन्त्री और परराष्ट्र मंत्री ने मुझसे पूछा—क्या इसका (चर्चिल के वक्तव्य का) यह अभिप्राय है कि अतलातक घोषणा-पत्र केवल पश्चिमी यूरोप के सम्बन्ध मे लागू किया जायगा। मैंने उत्तर दिया—'मैं नहीं जानता कि चर्चिल साहब का मतलब क्या है लेकिन मैं समझता हूँ कि उनका इरादा वही नहीं है जो उन्होंने कहा। प्रश्न-कर्त्ताओं ने निर्विवाद रूप में मेरे जवाब को अधीरता के

† रजनी पामदत्त—'इण्डिया टुडे'—पृ० सं० ४५२

‡ वही पृ० सं० ४५३

साथ कानूनी और निरर्थक बता कर ठुकरा दिया। यही कारण है कि मुझे उस समय बहुत परेशानी हुई जब बाद में विश्व में हलचल पैदा करने वाली यह बात चर्चिल ने कही कि—"मैं सम्राट के साम्राज्य को विघटित करने के लिए प्रधान मंत्री नहीं बना हूँ।"*

इसके बावजूद कांग्रेस ने फिर एक बार सहयोग का हाथ बारदोली में बढ़ाया लेकिन ब्रिटिश सरकार ने पुनः उसे ठुकरा दिया। १६ फरवरी, १६४२ को भारत मन्त्री एमरी ने ब्रिटिश संसद के एक सदन में कहा—"मैं भारत के सम्बन्ध में कोई नया वक्तव्य देने में असमर्थ हूँ।" इस वक्तव्य ने वह फिजा भी बिगाड दी जो ६ फरवरी को चीन के विधाता मार्शल च्याग काई शेक के भारत आगमन के समय पैदा हुई थी।

जापान के विरुद्ध युद्ध-रत चीन के प्रति भारत मे सहानुभूति थी। कांग्रेस की नैतिक सहानुभूति चीन के साथ थी। इसलिए उनके आगमन की सूचना-सम्बन्धी वाइसराय की विज्ञप्ति मे जब यह घोषित किया गया कि वह "भारत और चीन से सम्बन्ध रखने वाले समान विषयों के सम्बन्ध मे भारत सरकार और खास तौर पर भारत के प्रधान सेनापति से सलाह-मशविरा करने आये हैं" तब भारत मे आशा की नयी लहर उठी। यहाँ नेहरू जी और मौलाना आजाद से उनकी वार्ता ने इसे और बल प्रदान किया।

च्याग ने भारतीयों को यह संदेश दिया कि "आक्रमण और आक्रमण विरोधियों के शिविर के बीच मे कोई मध्यवर्ती मार्ग नहीं है।" ब्रिटेन से उन्होंने अपील की कि "यथासम्भव शीघ्र भारत को राजनीतिक अधिकार प्रदान किया जाय।" इसी समय आस्ट्रेलिया के परराष्ट्र मन्त्री डा० इवाट ने भी भारत की राष्ट्रीय आकांक्षाओं के प्रति सहानुभूति प्रकट की और अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने स्पष्टतः यह घोषित किया कि "अतलांतक घोषणा-पत्र पूरी दुनिया के लिए है।"

एक ओर यह हालत थी, दूसरी ओर जापान की विजय-वाहिनी तेजी से आगे बढ़ रही थी। फरवरी, १६४२ के मध्य मे वह ब्रिटेन के पूर्वी साम्राज्य के सिंह-द्वार सिंगापुर की ईंट से ईंट बजा चुकी थी। मार्च मे उसने बरमा की राजधानी रंगून पर कब्जा भी कर लिया।

"पेनाग और सिंगापुर के पतन के बाद ज्योंही जापानी मलाया में बढ़े, वहाँ बसे भारतीय तथा अन्य लोग भारी संख्या में भाग कर भारत आ पहुँचे। उन्हें

---

* वेंडेल विल्की—'वन वर्ल्ड' पृ० सं १४८

जल्दी में भागना पडा था। तन ढकने वाले कपड़े के अतिरिक्त वे अपने साथ कुछ न ला सके थे। इसके पश्चात बरमा से शरणार्थियों के निष्क्रमण की बाढ़ आरम्भ हुई। सैकड़ों और हजारों की संख्या में लोग यहाँ आये जिनमें अधिकतर भारतीय थे। मुल्की तथा अन्य अधिकारियों ने उन्हें किस प्रकार असहाय और अपनी जान आप बचाने के लिए छोड़ दिया था, इसकी कहानी सारे भारत में फैल गयी। पहाडों के पार और शत्रुओं से घिरे जंगलों में वे सैकड़ों मील चले। बहुत से व्यक्ति रोग और भूख के कारण मार्ग में ही मर गये। यह युद्ध का भयावह परिणाम था और इससे छुटकारा नहीं था। लेकिन भारतीयों और ब्रिटिश शरणार्थियों के साथ जैसा भेद-भाव पूर्ण व्यवहार किया गया, वह तो युद्ध का परिणाम नहीं था। ब्रिटिश शरणार्थियों को यथासम्भव सभी प्रकार की मदद दी गयी, उनकी सहायता का और उनके लिए सवारी का प्रबंध किया गया। बरमा में उस स्थान से भारत के लिए दो रास्ते थे जहाँ बहुत बडी संख्या में शरणार्थी एकत्र हुए थे। इनमें जो अच्छा था, वह अंग्रेजों तथा अन्य यूरोपियनों के लिए सुरक्षित कर लिया गया और इसका नाम ही 'श्वेत मार्ग' ( ह्वाइट रोड ) पड गया।''*

इस पृष्ठ-भूमि मे ही ११ मार्च को सर स्टैफर्ड क्रिप्स के भारत आगमन की घोषणा की गयी। वह ब्रिटिश युद्ध मंत्रिमडल के सदस्य थे। इससे पूर्व १९३९ मे वह भारत आ चुके थे और लौट कर उन्होंने भारत की राष्ट्रीय आकाक्षाओं के प्रति सहानुभूति व्यक्त की थी। उनके आगमन के समाचार का अनुकूल प्रभाव भारत पर पडता, यह स्वाभाविक था।

संक्षेप मे सर स्टैफर्ड क्रिप्स द्वारा भारतीय नेताओं के समक्ष प्रस्तुत प्रस्ताव इस प्रकार था—

१—युद्ध के बाद—

(क) नये भारतीय संघ को औपनिवेशिक स्वराज्य का पद जिसे अधिकार होगा कि वह चाहे तो ब्रिटिश राष्ट्रमंडल से पृथक हो जाय;

(ख) युद्ध के बाद तुरंत 'सविधान निर्मात्री सभा'—इसका संघटन अंशतः युद्ध के बाद आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर निर्वाचित प्रान्तीय विधान सभाओं के सदस्यों द्वारा होगा और अंशतः देशी नरेशों द्वारा अपनी-अपनी रियासत की आबादी के आधार पर आनुपातिक ढंग से मनोनीत लोगों द्वारा;

(ग) ब्रिटिश भारत के किसी भी प्रात अथवा किसी रियासत को इससे

---

* जवाहरलाल नेहरू—'डिसकवरी आव इण्डिया'—पृ० सं० ३९८

पृथक रहने, या वर्तमान आधार पर कायम रहने अथवा सामनाधिकार प्राप्त उपनिवेश के रूप में नया संविधान बनाने का अधिकार होगा;

(घ) जाति और धर्म की दृष्टि से अल्पसंख्यकों के संरक्षण के लिए सम्राट की सरकार द्वारा दिये गये आश्वासनों के अनुसार कानून में व्यवस्था करने के निमित्त ब्रिटेन और विधान निर्मात्री सभा के बीच संधि।"

२—युद्ध के दौरान में—

भारतीय प्रतिनिधियों के परामर्श-पूर्ण सहयोग (कंसलटेटिव कोआपरेशन) के साथ ब्रिटेन अपनी सत्ता कायम रखेगा।

मुसलिम लीग ने एक पाकिस्तान की माग की थी, क्रिप्स साहब ने सैकड़ों पाकिस्तान बनाने वाला प्रस्ताव सामने पेश कर दिया। इसमें रियासतों की जनता के अधिकार का कोई जिक्र ही न था जिसकी आबादी पूरे भारत की आबादी की लगभग एक चौथाई रही। जनता का यह अधिकार दिया गया राजाओं को, जिनके सम्बन्ध में मार्क्स ने लिखा था—"उनकी हैसियत अब अंग्रेज सरकार के सहायकों या मित्रों की नहीं बल्कि केवल आश्रितों की हो गयी है, जिन्हें तरह तरह की शर्तों और पराधीनता के विभिन्न रूपों को स्वीकार करना पड़ता है।" *

गांधी जी ने एक ही नजर में क्रिप्स प्रस्ताव की असली शक्ल पहचान ली और क्रिप्स के ही शब्दों में उसे "मियादी हुंडी"† बता कर दिल्ली से वापस लौट गये। लेकिन कांग्रेस नेता हताश होने के बावजूद समझौते की कोशिश करने में लगे रहे ताकि फासिज्म-विरोधी युद्ध में वे भी अपने कर्तव्य का निर्वाह कर सकें। उनकी सारी कोशिशें बेकार गयीं। ब्रिटिश सरकार अपना अधिकार छोड़ने के लिए तैयार न हुई। उसका इरादा भी यह न था। वह महज भारत के राष्ट्रवादियों को बेवकूफ बनाना चाहती थी। यह अमेरिका में ब्रिटेन के तत्कालीन राजदूत लार्ड हेलीफैक्स (भारत के भूतपूर्व वाइसराय अरविन) के उस भाषण से स्पष्ट हो गया जो उन्होंने ७ अप्रैल को न्यूयार्क में दिया था। इसमें उन्होंने कहा था—"अगर हमारा प्रयास विफल हुआ तो ब्रिटिश सरकार को भारत के बड़े-बड़े संघटित दलों के सहयोग के बिना ही अपने कर्तव्य का पालन करना होगा।" यह धमकी भरा वक्तव्य उस समय दिया गया जब क्रिप्स वार्ता अपने नाजुक दौर से गुजर रही थी। कोई मूर्ख ही यह मान सकता था

---

* कार्ल मार्क्स—'आर्टिकल्स आन इण्डिया' पृ० सं० ५७

† 'कांग्रेस का इतिहास' खं० ९—पृ० सं० ३८५

कि हेलीफैक्स ने जो कुछ कहा अपने मन से कहा था—ब्रिटिश सरकार के संकेत पर नहीं। ब्रिटिश सरकार का इसमें पूरा हाथ था और यह बात छिपी नहीं रह सकती थी। अमेरिका से आनेवाले कर्नल जानसन को भारतीय नेताओं से सही ढंग से बातें नहीं करने दी गयी। इसका काररवाई का अभिप्रायः और हो ही क्या सकता था ?

क्रिप्स का आगमन निष्फल रहा। भारत मे स्वभावतः यह प्रश्न उत्पन्न हुआ—अब क्या होगा ? कांग्रेस की महासमिति ने अप्रैल के अन्त मे "ब्रिटिश सरकार की नीति और उसके व्यवहार पर क्षोभ प्रकट किया और यह भी घोषित किया कि गुलामों की स्थिति में रह कर काम काम करना कांग्रेस स्वीकार नही कर सकती"* लेकिन आगे का रास्ता उसे भी नहीं नजर आता था। नेताओं के विचारों मे विभेद भी उत्पन्न हो गया था। आवश्यकता पडने पर दुश्मनो का सामना करने की बात कहीं जाती, गुरिल्ला युद्ध के लिए तैयार रहने की चर्चा भी की गयी। ब्रिटिश सरकार से निपटने की तैयारी करने की मशा तो थी ही। एक ओर यह हालत थी, दूसरी ओर राजगोपालाचारी जोरदार ढंग से इस मत का प्रतिपादन करने लगे थे कि "हमें मुसलिम लीग की मॉग स्वीकार कर लेनी चाहिये। उनका खयाल था कि इस प्रकार हम एक ऐसा सयुक्त मोर्चा स्थापित कर लेंगे जिसकी उपेक्षा या विरोध करना ब्रिटेन के लिए कठिन हो जायगा।"† उन्होंने इलाहाबाद में यह प्रस्ताव कांग्रेस की महासमिति की बैठकमे पेश भी किया जो बहुमत से अस्वीकृत हुआ। वह कार्यसमिति के सदस्य थे—प्रभावशाली नेता थे। उनके विचारों के कारण भी उलझन उत्पन्न हुई। यद्यपि जुलाई मे उन्होने कांग्रेस से इस्तीफा दे दिया, तथापि इससे जन-मत की उलझन दूर नहीं हुई।

गांधी जी का रास्ता साफ था। अप्रैल से ही उन्होंने ब्रिटिश सत्ता पर पुनः आघात करना आरम्भ कर दिया था। 'हरिजन' में उनके जोरदार लेख बराबर प्रकाशित हो रहे थे। इन लेखों का इरादा जनता को भड़काना नहीं बल्कि ब्रिटेन को इस बात के लिए मजबूर करना था कि वह वास्तविकता स्वीकार करे और ऐसा करने के लिए उसके मित्र उस पर दबाव डाले। इसी उद्देश्य से उन्होंने प्रसिद्ध अमेरिकी लेखक लुई फिशर द्वारा जो उन दिनों भारत में थे, अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट के नाम एक पत्र भेजा था जिसमें

---

* नेहरू—'डिसकवरी आव इण्डिया' पृ० सं० ४०९

† 'कांग्रेस का इतिहास' खंड २ पृ० सं० ३९०

उन्होंने लिखा था–"कांग्रेस की नीति जिसका संचालन अधिकतर मैंने किया है, यह रही है कि ब्रिटेन को परेशान न किया जाय और कांग्रेस की प्रतिष्ठा पर भी ठेस न पहुँचे जो निर्विवाद रूप में सबसे बड़ी और सबसे अधिक पुरानी संस्था है।"‡ इसमें गांधी जी ने स्वतन्त्रता का अपना अभिप्राय भी स्पष्ट किया था और भारत मे ब्रिटेन के प्रति व्याप्त घृणा का अन्त करने की अपनी उत्सुकता जाहिर करते हुए बताया था कि "भारत के लोग युद्ध में अपना फर्ज अदा कर सकें, यह मैं चाहता हूँ।

कांग्रेस का मुल्क में जो स्थान था, उसके कारण वह भी अधिक दिनों तक निष्क्रिय नहीं रह सकती थी। उसके सामने अपनी वर्षों की कमाई और उससे अर्जित प्रतिष्ठा, राष्ट्रीय गौरव और देश के सम्मान का प्रश्न था। देश की जनता के स्वाभिमान को बनाये रखने की जिम्मेदारी उस पर थी। उसके लिए यह गवारा न करना स्वाभाविक ही था कि देश की जनता आत्महीनता की भावना का शिकार हो जाय। उलझनों मे प्रायः ऐसा होता है। उलझनें थी और काफी थी। गाधी जी के रुख का उल्लेख किया जा चुका है। कम्युनिस्टों की दशा अजीब थी। "जून, १९४१ मे जब से रूस युद्ध मे शामिल हुआ था, इन्होंने कहना आरम्भ कर दिया था कि यह लड़ाई जनता की लड़ाई है।"* साम्प्रदायिक दलो की कारस्वाई का जिक्र व्यर्थ है। उन्हें आपस मे लड़ने से ही फुर्सत न थी। घर की हालत यह थी और बाहर से शत्रु बराबर बढ़ता चला आ रहा था। "सर स्टैफर्ड क्रिप्स अभी दिल्ली मे ही थे जब १६ अप्रैल, १९४२ को जापानियों ने कोकनद और विजगापट्टम् पर बम वर्षा की। अधिकारियों के कहने पर मद्रास के पूर्वी किनारे के शहरों और कस्बों को खाली करा दिया गया। इस कारस्वाई का तात्कालिक कारण यह था कि एक तो जापानियों ने उपर्युक्त स्थानों पर बम वर्षा की, दूसरे बंगाल की खाड़ी मे जापानी जहाज देखे गये और तीसरे इस बम वर्षा के बाद लंका मे ट्रिकोमाली से लेकर कलकत्ता तक व्यापक आतंक छा गया था।"†

१४ जुलाई, १९४२ को वर्धा मे काग्रेस की कार्यसमिति ने सभी बातों पर विचार किया। इस बैठक मे स्वीकृत प्रस्ताव मे उसने कहा कि "ससार व्यापी युद्ध के छिड़ने के बाद से काग्रेस ने यत्नपूर्वक परेशान न करने वाली नीति ग्रहण

---

‡ लुई फिशर—'दि ग्रेट चैलेंज' पृ० सं० २११

* 'कांग्रेस का इतिहास'—खंड २, पृ० सं० ४०४

† वही पृ० सं०३९३

की। सत्याग्रह के प्रभावहीन हो जाने का खतरा उठाते हुए भी कांग्रेस ने इसे जानबूझ कर सांकेतिक स्वरूप दिया और यह इस आशा से कि इसका...यथोचित आदर किया जायगा।" लेकिन ऐसा नहीं हुआ। इस पर खेद प्रकट करते हुए प्रस्ताव में स्पष्ट किया गया कि कांग्रेस नहीं चाहती कि मलाया, बरमा, सिंगापुर पर जो बीती है, वही भारत पर बीते। इसलिए वह चाहती है कि भारत पर जापान या किसी अन्य विदेशी सत्ता की चढ़ाई या आक्रमण के विरुद्ध वह प्रतिरोध-शक्ति का सघटन करे ब्रिटेन के विरुद्ध जो विद्वेष भावना विद्यमान है, उसे कांग्रेस सद्भावना के रूप में परिणित कर देगी और भारत को संसार भर के राष्ट्रो और अधिवासियों के लिए स्वतंत्रता प्राप्त करने के संयुक्त प्रयास और इसके फलस्वरूप होने वाले कष्ट तथा क्लेश में स्वेच्छापूर्वक भाग लेने के लिए लोगों को प्रेरित करेगी। लेकिन यह केवल उसी अवस्था में सम्भव है जब भारत स्वतंत्रता के आलोक का अनुभव करे।"

आगे स्वीकार करने के लिए इस प्रस्ताव द्वारा एक बार पुनः कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार से अपील की और साथ ही यह भी घोषित कर दिया कि "यदि यह अपील व्यर्थ गयी तो कांग्रेस वर्तमान स्थिति के स्थायित्व को जिससे परिस्थिति का धीरे-धीरे बिगडना तथा भारत की आक्रमण-विरोधी शक्ति एव इच्छा का दुर्बल होना स्वाभाविक है, घोर आशंका की दृष्टि से देखेगी। ऐसी स्थिति में कांग्रेस को अपनी समस्त अहिंसात्मक शक्ति का.....उपयोग करने को बाध्य होना पड़ेगा। इस प्रकार के व्यापक संघर्ष का नेतृत्व अनिवार्य रूप से महात्मा गांधी करेंगे।" अन्तिम निर्णय का भार कार्यसमिति ने महासमिति पर छोड़ा और उसकी बैठक के लिए ७ अगस्त की तिथि निर्धारित की।

ब्रिटिश सरकार के कान पर जूं न रेंगी। फलतः पूर्व निश्चय के अनुसार ७ और ८ अगस्त को महासमिति की बैठक बम्बई में हुई जिसमें महात्मा गांधी ने 'भारत छोडो' का नारा बुलन्द किया और देश को 'करो या मरो' का संदेश सुनाया।

इस ऐतिहासिक बैठक में गांधी जी ने भारत की आजादी की माँग का समर्थन जिस जोरदार भाषा में किया, साहित्य में भी उसका स्थान है। उन्होंने ऐलान किया कि "यद्यपि ब्रिटेन ने भारत को सबसे अधिक उत्तेजित किया है तथापि हम कोई निकम्मा वार न करेंगे। अब तक वास्तव में हमने बडी सज्जनता और शराफत से काम किया है।...हम ओछे हथियारों से काम न लेंगे।" उन्होंने स्पष्ट शब्दों में सरकार को यह चेतावनी भी दी कि "अब

जो लड़ाई छिड़ेगी, वह सामूहिक होगी। हमारी योजना में गुप्त कुछ भी नहीं है। हमारी तो खुली लड़ाई है।...कुकुरमुत्ते की तरह पैदा होने वाली संस्थाओं की मदद से कांग्रेस का विरोध या उसे कुचल डालना सरकारी अमलदारी के लिए नामुमकिन है।" गांधी जी ने दृढ़ता-पूर्वक यह घोषणा भी की कि—"मैंने कांग्रेस को बाजी पर लगा दिया है, वह करेगी या मरेगी।"*

'भारत छोड़ो' प्रस्ताव के पक्ष में पंडित नेहरू, मौलाना आजाद और सरदार पटेल आदि ने भी जोरदार भाषण किया और भारत की आजादी की मांग का समर्थन किया। नेहरू जी ने फासिज्म के खतरे का भी उल्लेख किया। उसका मुकाबिला करने की तीव्र इच्छा भी आपने प्रकट की। लेकिन गुलाम रह कर घुटने टेक देना किसी ने मंजूर नहीं किया। निश्चय हुआ कि गांधी जी एक बार पुनः वाइसराय से बातचीत करेंगे लेकिन यह अवसर गांधीजी को नहीं मिला। ९ अगस्त को सूर्य की किरण फूटने से पहले ही बम्बई में उपस्थित सभी नेताओं को अंग्रेज हुकूमत ने गिरफ्तार कर लिया जिसके फलस्वरूप सन् १९४२ के महान् विद्रोह की ज्वाला धधक उठी।

———

* 'कांग्रेस का इतिहास' खण्ड २—पृ० सं० ४०७

# सन् '४२ का विद्रोह और अकाल

**देश-व्यापी गिरफ्तारियाँ—हड़ताल और प्रदर्शनों का जोर—जनक्रांति का उद्भव—भारत मंत्री के भाषण की प्रतिक्रिया—देश में विध्वंसात्मक कार्य—पैशाचिक दमन-नीति—हवाई जहाज से गोलियाँ बरसायी गयीं—महिलाओं पर बलात्कार—प्रोफेसर मंसाखी द्वारा अनशन—चन्द दिनों के लिए कई जगह अंग्रेजी हुकूमत का नाम मिटा—दोष कांग्रेस के सिर—गाँधी जी द्वारा प्रतिवाद—विदेशों में भ्रामक प्रचार—गाँधी जी का अनशन—शासन परिषद से त्याग-पत्र—खाद्यान्न के अभाव के विरोध में प्रदर्शन—वावेल वाइसराय बने—बंगाल के अकाल में १५ लाख व्यक्ति मरे।**

गाधी जी और कार्यसमिति के नेताओं की गिरफ्तारी के तुरन्त बाद ही सारे देश मे महासमिति के सदस्यो, स्थानीय नेताओं और प्रमुख कार्यकर्त्ताओं की गिरफ्तारी भी आरम्भ हो गयी। जनता पर इसकी गहरी प्रतिक्रिया हुई। लोगों को और कुछ तो मालूम नही था लेकिन विरोध मे जलूस निकालने, सभा और हड़ताल करने मे वे अभ्यस्त थे। नेताओं की गिरफ्तारी के बाद सारे देश मे आप से आप हड़तालें हुई, बड़े-बड़े जलूस निकाले गये जिनमे दस-दस और बीस-बीस हजार व्यक्तियों ने भाग लिया। विरोध मे सभाएं हुई जिनमें पचासों हजार की सख्या मे लोग शामिल हुए। इस प्रकार सारे देश मे नियमित कार-बार ठप पड़ गया। जन-क्रांति आप मे आप उद्भूत हुई। सरकार पहले से ही तैयार थी। सभी प्रान्तों के सचिवों तथा उनके द्वारा कमिश्नरों और कलक्टरों को इस सम्बन्ध मे भारत सरकार के सूचना विभाग के सचिव पकल द्वारा आवश्यक हिदायतें भेजी जा चुकी थी।* फलतः जन-क्रांति के साथ-साथ दमन भी आरम्भ हो गया। जलूस और सभा पर लाठी चार्ज, अश्रु गैस का प्रयोग, गिरफ्तारी, बेतों की मार—ये सब साधारण बातें थीं। लेकिन जनता पर आरम्भ मे इसका कोई असर नहीं हुआ। उसकी क्रियाशीलता किसी आन्दोलन से सम्बन्धित न थी। उसका स्वरूप बगावत

---

* 'कांग्रेस का इतिहास' खण्ड २, पृ० संख्या, ४२२

का था। जनता बागी थी। वह हुकूमत को खत्म करने के लिए उतावली थी। उसका कोई नेता नहीं था, उसके सामने कोई कार्यक्रम नहीं था। इस अभाव की पूर्ति भारत मन्त्री एमरी ने स्वतः कर दी। विद्रोह शुरू होने के बाद ही उन्होंने लन्दन में इस आशय का भाषण किया कि कांग्रेस ने ब्रिटिश हुकूमत को पंगु बनाने की व्यापक तैयार कर रखी थी। टेलीफोन-तार नष्ट करने, पोस्ट आफिस जलाने, पुलिस थानों पर कब्जा करने और रेल की पटरियां उखाडने की योजना उसने बना रखी थी।

यद्यपि यह इलजाम सरासर झूठा, शरारत से भरा और निराधार था, तथापि इससे बागी जनता को एक राह मिल गयी। उसने एमरी साहब का कार्यक्रम अपना लिया। ब्रिटिश हुकूमत का जो चिह्न उसे दिखाई देता, उस पर वह हमलावर हो जाती। पजाब, सिन्ध और सीमा प्रान्त के अतिरिक्त सारे देश में बड़े पैमाने पर तोड़-फोड की कारवाई आरम्भ हो गयी। पंजाब और सिंध मे बगावत सीमित थी। सीमा प्रान्त में खाँ अब्दुल गफ्फार के अनुयायी खुदाई खिदमतगार अद्भुत ढंग के अहिंसक सत्याग्रही थे। उनकी कुरबानी और शान्ति-प्रियता बेमिसाल थी।

तोड-फोड, आगजनी और इस प्रकार की अन्य कारवाई का जनता द्वारा अपनाया जाना इस बात का सबूत था कि वह ब्रिटिश सत्ता को मिटाने के लिए तुल गयी थी। उसका कोई नेता न था। उसका कोई रहनुमा न था। ब्रिटिश हुकूमत के प्रति उसकी घृणा और अंग्रेज सरकार के जुल्म के प्रति उसका रोष ही उसका नेतृत्व कर रहा था। सन् १८५७ के बाद यह दूसरी बगावत थी लेकिन दोनों मे अन्तर था। १८५७ मे बगावत फौजियों ने की थी जिसमें स्थानीय शासक भी शामिल थे। १९४२ की बगावत जनता की बगावत थी जिसके पास न तो बन्दूकें थीं, न तोपें; न तो गोलियाँ थी, न बारूद।

सरकारी गुर्गों, पुलिस और फौज द्वारा जिस प्रकार निर्दयता-पूर्वक दमन किया गया, उसकी अपनी कहानी है। बड़े-बड़े नगरों से लेकर छोटे-छोटे गावों की जनता को आतंकित करने के लिए उन्होंने व्यापक स्तर पर लूटमार की, लोगों के घरों में आग लगा दी, फसलें उजाड दी, गोलियां चलायीं और जब इससे भी संतोष नहीं हुआ तो हवाई जहाजों से मशीनगनों द्वारा जनता पर गोलियाँ चलायी गयी और बम फेंके गये। जुल्म की यह कहानी लम्बी है—बहुत लम्बी। युक्त प्रांत के गवरनर मारिस हैलैट ने तो गजब कर दिया था। उसने पिशाच का रूप धारण कर लिया था। उसके गुर्गों ने यहाँ ऐसा-ऐसा अत्याचार किया, मनुष्य जिसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। गांव के गांव लूट लिये गये।

देहातों में महिलाओं पर बलात्कार किया गया। बनारस के गांव में पुलिस ने एक अबोध बच्चे को लोहे के छड़ से बाँध कर उसकी माँ के सामने उसे आग पर भून डाला। गाजीपुर मे नन्दगंज के समीपवर्ती एक गाँव के सभी पुरुष नंगे करके सड़कों पर बैठाये गये और फिर बांस की खपाचियों से उनकी पीठ पर प्रहार किया गया। विरोध करने वालों को पेड़ों में बाँध कर उन्हें ताबड़तोड़ हंटर लगाये गये।

यही हालत प्रायः सारे भारत की थी। आष्टी चिमूर (मध्य प्रांत) में महिलाओं पर बलात्कार की पैशाचिक घटनाओं से क्षुब्ध होकर गाधी जी के अन्यतम अनुयायी प्रोफेसर भंसाली ने ६३ दिनों तक उपवास किया। बिहार मे नन्हे-नन्हें बालकों तक को गोली मार दी गयी। देहातों मे हवाई जहाजों से भीड़ पर मशीनगनों से गोलियाँ बरसायी गयीं।

जनता ने इस जुल्म का मुकाबला बडी बहादुरी से किया—विशेष रूप से छात्रों ने इस संघर्ष में भाग लिया। वे उत्साह के साथ हंसते-हंसते ब्रिटिश इमारतों पर झंडा लगाने जाते और पुलिस तथा फौजियों द्वारा गोलियों से उडा दिये जाते। अपढ़ और मूर्ख कह जाने वाले ग्रामीणों ने जिस शौर्य का परिचय दिया, उसकी गाथा भारत के राष्ट्रवादी इतिहास का शानदार अध्याय है। "ये किसान अंधे नहीं थे। प्रत्येक बार जब उनके सिर पर हवाई जहाज उडता, फौजियों की लारी गाव से गुजरती, सामंतवाद की मृत्यु एक कदम आगे बढ़ आती और प्राचीन भारत की धरा से एक और नया राष्ट्रवादी सामने आ जाता।"*

अहमदाबाद और बम्बई के मजदूर भी आजादी की लडाई मे पीछे नहीं रहे। कई-कई दिनों तक लगातार उन्होंने हडताल की। यद्यपि महायुद्ध को जनता को युद्ध बता कर जेलों से बाहर वर्तमान कम्युनिस्ट उन्हें हड़ताल करने से रोकते, तथापि उन्हें कामयाबी न मिली। उत्तर प्रदेश के कानपुर नगर मे उनका कुछ प्रभुत्व था, अतः यहां के मजदूरों को काफी हद तक वे अवश्य प्रभावित कर सके। भारत के सम्बन्ध में कुछ जानने वाले प्रत्येक व्यक्ति को यह मालूम था कि "कम्युनिस्ट पार्टी कांग्रेस मे फूट डालने की अंतिम चेष्टा के रूप में कानूनी घोषित की गयी थी; क्योंकि इसका जनता में कुछ असर था।"† इसके बावजूद इस पार्टी के भी सैकड़ों कार्यकर्त्ता और प्रमुख नेता

---

* ह्यूग्ज आंसन—'ब्रिटिश सोल्जर इन इण्डिया'—पृ० सं० ३१

† वही पृ० सं० १८

उस समय भी जेलों मे बंद थे। १९४३ में अधिकतर छोड़ दिये गये और उन्होंने सरकारी पैसे से युद्ध के पक्ष में जी भर कर प्रचार किया। भारत की सीमा से बाहर जापानियों और आजाद हिंद फौज की सहायता से देश को आजाद करने का प्रयत्न करने वाले सुभाषचन्द्र बोस को उन्होंने गद्दार और देशद्रोही घोषित करने मे कुछ भी उठा न रखा।

इस बीच समाजवादी नेता जयप्रकाश नारायण अपने ११ साथियों के साथ हजारीबाग जेल से निकल भागने मे सफल हुए। तब उन्होने आंदोलन को संघटित करने का प्रयास किया। बहुत देर हो चुकी थी। जनक्रांति का दौर लम्बा नहीं होता। वह हमेशा अल्पकालीन होती है। इस बीच क्रांति सफल हो गयी तो ठीक, अन्यथा वह कुचल दी जाती है। १९४२ मे भारत मे वह कुचल दी गयी थी लेकिन भारत की [illegible] चेतना पर उसका स्थायी प्रभाव पड़ा था।

जयप्रकाश नारायण, डा० लोहिया और उनके साथियों को भी अंततः सरकारी ने गिरफ्तार कर लिया और जेलों मे उन्हें भीषण यंत्रणाओं का शिकार होना पड़ा।

"सरकारी आकड़ों के अनुसार १९४२ के उत्पात ( ! ) मे १०२८ व्यक्ति पुलिस और फौज की गोलियों से मारे गये और ३,२०० घायल हुए। यह अनुमान निश्चय ही बहुत घटा कर लगाया गया: क्योंकि अधिकृत रूप से ही यह बताया गया था कि ५३८ अवसरों पर गोलियां चलायी गयीं। इसके अतिरिक्त चलती हुई लारियों से पुलिस अथवा सैनिकों द्वारा प्रायः लोगों को गोली मार दी जाती थी।...आम धारणा के अनुसार २५ हजार व्यक्ति मारे गये। सम्भवतः यह भी बढ़ी-चढ़ी संख्या हो। शायद १० हजार या इसके लगभग व्यक्ति मारे गये।*" जेल जाने वालों की संख्या प्रायः एक लाख थी। जुर्माने की रकम का अंदाज लगाना मुश्किल है।

जो भी हो इसमें संदेह नहीं हैं कि १९४२ मे चंद दिनों के लिए अनेक स्थानों पर शक्तिशाली ब्रिटिश सत्ता का नाम-निशान मिट गया था। लोगों ने अपनी हुकूमत कायम कर ली थी जिसे समाप्त करने के लिए ब्रिटिश सत्ता को नये सिरे से फौजी और पुलिस काररवाई करनी पड़ी। बंगाल, बिहार और युक्त प्रांत के अनेक स्थानों मे यही हुआ। युक्त प्रांत मे बलिया जिले की आजादी का तथ्य खूखार गवरनर मारिस हलैट ने स्वयं स्वीकार किया।

---

* नेहरू—'डिसकवरी आव इण्डिया' पृ० सं० ४३०—३१

जो कुछ हुआ, उसके लिए हुकूमत ही जिम्मेदार थी। एमरी के भाषण ने ही लोगों को उकसाया—तोड़-फोड़ और ध्वंस की कारवाई में उन्हें प्रवृत्त किया। इससे गांधी जी बहुत क्षुब्ध हुए। इस सम्बन्ध में १४ अगस्त को उन्होंने वाइसराय लार्ड लिनलिथगो को एक पत्र भी लिखा था* जो यदि समय पर प्रकाशित कर दिया जाता तो सम्भव था, उसका कुछ असर होता। लेकिन अंग्रेज सरकार को दमन का बहाना चाहिये था, इसलिए उसने यह पत्र-व्यवहार १९४३ में प्रकाशित किया। तब तक वह विद्रोह को कुचल चुकी थी।

जनता के विद्रोह का प्रमुख कारण अंग्रेजी हुकूमत के प्रति उसकी घृणा और आजादी की मांग का औचित्य तो था ही लेकिन इसके और भी कारण थे। पहला कारण यह था कि अंग्रेज हुकूमत ने उसके नेताओं पर कायरतापूर्ण हमला किया था। दूसरा कारण यह रहा कि अंग्रेजों का जुल्म जारी थी। तीसरा कारण यह था कि जरमनी से रेडियो पर किया जाने वाला प्रचार अपना रंग ला रहा था और चौथा कारण यह था कि सुभाषचन्द्र बोस की ओर से रेडियो पर बराबर यह कहा जाता था कि 'अंग्रेजों के विरुद्ध सघटित भारतीय सेना जापानियों की सहायता से शीघ्र भारत को आजाद करेगी। जनता को उसकी मदद करने के लिए तैयार रहना चाहिये।' इसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव कायम रहा। आम तौर पर यह देखा जाता था कि जरमनी और जापान की विजय के समाचार से लोग खुश होते। उनकी प्रसन्नता की वजह अंग्रेजों के प्रति उनकी तीव्र घृणा थी।

इन कारणों की उपेक्षा करते हुए ब्रिटिश सरकार ने सारी जिम्मेदारी कांग्रेस पर ही लाद दी। सन् १९४३ में भारत सरकार ने "काग्रेस रिसपासिबिलिटी फार डिस्टरबेंसेज—१९४२–४३" नामक एक पुस्तिका प्रकाशित की और व्यापक रूप में उसका प्रचार किया। इसमें उसने गांधी जी के इस कथन का जिक्र तक नहीं किया कि "सामूहिक सत्याग्रह आरम्भ किये जाने तक कम से कम भारत सरकार को रुकना चाहिये था। मैंने सार्वजनिक रूप से यह घोषित किया था कि निश्चित कदम उठाने से पूर्व आपको (वाइसराय को) पत्र लिखने का मेरा इरादा है। यह निष्पक्ष भाव से काग्रेस के रुख पर विचार करने की आप से की गयी अपील के रूप में होता।"†

---

* 'गांधीजीज करेसपोंडेंस विथ गवर्नमेंट' १९४२-४४ पृ० सं० १५

† वही— १९४२–४४ पृ० सं० १५

उपर्युक्त पुस्तिका में सरकार ने कांग्रेस और गांधी जी पर खूब ऊलजलूल इलजाम लगाये। जवाब देने वाला कोई था नहीं। प्रचार एकांगी था। सर्वदा सतर्क गांधी जी को जब इसका पता चला तो उन्होंने पुस्तिका की एक प्रति आगा खां महल में मँगायी, जहाँ वे नजरबन्द थे। इसमें उल्लिखित एक एक दोषारोप का सटीक उत्तर उन्होंने अपने उस पत्र में दिया जो १५ जुलाई, १९४३ को भारत सरकार के अतिरिक्त सचिव के नाम लिखा गया था। इसमें गांधी जी ने कांग्रेस के प्रस्तावों, अपने लेखों, जो 'हरिजन' में प्रकाशित हुए थे, तथा नेहरू, पटेल आदि के भाषणों के उद्धरणों द्वारा प्रत्येक दोषारोप को मिथ्या और अप्रमाणित सिद्ध किया।*

अंग्रेज सरकार इस पर क्यों ध्यान देती ? वह तो कांग्रेस को कुचलने के लिए कृत-संकल्प थी। वह देश की आजादी की माग को जमींदोज करने की कसम खा चुकी थी। कहीं उसके मित्र उसकी भर्त्सना न करने लगे इसलिए देश में ही नहीं, विदेशों में भी उसने देश की वास्तविक स्थिति के सम्बन्ध में खूब गलत प्रचार किया। विशेष रूप से उसने अमेरिका में प्रचार करने के लिए लाखों रुपयों को पानी की तरह बहा दिया। स्वयं को दूध का धोया तथा कांग्रेस और भारत के सक्रिय राष्ट्रवादियों को फासिस्टों का मददगार साबित करने में उसने कुछ न उठा रखा। इसमें उसने जी-भर कर भारत का धन फूंका।

अमेरिका में भी ब्रिटिश इनफारमेशन सरविसेज (ब्रिटिश सूचना विभाग) द्वारा 'फिफ्टी फैक्ट्स अबाउट इण्डिया' नामक एक पुस्तक प्रकाशित की गयी। इसकी लाखों प्रतियाँ वहाँ बाटी गयी। इस पुस्तिका में अन्य बातों के अतिरिक्त यह भी बताया गया था कि (१) युद्ध के बाद भारत को पूर्ण स्व-शासनाधिकार देने के लिए कहा गया और ब्रिटिश राष्ट्रमडल में भारत को बनाये रखने की कोई शर्त नहीं पेश की गयी; (२) भारत में प्रति ११ न्यायाधीशों में, दस भारतीय हैं; (३) ब्रिटिश भारत के ११ प्रान्तों का केन्द्र की सरकार से प्रायः वैसा ही सम्बन्ध है जैसा अमेरिका की संघीय सरकार का अपने भिन्न-भिन्न राज्यों से है, (४) वाइसराय अपनी शासन परिषद के बहुमत का निर्णय मानने को बाध्य है। यद्यपि कुछ निश्चित परिस्थितियों में ऐसा निर्णय रद्द करने का अधिकार उन्हें प्राप्त है, तथापि १८७९ से इस अधिकार का उपयोग वाइसराय ने कभी नहीं किया; (५) सारे ब्रिटिश भारत में महिलाओं को मताधिकार प्राप्त है।

---

* 'गांधीजीज करेसपौंडेंस विथ गवर्नमेंट'—पृ० सं० ११७

ऐसी ही बेहूदी और निरर्थक पचास बातों का उल्लेख पुस्तिका में पचास तथ्यों के रूप मे किया गया था। भारत की जबान बन्द कर दी गयी थी। अर्डिनेन्सों का राज्य था। सरकार के विरुद्ध चूँ तक करना गुनाह था। जवाब देता तो कौन देता ? सपूतों की जननी भारत माता के लाड़ले यद्यपि जेलों में बन्द थे तथापि उसकी गोद सूनी नहीं हुई थी। प्रतिबन्धों के बावजूद ब्रिटेन की मक्कारी का जवाब देने के लिए कुछ लोग सामने आ गये। उन्होंने 'ढोल के भीतर की पोल' स्पष्ट कर दी और ब्रिटिश सरकार ने जिन्हें तथ्य बताया था, उन्हें फरेब और मक्कारी का पुलिंदा सिद्ध कर दिया। *

इस दौरान में ब्रिटेन में भारत की समस्या को लेकर काफी हलचल रही। मजदूर दल के प्रतिनिधियों और कुछ अखबारों द्वारा भारत मंत्री और उनकी नीति पर काफी प्रहार किया जाता रहा। ब्रिटेन की पार्लिमेण्ट मे बहस भी बहुत जोरदार हुई। लेकिन ब्रिटिश हुकूमत पर कोई असर नहीं हुआ। वह अपनी जगह कायम रही। उसने न केवल कांग्रेस के नेताओं को जेल मे बन्द रखा, बल्कि समझौते के लिए उत्सुक लोगों को उनसे मिलने की भी इजाजत उसने नहीं दी। "नवम्बर, १९४२ मे ब्रिटेन की लोक सभा में जब एमरी से महात्मा गांधी से मिलने के लिए डा० श्यामा प्रसाद मुकर्जी को इजाजत न देने के बारे मे पूछा गया तो उन्होंने कहा—मौजूदा परिस्थितियों मे कांग्रेस नेताओं के साथ मुलाकात करने की इजाजत देने को मै तैयार नहीं हूँ।"†

सन् १९४३ का वर्ष राजनीतिक हलचल की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण रहा। इस वर्ष कुछ अत्यधिक दुःखद घटनाएं भी घटी जिनके फलस्वरूप सारा राष्ट्र विह्वल हो उठा। इनका सम्बन्ध विशुद्ध रूप से मानवीय वृत्तियों से था लेकिन इनके सम्बन्ध मे भी सरकार और उनके प्रतिनिधि वाइसराय का आचरण पिशाच के ही आचरण सा रहा। गांधी जी के सचिव महादेव भाई की जो गांधी जी के साथ ही थे, १५ अगस्त को मृत्यु हो गयी। ९ फरवरी को गांधी जी ने २१ दिनों का उपवास आरम्भ किया। इस बीच मे ही आगा खाँ महल में ही उनकी पत्नी और देशमाता कस्तूर बा भी २४ फरवरी को चल

---

* 'दि फिफ्टी फैक्ट्स अबाउट इण्डिया' ( पोलिटिकल एण्ड इकनामिक-डेक इन इण्डिया ) सम्पादक—कुछ विद्यार्थी। जेनरल ऐडिटर—जे० पी० गुप्त ( बम्बई के 'हमारा हिन्दुस्तान प्रकाशन' द्वारा प्रकाशित )।

† 'कांग्रेस का इतिहास' खण्ड २—पृ० सं० ५०४

बसीं। बंगाल में अकाल पड़ा जिसमें सरकार द्वारा नियुक्त जाँच कमीशन के ही अनुसार लगभग १४ लाख व्यक्ति मृत्यु की गोद में सो गये!

महादेव भाई की मृत्यु के दिन ही गांधी जी ने चिमनलाल के नाम एक तार (एक्सप्रेस) लिखा जो सेवाग्राम आश्रम (वर्धा) भेजा जाने वाला था। इसका मजमून बड़ा हृदयस्पर्शी रहा।* इस सम्बन्ध में सरकारी यंत्र की काररवाई उतनी ही निर्मम थी। 'एक्प्रेस' तार साधारण पत्र के रूप में वर्धा भेजा गया!† गांधी जी ने इसके विरोध में बम्बई सरकार के गृह विभाग के सचिव को पत्र लिखा। लेकिन होता क्या था? विलम्ब पर खेद तक नहीं प्रकट किया गया।

नेताओं की गिरफ्तारी के बाद देश में हुई हिंसात्मक काररवाइयों के लिए काग्रेस को जिम्मेदार ठहराने की अपनी नीति का औचित्य सिद्ध करने के लिए गांधी जी ने वाइसराय को चुनौती दी जिसका उत्तर उन्होंने टेढ़ा-मेढ़ा दिया। इस पर २६ जनवरी, १६४३ को गांधी जी ने वाइसराय को लिखा—"यदि अपने दर्द के लिए मैं ठंढी मलहम नहीं प्राप्त कर सकता तो मुझे उस नियम का पालन करना चाहिये जो सत्याग्रही के लिए निर्धारित है—अर्थात् सामर्थ्य के अनुसार उपवास। ६ फरवरी को प्रातः कालीन जलपान के बाद मैं २१ दिनों का अनशन करूँगा।"‡

निर्धारित तिथि पर गांधी जी ने अनशन आरम्भ कर दिया। वाइसराय ने यह घोषित कर दिया था कि 'इसके परिणाम की जिम्मेदारी आप पर होगी।' धीरे-धीरे गांधी जी के उपवास की प्रतिक्रिया होने लगी! इस सम्बन्ध में वाइसराय की नीति से असहमत होकर उनकी शासन परिषद के सदस्य मोदी, सरकार और अणे ने त्याग-पत्र दे दिया।

"गांधी जी की चिंताजनक और गम्भीर हालत के दिनों में देश भर में अनेक अफवाहें फैल रही थी। इनमें से एक अफवाह जो उपवास के समाप्त हो जाने के बाद भी बनी रही और ऐतिहासिक दृष्टि से जिसका उल्लेख न करना कठिन है, यह थी कि सरकार ने दाह-कर्म संस्कार के लिए काफी परिमाण में चंदन की लकड़ी जमाकर रखी थी। एक और अफवाह यह थी कि सरकार ने राष्ट्रीय शोक मनाने और झंडे झुकाने का फैसला भी कर लिया था।

---

* 'गांधीजीज करेसपौंडेंस विथ गवर्नमेंट'—१९४२-४४—पृ० सं० ६७

† ,, ,, ,, ,, ,, ,,

‡ वही—पृ० सं०—२६

कहा जाता है कि पहली अफवाह का आधार विदेशी संवाददाता थे जिन्होंने गांधी जी की हालत बहुत खराब होने जाने पर एक उच्च अधिकारी से मुलाकात की थी। कहते हैं कि इस मौके पर उपर्युक्त अधिकारी ने विदेशी संवाददाताओं को बताया कि भारत सरकार अपने निश्चय से टस से मस न होने का फैसला कर चुकी है और उसने कहा कि चंदन की लकड़ी हमारे इस फैसले का प्रतीक है।"*

सरकार का इरादा कुछ भी रहा हो। गांधी जी का उपवास ३ मार्च को सकुशल समाप्त हो गया। देश मे खुशियां मनायी गयी। एक बार फिर नये सिरे से राजनीति सामने आ गयी।

उपवास-सम्बंधी सूचना के सम्बन्ध मे और उपवास आरम्भ होने के बाद सरकार की ओर से जो विज्ञप्ति प्रकाशित की गयी थी, उसमे देश की गम्भीर खाद्य स्थिति की ओर संकेत किया गया था। वास्तव मे दिसम्बर १९४२ मे ही इसके लक्षण नजर आने लगे थे। देश की जनता उसकी छाया देख कर विह्वल थी। स्वतः जागरूक और चेतनाशील ब्रिटिश सैनिकों की निगाह से भी स्थिति छिपी न थी। रायल आरमर्ड कोर के सदस्य क्लाइव ब्रासन ने ४ जनवरी, १९४३ को अपने पत्र मे लिखा था—"अब यह स्पष्ट है कि कांग्रेस विरोधी प्रचार के सिर पर सारे भारत में व्यापक स्तर पर खाद्यान्न के अभाव का खतरा घहरा रहा है। मध्यम वर्ग तथा मजदूरों और किसानों पर इसका प्रभाव पड़ चुका है। ऊंचे मूल्य पर खाद्यान्न को बेचने के लिए उसे छिपाने तथा चोरबाजारी करने का जोर है।"† इस स्थिति की ओर सबका ध्यान था, नहीं था तो केवल सरकार का। उसका ध्यान तब आकृष्ट हुआ जब समाचार पत्रों ने भूख से मरने वालों के चित्र धड़ाधड़ छापने आरम्भ किये। इससे पूर्व वह यह मानने के लिए तैयार ही न थी कि अकाल की स्थिति है, यद्यपि यह स्पष्ट थी। क्लाइव ब्रासन ने अपने उपर्युक्त पत्र मे ही यह लिखा था कि "बंगाल मे गहरा खाद्य संकट उत्पन्न हो रहा है। चावल उत्पादक इस क्षेत्र में चावल बिलकुल है ही नहीं।"

मार्च-अप्रैल में देश के विभिन्न भागों में खाद्यान्न की कमी के विरुद्ध व्यापक रूप से प्रदर्शन किया जाने लगा था। उड़ीसा और बंगाल मे इन प्रदर्शनों का

---

* 'इण्डिया अनडिक्लाइण्ड'—पृ० सं० २१२ 'कांग्रेस के इतिहास' में उद्धृत।

† 'ब्रिटिश सोल्जर इन इण्डिया'—पृ० सं० ३९

जोर सबसे अधिक था। फर्जी काररवाई के लिए बंगाल के गवरनर ने अप्रैल तक हक मंत्रिमंडल से इस्तीफा लेकर मुसलिम लीग मंत्रिमंडल बनवा दिया। अकाल की घटनाओं से शायद ही इस काररवाई का कोई सबंन्ध रहा हो। आम तौर पर फजलुलहक (मुख्यमंत्री) द्वारा त्याग पत्र दिये जाने का कारण यह माना जाता है–"(१) उन्होने राजनीति अड़ंगे को दूर करने व गांधी जी की रिहाई के समर्थन में असेम्बली मे एक प्रस्ताव पास कराया (२) उन्होंने ढाका गोली काण्ड की जांच खुद की और उसकी पूरी जांच के लिए असेम्बली की एक समिति नियुक्त करने का वचन दिया था (३) मिदनापुर की घटनाओं के सम्बन्ध मे (जिनमें पुलिस और फौजियों पर बलात्कार का दोषारोप था) भी जाच कराने का वचन उन्होंने दिया था और (४) मुसलिम लीग के सम्बन्ध में उनकी नीति अनिश्चित थी।"* बाद में ये कारण ही सबब सिद्ध हुए।

सितम्बर मे अकाल मे मरने वालों के समाचार आने लगे। कलकत्ता मे देहात से आने वालो की भीड़ बढ़ती जाती थी। एक अजीब दृश्य था। एक ओर कलकत्ता में चहल-पहल बदस्तूर कायम थी और दूसरी ओर वही अकाल पीड़ित सड़कों और पटरियों पर मर रहे थे। गल्ला बाजार से गायब कर दिया गया था। इसमें बड़े-बड़े धन पशुओं के अलावा बगाल की नाजिमुद्दीन सरकार के कुछ लोगों का भी हाथ था जो बाद मे स्पष्ट हो गया।

इतने पर भी सरकार अपनी फर्जी काररवाई से बाज न आयी। अकाल पीड़ितों को बचाने की चिन्ता भी उसे नहीं की। "जो गेहूँ बंगाल सरकार को १२ या १३ रुपये मन के हिसाब से मिलता था, वह २५ रुपये मन की दर पर बेचा गया था। वाइसराय की शासन परिषद के सदस्य एडवर्ड बेंथम साहब दावा करते कि प्रतिदिन ३० से ३६ वैगन तक खाद्यान्न पंजाब से बंगाल की ओर भेजा जा रहा है। पंजाब के मंत्री चौधरी छोटूराम कहते कि जुलाई मे पंजाब सरकार ने भारत सरकार के लिए २, १८, ६५३ टन गल्ला छोड़ दिया जिसमें से भारत सरकार सितम्बर तक केवल ६२ हजार टन ही भेज सकी।"† यह हालत उस समय थी जब प्रति दिन अकाल के कारण सैकड़ों व्यक्तियों के मरने के समाचार अखबारों मे प्रकाशित होने लगे थे। २७ सितम्बर, १९४३ को कलकत्ता के अंग्रेजी दैनिक स्टेट्समैन ने मरने वालों की संख्या के साप्ताहिक आंकड़े प्रकाशित किये थे जो इस प्रकार थे—२९ अगस्त से ४ सितम्बर तक—

---

* 'कांग्रेस का इतिहास' खंड ३—पृष्ठ संख्या ६५

† 'ब्रिटिश सोवजर इन इण्डिया'—पृ० सं० ९०

११८३, ५ सितम्बर से ११ सितम्बर तक १२६२; १२ सितम्बर से १८ सितम्बर तक, १३१६, १६ सितम्बर से २५ सितम्बर तक १४६२। इन आंकड़ों से स्पष्ट है कि मरने वालों की संख्या बराबर बढ़ रही थी लेकिन कलकत्ता और हावड़ा में कुछ नहीं किया जा रहा था। बड़े-बड़े व्यापारी दम साधे बैठे थे। कुछ मन्त्री मुनाफे में हिस्सा बटाने के लिए उनसे सहयोग करने को तैयार थे। यह बताते हुए क्लाइव, ब्रांसन ने लिखा था—"बंगाल आज भारतीय प्रशासन का उदाहरण नहीं है बल्कि कांग्रेस के दमन और फलस्वरूप राजनीतिक दस्युओं के बढ़े हुए अधिकारों का चमकता हुआ परिणाम है।"*

स्थिति में कोई सुधार नही हुआ। अक्टूबर मे हृदयहीन वाइसराय लार्ड लिनलिथगो चले गये और उनके स्थान पर १८ अक्टूबर को लार्ड वावेल आये। उन्होंने अकाल पीड़ितों की सहायता के लिए प्रयास आरम्भ किया। उन्होंने..."प्रधान सेनापति को बंगाल के सबसे बुरी तरह प्रभावित जिलों के लिए सेना के साधन—विशेष रूप से अन्न के यातायात के लिए उपलब्ध करने, सहायता केन्द्र खोलने और इन केन्द्रों के लिए अन्न का संकलन करने का आदेश दिया।"† लेकिन तब तक स्थिति गम्भीर हो चुकी थी। उस पर काबू पाते पाते भी १५ लाख आदमी अकाल मे मर ही गये और मुनाफाखोरों ने लड़ाई के क्षेत्रों में चावल भेज कर १ अरब ५० करोड रुपये कमाये।

अकाल के दौरान मे अनेक प्रकार के अकल्पित दुःखद दृश्य नजर आये। कलकत्ता के राजपथ पर अस्थि चर्मावष्टि मा के सूखे स्तन से लिपटे शिशुओं के चित्र समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुए। अनेक स्थानों पर लाशों को ठिकाने लगाने वाला भी कोई नहीं था। वे शृङ्गालों और गृद्धों का शृङ्गार बनी। श्रीमानों के उच्छिष्ट भोजन मे अपने जीवन का आधार ढूढने वाले तो प्रतिदिन यत्र तत्र नजर आते थे। जूठे भोजन के लिए भूखे कुत्ते और क्षुधित मानव के बीच युद्ध भी होता रहता था।

सन् १६४४ में एक अध्यादेश जारी कर के वाइसराय ने जान उडहेड की अध्यक्षता में अकाल जाच आयोग की नियुक्ति की। उड के अतिरिक्त सर मणिलाल वी० नानवती, एस० वी० राममूर्ति और अफजल हुसैन आयोग के सदस्य थे। १६४५ में आयोग की रिपोर्ट प्रकाशित हुई जिसमें बताया गया १५ लाख व्यक्ति अकाल में मरे। आयोग ने लिखा था—"कमिश्नरों और

---

* 'ब्रिटिश सोलजर इन इण्डिया'—पृ० सं० ९८

† 'कांग्रेस का इतिहास'—खंड ३, पृ० सं० ११०

कलक्टरों द्वारा १९४३ के आरम्भ में विभिन्न जिलों से संकट की स्थिति की रिपोर्टें सरकार को प्राप्त हो रही थी फिर भी उसने जून तक कुछ नहीं किया और सहायता के सम्बंध में विस्तृत आदेश अगस्त तक नहीं जारी किये गये थे। अकाल की स्थिति की घोषणा नहीं की गयी। सहायता की समस्या का सामना करने तथा अकाल की स्थिति घोषित करने में होने वाला विलम्ब, "कमी नहीं है" की दुर्भाग्य पूर्ण प्रचारात्मक नीति से बंधा था जो भारत सरकार के सहयोग से अप्रैल और जून में जारी रही। जब कि अकाल के चिन्ह स्पष्ट थे, यह नीति अन्यायपूर्ण थी।"...आयोग ने अकाल के लिए स्पष्टतः बंगाल सरकार और भारत सरकार को दोषी ठहराया। लेकिन होता क्या ? भारत गुलाम जो था।

# समझौते की योजनाएं और चुनाव

**गांधी जी रिहा—जिना अपनी बात से पीछे हटे—राजाजी की समझौता योजना—देसाई-लीग समझौता—वावेल घोषणा—कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्य रिहा—शिमला सम्मेलन विफल—१९४६ के चुनावों में कांग्रेस की शानदार सफलता—बंगाल और सिंध के अतिरिक्त सभी प्रांतों के कांग्रेस विजयी—आजाद हिंद फौज के मुकदमे।**

गांधी जी ६ मई, १९४४ को स्वास्थ्य ठीक न रहने के आधार पर रिहा कर दिये। इस पर राजनीतिक क्षेत्रों में पुनः तरह-तरह की कल्पना की जाने लगी। उधर यूरोप में लड़ाई का रुख प्रायः पलट चुका था। पूर्व में जापान अवश्य आगे बढ़ रहा था। ब्रिटेन और भारत के अनेक अखबारों ने इस अवसर पर यह मत प्रकट किया कि कार्यसमिति के सदस्य भी रिहा कर दिये जाने चाहिये ताकि समझौते की कोशिश नये सिरे से की जा सके। सरकार इस बात पर अड़ी थी कि कार्यसमिति पहले अगस्त प्रस्ताव को वापस ले, तभी कुछ हो सकता है। कार्यसमिति ऐसा क्यों करती? स्वतः गांधी जी भी इसके लिए तैयार नहीं थे। अपनी रिहाई के लगभग दो सप्ताह बाद २० मई को उन्होंने डा० जयकर के नाम एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि "मैं अगस्त वाला प्रस्ताव वापस नहीं ले सकता।...उसके समर्थन के बारे में आपका मत शायद मेरे मत से न मिले लेकिन मुझे तो वह प्राण के समान प्रिय है।"

वास्तव में गांधी जी को अगस्त प्रस्ताव वापस लेने का अधिकार भी नहीं था। यह कार्य केवल कार्यसमिति ही कर सकती थी। अधिक से अधिक गांधी जी यही कर सकते थे कि इसके लिए कार्यसमिति पर दबाव डालते। लेकिन इसका प्रश्न ही नहीं उठता था, क्योंकि उनकी दृष्टि में अगस्त प्रस्ताव उचित था। हाँ, सत्याग्रह आरम्भ करने का अधिकार उन्हें प्राप्त था, सो इसके सम्बंध में ६ जुलाई को उन्होंने अपना यह मत प्रकट कर दिया था कि "अभी सत्याग्रह छेड़ने का मेरा इरादा नहीं है।" गांधी जी ने दो वक्तव्य दिये जिनकी मुख्य बातें इस प्रकार थीं: (१) कांग्रेस कार्यसमिति की सलाह के बिना मैं कुछ

नहीं कर सकता ( २ ) मैं वाइसराय से मिला तो मुलाकात का उद्देश्य मित्रराष्ट्रों के युद्ध-प्रयत्न में बाधा डालना न होगा ( ३ ) सत्याग्रह शुरू करने का मेरा इरादा नहीं है।...देश को पुनः १९४२ की स्थिति में नहीं ले जाया जा सकता, ( ४ ) नयी परिस्थिति में मैं असैनिक शासन पर पूरा नियंत्रण रखने वाली सरकार से ही संतुष्ट हो जाऊंगा और ( ५ ) राष्ट्रीय सरकार की स्थापना होने पर, उसमें भाग लेने की सलाह मैं कार्यसमिति को दूंगा।

वाइसराय की हालत विचित्र थी। वह न तो कार्यसमिति के सदस्यों से गांधीजी को मिलने देना चाहते थे, न स्वयं उनसे मिलना चाहते थे। जुलाई-अगस्त में गांधी-बावेल पत्र-व्यवहार के प्रकाशन के बाद यह स्पष्ट हो गया कि उपर्युक्त दोनों अनुरोध उन्होंने तीन बार ठुकरा दिये थे।

वाइसराय ने अपनी ओर से यही किया कि राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के लिए क्रिप्स प्रस्ताव की शर्तें दोहरा दीं। उन्होंने एक तमाशा और किया। राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के सम्बंध में उन्होंने यह भी शर्त लगा दी कि विधान-निर्माण के तरीके के सम्बन्ध में पहले विभिन्न दलों और अल्प-संख्यकों के प्रतिनिधियों की बीच समझौता हो जाना चाहिए। यह हाल अगस्त में था। सरकार के रुख में कडाई का कारण साफ था। यूरोप में मित्रराष्ट्रों का विजय अभिमान जारी हो रहा था। १५ अगस्त को वाइसराय लार्ड बावेल ने भारत में उपर्युक्त सुझाव दोहराये और उधर दो दिनों बाद १७ अगस्त को दक्षिण फ्रांस में मित्रराष्ट्रों ने दूसरा मोर्चा खोल दिया।

लीग और कांग्रेस में समझौते का एक और प्रयास इस बीच विफल हो चुका था। इस सम्बन्ध में राजगोपालाचारी और जिना एक योजना पर सहमत हुए थे। बाद में जब यह प्रकट हुआ कि इस पर गांधी जी ने अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी है तो वह मुकर गये। वास्तव में जो शर्तें इसमें थीं, जिना ने उन्हें स्वयं प्रस्तावित किया था। अखिल भारतीय हिन्दू महासभा के तत्कालीन जनरल सेक्रेटरी राजा महेश्वर दयाल ने हिन्दू महासभा का रुख प्रकट करते हुए, इस बात पर आश्चर्य व्यक्त किया था कि जिना उन्हीं शर्तों को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हुए जो उन्होंने स्वयं पेश की थी। संक्षेप में योजना इस प्रकार थी—

( १ ) स्वाधीन भारत के लिए नये विधान की निम्न शर्तें पूरी होने की हालत में मुसलिम लीग स्वाधीनता के लिए भारत की मॉग का समर्थन करेगी और संक्रमण काल में अन्तरकालीन अस्थायी सरकार की स्थापना के प्रयास में कांग्रेस से सहयोग करेगी, (२) युद्ध समाप्त होने पर भारत के उत्तर-पश्चिम

वह उत्तर-पूर्व में उन मिले हुए जिलों को निर्दिष्ट करने के लिए जिनमें मुसलमान स्पष्टतः बहुमत में हैं, एक कमीशन की नियुक्ति की जायगी। इस प्रकार निर्दिष्ट क्षेत्रों में बालिग मताधिकार के अथवा, अन्य व्यवहारिक मताधिकार के आधार पर मत-संग्रह होना चाहिये और उनके भारत से पृथक होने अथवा न होने का फैसला इस प्रकार करना चाहिये, (३) मत-संग्रह से पूर्व प्रत्येक पक्ष को अपने मत का प्रचार करने की पूरी छूट होनी चाहिए, (४) पृथक्करण के बाद सुरक्षा, व्यापार, यातायात के साधन व अन्य विषयों की रक्षा के लिए एक समझौता होना चाहिये और (६) ये शर्तें सिर्फ उसी हालत में लागू होंगी जब भारत के शासन की जिम्मेदारी पूरी तरह त्यागने के लिए ब्रिटेन राजी होगा।

समझौते की इस योजना के प्रकाश में आने पर राजगोपालाचारी की बड़ी आलोचना की गयी लेकिन १९४६ की 'माउंटबैटन घोषणा' के बाद जिसके आधार पर भारत का बटवारा हुआ और भारत ने आजादी हासिल की, यह सिद्ध हो गया कि राजा जी का रास्ता सही था। अस्तु, यह योजना भी जिना की कुटिल नीति के कारण असफल हो गयी। गांधी जी फिर भी प्रयत्नशील रहे। विदेश में, विशेष रूप से अमेरिका में, श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित ने भारत की स्वतन्त्रता की मॉग का जोरदार प्रचार बड़े प्रभावशाली ढग से शुरू किया।

जिना से होनेवाली वार्ता की असफलता के बाद केन्द्रीय असेम्बली में भूलाभाई देसाई और लियाकत अली खॉ के बीच समझौते की वार्ता आरम्भ हो गयी। लियाकत अली लीग की पार्लिमेण्टरी पार्टी के नेता थे। अंततः ११ जनवरी १९४५ में दोनों ने एक समझौते पर हस्ताक्षर कर दिये। "इस समझौते में राष्ट्रीय सरकार में समानता का अनुपात साम्प्रदायिक आधार पर नहीं बल्कि संस्थागत आधार पर स्वीकार किया गया था। इसमें निश्चय हुआ था कि इस प्रकार स्थापित सरकार का पहला काम कार्यसमिति के सदस्यों को रिहा करना होगा।

लियाकत अली-देसाई समझौते में अस्थायी सरकार के संघटन का तरीका यह निश्चित किया गया था—४० प्रतिशत कांग्रेस, ४० प्रतिशत मुसलिम लीग और २० प्रतिशत अन्य समुदाय। जब वाइसराय के सामने यह योजना प्रस्तुत की गयी तो उनका कोई उत्तर नहीं प्राप्त हुआ। बाद में पता चला कि वह लंदन गये थे। वहाँ सम्भवतः काफी दिनों तक उन्होंने वार्ता की। भारत लौट कर १४ जून, १९४५ को उनहोंने ब्रिटिश सरकार की नयी नीति की घोषणा

करते हुए शरारत का एक नया दौर शुरू कर दिया। सक्षेप मे वावेल की घोषणा इस प्रकार थी—

(१) नयी शासन परिषद के संघटन के उद्देश्य से नेताओं का सम्मेलन। प्रस्तावित नयी शासन परिषद मे सभी मुख्य जातियों के प्रतिनिधि रहेगे और उसमे सवर्ण हिन्दुओं और मुसलमानों के प्रतिनिधियों का अनुपात समान होगा। (२) जहाँ तक ब्रिटिश भारत का सवाल है, परराष्ट्र विभाग परिषद के भारतीय सदस्य को सौंपने का इरादा (३) राजनीतिक नेताओं से परामर्श करने के बाद वाइसराय शासन परिषद के सदस्य चुनेंगे। (४) वाइसराय के निषेधाधिकार की समाप्ति का कोई प्रश्न नहीं उठता—उसका उपयोग अकारण नहीं किया जायगा।*

इस वक्तव्य मे वाइसराय ने विभिन्न दलों के प्रतिनिधियों को आमंत्रित करने की घोषणा भी की थी। इसमे प्रायः सभी मुख्य दलो का नाम लिया गया लेकिन हिन्दू महासभा का नहीं। इससे जाहिर हो गया कि वह कांग्रेस को ही हिन्दुओं की सस्था सिद्ध करना चाहते थे। दूसरी शरारत का रूप उनके वक्तव्य के इस अश मे निहित था—"ये प्रस्ताव सिर्फ ब्रिटिश भारत के सम्बन्ध में है। इनका प्रभाव सम्राट के प्रतिनिधि से, देशी नरेशों के सम्बन्ध पर, तनिक भी नहीं पडता।"

१६ जून, १९४५ को काग्रेस कार्यसमिति के सदस्य रिहा कर दिये गये। वाइसराय की घोषणा के बाद शिमला मे सम्मेलन आरम्भ हुआ। दो बैठकें हुई लेकिन कोई हल न निकला। शासन परिषद के सदस्यों की संख्या तथा उसके गठन के तरीके के सम्बन्ध मे २८ जून तक कोई समझौता न होने पर २९ जून को सभी दलों की सहमति से वाइसराय ने स्वयं हल प्रस्तुत करने की जिम्मेदारी ली। उन्होने सभी दलों से प्रतिनिधियों की सूची माँगी। लीग और यूरोपियन गुट के अतिरिक्त अन्य सभी दलों ने सूचियाँ वाइसराय को दे दी। १४ जुलाई को वाइसराय ने एक वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमे उपर्युक्त बातों का उल्लेख करते हुए उन्होंने बताया था कि "कांग्रेस को सफल बनाने की प्रत्येक सम्भव कोशिश करने से पूर्व उसे असफल न होने देने के लिए मैं कृत-सकल्प रहा। मैंने अस्थायी रूप मे प्रतिनिधियों के नाम चुने। इसमे मुसलिम लीग के भी कुछ नाम शामिल थे।.....किसी दल के दावे को पूर्णतः

---

* पूरा वक्तव्य देखिये—अनिलचन्द्र बनर्जी, 'दि मेकिंग आव दि इण्डियन कांस्टिट्यूशन' पृ० सं० ९५, से ९८ तक

स्वीकार करना मेरे लिए सम्भव न था। जब मैंने अपना हल श्री जिना को बता दिया तो उन्होंने उत्तर दिया कि यह मुसलिम लीग को स्वीकार नहीं है। उनका रुख देखकर मैंने महसूस किया कि वार्ता को जारी रखना व्यर्थ है।"*

इस प्रकार शिमला सम्मेलन भी विफल हो गया और उसमे कोई हल न निकला।

ब्रिटेन के नये चुनाव में चर्चिल सरकार का पतन हो गया। विजय मजदूर दल के हाथ में रही। १० जुलाई, १९४५ को मजदूर सरकार की स्थापना हुई। एमरी के स्थान पर पेथिक लारेंस भारत मंत्री नियुक्त हुए। लडाई के जमाने मे भारत के प्रति उनका दृष्टिकोण काफी उदार था।

नयी सरकार की स्थापना होने पर वाइसराय लदन गये। इधर केन्द्रीय और प्रान्तीय असेम्बलियो के नये निर्वाचन की घोषणा कर दी गयी। वाइसराय लौटे। उन्होंने वक्तव्य दिया। नये प्रधान मत्री एटली और नये भारत मंत्री पेथिक लारेंस ने भी वक्तव्य दिये। लेकिन ये सभी असंतोष-जनक थे। इनका कोई परिणाम न निकला। राष्ट्र की इच्छा व्यक्त कराने के लिए कांग्रेस ने चुनाव मे भाग लेना तय किया। अन्य दल भी तैयार हो गये। सितम्बर मे जिस समय वाइसराय लंदन से वापस लौटे, चुनाव की सरगर्मी यहाँ आरम्भ हो चुकी थी।

चुनाव के दौरान मे कायम अनेक प्रतिबन्ध चुनाव के अवसर पर भी जारी रहे। इनका असर प्रायः कांग्रेस पर ही पडा, क्योंकि दमन कांग्रेस का ही हुआ था और प्रतिबन्ध उसके ही कार्यकर्त्ताओं पर लगाया गया था। फिर भी चुनाव मे उसने शानदार सफलता अर्जित की।

१९४६ मे चुनाव समाप्त होने पर प्रातीय असेम्बलियों मे विभिन्न दलों की दलगत स्थिति इस प्रकार प्रकट हुई—

पंजाब असेम्बली—कुल सदस्य सख्या १७५। लीग—७७, काग्रेस—४८, पंथिक—२१, यूनियनिस्ट—१६, स्वतत्र—१५ ( ७ स्थान रिक्त रहे )। यहाँ यूनियनिस्ट, काग्रेस और पथियों की सयुक्त सरकार कायम हुई।

सिंध असेम्बली—कुल सदस्य सख्या ६० ( ३-१-४७ को ) मुसलिम लीग—३५, काग्रेस—२०, मुसलिम जमैयत—२, यूरोपियन—३। यहाँ मुसलिम-लीग की सरकार कायम हुई।

---

* अनिलचन्द्र बनर्जी—'दि मेकिंग आव दि इण्डियन कांस्टिट्यूशन' खण्ड १, पृ० सं० १००-१०१

उड़ीसा असेम्बली—कुल सदस्य संख्या ६० (५–८–४६ को)। कांग्रेस ४७, मुसलिम लीग—४, कम्युनिस्ट—१, स्वतन्त्र—४, सरकार द्वारा मनोनीत—४।

असम असेम्बली—कुल सदस्य संख्या १०८ (८–८–४६)। कांग्रेस ५०, जमैयत उल उलेमा—३, मुसलिम लीग—३१, स्वतन्त्र—१४।

मद्रास असेम्बली (लोअर हाउस) कुल सदस्य संख्या २१५। कांग्रेस—१६५, मुसलिम लीग—२६, यूरोपियन—७, एंग्लो इण्डियन—२, स्वतन्त्र—६, नेशनलिस्ट—१ कम्युनिस्ट–२।

बम्बई असेम्बली—कुल सदस्य संख्या १७५। कांग्रेस—१२७, मुसलिम लीग—३१, प्रोग्रेसिव कम्युनिस्ट—१, हिन्दू महासभा—१ (दो स्थान रिक्त) शेष अन्य।

संयुक्त प्रान्त असेम्बली—कुल सदस्य संख्या—२२८। कांग्रेस—१५१, राष्ट्रीय मुसलमान—७, मुसलिम लीग—५३, जमींदार–६, स्वतंत्र—५, अहरार–१, यूरोपियन ३, रिक्त–२।

बिहार असेम्बली—कुल सदस्य संख्या—१५२। कांग्रेस (५ राष्ट्रीय मुसलमान और १ स्पीकर को लेकर)—१०२, मुसलिम लीग—३४, स्वतंत्र—१५, निर्दल—१ (स्पीकर)।

बंगाल असेम्बली–कुल सदस्य संख्या २५०। मुसलिम लीग का बहुमत।

मध्य प्रान्त—कुल सदस्य सख्या ११२ (१६–८–४६ को)। कांग्रेस ६३, मुसलिम लीग १३, स्वतंत्र—५ (स्पीकर अतिरिक्त)।

उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त–कुल सदस्य संख्या ५० (७–८–४६)। कांग्रेस ३०, कांग्रेस नेशनलिस्ट—२, मुसलिम लीग–१७ अकाली—१।*

इन चुनाव परिणामों से कांग्रेस के प्रभुत्व की स्थिति स्पष्ट हो गयी। मुसलिम लीग केवल बंगाल और सिन्ध में ही सरकार कायम कर सकी। पठानों के देश सीमा प्रान्त में उसे कांग्रेस के आगे मुँह की खानी पड़ी। इस प्रान्त मे कांग्रेस की विजय का श्रेय सीमान्त गांधी खाँ अब्दुल गफ्फार खाँ और उनके खुदायी खिदमतगारों को रहा। सीमान्त गांधी के नेतृत्व में खूनी और कातिल कहे जाने वाले पठान पूर्ण अहिंसक रहे। उनक संगठन अद्भुत और बेमिसाल था। इस दृष्टि से भारत के अन्य किसी भी प्रान्त का कांग्रेस संगठन सीमा प्रान्त के कांग्रेस संगठन से बहुत पीछे रहा। ये खुदायी खिदमत-

---

* 'पनुअल रजिस्टर'–१९४६, खण्ड १ पृ० सं० ५ से ११ तक

गार आज भी लाल कुर्ती दल के रूप में प्रसिद्ध हैं। ये भारत के विभाजन के विरोधी रहे। अंग्रेज कूटनीति ने इन्हें जबरदस्ती और बेइमानी से पाकिस्तान में शामिल करा दिया। आज भी वे अपने नेता खाँ अब्दुल गफ्फार खाँ के नेतृत्व में जो लगभग छः वर्षों तक पाकिस्तान सरकार के आदेश से जेल में रहे, पठानों के लिए आत्म-निर्णय का अधिकार प्राप्त करने के उद्देश्य से आन्दोलन कर रहे हैं।

चुनाव के दौरान में भारत राजनीतिक दृष्टि से पूरी तरह आन्दोलित था। ब्रिटिश भारत मे आजाद हिन्द फौज के मामले को लेकर सनसनी फैली हुई थी। रियासती जनता की प्रतिनिधि संस्था देशी राज प्रजा परिषद का अधिवेशन कई वर्षों के बाद उदयपुर मे हो सका था। यह अधिवेशन कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण था। इसमे अध्यक्ष-पद से भाषण करते हुए पडित जवाहरलाल नेहरू ने एक ओर साम्राज्यवाद का नग्न चित्र उपस्थित किया था और दूसरी ओर ब्रिटिश भारत से रियासतों के सम्बन्ध मे कुछ सुझाव भी पेश किये थे जिन्हें दो वर्ष बाद स्वतत्र भारत के गृह मंत्री लौह पुरुष सरदार पटेल ने अपनी अद्भुत संघटन शक्ति और राजनीतिक सूझ-बूझ के बल पर व्यवहारिक सिद्ध कर दिखाया।

देशी राज प्रजा परिषद का सम्मेलन दिसम्बर, १९४५ मे उदयपुर मे हुआ था। इसमे ३१ दिसम्बर को अध्यक्ष-पद से भाषण करते हुए नेहरू जी ने कहा था कि "बहुसख्य रियासतें जो सम्भवतः आर्थिक दृष्टि से इकाइयाँ नहीं बन सकतीं, पडोस के क्षेत्रों में मिला दी जानी चाहिये।" स्वतत्र भारत मे यही हुआ लेकिन उस समय स्थिति कुछ और थी। हैदराबाद में सुधार के प्रस्ताव पेश किये जा चुके थे, ये सुधार नहीं थे बल्कि था लोकतान्त्रित भावनाओं का निर्मम उपहास। प्रस्तावित सुधारों मे कहा गया था कि "राज्य का प्रमुख सीधे-सीधे स्वतः जनता का प्रतिनिधित्व करता है, इसलिए जनता के साथ उसका सम्बन्ध परिवर्तनशील निर्वाचित प्रतिनिधियों की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक और सूत्रबद्ध है। वह राज्य का सर्वोच्च अधिकारी और 'जनता की प्रभुसत्ता' ( पिपुल्स सावरेनिटी ) का प्रतीक, दोनों हैं।"*

जहाँ बड़ी रियासतों का यह हाल था, वहीं कुछ छोटी रियासतें वास्तविक सुधार की ओर बढ़ रही थी। औंध के राजा ने निर्वाचित प्रतिनिधियों की विधान सभा को बहुत से अधिकार दे दिये थे। रीवा नरेश ने जन-प्रतिनिधि

---

* अध्यक्ष का अभिभाषण—पृ० सं० ५

सरकार की स्थापना की घोषणा कर दी थी। संविधान सभा में जन प्रतिनिधियों को लेने की मांग तो बराबर की ही जा रही थी।

सन् १९४५ के अंतिम चरण में हीं—"आजाद हिंद फौज के मुकदमों से भारत में बड़ी सनसनी फैली हुई" थी। "सबसे पहले कर्नल शाहनवाज, कप्तान सहगल और लेफ्टिनेण्ट ढिल्लन पर मुकदमें चलाये गये।...भारत में शायद ही ऐसा कोई व्यक्ति रहा हो जिसका दिल आजाद हिंद फौज के रोमांचकारी अनुभवों और साहसिक कार्यों को जानकर हिल न उठा हो। अदालत में जिन घटनाओं का बयान किया जाता, उन्हें भारत की साक्षर जनता बड़ी उत्कंठा से नित्य पढ़ती और निरक्षर जनता बड़ी उत्सुकता से उन्हें सुनती। मुकदमे का विवरण सुनने के लिए निजी तथा सार्वजनिक रेडियो के पास भीड़ लगी रहती।"*

आजाद हिन्द फौज के मुकदमों के अभियुक्तों को छुड़ाने के लिए सारे देश में बड़े-बड़े प्रदर्शन हुए। कोने-कोने में जलूस निकाले गये जिनमें लाखों व्यक्ति शामिल हुए। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने इसे राजनीतिक जागरण का मुख्य आधार बना कर जन आन्दोलन में जान फूंक दी। अनेक सभाओं में उन्होंने आजाद हिंद फौज के लोगों पर चलाये गये मुकदमों का जोरदार विरोध किया। फलतः भारत में एक नयी चेतना, नयी जागर्ति और नया जोश भर उठा। 'ढिल्लन, सहगल, शाहनवाज—इनकलाब जिंदाबाद' के नारे से गली-गली और कूंचा-कूंजा गूंज उठा। बड़े बड़े नगरों की जनता ने प्रचंड रूप से प्रदर्शन किया। कलकत्ता में प्रदर्शनकारियों पर गोली चलायी गयी। फलतः ४० व्यक्ति मरे और ३ सौ घायल हुए। बम्बई में भी गोली चली और २३ व्यक्ति मारे गये तथा लगभग २ सौ घायल हुए।

भारत की आजादी के आन्दोलन में जबरदस्त हिलोर पैदा करने वाले इस आन्दोलन पर भी साम्प्रदायिकता का रंग चढ़ाने से लीग बाज न आयी। कप्तान रशीद को कैद की सजा मिली तो जिना साहब ने बौखलाहट से भरा वक्तव्य दिया। इतना ही क्यों, लीग ने मुसलिम सेनाधिकारियों की पैरवी के लिए कमेटी भी बनायी किन्तु सेनाधिकारियों ने इससे सहायता लेने से इनकार कर दिया। ढिल्लन, सहगल और शाहनवाज के प्रमुख मुकदमे की पैरवी कांग्रेस द्वारा नियुक्त समिति ने ही की। जवाहरलाल नेहरू, भूलाभाई देसाई, तेजबहादुर सप्रू, कैलाशनाथ काटजू, बख्शी टेकचन्द, बद्रीदास, दिलीपसिंह,

* 'कांग्रेस का इतिहास'—खंड ३, पृ०स० २३६

और आसफ अली, जो कानून के पंडित रहे हैं, पैरवी के लिऐ कांग्रेस की ओर से नियुक्त हुए थे। भूलाभाई देसाई ने इस मुकदमें जबरदस्त बहस की और इसे अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया। अपनी ऐतिहासिक बहस के फलस्वरूप भूलाभाई देसाई ने अपनी प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त कर ली जो देसाई-लियाकत अली समझौते के कारण दब सी गयी थी!

मुकदमा सुनने वाली विशेष अदालत ने तीनों अभियुक्तों को सम्राट के विरुद्ध युद्ध घोषित करने का दोषी ठहराया। शाहनवाज खाँ के विरुद्ध हत्या में सहायता पहुँचाने का अभियोग भी सिद्ध पाया गया। अदालत ने इनका वेतन जब्त करने का आदेश देने के साथ-साथ इन्हें आजीवन कारावास का भी दंड दिया लेकिन जन आन्दोलन को देखते हुए सर्वोच्च सेनापति ने अपने विशेषाधिकार से इनकी आजीवन कारावास की सजा माफ कर दी। अगले वर्ष शाहनवाज खाँ ने बिहार के साम्प्रदायिक दंगे के समय गांधी जी के सिद्धान्तों के अनुसार प्रभावकारी ढंग से सेवा-कार्य किया। बाद में स्वतंत्र भारत में वह रेलवे मंत्री के संसदीय सचिव के पद पर नियुक्त हुए।

आजाद हिंद फौज का इतिहास बहुत रोमांचकारी और शानदार है। वह उत्सर्ग की भावना से भरा है। भारत भी स्वतन्त्रता के व्यापक आन्दोलन का वह एक महत्त्वपूर्ण चरण है। सन् १९४६ के आरम्भ में बम्बई में नौ सैनिकों की बगावत तथा बैरकपुर और जबलपुर आदि में सैनिकों की हड़ताल स्पष्टतः आजाद हिन्द फौज आन्दोलन से प्रभावित थी।

# आजाद हिन्द फौज

**इण्डियन इण्डिपेंडेंस लीग—मोहनसिंह और आजाद हिन्द फौज का संघटन—तोजो की घोषणा—पूर्वी एशिया के भारतीयों का सम्मेलन—रासबिहारी घोष का प्रयास—सुभाष बाबू लीग के अध्यक्ष—'दिल्ली चलो' का नारा—अस्थायी आजाद हिन्द सरकार—जापान-जरमनी आदि द्वारा मान्यता प्रदान—आजाद हिन्द फौज का प्रथम अभियान—अराकान में सफलता राष्ट्रीय बंक की स्थापना—इम्फल की ओर चढ़ाई—वर्षा का प्रभाव—अंग्रेजों को कुमक मिली—अंग्रेज सेना का बढ़ाव—रंगून के दरवाजे पर—सुभाष बाबू का संदेश—जापान ने हथियार रखा—सुभाष बाबू विमान-दुर्घटना में फसे आजाद हिन्द फौज के १० हजार सैनिक बन्दी।**

आजाद हिन्द फौज का गठन वास्तव मे सन् १९४१ मे ही आरम्भ हो चुका था लेकिन उसे प्रकाश मे आने का अवसर तब मिला, जब श्री सुभाष चन्द्र बोस उसके सर्वोच्च सेनापति नियुक्त हुए। श्री बोस १९४१ मे ही रहस्यमय ढग से भारत से गायब हो गये थे। बाद मे पता चला कि वह अफगानिस्तान होते हुए रूस की ओर बढ़े किन्तु तब तक रूस और ब्रिटेन में संधि हो चुकी थी, अतः वह रूस न जा सके। इसका पता जरमनी को लगा और एक जरमन जहाज ने उन्हें बरलिन मे पहुँचा दिया।

सन् १९१५ मे भारत मे सशस्त्र क्राति के अपने प्रयास मे विफल होने के कारण प्रसिद्ध क्रान्तिकारी रासबिहारी घोष जापान चले गये थे और वह वही रह रहे थे। वहाँ उन्होने 'इण्डियन इंडिपेंडेंस लीग' की स्थापना की और पूर्वी एशिया के भारतीय नेताओं को उसमे शामिल किया। द्वितीय महायुद्ध मे जापान के कूदते ही रासबिहारी घोष ने जापान सरकार से अनुरोध किया कि विजीत प्रदेशों के भारतीयों को शत्रु न समझा जाय। जापान सरकार ने यह अनुरोध स्वीकार कर लिया और लीग की सहायता से अंग्रेज अधिकृत क्षेत्रों की भारतीय फौज को तोड़ने की कोशिश आरम्भ हुई। यह कार्य बंगाल के 'अनुशीलन' दल के प्रफुल्ल सेन, जो स्याम में सत्यानन्द पुरी के नाम से रह रहे थे, तथा 'गदर' पार्टी के प्रीतमसिंह शानी को सौंपा गया।

उत्तर मलाया पर जापान की विजय के बाद जो सैनिक कैद हुए थे, उनमें कप्तान मोहनसिंह भी थे। प्रीतमसिंह ने जापानी सेनाधिकारियों की सहायता से मोहनसिंह से भेंट की और आजाद हिन्द फौज का संघटन करने के लिए इन्हें प्रेरित किया। मोहन सिंह तैयार हो गये। उन्होने आजाद हिन्द फौज का संघटन आरम्भ किया।

१५ फरवरी, १९४२ को पूर्व में ब्रिटेन के सिंहद्वार सिंगापुर को जापानी सेना ने उध्वस्त कर दिया। दूसरे ही दिन जापान के प्रधान मंत्री जेनरल तोजो ने जापानी ससद मे स्पष्टतः यह घोषित किया कि 'भारत की स्वाधीनता की लड़ाई मे जापान हर सम्भव उपाय से सहायता देगा।'

मार्च, १९४२ मे पूर्वी एशिया के भारतीयों का एक छोटा सा सम्मेलन भारत की आजादी की लड़ाई मे भाग लेने के प्रश्न पर विचार करने के लिए हुआ। इसके पश्चात् रासबिहारी घोष बकाक पहुँचे। १५ से २३ जून तक इनकी अध्यक्षता मे यहीं पूर्वी एशिया के भारतीयों के प्रतिनिधियों का एक वृहत् सम्मेलन हुआ जिसमे उनकी अध्यक्षता मे एक सघर्ष समिति सघटित की गयी और 'इण्डियन इंडिपेंडेंस लीग' का सदर कार्यालय बकाक मे कायम कर दिया गया।

भारत के अगस्त-विद्रोह का समाचार जब मलाया मे पहुँचा तो मोहनसिंह ने बरमा के मोर्चे से भारत से सम्पर्क स्थापित करने की कोशिश की किन्तु यह प्रयास विफल हुआ। मोहनसिंह का एक विश्वस्त साथी आजाद हिन्द फौज सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण कागजात लेकर अंग्रेजो से जा मिला। इसका परिणाम अच्छा नहीं हुआ। जापानियों को कुछ शंका पैदा हुई। सम्भवतः वे आजाद हिन्द फौज पर नियंत्रण चाहते थे जिसके लिए मोहनसिंह तैयार न हुए। वह कुछ तन भी गये। आजाद हिन्द फौज के जो सैनिक जापान के जंगी जहाजों पर सवार होकर बरमा जाने वाले थे, उन्हें मोहनसिंह ने रोक लिया और स्वयं 'इण्डियन इंडिपेंडेंस लीग' से हट गये। रासबिहारी घोष ने हस्तक्षेप करके मामला सुलझाना चाहा, लेकिन उन्हें भी सफलता न मिली। तब रासबिहारी घोष ने उनका जनरल का पद तोड दिया। इससे क्षुब्ध होकर मोहनसिंह ने बहैसियत कैदी स्वयं को जापानियों के हवाले कर दिया लेकिन जापानी आजाद हिन्द फौज को विघटित नहीं होने देना चाहते थे, अतः मोहनसिंह को उन्होंने गिरफ्तार नहीं किया। इधर मोहनसिंह के अनुयायियों ने शस्त्र रख दिये और सैनिक शिक्षा बन्द कर दी। वृद्ध रासबिहारी घोष इसपर भी हताश न हुए। मलाया के युद्ध मे बन्दी अन्य अफसरों—जगन्नाथ भोंसले, शाहनवाज और

लोकनाथन् आदि की सहायता से उन्होंने नये सिरे से आजाद हिन्द फौज में नये सैनिकों की भर्ती आरम्भ की। इस बूढ़े क्रांतिकारी को इस बार अपने प्रयास में अभूतपूर्व सफलता मिली जिससे उसकी आँखें चमक उठी।

मार्च, १९४३ में 'इण्डियन इण्डिपेंडेंस लीग' का सदर कार्यालय बंकाक से सियोनान (सिंगापुर) ले जाया गया। जून में श्री सुभाषचन्द्र बोस जान हथेली पर लेकर एक जरमन पनडुब्बी द्वारा बरलिन से तोकियो पहुँचे। यहाँ से आप् २ जुलाई को सियोनान आये। ४ जुलाई को 'इण्डियन इण्डिपेंडेंस लीग' के पूर्वी एशिया के प्रतिनिधियों का सम्मेलन हुआ जिसमें रास बिहारी घोष ने लीग का अध्यक्ष-पद स्वीकार करने के लिए सुभाष बाबू को आमन्त्रित किया। सुभाष बाबू ने सम्मेलन में महत्वपूर्ण भाषण किया और अध्यक्ष-पद स्वीकार कर लिया गया। उनके अनुरोध पर रासबिहारी घोष लीग के सर्वोच्च परामर्शदाता बन गये।

इस सम्मेलन में ही सुभाष बाबू ने भारत की अस्थायी स्वतंत्र सरकार स्थापित करने का इरादा जाहिर किया। आजाद हिन्द फौज ने उन्हें सलामी दी और बदले में सुभाष बाबू ने उन्हें यह नारा दिया—'दिल्ली चलो।' सन् १९४५ में यह नारा भारत के एक सिरे से दूसरे सिरे तक गूँज उठा था।

८ जुलाई को रेडियो पर सुभाष बाबू ने आजाद हिन्द फौज की स्थापना की घोषणा की। सारी दुनिया में यह खबर फैल गयी। भारत में उत्साह की लहर दौड़ी। लोग बाट जोहने लगे कि सुभाष बाबू कब अपनी फौज के साथ ब्रिटिश सत्ता पर हमला करते है। इस प्रभाव को मिटाने के लिए कम्युनिस्टों ने सुभाष बाबू को फैसिस्ट और गद्दार सिद्ध करने का जोरदार प्रयास किया, यद्यपि आजाद हिन्द सरकार पर जापान का कोई नियंत्रण किसी ने स्वीकार नहीं किया था।

सिंगापुर और मलाया आदि में आत्म-समर्पण करने वाले अधिकतर भारतीय सैनिक आजाद हिंद फौज में शामिल हो गये। इस प्रकार एक फौज की नींव पडी जिसने शस्त्रबल से भारत में अंग्रेजी सत्ता का नाम-निशान मिटाने का बीडा उठाया।

अक्तूबर में सुभाष बाबू ने दूसरा कदम उठाया। लीग के पूर्व एशिया के प्रतिनिधियों के सम्मेलन में २१ अक्तूबर को उन्होंने आजाद हिन्द की अस्थायी सरकार की स्थापना की घोषणा की। घोषणा-पत्र पर उन्होंने और अस्थायी सरकार के सभी मंत्रियों ने हस्ताक्षर किये। मंत्रिमण्डल में श्रीमती लक्ष्मी की भी नियुक्त हुई।

१८५७ के विद्रोह के समय अंग्रेजों का छक्का छुडाने वाली महारानी लक्ष्मी बाई के जन्म दिवस के अवसर पर सुभाष बाबू ने झाँसी की रानी रेजीमेंट में स्वयं सेविकाओं की भर्ती का श्री गणेश किया। महिलाएँ और युवतियाँ सैकड़ों की संख्या में अभूतपूर्व उत्साह के साथ इस रेजिमेण्ट भर्ती हुई और कैप्टन लक्ष्मी के नेतृत्व में उन्होंने कठिन सैनिक अभ्यास आरम्भ किया।

आजाद हिन्द सरकार की स्थापना के बाद ही जापान, जरमनी तथा उनके सात मित्र देशों ने उसे मान्यमा प्रदान करके अन्तर्राष्ट्रीय जगत मे उसके अस्तित्व को स्वीकार कर लिया और जाब्ते से इसकी घोषणा भी कर की। पहली नवम्बर को सुभाष बाबू तोकियो पहुँचे जहां जापान सरकार ने आजाद हिंद सरकार के अध्यक्ष के रूप मे उनका स्वागत-सत्कार किया। ७ नवम्बर को जापान के प्रधान मंत्री जनरल तोजों ने कुछ समय के अन्दर अण्डमान और निकोबार द्वीप आजाद हिन्द सरकार को सुपुर्द करने की घोषणा कर दी। ३० दिसम्बर को सुभाष बाबू ने आजाद हिंद सरकार अधिकृत अंडमान की भूमि पर पैर रखा और भारत की आजादी का प्रतीक तिरगा झण्डा वहाँ लहराया।

७ जनवरी, १९४४ को सुभाष बाबू बरमा पहुँचे। तब आजाद हिंद सरकार और आजाद हिंद फौज का सदर कार्यालय भी यहाँ कायम कर दिया गया।

४ फरवरी को अराकान के क्षेत्र मे आजाद हिंद फौज ने कर्नल लक्ष्मण स्वरूप मिश्र की कमान मे ब्रिटिश सेना के विरुद्ध अपना प्रथम अभियान आरम्भ किया। इससे पूर्व सुभाष बाबू ने जो भाषण किया, वह बहुत मार्मिक था। उन्होंने कहा था—"भारत के सैनिकों-दूर, नदियो, जगलों और पहाड़ों के पार हमारा देश है। अब हम वहाँ जा रहे हैं जहाँ की मिट्टी से हम बने हैं हिन्दुस्तान तुम्हें पुकार रहा है। हिन्दुस्तान की राजधानी दिल्ली पुकार रही है। ३८ करोड़ भारतीय तुम्हें पुकार रहे हैं। खून को खून बुला रहा है। उठो, हथियार उठाओ। दिल्ली का रास्ता भारत की आजादी का रास्ता है। दिल्ली चलो—जयहिंद।"

अराकान में आरम्भ मे आजाद हिन्द सैनिकों को कई स्थानों पर सफलता मिली। उन्होंने अंग्रेजों से कई इलाके छीन लिये और वहां आजादी का झण्डा गाड़ दिया। दुर्भाग्यवश इसी समय वर्षा आरम्भ हो गयी। फलतः युद्ध रुक गया। इस बीच अंग्रेज सेना की सहायता के लिए नयी कुमक पहुँच गयी। अंग्रेजों के पास लगभग एक दर्जन तोपें हो गयीं। आजाद हिंद सेना के पास केवल एक तोप थी। दूसरा मुकाबला आजाद हिंद फौज के लिए महंगा सिद्ध हुआ। आजाद हिंद फौज के बहुत से सैनिक खेत रहे।

अराकान क्षेत्र मे प्रथम युद्ध के दौरान मे २१ मार्च को दुनिया ने सुभाष बाबू का यह ऐलान सुना था कि–"दो दिन पूर्व भारतीय सैनिकों ने सीमा पार कर ली और अब वे भारत की भूमि पर जमें हैं।" इस ऐलान से सारे भारत में सनसनी फैल गयी। इस देश के करोडों निवासियों की आंखें बरमा–भारत की सीमा पर टंग गयी। जगह-जगह यह सुनायी पड़ने लगा—'अब क्या होता है। सुभाष बाबू की फौज अब आने ही वाली है।'

५ अप्रैल को सुभाष बाबू ने स्वयं मोर्चे की ओर प्रस्थान किया। इससे चंद घंटे पूर्व उन्होंने रगून मे आजाद हिंद सरकार के राष्ट्रीय बंक की स्थापना की घोषणा की थी। पूर्वी एशिया के भारतीयों का देश प्रेम उमड़ पडा था। अल्पकालीन सूचना के बाद ही एक करोड रुपया जमा हो गया था। हबीब साहब और श्रीमती बेताई ने अपना सर्वस्व आजाद हिंद खजाने मे दे दिया था। इसका ऐसा जबरदस्त प्रभाव पडा कि महिलाओं ने अपने हाथों की चूड़िया और मर्दों ने अगूठिया तक बक को सुपुर्द कर दी। अकेले हबीब साहब की पूजी एक करोड से अधिक की थी। त्याग और उत्सर्ग के ऐसे उदाहरण इतिहास मे कम मिलते है। पूंजी लेने मे देर होती थी, देने मे नही। इसका ही यह परिणाम था कि रंगून के देहाती इलाको मे बक की दो और शाखाए खोलनी पडी। एक शाखा दक्षिण शान राज्य मे भी खोली गयी। लोगों ने देखते-देखते करोडों की सम्पत्ति आजाद हिंद सरकार के चरणो पर रख दी।

आजाद हिन्द फौज मे केवल महिलाएं ही नही, बालक भी भर्ती हुए। ६ से १४ वर्ष के लड़के-लड़कियो की बाल सेना का सगठन शीघ्र ही पूर्व एशिया मे फैल गया। इनके जोश-खरोश से सैनिकों को पर्याप्त बल मिला।

सन् १९४४ मे जापानी सेना के सहयोग से आजाद हिंद फौज ने असम के मैदानी इलाके के द्वार और मणिपुर की राजधानी इम्फल की ओर बढ़ना आरम्भ किया। यही बरसात आरम्भ हुई जिसका उल्लेख किया जा चुका है। युद्ध रुक गया। फरवरी मे आरम्भ होने वाला अभियान पांच मास के बाद पहली बार यही रुका। इस बीच जापानी सेना तथा शौकतअली मलिक के कमान मे आजाद हिन्द सेना बिशनपुर पर कब्जा करके इम्फल तक आ डटी थी। आजाद हिंद फौज की दूसरी टुकडी मग्घरसिंह और अजमेरासिंह के नेतृत्व में मणिपुर के उत्तर से घूम कर कोहिया तक पहुँच गयी थी। शाहनवाज की कमान में एक ब्रिग्रेड अराकान और चिन के पहाड़ों का मोर्चा संभाल रही थी ताकि मणिपुर में युद्ध-रत सेना के लौटने का मार्ग सुरक्षित रहे।

जापानी और आजाद हिन्द फौज ने चार मास तक इम्फल को घेर रखा। वर्षा के कारण अंग्रेजों को मौका मिल गया। शक्तिशाली नयी कुमक मोर्चे पर पहुँचा दी गयी। अमेरिका की सहायता भारत में जमा थी। अंग्रेजों ने उसका पूरा-पूरा लाभ उठाया। दूसरी ओर मूसलाधार वर्षा ने आजाद हिंद फौज को त्रस्त कर दिया। सड़कें टूट गयीं। आवागमन का मार्ग बंद हो गया। कुमक तो दूर, रसद का भी ठिकाना न रहा। जंगलों में भरे मच्छरों के कारण रोग का पहाड़ ऊपर से टूट पड़ा। इस पर भी आजाद हिंद फौज के सैनिक जान की बाजी लगा कर रुके रहे। लेकिन कब तक? नयी कुमक पाकर अंग्रेजों ने हमला बोल दिया। बरमा में उनकी सेना आगे बढ़ने लगी और आजाद हिन्द फौज की सेना पीछे हटने लगी। फिर भी न तो उनका उत्साह भग हुआ, न आत्महीनता की भावना की छाया उन पर पड़ी। आजाद हिंद सरकार, और पूर्व एशिया के ३० लाख भारतीयों ने शान के साथ इस मुसीबत का मुकाबिला किया और सैनिकों तथा रुपये से सहायता पहुँचाने की जी तोड कोशिश जारी रखी। एक बार फिर नये सिरे से हमला करने की जोरदार तैयारी की जाने लगी। लेकिन शत्रु के साधन अपरिमित थे। उसे बशुमार फौजी सहायता मिल रही थी। शस्त्रास्त्रों की उसे कमी नहीं थी।

इरावती नदी के दाल्वुआ किनारे की ओर और माडले-रंगून सडक पर छिंद्वी की ओर ब्रिटिश सैनिकों का बढ़ाव जारी रहा। इस दशा में इरावती घाटी की रक्षा के लिए आजाद हिंद फौज का एक डिवीजन शाहनवाज, पी० के० सहगल और गुरुबख्शसिंह ढिल्लन के नेतृत्व में वहा जमा रहा। बढ़ती हुई ब्रिटिश सेना इनका उत्साह तोड न सकी। बरमा के भारतीय भी सैनिकों से पीछे न थे। अविचल भाव से वे घटनाओं को देखते रहे। मास पर मास बीतते गये। उन्होंने अस्थायी सरकार दिवस पर उत्सव मनाया। ४ जुलाई से ११ जुलाई तक नेताजी (सुभाष) सप्ताह मनाया। २३ जनवरी से २९ जनवरी तक नेताजी जयंती मनायी। न तो कहीं पस्तहिम्मती थी, न निराशा। शत्रु को भारत की भूमि से खदेड़ने का जोश पहले की भाति ही बल खाता रहा।

अप्रैल, १९४५ मे अंग्रेज सेना रंगून की ओर बढ़ रही थी। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस तब भी रगून में ही थे। अपनी सेना के साथ रह कर अंग्रेजों का सामना करने तथा आवश्यकता पड़ने पर आत्मोसर्ग के लिए वह दृढ़ प्रतिज्ञ थे। उनके मंत्री तथा आजाद हिन्द फौज के उच्च अधिकारी एक सप्ताह तक बराबर बरमा से हटने तथा अन्य स्थान से संघर्ष जारी रखने

का आग्रह उनसे करते रहे। २२ अप्रैल की तिथि आ गयी लेकिन सुभाष बाबू अपने स्थान से हटने को तैयार न हुए। अंग्रेजी सेना रंगून के दरवाजे तक पहुँच गयी। रंगून में उसका प्रवेश चन्द घण्टों का मामला नजर आने लगा। तब आजाद हिन्द सरकार के मंत्रियों और आजाद हिन्द फौज के अधिकारियों की आँखों मे आँसू भर आये। उनकी बेचैनी देख कर सुभाष बाबू ने अपना इरादा बदल दिया। झाँसी की रानी रेजिमेट की स्वयंसेविकाएं अपने-अपने घर पहुँचा दी गयी। मेजर जेनरल लोकनाथन् की कमान मे पांच हजार सैनिक रगून मे छोड़ दिये गये। प्रेमसिंह रतूड़ी की कमान के छ सौ सैनिकों को साथ लेकर २४ अप्रैल की रात मे सुभाष बाबू ने रगून का त्याग किया और तीन सप्ताह मे तीन सौ मील का खतरनाक रास्ता तय करके वह बंकाक पहुँचे। मार्ग मे शत्रु की तोपों की आवाज बराबर उनके कर्ण कुहरों से टकराती रही।

रंगून से जाते समय उन्होने यह सदेश सुनाया—"आजाद हिन्द फौज के बहादुर अफसरों और सैनिकों—मैं भारी हृदय लेकर बरमा से हटा रहा हूँ जहाँ फरवरी से अब तक आपने वीरता पूर्वक युद्ध किया और अब भी कर रहे है। इम्फल और बरमा मे आजादी की लड़ाई का पहला दोर हमारे हाथ मे न रहा। हमे अभी युद्ध के अनेक दौरो से गुजरना है। मैं जन्म से आशावादी हूँ और किसी भी परिस्थिति मे मैं पराजय स्वीकार न करूंगा। इम्फल के मैदान में, अराकान के जगलो और पहाड़ियों मे, बरमा के तैल क्षेत्रों तथा अन्य स्थानो मे शत्रु के विरुद्ध आपके वीरतापूर्ण कारनामों की कहानिया हमारे स्वातत्र्य युद्ध के इतिहास म अमर रहेगी।

"सहयोगियो (कामरेड्स) इस सकट की घडी मे मुझे केवल आदेश का एक शब्द कहना है। उत्सर्ग ही अनिवार्य हो तो वह शानदार होना चाहिये। भावी सतति जो आजाद होगी, आपके महान् त्याग पर गर्व करेगी और शान के साथ दुनिया से कहेगी कि हमारे पूर्वजो ने युद्ध किया। मणिपुर, असम और बरमा मे वे पराजित हुए लेकिन अंततः हमारी आजादी और शान का पथ प्रशस्त कर गये। भारत की आजादी मे मेरा अविच्छिन्न विश्वास अब भी अटूट है। भारत का राष्ट्रीय तिरगा, राष्ट्रीय सम्मान और भारतीय वीर सैनिकों की उज्ज्वल परम्पराएं आपके हाथों मे सुरक्षित छोड कर मैं जा रहा हूँ। मुझे इसमे तनिक भी सदेह नही है कि भारतीय स्वातत्र्य युद्ध के सैनिको के अग्रदूत राष्ट्रीय सम्मान की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व एवं जीवन तक बलिदान कर देंगे ताकि यह चमकता हुआ उदाहरण अन्य स्थानों पर युद्ध करने वाले आप के सहयोगियों को हमेशा प्रेरणा देता रहे।

"मेरा वश चलता तो विपत्तिकाल में साथ रह कर अस्थायी पराजय के दुःख में आप के साथ हिस्सा बटाता। अपने मत्रियों और उच्च अधिकारियों के परामर्श के कारण मुझे स्वातंत्र्य युद्ध को जारी रखने के लिए बरमा से हटना पड़ रहा है। पूर्व एशिया के भारतीय और भारत के लोगों के सम्बन्ध में अपनी जानकारी के आधार पर मैं आपको यह आश्वासन दे सकता हूँ कि वे सभी प्रकार की परिस्थियों में संघर्ष जारी रख सकते हैं। आपकी तपश्चर्या और आपका त्याग व्यर्थ न होगा। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं ३८ करोड भारतीयों की यथाशक्ति सेवा करने और उनकी मुक्ति के लिए संघर्ष करते रहने की अपनी उस प्रतिज्ञा पर अटल हूँ जो मैंने २१ अक्टूबर १९४३ को ग्रहण की थी। अन्त मे मैं आप से भी आशावादी होने की अपील करता हूँ। मैं चाहता हूँ कि मेरी ही भांति आप भी इस बात मे विश्वास रखें कि प्रकाश की किरण के फूटने से पूर्व सघन अंधकार ही रहता है। भारत शीघ्र ही आजाद होगा।"

"ईश्वर आपकी सहायता करे।"

७ मई, १९४५ को यूरोप मे जरमनी ने हथियार रख दिये लेकिन पूर्व मे लडाई जारी रही। १४ मई को सुभाष बाबू बकाक पहुँचे। वह पुनर्सगठन के कार्य मे व्यस्त रहे। १४ जून को भारत मे वाइसराय लार्ड वावेल ने अपनी शासन परिषद मे भारतीयों को रखने का प्रस्ताव रखा और जापानियों के विरुद्ध युद्ध मे कांग्रेस से सहयोग प्रदान करने की अपील की। काग्रेस कार्य समिति के सदस्य रिहा कर दिये गये। इसके बाद की घटनाओं का उल्लेख पहले किया जा चुका है। यहा इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि १८ जून को सुभाष बाबू बंकाक से सियोनान पहुँचे। यहा से प्रतिदिन अपना भाषण ब्राडकास्ट करके आप लार्ड वावेल का प्रस्ताव स्वीकार करके स्वतंत्रता का सौदान करने का आग्रह बराबर एक मास तक काग्रेस नेताओं से करते रहे। भारत में हुआ भी यही। १४ जुलाई को शिमला सम्मेलन की वार्ता भंग हो गयी। नेताजी ने संतोष की सांस ली।

पूर्व के युद्ध का शीघ्रातिशीघ्र अन्त करने के लिए ५ और ६ अगस्त, १९४५ को अमेरिका ने हिरोशिया और नागा साकी (जापानी नगर) पर अणु बम फेंक कर उन्हें उध्वस्त् कर दिया। इस पैशाचिक कार्य का लोम हर्षण परिणाम निरीह नागरिकों ने भोगा। उधर रूस ने भी मचूरिया पर आक्रमण कर दिया। १५ अगस्त, १९४५ को जापान ने हथियार रख दिये। तीन दिनों बाद १८ अगस्त को सिंगापुर से तोकियो जाते समय मार्ग में विमान

दुर्घटना के कारण सुभाष बाबू के कपड़े में आग लगी। वे बुरी तरह जल गये। कहते हैं कि इसी दिन रात को ९ बजे भारत मा के इस सपूत का प्राण पखेरू उड गया।

कहा जाता है कि विमान ताइवान से उड़ा ही था कि उसकी मशीन बिगड़ गयी और पेट्रोल की टंकी में आग लग गयी। कुछ ही मिनटों में जहाज जमीन पर गिरा और सुभाष बाबू किसी प्रकार लड़खड़ाते हुए जहाज से बाहर निकल सके लेकिन तब तक उनके कपडों में आग लग चुकी थी।

युद्ध में जापान की पराजय के बाद आजाद हिन्द फौज के लगभग १० हजार सैनिक बन्दी बनाकर भारत लाये गये और विभिन्न जेलों में बन्द कर दिये गये। उनके नेताओं पर चलाये गये मुकदमो तथा भारत की जनता पर उनकी प्रतिक्रिया का विवरण आरम्भ में ही दिया जा चुका है।

यहीं भारतीय स्वातंत्र्य युद्ध के एक शानदार परिच्छेद का अंत होता है।

---

# आजादी और उसकी पृष्ठ-भूमि

नाविक विद्रोह—गोली का जवाब तोप से—बम्बई में नागरिकों से मुठ-भेड़—सरदार पटेल के हस्तक्षेप से स्थिति में सुधार—भारत मंत्री की घोषणा ब्रिटेन के प्रधान मंत्री की घोषणा—मन्त्रिमंडल मिशन भारत में—मंत्रिमंडल मिशन के प्रस्ताव—कांग्रेस और लीग से वार्ता—मंत्रिमंडल मिशन का १६ मई का वक्तव्य—जिना का मत—कांग्रेस द्वारा आलोचना—सिखों की प्रतिक्रिया अंतरिम सरकार की समस्या—कांग्रेस से समझौता - सिखों द्वारा विरोध—जिना की खरी-खोटी—'प्रत्यक्ष कारवाई' के लिए आह्वान—बंगाल में अराजकता साम्प्रदायिक दंगे—अंतरिम सरकार संघटित—लीग ने भाग नहीं लिया—जिना झुके—लंदन में वार्ता—संविधान सभा का अधिवेशन आरम्भ—लीग की चाल काम कर गयी—भारत छोड़ने की ब्रिटिश प्रधान मन्त्री की घोषणा—लुई माउण्ट बैटन वाइसराय के पद पर—पंजाब में भीषण साम्प्रदायिक दंगा ३ जून की घोषणा—कांग्रेस को भारत का बटवारा मंजूर—ब्रिटिश संसद में भारतीय स्वातंत्र्य विधेयक स्वीकृत—१५ अगस्त को सत्ता का हस्तांतरण।

भारत की नब्ज परखने के लिए ब्रिटेन मजदूर दल की सरकार द्वारा यहाँ भेजा गया संसदीय शिष्ट-मडल जिसमें रिचार्ड्स, वाट, निकोलसन, सोरेन-सन, बाटमले, हापिकन आदि प्रसिद्ध नेता शामिल थे, फरवरी, १९४६ में यहा से लौट गया। इनमें अधिकतर नेता भारत के मामले में दिलचस्पी रखते थे। उसकी आकांक्षाओं के प्रति उनका रुख भी सहानुभूति पूर्ण था। शिष्ट-मडल ने अपने वतन में लौट कर यह राय जाहिर की कि "भारत की आजादी अधिक दिनों तक रोकी न जानी चाहिये।"

फरवरी, १९४६ में ही भारत में एक महत्त्वपूर्ण घटना घटी जो इतिहास मे नाविक विद्रोह के नाम से प्रसिद्ध है। यह आकस्मिक घटना थी। राष्ट्रीय आंदोलन अथवा क्रान्ति से इसका कोई सम्बध न था। इसका उद्भव अंग्रेज अफसरों के दुर्व्यवहार के फलस्वरूप हुआ था। फिर भी, इसने जो रूप ग्रहण किया, वह सशस्त्र क्रान्ति का अंग हो सकता था यदि प्रयास किया जाता।

लेकिन लीग की राजनीति और उस पर अंग्रेजों की छत्र-छाया के कारण यह सम्भव न था। दूसरी बात यह थी कि राष्ट्रीय आन्दोलन दूसरी विचार-धारा से प्रभावित था और उसके अन्तर्गत नाविक विद्रोह के लिए स्थान पाने की कोई गुंजाइस न थी।

विद्रोह का सूत्रपात १८ फरवरी, १९४६ को बम्बई के सिगनल स्कूल 'तलवार' से हुआ। यहां अंग्रेज अफसरों के दुर्व्यवहार से क्षुब्ध होकर नाविकों ने हड़ताल कर दी। इन पर फौजी अदालत में मुकदमा चलाने की धमकी का कोई असर न हुआ। दूसरे ही दिन कई बैरकों और जहाज के हजारों नाविक हड़ताल में शामिल हो गये। कराची, कलकत्ता, विजगापट्टम् आदि में भी हड़ताल फैल गयी। ऐसा लगा कि सारा देश सैनिक विद्रोह की ज्वाला की चपेट में आ जायगा। बम्बई में बड़े-बड़े प्रदर्शन हुए। नगर में हड़ताल हुई। जनता ने हड़तालियों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की। उधर कराची में 'हिन्दुतान' के नाविकों और अंग्रेजों में भिड़न्त हो गयी। २१ फरवरी को विद्रोही नाविकों ने गोरी फौज की गोलियों का जवाब अपनी तोपों से दिया। इस भिड़न्त ने अग्नि में घृताहुति का काम किया। बम्बई में खबर पहुँची तो तूफान उठ खड़ा हुआ। जहाजों पर लगे यूनियन जैक के स्थान पर तिरंगा और लीग का हरा झण्डा फहराने लगा। दूसरे दिन, अर्थात २२ फरवरी को हड़ताली बम्बई नगर में फैल गये। 'आजाद हिंद फौज–जिंदाबाद', 'ब्रिटिश साम्राज्यवाद का नाश हो' और 'इनकलाब-जिंदाबाद' के गगन भेदी नारों से साम्राज्यशाही कांप उठी। उसने बम्बई में अंग्रेजी फौज जमा की। हड़तालियों से नहीं, नागरिकों से उसकी मुठभेड़ हुई। लगभग तीन सौ व्यक्ति मारे गये। कलकत्ते में इसकी प्रतिक्रिया हुई। वहाँ भी जबरदस्त हड़ताल हुई। बम्बई में नाविक शहर से हट कर जहाजों पर चले गये और तोपों के मुँह उन्होंने नगर की ओर घुमा दिये। ऐसा प्रतीत होने लगा कि बम्बई में गोलाबार हो कर ही रहेगा लेकिन सरदार पटेल के हस्तक्षेप से मामला तूल न पकड़ सका। २२ फरवरी को सरदार पटेल ने हड़ताली नेताओं से वार्ता की और उन्हें आश्वासन दिया कि—"उन्हें दमन का शिकार न होने देने के लिए कांग्रेस अपनी शक्ति भर चेष्टा करेगी।" लीग ही क्यों पीछे रहती। देखादेखी उसने भी आश्वासन दे डाला। अन्त में २३ फरवरी को हड़तालियों ने सरदार पटेल का कहना मान कर आत्म-समर्पण कर दिया। हड़ताल समिति के अध्यक्ष ने घोषित किया कि—"हम भारत के समक्ष आत्म-सर्पण कर रहें हैं, ब्रिटेन के समक्ष नहीं।" यह वास्तविक बात थी। विद्रोही मुकाबिला करने के लिए तैयार थे, इसमें

सन्देह नहीं है। आग भड़कती तो क्या होता, यह कोई नहीं कह सकता। यह कल्पना से परे की बात है कि अपने भाइयों पर आफत घहराती देख कर अन्य भारतीय सैनिक चुप बैठे रहते। स्वयं अंग्रेजों का विश्वास भी उनके प्रति डाँवाडोल हो गया था। विद्रोह के दौरान मे उन्होंने हर जगह गोरी फौज से ही काम लिया था।

नाविक-विद्रोह के दूसरे दिन अर्थात् १९ फरवरी को भारत मंत्री लार्ड पेथिक लारेंस ने भारत का मसला सुलझाने के लिए मंत्रिमडल का एक प्रतिनिधि मंडल (कैबिनेट मिशन) भारत भेजने के सम्राट की सरकार के निश्चय की घोषणा ब्रिटेन की सरदार सभा मे की थी।* इसके पश्चात् १५ मार्च, १९४६ को ब्रिटेन के प्रधान मंत्री एटली ने लोकसभा मे घोषणा की—"मेरे सम्मानित सहयोगी अपने प्रयास मे सफल होने के दृढ़ निश्चय के साथ भारत जा रहे हैं। मुझे विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति उनकी सफलता की कामना करेगा।"†

एटली की घोषणा अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट थी। न केवल भारत अपितु अमेरिका और फ्रांस आदि मे भी उसकी व्यापक प्रतिक्रिया हुई। भारत मे काग्रेस नेताओं ने जहाँ समस्या के सुलझने की आशा व्यक्त की, वहीं मुसलिम लीग के तानाशाह जिना संदेह व्यक्त करने से बाज न आये।‡ दरअसल यह मंत्रिमंडल मिशन पर प्रभाव डालने की कूटनीतिक चाल थी और जिना को इसमें सफलता भी मिली। उनकी यह धमकी बेकार नहीं गयी कि—"हम समझौते द्वारा यदि सम्भव हो तो शान्तिपूर्वक पाकिस्तान की स्थापना के लिए कृत-संकल्प है लेकिन साथ ही यदि आवश्यकता हुई तो हम खून बहाने के लिए भी तैयार हैं।"↑

प्रधान मंत्री एटली की घोषणा की मुख्य बातें संक्षेप में इस प्रकार थीं—(१) अपने लिए संविधान बनाने का काम भारत का है, (२) यह निर्णय

---

* अनिलचंद्र बनर्जी—'दि मेकिंग आव दि इंडियन कंस्टीट्यूशन' खंड १, पृष्ठ संख्या १०४।

† वही पृष्ठ संख्या ११०।

‡ जग परवेश चंदर—'स्टोरी आव दि कैबिनेट मिशन इन इंडिया' पृष्ठ संख्या ३७।

↑ " " " " " " " पृष्ठ संख्या ३८।

भारत को करना है कि वह ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में रहेगा या न रहेगा ; ( ३ ) भारत यदि स्वतंत्र रहने का निर्णय करता है तो उसके लक्ष्य की पूर्ति में सहायता करना ब्रिटिश सरकार का कर्त्तव्य होगा ; ( ४ ) नये संविधान का निर्माण होने तक केंद्र में अंतरिम सरकार की स्थापना जिसे यथासम्भव अधिक से अधिक सहयोग प्राप्त होगा; ( ५ ) यद्यपि ब्रिटिश सरकार अल्पसंख्यकों के अधिकारों की ओर से सतर्क है तथापि वह बहुसंख्यकों की प्रगति को अनिवार्य रूप में अवरुद्ध करने की ( वीटो ) अनुमति अल्पसंख्यक वर्ग को नहीं दे सकती, ( ६ ) अल्पसंख्यकों के प्रति न्यायपूर्ण व्यवहार की जिम्मेदारी तथा उनकी ओर से हस्तक्षेप करने के अधिकार को ब्रिटेन कायम रखे, यह भारत की आजादी के विरुद्ध होगा और ( ७ ) अंततः भारत के साथ होनेवाली संधि में अपने हित की किसी ऐसी बात को शामिल करने के लिए ब्रिटिश सरकार न अड़ेगी जो भारत के हित के विरुद्ध होगी।[क]

१६ मार्च को ब्रिटिश मंत्रिमण्डल के तीन सदस्यों—( १ ) लार्ड पेथिक लारेंस ( भारत मन्त्री ), सर स्टैफर्ड क्रिप्स ( बोर्ड आव ट्रेड के अध्यक्ष ) और ए० वी० एलेक्जेंडर ( फर्स्ट लार्ड आव दि एडमिरेलिटी ), का मंत्रिमडल मिशन ब्रिटेन से भारत के लिए रवाना हुआ और २३ मार्च को करांची पहुँचा।

भारत में मंत्रिमण्डल मिशन ने एक सप्ताह तक वाइसराय की शासन परिषद के सदस्यों, वाइसराय लार्ड वावेल और प्रान्तीय गवरनरों से बातचीत की। इसके पश्चात् मिशन के सदस्यों ने विभिन्न दलों के नेताओं और नरेन्द्र मण्डल के प्रतिनिधियों से वार्ता की। २६ अप्रैल तक बातचीत का यह दौरा चलता रहा लेकिन कोई हल न निकला। विफलता के कारण पुराने थे।

२७ अप्रैल को कैबिनेट मिशन ने लीग और कांग्रेस से चार-चार प्रतिनिधि वार्ता के लिए भेजने का आग्रह किया। इसका उद्देश्य निम्नलिखित बुनियादी सिद्धान्तों पर आधारित योजना के सम्बन्ध में समझौते की सम्भावना का पता लगाना था :

"भविष्य में ब्रिटिश भारत का वैधानिक ढांचा इस प्रकार होगा :

"संघ सरकार जिसके मातहत ये विभाग होंगे—परराष्ट्र, रक्षा और संचार साधन। प्रान्तों के दो गुट होंगे—हिन्दू बहुल प्रांत और मुसलिम बहुल प्रांत।

---

[क] जग परवेश चंदर—'दि स्टोरी आव दि कैबिनेट मिशन इन इण्डिया' पृष्ठ संख्या ४०।

शेष सभी विभागों पर प्रान्तीय सरकारों का अधिकार होगा और उन्हें अवशिष्ट सार्वभौम अधिकार प्राप्त होंगे। (रेसिड्यूअरी सावरेन राइट्स)। भारतीय रियासतें उन शर्तों पर जो उनके साथ तय हो, इस ढांचे मे अपना उचित स्थान ग्रहण करेंगी।"*

स्पष्टीकरण-सम्बंधी लिखा-पढ़ी के पश्चात् ५ मई को शिमला मे त्रिदलीय सम्मेलन आरम्भ हुआ। दो दिनों तक होने वाली वार्ता का कोई परिणाम न निकला। अंततः ८ मई को कैबिनेट मिशन की ओर से कुछ सुझाव पेश करने की सूचना लार्ड पेथिक लारेंस ने मौलाना आजाद और जिना को दी जो इस प्रकार थेः

(१) एक अखिल भारतीय संघ सरकार और विधान सभा (लेजिस-लेचर) होगी। परराष्ट्र, रक्षा, संचार और मौलिक अधिकारों-सम्बधी मामले उसके अन्तर्गत होंगे। इन विभागों के खर्च के लिए अपेक्षित धन उपलब्ध करने का अधिकार भी उसे होगा;

(२) शेष सभी अधिकार प्रांतों में निहित होंगे;

(३) प्रांतों के गुट बनाये जा सकते हैं और ऐसे गुट ऐसे प्रान्तीय अधिकार निश्चित कर सकते हैं जिन पर समान अधिकार उन्हे अभिष्ट हो;

(४) प्रान्तीय गुट अपनी शासन परिषदें और विधान सभाएं बना सकते हैं;

(५) संघ की विधान सभा में मुसलिम बहुल प्रातों और हिन्दू बहुल प्रान्तों के प्रतिनिधियों का अनुपात बराबर होगा—इन प्रान्तों अथवा इनमें से किन्हीं प्रांतों ने चाहे अपना गुट बनाया हो या न बनाया हो। इसमें रियासतों के प्रतिनिधि भी होंगे।

(६) संघ सरकार भी उसी अनुपात में गठित होगी जो विधान सभा में होगा।

(७) संघ और प्रान्तीय गुट—(यदि कोई हो) के संविधानों में ऐसा उपबंध होगा जिसके अनुसार कोई भी प्रांत अपनी विधान सभा के बहुमत की स्वीकृति से आरम्भ के दस वर्षों के पश्चात् तथा उसके पश्चात् प्रति दस वर्ष के उपरान्त संविधान की शर्तों पर पुनर्विचार के लिए कह सकेगा;

(८) उपर्युक्त आधार पर संविधान बनाने के लिए सविधान निर्मात्री संस्था इस प्रकार बनेगी:

---

* अनिलचन्द्र बनर्जी 'दि मेकिंग आव दि इण्डियन कांस्टिट्यूशन'—खंड १, पृ० सं० ११०-११

( क ) प्रत्येक प्रान्त की विधान सभा में विभिन्न दलों की शक्ति के अनुपात के आधार पर प्रतिनिधियों का निर्वाचन होगा। निर्वाचन सदस्य-संख्या के दसमांश के आधार पर होगा।

( ख ) ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधित्व के अनुपात के अनुसार रियासतों के प्रतिनिधियों को रियासतों की आबादी के आधार पर आमंत्रित किया जायगा।

( ग ) इस प्रकार संघटित संविधान सभा की बैठक यथासम्भव शीघ्र नयी दिल्ली में होगी।

( घ ) आरम्भिक बैठक के पश्चात् जिसमें साधारणतः कार्य-क्रम निर्धारित होगा, सभा तीन भागों में विभक्त होगी। एक भाग हिन्दू बहुल प्रान्तों का प्रतिनिधित्व करेगा, दूसरा मुसलिम बहुल प्रान्तों का तथा तीसरा रियासतों का।

( ङ ) तत्पश्चात अपने गुट के लिए संविधान का निर्णय करने और यदि वे सहमत हों तो गुट-संविधान के सम्बन्ध में निर्णय करने के लिए प्रथम दो भागों की बैठक पृथक-पृथक होगी;

( च ) उपर्युक्त प्रकार का निर्णय हो जाने के बाद किसी भी प्रान्त को अपने मूल गुट से हट कर दूसरे गुट में शामिल होने अथवा गुट से बाहर रहने का अधिकार प्राप्त होगा;

( छ ) इसके उपरान्त तीनों भागों की बैठक सयुक्त रूप में होगी जिसमें अनुच्छेद १–७ के अनुसार संघ के संविधान का निश्चय होगा ;

( ज ) संघ के सविधान में कोई भी ऐसा बड़ा प्रश्न जो साम्प्रदायिक विवाद पर प्रभाव डालने वाला होगा, तब तक सभा द्वारा तय हुआ न समझा जायगा जब तक दोनों बड़ी जातियों के बहुसंख्यक प्रतिनिधि उसके पक्ष में मतदान न करेंगे।

( झ ) वाइसराय तुरन्त उपर्युक्त विधान निर्मात्री सस्था को आमन्त्रित करेंगे जो उपर्युक्त अनुच्छेद ८ में उल्लिखित उपबन्धों द्वारा अधिशासित होगी।

इन सुझावों के बाद लिखा-पढ़ी का दौर आरम्भ हुआ लेकिन नतीजा कुछ न निकला। अततः १६ मई को कैबिनेट मिशन ने वक्तव्य देकर पुनः अपनी ओर से प्रस्ताव उपस्थित किया। यह ऐतिहासिक वक्तव्य रहा, क्योंकि इसके आधार पर ही आगे चल कर अंतरिम सरकार बनी।

इस वक्तव्य में कैबिनेट मिशन ने कहा था कि "मुसलिम लीग के दावे के आधार पर पृथक से प्रभुसत्ता प्राप्त पाकिस्तान राज्य के निर्माण से साम्प्रदायिक अल्पसंख्यकों की समस्या हल न होगी। प्रभुसत्ता प्राप्त पाकिस्तान में पंजाब, बंगाल और असम के उन जिलों को शामिल करने का कोई औचित्य हमें

नहीं नजर आता जिनकी आबादी में भारी बहुमत गैर मुसलिमों का है। पाकिस्तान के पक्ष में इस्तेमाल किया जाने वाला प्रत्येक तर्क समान रूप में पाकिस्तान से गैर मुसलिम क्षेत्रों को पृथक रखने के पक्ष में भी प्रयुक्त किया जा सकता है। सिखों की स्थिति पर यह बात विशेष रूप से प्रभाव डालती है।"*

कैबिनेट मिशन ने अपने वक्तव्य में इस भौगोलिक तथ्य का उल्लेख भी किया कि "प्रस्तावित पाकिस्तान के दो भागों के बीच लगभग सात सौ मील का अन्तर होगा। युद्ध और शांति, दोनों काल मे इनके बीच संवहन साधनों का उपयोग हिन्दुस्तान की सद्इच्छा पर निर्भर होगा। इसलिए हम ब्रिटिश सरकार को यह सलाह न देने के लिए बाध्य हैं कि वह अपने अधिकार बिलकुल पृथक प्रभुसत्ता प्राप्त दो देशों को सौंप दे।"

कैबिनेट मिशन ने अपने वक्तव्य में यह सुझाव पेश किया था कि :

( १ ) भारत का एक संघ होना चाहिये जिसमें ब्रिटिश भारत और रियासतें, दोनों शामिल हों; यह संघ परराष्ट्र और रक्षा विभाग तथा संवहन साधनों को अपने हाथ में रखे और इन विभागों के खर्च के निमित्त अपेक्षित द्रव्य उपलब्ध करने का अधिकार उसे प्राप्त हो ;

( २ ) संघ की शासन परिषद और विधान सभा ( लेजिसलेचर ) होनी चाहिये जिसमें ब्रिटिश भारत और रियासतों के प्रतिनिधि शामिल हों। विधान सभा में किसी बड़े साम्प्रदायिक प्रश्न के पेश होने पर निर्णय, सभा में उपस्थित प्रतिनिधियों के बहुमत से तथा दोनों मुख्य जातियों के प्रतिनिधियों के पृथक पृथक बहुमत से हो ;

( ३ ) संघ के अधिकार-क्षेत्र के विषयों के अतिरिक्त सभी अवशिष्ट अधिकार प्रान्तों में निहित हों ;

( ४ ) संघ को प्रदत्त अधिकारों के अतिरिक्त रियासतों के शेष सब अधिकार कायम रहेंगे।

( ५ ) प्रान्तों को शासन परिषद और विधान सभा के साथ गुट (समूह) बनाने की तथा प्रत्येक गुट को समान विषय निश्चित करने की आजादी रहनी चाहिये ;

( ६ ) संघ और प्रान्तों के विधानों में ऐसी व्यवस्था रहनी चाहिये जिसके अनुसार कोई प्रान्त आरम्भ के दस वर्षों के बाद विधान पर पुनर्विचार

---

* अनिलचन्द्र बनर्जी—'दि मेकिंग आव दि इण्डियन कांस्टिट्यूशन' खंड १—पृ० सं० १४०

की माँग अपनी विधान सभा के बहुमत के निर्णय के आधार पर कर सकता हो। आगे दस-दस वर्ष के अन्तर पर भी यह माँग करने का अधिकार उसे रहे।

कैबिनट मिशन ने विधान निर्मात्री संस्था के संघटन के लिए निम्न सुझाव पेश किये थे :

( १ ) प्रत्येक प्रांत के लिए उसके कुल प्रतिनिधियों की संख्या, उसकी आबादी के अनुपात से तय की जाय, मोटे तौर पर प्रति दस लाख की आबादी पर एक प्रतिनिधि को वयस्क मताधिकार प्रणाली पर आधारित प्रतिनिधित्व का निकटतम पर्याय माना जाय ;

( २ ) इस प्रकार निश्चित स्थान प्रत्येक प्रान्त की मुख्य जातियों के बीच उनकी आबादी के अनुपात के लिहाज से बांट दिये जाय ;

( ३ ) प्रत्येक जाति के लिए निर्धारित प्रतिनिधि विधान सभा में उसी जाति के सदस्यों द्वारा निर्वाचित हों।

कैबिनट मिशन ने जातियों को मुख्यतः तीन भागों में विभक्त किया—(१) आम ( सिखों और मुसलमानों को छोड़ कर ), मुसलिम और सिख। उसने प्रांतों के तीन वर्ग बनाये और विधान निर्मात्री सभा में विभिन्न जातियों के प्रतिनिधियों की संख्या के सम्बंध में यह सुझाव पेश किया ( निर्वाचन एकल हस्तांतरण मत-पद्धति द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर ) :

## प्रतिनिधित्व तालिक

### भाग क

| प्रान्त | आम | मुसलिम | योग |
|---|---|---|---|
| मद्रास | ४५ | ४ | ४९ |
| बम्बई | १९ | २ | २१ |
| सयुक्त प्रात | ४७ | ८ | ५५ |
| बिहार | ३१ | ५ | ३६ |
| मध्य प्रांत | १६ | १ | १७ |
| उड़ीसा | ९ | ० | ९ |
| जोड़ | १६७ | २० | १८७ |

*भाग ख*

| प्रांत | आम | मुसलिम | सिख | योग |
|---|---|---|---|---|
| पंजाब | ८ | १६ | ४ | २८ |
| पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत | ० | ३ | ० | ३ |
| सिंध | १ | ३ | ० | ४ |
| जोड़ | ९ | २२ | ४ | ३५ |

*भाग ग*

| प्रांत | आम | मुसलिम | योग |
|---|---|---|---|
| बंगाल | २७ | ३३ | ६० |
| असम | ७ | ३ | १० |
| जोड़ | ३४ | ३६ | ७० |

| | |
|---|---|
| ब्रिटिश भारत के लिए कुल स्थान | २९२ |
| रियासतों के लिए अधिकतम स्थान | ९३ |
| जोड़ | ३८५ |

"केंद्रीय विधान सभा में दिल्ली, अजमेर-मेरवाड़ा का प्रतिनिधित्व करने वाला एक-एक प्रतिनिधि तथा कुर्ग की विधान परिषद (लेजिस्लेटिव कौंसिल) द्वारा निर्वाचित एक प्रतिनिधि भाग 'क' में जोड़ दिया जाय। भाग 'ख' में ब्रिटिश बिलोचिस्तान का एक प्रतिनिधि जोड़ा जाय।"*

कैबिनट मिशन ने यह सुझाव भी दिया था कि सभी बड़े दलों के सहयोग से केन्द्र में तुरंत अंतरिम सरकार बना दी जाय।†

रियासतों के सम्बंध में कैबिनट मिशन ने यह घोषणा की थी कि "प्रभुसत्ता पर न तो ब्रिटिश ताज अपना अधिकार बनाये रख सकता है, न उसे नयी सरकार को हस्तांतरित कर सकता है।"‡ वास्तव में १२ मई, १९४६ को

---

* 'दि मेकिंग आव दि इण्डियन कांस्टिट्यूशन'—खंड १—पृ० सं० १४९ से ४८

† वही—पृ० सं० १४९।

‡ वही—पृ० सं० १४३।

जो शापक कैबिनट मिशन द्वारा नरेन्द्रमण्डल के चांसलर को दिया गया था, उसमें ही यह स्पष्ट कर दिया गया था कि "ब्रिटिश सरकार भारत सरकार को रियासतों की प्रभुसत्ता न तो किसी भी परिस्थिति में सुपुर्द कर सकती है, न करेगी।" उसका यह दावा कांग्रेस ने कभी स्वीकार नहीं किया। कांग्रेस नेताओं के अतिरिक्त डाक्टर अम्बेदकर ने भी अपने १७ जून, १९४७ के वक्तव्य में इस वैधानिक विवाद का करारा उत्तर ब्रिटिश सरकार को दिया था और उसकी धारणा निस्सार सिद्ध कर दी थी। अस्तु, कैबिनट मिशन के उपर्युक्त प्रस्तावों पर पूर्व की भांति पुनः विचार-विमर्श आरम्भ हुआ। इस बार १८ मई को गांधी जी ने भी भारत मंत्री लार्ड पेथिक लारेंस से तीन घंटे तक वार्ता की। उन्होंने अपनी वार्ता से कांग्रेस की कार्यसमिति को भी अवगत कराया। कार्यसमिति ने स्वयं इस पर काफी विचार किया। २० मई को कार्य-समिति ने उन बातों पर कांग्रेस की व्याख्या के सम्बन्ध मे भारत मंत्री को पत्र लिखने का अधिकार कांग्रेस अध्यक्ष को दिया जिन पर मतभेद की सम्भावना थी। इसमें एक महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि संविधान सभा सर्वाधिकार सम्पन्न संस्था हो और इस आशय की घोषणा की जाय। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि कांग्रेस उस कार्य-प्रणाली से स्पष्टतः अवगत होना चाहती थी जिसके अनुसार वाइसराय अंतरिम सरकार के सदस्य चुनते।*

कैबिनट मिशन के सुझावों पर २२ मई को जिना ने वक्तव्य देकर यह मत प्रकट किया कि "विधान निर्मात्री सभा में हिन्दू भारी बहुमत में हो जायंगे क्यों कि ब्रिटिश भारत के २९२ प्रतिनिधियों में मुसलमान केवल ७९ होंगे। यदि रियासतों के ९३ प्रतिनिधियों की संख्या भी शामिल हो जाय तो मुसलिम प्रतिनिधित्व और भी कम हो जायगा।" इसी प्रकार उन्होंने और भी नुक्ताचीनी की और कई संशोधन पेश कर दिये।

२३ मई को मौलाना आजाद और पंडित जवाहरलाल नेहरू ने वाइसराय से भेंट की और डेढ़ घंटे तक उनसे वार्ता की। दूसरे दिन कांग्रेस की कार्य समिति ने एक हजार शब्दों के प्रस्ताव में कैबिनट मिशन के उन सुझावों की आलोचना की जो उसकी दृष्टि में आपत्ति-जनक थे। उसने घोषित किया कि "प्रस्तावित अस्थायी सरकार के पूरे चित्र के अभाव में, कार्य समिति सुझावों के सम्बन्ध में इस स्तर पर अपना अंतिम निर्णय प्रकट करने में असमर्थ है।"

---

* जग परेश चंदर 'दि स्टोरी आव दि कैबिनट मिशन इन इण्डिया'— पृ० सं० १७८।

सिख नेता मास्टर तारासिंह ने सुझावों को ठुकराते हुए घोषित किया कि "इनमें सिखों को मुसलमानों की दया पर निर्भर कर दिया गया है।"

वार्ता, स्पष्टीकरण और सुझाव का दौर पुनः आरम्भ हुआ। धीरे-धीरे "१४ जून तक यह भी स्पष्ट हो गया कि यूरोपियनों (संविधान सभा मे) का प्रश्न भी मुख्य समस्या का ही एक अंग है। १५ जून को...समाचार मिला कि बंगाल असेम्बली के यूरोपियन दल ने अपना कोई प्रतिनिधि संविधान सभा के लिए न खड़ा करने का निश्चय किया है।"* पहले उनका निश्चय इसके विपरीत था जिसकी निन्दा गांधी जी ने की थी और 'भारत के संकट के समय उसके आपसी झगड़ों में भाग न लेने का अनुरोध उनसे किया था।'

इससे पूर्व १३ जून को वाइसराय ने पंडित नेहरू के समक्ष अंतरिम सरकार मे १३ सदस्य शामिल करने की एक योजना पेश की थी। इस पर कांग्रेस ने शासन परिषद मे १५ सदस्य रखने पर जोर दिया था और कहा था कि "इनमें मुसलमानों की संख्या पांच से अधिक न होनी चाहिये।" † श्री जिना समान प्रतिनिधित्व पर पहले अड़े। बाद मे उन्होंने 'राष्ट्रीय मुसलमान या लीग के प्रतिनिधि' का प्रश्न उठाया। सूची कांग्रेस ने भी दे दी और लीग ने भी लेकिन मसला हल नहीं हुआ। वाइसराय ५: ६: २ का अनुपात चाहते थे। कांग्रेस को यह स्वीकार नहीं था। जिना चाहते थे कि पाँचों मुसलमान लीग के ही प्रतिनिधि हो। अंततः १५ जून को वार्ता भग होने की घोषणा अधिकारिक तौर पर कर दी गयी। १६ जून को कैबनिट मिशन और वाइसराय ने संयुक्त वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमे सरदार बलदेव सिंह, सर एन. पी. इंजीनियर, जगजीवन राम, पंडित जवाहरलाल नेहरू, एम. ए. जिना, नवाबजादा लियाकत अली खा, हरेकृष्ण महताब, डाक्टर जान मथाई, नवाब मोहम्मद इस्माइल खां, ख्वाजा नाजिमुद्दीन, सरदार अब्दुर्रब निश्तर, सी. राजागोपालाचारी, डा० राजेन्द्र प्रसाद और सरदार बल्लभभाई पटेल को अंतरिम सरकार मे शामिल होने के लिए आमंत्रित किया गया था।

इस सूची से स्पष्ट हुआ कि कांग्रेस द्वारा पेश नामों में हेरफेर किया गया है। कांग्रेस के सामने जटिल समस्या थी। उधर जिना साहब यह कसम खा कर बैठे थे कि कांग्रेस अपने कोटे में भी किसी राष्ट्रीय मुसलमान को शामिल नहीं कर सकती। फिर बात चली। इस बीच २० जून को जिना का एक पत्र

---

* कांग्रेस का इतिहास—खंड ३—पृ० सं० ३६४।

† वही—पृ० सं० ३६४।

प्रकाशित हुआ जो उन्होंने वाइसराय को लिखा था। इसमें ही यह मांग थी कि कांग्रेस अपने कोटे में किसी ऐसे व्यक्ति को (मुसलमान को) नियुक्ति नहीं कर सकती जिस पर उन्हें आपत्ति हो। साथ ही यह भी कहा गया था कि वाइसराय सभी मुसलमानों को यह स्वीकार करने के लिए बाध्य करें कि मुस-लिम लीग ही केवल मुसलमानों की संस्था है। कांग्रेस यह सिद्धान्त नहीं स्वीकार कर सकती थी। फिर जिच उत्पन्न हो गयी। अंततः कांग्रेस ने २३ जून को दीर्घकालीन योजना (१६ मई की) को स्वीकार करने तथा अंतरिम योजना (१६ जून की) को अस्वीकार करने का निर्णय किया। इसी दिन लीग की कार्य समिति ने भी अंतरिम योजना को स्वीकार करने का निर्णय किया। दीर्घ कालीन योजना वह पहले ही स्वीकार कर चुकी थी।

२३ जून को ही कांग्रेस ने संविधान सभा में भाग लेने के सम्बन्ध में यह निर्णय भी किया कि "स्वतन्त्र, संयुक्त और लोकतान्त्रित भारत के संविधान के निर्माण पर ध्यान देते हुए कांग्रेस को प्रस्तावित संविधान सभा में भाग लेना चाहिये।"

कार्य समिति का "२३ जून का निर्णय भी अनिश्चित दशा में था। असम और बंगाल से प्राप्त तार में कार्य समिति का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया गया था कि प्रत्येक उम्मीदवार से इस घोषणा पर हस्ताक्षर कराया जा रहा है कि वह संविधान सभा में १६ मई के वक्तव्य के अनुच्छेद १६ (देखिये प्रतिनिधित्व तालिका और उसके ऊपर का अनुच्छेद—लेखक) में वर्णित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जा रहा है। इस अनुच्छेद का सम्बन्ध संविधान सभा के भागों और समूहों (गुटों) में विभाजित होने से था। चुनाव से सम्बन्ध रखने वाला यही एक मात्र अनुच्छेद था। तब भ्रम निवारण किया गया, किन्तु कार्य समिति ने अपनी आपत्ति नहीं उठायी। इस बीच कांग्रेस नेताओं तथा कैबिनट मिशन के बीच हुई बातचीत से प्रकट हुआ कि यदि कांग्रेस ने संविधान सभा में जाने का निर्णय किया तो १६ जून का वक्तव्य तथा बाद में हुई बातें रद्द मानी जायंगी और अस्थायी सरकार स्थापित करने का प्रयत्न भी नये सिरे से किया जायगा। यह २४ जून के प्रातःकाल की बात है। परन्तु संविधान सभा में जाने के निर्णय से जो एक दिन पहले ही हो चुका था, इस सूचना का कोई सम्बन्ध नहीं था; क्योंकि आपत्ति १६ वें अनुच्छेद के सम्बन्ध में थी जिसे पहले दोषहीन समझा गया था। जब मिशन और वाइसराय को कांग्रेस का निर्णय बताया गया तो प्रत्येक क्षेत्र में हर्ष की लहर दौड़ गयी।...लीगी हल्कों में प्रसन्नता का कारण यह था कि अंतरिम

सरकार में केवल लीग होगी। किन्तु लीग की आँखों पर पड़ा पर्दा शीघ्र उठ गया। सरकार की ओर से २७ जून को वक्तव्य प्रकाशित हुआ जिसमें बातचीत स्थगित करने की घोषणा की गयी थी।...तब जिना ने १६ जून के वक्तव्य को आठवीं धारा की काररवाई पूरी करने पर जोर दिया जिसमें कहा गया था कि यदि अंतरिम सरकार में कोई अथवा दोनों दल भाग लेने से इनकार करेंगे तो रिक्त स्थानों को उन दलों के प्रतिनिधियों से भर दिया जायगा जो १६ मई के वक्तव्य को स्वीकार करेंगे।"*

जिना की मांग पर ध्यान नहीं दिया गया। २६ जून को कैबिनट मिशन लंदन के लिए रवाना हो गया और वाइसराय ने यह कह कर बात टाल दी कि कुछ समय में अंतरिम सरकार की स्थापना की पृष्ठ भूमि तैयार हो जायगी।

६ और ७ जुलाई को कांग्रेस महासमिति की बैठक बम्बई में हुई। ब्रिटिश सरकार से हुए समझौते की पुष्टि करने वाला एक पंक्ति का प्रस्ताव महा-समिति ने ५१ के मुकाबिले में २०५ मतों से स्वीकार कर लिया। संविधान सभा का चुनाव भी आरम्भ हो गया जो जुलाई मास में ही समाप्त भी हो गया।

६ जुलाई को लाहौर में सिख पंथिक बोर्ड की बैठक हुई। बैठक दूसरे दिन भी जारी रही और उसमें संविधान सभा का बहिष्कार करने का निर्णय हुआ। इस बैठक में कांग्रेसी सिख, अकाली, बाबा खड्गसिंह की पार्टी तथा नामधारी प्रतिनिधियों ने भी भाग लिया था। कांग्रेस की ओर से प्रतापसिंह एम० एल० ए० ने संविधान सभा का बहिष्कार न करने का आग्रह किया लेकिन जब उनकी सुनवाई न हुई तो सभी प्रतिनिधियों ने एक मत से निर्णय किया।

सिखों के निर्णय का पता चलने पर कांग्रेस अध्यक्ष ने प्रतापसिंह एम० एल० ए० तथा सिखों के अधिनायक कर्नल निरंजनसिंह गिल को तार भेज कर चुनाव का बहिष्कार न करने का आग्रह किया। अंत में सब लोगों ने यह निर्णय किया कि उम्मीदवारों का नामांकन पत्र दाखिल करने की अनुमति दे दी जाय। भविष्य की स्थिति पर बाद में विचार किया जायगा। नामांकन पत्र तुरंत दाखिल करना जरूरी था; क्योंकि अंतिम समय समाप्त होनेवाला था। बाद में पुनः मामला उलझ गया। १४ जुलाई को सिखों की बैठक हुई जिसमें पंथिक बोर्ड के सदस्यों, एम० एल० ए०, केन्द्रीय विधान सभा के तीन सिख सदस्यों और अन्य प्रमुख सदस्यों ने भाग लिया। बैठक में १०

---

* 'कांग्रेस का इतिहास'—खंड ३, पृ०स० ३६८–३६९

जुलाई के निर्णय पर पुनः विचार हुआ। इसकी पुष्टि की गयी। कैबिनट मिशन के प्रस्तावों में सिखों के प्रति हुए अन्याय के विरोध में संविधान सभा का बहिष्कार करने का निर्णय किया गया। इसके पश्चात् सभी सिख उम्मीदवारों ने जिनकी संख्या आठ थी, नामांकन पत्र वापस ले लिये।

जिना और मुसलिम लीग ने भी अपना असली रूप एक बार पुनः प्रगट किया। २७ जुलाई को बम्बई में अखिल भारतीय मुसलिम लीग की बैठक हुई जिसमें जिना ने १५० मिनट तक भाषण किया और कांग्रेस तथा कैबिनट मिशन को खूब खरी-खोटी सुनायी। लीग की कौंसिल ने प्रस्ताव स्वीकार करके कैबिनट मिशन के १६ मई, १९४६ के प्रस्ताव ठुकरा दिये और साथ ही १६ अगस्त को 'प्रत्यक्ष काररवाई' दिवस मनाने एवं आने वाले संघर्ष के लिए संघटित होने की अपील मुसलमानों से करते हुए विदेशी सरकार द्वारा दी हुई उपाधियां त्याग देने का अनुरोध उनसे किया।

लीग की प्रतिक्रिया देख कर वाइसराय ने अंतरिम सरकार के संघटन का काम पुनः तेजी से आरम्भ कर दिया। इसके निर्माण मे सहयोग के लिए उन्होंने छ अगस्त को कांग्रेस अध्यक्ष से अपील की। वर्धा मे कांग्रेस की कार्य-समिति ने १२ अगस्त को इस पर विचार किया और वाइसराय की अपील स्वीकार कर ली। इस कार्य में सहयोग देने का आग्रह भी उसने लीग से किया, जो व्यर्थ हुआ।

जिना और बौखला गये। इससे मुसलमानों मे खूब उत्तेजना फैली। तब जिना ने 'प्रत्यक्ष काररवाई दिवस' में शांति से काम लेने की अपील मुसलमानों से की। लेकिन तीर कमान से निकल चुका था। बंगाल की लीगी सरकार की नियत भी खाम हो चुकी थी। १६ अगस्त को उसने सार्वजनिक छुट्टी घोषित की और पलीते मे आग लगा दी। विस्फोट हुआ और 'प्रत्यक्ष काररवाई' के रूप में रक्त की धार बह निकली। कलकत्ता और सिलहट मे रक्त की नदियां बह निकली। आगजनी और लूट-मार का जोर बढ़ गया। बंगाल में अराजकता का नग्न नृत्य दिखाई देने लगा। एक सप्ताह तक यह क्रम जारी रहा। "मोटे हिसाब से सात हजार के लगभग व्यक्ति मारे गये और बहुत बडी संख्या में घायल हुए।"* इसकी गहरी प्रतिक्रिया बिहार मे हुई। वहां भी साम्प्रदायिक दंगे ने खूब जोर पकड़ा। नोआखाली ( बंगाल ) मे पैशाचिकता, रक्तपात, महिला अपहरण और बलात् धर्म-परिवर्तन की लोमहर्षक

* 'कांग्रेस का इतिहास'—खंड ३—पृ० सं० २७०

घटनाओं और सार्वजनिक रक्तपात से गांधी जी विचलित हो उठे। उन्होंने नोआखाली की ओर देखा। वहां शांति का संदेश लेकर गये। अपने नैतिक बल से उन्होंने साम्प्रदायिक विद्वेष की धधकती ज्वाला ठंडी की। उजड़ा नोआखाली फिर बसने लगा। गांधी जी का यह अभियान अद्भुत था। उन्होंने अकेले, बिना रक्षकों के गली-गली की यात्रा की। उनके इस साहस को देख कर भारत विचलित हो उठा। तरह-तरह की आशंकाएं उत्पन्न होने लगीं, लेकिन व्यर्थ! इस महामानव का बाल भी बांका न हुआ। अहिंसा ने हिंसा पर विजय प्राप्त की। विद्वेष प्रेम में बदल गया। यह चमत्कार था जिसे चरितार्थ करना गांधी जी के लिए ही सम्भव था।

२५ अगस्त को वाइसराय का नया वक्तव्य प्रकाशित हुआ जिसमें अंतरिम सरकार में कांग्रेस के छः ( इनमें एक परिगणित जाति का ) लीग के पांच और अल्पसंख्यकों के तीन ( एक सिख ) प्रतिनिधि लेने का विचार प्रकट किया गया था। घोषणा की गयी थी कि अंतरिम सरकार औपनिवेशिक स्वराज्य की सरकार की भाँति होगी। लीग ने यह प्रस्ताव मंजूर नहीं किया। कांग्रेस इसे मानने के लिए तैयार हो गयी। तब वाइसराय ने लीग के बिना ही अंतरिम सरकार संघटित की। पंडित जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, डा० राजेन्द्र प्रसाद, आसफअली, सी० राजगोपालाचारी, शरत्चंद्र बोस, डा० जानमथाई, सरदार बलदेवसिंह, सर शफात अहमद खा, जगजीवनराम, सैय्यद अली जहीर और कुंवरजी हरमुसजी भाभा अंतरिम सरकार के मंत्री घोषित किये गये। मुसलमानों के दो स्थान रिक्त छोड दिये गये। २ सितम्बर को नयी सरकार ने कार्य-भार सभाला। बिहार में दगा इस सरकार के जमाने में हुआ। इसका रूप बडा भीषण था। इसे शात करने के लिए नेहरू जी बिहार गये। वहां एक सार्वजनिक सभा में उनकी टोपी उछाल दी गयी। इस पर बिहार के लोकप्रिय तरुण नेता जयप्रकाश नारायण ने लोगों को खूब फटकारा। नेहरू जी ने कड़ाई से दंगाइयों का दमन करने की चेतावनी दी। उनके निर्देश पर बिहार की कांग्रेस सरकार ने बहुत कड़ा रुख अख्तियार किया। गांवों में सर्चलाइट से काम लिया जाने लगा। पुलिस दगाइयों को उपद्रव में संलग्न देखते ही उन पर गोलियां बरसने लगती। इस कड़ाई के कारण दंगा काबू में आ गया। लेकिन यहा से भागनेवाले मुसलमानों ने सीमाप्रांत में जाकर वहा झूठा और जहरीला प्रचार आरम्भ किया। डा० खा की कांग्रेस सरकार ने उनकी एक न चलने दी। फिर भी रक्तपात बिलकुल रोका न जा सका। बाद में गढ़मुक्तेश्वर ( युक्तप्रात ) में भयानक दगा हुआ। यह स्थान मेरठ

जिले में है। यहीं कांग्रेस का अधिवेशन नवम्बर में होने वाला था। "भारतीय राष्ट्रीय महासभा का सबसे बड़ा अधिवेशन करने का स्वप्न नष्ट हो गया और तैयारियां, देश में घटने वाली अकल्पित घटनाओं के कारण मिट्टी में मिल गयी।...नोआखाली में घटी दुर्घटनाओं की गढ़मुक्तेश्वर में हुई प्रतिक्रिया के फलस्वरूप, मेरठ में भी साम्प्रदायिक तनातनी की अवस्था उत्पन्न हो गयी जिसके कारण कांग्रेस के अध्यक्ष महोदय को मेरठ में कांग्रेस का केवल 'बिजनेस सेशन' ही रखने का निश्चय करना पड़ा।...अध्यक्ष ने अपने जलूस का विचार त्याग दिया। केवल प्रतिनिधियों, स्वागत समिति के सदस्यों और प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी के दर्शकों को ही अधिवेशन में भाग लेने की अनुमति दी गयी। दर्शकों द्वारा दिया गया रुपया वापस कर दिया गया।...स्पेशल गाड़ियों की व्यवस्था रद्द कर दी गयी।"*

अधिवेशन से पूर्व कांग्रेस के पंडाल में आग लगाने की घटना भी घटी थी।

२ सितम्बर को अधिकार ग्रहण करने के पश्चात नेहरू जी प्रधानमंत्री बने। ६ अक्तूबर को उन्होंने जिना को सरकार में शामिल होने के लिए आमंत्रित किया। जिना ने पुराना राग अलापा। गड़े मुर्दे उखाड़े। वाइसराय से उनकी लिखा-पढ़ी हुई। अंततः वह झुक गये। १५ अक्तूबर को सरकारी तौर पर घोषणा की गयी कि मुसलिम लीग ने अंतरिम सरकार में शामिल होना स्वीकार कर लिया है और सरकार ने इन व्यक्तियों को अंतरिम सरकार के सदस्य के रूप में स्वीकार किया है—लियाकत अली खां, आई० आई० चुंद्रीगर, अब्दुर्रब निश्तर, गजनफर अली खां, जोगेन्द्रलाल मंडल।

दो स्थान पहले ही रिक्त थे। तीन के लिए शरत्चन्द्र बोस, शफात अहमद खां और सैयद अली जहीर ने त्याग पत्र दे दिया था। इस प्रकार कांग्रेस-लीग की संयुक्त सरकार का संघटन हुआ। यह कृत्रिम मेल था, फलतः अधिक दिनों तक न बना रहा। मंत्रि-मंडल में मतभेद प्रत्यक्ष भी हो गया। साम्प्रदायिक दंगों के सम्बन्ध में दोनों पक्ष के मंत्रियों ने अपने-अपने विचार पृथक-पृथक व्यक्त किये। यह तमाशा भी हुआ केंन्द्रीय विधान सभा और परिषद के अधिवेशन में। पूत के लच्छन पालने में ही नजर आ गये।

अंतरिम सरकार में लीग के शामिल होने पर यह मान लिया गया कि उसने दीर्घकालीन योजना भी स्वीकार कर ली है। लेकिन यह भ्रम साबित

---

* स्वागत समिति द्वारा प्रकाशित—'५४ वां अधिवेशन, भारतीय राष्ट्रीय महासभा, मेरठ—१९४६' पृ० सं० १४

हुआ। कुछ दिनों के बाद ही जिना ने घोषणा की कि 'लीग संविधान सभा में भाग न लेगी। वह पाकिस्तान तथा दो संविधान सभाओं की अपनी मांग पर दृढ़ है।' इस नयी स्थिति को सुलझाने के लिए ब्रिटेन के प्रधान मंत्री ने संविधान सभा के सम्बन्ध में बात करने के उद्देश्य से कांग्रेस तथा लीग के दो-दो प्रतिनिधियों को तथा अंतरिम सरकार के सिख प्रतिनिधि को दिसम्बर के प्रथम सप्ताह में लंदन में आमंत्रित किया। काग्रेस आमंत्रण स्वीकार करने के लिए तैयार न थी। उसका कहना था कि 'भारत को संविधान सभा-सम्बन्धी कोई भी निर्णय भारत में ही होना चाहिये।' अंत में प्रधान मन्त्री एटली के आश्वासन पर नेहरू जी और बलदेव सिंह लंदन गये। वहाँ लीग के प्रतिनिधियों से वार्ता हुई। नतीजा कुछ न निकला। उलटे उलझन और बढ़ गयी। ६ दिसम्बर को ब्रिटिश प्रधान मंत्री ने जो वक्तव्य दिया उसने "भारतीय राजनीति में फूट का एक और बीज बो दिया।"* नेहरू जी और बलदेव सिंह शीघ्र लौट आये क्योंकि ९ दिसम्बर को संविधान सभा का अधिवेशन आरम्भ होने वाला था। निश्चित दिन अधिवेशन आरम्भ हुआ। मुसलिम लीग के अतिरिक्त शेष सभी दलों ने इसमें भाग लिया। लीग की नीति देख कर बाद में सिखों ने अपना निर्णय बदल दिया था।

लंदन सम्मेलन में भाग लेने से पूर्व नेहरू जी ने एक पत्र लिख कर ब्रिटिश प्रधान मन्त्री को सूचित कर दिया था कि "मेरे लन्दन आने से कोई लाभ न होगा...मैं यह स्पष्ट कर देता हूँ कि ९ दिसम्बर से पूर्व मैं भारत लौट आऊँगा।"

वास्तव में लंदन काफ्रेंस की कोई आवश्यकता न थी। ब्रिटिश सरकार उलझन ही पैदा करना चाहती थी। यह बात बाद में स्पष्ट भी हो गयी। लंदन आने के लिए उसकी ओर से नेहरू और जिना को पृथक-पृथक पत्र लिखे गये थे जिनमें दिये गये आश्वासन भी अलग-अलग थे! लंदन में ब्रिटिश सरकार ने बड़ी बेशर्मी से अपने ही पैरों से अपने वचनों को रौंद डाला। जिस योजना की कोई नयी व्याख्या न करने का आश्वासन उसने नेहरू को दिया था, ६ दिसम्बर के अपने वक्तव्य में प्रधान मत्री एटली ने उसकी व्याख्या तो की ही, साथ ही उन्होंने अपने १५ मार्च, १९४६ के आश्वासनों पर भी हड़ताल फेर दी। इससे कांग्रेसी क्षेत्र में असंतोष फैला किन्तु काम नहीं रुका। ९ दिसंबर को सच्चिदानन्द सिनहा की अध्यक्षता में संविधान सभा का अधिवेशन आरंभ हो गया।

* 'कांग्रेस का इतिहास'—खण्ड ३, पृष्ठ सं० ३७५

१३ दिसम्बर को नेहरू जी ने संविधान सभा में लक्ष्य प्रस्ताव प्रस्तुत किया जो बहस के बाद, २२ जनवरी, १९४७ को सर्व सम्मति से स्वीकृत हुआ।* इस प्रस्ताव में कहा गया है:

"संविधान सभा भारतवर्ष को स्वतंत्र सार्वभौम प्रजातंत्र घोषित करने और उसके भावी शासन के लिए स्वतंत्र सविधान बनाने का अपना दृढ़ और पवित्र निश्चय प्रकट करती है। सर्वतत्र स्वतत्र प्रजातत्र भारत मे ये प्रदेश सम्मिलित होंगे—ब्रिटिश भारत, भारतीय रियासतें, भारत वर्ष के वे प्रदेश जो ब्रिटिश भारत तथा भारतीय प्रदेशों के बाहर हैं तथा वे प्रदेश जो सर्वतन्त्र स्वतत्र प्रजातंत्र भारत मे शामिल होना चाहेगे। इन प्रदेशों को मिला कर प्रजातंत्र भारत का एक सघ बनेगा।

"भारतीय संघ मे सम्मिलित प्रदेश स्वायत्त शासनाधिकार प्राप्त प्रदेश होंगे। इन्हे...भारतीय संघ को सौपे जाने वाले या जो स्वभावतः उसके मूल अधिकार होगे या उसके कार्य और क्षेत्र के फलस्वरूप उसमें निहित होगे, उन्हें छोड कर शेष सभी अधिकार प्राप्त होंगे...भारतीय संघ तथा उसमे सम्मिलित प्रदेशो की सब शक्ति और अधिकार जनता प्रदत्त होंगे।"

यह प्रस्ताव लीग के असहयोग-पूर्ण रुख को चुनौती के रूप मे था। लगता था कि सविधान सभा सार्वभौम सत्ता प्राप्त सस्था हो जायगी। यह देख कर लीग पुनः तेजी से सक्रिय हुई। ३० और ३१ जनवरी, १९४७ को उसकी कार्य समिति की बैठक हुई जिसमे घोषित किया गया कि "चूँकि कांग्रेस ने कैबिनट मिशन के १६ मई, १९४६ के वक्तव्य की ब्रिटिश सरकार द्वारा ६ दिसम्बर को की गयी व्याख्या को स्वीकार नही किया, इसलिए मिशन के सम्बन्ध मे अपने निर्णय को वापस लेना वह बेकार समझती है।" लीग की कार्य समिति द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव में यह भी कहा गया था कि "सविधान सभा जिसमें केवल कांग्रेस का ही प्रतिनिधित्व है, आरम्भिक अवस्था मे ही सिद्धांतों और कार्य-प्रणाली के बारे मे फैसला करके उन मर्यादाओं का उलघन कर चुकी है जो १६ मई १९४६ की घोषणा द्वारा संविधान सभा के कार्यों और अधिकारों के सम्बन्ध मे लागू की गयी थी।"

लीग के इस प्रस्ताव ने स्थिति में घोर परिवर्तन कर दिया। साम्प्रदायिक दंगों ने पुनः जोर पकड़ लिया। लीग असम, बंगाल, सीमाप्रान्त और

---

* संविधान सभा में वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट, २२ जनवरी, १९४७ पृ०सं० १४,

पंजाब मे भयंकर खुराफात करने पर तुल गयी। उसकी यह चाल कारगर हो गयी—शायद इसीलिए की ब्रिटिश सरकार ने हर कदम पर उसको प्रोत्साहन दिया था और उस समय भी वह अपनी इस नीति से बाज न आयी थी। भारत की स्थिति तो विस्फोटक थी ही। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, संविधान सभा सार्वभौम सत्ता प्राप्त संस्था का रूप ग्रहण करने वाली थी। स्थिति ऐसी नहीं थी कि ब्रिटिश सरकार उसे जबरदस्ती भंग कर सकती। अतः ब्रिटिश सरकार की ओर से प्रधान मन्त्री एटली ने २० फरवरी को ब्रिटेन की लोक सभा मे यह घोषणा कर दी कि 'जून, १९४८ मे अंग्रेज भारत को छोंड रहे हैं। इस बीच १८ फरवरी को यह संवाद भी आ गया था कि लार्ड बावेल वापस बुला लिये गये है। उनका स्थान लुई माउण्ड बैटन ग्रहण करेंगे।

एटली का २० फरवरी का वक्तव्य भी फूट के बीज से भरा था जिसमे कहा गया था कि "सम्राट की सरकार ऐसी सरकार को अपने दायित्व सौपने को लालायित है जो जनता के दृढ़ सहयोग की नींव पर खड़ी होकर भारत मे न्याय तथा शान्ति-पूर्ण शासन कर सके। इसलिए आवश्यक है कि सब दल आपसी मतभेद भुला कर अगले वर्ष आने वाले भारी उत्तरदायित्व को सम्भालने के लिए तैयार हो जांय।...यदि निश्चित अवधि तक प्रतिनिधित्व-पूर्ण सम्विधान सभा द्वारा ऐसा विधान न बनाया जा सका तो सम्राट की सरकार को विचार करना पड़ेगा कि ब्रिटिश भारत की केन्द्रीय सरकार का पूरा दायित्व ब्रिटिश भारत की किसी केन्द्रीय सरकार को या विभक्त करके वर्तमान प्रान्तीय सरकारों को अथवा किसी ऐसे संघ को, जो सर्वोचित तथा भारतीयों के लिए सर्वाधिक लाभ पूर्ण हों, सौपा जाय।...सम्राट की सरकार अपनी सार्वभौम सत्ता के अन्तर्गत भारतीय रियासतों को ब्रिटिश भारत को किसी भी सरकार के सुपुर्द नहीं करना चाहती।"

इस वक्तव्य का कोई परिणाम नहीं निकला। फरवरी बीतने के बाद ही दूसरे मास मे अर्थात् मार्च मे पंजाब और सीमा प्रांत में भीषण दंगा आरम्भ हो गया। साम्प्रदायिक दंगे ने पंजाब मे भीषणतम रुख अख्तियार किया। लाहौर और अमृतसर सदृश प्रमुख और खूबसूरत नगर खंडहरों में बदल गये। पूरे के पूरे मुहाल फूँक डाले गये। मकानों को भस्म करनेवाली ज्वालाएं पांच-पांच और छः-छः मंजिल तक उठीं। मीलों दूर से वे देखी जा सकती थीं। बड़ी-बड़ी खूबसूरत बस्तियों और चहल-पहल से भरी मंडियों की हालत ऐसी हो गयी, मानों गहरी बममारी हुई हो। हत्या और खूरेजी का कुछ

पूछना ही न था। छोटे-छोटे मासूम बच्चे तक कतल कर दिये गये। महिलाओं के सतीत्व का कोई मूल्य न रह गया। कांग्रेस यह देख कर बेचैन हो उठी और उसे इसका एक ही हल नजर आया कि पंजाब दो हिस्सों में बाट दिया जाय।

सीमा प्रांत की भी हालत अच्छी न थी। लीग ने वहां भी रक्तपात किया। पंजाब की घटनाएं वहां भी घटीं। "पंजाब और सीमाप्रांत में, मार्च-अप्रैल, १९४७ में हिंसा की जो आधी उठी और तीव्र हुई, उसका उद्देश्य मौजूदा मंत्रि मडलों को, वैध और कानूनी विधि के बजाय बलपूर्वक उखाड़ फेंकना था।...लूट-मार, कत्लो-खून की वारदात ने सारे देश को हिला दिया। अत में कांग्रेस की कार्यकारिणी ने पंजाब के दो प्रांत बनाये जाने का प्रस्ताव पास कर दिया ताकि हिन्दू बहुसंख्यक भाग को विरोधियों के अन्याय से सुरक्षित रखा जाय। ज्यों ही यह प्रस्ताव मार्च, १९४७ के मध्य में पास हुआ, बगाल में इसकी प्रतिक्रिया प्रत्यक्ष हो गयी और बंगाल को भी बाट देने की माग की गयी,"* जो अंततः पूरी हुई।

इस तूफान के बीच यह घोषणा हुई कि नये वाइसराय ने २ मई को अपनी रिपोर्ट ब्रिटिश मत्रि-मंडल के पास भेज दी है। इस बीच सीमा प्रात के साथ बहुत ज्यादती की गयी। यद्यपि सीमा प्रांत की जनता ने अप्रैल, १९४६ में कांग्रेस के हाथ में स्पष्टतः प्रात को सत्ता सौंप कर लीग के विरुद्ध अपना मत प्रकट कर दिया था फिर भी उसे पाकिस्तान में झोंकने का षडयंत्र जारी था और निस्संदेह वहा के अंग्रेज गवरनर का इसमें पूरा-पूरा हाथ था।

१९४७ के आरम्भ में ब्रिटिश भारत में ही राजनीतिक भूकम्प आया हो, यह बात नहीं है। रियासतों में भी तूफान उठा हुआ था। अखिल भारतीय देशी राज्य प्रजा परिषद के अध्यक्ष शेख अब्दुल्ला को काश्मीर के किसी जेल में बंद कर दिया गया।† हैदराबाद, त्रावनकोर, भरतपुर जोधपुर, डूंगरपुर, धौलपुर, बीकानेर, पटियाला, फरीदकोट आदि पचासों रियासतों में दमन का बोलबाला था।‡ इस दौरान में ही १८, १९, और २० अप्रैल को देशी राज्य प्रजा परिषद का आठवां अधिवेशन ग्वालियर में हुआ जिसमें

---

* 'कांग्रेस का इतिहास'—खंड: ३ पृ० सं० ३९५

† अखिल भारतीय देशी राज्य प्रजा परिषद बुलेटिन, २८ मई, १९४७—पृ० सं०—४

‡ वही पृ० सं० १२-१३

अनेक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकार किये गये। इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव भारत की संविधान सभा द्वारा स्वीकृत लक्ष्य प्रस्ताव के सम्बंध में था जिसमें कहा गया था कि "भारत की संविधान सभा के पहले प्रस्ताव का जिसमें भारत को एक स्वतंत्र और सार्वभौम प्रजातंत्र घोषित करने का दृढ़ एवं गम्भीर निश्चय प्रकट किया गया है, यह परिषद स्वागत करती है और रियासती प्रजा की ओर से उस प्रस्ताव पर अपनी सहमति प्रकट करती है।"* दूसरे प्रस्ताव में परिषद ने यह घोषित किया था कि रियासती जनता की सम्मति के बिना रियासती समस्या का जो भी हल पेश किया जायगा या रियासतों के बारे मे जो भी निश्चय किया जायगा, रियासती जनता उसे मानने के लिए बाध्य न होगी।"† रियासतों के पोलिटिकल विभाग सम्बंधी प्रस्ताव मे कहा गया था कि "भारत मे द्रुतगति से जो परिवर्तन हो रहे हैं, उन्हें देखते हुए पोलिटिकल विभाग का जारी रहना और उसका अपने अनुत्तरदायी तरीकों से बाज न आना, न केवल हास्यास्पद है बल्कि रियासती जनता के भविष्य के लिए भी हानिकारक है।" प्रस्ताव मे भारत को छोटे-मोटे टुकड़ों मे बांटने की नीति खतरनाक बतायी गयी थी और साथ ही यह मांग भी की गयी थी कि "जब तक भारतीय संविधान तैयार नहीं हो जाता, तब तक के लिए रियासतों मे लोकप्रिय अन्तरकालीन सरकारें कायम की जांय।"‡

इस पृष्ठ-भूमि मे ३ जून, १९४७ को माउण्टबैटन ने अपनी रिपोर्ट पर ब्रिटिश सरकार के प्रस्ताव की घोषणा की जो माउण्टबैटन घोषणा के नाम से प्रसिद्ध है। इस घोषणा मे पुरानी काररवाइयों का उल्लेख करते हुए तथा प्रमुख दलों के आपसी मतभेद पर प्रकाश डालते हुए ब्रिटिश सरकार का यह मत प्रकट किया गया कि वर्तमान संविधान परिषद का "बनाया सविधान देश के उन भागों पर लागू नहीं हो सकता जो उसे स्वीकार नहीं करना चाहते। ब्रिटिश सरकार का विश्वास है कि निम्नलिखित प्रणाली ही एकमात्र व्यवहारिक उपाय है जिसमे ऐसे भागों के निवासियों की राय इस विषय मे ली जा सके कि उनका सविधान वर्तमान संविधान सभा बनावे या उनके प्रति-

---

* अखिल भारतीय देशी राज्य प्रजा परिषद बुलेटिन, २८ मई, १९४७, पृ० स०—४

† वही पृष्ठ संख्या ५

‡ वही पृष्ठ संख्या १७

निधियों की नयी और अलग संविधान सभा बनायी जाय। यह बात मालूम हो जाने पर इस बात का निश्चय किया जा सकेगा कि सत्ता किस शक्ति या शक्तियों को हस्तांतरित की जाय।

"बंगाल और पंजाब की प्रान्तीय असेम्बलियों की (यूरोपियन सदस्यों को छोड कर) दो अलग-अलग हिस्सों में बैठक होगी। एक हिस्से में मुसलिम बहुमत वाले जिलों के प्रतिनिधि बैठेंगे और दूसरे में शेष प्रांत के। जिलों की जनसंख्या १९४१ की जनगणना के अनुसार मानी जायगी। इन दो प्रांतों में मुसलिम बहुमत वाले जिलों के नाम योजना के परिशिष्ट में दिये गये हैं।

"'प्रत्येक प्रात की असेम्बली के दोनों हिस्सों के सदस्यों को अलग-अलग इस बात पर वोट देने का अधिकार होगा कि प्रात का विभाजन हो या न हो। यदि किसी एक भाग ने भी साधारण बहुमत से विभाजन का समर्थन किया तो प्रान्त का विभाजन हो जायगा और इसके लिए आवश्यक प्रबंध किया जायगा।

"प्रान्तीय विभाजन का प्रश्न तय होने से पूर्व असेम्बली के दोनों हिस्सों के सदस्यों को इस बात का पता होना आवश्यक है कि यदि दोनों हिस्सों ने सम्मिलित ही रहने के पक्ष में मत दिया तो प्रान्त किस सविधान सभा में शामिल होगा।

"अतः यदि किसी भी सदस्य ने इसकी जानकारी चाही तो यूरोपियन सदस्यों को छोड कर पूरे प्रात के व्यवस्थापकों की बैठक होगी और वहाँ तय होगा कि यदि प्रातीय असेम्बलः के दोनों भागों ने साथ ही रहने का निश्चय किया तो प्रात किस संविधान सभा में सम्मिलित होगा।

"यदि प्रान्तीय विभाजन की बात तय हुई तो असेम्बली का प्रत्येक भाग जिस क्षेत्र का वह प्रतिनिधित्व करता है, उसकी ओर से तय करेगा कि इस कार्य के लिए उपर्युक्त दोनों मार्ग में से कौन-सा मार्ग अपनाया जाय।

"विभाजन का प्रश्न तत्काल तय करने के उद्देश्य से बंगाल और पंजाब असेम्बली के प्रतिनिधि मुसलिम (परिशिष्ट के अनुसार) और गैर मुसलिम बहुमत वाले जिलो के अनुसार अलग-अलग दो भागों में बटेंगे। यह आरम्भिक और अस्थायी प्रबन्ध है, क्योंकि इन प्रान्तों के स्थायी विभाजन के लिए सीमाओं के प्रश्न पर काफी छान-बीन करनी होगी और प्रान्तीय विभाजन की बात तय होते ही सीमा निर्धारित करने के लिए गवरनर जेनरल की ओर से एक कमीशन बैठा दिया जायगा। इसके सदस्यों और कार्यों के सम्बन्ध में सम्बन्धित लोगों की राय से निर्णय किया जायगा। इस कमीशन को पंजाब

के मुसलिम और गैर मुसलिम क्षेत्रों की जो एक दूसरे से सटे हों, सीमा निर्धारित करनी होगी। इसके सिवा इसे दूसरी बातों पर भी विचार करना होगा। बंगाल की सीमा निर्धारित करने के लिए नियुक्त कमीशन को भी इसी प्रकार के आदेश दिये जायँगे। जब तक इन कमीशनों की रिपोर्ट कार्यान्वित नहीं हो जाती, प्रान्तों की सीमाएं वही रहेंगी जो परिशिष्ट में दी गयी हैं।

"यूरोपीय सदस्यों को छोड कर सिंध की असेम्बली भी अपनी विशेष बैठक मे निश्चय करेगी कि उपर्युक्त दो बातों मे से कौन सी अपनायी जाय।

"उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त की स्थिति अपवाद स्वरूप है। इसके तीन प्रतिनिधियों मे से दो वर्तमान सविधान सभा मे भाग ले रहे हैं। यदि पंजाब या उसके किसी भाग ने वर्तमान संविधान सभा से अलग रहना तय किया तो सीमा प्रान्त की भौगोलिक स्थिति और अन्य बातों का ध्यान रखते हुए इसे भी अपनी स्थिति पर पुनर्विचार का अवसर देना आवश्यक होगा। ऐसी स्थिति में सीमा प्रान्त की वर्तमान असेम्बली के मतदाताओं का इस प्रश्न पर मत-संग्रह किया जायगा कि उपर्युक्त दो मार्गों मे से वे कौन सा मार्ग पसन्द करते हैं। यह जनमत गणना गवरनर जेनरल के तत्त्वावधान मे प्रान्तीय सरकार की राय से होगी।

"ब्रिटिश बलूचिस्तान से भी एक प्रतिनिधि निर्वाचित हुआ है परन्तु वह वर्तमान संविधान सभा मे शामिल नहीं है। अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण इस प्रान्त को भी इस बात पर पुनर्विचार का अवसर दिया जायगा कि उपर्युक्त दो मार्गों में से वह कौन सा मार्ग पसन्द करेगा। इसे सर्वोत्तम रूप मे किस प्रकार कार्यान्वित किया जाय, इस पर गवरनर जेनरल विचार करेंगे।

"असम प्रधानतः गैर मुसलिम प्रान्त है। इसका सिलहट जिला जो बंगाल से सटा है, मुसलिम बहुल क्षेत्र है। बंगाल के विभाजन की स्थिति मे इसे मुसलिम बंगाल मे मिलाने की मांग है।

"अतः यदि बंगाल का विभाजन हुआ तो गवरनर जेनरल के तत्त्वावधान में असम सरकार की सलाह से इस जिले मे यह जानने के लिए मतगणना होगी कि यह असम में रहेगा या पूर्वी बंगाल के नये प्रान्त मे। यदि जनमत पूर्वी बंगाल में शामिल होने के पक्ष मे हुआ तो पंजाब और बंगाल की भांति यहाँ भी सीमा कमीशन नियुक्त होगा जो सिलहट और उससे सटे हुए जिलों के मुसलिम बहुसंख्यक क्षेत्रों को निर्धारित करेगा और ये पूर्वी बंगाल मे मिला दिये जायंगे। शेष असम हर हालत मे वर्तमान संविधान सभा में भाग लेता रहेगा।

"यदि यह निश्चित होता है कि बंगाल, पंजाब का विभाजन हो तो कैबिनट मिशन की १६ मई, १९४६ की योजना में निहित सिद्धात के अनुसार एक लाख की जनसंख्या के पीछे एक प्रतिनिधि चुनने के लिए नया चुनाव कराना आवश्यक होगा। यदि सिलहट को बंगाल में मिलाने की बात तय हुई तो वहां भी इस प्रकार चुनाव होगा।

"प्रत्येक क्षेत्र में प्रतिनिधियों की संख्या इस प्रकार रहेगी—सिलहट जिला साधारण १, मुसलमान २, कुल ३ सदस्य। पश्चिमी बंगाल—साधारण १५, मुसलमान, ४, कुल १९ सदस्य। पूर्वी बंगाल—साधारण १२, मुसलमान २९, कुल ४१ सदस्य। पूर्वी पंजाब—साधारण ६, मुसलमान ४, सिख २, कुल १२ सदस्य। पूर्वी पंजाब—साधारण ६, मुसलमान ४, सिख २, कुल १२ सदस्य।

"विभिन्न क्षेत्रों के प्रतिनिधि अपने निर्वाचकों के आदेश के अनुसार वर्तमान संविधान सभा मे जायंगे या नयी सभा बनायेंगे।

"विभाजन का निश्चय हो जाने पर शासन विभागों में तदनुकूल परिवर्तन के लिए बात-चीत शुरू होगी।

"( क ) वर्तमान केंद्रीय सरकार के रक्षा, अर्थ और यातायात तथा अन्य विभागों के विषय में केंद्रीय सरकार के उत्तराधिकारियों से वार्ता होगी।

"( ख ) सत्ता-विसर्जन से सम्बन्ध रखने वाले विषयों पर ब्रिटिश सरकार तथा सत्ता-ग्रहण करने वाले विभिन्न उत्तराधिकारियों में संधि-वार्ता होगी।

"( ग ) विभाजित होनेवाले प्रान्तों मे सभी प्रान्तीय शासन के विषयों जैसे प्रान्तीय सरकार का देना-पावना, पुलिस तथा अन्य नौकरियां, हाईकोर्ट, प्रान्तीय संस्थाओं आदि के विभाजन के सम्बन्ध मे भी विभिन्न पक्षों में वार्ता होगी।

"भारत की उत्तर-पश्चिम सीमा पर बसे कबीले वालों के साथ उत्तराधिकारी सरकार उचित समझौता करेगी।

"ब्रिटिश सरकार यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि ऊपर का निर्णय केवल ब्रिटिश भारत से सम्बन्ध रखता है। भारतीय रियासतों के सम्बन्ध में उसकी नीति वही रहेगी जिसका वर्णन कैबिनट मिशन के १२ जून, १९४६ के ज्ञापक में है।

"उत्तराधिकारी सरकार को सत्ता संभालने के लिए अपने को तैयार करने का अवसर मिले, इसके लिए आवश्यक है कि ऊपर वर्णित प्रबंध यथा सम्भव शीघ्रातिशीघ्र किया जाय।"

३ जून की घोषणा के अंत में दिया गया परिशिष्ट इस प्रकार रहा:—

परिशिष्ट

"१९४१ की जनगणना के अनुसार पंजाब और बंगाल के वे जिले नीचे दिये जाते हैं जिसमें मुसलमानों की अधिक संख्या है—

पंजाब

"लाहौर डिवीजन—गुजरानवाला, गुरुदासपुर, लाहौर, शेखूपुरा, स्यालकोट। रावलपिण्डी डिवीजन—अटक, गुजरात, झेलम, मियांवाली, रावलपिण्डी, शाहपुर। मुलतान डिवीजन—डेरा गाजी खां, झंग लायलपुर, मांटगोमरी, मुलतान, मुजफ्फरगढ़।"

बंगाल

"चटगांव डिवीजन—चटगांव, नोआखाली, टिपरा। ढाका डिवीजन—बाकरगंज, ढाका, फरीदपुर, मैमनसिंह। प्रेसीडेंसी डिवीजन—जैसोर, मुर्शिदाबाद, नदिया। राजशाही डिवीजन—बोगरा, दिनाजपुर, मालदा, पवनी, राजशाही, रंगपुर।"

ब्रिटिश सरकार की आये दिन की बिचवई और साम्प्रदायिक खूंरेजी से छुटकारा पाने के लिए कांग्रेस के सामने ३ जून की घोषणा को स्वीकार करने के अलावा और कोई रास्ता न था। उसकी कार्य समिति ने इसे १३ जून को स्वीकार कर लिया। इसके बाद उसने अपना निर्णय १५ जून को दिल्ली में आयोजित महासमिति की बैठक में प्रस्तुत किया। महासमिति की बैठक में कुल २१८ सदस्य उपस्थित थे। ३ जून की घोषणा को स्वीकार करने वाले प्रस्ताव के पक्ष में १५७ और विपक्ष में २९ मत आये। कांग्रेस समाजवादी सदस्यों ने मतदान में भाग नहीं लिया। एतत्सम्बंधी प्रस्ताव में कहा गया था कि "३ जून १९४७ की घोषणा के कारण सम्भवतः भारत के कुछ हिस्से उससे अलग हो जांय। यह स्थिति चाहे कितनी ही दुःखद क्यों न हो, वर्तमान परिस्थिति में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी इस सम्भावना को स्वीकार करती है।"* कांग्रेस ने रियासतों का अपनी स्वतंत्रता घोषित करने और भारत से अलग रहने का अधिकार स्वीकार नहीं किया। उसने इसे भारतीयों के लक्ष्य के विपरीत बताया।

१० जून को अखिल भारतीय मुसलिम लीग की कौंसिल ने ८ के विरुद्ध

---

* अनिलचन्द्र बनर्जी—'दि मेकिंग आव दि इण्डियन कांस्टिट्यूशन'—खंड: १ पृ० सं० ४६९

१०० मतों से एक प्रस्ताव स्वीकार किया था जिसमें कहा गया था कि "यद्यपि कौंसिल बंगाल और पंजाब के विभाजन से सहमत नहीं हो सकती और न ऐसे विभाजन पर वह अपनी स्वीकृति ही दे सकती है, तथापि उसे ब्रिटिश सरकार की योजना पर सत्ता हस्तांतरित करने के समूचे प्रश्न की दृष्टि से विचार करना है। अतः कौंसिल इस प्रस्ताव द्वारा अखिल भारतीय मुसलिम लीग के अध्यक्ष मुहम्मद अली जिना को इस योजना के मूलभूत सिद्धांतों को स्वीकार करने का पूर्ण अधिकार देती है और योजना के मूलभूत सिद्धान्तों के आधार पर भारत का पूर्ण विभाजन जिसमें रक्षा, अर्थ, और यातायात आदि भी शामिल हैं, विस्तार-पूर्वक उचित ढंग से कार्यान्वित करने का पूरा अधिकार प्रदान क·ती है।"†

देशी राज्य प्रजा परिषद की स्थायी समिति ने अपनी १२ जून की बैठक में स्वीकृत प्रस्ताव में घोषित किया था कि "अपने राज्य को स्वतंत्र घोषित करने वाला कोई भी नरेश भारतीय संघ के प्रति ही नहीं बल्कि अपने राज्य की जनता के प्रति भी शत्रुता व्यक्त करेगा। ऐसे कार्य का विरोध अवश्य किया जायगा।"

यह सब प्रतिक्रिया देखते हुए ब्रिटिश सरकार ने अपने देश की लोकसभा में ४ जुलाई को भारतीय स्वातंत्र्य विधेयक पेश किया जिसकी पहली धारा में यह कहा गया कि "१५ अगस्त, १९४७ को भारत में दो स्वतंत्र स्वशासित प्रदेश ( डोमिनियन ) स्थापित किये जायंगे जिनका नाम क्रमशः भारत और पाकिस्तान होगा।"‡ इसमें ३ जून की घोषणा के अनुसार भारत के विभाजन की व्यवस्था की गयी। ११ जुलाई को ब्रिटेन की लोकसभा में इसका तृतीय वाचन स्वीकार कर लिया गया। बाद में जाब्ते से अपनी स्वीकृति देकर सम्राट ने इसे कानून का रूप दे दिया।

उपर्युक्त बिल के पेश होने के बाद ही सत्ता हस्तांतरण का कार्य तेजी से आरम्भ हो गया। ५ जुलाई को अस्थायी सरकार के मंत्रियों ने अपने-अपने पद से इस्तीफा दे दिया। ६ जुलाई को सिलहट और सीमा प्रांत में मतगणना आरम्भ हो गयी। सीमा प्रांत के सर्वाधिक लोक प्रिय नेता खां अब्दुल गफ्फार खां ने जिनके नेतृत्व में इस प्रदेश की कांग्रेस ने १९४६ के चुनाव में लीग को बुरी तरह पराजित किया था, घोषित किया कि 'यदि लीग को पृथक राज्य

† 'युगधारा' ( मासिक ) जुलाई, १९४७ आवरण का तीसरा पृष्ठ।

‡ 'दि मेकिंग आव दि इण्डियन कांस्टीट्यूशन'—खंडः १ पृ० सं० ४९६

मिलता है तो पठानों को भी पख्तूनिस्तान मिलना चाहिये।' इसमें विश्वास रखने वाले अपने अनुयायियों से जो किसी भी निष्पक्ष चुनाव में लीग को चारो खाने चित्त करने की क्षमता रखते थे, जन-मत गणना में भाग न लेने की उन्होंने अपील की। खुदाई खिदमतगारों ने अपने नेता के आदेश के अनुसार जनमत गणना का बहिष्कार किया। इस पर अंग्रेज गवरनर ने खुल कर लीग का साथ दिया। मरे हुए व्यक्तियों के नाम पर वोट दिये गये। मर्दों ने बुर्का ओढ़ कर औरतों के नाम पर वोट दिये। हिन्दू, शरणार्थियों की दशा में प्रांत से बाहर थे। इतना होने पर भी लीग के पक्ष में ५० प्रतिशत से कुछ ही अधिक मत प्राप्त हुए। इस से स्पष्ट है कि चुनाव निष्पक्ष रूप में होता तो सीमा प्रांत पाकिस्तान में कभी नहीं आ सकता था। सिलहट में भी इन्हीं उपायों से लीग ने सफलता प्राप्त की।

११ और १४ जुलाई के बीच भारत की सेना का स्थायी बटवारा भी हो गया। पूंजी और ऋण के विभाजन की कारवाई भी पूरी की जाने लगी। बंगाल और पंजाब में सीमा-निर्धारण के लिए रेडक्लिफ कमीशन ने काम आरम्भ कर दिया (इस कमीशन के सदस्य केवल रेडक्लिफ ही थे)। १८ अगस्त को कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी।

१० जुलाई को जिना साहब पाकिस्तान के गवरनर जेनरल नियुक्त हुए। भारत ने वाइसराय माउण्टबैटन को ही प्रथम गवरनर जेनरल बनाना तय किया।

२२ जुलाई को पंडित जवाहरलाल नेहरू ने संविधान सभा में नवीन राष्ट्रीय झण्डा फहराया और संविधान सभा ने इसका रूप स्वीकार कर लिया। सारी कारवाई समाप्त होते-होते १४ अगस्त की तिथि आ पहुँची। मध्य रात्रि में जब १५ अगस्त की शुरुआत हुई, सविधान सभा ने गम्भीर वातावरण में प्रस्ताव स्वीकार करके भारत को स्वतंत्र घोषित कर दिया और प्रथम वैधानिक गवरनर जेनरल का पद सम्भालने के लिए माउण्टबैन को आमन्त्रित किया।

१४ और १५ अगस्त के संधि-स्थल पर मध्य रात्रि के समय भारत की पराधीनता की बेड़िया कट गयीं। सारा देश दीपावली से जगमगा उठा। 'आजाद हिन्द-जिंदाबाद', 'महात्मा गांधी-जिंदाबाद' और 'भारत माता की जय' के गगन भेदी नारों से दिग-दिगंत गूंज उठा। पंजाब को छोड़कर भारत (खंडित) के किसी कोने में उस दिन मध्य रात्रि आयी ही नहीं।

चहल-पहल, उत्साह, राग-रंग और मस्ती का उमंग भरा आलम चारों ओर था।

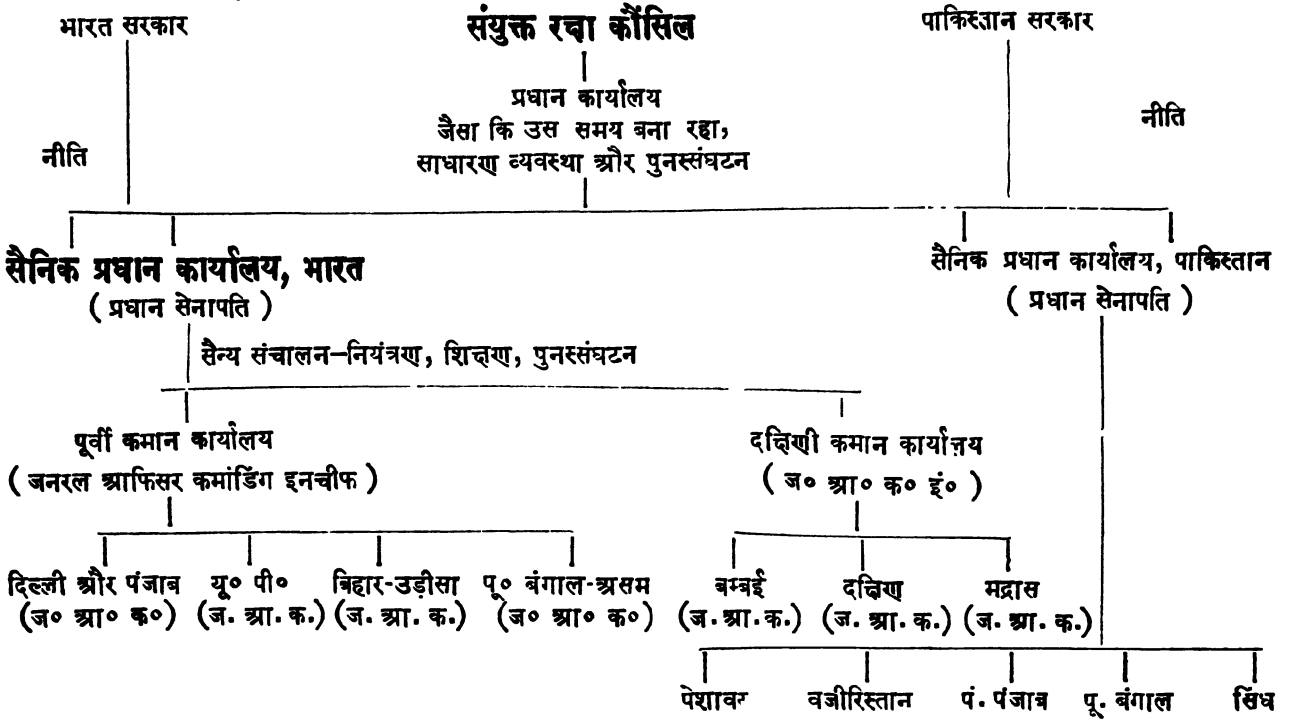
रात मे १२ बजकर ४५ मिनट पर पंडित नेहरू ने औपनिवेशिक सत्ता प्राप्त भारत के पहले गवरनर जेनरल को अपने मंत्रिमंडल के सदस्यों की सूची दी। नेहरू जी के साथ संविधान सभा के अध्यक्ष डा० राजेन्द्रप्रसाद भी थे। केवल दस मिनट में यह रस्मी कारर्वाई पूरी हो गयी। दूसरे दिन प्रातःकाल नयी दिल्ली में गवरनर जेनरल की सवारी निकली। नयी दिल्ली—दिल्ली, नयी दुलहन की तरह सजी हुई थी। भीड़ उमड़ पड़ी थी। उत्साह अनन्त और सीमाहीन था। प्रसन्नता और आह्लाद से भरे भारतीय नेहरू जी और माउण्टबैटन को देखकर खुशी से उछल पड़े थे। 'पंडित नेहरू की जय', 'पंडित माउण्टबैटन' की जय से दिल्ली की दरोदीवार गूंज उठी थी। एक बार फिर स्वतंत्र भारत की राजधानी के रूप में दिल्ली का भाग चमक उठा। यही प्रकाश आज युद्ध की विभीषिका से त्रस्त विश्व की मानवता का पथ-निर्देशन कर रहा है।

१५ अगस्त को पाकिस्तान भी अस्तित्व में आया। सम्पूर्ण भारत—पाकिस्तान और भारत, इन दो टुकड़ों में बंट गया। उसकी कुल पूंजी बट गयी, ऋण बंट गया और सेना बंट गयी। बटवारे का यह इतिहास लम्बा और बहुत लम्बा तथा जाब्ते की कारर्वाइयों के विस्तृत विवरण से भरा है। उसका पूरा विवरण देना यहां असम्भव है, अतः साधारण परिचय के लिए उसका अत्यधिक लघु रूप प्रस्तुत किया जा रहा है:—

## भारत–पाकिस्तान के बीच पूंजी एवं ऋण का विभाजन
### ( करोड़ रुपयों में )

| वस्तु या विषय | भारत का भाग | पाकिस्तान का भाग | योग | आधार |
|---|---|---|---|---|
| रेलवे में लगी पूंजी | ६७२ | १३६ | ८०८ | स्थिति के अनुसार खाते में दर्ज मूल्य; सामरिक महत्त्व की रेलों के मूल्य मे ५० प्रतिशत कमी। |
| व्यापार विभाग को पेशगी दी गयी पूंजी | ३७ | ११ | ४८ | नागरिक जन-संख्या |
| प्रांतों को दी गयी पूंजी | ४६ | ८ | ५७ | प्रान्तों को स्थिति ( लोकेशन ) |
| रियासतों को दी गयी पूंजी | १५ | २ | १७ | रियासतों की स्तिथि ( लोकेशन ) |
| बर्मा पर ऋण | ४१ | ७ | ४८ | १७॥ प्रतिशत |
| सम्राट की सरकार के पास रेलवे ऋण के लिए जमा रकम | १८ | ४ | २२ | जिस प्रकार रेलवे का वितरण |
| ऋण जो दिया जा रहा है | ८३२ | १६८ | १००० | समझौता |
| खजाने के हिसाब मे नकद और जामिन रुपये | ३२५ | ७५ | ४०० | |
| अनावृत ऋण | ७१४ | १५३ | ८६७ | १७॥ प्रतिशत |
| योग | १८७१ | ३९६ | २२६७ | |
| शस्त्रास्त्रों के कारखानों और सिक्योरिटी प्रेस को पेशगी दी गयी रकम | — | ६ / ४०२ | — | |

# पंद्रह अगस्त के बाद बटवारा होने तक सेना का नियंत्रण



# अंतरिम व्यवस्था-संबंधी आदेश

**संयुक्त रक्षा-परिषद्—पंचायत-संबंधी-आदेश—विभाजन समितियों से सम्बद्ध आदेश—रियासतों से सम्बद्ध शर्तनामा।**

भारत के बँटवारे का काम पूरा करने के लिए भारतीय स्वातंत्र्य अधिनियम में निर्दिष्ट व्यवस्था विभिन्न समितियों के गठन द्वारा सम्पन्न की गयी। शेष कार्य समझौतों से पूरा हुआ। संयुक्त रक्षा परिषद, पंचायत, विभिन्न विभाजन समितियों और रियासतों-संबंधी आदेश १४ अगस्त, १९४७ तक जारी कर दिये गये थे।

भारत और पाकिस्तान की संयुक्त रक्षा परिषद १५ अगस्त, १९४७ को स्थापित हुई और इसकी अवधि १ अप्रैल, ११४८ तक निर्धारित की गयी। भारत का गवरनर जेनरल इसका स्वतंत्र अध्यक्ष माना गया। इस आदेश के लागू होने की तिथि के समय भारत स्थित शाही सेना का प्रधान सेनापति सेना का सर्वोच्च सेनापति माना गया।

संयुक्त परिषद में शामिल होने वाले पदाधिकारी ये थे—भारत का गवरनर जेनरल, भारत का रक्षा मंत्री, पाकिस्तान का रक्षा मन्त्री, भारत और पाकिस्तान की शाही सेना का सर्वोच्च सेनापति। आदेश के अनुसार इन बातों पर परिषद का पूर्ण नियत्रण माना गया—( १ ) भारतीय सेना का दोनों स्वशासित देशों की सेनाओं के रूप में विभाजन, ( २ ) सेनाओं के पुनर्गठन के लिए भारतीय सेना के अफसरों तथा अन्य कर्मचारियों के स्थानान्तरण का अधिकार ( ३ ) भारतीय सेना की सैन्य सामग्री, मशीनों तथा कारखाने आदि के विभाजन तथा स्थानान्तरण का अधिकार ( ४ ) जहाँ और जैसी आवश्यकता हो, वहाँ स्थायी रूप मे जल, स्थल, या हवाई सेना की स्थापना ( ५ ) दोनों देशों में सैनिकों से अनुशासन का पालन कराना और जल-स्थल तथा हवाई सेना-सम्बन्धी कानूनों के अनुसार कार्य-संचालन, ( ६ ) दोनों देशों की सेनाओं के वेतन, भोजन, वस्त्र और चिकित्सा आदि की सामान्य व्यवस्था, ( ७ ) उन भारतीय सेनाओं की व्यवस्था जो भारत के बाहर गयी हों।

आदेश में कहा गया था कि दोनों देशों की "( १ ) सरकारें अपने अधि-

कारों का उपयोग इस प्रकार करेंगी जिससे संयुक्त रक्षा परिषद इस आदेश के अनुसार प्राप्त अधिकारों को काम में लाते हुए जो आदेश या हिदायत जारी करे, उसका पूर्णतः पालन हो सके, ( २ ) परिषद के निर्णयों को कार्यान्वित कराने की सारी जिम्मेदारी सर्वोच्च सेनापति पर होगी और ( ३ ) शाही सेना के किसी ऐसे अफसर की नियुक्ति या वेतन-वृद्धि आदि का निर्णय जो स्वशासित ( डोमिनियन ) देश की सेना का सदस्य हो—केवल उस समय के लिए वहाँ काम कर रहा हो—सर्वोच्च सेनापति की सलाह से किया जा सकेगा।"

इस प्रकार गवरनर जेनरल ने पंच न्यायाधिकरण (आरबिट्रनल-ट्रिब्यूनल) सम्बन्धी आदेश भी जारी किया था जिसके अनुसार १४ अगस्त, १९४७ को पंच न्यायाधिकरण की स्थापना हुई। इसमें भारत और पाकिस्तान के एक-एक प्रतिनिधि तथा गवरनर जेनरल द्वारा मनोनित अध्यक्ष की नियुक्ति का निर्णय हुआ। इसके अधिकारों का उल्लेख अनुच्छेद ४ में किया गया जो इस प्रकार थे—

४—( १ ) इस न्यायाधिकरण को उन मामलों के सम्बन्ध में निर्णय देने का अधिकार होगा जो उसके सामने १ दिसम्बर १९४७ के पहले या अध्यक्ष अनुमति दे तो १ जनवरी, १९४८ के पहले पेश किये जॉय। वे मामले जिन संस्थाओं द्वारा उपस्थित किये जाने वाले थे उनकी चर्चा उपधारा दो में की गयी। इनका सम्बन्ध इन बातों से था—

( क ) भारत तथा पाकिस्तान के विभाजन का, सपरिषद गवरनर जेनरल की आय के साधनों और कर्ज का ;

( ख ) संयुक्त रक्षा परिषद या सर्वोच्च सेनापति द्वारा या उसकी मंजूरी से खर्च की गयी रकम का कितना भाग भारत को और कितना पाकिस्तान को वहन करना चाहिये, इसका निर्णय करने का ;

( ग ) जब भारत का रिजर्व बैंक पाकिस्तान का केंद्रीय बंक न रह जाय तो रिजर्व बंक के देने-पावने के उस हिस्से का निर्णय करना जो पाकिस्तान के हिस्से में दिया जाय ;

( घ ) विदेशी हुंडियों से होने वाली उस समय की आमदनी का बँटवारा भारत और पाकिस्तान में करना जब तक रिजर्व बंक दोनों स्वशासित देशों की ओर से उनकी व्याख्या करता रहे ;

( ङ ) वर्तमान बंगाल प्रांत की आय के साधन और कर्ज का बँटवारा पूर्वी बंगाल और पश्चिमी बंगाल में करना।

( च ) असम की आय के साधन और कर्ज का उचित हिस्सा पूर्वी बंगाल के लिए निर्धारित करना ।

( छ ) पंजाब प्रांत की आय के साधन और कर्ज का बंटवारा पश्चिमी पंजाब और पूर्वी पंजाब में करना ।

( ज ) विभाजन के कारण उत्पन्न अन्य किसी मामले के सम्बन्ध में निर्णय करना ।

उपधारा ( २ ) पहले उपबंध मे जिन संस्थाओं की ओर सकेत किया गया, वे इस आदेश के जारी होने के समय निम्नलिखित नामों से परिचित रहीं—

( क ) विभाजन समिति, ( ख ) संयुक्त रक्षा परिषद ( ग ) बंगाल विभाजन समिति, ( घ ) पंजाब विभाजन समिति, ( ङ ) असम विभाजन समिति तथा अन्य ऐसी संस्थाएं जो भारत और पाकिस्तान की स्थापना के बाद नियुक्त की जांय ।

उपधारा ( ३ ) मे बताया गया कि उपर्युक्त उपधारा दो में वर्णित कोई संस्था यदि किसी प्रश्न के सम्बंध में उभय पक्ष को मान्य निर्णय करने में असमर्थ हो तो वह १ दिसम्बर, १९४७ या अध्यक्ष की अनुमति से १ जनवरी, १९४८ से पहले मतभेद को स्पष्ट करते हुए सारा मामला उपर्युक्त न्यायाधिकरण के सामने रखेगी ।

आदेश के अनुच्छेद ५ मे न्यायाधिकरण के निर्णय के लागू होने की दशाओं का उल्लेख किया गया जो इस प्रकार था—

५ ( १ ) यदि कोई सस्था यह निर्णय कर सकने में असमर्थ हो कि कोई प्रश्न-विशेष ऐसा है, अथवा नहीं जिसे उपर्युक्त न्यायाधिकरण के सामने पेश करने का अधिकार उसे है, तो वह इसका निर्णय भी पंचों के न्यायाधिकरण पर छोड़ देगी और उसका फैसला ही अंतिम फैसला समझा जायगा ।

( २ ) जब कोई प्रश्न न्यायाधिकरण के सामने पेश कर दिया जाय तब—

( क ) यदि पंच न्यायाधिकरण के दोनों सदस्य निर्णय के सम्बंध में सहमत हो तो यह निर्णय ही पंच न्यायाधिकरण का निर्णय समझा जायगा;

( ख ) यदि दोनों सदस्यं मे मतभेद हो तो अध्यक्ष जो निर्णय करेगा, वह समिति का निर्णय माना जायगा ।

आदेश के अनुच्छेद में कहा गया कि अनुच्छेद ४ के अनुसार जो मामले न्याय समिति के सामने पेश होंगे उनके सम्बंध में ( क ) यदि समिति के दोनों सदस्यों में मतैक्य हो कि निर्णय किन शब्दों में दिया जाय तो अयध्क्ष

तदनुसार ही निर्णय घोषित करेगा और ( ख ) यदि इस मामले के सम्बंध में दोनों सदस्यों में मतभेद हो तो तसफिया अध्यक्ष स्वयं करेगा और उसके अनुसार अपना निर्णय देगा। यदि कोई संस्था चाहे तो निर्णय घोषित होने से पूर्व पंच न्यायाधिकरण के सामने लिखित आवेदन पेश करके मामला उठा ले सकती है।

उपर्युक्त अनुच्छेद ६ के अनुसार होनेवाला निर्णय मानने के लिए भारत और पाकिस्तान तथा उनके प्रांत बाध्य माने गये।

गवरनर जेनरल ने विभाजन समितियों के सम्बंध में पृथक से आदेश जारी किया था जिसमें कहा गया था कि "१५ अगस्त १९४७ से अग्र वर्णित तरीके पर ये चार विभाजन समितियां स्थापित की जायंगी—( १ ) भारत तथा पाकिस्तान की विभाजन समिति ( २ ) बंगाल विभाजन समिति ( ३ ) पंजाब विभाजन समिति और ( ४ ) असम विभाजन समिति।

प्रत्येक विभाजन समिति के कर्तव्य की व्याख्या करते हुए आदेश मे बताया गया था कि "वह उन प्रश्नों के सम्बंध मे विचार करेगी जिनका सम्बध उन बातों से हो जिनकी चर्चा सन् १९४७ के पंचायत व्यवस्था-सम्बन्धी आदेश की चौथी धारा मे की गयी है और इन प्रश्नों के सम्बंध मे ऐसा समझौता करे जो दोनों पक्षों को मान्य हो। भारतीय स्वातंत्र्य अधिनियम की धाराओं को कार्यान्वित करते समय यदि कोई ऐसा प्रश्न उपस्थित हो जिसका सम्बन्ध भारत और पाकिस्तान के स्वशासित प्रदेशों से सामान्य रूप में हो या तत्-प्रान्तों से हो तो उस पर भी वह विचार करेगी।"

भारतीय रियासतों का प्रभुसत्ता-सम्बन्धी विवाद बना ही था। ब्रिटेन के कथनानुसार उसके अधिकार की समाप्ति के बाद देशी रियासतें अपने सम्बंध मे निर्णय करने के लिए स्वतंत्र थीं। इनके सम्बन्ध मे भारतीय स्वातंत्र्य अधिनियम की धारा ७ मे कहा गया था कि "देशी राज्यों पर ब्रिटिश सरकार की प्रभुसत्ता और उसके साथ ही साथ ब्रिटिश सरकार और देशी नरेशों के बीच इस कानून के स्वीकृत होने की तिथि तक की गयी सब संधियां, समझौते और आभार और उक्त तिथि तक ब्रिटिश सरकार को प्राप्त आर्थिक तथा अन्य संधियों के सम्बन्ध मे निर्णय के सब अधिकार भी समाप्त हो जायंगे। इस कानून की स्वीकृति तक विद्यमान कबायली क्षेत्र में ब्रिटिश प्रभुसत्ता-सम्बन्धी सब निर्णयाधिकार, संधियां, समझौते एवं आभार भी समाप्त हो जायंगे। किन्तु ऐसे समझौते जिनका यातायात, निर्यात-कर, संचार साधन, डाक, तार एवं इस प्रकार के अन्य विषयों से सम्बन्ध है, तब तक यथासम्भव पूर्ववत्

निभाये जायंगे जब तक सम्बंधित राज्य का अधिपति एवं अन्य अधिकार सम्पन्न व्यक्ति अथवा स्वशासित देश की सरकार, उसका प्रांत एवं उपप्रांत उन समझौतों को रद्द न कर दे या बाद के समझौते या समझौतों द्वारा उक्त समझौतों के परिणाम को नगण्य न कर दे।"

ब्रिटिश सरकार की यह व्याख्या देशी नरेशों के अतिरिक्त अन्य किसी दल द्वारा स्वीकार नहीं की गयी। फिर भी सत्ता हस्तांतरण-सम्बन्धी अन्य व्यवस्थाओं की भांति देशी रियासतों के सम्बन्ध में भी ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि की ओर से घोषणा की गयी जिसमें भारत या पाकिस्तान से उनके सम्बन्ध के विनिश्चय तथा तत्सम्बन्धी शर्तों का उल्लेख किया गया और इच्छानुसार किसी भी डोमिनियन में शामिल होने अथवा न होने की छूट रियासतों को दी गयी। इस सम्बन्ध में घोषित शर्तनामा यह था—

"जो देशी राज्य भारत यूनियन में शामिल होता है, यह समझ कर ही शामिल होता है कि भारत का गवरनर जेनरल, भारतीय संघ की विधान सभा संघ-न्यायालय तथा उपनिवेश के लिए नियुक्त कोई अन्य अधिकारी, शामिल होने वाली रियासत के सम्बन्ध में भी उन अधिकारों का प्रयोग करेंगे जो १५ अगस्त, १९४७ को प्रचलित भारत शासन विधान के अनुसार उन्हें प्राप्त होंगे।

"शामिल होने वाली रियासत यह विश्वास दिलाती है कि समझौते की शर्तों के अनुसार जहाँ तक सम्भव होगा, रियासत १५ अगस्त को लागू होने वाले १९३५ के शासन-विधान की शर्तों को अमल में लावेगी।"

"रियासत उपनिवेश में इस भरोसे पर सम्मिलित होती है कि यदि उपनिवेश की विधान सभा के किसी कानून को रियासत में लागू करने के सबध में गवरनर जेनरल और रियासत के बीच कोई समझौता हो जाता है तो वह समझौते की शर्तों का ही अग समझा जायगा।

"उपनिवेश की विधान सभा को ऐसा कोई भी कानून बनाने का अधिकार होगा जिसके द्वारा वह शामिल होने वाली रियासत की भूमि पर, किसी भी उद्देश्य से अधिकार कर सके, किन्तु सम्बन्धित शासक यह आश्वासन देता है कि यदि रियासत में लागू होने वाले उपनिवेश के किसी कानून को अमल में लाने के लिए रियासत की भूमि आवश्यक समझी जायगी तो उसे शासक स्वयं ही, उपनिवेश की सरकार के खर्च उठाने पर, मोल ले लेगा। किसी प्रकार के मतभेद या शर्तों के उलघन के प्रश्न का निर्णय करने का अधिकार भारत के न्यायाधीश द्वारा नियुक्त पंच को प्राप्त होगा।

"इन विषयों के संबंध में उपनिवेश की विधान सभा को रियासतों में लागू करने के लिए कानून बनाने का अधिकार होगा—रक्षा, विदेशी मामले तथा संवहन साधन।" रक्षा-संबंधी अधिकार का उल्लेख इस रूप में किया गया था—"(१) नौ सेना, स्थल सेना और हवाई सेना, तथा उपनिवेश की सरकार द्वारा संघटित अन्य सशस्त्र सेना; उपनिवेश की सेना के अतिरिक्त वे सेनाएं जो या तो उसकी अधिकार-सीमा के अन्तर्गत हों, या उसकी सेना में शामिल हों, या उसकी सशस्त्र सेनाओं के साथ कार्य कर रही हों।

"(२) जल, स्थल तथा हवाई सेना-सम्बंधी कारखाने, छावनियों की म्युनिसिपल व्यवस्था, छावनियों-सम्बन्धी विधान और अधिकार, इन क्षेत्रों के मकानों में रहने की व्यवस्था का नियमन, (३) सामान्य शस्त्र, बंदूक, तोप आदि तथा गोला-बारूद। (४) विस्फोटक पदार्थ।"

विदेशी मामलों से सम्बंधित अधिकार का उल्लेख इस रूप में हुआ था—"अन्य देशों के साथ संधियों और समझौतों को पूरा करना, किसी भागे हुए अपराधी को न्याय के लिए किसी दूसरी सरकार को सौंपना।" भारत से बाहर सम्राट की सरकार के अन्य उपनिवेशों को, फौजदारी दण्ड विधान के अनुसार दोषी और अपराधी व्यक्ति को सौंपना भी इसमें सम्मिलित माना गया और।

"(२) भारत में बसने वाली जो ब्रिटिश प्रजा या यूनियन में शामिल होने वाली रियासत की प्रजा नहीं है, उसके भ्रमण को नियंत्रित करने वाले कानून के साथ-साथ भारत में रहने देने, बाहर जाने देने तथा निष्कासन का प्रश्न तय करना।

"(३) नागरिकता का अधिकार देना।"

यातायात तथा संवहन-सम्बंधी अधिकार में बताया गया— "(१) डाक और तार (इसमें टेलीफोन, बेतार का तार, ब्राडकास्टिंग—संदेश भेजने के अन्य साधन शामिल थे) तथा पोस्टआफिस और सेविंग बंक की व्यवस्था करना और नियंत्रण करना।

"(२) संघ के रेलमार्ग; छोटी रेलों के अतिरिक्त अन्य सब रेलों की सुरक्षा, अधिक से अधिक और कम से कम किराये भाड़े का तथा स्टेशन और रेल के परिचालन के खर्च का नियमन, माल इत्यादि के आवागमन की व्यवस्था, यात्रियों और माल के वाहन के रूप में रेलों के संचालन का उत्तरदायित्व, छोटी रेलों की सुरक्षा का नियमन, और माल तथा यात्रियों के वाहन के रूप में उनके संचालन का उत्तरदायित्व;

"(३) जहाजरानी और नौविद्या (जिसमें समुद्री मुहाने की जहाजरानी और नौविद्या भी शामिल थी) नौसेना का अधिकार-क्षेत्र।

"(४) बंदरगाहों में संक्रामक रोगों से ग्रस्त समुद्री यात्रियों पर प्रतिबंध की व्यवस्था;

"(५) बड़े बन्दरगाहों की सीमा का निर्धारण, वहां के अधिकारियों के अधिकारों और उनकी नियुक्ति की व्यवस्था;

"(६) विमान और विमान विद्या; हवाई अड्डों का निर्माण, हवाई यात्रा, हवाई अड्डों का नियंत्रण और संघटन;

"(७) समुद्र मे जहाजों और विमानों के पथ-प्रदर्शन के लिए प्रकाश स्तभों तथा अन्य संकेतों की व्यवस्था;

"(८) समुद्र तथा आकाश मार्ग से यात्रियों तथा माल को ले आने तथा ले जाने की व्यवस्था;

"(९) किसी एक इकाई में काम करने वाले पुलिस कर्मचारियों के अधिकारों और अधिकार-सीमा को बढ़ा कर उस इकाई के बाहर के भी रेल-क्षेत्रों पर लागू करना।"

अधीन विषय ये माने गये—

"(१) डोमिनियन ( उपनिवेश ) की विधान सभा का चुनाव—तत्सम्बंधी कानून की धाराओं के अनुसार;

"(२) उपर्युक्त विषयों से सम्बन्ध रखने वाले कानूनों को भग करने के अपराधों पर विचार;

"(३) उपर्युक्त विषयों के सम्बन्ध में जाच करने और आंकड़े एकत्र करने का कार्य;

"(४) उपर्युक्त किसी भी विषय के सम्बन्ध में विचार करने वाली अदालतों के अधिकारों और उनकी अधिकार-सीमा का निर्धारण।"

उपर्युक्त सभी आदेशों की कितनी बातें केवल कागज पर रह गयीं। विभाजन के बाद जो परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई, उनके फलस्वरूप समस्याओ का रूप ही बदल गया। अनेक अकल्पित नयी समस्याएं जिनमे आबादी की अदला-बदली की समस्या मुख थी, पैदा हो गयी। इस समस्या के गर्भ से जो समस्याएं उत्पन्न हुई उनको सुलझाने के क्रम में पाकिस्तान ने बराबर समझौतों को तोड़ा और आज भी तोड़ रहा है।

———

# पंजाब और सीमाप्रांत में नरमेध

**पंजाब में हाहाकार—गवरनर जेकिंस का कुशासन—आबादी की अदला-बदली—हजारों बेपनाह लोगों के काफिले—बंगाल में भी आग भड़की गांधी जी का अनशन और उसकी समाप्ति—सिंध के अल्पसंख्यकों पर जुल्म भारत की राजधानी में उपद्रव—गांधीजी का दूसरा अनशन—शांति का प्रतिज्ञा-पत्र—गांधीजी की हत्या—गांधी षड्यंत्र केस।**

पंजाब में साम्प्रदायिकता की आग पहले ही सुलग रही थी। देश के विभाजन की घोषणा के तीन-चार दिनों के बाद सीमा कमीशन के निर्णय की घोषणा से वह प्रचंड रूप में भड़क उठी। महाविनाश का क्रम शुरू हो गया। बर्बरता खुलकर नाचने लगी। पैशाचिकता अट्टहास करने लगी। मनुष्यता ने दम तोड दिया। पूर्वी और पश्चिमी पंजाब में हाहाकार मच गया। लोगों को जीवित जलाया गया गया, निरीह बच्चों को कत्ल किया गया, बेकस और बेजबान स्त्रियों की लाज लूटी गयी, निराभरण महिलाओं के जलूस निकाले गये। हजारों व्यक्ति कतल हुए और करोड़ों की सम्पत्ति बर्बाद हो गयी।

इन दगों के पीछे सारी प्रतिक्रियावादी शक्तिया जुट गयी थीं। पंजाब में गवरनर जेकिंस का राज था। दंगे की तैयारी को रोकने का कोई प्रयत्न उसने कभी नही किया। दूसरी ओर देशी रियासतों ने खुलकर शस्त्रास्त्र बांटे। परिणाम इतना भयंकर हुआ कि कल्पना नहीं की जा सकी थी। हजारों-लाखों व्यक्ति उजड़ गये। पूर्वी पंजाब से मुसलमान और पश्चिमी पंजाब से हिन्दू हजारों की संख्या में पनाह के लिए क्रमशः पाकिस्तान और भारत की ओर रवाना हुए। उद्‌वास की यह कहानी दुनिया के इतिहास मे बेमिसाल है।

समस्या के स्वरूप और उसके विस्तार का अनुमान इस तथ्य से ही लगाया जा सकता है कि सितम्बर, १९४७ के लगभग प्रथम तीन सप्ताह के अंदर, ( दंगों की भीषणता देख कर १६ सितम्बर को केंद्रीय सरकार ने पंजाब और सीमा प्रान्त के सम्बंध मे आबादी की अदला-बदली का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया था )—निष्क्रमण में पहली तीव्रता के बाद, पूर्वी पंजाब की सीमा

में लगभग दस लाख हिन्दू पश्चिमी पाकिस्तान से आ चुके थे। लाखों की संख्या में हिन्दू बैलगाड़ियों पर, पैदल और रेलों द्वारा पाकिस्तान से भारत आ रहे थे। २५-२५ हजार व्यक्तियों का काफिला जिनमें स्त्रियां भी थीं और बच्चे भी, बूढ़े भी थे और जवान भी; सैकड़ों मील की यात्रा कर रहा था और यह भी उन इलाकों में जहा साम्प्रदायिक जोश में अंधे होकर आक्रमण करने वालों का जोर था। पूर्वी पंजाब से पश्चिमी पंजाब मे जाने वाले मुसलमानों की भी यही हालत थी।

आबादी की अदला-बदली का भार मुख्यतः पाकिस्तान और भारत के सैनिक निष्क्रमण संघटनों पर पड़ा। इन्होंने निष्क्रमणार्थियों को पैदल, सड़क के यातायात साधनों और रेलों द्वारा लाने का प्रबंध किया।

"पैदल चलने वाले हजारों व्यक्तियों के काफिले इधर से उधर और उधर से इधर आने-जाने के लिए अपनी बैलगाड़ियों, घरेलू सामानों और मवेशियों के साथ रवाना हुए। यात्रा के दौरान मे इनका पेट भरने के लिए भूने हुए चने, आटा और गुड़ से भरी ट्रकें चलाने का प्रबंध किया गया। मवेशियो के लिए चारे का भी प्रबंध किया गया। चलती-फिरती डिस्पेंसरियां और सफाई का प्रबंध करने वालों की टोलियां भी साथ मे चलीं।

"सड़क पर गमना-गमन के लिए हजारों मोटर गाडियों का कारवा बना।...यह कारवां पश्चिमी पंजाब के विभिन्न केन्द्रों मे जमा शरणार्थियों को लाने में लगा। पूर्वी पंजाब में ३५० मोटर गाड़ियों का काफिला पृथक से तैयार किया गया जिसका काम पश्चिमी पंजाब तथा सीमा प्रांत से आने वाले शरणार्थियों को विभिन्न स्थानों में पुनर्वास के लिए पहुँचाना था।"*

पंजाब की भांति ही सीमा प्रांत मे भी भयावह रक्त-पात हुआ। इन सारी घटनाओं का उल्लेख कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष आचार्य कृपालानी ने नयी दिल्ली में आयोजित अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक मे १५ नवम्बर, १९४७ को बहुत स्पष्ट शब्दों मे किया था। आपने कहा था—"भारत विभाजित हुआ और हम स्वतंत्र हुए। किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति पर हमारे उत्सव समाप्त भी न हो पाये थे कि पंजाब पारस्परिक रक्त-लिप्सा के मद से काप उठा। ऐसा भीषण नर-संहार भारतवर्ष ने चंगेज खां की जंगली टोली के अत्याचारों के बाद कभी नहीं देखा था। क्वेटा और सीमा प्रान्त में भी ऐसा ही हुआ। अगणित नर-

---

*'मिलियंस लिव अगेन'—पूर्वी पंजाब के सहायता और पुनर्वास विभाग द्वारा प्रकाशित—पृ० सं—५

नारी तथा बच्चे मारे गये, लाखों बेघरबार हो गये और अरबों की सम्पत्ति लुटी या नष्ट कर डाली गयी।...यह महती दुर्घटना कैसे हुई? क्या बात है कि हम, गांधी जी जैसे महान् व्यक्ति द्वारा सावधान किये जाने पर भी, इसकी आशंका करने में असमर्थ रहे? बात यह है कि अंग्रेजों से शीघ्र छुटकारा पाने की उत्कंठा के कारण हमने जिना के इस वचन पर विश्वास कर लिया कि अल्पसंख्यकों का ध्यान रखा जायगा जब कि द्विराष्ट्र सिद्धांत पर उनके हठ से भरे विश्वास को देखते हुए यह स्पष्ट हो जाना चाहिये था कि अल्पसंख्यकों का ध्यान रखने का उनका वचन उपहास मात्र है। आप किसी के हृदय में एक साथ घृणा और न्याय दोनों की भावना उत्पन्न नहीं कर सकते।"†

कृपालानी जी का अंतिम निष्कर्ष आज भी उतना ही सत्य है, जितना उस समय था। आठ वर्षों के बाद भी पूर्वी बंगाल (पाकिस्तान) से हजारों की संख्या में हिन्दू प्रति मास भारत में आ रहे हैं। वहा से उनको उजाड़ने के लिए तरह तरह के हथकंडों से काम लिया जा रहा है।

पंजाब और सीमा प्रांत की आग बंगाल मे भी भड़की। महामानव गांधी की आत्मा विह्वल हो उठी। नरमेध को रोक-थाम के लिए उन्होंने १ सितम्बर, १९४७ को कलकत्ता में अनशन आरम्भ किया। इस पर लोग चैतन्य हुए। स्थिति कुछ काबू में आयी। फलतः ४ सितम्बर को गाधी जी ने अनशन भंग कर दिया। लेकिन गाधी जी अकेले कहा कहां जा सकते थे! सारे पाकिस्तान मे अल्पसंख्यकों के मूलोच्छेद का पैशाचिक अभियान जारी था। क्वेटा और बिलोचिस्तान मे अल्पसंख्यकों की सामूहिक हत्या के बाद सिंध के "हिन्दुओं ने यह समझ लिया था कि अब उनके लिए भी यहां सुरक्षित रहना सम्भव नहीं है (विभाजन के बाद से ही उन्होंने महिलाओं का हटाना आरम्भ कर दिया था—ले०)। जुल्म के पहले शिकार गरीब तबके के लोग हुए। झुंड के झुंड लोगों ने अपना घर-बार त्याग दिया—पनाह ढूढ़ने के लिए वे पैदल हो चल पड़े। सरकार ने व्यवहारतः बल-पूर्वक सिखों को खदेड़ा। उन्हें अपने कपड़े और बिस्तर लेने के भी इजाजत नहीं दी गयी, बंक में अपने हिसाब को भी छूने से वे वंचित कर दिये गये। रातो-रात गांवों से उन्हें लाकर रेल के डब्बों में भेड़ों की तरह भर दिया गया। उनके प्रति जरा भी रहम नहीं दिखाया गया। इसके फलस्वरूप सिंध से अल्पसंख्यकों के निष्क्रमण को और बल मिला।"

"झुंड के झुंड गरीब और अमीर खुले आकाश के नीचे रेलवे प्लैटफार्म

---

† कांग्रेस बुलेटिन, २६ जनवरी, १९४८ पृ० सं० २२—२३

और जहाज की जेटियों पर दैनिक इस्तेमाल में आने वाले नाम-मात्र के समान के साथ पड़े-पड़े रेलगाड़ी और नाव में अपने लिए स्थान प्राप्त करने का अवसर देखते रहते। यह समझा गया कि पीड़ित और प्रताड़ित हिन्दू अपनी अधिकतर चल और अचल सम्पत्ति छोड़ कर जान बचाने के लिए हिन्दुस्तान में जा रहे हैं, अतः पाकिस्तान सरकार और उसके अधिकारी, उन्हें और तंग न करेंगे। लेकिन यह आशा पूर्णतः निराधार थी। उनका बचा-खुचा सामान भी लूटने की हर मुमकिन कोशिश की गयी और इस अभियान में मुसलिम आबादी के सभी तत्त्वों ने—सरकारी अधिकारियों से लेकर स्टेशन के कुलियों तक ने भाग लिया। किसी न किसी बहाने निष्क्रमणार्थियों के कपड़े (धुले और बिना धुले, सूती और रेशमी तथा ऊनी भी), जेवर जिनमें नाक की नथिया तक शामिल थी (यह सुहाग का चिह्न समझा जाता है), नकद और सोना, घड़ियां, स्टेथिसकोप, थर्मामीटर, सिलाई की मशीन, रेडियो, चांदी के बर्तन, क्राकरी, ग्रामोफोन, हारमोनियम और बिजली के पंखे तक छीन लिये गये—बचा कुछ भी नहीं। लूट का इतना गहरा आतंक था कि बहुत से लोगों ने जो भी मूल्य मिला, उसे लेकर अपना कीमती सामान बेच देना अक्लमंदी माना।...लूट, तलाशी और कानून की आड़ में हुई।"*

स्वाभाविक था पाकिस्तान में घटने वाली इन घटनाओं की प्रतिक्रिया भारत में भी होती। प्रतिक्रिया हुई भी लेकिन हुकूमत ने दृढ़तापूर्वक यहाँ संगीनों के बल पर शांति कायम रखी। फिर भी यहाँ के अल्पसंख्यक भयभीत हुए बिना न रहे। इनमें अनेक विश्वासघाती और देशद्रोही भी थे। इनके कारण साधारण तबका भी भयभीत हो रहा था। इस स्थिति का उल्लेख करते हुए कांग्रेस के अध्यक्ष आचार्य कृपालानी ने कहा था—"हमारे जिन मुसलिम भाइयों ने—और मुसलिम सम्प्रदाय के अधिकतर लोग इनमें सम्मिलित थे—लीग के नेतृत्व में गुमराह हो कर पाकिस्तान कायम करने में मदद दी है, वे आज हमें आश्वासन दे रहे हैं कि अब हम द्विराष्ट्र सिद्धांत पर विश्वास नहीं करते। भारत संघ के प्रति वे उतने ही आग्रह के साथ राजभक्ति प्रकट कर रहे हैं जितने आग्रह के साथ उन्होंने देश के विभाजन का समर्थन किया था!...यद्यपि हम कांग्रेस जन और हमारी सरकारें उनकी रक्षा के लिए कटिबद्ध हैं तथापि हम केवल अपनी पुलिस और सेना के बल पर ऐसा नहीं कर

---

* 'बाक़ी हिन्दूज मिग्रेटेड फ्राम सिंध' (पाकिस्तान), सिंध कांग्रेस वर्कर्स् रिफ्यूजी रिलीफ कमेटी दिल्ली और बम्बई द्वारा प्रकाशित, पृ० सं०—४

सकते।...मुसलिम सम्प्रदाय पाकिस्तान पर इस बात का दबाव डालने के लिए संघटित हो कि वहां के अल्पसंख्यकों के साथ न्याय किया जाय।"*

पाकिस्तान में सुधार नहीं हुआ। आचार्य कृपालानी की भविष्यवाणी सत्य निकली। भारत की राजधानी दिल्ली में भी साम्प्रदायिकता की आग भड़क उठी। यहां शरणार्थी काफी संख्या में एकत्र हो गये थे। पाकिस्तान में होने वाले जुल्म की कहानियां उनके मुँह से सुन कर यहां भी लोगों का जोश भड़का। मालूम होने लगा कि अनर्थ हो जायगा। राजधानी डांवाडोल होती तो सारे देश में कत्ले-आम शुरू हो जाता। प्रतिक्रियावादी शक्तियां जिनमें कुछ देशी नरेश भी शामिल थे, इसके लिए प्रयत्नशील थीं। भारत के गृह मंत्री लौह पुरुष सरदार पटेल सरीखे शासक की बुद्धि भी चकरा गयी थी। कारण यह भी था कि दिल्ली में लीगी मुसलमानों ने अनेक छोटे-छोटे खुफिया शस्त्रागार बना रखे थे। इनका भंडा फूटने पर जोश और भी भड़क उठा था। मेरठ की छावनी से पलटन बुलायी गयी। गोरखा पलटन भी तैनात कर दी गयी। गोलियों की बाढ़ के बल पर दगा रोकने की चेष्टा की गयी। लेकिन फिर भी स्थिति की भयानकता कम न हुई। भारत सरकार की दृष्टि अंततः आत्मिक शक्ति के पुंज राष्ट्रपिता की ओर आकृष्ट हुई। गांधी जी दिल्ला बुलाये गये। वह दिल्ली में आये। ६ सितम्बर, १९४७ को उन्होंने दिल्ली-निवासियों को चेतावनी दी और दूसरे ही दिन उन्होंने दिल्ली के उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्रों का दौरा आरम्भ कर दिया। लोगों से उन्होंने छिपाये हुए शस्त्रास्त्रों को जमा करने की अपील की। लोगों ने विशेष रूप से मुसलमानों ने, काफी संख्या में अपने शस्त्रास्त्र प्रार्थना सभा में गांधी जी को सौंप दिये। पुलिस और सेना पर काबू रखने वाली सरकार जो काम न कर सकी थी, वह गाधी जी ने अपने व्यक्तित्व के बल पर कर डाला। फिर भी उन्हें पूरी सफलता न मिली। इससे क्षुब्ध हो कर राष्ट्रपिता ने, भारत की मुक्ति के विधाता और करोड़ों भारतीयों के परम पूज्य इस देवता ने पुनः अपना प्राण बाजी पर लगा दिया और १३ जनवरी, १९४८ को अनशन आरम्भ कर दिया। देश फिर एक बार डांवाडोल हो उठा। लोगों की प्रवृत्ति को लक्ष्य करके क्षुब्ध गृह मंत्री सरदार पटेल को कहना पडा कि "भारत मे शान्ति वस्तुतः संगीनों के बल पर कायम है" (१६ जनवरी)। इसी दिन दिल्ली मे आयोजित सार्वजनिक सभा में नेहरू जी ने गांधी जी के अनशन का उल्लेख करते हुए कहा था कि "हमें पाकिस्तान का अनुसरण नहीं करना चाहिये।"

---

* कांग्रेस बुलेटिन २६ जनवरी, १९४८—पृ० सं० २४

गांधी जी के अनशन ने पुनः एक बार अपना प्रभाव दिखाया। आत्मिक शक्ति के सामने शासन की भौतिक शक्ति फीकी पड़ गयी। लोगों ने एक स्वर से अनशन भंग करने का अनुरोध गांधी जी से किया। इस पर उन्होंने १७ जनवरी को अपनी सात शर्तें प्रकाशित की। इनके अनुरूप एक प्रतिज्ञा पत्र तैयार किया गया जिस पर हिन्दुओं, सिखों और मुसलमानों के सौ से अधिक प्रतिनिधियों ने हस्ताक्षर किये और प्रतिज्ञा की कि "हम यह घोषित करना चाहते हैं कि हमारी दिल्ली ख्वाहिश है कि हिन्दू, मुसलमान और सिख और दूसरे धर्म को मानने वाले फिर से आपस में मिल कर भाई-भाई की तरह दिल्ली में रहें और हम उनसे प्रतिज्ञा करते हैं कि मुसलमानों की जान-माल और धर्म की रक्षा हम करेंगे और जिस तरह की घटनाएं यहां पहले हो गयी हैं, उनको फिर न होने देंगे।

"गांधी जी को हम इतमिनान दिलाना चाहते हैं कि ख्वाजा कुतुबुद्दीन में उर्स का मेला जिस तरह पहले हुआ करता था, वैसे ही अब भी हो सकेगा। जिस तरह मुसलमान दिल्ली के सभी मुहल्लों में और खास कर सब्जी मंडी, करोल बाग, पहाड़गंज और दूसरे मुहल्लों में आया-जाया करते थे, वैसे ही बेखटक और संकट-मुक्त हो कर फिर से आ-जा सकेंगे। जिन मसजिदों को मुसलमान छोड़ गये हैं, जो सिखों के कब्जे में हैं, वे मुसलमानों को वापस कर दी जायंगी। सरकार ने जिन जगहों को खास तौर पर मुसलमानों के लिए रख छोड़ा है, उन पर जोर-जबरदस्ती से कब्जा करने की कोशिश नहीं की जायगी और पहले की तरह वे अपना कारोबार कर सकेंगे। हम यह इतमिनान दिलाना चाहते हैं कि ये बातें हम अपनी कोशिश से पूरी करेंगे और उसके लिए सरकारी पुलिस या फौज की ताकत इस्तेमाल में लाने की जरूरत न पड़ेगी। महात्मा जी से हमारा अनुरोध है कि हमारी बातों पर विश्वास करके अपना उपवास छोड़ दें और जिस तरह आज तक देश की रहनुमाई करते रहे हैं, करते रहें।"

इतिहास में 'शांति के प्रतिज्ञा-पत्र' के नाम से प्रसिद्ध इस 'दस्तावेज' पर विभिन्न धर्मों के प्रतिनिधियों द्वारा हस्ताक्षर किये जाने के बाद १८ जनवरी, १९४८ को गांधीजी ने अपना अनशन भंग कर दिया। अपनी प्रबल संघटन शक्ति के विरुद्ध इस एकाकी महापुरुष की विजय सम्प्रदायवादियों को रुचिकर प्रतीत न हुई। उन्होंने षड़यंत्र रचा और ३० जनवरी, १९४८ को सायंकाल नाथूराम गोड्से नामक युवक ने प्रार्थना सभा में राष्ट्रपिता के वक्षःस्थल को पिस्तौल की गोली से विदीर्ण कर दिया।

गांधी जी अमर हो गये। उनके महापरिनिर्वाण का समाचार सुनकर सारा विश्व शोकाकुल हो उठा। शासन से कोई सम्बन्ध न रखने वाले किन्तु शांति और मानवता के इस पुजारी के सम्मान में सभी देशों ने अपने झंडे झुका दिये। भारत में तो कोहराम मच गया। दरो-दीवार रो उठी। ईंट और पत्थर तक सुबुकते नजर आने लगे। नदियों का पानी तक खारा हो गया।

राष्ट्रपिता के उत्सर्ग ने साम्प्रदायिकता के प्रेत को दफन कर दिया। उनके रक्त ने राष्ट्रीयता की धँसती हुई नींव को सीमेंट बन कर सशक्त कर दिया। उनके निर्वाण के अवसर पर भारत में एकता की जो अद्भुत लहर दिखाई थी, वह अपूर्व थी। आज भी वह अपने स्थान पर अकेली बनी है। बापू गये किन्तु भारत को बचा गये। उसकी उज्ज्वल संस्कृति और परम्परा पर कालिमा बन कर छा जाने वाली साम्प्रदायिकता को उन्होंने रक्तदान से धो दिया। लड़खड़ाती स्वतंत्रता के पाये फिर मजबूत हो गये। गांधी जी मर कर भी जी उठे। आज भारत उनकी ही प्रेरणा से अनुप्राणित है—सदियों तक वह उनकी प्रेरणा से अनुप्राणित होता रहेगा।

गांधी जी की हत्या का यह पहला प्रयास नहीं था। १० दिन पूर्व २० जनवरी, १९४८ को भी उनकी प्रार्थना सभा में बम फूट चुका था। उस समय मदनलाल नामक पंजाबी युवक दुर्घटना-स्थल पर ही गिरफ्तार कर लिया गया था। बाद को पता चला कि हत्यारे नाथूराम गोड्से से इसका संबध था।

पुलिस ने षड़यन्त्रकारियों का पता लगा कर उन पर मुकदमा चलाया। नाथूराम गोड्से अंततः गाधी जी हत्या के अभियोग मे फासी पर लटका दिया गया।

गांधी हत्याकाण्ड षड़यंत्र केस मे ये लोग अभियुक्त बनाये गये थे—नाथूराम विनायक गोड्से, नारायण दत्तात्रेय आप्टे, विष्णु रामचंद्र करकरे, दिगम्बर रामचन्द्र बडगे, मदनलाल, कश्मीरीलाल पहवा, शंकर किस्तय्या, गोपाल विनायक गोड्से, विनायक दामोदर सावरकर, दत्तात्रेय सदाशिव परचुरे, गंगाधर सखाराम दण्डवते, गंगाधर जादव और सूर्यदेव शर्मा तथा अन्य कई अज्ञात व्यक्ति।

विशेष अदालत के जज आत्माचरण ने गोड्से और आपटे को मृत्यु दण्ड दिया। करकरे, मदनलाल, शंकर किस्तैया, गोपाल गोड्से और डाक्टर परचुरे को आजीवन कैद की सजा दी गयी। सावरकर दोषमुक्त घोषित हुए। मुखबिर बडगे रिहा कर दिया गया। जज ने सभी अभियुक्तों को अपील करने का अधिकार दिया और यह सिफारिश भी की कि शंकर किस्तैया की

सजा आजीवन कालापानी से घटाकर सात साल की कड़ी कैद में बदली जा सकती है।

फैसला १० फरवरी, १९४९ को सुनाया गया था। अभियुक्तों की ओर से पंजाब हाईकोर्ट में अपील की गयी। विचारपति खोसला, भंडारी और और अछरूराम की फुलबेंच के समक्ष अपील की सुनवाई हुई। अपील के फैसले मे जो २१ जून, १९४९ को सुनाया गया, यह घोषित हुआ कि डाक्टर परचुरे और शंकर को छोड़ कर शेष अभियुक्तों ने गांधीजी की हत्या के षड़यंत्र में भाग लिया। डाक्टर परचुरे और शंकर किस्तैया की सजा रद्द कर दी गयी। शेप अभियुक्तों की सजा बहाल रखी गयी।

———

# कश्मीर की समस्या

**पाकिस्तान की हिटलरी चाल—'स्थिति-स्थापक' समझौता—शेख अब्दुल्ला की रिहाई—पाक गवरनर जेनरल की धमकी—कश्मीर पर आक्रमण कश्मीर नरेश द्वारा भारत से सहायता की मांग—भारत कश्मीर में शामिल शेख अब्दुल्ला की अस्थायी सरकार—बारामूला-उरी और मीरपुर आदि में आक्रमणकारियों का अत्याचार—भारतीय सेना का बढ़ाव और पराक्रम—मामला सुरक्षा परिषद में—कश्मीर कमीशन की नियुक्ति—१३ अगस्त १९४८ का प्रस्ताव—५ जनवरी का प्रस्ताव—पाकिस्तान द्वारा वादे का उल्लंघन—जनेवा वार्ता विफल—कराची और नयी दिल्ली में सम्मेलन—संयुक्त विज्ञप्ति—पाक-अमेरिका सैनिक सहायता-संधि—नेहरू जी की घोषणा—भारत-कश्मीर का वैधानिक सम्बंध—कश्मीर मंत्रिमंडल में मतभेद—तीन मंत्रियों का शेखअब्दुल्ला पर दोषारोप—सदरे रियासत का निर्णय—अब्दुल्ला मंत्रिमंडल विघटित—बख्शी गुलाम मोहम्मद प्रधान मंत्री बने—शेखअब्दुल्ला कैद में।**

साम्प्रदायिक उन्माद से उत्पन्न लाखों शरणार्थियों की जीवन-रक्षा की समस्या अधर में ही थी कि अक्तूबर १९४७ के तीसरे सप्ताह मे पाकिस्तानियों ने कश्मीर पर हमला कर दिया। वास्तव मे देश के विभाजन के बाद से ही पाकिस्तान कश्मीर को हडपने का षडयंत्र रचने लगा था। कश्मीर पर अनुचित दबाव डालकर उसे पाकिस्तान मे शामिल करना उसका लक्ष्य था। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए पाकिस्तान के गवरनर जेनरल जिना ने वही तरीका अपनाया था जो हिटलर ने चेकोस्लोवाकिया तथा आस्ट्रिया पर हमला करने पूर्व अपनाया था। कश्मीर मे मुसलमानों पर हिन्दू राजा के जुल्म की कहानिया गढ़ी जाने लगी थी।

कश्मीर नरेश हरिसिंह ने तत्काल न तो भारत, न पाकिस्तान में शामिल होने का निर्णय किया। १५ अगस्त, १९४७ को उन्होंने पाकिस्तान से 'स्थिति-स्थापक' समझौता किया। ऐसा ही समझौता भारत से भी किया गया था। पाकिस्तान बाज नहीं आया। कश्मीर सरकार के विरुद्ध उसकी शिकायतों का तांता जारी रहा। कश्मीर सरकार और गवरनर जनरल के बीच

तारों का जो आदान-प्रदान हुआ, उससे यह जाहिर हो गया कि पाकिस्तान दबाव डालकर अपना उल्लू सीधा करना चाहता है। इसकी भूमिका भी पाकिस्तान में खूब सोच-समझकर तैयार की गयी थी। एक ओर पाकिस्तानी रेडियो मुसलमानों पर अत्याचार की मनगढ़न्त कहानियों का प्रचार करता, दूसरी ओर पाकिस्तान के समाचार-पत्र उसका साथ देते। रियासत के जागीरदारों को बगावत करने के लिए भड़काया गया। चित्राल के राजा को बगावत करने की सलाह दी गयी। कश्मीर की नाकेबन्दी भी शुरू कर दी गयी। नमक-तेल आदि आवश्यक वस्तुओं को कश्मीर में भेजना बंद कर दिया गया।

कश्मीर नरेश ने इस स्थिति का मुकाबिल नेशनल कांफ्रेंस के सहयोग से करना चाहा। २६ सितम्बर को उन्होंने नेशनल काफ्रेंस के नेता और उनके साथियों को जेल से रिहा कर दिया। कश्मीर पर पाकिस्तान का दबाव फिर भी जारी रहा। इस पर नेशनल कांफ्रेंस के अध्यक्ष शेख अब्दुला ने कहा था कि 'इस समय हमारे सामने समस्या पाकिस्तान अथवा भारत में शामिल होने की नहीं, बल्कि कश्मीर में राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की है।'

इस पृष्ठ-भूमि में २० अक्तूबर, १६४७ को जिना ने कश्मीर नरेश के नाम भेजे गये अपने तार में लिखा था—"आपकी सरकार मुसलमानों का जिस प्रकार दमन कर रही है, आपकी फौजें उन पर जो जुल्म ढा रही है और जिससे लाचार होकर मुसलमान भाग रहे हैं, समाचार पत्रों में जैसी बातें प्रकाशित हो रही हैं, खास कर आपकी ओर से आपके प्रधान मन्त्री के उस तार का प्रकाशित कर दिया जाना जिसमें मुझसे मुसलमानों के खिलाफ बेबुनियाद शिकायतें की गयी थीं—और बाहरी सहायता लेने की आपकी धमकी, इन सबसे जाहिर हो जाता है कि आपकी सरकार जिस नीति पर चल रही है, उसका वास्तविक लक्ष्य भारतीय संघ में शामिल हो जाना और आकस्मिक राजनीतिक चाल चल कर उस उपनिवेशकी सहायता प्राप्त करना ही है।"

इस तार ने जिना के इरादे की पोल खोल दी। वास्तव में यह विफलता की प्रतिक्रिया थी। उन्हें आशा थी कि दो राष्ट्रों के सिद्धान्त की उनकी चाल कश्मीर में कारगर हो जायगी लेकिन नेशनल काफ्रेंस ने जिसमें मुसलमानों का बहुमत रहा है, दो राष्ट्रों के सिद्धान्त को ठुकरा दिया और पाकिस्तान के इरादे और उसके झूठे प्रचार का मुँह-तोड़ जवाब दिया। इससे खीझ कर पाकिस्तान के गवरनर जनरल जिना ने यह दोषारोप किया कि 'कश्मीर भारतीय संघ में शामिल होना चाहता है।' इससे जाहिर हो गया कि वह कश्मीर को पाकिस्तान में जबरदस्ती

शामिल करने के इच्छुक थे। भारत यह सब देख कर भी शांत रहा और 'स्थिति-स्थापक' समझौते का पालन करता रहा।

अंततः २४ अक्तूबर को पाकिस्तानियों ने कश्मीर मे मुजफ्फराबाद के इलाके पर हमला कर दिया। इसी दिन कश्मीर रियासत की ओर से भारतीय संघ में शामिल होने की घोषणा और सैनिक सहायत की अपील की गयी। २५ अक्तूबर को इस पर भारत सरकार ने विचार किया लेकिन सेना भेजने के सम्बंध मे उसने कोई निर्णय नही किया। दूसरे दिन भारत ने इस पर पुनः विचार किया। तब तक कश्मीर की हालत नाजुक हो गयी थी। हमलावरों ने बहुत से शहर लूट-पाट कर नष्ट कर दिये थे। उन्होंने महोरा के बिजली घर को नष्ट कर दिया था जहां से सारे कश्मीर को बिजली मिलती थी। वे घाटी मे प्रवेश करने वाले थे। कश्मीर और श्रीनगर का भाग्य अधर मे लटक रहा था।

इस बीच शेख अब्दुल्ला और उनकी नेशनल काफ्रेंस ने भी भारत से सहायता की याचना की। तब भारत ने २६ अक्तूबर को कश्मीर के भारत मे शामिल होने के समझौते पर कश्मीर नरेश से हस्ताक्षर कराया एव स्वयं हस्ताक्षर किया और यह शर्त लिखी कि "बाद मे जब रियासत में शाति और व्यवस्था कायम हो जायगी तो कश्मीर के लोगो द्वारा रियासत के भारत मे सम्मिलित होने के प्रश्न पर अन्तिम रूप से निर्णय किया जायगा।" २७ अक्तूबर, १९४७ को विमान से भारतीय सेना कश्मीर भेजी गयी। भारतीय सैनिकों की संख्या यद्यपि बहुत कम थी, क्योंकि वायुयान से अधिक सेना नहीं भेजी जा सकती थी, तथापि उन्होने आक्रमणकारियों पर जो श्रीनगर से १७ मील दूर ( पाटन ) रह गये थे, हमला कर दिया। यहाँ से पाकिस्तानी कबायलियों को खदेड़ते-खदेड़ते अततः ८ नवम्बर को बख्तरबन्द गाड़ियों और हवाई जहाज की सहायता से भारतीय सेना ने बारामूला को पुनः अपने कब्जे मे कर लिया। यहा कबालियों ने घोर पशुता का परिचय दिया था। १० नवम्बर, १९४७ को बारामूला के भूतपूर्व वजीर वजारत चौ० फैजुल्ला ने आक्रमणकारियों के जुल्म का पर्दाफाश करते हुए यह व्यक्तव्य प्रकाशित कराया था—"२६ अक्तूबर, १९४७ को रात में हमलावर ३०-३० और ४०-४० के जत्थे बनाकर बारामूला मे दाखिल हुए। एक समय तो इन लोगों की संख्या करीब पाँच हजार तक पहुँच गयी थी। इनमें अधिकतर कबायली थे। इनके साथ कुछ पंजाबी मुसलमान भी थे। वे सब हथियारों से लैस थे। पीर, पाकिस्तानी फौज व फ्रंटियर कांस्टेबुलरी के असफर उनका नेतृत्व कर रहे थे। बारामूला को उन्होंने अपना अड्डा बनाया। जत्थे बना

कर वे समूची घाटी पर छा गये। उन्होंने उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पूर्व से श्रीनगर की घाटी में जाना शुरू किया। स्थानीय मुसलिम काफ्रेंस के कुछ आदमी हमलावरों के साथ मिल गये। उन्होंने उनका पथ-प्रदर्शन किया और राशन जमा करने में उनकी मदद की।

"बारामूला में घुसने के दिन से ही उन्होंने गैर मुसलिमों को मौत के घाट उतारना शुरू कर दिया। धर्म का खयाल किये बिना उन्होंने सब स्थानीय लोगों के घरों मे आग लगाना और उन्हें लूटना शुरू कर दिया। औरतों पर बलात्कार भी होने लगा। वे १०–११ आदमियों के जत्थे बनाकर स्थानीय लोगों के घरों की तलाशियां लेते और बेशकीमती चीजें, अन्न और कपड़े लेकर भाग जाते।

"बारामूला से उरी तक लूट का माल ले जाने के लिए २८० लारियाँ इस्तेमाल की गयीं। औरतों को मसजिदों और गुरुद्वारों में ले जाकर उन पर बलात्कार किया गया। दीवार पर चढ़कर वे सेण्ट जोसेफ के गिरजाघर मे पहुँच गये। उन्होंने गिरजे की सबसे बड़ी महिला पादरी और मेजर डाइक्स को गोली से उड़ा दिया। उन्होने गिरजे और उसके साथ के अस्पताल को भूमिसात् कर दिया। मैंने सुना कि बेगम शाहनवाज महिला पादरियों को बचाने वहा आयी थीं। मैं वहां प्रेस रिपोर्टर (लदन का डेली एक्सप्रेस) मिस्टर सिडनी स्मिथ से भी मिला। वह ३-४ दिन तक रिटायर्ड पुलिस अफसर सरदार उमराव खां के मकान मे रहे। मैं मेजर खुर्शेद अनवर से भी मिला। वह 'आजाद कश्मीर' सरकार के अध्यक्ष थे। वह भी हमले का संचालन कर रहे थे।

"७ नवम्बर को हमलावर बारामूला से चले गये। एक भी मकान ऐसा न बचा था जिसे हमलावरों ने लूटा न हो। हमलावरों की मांगे पूरी करने में वहां के बाशिन्दों को बड़ी मुसीबत का सामना करना पड़ा। तमाम मुसलमानों को शपथ खाकर कहना पड़ा था कि हमने अपने यहां किसी गैरमुसलिम को पनाह नहीं दी, न हम उनकी जायदाद को छिपा रहे हैं, जब भारतीय सेना ने बारामूला पर कब्जा कर लिया तो स्थानीय बाशिन्दों ने आराम की सांस ली।"*

बारामूला में ही उन्होंने नेशनल कांफ्रेंस के वीर कार्यकर्त्ता मकबूल शेर-

---

* ५ मार्च, १९४८ को कश्मीर के सम्बन्ध में भारत सरकार द्वारा प्रकाशित 'श्वेत पत्र' से उद्धरित

वानी को पकड़ लिया था जिसने उन्हें धोखा देकर श्रीनगर की ओर बढ़ने से काफी समय तक रोक रखा था और श्रीनगर में रक्षा की स्थिति उत्पन्न होने का अवसर उत्पन्न होने की प्रतीक्षा में अपनी जान की बाजी लगा दी थी। "कबायलियों और उनके नेताओं ने कई दिनों तक उससे भेद जानने की कोशिश की लेकिन इस वीर ने अपना मुंह नहीं खोला। अन्त मे उन्होंने उसे शहर के मध्य एक खम्भे में बांध दिया। उसके हाथों और पैरों में निर्दयतापूर्वक कील ठोंक दिये। उसका नाक काट लिया। इतने पर भी इस बहादुर को झुकते न देखकर वे आग बबूला हो गये और उन्होंने उसे गोली मार दी। बारामूला से कबायलियों के खदेड़े जाने के बाद जब उसकी लाश पायी गयी तो उस पर चौदह गोलियों के निशान मिले।"*

नव-निर्मित पठानकोट-जम्मू सड़क से बराबर सहायता कश्मीर में पहुँचायी जा रही थी। इसकी पृष्ठ-भूमि भी काफी दिलचस्प है। जब भारत से हवाई जहाज द्वारा सेना श्रीनगर भेजी गयी, तब भारत को यह भी मालूम नहीं था कि श्रीनगर बचा भी है या आक्रमणकारियों ने उस पर कब्जा कर लिया है। महाराज श्रीनगर से जम्मू चले गये थे। एक दिन की भी देर हो जाती तो श्रीनगर में भारतीय सेना को पैर रखने का अवसर न मिलता। दूसरा हवाई अड्डा था नहीं! स्थल-मार्ग का भी अभाव-सा ही था।

बारामूला से उरी की ओर कठिन मार्ग से बढ़ती हुई भारतीय सेना जब महोरा बिजलीघर पहुँची जहां से समूचे श्रीनगर की घाटी को बिजली मिलती थी, तब वह उसे ध्वस्त मिला। १५ नवम्बर को भारतीय सेना ने उरी पर अधिकार कर लिया और श्रीनगर तथा आसपास की घाटी को खतरे से मुक्त कर दिया। यह कश्मीर की कारवाई के प्रथम अध्याय का अंत था।

उरी में १६१ वीं ब्रिगेड को एक डायरी मिली थी जिसका मुख्य अंश इस प्रकार है—

"मेरा नाम अजीज लोनवाचा लम्बरदार है। सोमवार को (मुसलिम तिथि ८ वीं जुलहज) तीसरे पहर की प्रार्थना का समय। पंजाब और वजीरिस्तान से सेना उरी के बाजार में पहुँची। पहले सैनिकों ने तहसीली दफ्तर और बंगले में आग लगायी और उसके बाद बाजार को कुल्हाड़ी आदि से तोड़ा-फोड़ा। कम से कम ६ हजार सैनिक बाजार को लूटने में शामिल थे। ७ वीं जुलहज को सभी दूकानदार, मजदूर तथा अन्य लोग अपना सब कुछ

*'दि कश्मीर स्टोरी' भारत सरकार का प्रकाशन—पृ० सं० ४४-४५

छोड़कर भाग गये। ८ वीं जुलहज को कोई भी दूकानदार उपस्थित नहीं था। ६ हजार तगड़े सैनिकों ने उरी को लूटा और एक भी चीज वहां नहीं छोडी। शाम को लोग वापस आये। उरी बाजार तथा गांव में लगभग ६ लाख रुपये का नुकसान होने का अनुमान है।

"तीसरे पहर प्रार्थना के समय तक गोलियां चलती रहीं। उस दिन से १४ वीं जुलहज तक उरी के बाजार तथा गांव मे कोई नहीं रहा और अधिकतर लोग हवाई जहाज से गये। उरी में केवल ईश्वर और ६ हजार सैनिक (आक्रमणकारी) रह गये।

"उरी बाजार में १२ बजे रात तक सैनिक अपना भोजन पकाते रहे। १२ बजे रात को एक सैनिक ने आधे बाजार में आग लगा दी और थोड़ी ही देर में आग चारों तरफ फैल गयी तथा सब कुछ जलकर राख हो गया।

"महाराज की सेना परिस्थिति विरुद्ध देखकर आधी रात को भाग गयी। ८ वीं जुलहज की शाम को पठानों ने गायों की हत्या की। पहले उन लोगों ने हिन्दुओं की गायें, बकरियां, भेड़े और मुर्गियां काटी, फिर आधा मास पकाया और शेष सड़क पर फेंक दिया। ९ वीं जुलहज को उन्होंने एक-एक कर गाय, बैल, बकरा-बकरी, मुर्गा-मुर्गी सबको काट डाला। मैं नहीं कह सकता कि मांस पकाया गया या नहीं। उन्होंने मास खाया या रोटिया खायीं। अनुमान है कि लगभग १५ सौ गायें आदि काटी गयीं।

"९ वीं जुलहज को स्थिति बहुत खराब थी। उरी में ईद प्रसन्नता और खुशी से नहीं मनायी गयी।

"एक पठान कप्तान डाक बंगले में आकर ठहरा। दूसरे दिन उसने घोषणा की कि सिवा बच्चों और बूढ़े के कोई भी पंजाब न भेजा जाय। केवल जवान लड़के और लड़कियां रखी जायं। बाकी सब सिख मार डाले जायं और इसके अनुसार एक ही मिनट में पकड़े गये सब सिख मार डाले गये।

"मैंने यह देखा तो नहीं किन्तु सुना है कि एक हिन्दू या सिख तेरह गोलियों से मारा गया और अंत तक वह यही कहता रहा—'हिन्दुस्तान न कि 'पाकिस्तान'। वह उरी तहसील के सलामाबाद का रहने वाला था। उसी समय सात सिख और हिन्दू गोली से उड़ा दिये गये। एक आदमी का सिर तलवार से जख्मी कर दिया गया, कई दिनों तक जख्म से खून बहता रहा। इनकी पत्नियां सैनिकों के कब्जे में थी, दो युवतियों से पठानों ने शादी कर ली और बाद में अपने साथ लेते गये। १४ वीं जुलहज को एक हजार, हिन्दू एकत्र किये गये। सिखों से 'कलमां' पढ़ने को कहा गया। उनकी दाढ़ी काट दी

गयी। उनसे मुसलमानों के साथ भोजन करने तथा 'नाराए-तकबीर' कहने को कहा गया। उन्हें गाय का मांस दिया गया। महिलाओं के कान काट डाले गये। कप्तान ने कहा कि इसका निर्णय वे स्वयं करें कि वे इसलाम धर्म कबूल करना चाहती हैं, या हिन्दू ही रहना चाहती हैं। हमें पहले सिखों को मारना है।"*

अत्याचार की यह कहानी बहुत लम्बी है। इसमें पाकिस्तान का प्रत्यक्ष हाथ था। कबायलियों को लारियां, शस्त्रास्त्र आदि उसने ही दिये थे। उसके फौजी अफसर इनका संचालन करते—इन्हें रास्ता दिखाते। खून बहा कर कश्मीर पर कब्जा करने की पाकिस्तानी साजिश के कारण मुसलमान भी कम नहीं मारे गये। नेशनल कांफ्रेंस के कार्यकर्त्ताओं ने जिनमें अधिकतर मुसलमान ही थे और हैं, अपने सीमित साधनों से जहां तक सम्भव था आक्रमणकारियों का मुकाबिला किया। कुछ गद्दार भी थे लेकिन नगण्य।

बारामूला और उरी पर कब्जा करने के बाद भारतीय सेना का दूसरा काम जम्मू प्रांत के बहुत बड़े भाग को स्वतन्त्र कराना था जिस पर कबायलियों ने अधिकार जमा लिया था। उन्होंने मीरपुर, कोटली, पूंछ, झांगर, नौशेरा, तथा भीमबर शहर घेर लिया था। शहर के छोटे-छोटे सैनिक अड्डों से रियासती सेना इनका सामना कर रही थी। नौशेरा, झागर और कोटली के घेरे को तोड़ने में भारतीय सेना सफल रही लेकिन मीरपुर की ओर वह बढ़ न सकी, फिर भी वहा की रियासती सेना का काफी बड़ा दल नागरिक शरणार्थियों के साथ वहा से निकल आया।

बारामूला और उरी की भांति ही आक्रमणकारियों ने मीरपुर में भी बहुत जुल्म किया। रियासत के जागीरदार सरदार टहल सिंह के पुत्र सरदार इन्द्रसिंह बाली ने (उम्र २४ वर्ष) मीरपुर खास से यह वक्तव्य प्रकाशित कराया था—"२५ नवम्बर, १९४७ को हमारे शहर मीरपुर खास पर बम वर्षा की गयी थी। शहर पर तोपों से हमला किया गया था। मकानों की छतें उड़ गयी थीं। नागरिक हताहत हुए। रियासती फौज ने कोई खास टक्कर नहीं ली। दोपहर के बाद दो बजे हमलावरों ने नगर पर कब्जा कर लिया और समूचे शहर में आग लगा दी थी। शहर में रियासती सेना के सिर्फ ३५० सैनिक थे। उन्होंने नगर के चारों तरफ पिकेट बैठा दिये थे। लगभग ५ सौ व्यक्ति छावनी में थे। जब हालत निराशाजनक हो गयी तो सैनिकों ने हथियार डाल

* कश्मीर-सम्बन्धी 'श्वेत-पत्र' से उद्धरित

देने का निश्चय किया था। वे भाग गये और छावनी में पहुँच कर अपने अफसर से जा मिले। शहर व छावनियों के लोग फौजियों की सहायता से छावनी में दाखिल हो गये।

"हमसे करीब तीन सौ लड़कियां जबरदस्ती छीन ली गयीं। जब हमलोग थाटाल शिविर पहुँचे तो वहां के हिन्दुओं ने बताया कि हमारी पांच सौ लड़कियां हमलावर ले भागे हैं। थाटाल मे हमने देखा कि तमाम पठान '३०३' राइफल के साथ तैनात थे।

"थाटाल में करीब ५ हजार व्यक्ति जमा थे। यहां भी पठानों ने एक बार फिर हिन्दू लड़कियों को छांटा और उन्हें लेकर भाग गये। थाटाल झेल शहर से १५ मील दूर है। यहां पाकिस्तानी सेना के कई अफसर शिविर में आये थे। इन अफसरों में एक लेफ्टिनेंट कर्नल, एक कप्तान, कुछ वी० सी० ओ० और इस तरह कुल मिला कर ५० आदमी शामिल थे।

इन अफसरों व सैनिकों के चिह्न फौजी न थे। सबने काली टोपिया ओढ़ रखी थी और वर्दियां पहन रखी थीं। मैंने देखा, वे सब पंजाब रेजिमेंट के थे। हमने दो रातें इस शिविर मे गुजारी। हमलावारों मे से तीन मेरे शहर के रहने वाले थे। मैं उनसे अच्छी तरह परिचित था। उन्हें मुझ पर दया आ गयी थी। वे मुझे झेलम शिविर में छोड़ गये।"*

कश्मीर की लड़ाई बराबर १९४८ के अन्त तक जारी रही। इस बीच भारतीय सेना ने जिस शौर्य का परिचय दिया वह अनुपम रहा। कई बार भारतीयों ने अनेक स्थानों पर हमलावरों को सीमा के पार खदेड़ दिया। उन्हें पाकिस्तान की सीमा का अतिक्रमण करने की इजाजत न थी लेकिन पाकिस्तान ने कुछ भी उठा न रखा था। इस दशा का लाभ उठा कर पाकिस्तानी सीमा में घुस आते और मार-पीट कर फिर भाग जाते। यह क्रम बराबर जारी रहा। आज भी जारी है।

कश्मीर के युद्ध में भारत की वायु सेना ने जिस साहस का परिचय दिया, वह दुनिया के इतिहास में बेमिसाल है। उत्तर की ओर से पाकिस्तानियों के बढ़ाव के कारण लेह खतरे में पड़ गया था। मौसिम जाड़े का था। तेरह-साढ़े तेरह हजार फुट की ऊँचाई पर बसे इस क्षेत्र के पहाड़ी-मार्ग बर्फ से ढक गये थे। आवागमन की सुविधा न थी। भारतीय वायु सेना ने यहां सैनिक, रसद और सामान तेरह हजार फुट की ऊँचाई पर उड़ कर पहुँचाया। दुनिया के किसी

* कश्मीर-सम्बन्धी 'श्वेत-पत्र' से उद्धृत।

युद्ध में अब तक हवाई जहाजों से इस प्रकार काम नहीं लिया गया है। केवल इस गौरव गाथा पर ही भारत पूरी तरह अभिमान कर सकता है।

३० दिसम्बर, १९४७ को भारत सरकार ने कश्मीर का मसला राष्ट्रसंघ की सुरक्षा परिषद में पेश करने का निर्णय किया और दूसरे दिन यह सुरक्षा परिषद को निर्दिष्ट कर दिया गया। ६ जनवरी को सुरक्षा परिषद में कश्मीर का मामला पाकिस्तान के विरोध के बावजूद पेश हुआ। इस दिन ही सुरक्षा परिषद की बैठक स्थगित हो गयी। दूसरे ही दिन ४ हजार आक्रमणकारियों ने नौशेरा में भारतीय सेना पर आक्रमण किया। यहां भारतीय सेना एक मुसलमान ब्रिगेडियर उसमान के नेतृत्व में लड़ी। यह सच्चा भारतीय था। इसने आक्रमणकारियों के दांत खट्टे कर दिये। नौशेरा क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण पहाड़ी स्थानों पर भारतीय सेना ने कब्जा कर लिया और बहुत से आक्रमणकारियों को मौत के घाट उतार दिया। अंततः पूरे नौशेरा क्षेत्र पर भारतीय सेना ने कब्जा कर लिया। इस युद्ध के विजेता ब्रिगेडियर उसमान को ६ फरवरी, १९४८ को प्रधान मंत्री नेहरू ने बधाई का संदेश भेजा। बाद में ४ जुलाई को युद्ध-क्षेत्र की अग्रिम पंक्ति में सैनिकों को प्रोत्साहित करते समय यह वीर आक्रमणकारियों की गोली खाकर शहीद हो गया।

इस प्रकार भारतीय सेना बराबर जनवरी, १९४९ तक विजय प्राप्त करती रही। विजय के दौर में ही युद्ध-विराम का प्रस्ताव भारत ने स्वीकार कर लिया जैसे संयुक्त राष्ट्रसंघ के कश्मीर कमीशन ने पेश किया था, क्योंकि भारत का लक्ष्य शांतिपूर्ण ढंग से मामले को तय करना रहा और है।

१५ जनवरी, १९४८ को भारतीय प्रतिनिधि ने सुरक्षा परिषद में भारत की ओर से विचार-पत्र पेश किया जिसमें मुख्यतः इन पांच अभियोगों का उल्लेख था—(१) पाकिस्तानी प्रदेश से आक्रामकों को गुजरने दिया गया (२) पाकिस्तानी प्रदेश में अपना अड्डा बनाने की सुविधा हमलावरों को दी गयी (३) उनमें पाकिस्तान के प्रजाजन शामिल हैं; (४) ये आक्रमणकारी अधिकांश सैन्य सामग्री, यातायात के साधन और रसद (पेट्रोल) पाकिस्तान से ही प्राप्त करते हैं और (५) पाकिस्तान के अधिकारी इन आक्रमणकारियों को ट्रेनिंग देते हैं, उनका मार्ग-प्रदर्शन करते हैं और अन्य प्रकार से सहायता करते हैं।"*

भारतीय प्रतिनिधि ने अपने अभियोगों की पुष्टि में प्रमाण पेश किये और

---

* 'दि कश्मीर स्टोरी'—पृ० सं—५२

सुरक्षा परिषद से यह प्रार्थना की कि आक्रमणकारियों को सहयोग और सहायता देने से पाकिस्तान को रोका जाय।

इसी दिन पाकिस्तान के प्रतिनिधि जफरुल्ला खां ने एक लम्बा पत्र सुरक्षा परिषद में पेश किया जिसमें असंगत बातों का उल्लेख भरा पड़ा था। १६ और १७ जनवरी को उन्होंने बहस की और कहा कि केवल कश्मीर के मामले पर ही विचार नहीं किया जा सकता क्योंकि भारत के विभाजन के बाद से ही पाकिस्तान के विरुद्ध भारत द्वारा अपनायी जाने वाली आक्रमणात्मक नीति का यह एक अंग है।"

जफरुल्ला खां द्वारा सुरक्षा परिषद में प्रस्तुत आरोप-पत्र में भारत पर ये अभियोग लगाये गये थे—(१) भारत ने विभाजन की योजना को कभी हृदय से स्वीकार नहीं किया और जून, १९४७ से ही उसे तोड़ने का वह प्रयत्न कर रहा है, (२) भारत में मुसलमानों को मिटाने का पूर्वायोजित और विस्तृत आन्दोलन चल रहा है, (३) भारत के मुसलमानों की सुरक्षा, सुख-समृद्धि, धर्म, संस्कृति और भाषा गम्भीर संकट में है, (४) जूनागढ़, मानवदार और काठियावाड़ की कुछ अन्य रियासतें जो पाकिस्तानी प्रदेश का भाग थीं—भारत सरकार ने बल-पूर्वक अपने अधिकार में ले ली हैं और रियासतों के मुसलमानों को भारत की सशस्त्र सेना, अफसरों और गैर मुसलिम जनता ने जन और धन की बहुत हानि पहुँचायी है, (५) भारत सरकार ने जम्मू और कश्मीर को धोखे और बल प्रयोग से भारत में मिलाया है, (६) भारतीय वायुसेना, भारतीय संघ और जम्मू तथा कश्मीर के सशस्त्र दलों ने पाकिस्तान पर आक्रमण किया है, (७) भारत और पाकिस्तान के बीच विभाजन के सम्बन्ध में जो समझौता हुआ है, भारत ने उसे पूरा नहीं किया और उसने पाकिस्तान के रुपयों पर रोक लगा दी है, (८) भारत सरकार के दबाव के कारण रिजर्व बंक पाकिस्तान के बंक और मुद्राधिकारी का काम पूरा नहीं कर रहा है। यह दबाव पाकिस्तान की आर्थिक व्यवस्था विच्छिन्न करने के लिए डाला जा रहा है, (९) अब पाकिस्तान को भारत सैनिक आक्रमण की धमकी दे रहा है और (१०) पाकिस्तान पर किये गये इन विभिन्न आक्रमणात्मक कार्यों का उद्देश्य पाकिस्तान को समाप्त करना है।

उस समय आरम्भ होने वाले आरोप-प्रत्यारोप का यह क्रम आज तक कायम है। गत आठ वर्षों का इतिहास यही बताता है कि सुरक्षा परिषद में मामला सुलझने के बजाय उलझता ही है।

दोनों पक्षों की बहस सुन लेने के बाद सुरक्षा परिषद ने २० जनवरी,

१९४८ को एक प्रस्ताव स्वीकार किया जिसमें कहा गया था कि "सुरक्षा परिषद का एक कमीशन कायम किया जाता है। इसमें संयुक्त राष्ट्रों के तीन प्रतिनिधि होंगे। एक का चुनाव भारत करेगा और दूसरे का पाकिस्तान। तीसरा सदस्य इस प्रकार निर्वाचित दोनों सदस्यों द्वारा चुना जायगा।"* इस कमीशन को शीघ्रातिशीघ्र घटना-स्थल पर पहुँचने को कहा गया था। उसे यह अधिकार दिया गया था कि "कमीशन, उसके सदस्य, स्थानापन्न सदस्य, उनके सहायक और कर्मचारी मिलकर या अलग-अलग जहां जरूरी हो, वहा सफर कर सकेंगे, खास कर उन स्थानों में जहा घटनाएं घटी हैं और जिनके बारे में सुरक्षा समिति से शिकायत की गयी है।"

६ जुलाई, १९४८ को कश्मीर कमीशन कराची पहुँचा और वहां से १० जुलाई को भारत मे आया। इस समय तक कश्मीर में बराबर युद्ध जारी था।

घटना स्थल का निरीक्षण करके तथा परिस्थितियों को समझ कर कमीशन ने १३ अगस्त, १९४८ को यह प्रस्ताव स्वीकार किया—"कश्मीर कमीशन ने जम्मू और कश्मीर रियासत की स्थिति पर भारत और पाकिस्तान के प्रतिनिधियो द्वारा व्यक्त मतों पर भलीभाति विचार किया है। कश्मीर के झगड़े का अतिम रूप मे निपटारा करने के लिए, तथा भारत और पाकिस्तान की सरकारो की सहायता करने की अपनी कोशिश के निमित्त, कमीशन यह आवश्यक समझता है कि युद्ध अविलम्ब बन्द हो और स्थिति में सुधार हो; क्योंकि युद्ध से अन्तर्राष्ट्रीय शाति और सुरक्षा के संकटापन्न होने की संभावना है। अतः कमीशन भारत और पाकिस्तान की सरकारों के सम्मुख एक ही साथ निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित करने का निर्णय करता है—

"(क) भारत और पाकिस्तान की सरकारें इन बातों से सहमत हैं कि उनके अपने-अपने उच्च फौजी अधिकारी, अलग-अलग किन्तु एक ही समय पर युद्ध बन्दी का आदेश देंगे। यह आदेश उन सभी फौजों पर लागू होगा जो उनके मातहत जम्मू और कश्मीर रियासत मे युद्ध-रत होंगी। उक्त आदेश दोनों सरकारों द्वारा यह प्रस्ताव स्वीकार किये जाने के बाद चार दिनों के अन्दर शीघ्रातिशीघ्र व्यवहारिक दृष्टि से सुगम तिथि को या किसी ऐसी तिथि को जारी होगा जिस पर दोनों सरकारें सहमत हों।

"(ख) भारत और पाकिस्तान के उच्च फौजी अधिकारी इस पर सहमत हैं कि वे कोई ऐसी काररवाई न करेंगे जिससे उनके मातहत जम्मू और कश्मीर

---

* 'दि कश्मीर स्टोरी' पृ० सं० ६७

में काम करने वाली फौजों की सैनिक शक्ति बढ़ सकती हो। (इस प्रस्ताव में 'उनके मातहत काम करने वाली फौजों' में संघटित और असंघटित, युद्ध करने वाली या युद्ध में भाग लेने वाली सब प्रकार की फौजें शामिल समझी जायंगी)।

"(ग) भारत और पाकिस्तान के सेनाध्यक्ष वर्तमान प्रबंध में ऐसे आवश्यक स्थानीय परिवर्तन करने के लिए फौरन विचार-विमर्श करेंगे जिनसे युद्ध-बंधी कार्य सरल हो सकता हो।

"(घ) अपने विवेक के अनुसार और जहां वह व्यवहारिक समझेगा कश्मीर कमीशन पर्यवेक्षक नियुक्त करेगा जो कमीशन के मातहत रह कर दोनों सरकारों के फौजी अधिकारियों के सहयोग से युद्ध-बन्दी का आदेश व्यवहृत होते देखेगा।

"(ङ) भारत और पाकिस्तान की सरकारें इस बात से सहमत हैं कि वे जनता से यह अपील करेंगी कि वह आगे की बातचीत को लाभजनक बनाने के लिए अनुकूल स्थिति उत्पन्न करने तथा उसे कायम रखने में उनसे सहयोग करें।"

द्वितीय भाग

"प्रथम भाग के निर्देश के अनुसार युद्ध बन्द करने का प्रस्ताव स्वीकार करने के साथ ही दोनों सरकारों ने स्थायी संधि की शर्तें निर्धारित करने के लिए निम्नलिखित सिद्धांतों को आधार रूप में स्वीकार किया। संधि की विस्तृत शर्तें दोनों सरकारों के प्रतिनिधियों और कमीशन के बीच होने वाली वार्ता के दौरान में तय होंगी।"

"(क) (१) चूंकि जम्मू और कश्मीर रियासत के क्षेत्र में पाकिस्तान सेना की उपस्थिति के कारण उस समय की स्थिति देखते हुए अब काफी परिवर्तन हो गया है, जिस समय पहले-पहल पाकिस्तान के प्रतिनिधियों ने सुरक्षा परिषद में वक्तव्य दिया था, इसलिए पाकिस्तान की सरकार कश्मीर से अपनी सेना हटा लेना स्वीकार करती है;

"(२) पाकिस्तान सरकार जम्मू और कश्मीर रियासत से उन कबायलियों और पाकिस्तानियों को वापस बुलाने की पूरी कोशिश करेगी जो वहां के नागरिक नहीं हैं और लड़ने के उद्देश्य से वहां गये हैं।

"(३) अंतिम निर्णय होने तक पाकिस्तान की फौजों द्वारा खाली किये गये प्रदेश का शासन-प्रबन्ध कमीशन की देखरेख में स्थानीय अधिकारी करेंगे।

"( ख ) ( १ ) जब कमीशन भारत सरकार को यह सूचना दे चुकेगा कि इस प्रस्ताव के भाग 'दो' 'क' ( २ ) में उल्लिखित पाकिस्तान के नागरिक और कबायली हटा लिये गये हैं और इस प्रकार वह स्थिति समाप्त हो गयी है जिसके सम्बन्ध में सुरक्षा परिषद को भारत सरकार ने यह बतलाया था कि जम्मू और कश्मीर में भारत की सेनाओं को भेजने की आवश्यकता पड़ी और जब कमीशन यह भी सूचित कर देगा कि जम्मू और कश्मीर से पाकिस्तानी फौजें हटायी जा रही हैं, तब भारत सरकार यह स्वीकार कर लेगी कि उसकी अधिकतर फौजें कमीशन से तय हुए तरीके के अनुसार धीरे-धीरे रियासत से हटा ली जायं।

"( २ ) कश्मीर और जम्मू रियासत की वर्तमान स्थिति के लिए जब तक अंतिम रूप में समझौते की शर्तें स्वीकार नहीं कर ली जातीं, तब तक भारत सरकार युद्ध बंद होने के समय तक कायम मोर्चे के अन्दर कमीशन की सलाह से उतनी सेना रखेगी जितनी कानून और शांति बनाये रखने के काम में स्थानीय अधिकारियों को सहयोग देने के लिए आवश्यक समझी जायगी।

"( ३ ) भारत सरकार यह आश्वासन देने का उत्तरदायित्व लेगी कि जम्मू और कश्मीर रियासत की सरकार जनता को यह सूचित करने की यथाशक्ति सब कोशिशें करेगी कि कानून, शान्ति और व्यवस्था की रक्षा की जायगी, वह जनता के सब मानवीय और राजनीतिक अधिकार सुरक्षित रखने का वचन देगी।

"ग ( १ ) हस्ताक्षर होने के बाद अस्थायी संधि का पूरा मसविदा प्रकाशित किया जायगा, या एक विज्ञप्ति प्रकाशित की जायगी जिसमें दोनों सरकारों और कमीशन द्वारा स्वीकृत सिद्धांतों का मसविदा निहित होगा।"

तृतीय भाग

"भारत और पाकिस्तान की सरकारें अपनी इस इच्छा पर पुनः जोर देती हैं कि जम्मू और कश्मीर रियासत के भविष्य का निर्णय जनता की इच्छा के अनुसार किया जायगा। इसके लिए दोनों सरकारें यह स्वीकार करती हैं कि स्थायी संधि की शर्तें स्वीकृत हो जाने के बाद वे ऐसी निष्पक्ष और न्यायपूर्ण स्थिति उत्पन्न करने के सम्बन्ध में कमीशन के साथ विचार-विमर्श करेंगी जिसमें स्वतंत्रता पूर्वक राय जाहिर की जा सकती हो।"

भारत ने यह प्रस्ताव प्रायः स्वीकार कर लिया किन्तु पाकिस्तान टाल-मटोल करता रहा। कुछ मास बाद पेरिस में राष्ट्रसंघ का अधिवेशन हुआ।

वहां कश्मीर कमीशन ने पुनः दोनों देशों के प्रतिनिधियों से वार्ता की। उसके बाद कोलम्बियन प्रतिनिधि डाक्टर अलफ्रेडो नयी दिल्ली तथा कराची गये और भारत तथा पाकिस्तान की सरकारों से बातचीत करके पुनः वापस लौट गये। अंततः दोनों देशों की सरकारों ने पहली जनवरी, १९४९ से युद्ध-स्थगन प्रस्ताव को लागू करना स्वीकार कर लिया और इस प्रकार चौदह महीने की कारंरवाई के बाद कश्मीर में युद्ध ठंढा पड़ा।

युद्ध-स्थगन का प्रस्ताव, १३ अगस्त, १९४८ के प्रस्ताव पर आधारित था। पाकिस्तान ने पहले कश्मीर से अपनी सेना को हटाना स्वीकार नहीं किया था। इस हठ का त्याग उसने किया तो समझौता हो गया।

अगली कारंरवाई के लिए अथवा कश्मीर में जनमत संग्रह के लिए कश्मीर कमीशन ने ५ जनवरी, १९४९ को यह प्रस्ताव स्वीकार किया:—

"भारत और पाकिस्तान से क्रमशः २३ और २५ दिसम्बर को हुए पत्र-व्यवहार में दोनों सरकारों ने कमीशन के गत १३ अगस्त के प्रस्ताव के पूरक निम्न सिद्धान्तों को स्वीकार कर लिया है—

"१—कश्मीर का भारत मे मिलने का प्रश्न स्वतंत्र, निष्पक्ष और प्रजा-तंत्रात्मक ढंग से जनमत-संग्रह द्वारा तय किया जायगा।

"२—१३ अगस्त के प्रस्ताव मे वर्णित भाग १ और २ के अनुसार युद्ध-बंदी और विराम-संधि की व्यवस्था होने तथा जनमत-संग्रह की पूर्ण तैयारी के बाद ही जनमत लिया जायगा।

"३ ( क )—राष्ट्रसंघ के प्रधान मंत्री कमीशन की सहमति से दोनों पक्षों के विश्वासपात्र अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के व्यक्ति को जनमत के लिए प्रशासक नियुक्त करेंगे। यह प्रशासक नियमित रूप से कश्मीर और जम्मू सरकार द्वारा नियुक्त किया जायगा।

"( ख )—जनमत की व्यवस्था करने तथा उसे स्वतंत्र और निष्पक्ष बनाने के लिए प्रशासक कश्मीर सरकार से आवश्यक अधिकार प्राप्त करेगा।

"( ग )—प्रशासक को जनमत के लिए आवश्यक स्टाफ, सहायकों तथा निरीक्षकों को नियुक्त करने का अधिकार होगा।

"४ ( क )—१३ अगस्त के प्रस्ताव के भाग १ और २ की पूर्ति के बाद जब कमीशन को यह विश्वास हो जायगा कि राज्य में शांतिपूर्ण वातावरण उत्पन्न हो गया है, तब वह प्रशासक सहित भारत सरकार से भारतीय सेनाओं को हटाने के बारे में वार्ता करेगा। सेना हटाने का विचार करते समय राज्य की सुरक्षा और जनमत की स्वतंत्रता ध्यान में रखी जायगी।

"( ख )—१३ अगस्त के प्रस्ताव के भाग २ की धारा ( २ ) में वर्णित प्रदेशों से सेना हटाने के बारे में स्थानीय अधिकारियों की सलाह से कमीशन और प्रशासक अंतिम निश्चय करेंगे।

"५—रियासत के सब नागरिक और फौजी अधिकारी तथा रियासत के प्रमुख राजनीतिक दलों के लोग जनमत-संग्रह और उसकी तैयारी के काम में जनमत-प्रशासक की सहायता करेंगे।

६ ( क )—रियासत के वे सब नागरिक जो संघर्ष-काल में चले गये थे, वापस आने के लिए निमंत्रित किये जायंगे तथा वे लौटने और नागरिक रूप में समस्त अधिकारों का उपभोग करने को स्वतंत्र होंगे। वापस आने की सुविधा देने के लिए दो कमीशनों की नियुक्ति की जायगी जिनमे एक भारत और दूसरा पाकिस्तान द्वारा नामजद होगा। ये कमीशन जनमत-प्रशासक के निर्देशानुसार कार्य करेंगे। इस धारा को लागू करने में भारत और पाकिस्तान की सरकारें तथा जम्मू कश्मीर रियासत के सब मुल्की अधिकारी जनमत प्रशासक के साथ सहयोग करेंगे।

"( ख )—वे सब व्यक्ति ( रियासत के नागरिकों के अतिरिक्त ) जो १५ अगस्त, १९४७ के दिन व उसके बाद रियासत में किसी ऐसे काम के लिए प्रविष्ट हुए थे जो कानूनी नहीं रहा, रियासत से बाहर भेज दिये जायंगे।

"७—जनमत-प्रशासक की सहायता से जम्मू और कश्मीर के सब अधिकारी निम्न व्यवस्था के प्रबध का दायित्व लेंगे—

"( क )—जनमत गणना के समय मतदाताओं पर भय, धमकी, जबरदस्ती, रिश्वत या किसी अन्य प्रकार का प्रभाव न डाला जाय।

"( ख ) समस्त रियासत में न्यायसगत राजनीतिक आंदोलन पर किसी प्रकार की रुकावट न लगायी जाय। बिना मत, जाति, और पार्टी के भेद के रियासत की समस्त प्रजा अपने विचार प्रकट करने और रियासत के भारत व पाकिस्तान मे मिलने के प्रश्न पर सम्मति देने के लिए स्वतंत्र और सुरक्षित होगी। समाचार-पत्र भाषण और इकट्ठा होने की और रियासत मे कानून के अनुसार आने और जाने तथा यात्रा करने की स्वतंत्रता होगी।

"( ग ) समस्त राजनीतिक बंदी रिहा कर दिये जायगे।

"(घ) रियासत के समस्त भागों मे अल्पसंख्यकों की पर्याप्त रक्षा की जायगी और

"(ङ) किसी को दण्ड न दिया जायगा।

"८—जनमत-प्रशासक राष्ट्रसंघ के कमीशन के पास किसी ऐसे प्रश्न को

ज सकता है जिसके सम्बन्ध में उसे सहायता की आवश्यकता हो और कमीशन च्छानुसार जनमत-प्रशासक को अपनी ओर से ऐसे कार्य करने की अनुमति सकेगा, जिन्हें करने का अधिकार कमीशन में निहित होगा।

"६—जनमत-गणना समाप्त होने पर जनमत-प्रशासक इसकी रिपोर्ट मीशन को और जम्मू-कश्मीर सरकार को देगा। इसके बाद कमीशन सुरक्षा मिति के सामने यह प्रमाणित करेगा कि जनमत-गणना स्वतंत्र और निष्पक्ष ई या नहीं।

"१०—विराम संधि पर हस्ताक्षर हो जाने के बाद उपर्युक्त सुझावों की याख्या कमीशन के १३ अगस्त, १९४८ के प्रस्ताव के अनुसार कर दी जायगी। न परामर्शों में जनमत-प्रशासक भाग लेता रहेगा।

"सुरक्षा समिति इस बात की सराहना करती है कि भारत और पाकिस्तान १३ अगस्त, १९४८ के प्रस्ताव मे निर्दिष्ट समझौते के अनुसार अविलम्ब जनवरी की मध्यरात्रि से १ मिनिट पूर्व युद्ध रोकने का आदेश दिया।

"सुरक्षा समिति यह निश्चय करती है कि १३ अगस्त, १९४८ के प्रस्ताव ौर उपर्युक्त सिद्धान्तों के अनुसार प्राप्त उत्तरदायित्व को भारत और पाकिस्तान विलम्ब पूरा करें।"

५ जनवरी, १९४९ का यह प्रस्ताव कार्यान्वित नहीं किया जा सका। सके दो प्रमुख कारण हैं—(१) पाकिस्तान ने १३ अगस्त के प्रस्ताव के अनुसार श्मीर से अपनी सेना नहीं हटायी और (२) कश्मीर कमीशन ने असैनिकीकरण मामले में भारत और पाकिस्तान को समान स्तर पर रखना चाहा।

१३ अगस्त, १९४८ के प्रस्ताव के 'आजाद कश्मीर' (पूंछ-मुजफ्फराबाद ा क्षेत्र) सम्बन्धी अंश के सम्बन्ध में भारत ने पहले ही यह स्पष्ट कर दिया था ; वह 'आजाद कश्मीर' की सेना के अस्तित्व को नहीं स्वीकार कर सकता; योंकि वह पाकिस्तान द्वारा संचालित नियमित और सुसंघटित सेना है। किस्तान ने यह दावा कभी स्वीकार नहीं किया। इसके विपरीत वह कश्मीर से ारत की सेना को हटाने तथा 'कश्मीर मिलिशिया' को जो मुल्की अधिकारियों ा सहायता के लिए संघटित सशस्त्र पुलिस मात्र है, विघटित कराने के हठ पर ड़ा है।

अंतिम बार राष्ट्रसंघ के प्रतिनिधि डाक्टर ग्राहम ने फरवरी, १९५३ में नों देशों के प्रतिनिधियों से जेनेवा में वार्ता की। सुझाव यह रखा गया कि किस्तान की सीमा की ओर छः हजार सैनिक और भारत की सीमा की ओर ८ हजार सैनिक जनमत-गणना की तैयारी होने तक बने रहें। 'आजाद

कश्मीर' में 'आजाद कश्मीर सेना' बनी रहे। डाक्टर ग्राहम ने इस अवसर पर भी इन दो मूलभूत आधारों की उपेक्षा की—(१) कानूनी दृष्टि से और नैतिक दृष्टि से कश्मीर की सुरक्षा का उत्तरदायित्व भारत पर है, क्योंकि कश्मीर; भारत सरकार अधिनियम १९३५ तथा सन् १९४७ के भारत स्वातंत्र्य अधिनियम में की गयी उसकी व्याख्या के अनुसार जाब्ते से भारत में शामिल हुआ और (२) पाकिस्तान ने अन्तर्राष्ट्रीय विधान की उपेक्षा करते हुए सन् १९४७ में कश्मीर पर आक्रमण किया और कमीशन ने यह स्वीकार किया। इसके बावजूद भारत असैनिकीकरण के मामले में झुकने को तैयार था लेकिन आजाद कश्मीर सेना के विघटन को वह अनिवार्य मानता रहा और आज भी मानता है। इसका कारण भी भारत ने कभी नहीं छिपाया। 'आजाद कश्मीर क्षेत्र' ( पूंछ-मुजफ्फराबाद क्षेत्र ) कश्मीर का ही भाग है। आजाद कश्मीर की सेना नियमित सेना है और पाकिस्तान के फौजी अधिकारियों द्वारा वह संचालित है। पाकिस्तान में जेहाद का नारा बराबर लगाया जाता रहा है। अब तो यह और भी तीव्र हो गया है। आजाद कश्मीर की सेना किसी भी समय कश्मीर में घुस सकती है किंतु यदि कश्मीर मे पर्याप्त भारतीय सेना न रही तो भारत कश्मीर की रक्षा के सम्बन्ध मे अपना उत्तरदायित्व पूरा नहीं कर सकता; क्योंकि उसे आक्रांत क्षेत्र तक पहुँचने के लिए लगभग ३॥ सौ मील लम्बा बीहड़ पहाड़ी मार्ग तय करना होगा।

जेनेवा वार्ता भी असफल हो गयी। इसके पश्चात् कश्मीर के सम्बन्ध में समझौता करने का दायित्व दोनों देशों ने अपने ऊपर ले लिया लेकिन इसका परिणाम कुछ न निकला।

आपसी वार्ता का दौर आरम्भ हुआ। सबसे पहले लंदन मे महारानी एलिजाबेथ के राज्याभिषेक समारोह के अवसर पर भारत और कश्मीर के प्रधान मंत्रियों के बीच अनौपचारिक वार्ता हुई। "इसके बाद दोनों प्रधान मंत्रियों के दो और सम्मेलन हुए—पहला कराची मे ( २५ से २७ जुलाई, १९५३ ) और दूसरा नयी दिल्ली मे ( १७ से २० अगस्त ) हुआ और—दोनों देशों के बीच अनिर्णीत समस्याओं को सुलझाने की दिशा में निश्चित फैसले किये गये। इन समस्याओं में कश्मीर की समस्या भी शामिल थी।"*

नयी दिल्ली सम्मेलन की वार्ता की समाप्ति के बाद भारत के प्रधान मंत्री

---

* रिपोर्ट आव दि मिनिस्ट्री आव एक्सटरनल अफेयर्स—१९५३-५४ पृ० सं० ८-९

पण्डित जवाहरलाल नेहरू और पाकिस्तान के प्रधान मंत्री श्री मोहम्मद अली की ओर से २० अगस्त, १९५३ को संयुक्त विज्ञप्ति प्रकाशित की गयी जिसमें कश्मीर के सम्बन्ध में कहा गया था कि—"कश्मीर की समस्या पर विशेष रूप से विचार हुआ। दोनों प्रधान मंत्रियों का यह दृढ़ मत है कि यह समस्या कश्मीर राज्य की जनता की इच्छा के अनुरूप तय की जाय ताकि उसकी तरक्की को आगे बढ़ाया जा सके और जिन्दगी मे कमसे कम अड़चने पैदा हों। जनता की इच्छा जानने का सबसे अधिक व्यवहारिक तरीका निष्पक्ष जनमत-संग्रह है। इस प्रकार के जनमत-संग्रह का प्रस्ताव कुछ वर्ष पूर्व स्वीकार किया जा चुका है। कुछ प्रारम्भिक बातों के सम्बन्ध में समझौता न होने के कारण इस दिशा मे प्रगति न हो सकी। दोनों प्रधान मंत्री इस बात से सहमत है कि इन आरम्भिक बातों के सम्बन्ध मे समझौता करने के लिए उन्हें आपस में विचार-विमर्श करना चाहिये। इन समझौतों पर अमल करना होगा और दूसरा कदम जनमत-संग्रह प्रशासक की नियुक्ति होगा।

"किसी प्रकार का कार्यक्रम निश्चित करने के उद्देश्य से यह तय हुआ कि अप्रैल, १९५४ के अन्त तक जनमत-प्रशासक नियुक्त कर दिया जाना चाहिये। इससे पूर्व उपर्युक्त आरम्भिक बातो के सम्बन्ध मे निर्णय हो जाना चाहिये और उन्हें कार्यान्वित करने की कारवाई की जानी चाहिये। इस उद्देश्य को ध्यान मे रखते हुए प्रधान मंत्रियों को सलाह देने के निमित्त विशेषज्ञों की समितिया संघटित की जानी चाहिये। जाब्ते से जनमत-प्रशासक की नियुक्ति होने और जम्मू तथा कश्मीर सरकार द्वारा कार्य-भार सुपुर्द किये जाने पर वह स्थिति का अध्ययन करेगा और उस पर अपनी रिपोर्ट देगा। तब वह पूरे प्रदेश मे निष्पक्ष जनमत-संग्रह की तैयारी के लिए जिन प्रस्तावों को उचित समझेगा, उन्हे पेश करेगा और इसके लिए जो मुनासिब कदम होगा, उठायेगा।"

इस विज्ञप्ति के प्रकाशन के बाद भी मतभेद नहीं पटा। कुछ निश्चयों की व्याख्या तथा उनके सम्बन्ध मे हुई बातों को लेकर नयी जिच उत्पन्न हो गयी और अक्टूबर, १९५४ तक इसके सम्बन्ध में दोनों प्रधान मंत्रियों के बीच लिखा-पढ़ी चलती रही * पर कोई निष्कर्ष न निकला।

---

* भारत के परराष्ट्र मंत्रालय द्वारा प्रकाशित—'कश्मीर—मीटिंग्स एण्ड करेसपांडेंस बिटविन दि प्राइम मिनिस्टर्स आव इण्डिया एण्ड पाकिस्तान' (जुलाई, १९५३—अक्टूबर, १९५४)

"जब कि दोनों देशों के बीच के अनिर्णीत विवादों को समाप्त करने के लिए नयी दृष्टि से जोरदार काररवाई की जा रही थी, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे भारत और पाकिस्तान पर गहरा प्रभाव डालने वाली नहीं घटनाएं जन्म ले रही थीं।.....अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को सैनिक सहायता दी जाने के सम्बन्ध में चल रही वार्ता ने नयी परिस्थिति उत्पन्न कर दी जिसने कश्मीर की समस्या तथा दोनों देशों के बीच की अन्य समस्याओं पर प्रभाव डाला।.....इस वार्ता के फलस्वरूप पाक-अमेरिका सैनिक सहायता करार सम्पन्न हुआ। २५ फरवरी, १९५४ को संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के राष्ट्रपति ने ने इस सबंध में एक वक्तव्य दिया और भारत के प्रधान मंत्री को पत्र भी लिखा।"† भारत के प्रधान मंत्री ने घोषित किया कि पाक-अमेरिका सैनिक सधि से सारे दक्षिण-पूर्वी एशिया की शांति पर खतरा पहुँचेगा और इस क्षेत्र मे सैनिक सतुलन बिगड जायगा। अमेरिका के राष्ट्रपति ने भारत को यह आश्वासन दिया कि अमेरिका से प्राप्त शस्त्रास्त्रों का उपयोग पाकिस्तान को भारत के विरुद्ध न करने दिया जायगा और उन्होंने ने यह इच्छा भी प्रकट की कि जिन शर्तों पर पाकिस्तान ने सैनिक सहायता प्राप्त की है, उन्हीं शर्तों पर भारत भी अमेरिका से सैनिक सहायता प्राप्त कर सकता है।‡

इसके बाद स्थिति क्रमशः बिगडती गयी। सन् १९५६ के आरम्भ के तीन मास मे पाकिस्तानी पुलिस और सैनिकों ने कई स्थानों पर भारत की सीमा का उलघन किया और गोलिया चलायीं। इस बीच उसे अमेरिका से काफी सैनिक सहायता मिल चुकी थी। इस ओर भारत के प्रधान मंत्री पंडित नेहरू ने कई बार पाकिस्तान का ध्यान आकृष्ट किया लेकिन कोई परिणाम न निकलता देख कर अप्रैल, १९५६ को उन्होंने नयी दिल्ली मे समाचार-पत्र संवाददातों के समक्ष यह घोषित किया कि 'जनमत-संग्रह का सारा आधार बदल गया है, अतः भारत अब कश्मीर में जनमत-संग्रह को व्यवहारिक और सम्भव नहीं समझता।' प्रधान-मत्री की इस घोषणा का सारे देश ने स्वागत किया।

इस लम्बी अवधि के दौरान मे कश्मीर और भारत के पारस्परिक संबध और कश्मीर को आंतरिक स्थिति मे भी काफी परिवर्तन हुए।

"१९४८ में कश्मीर तथा अन्य राज्यों की स्थिति यह थी कि वे तीन विषयों—परराष्ट्र सम्बन्ध, प्रतिरक्षा तथा संवहन साधन के सम्बन्ध में भारत

---

† परराष्ट्र मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट, १९५३–५४—पृ० सं० ११

‡ वही— पृ० सं० ५२

में शामिल हुए थे। धीरे, धीरे कश्मीर को छोड़कर सभी राज्य भारत के साथ एक सूत्र में बंध गये।

"किन्तु यह बात जम्मू और कश्मीर के सम्बन्ध में नहीं हुई। इसके कई कारण थे। एक तो यह कि संयुक्त राष्ट्रसंघ के सम्मुख स्थिति अस्थिर थी। दूसरे, भारत ने प्रारम्भ से ही यह स्वीकार किया था कि कश्मीर की स्थिति भी कुछ भिन्न है। तीसरे, भारत ने आरम्भ से ही बार-बार यह दोहराया था कि जम्मू और कश्मीर के सम्बन्ध में, वहां के लोगों की सहमति के बिना कोई कदम नहीं उठाया जायगा। इसलिए कश्मीर इन तीन विषयों के सम्बन्ध मे ही भारत में सम्मिलित रहा।

"नवम्बर, १९४९ मे यह स्थिति समाप्त हो गयी। हम (भारत) संविधान बना रहे थे और इस प्रश्न को अस्पष्ट नहीं छोड़ा जा सकता था। हमें (भारत को) अपने संविधान में जम्मू और कश्मीर के सम्बन्ध में कुछ कहना था। फलतः इस राज्य के सम्बन्ध में हमारे (भारत के) संविधान में एक असाधारण उपबंध बनाया गया। यह उपबंध भाग २१ के अनुच्छेद ३७० (अस्थायी तथा संक्रमणकाल-सम्बन्धी उपबंध) मे है।

".....इसके बाद २६ जनवरी, १९५० को राष्ट्रपति ने एक आदेश जारी किया जिसमें उन विषयों और संविधान के उन भागों की व्याख्या की गयी जो जम्मू और कश्मीर के सम्बन्ध मे लागू होने चाहिये थे।"*

भारत और कश्मीर की आपसी बातचीत के अनुसार यह तय हुआ कि "जम्मू तथा कश्मीर राज्य भारतीय गणतंत्र का एक वैधानिक भाग अथवा इकाई है, इसलिए भारत का एक भाग है। भारतीय नागरिकता के पूरे नियम वहां लागू माने गये।" भू-स्वामित्व के सम्बन्ध में यह तय हुआ कि "राज्य की विधानसभा को राज्य के पुराने निवासियों के अधिकारों तथा सुविधाओं, विशेषतः अचल सम्पत्ति प्राप्त करने के सम्बन्ध में व्याख्या तथा विनियमन करने का अधिकार होगा।" नागरिकता-सम्बन्धी निश्चय के बारे में यह तय हुआ कि "नागरिकता-सम्बन्धी कानूनों में जम्मू तथा कश्मीर के उन स्थायी निवासियों के वापस आ सकने की व्यवस्था की जाय जो सन् १९४७ के उपद्रवों या उससे पहले डर के कारण पाकिस्तान में चले गये थे और वापस नहीं लौट सके। यदि वे वापस आ जांय तो उन्हें नागरिकता के पूर्ण अधिकार तथा सुविधाएं मिलनी चाहिये।"

---

* भारत की लोकसभा में नेहरू जी का भाषण, २४ जुलाई, १९५२

आधारभूत अधिकारों के सम्बन्ध में और भारत के सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के बारे में यह निश्चित हुआ कि "भारतीय संविधान के अनुच्छेद १३१ के अन्तर्गत आने वाले झगड़े तथा आधारभूत अधिकारों-सम्बन्धी मामले सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र में होने चाहियें। राज्य में फौजी और दीवानी मामलों-सम्बन्धी अपीलों का निर्णय करने का अधिकार भारत के सर्वोच्च न्यायालय को होना चाहिये।"

कश्मीर के प्रधान के सम्बन्ध में यह निश्चित हुआ कि "( १ ) राज्य के विधान मंडल द्वारा सिफारिश प्राप्त व्यक्ति, राष्ट्रपति की स्वीकृति से राज्य का प्रधान होगा, ( २ ) राष्ट्रपति की स्वीकृति की अवधि तक राज्य का प्रधान अपने पद पर आरूढ़ रहेगा, ( ३ ) राष्ट्रपति को त्याग-पत्र देकर, राज्य का प्रधान, अपने पद से इस्तीफा दे सकता है, और ( ४ ) सांधारणतः राज्य का प्रधान ५ वर्ष तक पदारूढ़ रहेगा।" राष्ट्रपति के अधिकार के सम्बन्ध में यह स्वीकार किया गया कि "मृत्युदंड को रोकने और रद्द करने का अधिकार भारत के राष्ट्रपति को प्राप्त होगा।"

भारत के संविधान में, विशेष रूप से अनुच्छेद ३५२ में निर्दिष्ट संकट-कालीन अधिकार के सम्बन्ध मे यह स्वीकार किया गया कि "संविधान का अनुच्छेद ३५२, जम्मू और कश्मीर राज्य पर भी लागू होगा, किंतु इसके प्रथम अनुच्छेद मे निम्नलिखित शब्द जोड़ दिये जाय—

"किन्तु आंतरिक उपद्रवों के सम्बंध मे राज्य सरकार की प्रार्थना पर या उसकी सहमति से।"

ये निर्णय सन् १९५२ के उत्तरार्द्ध मे कश्मीर के शिष्टमंडल तथा भारत सरकार के बीच हुई आपसी वार्ता द्वारा तय हुए किन्तु भारत ने इन्हें तभी लागू माना जब कश्मीर की संविधान सभा ने इनकी पुष्टि कर दी। सन् १९५३-५४ में इन निर्णयों पर कश्मीर की संविधान सभा ने अपनी स्वीकृति की मुहर लगा दी। भारत ने १४ मई, १९५४ को 'कंस्टीट्यूशन ( अप्लीकेशन टु जम्मू एण्ड कश्मीर ) आर्डर, १९५४ जारी किया जिसके अनुसार उपर्युक्त अधिकारों की दृष्टि से जम्मू और कश्मीर राज्य भी उसके अन्तर्गत आ गया। इस प्रकार भारत-कश्मीर का सम्बन्ध और भी दृढ़ हुआ। यों भी कश्मीर की संविधान सभा स्वयं कश्मीर को भारत का अविच्छिन्न अंग घोषित कर चुकी है।

"१४ मई, १९५४ का उपर्युक्त आदेश जारी होने तक भारत की संसद को जम्मू और कश्मीर में कर लगाने का अधिकार प्राप्त न था। इसका

अधिकार प्राप्त करने के लिए जो अब प्राप्त हो चुका है, पार्लिमेंट ने...एक कानून बनाया।"* इस समय भारत और कश्मीर का वित्तीय सम्बन्ध संतोष-जनक आधार पर आधरित है और कश्मीर भी अन्य राज्यों की भांति भारत सरकार द्वारा संचालित निर्माणकारी योजनाओं से लाभान्ति हो रहा है।

२० अगस्त, १९५३ की नेहरू-अली संयुक्त घोषणा के कुछ ही दिनों पूर्व कश्मीर में आश्चर्य-जनक घटना आकस्मिक रूप से घट चुकी थी और यह थी प्रधान मंत्री शेख अब्दुल्ला के मन्त्रिमण्डल के विघटन की काररवाई और उनकी गिरफ्तारी। इस घटना के वास्तविक कारणों पर अभी सम्भवतः प्रकाश नही पड़ा है और वे कश्मीर सरकार के पास सुरक्षित हैं। फिर भी जो बातें प्रकाश में आ चुकी हैं, स्थिति पर प्रकाश डालने के लिए वे पर्याप्त है।

सन् १९५३ के आरम्भ से ही कश्मीर के प्रधान मंत्री शेख अब्दुला ने विचित्र रुख धारण कर लिया था। शासन की सारी काररवाई ठप सी पड़ने लगी थी। उनके विदेशी सलाहकारों ने सम्भवतः उनके दिमाग मे जहर भर दिया था। मंत्रिमण्डल के मंत्रियों की संयुक्त जिम्मेदारी तमाशा मात्र रह गयी थी। राजकीय सिद्धातों की हत्या हो रही थी। शासन मे भ्रष्टाचार व्याप्त हो गया था। जनता की आर्थिक स्थिति दिन प्रतिदिन अधिकाधिक दयनीय होती जा रही थी। वजीर कमेटी की रिपोर्ट की सिफारिशें ठप पड़ी थीं। जनता मे असंतोष बढ़ता जा रहा था। इन सबसे बड़ी बात यह थी कि शेख अब्दुल्ला का रवैया तानाशाह के रवैये सा हो गया था। उनके भाषणों मे कही गयीं गैरजिम्मेदारी से भरी बातें जिनमे राज्य के घोषित सिद्धांत के विरुद्ध आत्म निर्णय के हवाई अधिकार का उल्लेख होता, विघटनकारी शक्तियों के हाथ मजबूत कर रहीं थीं। साम्प्रदायिक जजबात उभाड़े जाने लगे थे। मंत्रिमंडल के सदस्यों ने बार-बार इस ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया लेकिन शेख अबदुल्ला ने कोई ध्यान न दिया। भारत से जो समझौता हुआ था और जिसका जिक्र पहले किया जा चुका है, उसकी भी वह उपेक्षा कर रहे थे। इससे तनाव क्रमशः बढ़ता गया और अगस्त, १९५३ के प्रथम सप्ताह मे वह अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया।

७ अगस्त, १९५३ को कश्मीर मंत्रिमंडल की बैठक में बहुत गरमागरम बहस हुई। शेख अब्दुल्ला और उनके साथी अफजल बेग एक ओर थे और

---

* भारत सरकार के गृह मंत्रालय का वार्षिक प्रतिवेदन १९५४-५५—पृ० सं २

उप-प्रधान मंत्री बख्शी गुलाम मोहम्मद तथा उनके दो साथी गिरधारी लाल डोगरा और शामलाल सर्राफ दूसरी ओर। शेख साहब ने बड़े तैश में शामलाल सर्राफ ने त्याग-पत्र मांगा। यहीं बात बढ़ गयी और शामलाल सर्राफ ने त्याग-पत्र देने से इनकार कर दिया। उनके अन्य साथियों ने भी यही किया।

इसी दिन अर्थात् ७ अगस्त, १९५३ को बख्शी गुलाम मोहम्मद, गिरधारी लाल डोगरा और शामलाल सर्राफ ने संयुक्त रूप से प्रधान मंत्री शेख अबदुल्ला के पास एक ज्ञापक भेजा जिसमें उन पर प्रधान मंत्री के रूप में अपनी जिम्मेदारियों की निरंतर उपेक्षा करने का दोषारोप किया गया था।

ज्ञापक में तीनो मंत्रियों ने अपना यह विचार प्रकट किया था कि "स्पष्ट, योग्य और स्वस्थ प्रशासन की दृष्टि से मंत्रिमंडल जिसमें उद्देश्य और कार्य की दृष्टि से एकता का अभाव है, अपने प्रति जनता का विश्वास खो बैठा है। अपनी योजनाओं और कार्य-क्रम के संचालन की दृष्टि से एकरूपता की भावना का अभाव सरकार में रहा है। प्रशासन की क्षमता में ह्रास के इस क्रम को रोकने की महती आवश्यकता की ओर हमने बार-बार अपना ध्यान आकृष्ट किया। अत्यधिक आर्थिक संकट का सामना करने वाले विभिन्न वर्गों के लोगों की भावना का प्रतिनिधित्व करने चेष्टा हमने की। इनकी दशा को सुधारने के उपायों पर तत्काल अमल करने की आवश्यकता पर भी हमने जोर दिया। हम सखेद यह कहते हैं कि आपने न केवल हमारे विचारों की अवहेलना की बल्कि वजीर कमेटी की सिफारिशों की भी उपेक्षा की जो जनता की अनेक मांगों की जांच करने के लिए सरकार की ओर से नियुक्त की गयी थी।"

कश्मीर-भारत सम्बध के विषय में दिल्ली समझौते का प्रमुख प्रणेता शेख अब्दुल्ला को बताते हुए ज्ञापक में कहा गया था—"आपकी कारवाई की पुष्टि, सरकार और नेशनल काफ्रेंस, भारत की संसद और कश्मीर की संविधान सभा ने एकमत से की। लेकिन आपने इसे लागू करने में जो हमारी नीति का मुख्य आधार है, न केवल जान बूझकर विलम्ब किया, बल्कि उद्देश्य-पूर्ण तरीके से सार्वजनिक रूप से इसका तिरष्कार भी किया। इस प्रकार आपने भारत के साथ कश्मीर के सम्बध में दरार डालने की कोशिश निरंकुशता-पूर्ण ढंग से की। यद्यपि यह सही है कि अपने भविष्य का निर्णय करने का अधिकार अंततः जनता को ही प्राप्त है, तथापि आप द्वारा असंतोष और उलझन की जो स्थिति आज उत्पन्न की जा रही है, उसका परिणाम अनिवार्यतः आत्म-निर्णय के अधिकार के उपभोग की दशा के लिए घातक होगा। इन परिस्थितियों में यह यह अवश्यम्भावी प्रतीत होता है कि स्वार्थी विदेशी शक्तियां अपने स्वार्थों की

पूर्ति के लिए इनका अनुचित लाभ उठा सकती हैं। मिर्जा अफजल बेग निरंतर संकीर्ण धार्मिक और साम्प्रदायिक नीति का अनुसरण करते रहे हैं और दुर्भाग्य-वश मंत्रिमंडल में आप उनकी नीति और जनता में उनके कार्यों का समर्थन करते रहे हैं।"

इस ज्ञापक की एक प्रतिलिपि तीनों मंत्रियों ने सदरे रियासत युवराज कर्णसिंह के पास भेजी। सदरे रियासत ने दूसरे दिन इसका हवाला देते हुए यह पत्र शेख अब्दुल्ला को लिखा था—"आपको याद होगा कि आज आपसे हुई मुलाकात के समय मैंने मंत्रिमंडल में विद्यमान मतभेद पर गहरी चिंता प्रकट की थी। सरकार की नीति को कार्यान्वित करने के लिए मंत्रिमंडल के सदस्यों में सद्भावना तथा उद्देश्यों के प्रति एकता की भावना तत्काल कायम करने की आवश्यकता पर भी मैंने जोर दिया था। फिर भी आप मुझे यह आश्वासन देने मे असमर्थ रहे कि ये अत्यन्त गहरे मतभेद मिट सकते है।

"मंत्रिमंडल मे यह संघर्ष काफी समय से राज्य की जनता के दिमाग में उलझन और आशंका उत्पन्न करता रहा है। इस समय अभूत-पूर्व संकट उत्पन्न हो गया है। परिणामतः मंत्रिमंडल के तीन सदस्यों ने आपके पास ज्ञापक भेज कर जिसकी प्रतिलिपि मेरे पास भी भेजी गयी है, आपके कार्यों और आपकी नीति से पूर्ण असहमति प्रकट की है। मंत्रिमंडल के प्रति जनता का विश्वास नष्ट हो गया है। यह दस्तावेज स्पष्टतः दर्शाता है कि मत्रिमंडल में मतभेद इस सीमा तक पहुँच गया है कि राज्य की एकता, सम्पन्नता और सुस्थि-रता सकटापन्न हो उठी है।

"आज की मुलाकात के समय मैंने आपको यह सुझाव दिया था कि सायं-काल मेरे निवास-स्थान पर मंत्रिमंडल की आवश्यक बैठक हो ताकि राज्य मे दृढ़, एकमत और योग्य सरकार की स्थापना की सम्भावनाओं को खोज निका-लने के लिए हम संयुक्त रूप से कोशिश कर सकें। मुझे खेद है कि आपने से इस सुझाव से पिंड छुड़ाने की कोशिश की।

"इन परिस्थितियों में राज्य के प्रधान की हैसियत से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए बाध्य हुआ हूँ कि अब वर्तमान मंत्रिमंडल पदारूढ़ नहीं रह रह सकता, अतः मैं सखेद आपको यह सूचित करता हूँ कि मैंने आपका मंत्रि-मंडल भंग कर दिया है। आदेश की प्रतिलिपि इस पत्र के साथ संलग्न है।"

यह पत्र शेख अब्दुल्ला को मिला या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि सदरे रियासत से मुलाकात करने के बाद ही वह अपने कुछ विश्वस्त साथियों के साथ गुलमर्ग रवाना हो चुके थे।

९ अगस्त, १९५३ को विधान सभा के बहुसंख्यक दल के उपनेता की हैसियत में बख्शी गुलाम मोहम्मद को सदरे रियासत ने मंत्रिमंडल बनाने के लिए आमन्त्रित किया। इसी दिन सूर्य की किरणों के फूटने से पहले जब कि सारा श्रीनगर गहरी नींद में सोया था, सदरे रियासत के निवास-स्थान मे प्रकाश जल रहा था। एक कक्ष मे मुश्किल से आध दर्जन व्यक्ति उपस्थित थे। यहीं प्रातः ४ बजकर ३५ मिनट पर बख्शी गुलाम मोहम्मद ने प्रधान मंत्री-पद की शपथ ग्रहण की। सिर्फ पांच मिनट के अन्दर कश्मीर की सरकार बदल गयी और इसके आदेश से शेख अब्दुल्ला कैद कर लिये गये। आप अब भी जेल में सरकार के मेहमान है और जम्मू तथा कश्मीर राज्य की बख्शी सरकार भारत की सहायता से निरन्तर प्रगति पथ पर आगे बढ़ रही है। आपके नेतृत्व मे ही कश्मीर की संविधान सभा तथा तथा नेशनल काफ्रेंस ने जम्मू और कश्मीर को भारत का अविभाज्य अंग मानते हुए घोषित किया था कि 'यहां जनमत-संग्रह की कोई आवश्यकता नहीं है। जनता द्वारा चुनी हुई संविधान सभा का यह फैसला है कि कोई भी ताकत कश्मीर को भारत से अलग नहीं कर सकती।'

———

# भारत-पाकिस्तान समझौता

**पूंजी के बंटवारे का समझौता— पेंशनों-सम्बन्धी समझौता—अविभाजित भारत की सैनिक सामग्री में पाकिस्तान का हिस्सा—बीमा कम्पनियों, डाकखानों में जमा रकमों, ट्रस्टों की सम्पत्ति के स्थानान्तरण, शैक्षणिक, सांस्कृति और धार्मिक संस्थाओं, ग्रंथ साहब तथा अन्य धार्मिक ग्रंथों के स्थानान्तरण, लाइ-सेंसशुदा हथियारों की वापसी, तथा ठीकेदारों के बिल की अदायगी से सम्बंधित समझौते।**

कश्मीर में युद्ध छिड़ गया लेकिन उसने व्यापक रूप धारण नहीं किया। भारत और पाकिस्तान, दोनों देश विभाजन के बाद के कम से कम अढ़ाई वर्षों तक पूंजी और ऋण के बंटवारे तथा इससे सम्बंधित जिम्मेदारियाँ पूरी करने में लगे रहे। विभाजन-जन्य प्रश्नों पर सन् १९४७ और १९४९ के दौरान में दोनों देशों के बीच अनेक समझौते हुए जिनमें आज भी कई विवाद के प्रश्न बने हुए हैं।

पाकिस्तान से पूंजी के सम्बन्ध में हुए समझौते पर भारत के गृह मंत्री सरदार पटेल ने केन्द्रीय विधानसभा में १२ दिसम्बर, १९४७ को वक्तव्य दिया था जिसमें समझौते की शर्तों का उल्लेख विस्तृत रूप से किया गया था। इसके अनुसार बंटवारे के दिन अविभाजित भारत सरकार की रोकड़ बाकी अनुमानतः ४ सौ करोड़ रुपये से कुछ कम मानी गयी थी। इसमें 'कैश बलैंस इनवेस्टमेंट एकाउण्ट' के अन्तर्गत सिक्योरिटिया भी शामिल थीं। समझौते द्वारा पाकिस्तान का हिस्सा ७५ करोड़ तय हुआ। इसके सम्बन्ध में तय हुआ कि 'बीस करोड़ रुपया जो १५ अगस्त, १९४७ को पाकिस्तान सरकार के लिए पहले ही उपलब्ध किया जा चुका था तथा वह रकम जो इस तारीख तक सरकार के खाते में खर्च की गयी थी, काट ली जायगी।'

पाकिस्तान के 'मुद्रा प्रणाली तथा रिजर्व बंक आदेश, सन् १९४७' के अनुसार पौण्ड पूंजी में पाकिस्तान का हिस्सा प्रचलित नोटों का वह अनुपात माना गया जो पाकिस्तान उपनिवेश में पाकिस्तान सिक्योरिटीज से उसके विस्तार के बाद देने के पश्चात् निकलने वाला था। समझौते के अनुसार यह

भी तय हुआ कि "मांग की जाने पर, भारत को ३१ दिसम्बर, १९६७ तक निश्चित सीमा में पाकिस्तान के हाथ अवरुद्ध पौण्ड, रुपयों में बेचना चाहिये।"

भारत सरकार ने पुरानी सरकार की सारी देनदारी की जिम्मेदारी अपने पर ले ली लेकिन शर्त यह थी कि 'पाकिस्तान भी समुचित योगदान दे।' तय हुआ था कि पाकिस्तान का हिस्सा उस भौतिक और आर्थिक सम्पत्ति के मूल्य को लेकर स्थिर होगा जो पाकिस्तान सरकार के हिस्से में पड़ी, अथवा जो पाकिस्तान सरकार ने ली।

दोनों उपनिवेशों द्वारा ली गयी सम्पत्ति का मूल्य आंकने के सम्बन्ध में तय हुआ कि "खाते मे दर्ज मूल्य स्वीकार किया जाय।" सामरिक महत्त्व की रेलों के सम्बन्ध में खाते मे दर्ज मूल्य दोनों की सहमति से ५० प्रतिशत के लगभग कम कर दिया गया।

पाकिस्तान द्वारा भारत को ऋण चुकता किये जाने के सम्बन्ध मे यह तय हुआ कि "मूलधन तथा सूद को मिला कर कुल रकम भारतीय रुपयों में ५० समान वार्षिक किस्तों मे चुकायी जाय।" ये किस्ते प्रत्येक वर्ष १५ अगस्त तक अदा करने का फैसला हुआ किन्तु साथ ही यह भी निश्चित हुआ कि "बटवारे की तारीख से पहले चार वर्षों के लिए कोई किस्त अदा न की जायगी।" सूद की दर वही मानी गयी जो बंटवारे की तारीख से पहले के दो वर्षों मे भारत सरकार को उन रुपयों तथा पौण्ड सिक्योरिटियों पर प्राप्त हुई 'जिनके प्रचलन की अवधि १५ वर्ष या इससे अधिक बाकी है।'

पेंशनों के सम्बन्ध मे दोनों देशों ने उपर्युक्त समझौते के अन्तर्गत यह स्वीकार किया कि "प्रत्येक उपनिवेश उन पेंशनों की रकमे चुकाता रहेगा जो उसके इलाके मे अब तक चुकता की जाती हैं और भारत समुद्र पार के देशों मे दी जाने वाली पेंशने भी चुकाता रहेगा। कुल पेंशनों का मूल्य जिनमें अंशतः अर्जित पेंशने तथा जारी पेंशनें, दोनों सम्मिलित हैं, पूंजीभूत कर लिया जायगा और उसकी देनदारी अनावृत्तऋण के बटवारे के लिए तय हुए अनुपात के अनुसार बाट ली जायगी। एक उपनिवेश द्वारा चुकायी गयी पेंशनों का पूंजीभूत मूल्य, उसमे इस हिस्से से जितना कम या अधिक होगा, उस हिसाब से आर्थिक समझौते में उसका लेखा-जोखा कर लिया जायगा।"

अविभाजित भारत की सैनिक सामग्री के बारे मे पाकिस्तान का हिस्सा भारत तथा पाकिस्तान मे मौजूदा स्टाक का एक तिहाई अथवा निश्चित आधार के हिसाब से निकाले गये दोनों उपनिवेशों के काम चलाने लायक भाग तथा 'रक्षित' की आवश्यकताओं का एक तिहाई—दोनों में जो भी कम हो,

माना गया। तय हुआ कि इसके बाद "यदि कोई सामग्री बची रही तो वह भारत की होगी।" शस्त्रास्त्र तैयार करने वाले कारखानों का स्थूलतः किसी तरह विभाजन न करना स्वीकृत हुआ और खाते में दर्ज मूल्य के अनुसार उनकी देनदारी भारत ने स्वीकार की। भारत ने पाकिस्तान के लिए छः करोड़ रुपया उपलब्ध करना भी स्वीकार किया जिसके सम्बन्ध में तय हुआ कि यह "शस्त्रास्त्र तैयार करने के कारखाने तथा सिक्योरिटी प्रेस सदृश कुछ अनिवार्य आवश्यकताएं पूरी करने के लिए जरूरत महसूस होने पर तलब किया जा सकता है।" इस रकम को भारत के नाम पाकिस्तान के ऋण में जोड़ना तय हुआ।

इसके पश्चात् १८, १९ और २० दिसम्बर, १९४७ को नयी दिल्ली में भारत और पाकिस्तान की सरकारों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन हुआ जिसमें बीमा कम्पनियों, डाकखाने में जमा रकमों, कैस सर्टिफिकेट, ट्रस्टों की सम्पत्ति के स्थानान्तरण, शैक्षिक, सांस्कृतिक और धार्मिक संस्थाओं, ग्रंथ साहब तथा अन्य धार्मिक ग्रंथों के स्थानान्तरण, लाइसेंसशुदा शस्त्रास्त्रों की वापसी, ठीकेदारों को बिना चुकाये हुए बिलों की अदायगी के सम्बन्ध में दोनो देशों के बीच समझौता हुआ।

बीमा कम्पनियों के सम्बंध मे "(१) यह मान लिया गया कि जिन बीमा कम्पनियों ने अपने प्रधान कार्यालय भारत में स्थानान्तरित कर लिये हैं वे भारत की मार्फत रिजर्व बंक को लिख देगी कि उनके पास उनकी जो स्थायी रकम जमा है, उसकी १५ प्रतिशत रकम को उस समय तक पाकिस्तान में बसने वाले बीमादारों के हिसाब में मान लिया जाय जब तक कि बीमा सुपरिण्टेण्डेण्ट इस बात का निर्णय न कर ले कि पाकिस्तान में बसने वाले व्यक्तियों की, बीमा के हिसाब से, इन कम्पनियों को कितनी रकम देनी हैं। (२) बीमा सुपरिण्टेण्डेण्ट से कहा गया कि यदि सम्भव हो तो इन रकमों के आकड़े १५ जनवरी तक तैयार कर लिये जायं। (३) जिन बीमा कम्पनियों ने अपना प्रधान कार्यालय भारत में स्थानान्तरित कर लिया हो, उनकी ओर से यह आश्वासन दिलाया जाय कि भारत के रिजर्व बंक में कानून द्वारा निर्धारित रकम के अलावा उनकी जो रकम जमा हो, उसमें न तो कमी की जाय न वह पाकिस्तान से हटायी जाय। (४) बीमा कम्पनियों, विशेषतः जनरल बीमा कम्पनियों को चाहिये कि पाकिस्तान में बसनेवाले लोगों के दावे की छानबीन करने तथा उनका निपटारा करने के लिए अपने प्रतिनिधि पाकिस्तान भेजे। पाकिस्तान की सरकार उन्हें उचित सुविधा प्रदान करेगी। भारत सरकार भी

इस प्रकार की सुविधा देगी। ऐसी कम्पनियों के एजेण्टों को पश्चिमी पंजाब की सरकार के गृह सचिव से मिलना चाहिये। इस प्रकार पाकिस्तान की कम्पनियों के एजेण्टों को जालंधर में पूर्वी पंजाब सरकार के गृह सचिव से मिलना चाहिये। दोनों सरकारें इन कम्पनियों को सलाह देंगी कि जहां तक सम्भव हो छानबीन के लिए वे ऐसे सम्प्रदाय के लोगों को अपना एजेण्ट बनाकर भेजें जिनके लिए साधारणतः रक्षा-व्यवस्था की आवश्यकता न पड़े। (५) पश्चिमी पंजाब प्रणाली की व्यवस्था ही सीमा प्रान्त और सिंध के दावों की छानबीन के लिए लागू होगी और आवश्यक सुविधा के लिए कम्पनी के एजेण्टों को सीमा प्रांत के मुख्य सचिव और सिंध के गृह सचिव से मिलना चाहिये। इस प्रकार की सुविधा दिल्ली प्रांत में भी दी जायगी। दिल्ली के लिए सम्बंधित कम्पनियों के एजेण्टों को दिल्ली के कमिश्नर से मिलना चाहिये। (६) दावों के निपटारे में विलम्ब होने से सम्बंधित शिकायतें पाकिस्तान की ओर से भारत सरकार के व्यापार विभाग के संयुक्त सचिव तथा भारत की ओर से पाकिस्तान सरकार के संयुक्त सचिव के पास भेजी जायंगी। यह मान लिया गया कि बीमा कम्पनियां दावों का निपटारा तभी शीघ्रता से कर सकेंगी जब उन्हें उनके कागजात, साज-सामान और फर्निचर आदि मिल जायंगे।"

यही प्रणाली पाकिस्तान के अन्य भागों की उन कम्पनियों पर भी लागू मानी गयीं जिन्होंने अपना प्रधान कार्यालय भारत में स्थानान्तरित कर लिया था।

डाकखानों में विभिन्न रूपों में जमा रकमों के सम्बन्ध में दोनों सरकारों के बीच यह तय हुआ कि "ऐसे हिसाब के जिनकी पासबुक लोगों के पास है, और जिनके सम्बन्ध में पाकिस्तान के डाक और तार विभाग के डाइरेक्टर जेनरल भारत के डाक और तार विभाग के डाइरेक्टर जेनरल से लिखा-पढ़ी कर रहे थे, उनके लिए यह प्रणाली निश्चित कर ली गयी है कि पाकिस्तान के लोग अपनी पास बुकें पाकिस्तान के डाकखानों को दे दें। इसके बाद पाकिस्तान के डाक और तार विभाग के डाइरेक्टर जेनरल ऐसे लोगों के नामों की एक सूची तैयार करके भारत के डाक और तार विभाग के डाइरेक्टर जेनरल के पास भेज देंगे जो पासबुक देखे बिना या हस्ताक्षर मिलाये बिना उनके हिसाबों को पाकिस्तान मे स्थानान्तरित करा देंगे। जिन लोगों के पास अपने डाकखाने के हिसाब की पासबुक नहीं है, उन्हे अपने-अपने उपनिवेश के डाक और तार विभाग के डाइरेक्टर जेनरल को लिखना चाहिये। साथ में वे यह भी बतावें कि किस डाकखाने मे उनका हिसाब था। दोनों उपनिवेशों के

डाक और तार विभाग के डाइरेक्टर जेनरल ऐसे लोगों की सूचियां तैयार करके आपस में अदल-बदल लेंगे और आवश्यक छानबीन के बाद हिसाब को स्थानान्तरित कर देंगे। हिसाब का स्थानान्तरण एक बार हो जाने के बाद जिम्मेदारी सम्बन्धित उपनिवेश की हो जायगी। दोनों डाइरेक्टर जेनरल प्रणाली और कानून-सम्बन्धी कठिनाइयां आपस में बातचीत करके दूर कर लेंगे।"

डाकखाने के पंचवर्षीय कैश सर्टिफिकेट, डिफेंस सेविंग्स सर्टिफिकेट और नेशनल सेविंग सर्टिफिकेट के सम्बन्ध में भी उपर्युक्त प्रणाली लागू मानी गयी।

ट्रस्टों तथा शैक्षणिक, सांस्कृति एवं धार्मिक संस्थाओं की सम्पत्ति को हटाने के सम्बन्ध में दोनों देशों के बीच जो निर्णय हुआ, उसके अनुसार सम्पत्ति दो भागों में विभाजित की गयी—(१) चल और (२) अचल। चल सम्पत्ति के सम्बन्ध में यह स्वीकार किया गया कि "पश्चिमी पंजाब के निष्क्रमणार्थियों के सम्पत्ति संरक्षक द्वारा इस संबंध में आवेदन-पत्र प्राप्त होने पर शीघ्र ही निर्णय किया जायगा कि प्रान्तीय सरकार को अपने उपयोग के लिए उन वस्तुओं की आवश्यकता है या नहीं। सम्पत्ति को ले जाने के लिए सम्पत्ति-संरक्षक आवश्यक 'परमिट' देगा। चल सम्पत्ति के कुछ भाग को रखने का निश्चय करते समय साज-सामान, फर्निचर तथा फिटिंग आदि की आवश्यकताओं का ध्यान रखा जायगा। ऐसी वस्तुओं के लिए विशेष ध्यान दिया जायगा जिनको संस्था सांस्कृतिक अथवा धार्मिक महत्त्व प्रदान करेगी और उनको यथासम्भव ले जाने दिया जायगा।"

भारत-पाकिस्तान प्रतिनिधि उपर्युक्त सम्मेलन में अचल सम्पत्ति के संबंध में भारत ने यह अनुरोध किया था कि गैर मुसलिम निष्क्रमणार्थियों की आम अचल सम्पत्ति की अपेक्षा इसके लिए विशेष रूप से ध्यान देना चाहिये और यह सलाह दी थी कि पाकिस्तान तथा सम्बन्धित प्रान्तों की सरकारें ऐसी सम्पत्ति को अपने लिए रखने अथवा न रखने के सबध में अपना निर्णय शीघ्र ही करें ताकि उसके ट्रस्टी अथवा व्यवस्थापक उसको दूसरी तरह से बेचने आदि का प्रबन्ध कर सकें।

इस अनुरोध का उत्तर पाकिस्तान के प्रतिनिधियों ने यह कह कर दिया था कि चूंकि भारत ने पहले इस विषय को नहीं उठाया था, अतः वे अपनी सरकार के समक्ष इसे नहीं रख सके। इसका उत्तर शीघ्र देने का वादा उन्होंने किया।

लाइसेंसशुदा शस्त्रास्त्रों की वापसी के सम्बन्ध में दोनों देशों के प्रतिनिधियों ने यह तय किया कि जिनके पास लाइसेंस के शस्त्रों की रसीदें हों

उन्हें शस्त्रास्त्र वापस करने का आदेश दोनों सरकारें प्रान्तीय सरकारों को दें। जिनके पास रसीदें नहीं रहीं, उनके सम्बन्ध में तय हुआ कि दोनों उपनिवेशों की सरकारें ऐसे मामलों की सूची एक दूसरे को दें, जिनकी ठीक तरह से छानबीन की जाय।

पवित्र-ग्रंथों को हटाने की सुविधा देना भी दोनों देशों के प्रतिनिधियों ने स्वीकार किया।

ठीकेदारों के बिलों के भुगतान के सम्बन्ध में तय हुआ कि ठीकेदार अपनी मांग की दो प्रतियां उस प्रान्त के मुख सचिव के पास भेजें जिसमें वह स्वयं रहता हो। "वहा से एक प्रति सम्बन्धित प्रात के मुख्य सचिव के पास भेजी जायगी जो आवश्यक छानबीन के बाद रुपया देने या न देने के सम्बन्ध में उत्तर देगा।"

इन समझौतों को कार्यान्वित करने मे अनेक प्रकार अड़चने पड़ी या डाली गयीं। फलतः मई, १९५६ तक इनसे सम्बन्धित अनेक मसले तय नहीं हो पाये। मुख्य समस्या चल और अचल सम्पत्ति की है जिसका निपटारा संतोषजनक ढग से होने का कोई लक्षण नहीं दिखाई देता।

सन् १९४९ के आरम्भ मे कराची मे पुनः भारत और पाकिस्तान के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन हुआ जो १३ जनवरी को समाप्त हो गया। इस सम्मेलन मे निष्क्रमणार्थियों की सम्पत्ति की समस्या पर विचार हुआ लेकिन समस्या के निपटारे के सम्बन्ध में अन्तिम रूप से कोई निश्चय न हो सका। कुछ सिद्धांत अवश्य तय कर लिये गये। जून, १९५० मे फिर दोनों देशो का सम्मेलन हुआ लेकिन पुनः इस विषय पर कोई निर्णय न हो सका। इस प्रकार अढ़ाई वर्ष तक मामला ठप रहा। "२७ जुलाई, १९५३ से १३ अगस्त, १९५३ तक कराची मे पुनः दोनो देशों के पुनर्वास मंत्रालय के सलाहकारों का सम्मेलन हुआ। इसमे निष्क्रमणार्थियों की सम्पत्ति से सम्बन्धित अनेक मसलों पर विचार-विमर्श हुआ। कुछ विषयों के सम्बन्ध मे जिनमे चल सम्पत्ति का मसला भी है, दोनों देशों के प्रतिनिधियों मे समझौता हो गया और जनवरी सन् १९५४ मे दोनों देशों की सरकारों ने उसकी पुष्टि कर दी।"* इसी प्रकार-देवालयों की सम्पत्ति के सम्बन्ध मे भी मई, १९५५ मे भारत और पाकिस्तान के गृह-मंत्रियो मे वार्ता हुई और इस मामले को निपटाने के लिए समिति बनाने का निश्चय हुआ। यह मामला भी अधर में ही है।

---

* भारत के परराष्ट्र मंत्रालय का वार्षिक प्रतिवेदन, १९५३–५४–पृ० सं० ९

इस समझौते के फलस्वरूप होने वाली कारवाई जारी रही। लम्बे अर्से के बाद भारत सरकार के पुनस्संथापन मंत्रालय की ३ मई, १९५६ की विज्ञप्ति में बताया गया कि "भारत-पाकिस्तान चल सम्पत्ति समझौते के परिणाम-स्वरूप 'पाकिस्तान सरकार ने विस्थापितों (निष्क्रमणार्थियों) की पेशावर, डेराइस्माइल खां, हजारा, कोहाट, मरदान और बन्नू जिलों में छोड़ी गयी चल सम्पत्ति की बिक्री से प्राप्त ३ लाख रुपये से कुछ अधिक के चेक भेजे हैं। भारत में इन विस्थापित मालिकों को रुपये देने का प्रबन्ध किया जा रहा है।"

पाकिस्तान छोड़ने वालों में से जिनकी बन्दूकें आदि पाकिस्तान सरकार ने ले ली थी, १९४७ के समझौते के अनुसार अब भी (मई, १९५६) उन पर कारवाई हो रही है। मई, १९५६ में ही ऐसे लोगों की कुछ सूचियां पाकिस्तान से प्राप्त होने की सूचना भारत सरकार ने प्रकाशित की थी।

इन समस्याओं के अतिरिक्त सन् १९४७ से ही भारत और पाकिस्तान सरकार के बीच नहरी पानी के सम्बन्ध में भी विवाद चल रहा है। कई बार यह उग्र रूप धारण कर चुका है और इसके सम्बन्ध मे अन्तिम रूप से कोई निर्णय नहीं हो सका है। यह विवाद भी कश्मीर के विवाद की ही भाति गम्भीर है। जिस प्रकार कश्मीर-विवाद को लेकर भारत के विरुद्ध पाकिस्तान का अनर्गल प्रचार जारी है, उसी भांति नहरी पानी के सम्बन्ध में भी उसका यह विचार कभी ठंढा नहीं पड़ा कि नहरी पानी को रोक कर भारत, पाकिस्तान की उपजाऊ भूमि को बंजर बना देना चाहता है और उसे भूखे मार डालना चाहता है। अगले अध्याय मे इस समस्या का विवरण विस्तार से दिया गया है।

———

# नहरी पानी का विवाद

**सिंध सरिता शृंखला की नदियां—१९४८ का समझौता—पाकिस्तान द्वारा समझौता भंग—भारत की बकाया रकम—ब्लिथाज का सुझाव—विश्व बंक की मध्यस्थता—पाकिस्तान की हठधर्मी।**

नहरी पानी का विवाद ऐसा है जिसके संबंध मे पाकिस्तान ने अंतराष्ट्रीय बंक के सुझावों को भी स्वोकार नहीं किया। इन सुझावों को स्वीकार करने में भारत को यद्यपि करोड़ों रुपयों की क्षति उठानी पड़ती, तथापि विवाद को वैज्ञानिक ढंग से सुलझाने के अपने प्रयास के कारण उसने इन सुझावों को मानने से इनकार नहीं किया। इस विवाद से संम्बधित तथ्य स्पष्ट करते हैं कि दोप भारत का नहीं, अपितु पाकिस्तान का ही है।

सिंध सरिता शृंखला की जिनमे सिंधु, झेलम, चिनाब, रावी, व्यास और सतलज, ये छः नदिया हैं, पहुँच मे, मैदानों मे खेती-योग्य भूमि का जो क्षेत्र है, वह भारत में २६० लाख एकड़ और पाकिस्तान में ३९० लाख एकड़ पडता है। भारत मे इस क्षेत्र के १८ प्रतिशत और पाकिस्तान के ५१ प्रतिशत मे इन नदियों से सिंचाई होती हैं। नदियों में बह कर आने वाले ५ प्रतिशत पानी का इस्तेमाल भारत और ३९ प्रतिशत का इस्तेमाल पाकिस्तान करता है। संम्बधित क्षेत्र मे सिंचाई की जो वर्तमान व्यवस्था है, उससे प्राप्त होने वाले पानी का ११-१२ प्रतिशत भारत को तथा ८८-८९ प्रतिशत पाकिस्तान को प्राप्त होता है।

पाकिस्तान का भारत के विरुद्ध यह अभियोग रहा है कि नहरी पानी के बंटवारे के सम्बन्ध में १९४७ में बनायी गयी समिति ने विभाजन के पूर्व के साधनों द्वारा, इस काल के बराबर ही पानी की सप्लाई के पाकिस्तान के दावे को मान लिया था। विभाजन-सम्बंधी समझौते के अनुसार जिसका उल्लेख किया जा चुका है, केवल पंजाब विभाजन समिति को ही इस सम्बंध में निर्णय करने का अधिकार था। इस समिति का यह मत था कि विवाद पूर्वी और पश्चिमी पंजाब के चीफ इजीनीयरों को सुपुर्द कर दिया जाय। बाद में यही हुआ। मामला दोनों प्रान्तों के चीफ इंजीनियरों को निर्दिष्ट किया गया और

उनके बीच जो समझौता हुआ, विभाजन समिति ने उसकी पुष्टि कर दी। इस समझौते द्वारा तय हुआ था कि ३१ मार्च, १९४८ तक पाकिस्तान को उसी आधार पर पानी मिलता रहेगा जो विभाजन के दिन कायम था। यह भी तय हुआ कि यह अवधि समाप्त होने से पूर्व नये समझौते के लिए बातचीत शुरू की जायगी।

भारत ने उपर्युक्त समझौते के अनुसार ३१ मार्च, १९४८ तक पाकिस्तान को पानी दिया। इस बीच नये समझौते के सम्बंध मे बातचीत करने के लिए उसने पश्चिमी पंजाब से कई बार कहा लेकिन उसने ध्यान नहीं दिया और कोई कारंवाई नहीं की। फलतः भारत ने समझौते की अवधि समाप्त होने पर अर्थात् १ अप्रैल, १९४८ से पाकिस्तान को पानी देना बंद कर दिया। तब पाकिस्तान ने पुनः वार्ता आरम्भ की। इस पर भारत ने ३० अप्रैल, १९४८ से पुनः पानी देना जारी कर दिया। अततः ४ मई, १९४८ को समझौता हुआ जिसके अनुसार भारत ने यह स्वीकार कर लिया कि भविष्य मे पानी देना अचानक न रोका जायगा। बदले मे पाकिस्तान ने इस सम्बंध मे होने वाले खर्च का भुगतान समय पर करते रहने का वादा किया लेकिन इस पर वह कायम नहीं रहा।*

एक वर्ष से कुछ अधिक समय तक यह समझौता चालू रहा। जुलाई, १९५० मे यह तब टूट गया जब पाकिस्तान ने समझौते के अनुसार आवश्यक भुगतान करने से इनकार कर दिया। इसके पश्चात् चार वर्ष तक दोनों देशों के बीच बातचीत चलती रही। भारत ने बार-बार इस बात पर जोर दिया कि दोनों देशों की आवश्यकताएं पूरी करने के उद्देश्य से एक व्यापक योजना बनाने के लिए संयुक्त रूप मे समस्या का अध्ययन प्राविधिक दृष्टि से कराने की व्यवस्था की जाय। भारत का यह मत रहा है कि केवल सिंध की जलराशि से ही दोनो देशों की आवश्यकता पूरी हो सकती है। पाकिस्तान ने इस सुझाव पर कभी ध्यान नहीं दिया क्योंकि उसका इरादा समस्या को अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय मे पेश करने का था। नदी के जल-प्रवाह को एक देश से दूसरे देश की ओर नियंत्रित करने वाला कोई अन्तर्राष्ट्रीय कानून नहीं है, अतः

---

* १ मई, १९५६ को लोकसभा में एक प्रश्न का उत्तर देते हुए सिंचाई एवं विद्युत उपमंत्री जयसुख लाल हाथी ने बताया था कि ४ मई, १९४८ के समझौते के अन्तर्गत नहरी पानी से सम्बंधित भारत को चुकायी जाने वाली रकम पाकिस्तान ने रोक रखी है। इस मामले में ७०,२२,७०५ रुपये की रकम विवादास्पद है और ४०,२०,२३१ रुपये की रकम निर्विवाद है।

भारत ने यह स्पष्ट किया कि मसला अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में पेश करने लायक है ही नहीं। उसने यह दूसरा सुझाव भी पाकिस्तान के समक्ष रखा कि झगड़े का निपटारा करने के लिए अस्थायी न्यायाधिकरण नियुक्त कर दिया जाय जिसमें दोनों देशों के उच्च विचारपति समान संख्या में शामिल हों। यह सुझाव भी पाकिस्तान ने स्वीकार नहीं किया।

सन् १९५१ मे अमेरिका के टेनेसी वैली प्रशासन के भूतपूर्व अध्यक्ष लिलिंथाल ने भारत और पाकिस्तान का दौरा किया। नहरों के क्षेत्र को देखने के बाद उन्होंने एक लेख लिखा जो 'कोलियर्स' पत्रिका में प्रकाशित हुआ। लिलिंथाल साहब ने समस्या को इंजीनियरिंग से सबंधित बताया और लिखा "कि समस्या विश्व बंक के सहयोग से सुलझायी जा सकती है।" इस सुझाव को विश्व बंक के तत्कालीन अध्यक्ष ब्लैक साहब ने आगे बढ़ाया। उनके सुझाव पर इंजीनियरों का एक दल संघटित हुआ जिसमें एक-एक इजीनियर भारत और पाकिस्तान का तथा तीसरा विश्व बंक का शामिल हुआ। इस इंजीनियर दल की बैठकें मई और जून, १९५२ मे वाशिंगटन मे तथा दिसम्बर १९५२ में कराची मे हुईं। दल के इंजीनियरों ने सिंध नदी के क्षेत्र का दौरा करके आवश्यक तथ्य एकत्र किये। इसके पश्चात् सितम्बर, १९५३ मे इस दल की बैठक पुनः वाशिंगटन मे हुई लेकिन कोई समझौता न हो सका। अंततः पुनः भारत और पाकिस्तान ने अपनी-अपनी योजना प्रस्तुत की। भारत की योजना मे पाकिस्तान के हित के सरक्षण का समावेश था लेकिन पाकिस्तान की योजना में इसका अभाव था। इस प्रकार समझौते के अन्य आधार भी व्यर्थ सिद्ध हुए। तब विश्व बक के प्रतिनिधियों ने फरवरी, १९५४ में यह प्रस्ताव रखा कि सिंध, झेलम और चिनाब का कुल पानी—जम्मू और कश्मीर के काम आने वाले अंश को छोड कर-पाकिस्तान को मिले और रावी, व्यास तथा सतलज का पानी भारत इस्तेमाल करे। सुझाव में यह भी बताया गया था कि उन नहरों के निर्माण का खर्च भारत को बरदास्त करना होगा जो पाकिस्तान की कुछ नहरों को पूर्वी नदियों (रावी, व्यास, सतलज) के बजाय पश्चिमी नदियों (सिंध, झेलम, चेनाब) से जोड़ने के लिए बनायी जायंगी। यह सुझाव मान लिया जाता तो भारत को सिंध क्षेत्र के पानी का २० प्रतिशत और शेष ८० प्रतिशत पाकिस्तान को मिलता। इसके अतिरिक्त नहरों के निर्माण का खर्च भी भारत को देना पड़ता। इसके बावजूद पाकिस्तान ने इसे स्वीकार नहीं किया यद्यपि भारत ने इसे स्वीकार कर लिया था।

पाकिस्तान की हठधर्मी से बेजार होकर २१ जून, १९५४ को भारत ने

विश्व बंक को यह सूचित कर दिया कि "अब आगे बातचीत की कोई सम्भावना नहीं दिखाई देती। पाकिस्तान, विश्व बंक के सुझाव के आधार पर भविष्य में यदि सहयोग के लिए तैयार होगा, तो भारत बातचीत करने पर राजी हो जायगा।"

विश्व बंक के प्रयास से बातचीत टूटी नहीं और यह अब भी जारी है। इस बीच "१९५५ की खरीफ और १९५५-५६ की रबी की फसल के लिए भारत तथा पाकिस्तान के बीच दो तदर्थ संक्रमण-कालीन समझौते (एडहाक ट्रांजिशनल एग्रीमेंट्स) स्वीकार किये गये।"*

असल में पाकिस्तान को सारी जलन भारत की भाखड़ा योजना से है। वह बराबर यही कहता है कि भाकड़ा नहरों से पाकिस्तान के उन क्षेत्रों पर बुरा प्रभाव पड़ेगा जहां सतलज का पानी जाता है।

भारत की भाखड़ा नहर योजना प्रसिद्ध भाखड़ा नंगल योजना का अंग मात्र है। न केवल एशिया बल्कि विश्व की सिंचाई और जल-विद्युत शक्ति की प्रमुख बड़ी योजनाओं में से यह एक है। पाकिस्तान अड़ंगा लगा कर इसको ठप करने की कोशिश मे है किन्तु भारत अबाध गति से आगे बढ़ता जा रहा है।

वास्तव में भाखड़ा नहर योजना कोई नयी योजना नहीं है। यह योजना सन् १९२० में ही बनायी गयी थी। भारत के विभाजन से दो वर्ष पूर्व इस पर काम भी आरम्भ हो गया था। इससे पाकिस्तान की कोई हानि नहीं है; क्योंकि अब उसे सतलज के पानी की आवश्यकता नहीं है। उसने बल्लों की सुलेमानकी नहर निकाल ली है जो व्यास का पानी सतलज में छोड़ती है और यह पानी उससे कहीं अधिक है जो भाकड़ा नहर के कारण पाकिस्तान को न मिल सकेगा। पाकिस्तान की उपर्युक्त नयी नहर २ अप्रैल, सन् १९५४ से ही चालू है।

———

* परराष्ट्र मंत्रालय का वार्षिक प्रतिवेदन, १९५५-५६, पृ० सं० १३

# भारत का पौण्ड पावना

**भारत सरकार द्वारा ब्रिटिश सरकार की आवश्यकताओं की पूर्ति—सोने के बदले कागज मिला—ब्रिटेन की खास नियत—१६ सौ करोड़ पौण्ड पचाने की भूमिका—भारत के साथ भेदभाव-पूर्ण व्यवहार—लूट की पुरानी आदत—१९४७ का अस्थायी समझौता—कुल आठ अरब रुपये शेष रहे।**

अखण्ड भारत के विभाजन के बाद केवल पाकिस्तान से सम्बन्धित समस्याएँ भारत के सामने नहीं थी। और भी अनेक गम्भीर समस्याओं का सामना उसको करना पड़ा जिनका गहरा सम्बन्ध उसके राजनीतिक इतिहास से हैं। इनमें पौण्ड पावना, विदेशी बस्तियों, प्रवासी भारतीयों, स्वतन्त्र भारत के संविधान के निर्माण और लाखों शरणार्थियों के पुनर्वास से सम्बंधित समस्याओं के अतिरिक्त भारत की सैकड़ों देशी रियासतों को भारत में मिलाने तथा गम्भीर खाद्य-संकट पर विजय पाने की अत्यन्त कठिन समस्याएँ भी शामिल थीं। इनका निपटारा किये बिना भारत का राजनीतिक और आर्थिक विकास सम्भव न होता। एक-एक कर भारत ने सभी समस्याओं पर विजय प्राप्त की। इनसे सम्बंधित उसकी कारवाइयां उसके राजनीतिक इतिहास की अविच्छिन्न कड़ियां हैं।

द्वितीय-युद्धकाल में भारत पर नये-नये कर लाद कर ब्रिटिश सरकार ने धन एकत्र किया। यह धन भारत सरकार ने ब्रिटिश सरकार की ओर से भारत में खर्च किया। उसने ब्रिटिश सरकार की ओर से बहुत-सी युद्ध-सामग्री खरीदी तथा युद्ध-जन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लम्बे-लम्बे ठीके दिये। इस प्रकार भारत सरकार ने बहुत लम्बी रकम खर्च कर डाली जिसका अनुमान सैनिक व्यय के इन आँकड़ों से लगाया जा सकता है—

**सैनिक व्यय**

| वर्ष | रकम ( लाख रुपयों में ) |
|---|---|
| १९३९–४० | ४९,५४ |
| १९४०–४१ | ७३,६१ |
| १९४१–४२ | १,०३,९३ |

| | |
|---|---|
| १९४२–४३ | २,६७,१३ |
| १९४३–४४ | ३,९५,८६ |
| १९४४–४५ | ४,५८,३२ |
| १९४५–४६ | ३,९१,३५ |

भारत सरकार ने ब्रिटिश सरकार की ओर से जो रकम खर्च की, चतुर ब्रिटिश सरकार ने उसके बदले भारत को सोना नहीं दिया। उसने अपने 'प्रोनोट' भारत सरकार के हवाले किये। भारत सरकार उसके ही मातहत थी, अतः विवाद करने तथा आपत्ति करने का कोई प्रश्न ही न था। मुजरिम ही जहाँ न्यायाधीश होता है, वहाँ की स्थिति ऐसी ही होती है। भारत सरकार ने 'प्रोनोट' स्वीकार किये और इनकी साख पर यहाँ के रिजर्व बंक ने धड़ाधड़ नोट छापने शुरू कर दिये। युद्ध आरम्भ होने के पूर्व सन् १९३९ में भारत में कुल १७६ करोड़ रुपये के नोट चालू थे जो सन् १९४६ के अंत तक बढ़ते-बढ़ते १२६० करोड रुपये के हो गये। इससे मुद्रा का मूल्य गिर गया और वस्तुओं की कीमत आसमान छूने लगी। भयंकर महगी ने भारत को धर चपेटा।

अस्तु, पौण्ड पावने के रूप में कुछ रकम इस प्रकार जमा हुई। शेष अन्य प्रकार से। युद्ध के दौरान में भारत से बहुत सा माल अमेरिका भी भेजा गया था। इस स्थिति का लाभ भी अंग्रेज सरकार ने उठाया। भारत से अमेरिका मे माल भेजनेवाले व्यापारी को निर्यात-लाइसेंस इस शर्त पर दिया जाता था कि वह अमेरिका से अपने माल की कीमत डालर में प्राप्त करेगा और इस प्रकार प्राप्त डालर की रकम वह भारत सरकार के हाथ बेच देगा। इस प्रकार भारत सरकार को जो डालर प्राप्त हुए, उन्हें उसने ब्रिटिश डालर निधि ( डालर पूल ) मे जमा कर दिया। इसके बदले में भी ब्रिटिश सरकार ने भारत सरकार को प्रोनोट दिये जिनके बदले मे भारत के रिजर्व बक ने नोट छापे और इन नोटों से भारतीय व्यापारियों के हिसाब का भुगतान भारत सरकार ने किया। अन्य देशों को निर्यात किये जाने वाले माल के बदले में सम्बंधित देश की करंसी का उपयोग भी इस भांति ही ब्रिटिश सरकार ने किया और उनके बदले मे भी भारत के हिस्से में कागज के नोट ही पड़े। यही हाल उस रकम का भी हुआ जो भारत से ब्रिटेन भेजे जाने वाले माल के बदले मे भारत को प्राप्त होनी चाहिये थी।

भारत सरकार की बहुत बड़ी रकम ब्रिटेन के खजाने में जमा हो गयी। सितम्बर, १९३९ से मार्च १९४६ तक कुल २५ अरब, ५४ करोड़ रुपये पौण्ड

के रूप में जमा हो गये। इनमें से कुछ तो फर्जी स्टर्लिंग ऋण के नाम पर काट लिये गये और कुछ भारत की 'सेवा' के नाम पर। इस सेवा का इतिहास पुराना है। इंग्लैण्ड ने अपने स्वार्थ के लिए अनेक युद्ध लड़े थे और इनका खर्चा भारत के सिर मढ़ा था।

इस प्रकार जमा-खर्च करने के बाद भारतीय पौण्ड पावने की रकम १६२२ करोड़ रुपये से कुछ अधिक थी। इनमें ११३५.३३ करोड़ रुपये के पौण्ड रिजर्व बंक के कागजी मुद्रा प्रकाशन विभाग ( ईशू डिपार्टमेंट ) में प्रकाशित कागजी मुद्रा के साख-पत्र के रूप में थे और ४८७.१२ करोड़ रुपये के स्टर्लिंग बैंकिंग विभाग के थे। इस प्रकार ब्रिटेन से लगभग १६०० करोड़ रुपये के पौण्ड की वसूली का प्रश्न सामने था।

भारत की आजादी से पूर्व ही ब्रिटेन में इस बात की भूमिका रची जाने लगी थी कि यह रकम उसे भारत को लौटानी न पड़े। ब्रिटिश अर्थशास्त्री और राजनीतिज्ञ नित्य दलीलें गढ़ते थे। इधर सन् १९४६ में जवाहर लाल नेहरू के प्रधान मंत्रित्व में भारत में अस्थायी सरकार के गठन के बाद भारत के अर्थ-शास्त्री तथा अन्य लोगों ने इस बात पर जोर देना आरम्भ कर दिया था कि पौण्ड पावना वसूल किया ही जाना चाहिये क्योंकि यह गाढ़े पसीने की कमाई है और ब्रिटेन को कोई हक नहीं कि इसे पचा ले। दूसरी बात यह थी कि ब्रिटेन भारत को ही दबाना चाहता था। स्टर्लिंग क्षेत्र के अन्य देशों के साथ जो सफेद चमड़ी वाले थे, उसका व्यवहार बिलकुल उलटा था। दक्षिण अफ्रिका तो प्रायः बिलकुल साफ ही बचा था क्योंकि वह अपनी बचत की रकम सोने में रखता था। जो स्टर्लिंग क्षेत्र के सदस्य नहीं थे किन्तु जिन्होंने अपनी बचत की रकम स्टर्लिंग अर्थात पौण्ड में रखना स्वीकार कर लिया था, ब्रिटेन ने उनकी रकम भी अदा कर दी थी। भारत चूँकि पराधीन था, इसलिए उसको वह लूटना चाहता था। युद्ध के आरम्भ से मार्च १९४२ के अन्त तक कनाडा में, जो स्टर्लिंग क्षेत्र का सदस्य नहीं था, ब्रिटेन पर १८,७०० डालर का देना हो गया था। यह रकम उसने इस प्रकार चुका दी थी—

| | |
|---|---|
| ब्रिटेन ने कनाडा को सोना दिया | २,५०० लाख डालर |
| सरकारी ऋण चुकाया | ७,१४० ,, ,, |
| ब्रिटिश व्यापारियों की लगी हुई पूँजी चुकायी | १,२६० ,, ,, |
| | १०,९०० लाख डालर |

| | |
|---|---|
| | १०, ६०० लाख डालर |
| स्टर्लिंग बचत जो उधार दी गयी | ७,००० ,, ,, |
| स्टर्लिंग बचत जो दान दी गयी | ८०० ,, ,, |
| | १८,७०० लाख डालर* |

रोना केवल भारत को चुकायी जाने वाली रकम के सम्बंध में ही था। खून ब्रिटेन के मुँह में लग चुका था, क्योंकि वह अरबों रुपये इस प्रकार ही हडप चुका था। तरह तरह के गलत खर्चे भारत के सिर डालकर उसने एक लम्बे अर्से तक भारत को जी भरकर लूटा था। इस बार भी वह पुरानी चाल चलना चाहता था। लेकिन भारत में राजनीतिक चेतना अपनी जवानी पर थी। ब्रिटेन द्वारा मचायी गयी लूट-खसोट का नक्शा उसके सामने था। वह यह समझ चुका था कि सन् १८६४-६५ से लेकर सन् १६२८-२६ तक उसने जितना माल मंगाया था उससे २८ सौ करोड रुपये अधिक का माल वह भेज चुका था। भुगतान में उसे केवल १४ सौ करोड़ का सोना चांदी प्राप्त हुआ था। इस प्रकार वास्तव में लेनदार भारत था किन्तु ब्रिटेन ने उसे हमेशा देनदार बनाये रखा। इस बेईमानी और धूर्तता का खाका खींचा जा चुका था। सन् १६३१ की कराची काग्रेस के अवसर एक प्रवर समिति इसलिए नियुक्त की गयी थी कि वह भारत के 'सरकारी' ऋण की छानबीन करे। इस कमेटी ने उन खर्चों का जो भारत पर गलत तरीके से डाले गये थे, और जिनके कारण भारत कर्जदार बनाया गया था, विवरण इस प्रकार दिया था—

| वर्ष | दावे का विषय | रकम करोड़ में | |
|---|---|---|---|
| १८५७ के पहले | कम्पनी की बाहरी लडाइया | ३५,००० | |
| | कम्पनी की पूँजी का व्याज | १५,१२० | ५०,१२० |
| १८५७ | सिपाही विद्रोह का खर्च | | ४०,००० |
| १८७४ | कम्पनी की पूँजी का व्याज | १०,०८० | |
| | ईस्टइण्डिया कम्पनी की पूंजी के हिस्सों की मुक्ति | १२,००० | २२,०८० |
| १८५७–१६०० | बाहरी लड़ाइयों का खर्च | ३७,५०० | |
| १६१४–१६२० | यूरोप की लड़ाई मे दान | १,८६,००० | |
| | ,, ,, खर्च | १,७०,७०० | ३,६७,२०० |

* घनश्यामदास बिड़ला—'कर्जदार से साहूकार'—पृष्ठ संख्या ११

| | | | |
|---|---|---|---|
| १८५७–१९३१ | फुटकर खर्च | २०,००० | |
| | बरमा के बारे में | ८२,००० | १,०२,००० |
| १९१६–१९२१ | उल्टी हुंडियों का घाटा | | ३५,००० |
| | रेलवे कम्पनियों को लेकर सरकार ने जो मुनाफा किया | | ५०,००० |
| १९१६–१९२१ | लड़ाई के काम की रेलों का खर्च* | | ३३,००० |
| | | | करोड़ ७,२९,४०० |

द्वितीय महायुद्ध के आरम्भ से अगले सात वर्षों तक भारत ने जो माल और लडाई का सामान दिया, यह बताया जा चुका है कि उसके बदले में ब्रिटेन ने चालाकी से अपने पास सैंतिस सौ करोड़ रुपया भारत के खाते मे जमा कर लिया था। इस में से चार सौ रुपया 'सरकारी कर्ज' में काट लिया गया और सत्रह सौ करोड़ रुपया यह कह कर भारत के नाम लिख दिया गया कि यह लडाई के खर्च मे उसका हिस्सा रहा। शेष सोलह सौ करोड़ के सम्बन्ध मे उसने तरह-तरह की दलीले पेश की और जब अदायगी की सामर्थ्य के अभाव का बहाना दिखा कर उसने उन्हें भी हडपने की चेष्टा की तो भारत पर नाजायज रूप से लादे गये खर्च की उपर्युक्त पृष्ठ-भूमि के आधार पर यहां के लोगों ने उसका जबरदस्त विरोध किया।

चूंकि केंद्र मे अस्थायी राष्ट्रीय सरकार कायम हो चुकी थी, अतः ब्रिटेन का पिण्ड न छूटा। इस सम्बन्ध मे अगस्त, १९४७ मे ब्रिटेन और भारत में एक अस्थायी समझौता हुआ, जिसकी अवधि १४ अगस्त, १९४७ से दिसम्बर, १९४७ तक मानी गयी।

१५ अगस्त, १९४७ को भारत आजाद हो गया। अस्थायी समझौते की अवधि समाप्त हो गयी। पौण्ड पावने की वसूली का विवाद फिर उठा। अंततः लंदन मे ब्रिटेन के अर्थ मंत्री सर स्टैफर्ड क्रिप्स और भारत के तत्कालीन वित्त मंत्री षड्मुखम् चेट्टी के बीच इस प्रश्न पर वार्ता होने के बाद सन् १९४८ के उत्तरार्द्ध में दोनों देशों के बीच समझौता हो गया। इस समझौते की शर्तों से भारत के व्यवसायियों तथा अर्थ-शास्त्रियों को संतोष नहीं हुआ क्योंकि भारत ने काफी दबकर समझौता किया था।

समझौते की बात-चीत आरम्भ होने से पूर्व, जैसा कि बताया जा चुका है

---

* जे० सी० कुमारप्पा—'हिंदुस्तान और ब्रिटेन का आर्थिक लेन-देन' में उद्धरित — पृ० सं० ४२

ब्रिटेन पर भारत का कुल पावना १६ सौ करोड़ पौण्ड अर्थात् १५,४७ अरब रुपये था। समझौते के अनुसार यह माना गया कि १५ अगस्त, १९४८ तक इसमें से २७.५५ करोड़ पौण्ड घट जायगा। १० करोड़ पौण्ड उस सैनिक सामग्री, शस्त्रास्त्रों तथा इमारतों आदि के मूल्य के रूप में ब्रिटेन को देना स्वीकार किया गया जो ब्रिटिश सरकार भारत मे छोड़ चुकी थी। १६.८ करोड़ पौण्ड केंद्रीय तथा प्रान्तीय नौकरियों से अवकाश ग्रहण करने वाले ब्रिटिश अफसरों की पेंशन के रूप मे ब्रिटेन के पास छोड़ देना तय हुआ। पाकिस्तान की ओर से इस कार्य के लिए ब्रिटेन को ७५ लाख पौण्ड देने का निश्चय हुआ।

लेखा-जोखा करने और पाकिस्तान का हिस्सा बाद करने के पश्चात् भारत का पावना ८० करोड़ पौण्ड ( १० अरब, ६७ करोड़ रुपये ) रह गया! इसमें से २० करोड़ पौण्ड साधारण मुद्रा कोष में रखना आवश्यक था। इस प्रकार वास्तव में समझौते के बाद ६० करोड़ पौण्ड अर्थात् सिर्फ आठ अरब रुपये ही भारत के नाम जमा की रकम में आये जो नकद नहीं मिले।

———

# रियासतों की समस्या का अंत

**३ जून, १९४७ की घोषणा की प्रक्रिया—प्रभुसत्ता का ऐतिहासिक विश्लेषण—जूनागढ़ की घोषणा—अस्थायी सरकार की स्थापना—भारतीय फौजों का प्रवेश—मतदान का फल—हैदराबाद से 'यथास्थिति' समझौता—समझौते का उल्लंघन—पुलिस कारवाई—अस्थायी सैनिक सरकार—उड़ीसा और छत्तिसगढ़ की रियासतों का विलयन—दक्षिण की रियासतों का विलयन—हिमाँचल प्रदेश का गठन—सौराष्ट्र की स्थापना—राजस्थान संघ का निर्माण—अन्य रियासतों की स्थिति—सिक्किम – वृहत्तर भारत—देशी नरेशों की पेंशन।**

वृहत्तर जरमनी का स्वप्न देखने वाला प्रिंस बिसमार्क जो कार्य प्रचंड शस्त्र बल और प्रबल कूटनीति के आधार पर न कर सका था, वही कार्य भारत में मुख्यतः सरदार पटेल तथा साधारणतः उनके सहयोगियों ने केवल अपनी दूरदर्शिता और सहयोग की भावना के बल पर कर डाला। पांच सौ से भी अधिक भारतीय रियासतें खून का एक भी कतरा बहाये बिना भारतीय संघ में मिला ली गयी। रियासतों के विलयन से सम्बंधित घटनाओं का यह क्रम भारतीय इतिहास में रक्तहीन क्रान्ति के नाम से प्रसिद्ध है। भारत सरकार ने उदारता से काम लिया, रियासती नरेश समय की गति को पहचान कर अपनी हठधर्मी से बाज आये और जनता ने निरंकुश नरेशों के राजसी अवशेषों को कुछ दिनों तक और बरदास्त करना स्वीकार किया—इस प्रकार उस वृहत्तर भारत का निर्माण हुआ जो महान् अशोक और अकबर के समय में भी न बन सका था।

समय की गति पहचाने वाले नरेशों ने बहुत पहले ही यह समझ लिया था कि रियासतों का अस्तित्व अधिक दिनों तक कायम नहीं रह सकता। प्रसिद्ध इतिहासकार, चीन में भारत के भूतपूर्व राजदूत और राज्यपुनर्गठन आयोग के सदस्य सरदार पणिक्कर के कथनानुसार "सन् १९०८ में बड़ौदा के महाराज सयाजीराव गायकवाड़ ने निजी बातचीत के दौरान में सर आगा खां से कहा था—एक दिन भारत स्वतंत्र होगा। यह दिन देखने के लिए शायद

मैं जीवित न रहूँ। आप जीवित रहेंगे। ज्योंही भारत स्वतंत्र हो जाय, आप कृपा कर भारत के नेताओं को निकम्मे देशी नरेशों से मुक्ति पाने की सलाह दें। उनके अस्तित्व के कायम रहते देश वास्तव में कभी स्वतंत्र नहीं हो सकता।" यह बातचीत बम्बई के राजभवन में हुई थी।* ऐसे नरेश इने-गिने थे। अत्यधिक संख्या ऐसे ही नरेशों की थी जो अपनी सत्ता बनाये रखने के लिए व्याकुल थे। ब्रिटिश प्रभुओं ने इन्हें कायम रखा था। भारत से जाते-जाते भी उन्होने इन्हें कायम रखने की चेष्टा की लेकिन भारत के राज-पुरुषों और जन-नेताओं की सूझ-बूझ और उनकी दूरदर्शिता ने अंग्रेजों की सारी चाल विफल कर दी।

ब्रिटेन के सम्राट की सरकार ने अपनी ३ जून, १९४७ की ऐतिहासिक घोषणा मे कहा था—"सम्राट की सरकार यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि उसकी घोषणा ब्रिटिश भारत से ही सम्बध रखती है और भारतीय रियासतों के सम्बन्ध मे उसकी नीति जो मंत्रिमंडल मिशन के १२ मई, १९४६ के ज्ञापक में निहित है, अपरिवर्तित है।" मन्त्रिमडल मिशन के १२ मई, १९४६ के ज्ञापक मे कहा गया था "ब्रिटिश सरकार किसी भी भारतीय शासन को रियासतों की प्रभुसत्ता न तो हस्तातरित कर सकती है, न करेगी।" इससे रियासतों का दिमाग पहले बिगड़ गया। त्रावनकोर और हैदराबाद सदृश अनेक रियासतों ने अपनी स्वतंत्र सत्ता का दावा पेश करना आरम्भ भी कर दिया यद्यपि इसका कोई ऐतिहासिक आधार न था; क्योंकि ब्रिटेन की सरकार की घोषणा स्वतः निराधार थी। वास्तव मे सार्वभौम सत्ता ( प्रभुसत्ता ) किसी भारतीय सरकार को हस्तातरित न करने की घोषणा अत्यन्त शरारतपूर्ण थी। तर्क यह था कि "सन् १९३५ के शासन विधान मे १८३३ के शासन विधान की उस ३९ वीं धारा का उल्लेख नहीं है जिसके अनुसार भारत के नाग-रिक एवं सैनिक शासन का अधिकार सपरिषद गवरनर जेनरल मे निहित था, अतः सम्राट मे निहित विशेषाधिकार ( सम्राट मे निहित विशेषाधिकार का ही दूसरा नाम सार्वभौम सत्ता था ) भारत सरकार को हस्तातरित किया ही नहीं जा सकता।" वास्तव में यह तर्क नही कुतर्क था। भारतीय शासन विधान में उपर्युक्त धारा के न होने से कुछ सिद्ध नहीं होता था। सन् १८३३ से १९३५ तक के काल मे जब कि उपर्युक्त धारा भारत के शासन विधान मे उल्लिखित न थी, गवरनर जेनरल को भारत मंत्री के आदेश का पालन करना

* बड़ौदा में १६ जनवरी, १९५६ को सरदार पणिक्कर का भाषण—'अमृत बाजार पत्रिका' के इलाहाबाद संस्करण के १९-१-५६ के अंक से उद्धृत।

पड़ता था। इसका अर्थ यह था कि उस समय सम्राट की सरकार को भारत के सम्बन्ध में परामर्श देने वाला अंतिम अधिकारी व्यक्ति भारत मंत्री था अर्थात् सम्राट को भारत के सम्बन्ध में परामर्श देने का अधिकार ब्रिटिश मंत्रि-मंडल को था, क्योंकि भारत मंत्री उसका ही एक सदस्य होता था। इस दृष्टि से सन् १८३३ से १९३५ तक भारत-सम्बंधी विविध कानूनों में सार्वभौम सत्ता के प्रयोग के लिए जो प्रकार अपनाये गये थे, उनका भारतीय जनता के इस दावे पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था कि सार्वभौम सत्ता के प्रयोग के सम्बन्ध में ( सत्ता हस्तांतरण के बाद ) सम्राट को परामर्श देने का अधिकार उसे प्राप्त होगा।

दूसरी तरह से भी रियासतों का दावा निस्सार सिद्ध हो जाता था। ब्रिटिश सरकार के उपनिवेश-सम्बंधी कानून के अनुसार "कोई भी देश उपनिवेश हो जाने के बाद सम्राट को परामर्श देने का दावा कर सकता है।" १५ अगस्त, १९४७ को उपनिवेश बन जाने के बाद इस प्रकार का दावा प्रस्तुत करने का भारत का अधिकार सुरक्षित था। यों भी ब्रिटिश सरकार की घोषणा अनर्गल थी। वैधानिक दृष्टि से सम्राट को केवल एक घोषणा द्वारा अपने विशेषाधिकार का त्याग करने का अधिकार प्राप्त न था। यह कार्य ब्रिटेन की पार्लिमेण्ट ही कर सकती थी। ब्रिटिश सरकार की ३ जून, १९४७ की घोषणा के बाद ब्रिटिश पार्लिमेण्ट भी अपना यह अधिकार खो चुकी थी। यह कार्य तब उपनिवेश की पर्लिमेण्ट ( संसद ) ही कर सकती थी।

ब्रिटिश प्रभुसत्ता की समाप्ति के बाद अपनी स्वतंत्र सत्ता का दावा करने वाली रियासतों का निश्चय किसी ऐतिहासिक परिणाम पर आधारित न था। ब्रिटिश ताज से उनका सम्बध सदा अस्पष्ट ही रहा। सन् १८५८ के अधिनियम में जिसके अनुसार कम्पनी के हाथ से भारत की शासन-सत्ता निकल गयी, यह बात विशेष रूप से कही गयी थी कि "देशी रियासतों के साथ ईस्ट इण्डिया कम्पनी की जो संधिया हुई हैं, वे बनी रहेंगी और स्थिति में कोई अंतर न पड़ेगा।" सम्राज्ञी विक्टोरिया ने भी अपनी घोषणा में यह बात दोहरायी थी किन्तु यह स्थिति बनी नहीं रही। सन् १८६१ में सार्वभौम सत्ता अथवा प्रभुसत्ता की घोषणा की गयी। फिर भी, जहां तक आंतरिक शासन का सम्बंध था, रियासतों की स्थिति बदली नहीं। प्रभुसत्ता की परिभाषा स्पष्ट नहीं हुई।

रियासतों के सम्बंध में सन् १९१९ में बटलर कमेटी नियुक्त हुई थी। वह भी प्रभुसत्ता का भाष्य कर सकने में असफल रही। इस कमेटी के सामने रियासतों ने यह कहा था कि सम्राट और रियासतों के बीच जो संधियां हुई हैं,

सन् १८६१ की घोषणा से उनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता अथवा यह घोषणा इन संधियों की शर्तें भंग नहीं कर सकती। रियासतों ने बटलर-कमेटी से यह भी कहा था कि प्रभुसत्ता में जो सम्बंध निहित है, वह सम्राट की सरकार तथा भारतीय नरेशों का वैयक्तिक सम्बंध है।

संधियों की शर्तों पर प्रभुसत्ता के प्रभाव का प्रश्न बटलर कमेटी ने यह कहकर समाप्त कर दिया था कि 'प्रभुसत्ता सर्वोच्च है। संधि की शर्तें इससे प्राप्त अधिकारों में बाधा नहीं डाल सकतीं।' अभिप्राय यह कि प्रभुसत्ता के विसर्जन का कोई ऐतिहासिक आधार न था। इसके बावजूद कुछ रियासतों ने मनमानी की। जूनागढ़ की छोटी-सी रियासत ने जो चारों ओर से भारतीय क्षेत्र से घिरी है, १६ अगस्त, १६४७ को ही पाकिस्तान में शामिल होने की घोषणा कर दी। यह विचित्र फैसला था जिसे भारत ने कभी स्वीकार नहीं किया इसके विरुद्ध जनता ने स्वयं आवाज उठायी। २५ सितम्बर, १६४७ को वहां शामल दास गांधी के नेतृत्व मे अस्थायी सरकार भी स्थापना की घोषणा करके नवाबी सत्ता को चुनौती दी गयी। यह स्थिति भी तब उत्पन्न हुई जब १७ सितम्बर, १६४७ को पाकिस्तान ने जूनागढ़ के पाकिस्तान मे शामिल होने की घोषणा सरकारी तौर पर कर दी। नवाब साहब, जूनागढ़ त्याग कर कराची चले गये। अततः ५ अक्टूबर, १६४७ को भारत सरकार ने घोषणा की कि 'जूनागढ़ का पाकिस्तान मे शामिल होना, भारत को स्वीकार नही है।' इससे स्थिति मे कोई सुधार नहीं हुआ। पाकिस्तान ने यह अड़ंगा जारी रखा और अब भी इस सम्बध में उसकी शिकायत बनी है।*

स्थिति बिगड़ती देख कर भारत सरकार के आदेश से जो जूनागढ़ के रेजिडेण्ट के अनुरोध पर आधारित था, ६ नवम्बर, १६४७ को भारतीय सेना ने जूनागढ़ में प्रवेश किया। ३ जनवरी, १६४८ को वहा की अस्थायी सरकार विघटित कर दी गयी। इसके पश्चात् इस प्रश्न पर जूनागढ़ में मत गणना आरम्भ हुई कि जूनागढ़ के लोग पाकिस्तान मे शामिल होना चाहते हैं, अथवा भारत में। २४ फरवरी तक मत-गणना का फल प्रकाशित हो गया। १,६०,७७६ मत भारत में शामिल होने के पक्ष मे तथा ६१ मत पाकिस्तान में शामिल होने के पक्ष में प्राप्त हुए थे। इस प्रकार यह प्रश्न समाप्त हो गया।

---

* १४ मई, १९५६ को भारत की लोकसभा में प्रधान मंत्री नेहरू ने प्रश्नोत्तर के दौरान में बताया था कि 'पाकिस्तान द्वारा प्रचारित नये मानचित्र में जूनागढ़ को पाकिस्तान में शामिल दिखाया गया है।'

जो मार्ग जूनागढ़ की रियासत ने अपनाया था, वही हैदराबाद ने भी अपनाया था। "२६ जून, १९४७ को हैदराबाद के निजाम ने फरमान जारी करके संविधान सभा में भाग न लेने तथा भारतीय संघ में शामिल न होने के अपने निश्चय की घोषणा की। निजाम ने यह भी घोषित किया कि ब्रिटिश प्रभुसत्ता की समाप्ति के बाद हैदराबाद को स्वतंत्र घोषित करने का अधिकार मुझे प्राप्त है। इत्तहादुल मुसलमीन नामक संस्था ने भी जिसका अध्यक्ष कासिम रिजवी था, भारत में शामिल होने और उत्तरदायी सरकार की स्थापना के विरोध में अपने निर्णय की घोषणा की। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए रजाकारों का अर्ध सैनिक संघटन कायम किया गया। उनके प्रदर्शनों की संख्या क्रमशः बढ़ने लगी। भारतीय संघ की पताका हैदराबाद में फहराने पर निजाम ने रोक लगा दी।.....प्रतिक्रियावादी तत्त्वों के दबाव में पड़ कर निजाम ने सर मिर्जा इस्माइल को जो प्रधान मंत्री थे, इस्तीफा देने को बाध्य किया; क्योंकि भारत के साथ मैत्री-पूर्ण सम्बन्ध रखने की उनकी इच्छा निजाम को रुचिकर न लगी। उनके स्थान पर निजाम ने नवाब छतारी को प्रधान मंत्री नियुक्त किया।.....जुलाई में निजाम की ओर से एक प्रतिनिधि मण्डल जिसमें नवाब छतारी, निजाम के कानूनी सलाहकार सर वाल्टर माकटन, सर सुलतान अहमद और नवाब अलीयार जंग शामिल थे, भारत सरकार से समझौता वार्ता करने के लिए दिल्ली पहुँचा। १५ अगस्त, १९४७ तक कोई समझौता न हो सका। निजाम के अनुरोध पर भारत सरकार ने सद्भावना-पूर्ण ढंग से मामला निपटाने के लिए उन्हें दो मास का समय दिया। बाद में निजाम द्वारा भेजे गये छतारी प्रतिनिधि मण्डल तथा भारत सरकार की राय से गवरनर जेनरल लार्ड माउण्ट बैटन के बीच पुनः समझौता-वार्ता आरम्भ हुई। वार्ता के दौरान में छतारी प्रतिनिधि मण्डल ने यह विचार प्रकट किया कि हैदराबाद की प्रमुख स्थिति (प्रीमियर प्रोजीशन) पर ध्यान रखते हुए, भारत के साथ उसका संबंध अन्य भारतीय रियासतों से भारत के सम्बन्ध से भिन्न होना चाहिये। प्रतिनिधि मण्डल ने यह प्रस्ताव भी रखा कि यदि एक वर्ष के लिए भारत और हैदराबाद के बीच 'यथास्थिति' (स्थिति स्थापक) समझौता हो जाय तो हैदराबाद में अधिक सौहार्द्र का वातावरण उत्पन्न होगा जिसमें अधिक स्थायी सम्बन्ध की शर्तों पर सफलता-पूर्वक वार्ता की जा सकेगी।"*

भारत सरकार समस्या को मैत्री-पूर्ण ढंग से शांति-पूर्वक निटाना चाहती

---

* हैदराबाद की समस्या पर भारत सरकार द्वारा १० अगस्त, १९४८ को प्रकाशित 'श्वेतपत्र'—पृ० सं० २३

थी, अतः उसने छतारी प्रतिनिधि-मण्डल के सुझावों पर कोई आपत्ति न प्रकट की। इसके फलस्वरूप २६ नवम्बर, १६४७ को भारत और हैदराबाद के बीच 'यथा स्थिति' (स्टैण्ड स्टिल) समझौता सम्पन्न हुआ। इस समझौते के चन्द रोज पूर्व घटने वाली घटनाओं ने हवा का रूख बता दिया था और यह स्पष्ट हो गया था कि हुकूमत निजाम की नहीं, अपितु रजाकारों की है।

२७ अक्टूबर, १६४७ को छतारी प्रतिनिधि-मण्डल के सदस्य समझौते पर निजाम की स्वीकृति प्राप्त हो जाने के बाद दिल्ली जाने वाले थे लेकिन इसी दिन रजाकारों ने उस मकान को घेर लिया जिस मे प्रतिनिधि-मण्डल के सदस्य टिके थे। स्पष्टतः पुलिस का सहयोग उन्हें प्राप्त था। सभी सदस्य बल-पूर्वक दिल्ली जाने से रोक दिये गये थे। दूसरे दिन अर्थात् २८ अक्टूबर को निजाम ने रजाकारों के नेता कासिम रिजवी को बुलाया। उनके दबाव से निजाम ने छतारी प्रतिनिधि मण्डल को विघटित कर दिया। नये प्रतिनिधि मण्डल में नवाब मोइन नवाज जग और अब्दुर रहीम जो पुरानी शासन-परिषद के सदस्य थे और जिन्होंने 'यथास्थिति' समझौते का विरोध किया था, शामिल किये गये। पहली नवम्बर को नवाब छतारी ने अपने पद से त्याग पत्र दे दिया। नये प्रतिनिधि मण्डल ने समझौते की शर्तों में कुछ परिवर्तन कराने की चेष्टा की लेकिन सफल न हुए। अंततः मौका लेने की गरज से निजाम ने समझौता कर लिया।

इसके बाद ही इत्तहादुल मुसलमीन के परामर्श से जो समझौता न होने देने के लिए कृत संकल्प थी, निजाम ने नये मन्त्रि-मण्डल का गठन किया और प्रमुख उद्योगपति लायक अली उसके प्रधान मंत्री बनाये गये।

नवम्बर समझौते की शर्तों को लागू करने के लिए लायकअली और हैदराबाद मे भारत के एजेन्ट जेनरल के० एम० मुंशी के बीच २२ जनवरी, १६४८ को वार्ता आरम्भ हुई। भारत ने समझौते की शर्तों के अनुसार कार्य आरम्भ किया। यह जानते हुए भी कि रजाकारों की शक्ति काफी बढ़ गयी हैं और हजारो सशस्त्र स्वयसेवक संघटित हैं, भारत सरकार ने हैदराबाद से फौजें हटाना आरम्भ कर दिया। किंतु निजाम और उसके मंत्रि-मंडल ने दूसरा ही रुख अपनाया। निजाम ने पाकिस्तान को २० करोड़ रुपये का ऋण देने के लिए उससे समझौता किया और अध्यादेश जारी करके हैदराबाद मे भारतीय नोट का प्रचलन बंद कर दिया। ये दोनों कार्य समझौते के विरुद्ध थे लेकिन निजाम ने इसकी परवाह न की।

समस्या के स्थायी हल के सम्बंध में भारत सरकार से वार्ता करने के लिए

हैदराबाद का एक प्रतिनिधि मंडल मार्च में पुनः दिल्ली पहुँचा। भारत के गवनर जेनरल ने ४ मार्च, १९४८ को प्रतिनिधि मण्डल के सामने रजाकार संघटन को सुरक्षा के लिए खतरनाक बताते हुए, उस पर प्रतिबंध लगाने का सुझाव रखा लेकिन इस सम्बंध में उन्हें कोई आश्वासन न मिला। प्रतिनिधि मंडल हैदराबाद लौट गया। वहां लायक अली ने भारत के एजेंट जेनरल से पुनः वार्ता आरम्भ की जिसका एक मात्र उद्देश्य यह था कि किसी प्रकार हैदराबाद के पचीस हजार सैनिकों तथा पैंतीस हजार पुलिस कर्मचारियों के लिए आधुनिक शस्त्रास्त्र और गोली-बारूद मिल जाय और भारत मे निजाम ने बहुत बड़े पैमाने पर जो सैनिक सामग्री खरीद रखी थी, वह अबाध गति से हैदराबाद मे पहुँच जाय।

इस बीच रियासत मे रजाकारों का जुल्म बढ़ने लगा था। हिन्दुओं को तरह-तरह से यातनाएं दी जाने लगी थीं। हैदराबाद के सीमावर्ती क्षेत्र मे भी रजाकारों ने लूटमार शुरू कर दी थी। भारत सरकार ने कोशिश की कि निजाम इन घटनाओं को रोके लेकिन वहां तो इरादा ही कुछ और था। रजाकारों का जुल्म बढ़ता गया। उधर सिडनी काटन नामक अंग्रेज ने हवाई यात्रा के नियमों का उलंघन करते हुए हैदराबाद मे पाकिस्तान से शस्त्रास्त्र पहुँचना आरम्भ किया। भारत के विरुद्ध प्रचार के लिए कासिम रिजवी और उसके अनुयायी खुलेआम हैदराबाद रेडियो स्टेशन का दुरुपयोग करने लगे। रिजवी दिल्ली पर आसफशाही झंडा गाड़ने का स्वप्न देखने लगा। खून की नदी बहाने की धमकी दी जाने लगी। इन कारवाइयों को रोकने की भारत ने हर सम्भव चेष्टा की। समझौते के लिए काफी लिखा-पढ़ी भी हुई लेकिन निजाम तो रिजवी के हाथों मे नाच रहा था जो भारत मे आसफशाही परचम लहराने का स्वप्न देख रहा था, अतः समझौता न हो सका। अंततः बाध्य होकर रियासत मे रजाकारों के बढ़ते हुए जुल्म को मिटाने के लिए भारत सरकार ने १३ सितम्बर, १९४८ को पुलिस कारवाई आरम्भ की। रजाकारों का दमन किया गया। रिजवी कैद कर लिया गया और उसे सजा दी गयी। हैदराबाद का प्रशासन भारत के सैनिक गवरनर के मातहत कर दिया गया। तब निजाम की आँखें खुली। हैदराबाद रियासत के कांग्रेस के नेता जेल से रिहा किये गये। संयुक्त राष्ट्रसघ में निजाम ने भारत के विरुद्ध जो शिकायत की थी, उसे वापस लेने का हुक्म १८ सितम्बर को उसने जारी किया। इसके बावजूद नवाब मोइन नवाज जंग ने जो सुरक्षा परिषद में भारत-विरोधी शिकायत पेश करने गये थे, यह घोषित किया कि 'भारत-हैदराबाद का विवाद सुरक्षा परिषद के सामने रहेगा'

लेकिन यह निरर्थक घोषणा थी जिसका अंत कुछ समय के बाद आपसे आप हो गया।

१८ अक्तूबर, १९५८ को हैदराबाद में अस्थायी सैनिक सरकार स्थापित हुई। अगले वर्ष बीस फरवरी को इस सरकार ने निजाम की निजी जमींदारी अपने हाथ में ले ली। इसके पश्चात् हैदराबाद में लोकप्रिय मंत्रिमंडल की स्थापना हुई और निजाम को राजप्रमुख बनाकर रियासत को आत्म-निर्भर पृथक राज्य बना दिया गया।

जूनागढ़ और हैदराबाद, इन दो रियासतों की समस्या हल करने में ही भारत सरकार को कुछ मगजपच्ची करनी पड़ी थी। अन्य रियासतों का मामला बड़ी सहूलियत से निपट गया।

५ जुलाई, १९४७ को भारत सरकार ने राज्य मंत्रालय की स्थापना की घोषणा की। सरकार पटेल इस विभाग के भी मंत्री हुए। कई वर्षों तक यह विभाग कायम रहा। अंत में सन् १९५५ में यह गृह मंत्रालय में मिला दिया गया।

५ जुलाई को नये विभाग का मंत्रित्व ग्रहण करने के बाद सरदार पटेल ने रियासतों के प्रति भारत सरकार की नीति के सम्बंध में ऐतिहासिक भाषण किया था और भारत के भाग्य-निर्माण की प्रक्रिया में अपना पार्ट अदा करने के लिए रियासती नरेशों का आह्वान किया था। सरदार पटेल ने प्रभुसत्ता की समाप्ति पर संतोष प्रकट किया था और यह विचार व्यक्त किया था कि 'रियासतों और ब्रिटिश भारत के पारस्परिक स्वार्थ की दृष्टि से दोनों में सहयोग की काफी गुंजाइश है।' नीति-विषयक इस वक्तव्य के आधार पर रियासती नरेशों से समझौता-वार्ता चलाने का कार्य भारत सरकार ने लार्ड माउण्ट बैटन को सौंपा जो उस समय सम्राट के प्रतिनिधि थे।

"वाइसराय लार्ड माउण्ट बैटन ने २५ जुलाई, १९४७ को "चैम्बर आफ प्रिंसेज' ( नरेश मंडल ) की बैठक आमंत्रित की। बैठक मूलतः 'स्थिति स्थापक' समझौते का रास्ता ढूढ़ निकालने की समस्या पर विचारार्थ बुलायी गयी थी। फिर भी, राज्य मंत्रालय की दृष्टि में भारत में रियासतों के शामिल होने का प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण था, अतः विषय-सूची में यह विषय भी शामिल कर लिया गया था। सम्मेलन के समक्ष अपने भाषण के दौरान में वाइसराय लार्ड माउण्ट बैटन ने रियासती नरेशों को यह सलाह दी थी कि 'आप प्रतिरक्षा, परराष्ट्र सम्बंध और संवहन के मामले में ऐसे उपनिवेश में शामिल हो हो जायं जिसमें शामिल होना उचित हो।' उन्होंने उन्हें यह आश्वासन भी

दिया था कि इससे उन पर किसी वित्तीय दायित्व का बोझ न पड़ेगा और आंतरिक स्वतंत्रता में भी हस्तक्षेप न होगा।"*

बैठक के अंत में समझौता-वार्ता के लिए एक समिति संघटित हुई जिसे भारत मे देशी रियासतों के शामिल होने की शर्तें तय करने के लिए भारत सरकार से वार्ता करने का काम सौंपा गया था। वार्ता हुई और उसके फल-स्वरूप संधि-पत्र ( इंस्ट्रूमेंट आव एक्सेशन ) का मसविदा स्वीकृत हुआ। यह संधि-पत्र केवल पूर्ण अधिकार प्राप्त नरेशों द्वारा स्वीकार किया गया था। जिन रियासतों के सम्बंध मे सम्राट के प्रतिनिधि को कुछ अधिकार प्राप्त थे, उन रियासतों ने एक पृथक संधि-पत्र पर हस्ताक्षर किये जिसके अनुसार उपनिवेश की सरकार को सम्राट के प्रतिनिधि के अधिकार प्राप्त हो गये। इसके अतिरिक्त संक्रमण काल के लिए 'स्थिति स्थापक' समझौता भी हुआ लेकिन उन्हीं रियासतों से जिन्होंने भारत में शामिल होने के संधि-पत्र पर हस्ताक्षर किये थे। इस प्रकार रियासतों की समस्या का पहला दौर समाप्त हुआ। दूसरे दौर की समाप्ति उड़ीसा और छत्तिसगढ़ की रियासतों के पड़ोसी प्रान्तों में विलयन के सम्बन्ध में भारत सरकार की काररवाई से हुई। १४ दिसम्बर, १९४७ को भारत की औपनिवेशिक सरकार तथा उड़ीसा के 'बी' तथा 'सी' श्रेणी के देशी राजाओं के बीच एक समझौता सम्पन्न हुआ। इस समझौते के अनुसार यह तय हुआ था कि—

(१) राजा अपने राज्य का शासन चलाने तथा उसके सम्बन्ध मे अन्य अधिकार, न्याय-व्यवस्था और सम्पूर्ण तथा एकमात्र सत्ता उपनिवेश सरकार के हाथ में अर्पित करता है और राज्य का शासन १ जनवरी, १९४८ से उसे हस्तांतरित करना स्वीकार करता है। उपर्युक्त तिथि से भारतीय उपनिवेश की सरकार को अधिकार होगा कि वह जिस तरह चाहे उस तरह और जिसके जरिये उचित समझे, उसके जरिये उक्त अधिकारों, सत्ता, एवं न्याय-व्यवस्था का प्रयोग करे।

(२) १ जनवरी, १९४८ से राजा को अपने निजी खर्च के लिए राज्य की आमदनी में से एक निर्धारित वार्षिक वृत्ति, जिस पर कोई कर न लगेगा, पाने का अधिकार होगा। राजा को अपना तथा अपने परिवार का कुल खर्च पूरा करना होगा अर्थात् कर्मचारियों का वेतन, महल का खर्च तथा विवाह

---

* जुलाई, १९४८ में रियासतों के सम्बंध में भारत सरकार द्वारा प्रकाशित—'श्वेत-पत्र' पृ० सं० १३—१४

आदि का खर्च, सब इससे ही निकालना होगा। किसी भी कारण से न तो यह रकम बढ़ायी जायगी, न इसमें कमी की जायगी।

(३) राजा चाहे तो चार किस्तों में अर्थात् तीन-तीन मास पर अपने रुपये पेशगी ले सकता है। यह रकम राज्य के खजाने में या उपनिवेश सरकार जहां आदेश दें, वहां के खजाने में बिल भेजने से मिल जाया करेगी।

इस समझौते की तारीख को राज्य में राजा की जितनी सम्पत्ति होगी, रियासत की सम्पत्ति को छोड़कर, उसे पूर्ण रूप से अपने कब्जे में रखने और उसके उपयोग का अधिकार राजा को प्राप्त होगा। राजा के पास जितनी अचल सम्पत्ति, 'सिक्यूरिटियां' तथा नकद रुपया निजी सम्पत्ति के रूप में होगा, उसकी सूची बनाकर वह १ जनवरी, १९४८ तक उपनिवेश सरकार को दे देगा।

आगे चल कर यदि इस प्रकार का कोइ झगडा उठ खड़ा हो कि कोई सम्पत्ति राजा की निजी मिल्कियत है या रियासत की तो यह प्रश्न न्याय-सम्बन्धी मामलों में अनुभव प्राप्त जिस अधिकारी को भारत सरकार नामजद करे, उसे सुपुर्द कर दिया जायगा। उसका निर्णय अंतिम होगा और दोनों पक्षों को मान्य होगा।

(४) १५ अगस्त, १९४७ के पूर्व राज्य की सीमा के अन्दर या बाहर, राजा, रानी, राजमाता, राजकुमार तथा राजकुमारी को जो विशेषाधिकार एवं विशेष सुविधाएं प्राप्त थीं, वे यथापूर्व कायम रहेंगी।

(५) भारत सरकार आश्वासन देती है कि वह गद्दी के लिए कानून और परम्परा के अनुसार उत्तराधिकारी का अधिकार स्वीकार करेगी और उसके विशेषाधिकार, विशेष सुविधाएं, उपाधियां आदि पूर्ववत् मान्य होगी।*

छत्तिसगढ़ की रियासतों से भी इस प्रकार का समझौता हुआ था।

उड़ीसा और छत्तिसगढ़ की रियासतों की संख्या ३९ थी। इनका क्षेत्र फल ५६ हजार वर्ग मील और राजस्व दो करोड़ रुपया वार्षिक था तथा इनकी आबादी ७० लाख थी। १ जनवरी, १९४८ को इनका प्रशासन उड़ीसा और मध्य प्रान्तों की सरकारों को सुपुर्द कर दिया गया। मध्य भारत की रियासत मकराई के शासक ने भी उपर्युक्त प्रकार के समझौते पर हस्ताक्षर कर दिये थे। १ फरवरी, १९४८ को यह रियासत मध्य प्रान्त से सम्बद्ध कर दी गयी थी। इस

* रियासतों सम्बन्धी 'श्वेत पत्र'—पृ० सं० ५५-५६

समझौते के अनुसार उडीसा प्रांत में मिलायी जाने वाली २५ रियासतों में सराय केला और खरसवां की रियासतें भी थीं। प्रशासन-सम्बन्धी सुविधाओं पर ध्यान देते हुए १८ मई, १९४८ को भारत सरकार ने उड़ीसा से इन रियासतों का प्रशासन लेकर बिहार प्रान्त को सुपुर्द कर दिया था।

इससे, अन्य छोटी रियासतों को जिनके साधन बहुत सीमित थे, एक रास्ता मिला और उन्होंने भी उड़ीसा और छत्तिसगढ़ की रियासतों का अनुकरण किया। दक्षिण की रियासतों ने पहले प्रस्तावित संयुक्त दक्षिण राज्य में अपने विलयन का निर्णय किया था। बाद ने उन्होंने अपना निर्णय बदल दिया और १९ फरवरी, १९४८ को बम्बई मे विलयन के करार पर हस्ताक्षर कर दिये। कोल्हापुर को छोड़ कर दक्षिण की १७ रियासतें इस प्रकार बम्बई में मिल गयीं। इनका क्षेत्रफल ७,६५१ वर्ग मील और आबादी लगभग १७ लाख थी। इनके वार्षिक राजस्व की रकम लगभग एक करोड़ चालिस लाख रुपये थी।

इसी प्रकार १० जून, १९४८ को बम्बई में गुजरात की रियासतों के विलयन के समझौते पर भी हस्ताक्षर कर दिये गये थे। इन रियासतों और जागीरों की कुल संख्या १५७ और आबादी २७ लाख थी। इनका क्षेत्रफल १९,३०० वर्ग मील तथा राजस्व एक करोड़ पैंसठ लाख रुपये था।

लोहारु, दुजना और पट्टौडी की रियासतों के नरेशों ने भी पूर्व पंजाब में विलयन का निर्णय किया और क्रमशः १७ फरवरी, ३ मार्च और १८ मार्च को एतत्सम्बन्धी समझौते पर हस्ताक्षर कर दिये। ऐसे ही समझौते पर बगनापल्ली और पुद्दूकोट्टई की रियासतों के नरेशों ने भी क्रमशः १८ और २९ फरवरी १९४८ को हस्ताक्षर किये थे और मद्रास प्रांत में शामिल हो गये थे।

१५ अप्रैल, १९४८ को हिमाचल प्रदेश का अस्तित्व कायम हुआ। यह केंद्र-शासित प्रदेश रहा जो पूर्वी पंजाब की १२ पहाड़ी रियासतों को मिला कर बनाया गया था। इनमें बिलासपुर की रियासत भी शामिल थी जो बाद में भाखड़ा बांध के प्रशासन की सुविधा की दृष्टि के केन्द्र-शासिक पृथक रियासत मान ली गयी।

कच्छ की रियासत ने भी भारत मे शामिल होने का निर्णय किया और इससे सम्बधित समझौता १ जून, १९४८ को लागू हो गया। यह केन्द्रीय प्रशासन के अन्तर्गत मुख्य आयुक्त (चीफ कमिश्नर) द्वारा शासित पृथक प्रदेश बना दिया गया। इसकी आबादी ५ लाख, क्षेत्रफल ८,४६१ वर्ग मील और राजस्व ८० लाख रुपये था।

इस सिलसिले में कुछ रियासतों को मिला कर पृथक प्रदेश बनाने तथा वहां लोक प्रतिनिधि सरकार कायम करने की नीति भी अपनायी गयी। इसके अनुसार सबसे पहले काठियावाड़ की रियासतों का मामला निपटाया गया जिनकी संख्या २१७ थी। केवल जूनागढ़ की रियासत बाहर रह गयी थी।* काठियावाड़ की रियासतों को मिला कर 'सौराष्ट्र' प्रदेश बनाने की योजना जनवरी, १९४८ के अंतिम सप्ताह में पूरी हो गयी थी और सम्बंधित समझौते पर २३ जनवरी, १९४८ को हस्ताक्षर कर दिये गये थे। १५ फरवरी, १९४८ को गृह और राज्य मंत्री सरदार पटेल ने 'सौराष्ट्र' का उद्घाटन किया था। इसमें लोक निर्वाचित विधान सभा द्वारा नियुक्त मंत्रि-मंडल के शासन की व्यवस्था हुई थी। यह भी तय हुआ था कि नरेशों की परिषद द्वारा निर्वाचित कोई नरेश राज्य का वैधानिक अध्यक्ष होगा जो राज प्रमुख कहलायेगा। इस प्रकार कुछ बड़ी रियासतों के नरेशों को राज्यपाल के समकक्ष पद प्रदान करने की पद्धति अपनायी गयी। बाद में इस व्यवस्था का काफी विरोध हुआ और राज्य पुनर्गठन आयोग ने इसका अंत करने की सिफारिश की जो १९५६ में भारत सरकार ने स्वीकार कर ली।

काठियावाड़ की रियासतों के संघ की भांति और भी रियासती संघों का अस्तित्व कायम हुआ। २८ फरवरी, १९४८ को अलवर, भरतपुर, धौलपुर और करौली की रियासतों के नरेशों ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किये थे जिसके अनुसार इन्हें मिलाकर १८ मार्च, १९४८ को मत्स्य राज्य की स्थापना की गयी थी। इसका क्षेत्रफल ७,५३६ वर्ग मील, आबादी १८,३७,९९४ और राजस्व १,८३,०६,२२१ रुपये था। ४ अप्रैल, १९४८ को विंध्य प्रदेश का अस्तित्व कायम हुआ था जिसमें बुंदेल खंड और बघेलखंड की ३५ रियासतें शामिल हुई थीं। इसका क्षेत्रफल २४,६१० मील, आबादी ३५,६९,४५५ तथा राजस्व २॥ करोड़ रुपये वार्षिक था। यहां राजप्रमुख के स्थान पर भारत सरकार ने लेफ्टिनेंट गवरनर की नियुक्ति की थी और यह उसके प्रशासन के अन्तर्गत रहा।

२५ मार्च १९४८ को राजस्थान प्रदेश का निर्माण हुआ था। पहले इसमें राजपूताना की छोटी रियासतें, किशनगढ़, कोटा, प्रतापगढ़, शाहपुर और टोंक रियासतें शामिल हुई थीं लेकिन १८ अप्रैल, १९४८ को इसका

---

* २० जनवरी, १९४९ को जूनागढ़ भी सौराष्ट्र सरकार के प्रशासनान्तर्गत आ गया था।

पुनर्गठन हुआ। उदयपुर की रियासत भी इसमें शामिल हो गयी। २८ मई, १९४८ को मध्य भारत की नींव पड़ी जिसमें ग्वालियर के संयुक्त राज्य, इन्दौर और मालवा की बीस रियासतें शामिल की गयीं थीं। सबसे अन्त में अर्थात् १४ जुलाई, १९४८ को पटियाब ( पटियाला और पूर्वी पंजाब की रियासतों का संघ ) संघ अस्तित्व में आया था।

जुलाई, १९४८ तक जब भारत सरकार ने रियासतों के सम्बन्ध में 'श्वेत-पत्र' प्रकाशित किया था, रियासतों को भारत का अंग बनाने की कारर-वाई के तीन प्रकार थे। जैसा कि बताया जा चुका है, पहले कुछ रियासतें पड़ोस के प्रान्तों में मिलायी गयी थीं। इनकी संख्या २१९ थी। फिर केन्द्र-शासित प्रदेशों की रचना के रूप में उनके एकीकरण की नीति अपनायी गयी। इससे प्रभावित रियासतों की संख्या २२ थी। अन्ततः रियासतों को मिला कर पृथक इकाई के रूप में उनका अस्तित्व कायम किया गया था। इस योजना के अन्तर्गत २९४ रियासतें आयी थीं।

बड़ौदा, हैदराबाद, कश्मीर और जम्मू, मैसूर, भोपाल, कोल्हापुर, त्रावनकोर, बीकानेर, कोचीन, जयपुर, जोधपुर और मयूरभज की रियासतें आत्मभरित इकाईयों के रूप में मान ली गयी थीं और सविधान सभा में इनमें से प्रत्येक को अलग-अलग प्रतिनिधित्व प्राप्त था। जो रियासतें आत्मनिर्भर नहीं मानी गयीं किन्तु जिन पर विलयन अथवा एकीकरण की नीति का प्रभाव भी नहीं पड़ा था, उनकी संख्या नौ थी। इनमे ये रियासतें थी—बनारस, कूच बिहार, जैसलमेर, खासी रियासतें, मणिपुर, रामपुर, संदूर, टेहरी-गढ़वाल और त्रिपुरा।

आत्मभरित इकाई के रूप में स्वीकार की जाने वाली प्रत्येक रियासत ने लोक प्रतिनिधि सरकार की स्थापना का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया था और ऐसी सरकार की स्थापना की कारर्वाई भी आरम्भ हो गयी थी।

सन् १९४९ में रियासतों के एकीकरण की दिशा में कुछ अधिक तेजी के साथ प्रगति हुई। नव-वर्षारम्भ के दिन ही उड़ीसा ने मयूरभंज का शासन सम्भाल लिया था। इसके ठीक दो मास के बाद अर्थात् पहली मार्च को कोल्हापुर का शासन बम्बई प्रदेश की सरकार को सुपुर्द कर दिया गया था। इसी मास के अन्त में वृहत्तर राजस्थान का निर्माण हुआ था जिसमें जयपुर, जोधपुर, बीकानेर और जैसलमेर की रियासतें भी शामिल हो गयी थीं। इस पुनर्गठित प्रांत अथवा प्रदेश का उद्घाटन सरदार पटेल ने किया था।

पश्चिमी भारत में बड़ौदा की रियासत बम्बई में मिला दी गयी (१ मई,

१९४९) थी। ठीक एक मास पश्चात् पहली जून को भोपाल के शासक तथा वहां की जनता की इच्छा के अनुसार केन्द्रीय सरकार ने स्वयं इसका शासन संभाल लिया। यह बड़ी मुसलिम रियासत कुछ समय तक भारत सरकार के सिर दर्द का कारण बनी रही।

२ जुलाई, १९४९ को त्रावनकोर-कोचीन संघ की स्थापना हुई और त्रावनकोर नरेश इसके राजप्रमुख नियुक्त हुए। रामपुर की रियासत, १० नवम्बर, १९४९ को, बनारस की रियासत १५ अक्तूबर, १९४९ को और टेहरी गढ़वाली की रियासत १ अगस्त, १९४९ को संयुक्त प्रात (अब उत्तर प्रदेश) में मिला दी गयी थी। इसी प्रकार पहली जनवरी, १९५० को कूच बिहार की रियासत पश्चिमी बंगाल प्रांत मे मिला दी गयी थी। शेष रियासतें केन्द्रीय प्रशासन के अन्तर्गत आयीं और उनमें चीफ कमीश्नरों की नियुक्ति हुई।

सिक्किम का उल्लेख अब तक नहीं किया गया है। सामरिक दृष्टि से इसकी अवस्थिति काफी महत्त्व-पूर्ण है। इसके एक ओर तिब्बत, दूसरी ओर भूटान, तीसरी ओर नेपाल की सीमाएं हैं और चौथी ओर यह पश्चिमी बंगाल के दार्जिलिंग जिले की सीमा से सटी है। यहां के अधिकतर लोग बौद्ध मतावलम्बी हैं। इस रियासत पर सिक्किम नरेश का शासन है लेकिन वैदेशिक मामलों के सम्बंध में यह भारत सरकार के अन्तर्गत है।

इस प्रकार २६ जनवरी, १९५० तक जिस दिन संविधान लागू हुआ और सर्वतंत्र स्वतंत्र गणराज्य भारत अस्तित्व में आया, सारे भारत का नक्शा बदल चुका था और वृहत्तर भारत का निर्माण हो चुका था। इस कल्पना को मूर्त करने वाले भारत के तत्कालीन गृह और राज्य मंत्री सरदार वल्लभ भाई पटेल के शब्दों में "५ सौ से कुछ अधिक रियासतों का इकाइयों में एकीकरण करके और शताब्दियों पुरानी स्वेच्छाचारिता का अंत करके भारतीय लोकतंत्र ने महान् विजय प्राप्त की।"

इस प्रसंग में यह बता देना भी आवश्यक है कि भारत सरकार ने विलीन रियासतों और राज्य संघों में एकीकृत रियासतों के नरेशों को निजी खर्च (पेंशन) देने का अभिवचन दिया और इसकी रकम विलयन के विभिन्न संधि-पत्रों और समझौतों की शर्तों के अनुसार निश्चित कर दी। भारत के संविधान की धारा २६७-अ में इन अभिवचनों को वैधानिक रूप प्रदान किया गया है। इसके अनुसार यह खर्च केन्द्र की आमदनी से पूरा करने का निर्णय किया गया।

देशी रियासतों के नरेशों की पेंशन का हिसाब इस अनुपात से लगाया

गया था—सम्बंधित राज्य की एक लाख तक की साधारण वार्षिक आमदनी पर पन्द्रह प्रतिशत, इसके ऊपर चार लाख तक की आमदनी पर दस प्रतिशत और ५ लाख से ऊपर की आमदनी पर ७॥ प्रतिशत। इसके साथ शर्त यह रखी गयी कि प्रतिशत के अनुसार स्वीकृत पेंशन की रकम अधिक से अधिक दस लाख तक हो सकती। "जहां तक निजी खर्च की इस अधिकतम रकम (१० लाख रुपये) का सम्बध है, यह केवल कुछ ऐसी बड़ी रियासतों के नरेशों के सम्बंध में बढ़ायी गयी जिन्हें आत्म निर्भर—स्वीकार कर लिया गया था। ऐसे मामलों मे जो रकमें निर्धारित की गयीं वे केवल वर्तमान नरेशों के जीवन काल तक मिलेगी।" देशी-नरेशों की पेंशन के लिए स्वीकृत कुल वार्षिक रकम करीब ४॥ करोड़ रुपये रही है।

—:०:—

# गणराज्य भारत का संविधान

**संविधान निर्मात्री सभा की प्रथम बैठक—प्रारूप समिति की नियुक्ति संविधान पर स्वीकृति और उस पर अमल—संविधान की मुख्य व्यवस्थाएं विभिन्न देशों के संविधानों की छाप—केंद्र की स्थिति दृढ़—संशोधन।**

पिछले अध्यायों में उन बड़ी-बड़ी राजनीतिक समस्याओं का सक्षिप्त विवरण दिया जा चुका है, स्वतंत्रता की उपलब्धि के बाद अढ़ाई वर्षों तक जिनका सामना निरन्तर स्वतंत्र भारत की सरकार को करना पड़ा। इनको हल करने मे ही यदि सारी शक्ति लगी रहती तो भी आश्चर्य न होता लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि इनका सामना करते हुए भी भारत अपने भाग्य-निर्माण की अन्य दिशाओं मे भी तेजी से गतिशील रहा। रियासतों की गम्भीर समस्या का अंत करने के साथ-साथ उसने स्वतंत्र भारत के संविधान के निर्माण को महती समस्या भी हल कर डाली। विश्व के इतिहास मे ऐसे अनेक देशों का विवरण मिलता है, जहां केवल संविधान-निर्माण की समस्या हल करने के प्रयास मे ही काफी उलट-फेर हुआ और समय लगा। भारत ने अत्यंत तीव्रगति के साथ शांति-पूर्वक यह समस्या भी हल की। नवम्बर, १९४९ मे संविधान के निर्माण का कार्य सम्पन्न हो गया और २६ जनवरी, १९५० को इसे लागू करके सर्वतंत्र स्वतंत्र गणराज्य भारत की स्थापना की गयी।

संविधान निर्मात्री सभा की प्रथम बैठक ९ दिसम्बर, १९४६ को हुई थी। इसका निर्वाचन ब्रिटेन के मंत्रि-मंडल मिशन की १६ मई, १९४६ की घोषणा के अनुसार हुआ था जिसका उल्लेख यथास्थान किया जा चुका है। २९ अगस्त, १९४७ को संविधान सभा ने ७ सदस्यों की प्रारूप समिति नियुक्त की थी जिसके अध्यक्ष डा० भीमराव अम्बेदकर थे। समिति द्वारा प्रस्तुत संविधान का प्रारूप फरवरी, १९४८ मे प्रकाशित कर दिया गया था। इस पर संविधान सभा में विचार हुआ। १५ नवम्बर, १९४९ को सविधान स्वीकार कर लिया गया और इसके द्वारा भारत सर्वतंत्र स्वतंत्र गणराज्य घोषित किया गया। २६ जनवरी, १९५० को यह लागू कर दिया गया। गणराज्य होते हुए भी भारत ने ब्रिटिश राष्ट्रमंडल से सम्बन्ध नहीं विच्छेद किया। इतना अवश्य

हुआ कि 'ब्रिटिश राष्ट्रमंडल' से ब्रिटिश शब्द हटाना ब्रिटेन ने स्वीकार कर लिया।

नये संविधान के अनुसार भारत के लगभग १७ करोड़ वयस्क स्त्री-पुरुषों को विधान सभाओं और ससद के लगभग ४५०० सौ सदस्यों के निर्वाचन में मतदान करने का अधिकार प्राप्त हुआ।

भारत के संविधान में कुल तीन सौ पनचानबे धाराएं और आठ परिशिष्ठ हैं। इसके द्वारा प्रतिष्ठित गणराज्य के आधारभूत सिद्धांत ये बताये गये हैं— सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, भाषण, धर्म तथा उपासना की स्वतंत्रता और समानता।

संविधान के अनुसार भारत राज्यों का संघ बनाया गया है।राज्य मे प्रान्त, केन्द्रीय शासनान्तर्गत क्षेत्र, रियासती सघ तथा अंदमान और निकोबार द्वीप समूह शामिल किये गये हैं।

सविधान के प्रथम भाग मे राज्यों की सीमा में हेरफेर तथा इस सम्बंध मे संसद के अधिकारों की व्यवस्था है। द्वितीय भाग में नागरिकता की व्याख्या की गयी है। तीसरे भाग मे मौलिक अधिकारों का उल्लेख है। इसमे बताया गया है कि राज्य मे किसी भी नागरिक के साथ केवल धर्म, नस्ल, जाति, स्त्री-पुरुष भेद, जन्मस्थान या इनमे से किसी के आधार पर कोई भेद-भाव न होगा। अस्पृश्यता के आधार पर किसी को अयोग्य बताना संविधान के इस भाग की धाराओं के अनुसार दण्डनीय अपराध माना गया है। प्रत्येक नागरिक को लोकतंत्र सम्मत सभी मौलिक अधिकार प्रदान किये गये हैं। नजरबंदी के सम्बन्ध मे यह व्यवस्था की गयी है कि गिरफ्तार व्यक्ति को शीघ्रातिशीघ्र गिरफ्तारी का कारण बता दिया जायगा और कानूनी तरीके से अपना बचाव करने की पूरी सुविधा उसे प्रदान की जायगी। मनुष्य का क्रय-विक्रय, बेगार और बलात्-श्रम वर्जित कर दिया गया है किन्तु सार्वजनिक कार्यों के लिए राज्य को अनिवार्य सेवा का नियम लागू करने का अधिकार दे दिया गया है। सम्पत्ति पर अधिकार के सम्बंध में यह व्यवस्था की गयी है कि कोई भी व्यक्ति कानूनी आधार के बिना अपनी सम्पत्ति से वंचित न किया जायगा। कोई भी सम्पत्ति तब तक सरकार अपने अधिकार में नहीं ले सकती जब तक उसका प्रतिकर अथवा प्रतिकर का सिद्धान्त निर्धारित न कर दिया गया हो।

संविधान के चौथे भाग में राज्य की नीति के संचालन से सम्बंधित निर्देश हैं। इसमे कहा गया है कि 'संविधान के लागू होने की तिथि से दस वर्ष के अंदर १४ वर्ष की उम्र तक के सब बच्चों की निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था राज्य

करे। इसमें परिगणित जातियों और आदिवासियों की दशा पर विशेष ध्यान देने को भी कहा गया है।

पांचवे भाग में राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति पद से सम्बंधित निर्देश हैं। उनके अधिकार के सम्बंध में कहा गया है कि 'उनमे संघ की कार्यकारिणी शक्ति निहित होगी। वह सेनाओं का सर्वोच्च अधिकर्त्ता होगा। सभी कानून राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त होने के बाद ही लागू किये जा सकते हैं।'

राष्ट्रपति-पद पर पैंतिस वर्ष की उम्र वाला कोई भी ऐसा व्यक्ति व्यवस्था के अनुसार संसद के दोनों सदनों के निर्वाचक मंडल द्वारा चुना जा सकता है, जो लोकसभा का सदस्य चुने जाने की योग्यता रखता हो।

संविधान का उलघन करने पर राष्ट्रपति के विरुद्ध संसद का कोई भी सदन अभियोग लगा सकता है। कम से चौथाई सदस्यों द्वारा चौदह दिनों की नोटिस और कम से कम दो-तिहाई सदस्यों की स्वीकृति होनी चाहिये। ऐसा होने पर संसद का कोई सदस्य या तो स्वयं जाच करेगा अथवा करायेगा। अपनी सफाई देने का अधिकार राष्ट्रपति को प्राप्त है। जाच के बाद सदन के दो-तिहाई सदस्य अभियोग-प्रस्ताव को स्वीकार करें तो राष्ट्रपति को पदच्युत किया जा सकता है।

उपराष्ट्रपति का निर्वाचन दो सदनों के संयुक्त अधिवेशन में होता है और वह राज्य परिषद का अध्यक्ष होता है लेकिन सदस्य नहीं हो सकता।

राष्ट्रपति को अध्यादेश जारी करने का अधिकार प्राप्त है लेकिन ससद के अगले अधिवेशन में स्वीकृत के लिए इसे पेश करना भी अनिवार्य माना गया है। छ सप्ताह के अन्दर अध्यादेश के स्वीकृत न होने पर वह रद्द माना जाता है। किसी भी समय अध्यादेश को वापस लेने का अधिकार भी राष्ट्रपति को प्राप्त है।

राष्ट्रपति की सहायता के लिये संविधान में मत्रि-मंडल के गठन की व्यवस्था की गयी है जिसका मुख्य प्रधान मंत्री कहलाता है। राष्ट्रपति अन्य मंत्रियों की नियुक्ति, प्रधान मंत्री के परामर्श से करते हैं। व्यवस्था यह है कि मंत्री को अपनी नियुक्ति के छः मास के अंदर संसद के किसी सदन का सदस्य निर्वाचित होना चाहिये, यदि वह सदस्य न चुना गया हो तो।

संविधान के अनुसार संसद दो सदनों की, लोकसभा और राज्य-परिषद को मिलाकर बनती है। राज्य-परिषद के सदस्यों की कुल संख्या २५० मानी गयी है जिनमें १२ राष्ट्रपति द्वारा नामजद तथा शेष विभिन्न राज्यों के

प्रतिनिधि होते हैं। लोकसभा के सदस्यों की अधिकतम संख्या पांच सौ है और इनका सीधा निर्वाचन होता है। राज्य अनेक निर्वाचन क्षेत्रों में बांटे जाते हैं और ६ लाख की संख्या पर एक प्रतिनिधि चुना जाता है।

लोकसभा की अवधि पांच वर्ष की मानी गयी है। संकट-काल की घोषणा होने पर राष्ट्रपति को एक बार एक वर्ष तथा पुनः ६ मास तक कार्यकाल बढ़ाने का अधिकार प्राप्त है। राज्य सभा की कोई अवधि नहीं है और उसके तिहाई सदस्यों का चुनाव प्रति दो वर्ष के बाद होता है।

संविधान में सर्वोच्च न्यायालय की भी व्यवस्था की गयी है। इसके प्रधान न्यायाधीश की नियुक्ति का अधिकार राष्ट्रपति को प्राप्त है। अधिक से अधिक सात न्यायाधीश नियुक्त किये जा सकते हैं। प्रधान न्यायाधीश के परामर्श से अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति करते हैं। संविधान में यह व्यवस्था है कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्वीकृत कानून या कानूनी सिद्धांत सभी न्यायालयों को मान्य होंगे।

सविधान मे राज्यों के शासन की व्यवस्था का उल्लेख बहुत विस्तार से किया गया है और केंद्र तथा प्रदेश के पारस्परिक सम्बन्धों का उल्लेख है।

संविधान में अल्प-संख्यकों की चर्चा कहीं नहीं की गयी है। 'कुछ वर्गों' की चर्चा का इसमें उल्लेख हैं जिनमे परिगणित जातियां, परिगणित आदिवासी औद एंग्लो इण्डियन शामिल हैं। इन्हें कुछ रियायतें दी गयी हैं।

भारतीय संघ की सरकारी भाषा देवनागरी लिपि मे हिन्दी मानी गयी है। यह मान लिया गया है कि 'संविधान के लागू होने के बाद १५ वर्षों तक सरकारी काम में अंग्रेजी का व्यवहार पूर्ववत् होता रहेगा।' अंक रोमन लिपि के स्वीकार किये गये हैं।

संकट-कालीन स्थिति के समय संघ को व्यापक अधिकार संविधान में दिये गये हैं। इनका उपयोग करके राज्यो के शासन में पूर्ण हस्तक्षेप का अधिकार संघ सरकार को प्राप्त है। गम्भीर स्थिति उत्पन्न होने, भारत या इसके किसी भी भाग मे युद्ध, आक्रमण या आतरिक विप्लव होने के संकट की स्थिति में राष्ट्रपति को संकट-कालीन स्थिति की घोषणा करने का अधिकार संविधान द्वारा दिया गया है। संसद के दोनों सदन संकट-कालीन स्थिति की घोषणा की तिथि से दो मास के अंदर यदि इसे स्वीकार न करें तो घोषणा रद्द हो जायगी। इस प्रकार की घोषणा से पूर्व या दो मास के अंदर लोक सभा भंग हो गयी हो तो यह नयी लोकसभा के प्रथम अधिवेशन की तिथि से एक मास तक यह

लागू रहेगी। इस बीच यदि वह संसद द्वारा स्वीकार न की जाय तो रद्द मानी जायगी।

संविधान के १८ वें भाग में राष्ट्रपति और राज्यपालों के कानूनी बचाव, बंदरगाहों के लिए विशेष उपबंध और संघ की आज्ञाओं के उलंघन के परिणाम आदि का उल्लेख है। इसके अन्तर्गत राष्ट्रपति, राजप्रमुख अथवा राज्यपाल के कार्य-काल में उनके विरुद्ध फौजदारी या दीवानी अदालत में कोई काररवाई नहीं की जा सकती, न उन्हें गवाही देने के लिए बुलाया जा सकता है।

उपर्युक्त भाग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण धारा ३६५ है, जिसमें यह उल्लखित है कि यदि किसी राज्य की सरकार संघ सरकार के आदेश का पालन नहीं कर पाती तो राष्ट्रपति को यह समझने का अधिकार प्राप्त होगा कि ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गयी जिसमे उपर्युक्त राज्य का शासन संविधान के अनुसार नहीं चलाया जा सकता। ऐसी स्थिति मे राष्ट्रपति को संकट-कालीन की घोषणा करके वहां राष्ट्रपति-शासन लागू करने का अधिकार प्राप्त है।

भारत के संविधान की कई विशेषताए हैं जो अन्य देशों के सविधानों से उसकी तुलना करने पर स्पष्ट हो जाती हैं। यह मुख्यतः आत्म-निर्णय के सिद्धांत पर आधारित है। अमेरिका, ( १७८७ ) जर्मनी ( १९१९ ) और फ्रांस का विधान ( १९४६ ) भी आत्म-निर्णय के आधार पर आधारित है।

संविधान मे जनतंत्रात्मक शासन के आधार-भूत सिद्धातों को स्वीकार करके सर्वोच्च सत्ता नागरिकों मे निहित मानी गयी है। इसकी प्रस्तावना में ही यह कहा गया है कि 'हम भारत के लोग' अमुक-अमुक सकल्प करते हैं। यह वाक्यांश सम्भवतः अमेरिका के संविधान से ही लिया गया है; क्योंकि उसकी प्रस्तावना मे भी "हम संयुक्त राज्य अमेरिका के लोग' शब्दावली प्रयुक्त है। इस दृष्टि से भारत और स्वीट्जरलैण्ड के संविधान मे अतर है। स्वीट्जरलैंड के संविधान में भी लोकसत्ता को सर्वोपरि माना गया है लेकिन उसमे उपराज्यों की जिन्हें केटन कहते है, सामूहिक सत्ता भी स्वीकार की गयी है।

भारत के संविधान में केंद्र को व्यापक अधिकार दिये गये हैं और उसकी शक्ति मजबूत बनायी गयी है। यद्यपि राज्यों अथवा प्रदेशों को स्वशासन का पूर्ण अधिकार प्राप्त है, तथापि उनकी शक्ति सीमित है। इस दृष्टि से भारत का संविधान कनाडा के संविधान से मिलता-जुलता है। ऐसा कोई क्षेत्र नहीं माना गया है जिस पर राज्य का एकाधिकार हो। राज्य सूची के भी किसी

विषय पर कानून बनाने का अधिकार केंद्र को प्राप्त है। संविधान में संकट-कालीन और राष्ट्रपति शासन की व्यवस्था द्वारा भी केंद्र के हाथ काफी मजबूत बना दिये गये है। भारतीय संविधान की यह व्यवस्था स्वीट्जरलैण्ड के संविधान से कुछ मिलती-जुलती है। स्वीट्जरलैण्ड के संविधान में यह उल्लिखित है कि आपत्तिकाल में केंद्रीय मंत्रि-मंडल किसी भी उपराज्य के शासन पर पूर्ण अधिकार जमा सकता है।

भारत के संविधान में अब तक कुल नौ संशोधन स्वीकृत हो चुके हैं और दसवां संशोधन विचाराधीन है।

# फ्रांसीसी और पुर्तगाली बस्तियां

**चन्द्रनगर में मत-गणना—चन्द्रनगर का प्रशासन हस्तांतरित—दक्षिणी बस्तियों में जन-आन्दोलन और दमन—भारत का सुझाव—जन आन्दोलन चरम सीमा पर—मुक्ति का प्रस्ताव—पाण्डिचेरी की स्वतन्त्रता की घोषणा—१९५४ का फ्रांस-भारत समझौता—सत्ता हस्तांतरित—पुर्तगाल की अकड़ भारत का पत्रक—भारतीय दूतावास बंद—आर्थिक नाकाबन्दी—सत्याग्रह आन्दोलन—बर्बरता पूर्ण दमन—पुर्तगाल का झूठा दावा-तानाशाही शासन।**

ब्रिटिश कालीन और उसके पूर्ववर्ती इतिहास के अध्यायों में यह बताया जा चुका है कि अंग्रेजों के अतिरिक्त पुर्तगालियों और फ्रांसीसियों का अधिकार भी शतियों से भारत की कुछ बस्तियों पर रहा है। जिन परिस्थितियों में गोवा, डामन और ड्यू पर पुर्तगालियों का अधिकार स्थापित हुआ, संक्षेप में उनका उल्लेख यथास्थान किया जा चुका है और यह भी बताया जा चुका है कि चन्द्रनगर, पाण्डेचेरी, माही और कारीकल की बस्तियों पर फ्रांसीसियों ने कब्जा कर लिया था।

भारत का स्वातंत्र्य संग्राम मुख्यतः ब्रिटिश भारत तक ही सीमित था; क्योंकि यह समझा गया था कि सम्पूर्ण भारत में ब्रिटिश शासन-सत्ता की समाप्ति के बाद मुट्ठी भर आबादी वाली पुर्तगाली और फ्रांसीसी बस्तियों में विदेशी सत्ता आपसे आप समाप्त हो जायगी और अंग्रेजों के जाने के बाद पुर्तगाली और फ्रांसीसी शासक भी अपना बिस्तर बटोर लेंगे। इस प्रकार भारत में साम्राज्यवाद के ये अवशिष्ट चिन्ह समाप्त हो जायंगे। लेकिन यह भ्रम मात्र सिद्ध हुआ। उपर्युक्त बस्तियों की आजादी के लिए भी भारत को चेष्टा करनी पड़ी। उसके शान्ति-पूर्ण प्रयास के फलस्वरूप अंग्रेजों की भाँति फ्रांस ने भी शासन सत्ता को हस्तांतरित करना स्वीकार कर लिया। भारत और फ्रांस के बीच सन् १९५४ में हुई संधि के फलस्वरूप कार्यतः (डि-फैक्टो) फ्रांसीसी बस्तियों पर भारत का अधिकार हो गया और शीघ्र ही विधितः भी उन पर भारत का अधिकार हो जायगा।

पुर्तगाली बस्तियों की स्थिति सर्वथा विपरीत है। भारत सरकार के सभी शांति-पूर्ण प्रयासों को ठुकरा कर अब भी पुर्तगाल का तानाशाह शासक सालाजार भारत में साम्राज्यवाद की लाश के एक अंग मात्र से चिपका हुआ है। शस्त्र-बल के सहारे उसने अब भी भारत के गोवा, डामन और ड्यू क्षेत्रों पर अधिकार जमा रखा है। इन क्षेत्रों की जनता अपनी मुक्ति के लिए पुर्तगाली तानाशाह की अमानुषिक नीति का विरोध डटकर कर रही है। वह दिन निकट मालूम पड़ता है जब पुर्तगाली शासन का जनाजा भी भारत से उठ जायगा।

सन् १९४७ में आजादी प्राप्त करने के बाद से सन् १९४९ तक जिन प्रबल राजनीतिक समस्याओं का अन्त करने में भारत को उलझे रहना पड़ा, उनका विवरण पिछले अध्यायो मे दिया जा चुका है। सन् १९४९ मे ही भारत सरकार, पुर्तगाली और फ्रांसीसी बस्तियों की मुक्ति के लिए भी विशेष रूप से सक्रिय हुई। इस प्रयास के फल स्वरूप १९ जून, १९४९ को फ्रासीसी बस्ती चन्द्रनगर मे इस बात का निर्णय करने के लिए मत-गणना हुई कि चन्द्रनगर फ्रांस के गणराज्य के साथ ही रहना चाहता है, अथवा भारत मे शामिल होना चाहता है। चंद्रनगर के निवासियों ने अत्यधिक संख्या मे भारत मे शामिल होने के पक्ष मे अपने मत प्रदान किये। इसके पश्चात् चन्द्रनगर को भारत मे शामिल करने के लिए फ्रांस और भारत सरकार के बीच सधि-वार्ता आरम्भ हुई। अन्य बस्तियों के सम्बंध मे मत-गणना का स्वरूप निर्धारित न हो सकने के कारण कोई फैसला न हो सका। इनमे एक ओर स्वातंत्र्य आदोलन जारी था और दूसरी ओर फ्रासीसी सत्ता द्वारा दमन जिसका विरोध भारत सरकार समयानुसार बराबर करती रही।

२ मई, १९५० को भारत सरकार को कार्यतः (डी फैक्टो) चन्द्रनगर का प्रशासन हस्तांतरित कर दिया गया और फ्रांसीसी प्रशासक के स्थान पर भारतीय प्रशासकीय सेवा के श्री बी० के० बनर्जी की नियुक्ति हुई। इसके पश्चात् २ फरवरी, १९५१ को चन्द्रनगर को भारत के सुपुर्द करने की सधि पर पेरिस मे फ्रास की सरकार ने हस्ताक्षर कर दिया। फ्रांस की संसद द्वारा इसकी स्वीकृति के फलस्वरूप ९ जून, १९५२ को चन्द्रनगर विधितः (डी जूरे) भारत का अंग हो गया। इस समय तक भी दक्षिणी बस्तियों मे मत-गणना के सम्बंध में फ्रांस और भारत के बीच कोई समझौता न हो सका था। इनमें आंदोलन और उसका दमन जारी रहा। मत-गणना के वातावरण पर इसके प्रतिकूल प्रभाव की ओर संकेत करते हुए भारत सरकार बराबर विरोध करती

रही। शेष बस्तियों के सम्बंध में सन् १९५२ में ही भारत सरकार ने फ्रांस की सरकार के समक्ष यह सुझाव रखा था कि मत-गणना के बिना सीधे-सीधे इनकी सत्ता भारत को हस्तांतरित कर दी जाय। फ्रांस सरकार ने यह सुझाव नहीं माना था। फ्रांसीसी बस्तियों में आंन्दोलन जारी रहा। तब भारत से चोरी से फ्रांसीसी बस्तियों मे भेजे जाने वाले माल को रोकने के लिए भारत सरकार ने चौकसी का प्रबंध कडा कर दिया।

सन् १९५४ मे फ्रांसीसी बस्तियों का स्वातंत्र्य आंदोलन अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। पाण्डिचेरी और कारीकल की बस्तियों को अविलम्ब भारत मे शामिल करने का प्रस्ताव यहा के मेम्बरों और कौंसिलरों ने फ्रांसीसी प्रशासक के दबाव की उपेक्षा करते हुए भी पास कर डाला। इस पर ६ अप्रैल, १९५४ को भारत के प्रधान मंत्री ने संसद् में एक वक्तव्य दिया था जिसमें "कार्यतः फ्रांसीसी बस्तियों के प्रशासन के हस्तांतरण के आधार पर मैत्रीपूर्ण ढग से समस्या का निपटारा करने के निमित्त समझौता-वार्ता के लिए फ्रांस की सरकार को आमंत्रित किया गया था।"* पेरिस मे समझौता वार्ता हुई भी लेकिन वह विफल हो गयी क्योंकि फ्रांस की सरकार पुलिस, न्याय और खजाना आदि मुख्य विभागों पर नियंत्रण छोडने के लिए तैयार न थी। इस बीच पाण्डिचेरी और पूरे यनाम के दो-तिहाई भाग ने स्वय को स्वतंत्र घोषित कर दिया और फ्रांसीसी, माही की बस्ती से हट गये। इस पर भी भारत सरकार ने एक पक्षीय काररवाई करके इन बस्तियों पर अपना नियत्रण स्थापित करने से इनकार कर दिया।

कुछ अर्सा बाद फ्रांस के आतरिक शासन मे उलट-फेर हुआ और प्रधान-मंत्री का पद समाजवादी मेंडेस फ्रांस ने संभाल लिया। तब पुनः नयी दिल्ली में समझौता-वार्ता हुई जो सफल हुई। इसके फलस्वरूप दोनों देशों के बीच हुआ करार फ्रांसीसी बस्तियों के निर्वाचित प्रतिनिधियों के समक्ष प्रस्तुत किया गया। १८ अक्तूबर, १९५४ को खिजूर में इनकी बैठक हुई और अत्यधिक प्रतिनिधियों ने फ्रांसीसी बस्तियों को भारत में शामिल करने के प्रस्ताव के पक्ष में मत प्रदान किया। इस निर्णय को दोनों देशों की सरकारों ने स्वीकार कर लिया एवं कार्यतः प्रशासन के हस्तातरण के निमित्त एक करार पर २१ अक्तूबर को दोनों देशों की सरकारों ने हस्ताक्षर कर दिये और इसके अनुसार १ नवम्बर, १९५४ को फ्रांसीसी बस्तियों का प्रशासन भारत सरकार को हस्तांतरित कर दिया गया।

---

* भारत के परराष्ट्र मंत्रालय का वार्षिक प्रतिवेदन—१९५४-५५ पृ० सं० ७

फ्रांसीसी बस्तियों का कानूनी ( डि जूरे ) हस्तांतरण, भारत तथा फ्रांस के बीच परित्याग-संधि ( ट्रिटी आव सीशन ) होने के कारण प्रायः पूरा हो गया है। दोनों देशों ने इस संधि पर मई, १९५६ में हस्ताक्षर किये थे। अब दोनों देशों की संसदों द्वारा संधि पर स्वीकृति प्रदान करने की रस्मी कारवाई मात्र बाकी है।

भारतीय प्रशासन के अन्तर्गत फ्रांसीसी बस्तियों में प्रतिनिधि सभा के लिए आम चुनाव जुलाई, १९५५ में व्यस्क मताधिकार के आधार पर हुआ था और पाण्डिचेरी राज्य का प्रशासन चलाने के लिए छः मंत्रियों (कौंसिलर्स) की शासन परिषद बनायी गयी थी।

"आयोजन आयोग ( प्लानिंग कमीशन ) ने पहली पंचवर्षीय आयोजना के अन्तर्गत १९५५-५६ के दौरान में राज्य में पूरी की जाने वाली कुछ महत्त्व पूर्ण विकास योजनाओं पर होने वाले व्यय के लिए ६७.२ लाख रुपये की धन-राशि निर्धारित की थी। दूसरी पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत इसी उद्देश्य के लिए ६ करोड़ रुपये की एक और धनराशि आयोजना आयोग ने स्वीकार की है।"*

जुलाई, १९४७ में जब भारत के राजनीतिक आकाश में स्वातंत्र्य सूर्य की किरणें फूटती दिखाई देने लगी थी, पुर्तगाल के अधिकारियों और भारत-स्थित पुर्तगाली बस्तियों के प्रशासनाधिकारियों ने जो बक-बक आरम्भ की थी, वह आबाध रूप में अब भी जारी है। शुरू से ही पुर्तगाल की सरकार का रुख फ्रांस की सरकार के रुख का बिलकुल उलटा रहा है। भारत की आजादी के पूर्व ही पुर्तगाली अधिकारियों ने भारत-स्थित पुर्तगाली बस्तियों की रक्षा के लिए खून बहाने का ऐलान करना आरम्भ कर दिया था। उस समय पुर्तगाल के उपनिवेश सचिव कप्तान ड्युरेट ने कहा था कि "भारत में पुर्तगाली झण्डा तब तक न गिरेगा, जबतक हजारों श्वेत और 'नेटिव' पुर्तगाली उसकी रक्षा में अपना खून न बहा लेंगे।" भारत के राजनीतिक भूचाल को लक्ष्य करके इन्होंने यह भी घोषित किया था कि भारत में जो भूचाल आया है, उसमें पुर्तगाली प्रभुत्व सुरक्षित रहेगा, वह नष्ट न होगा।"

फ्रांसीसी बस्तियों की भांति ही पुर्तगाली बस्तियों की ओर भी भारत सरकार प्रायः १९४९ तक ध्यान न दे सकी, यद्यपि यहां के लोग पुर्तगाली शासन के अंत की मांग बराबर करते रहे। पुर्तगाल से भारत का कूटनीतिक संबंध

---

* भारत के परराष्ट्र मंत्रालय का वार्षिक प्रतिवेदन, १९५५-५६, पृ० सं० ९

भी कायम न हुआ था। किसी प्रकार की कूटनीतिक वार्ता आरम्भ करने के लिए यह आवश्यक था। इस दृष्टि से दोनों के बीच वार्ता हुई और नवम्बर, १९४९ में भारत सरकार ने पुर्तगाल की राजधानी लिसबन में अपना दूतावास खोल दिया। तत्पश्चात भारत-स्थित पुर्तगाली बस्तियों के भविष्य का निपटारा करने के लिए लिसबन-स्थित भारतीय राजदूत (मिनिस्टर) ने भारत सरकार की ओर से २७ फरवरी, १९५० को पुर्तगाल सरकार के समक्ष एक पत्रक प्रस्तुत करके जाब्ते से वार्ता आरम्भ की। अपनी प्रभु सत्ता के संबंध में पुर्तगाल सरकार ने भारत सरकार से वार्ता करने से इनकार कर दिया। इस जिच को शांति-पूर्ण उपायों से भंग करने की कोशिश तब भी भारत सरकार ने जारी रखी, "पर पुर्तगाल सरकार ने इस प्रश्न पर विचार तक करने से लगातार इनकार किया। अस्तु, भारत सरकार ने यह अनुभव किया कि लिसबन में दूतावास रखने से कोई से कोई फायदा नहीं है। अतः जुलाई, १९५३ में भारत सरकार ने लिसबन से अपने प्रतिनिधि को वापस बुला लिया और अपना दूतावास बन्द कर दिया। फिर भी भारत सरकार को आशा थी कि इस मामले में शांति-पूर्वक समझौता हो सकता है। इसलिए दिल्ली में पुर्तगाली दूतावास को बन्द कराने के लिए कोई कारवाई नहीं की गयी। सन् १९५४ में भारत सरकार ने यह प्रस्ताव रखा कि दोनों सरकारों के प्रतिनिधि किसी तरह अपने को बांधे बिना भेंट करें। पुर्तगाल सरकार ने इसको भी अस्वीकार कर दिया।"*

पुर्तगाल सरकार के रुख को देखकर अंततः भारत सरकार को यह घोषित करना पड़ा कि 'दिल्ली में पुर्तगाली दूतावास के कायम रहने से कोई लाभ नहीं है।' इस आशय की सूचना भी पुर्तगाल सरकार को दे दी गयी और २५ जुलाई, १९५५ को इसे बंद करने का एक नोट पुर्तगाली दूतावास के हवाले कर दिया गया। अगस्त, १९५५ के प्रथम सप्ताह के बाद दिल्ली-स्थित पुर्तगाली दूतावास बंद कर दिया गया। इस पर भी जब पुर्तगाल सरकार ने अपना दुराग्रहपूर्ण रवैया जारी रखा तो भारत ने गोवा-स्थित भारतीय व्यापार दूत को भी १ सितम्बर, १९५५ को वापस बुला लिया। पुर्तगाली की आर्थिक नाकेबंदी भी शुरू कर दी गयी जो आज तक जारी है।

"भारत तथा पुर्तगाल के बीच राजनीतिक सम्बंध टूट जाने से, भारत सरकार ने पुर्तगाल सरकार की प्रार्थना पर, नयी दिल्ली-स्थित ब्राजील सरकार

---

* भारत की लोकसभा में नेहरू जी का वक्तव्य—२५ जुलाई, १९५५

के दूतावास द्वारा भारत में पुर्तगाली हितों की देख-भाल करने की अनुमति दे दी। पुर्तगाल सरकार भी इस बात पर राजी हो गयी कि मित्र सरकार अपने लिसबन-स्थित दूतावास तथा नयी दिल्ली-स्थित अपने दूतावास द्वारा पुर्तगाल और समुद्र पार की पुर्तगाली बस्तियों में भारतीय हितों की देख भाल करे।"* सम्प्रति यही स्थिति कायम है। शांतिपूर्ण ढंग से समस्या को हल करने का भारत सरकार का प्रत्येक प्रयास विफल हो चुका है।

गोवा का मुक्ति आंदोलन जो गोवानियों द्वारा आरम्भ किया गया था, अब भी जारी है। "सन् १९४७ (भारत की स्वतन्त्रता का वर्ष) में पुर्तगालियों ने दूसरा आंदोलन न उठ खड़ा होने देने के लिए प्रत्येक उपाय पर अमल किया था। उन्होंने गोवा में सैनिकों की भीड़ जुटा ली थी।...ऐसी स्थिति में गोवानी अपना संघर्ष लुक-छिप कर जारी रखते, यह स्वाभाविक था। सन् १९५३ तक चुपके-चुपके आन्दोलन गोवा नगर और उसके प्रत्येक गाँव में फैल गया।... सक्रिय कार्यकर्त्ताओं (गोवा काग्रेस) तथा मुक्ति आन्दोलन के अधिक साहसी समर्थकों की सभाएँ गोवा के अनेक भागों में की गयीं। पुर्तगाली सरकार के भेदिया इन सभाओं की सूचनाएं अधिकारियों के पास पहुँचाते लेकिन वे इतनी सही न होती कि अधिकारी इनके आधार पर सभा-स्थल और इनमें भाग लेने वाले लोगों के नाम तथा उनकी संख्या का पता लगा पाते। आंदोलन की कारवाइयों में गावों में भारतीय पताका को फहराना तथा कुछ नगरों में क्रांतिकारी साहित्य का वितरण तथा जनता का आह्वान शामिल था।†

सन् १९५४ में गोवा का मुक्ति आंदोलन काफी प्रबल हो गया। १८ जून, १९५४ को गोवा के प्रायः प्रत्येक गांव में भारतीय झण्डा फहराया गया और रातोरात मकान की दीवारों तथा सड़कों पर यह नारा लिखा गया—'पुर्तगालियों, गोवा छोड़ो।' इससे पुर्तगालियों का क्षोभ भड़क उठा। उन्होंने कसकर दमन करना आरम्भ किया। आपसी बातचीत के दौरान में कही गयी बातों के आधार पर भी बड़े-बड़े प्रतिष्ठित व्यक्ति गिरफ्तार किये जाने लगे। एक भोज में किसी पुर्तगाली अधिकारी के इस कथन का विरोध करने पर कि 'गोवा, पुर्तगाल है', वहां के एक प्रसिद्ध अस्पताल के सर्जन और डाइरेक्टर श्री पुंडलिक गायतोंडे गिरफ्तार करके पुर्तगाल में निर्वासित कर दिये थे। सामूहिक गिरफ्तारियों

---

* भारत के परराष्ट्र मंत्रालय का वार्षिक प्रतिवेदन—१९५५-५६, पृ० सं० ९

† पुंडलिक गायतोंडे, 'दि गोआ प्रावलम', पृ० सं० १२

का बोलबाला था। जिस पर जरा सा शक होता, वह जेल में ठूस दिया जाता। इसके बावजूद मुक्ति-आंदोलन ठंढा न पड़ा। १५ अगस्त, १९५४ को वहां खुले आम सत्याग्रह आरम्भ हो गया। इसी दिन भारतीय क्षेत्र के ४२ गोवानियों ने भी गोवा की सीमा पार करके सत्याग्रह में भाग लिया। पुर्तगालियों की बंदूकें और मशीनगनें उनकी ओर तनी थी। फिर भी वे भारतीय पताका फहराते हुऐ शान से गोवा की सीमा मे घुसते गये। इस अवसर कुछ भारतीयों ने भी गोवा सत्याग्रह मे भाग लेने का फैसला किया था किन्तु भारत सरकार ने पुर्तगाली क्षेत्रों के विरुद्ध सत्याग्रह आंदोलन में भाग न लेने की सलाह दी थी।

सत्याग्रह शांतिपूर्ण और अहिंसात्मक था लेकिन पुर्तगालियों का दमन बर्बरता पूर्ण रहा। उन्होंने सत्याग्रह में भाग लेने वालो को बुरी तरह कुचला और जो लोग गिरफ्तार किये गये उन्हें ८ वर्ष से लेकर बीस वर्ष तक की सजा दी गयी। इसके फलस्वरूप खास-खास दिवस पर सत्याग्रह करने का फैसला किया जाने लगा। भारतीय "गणराज्य दिवस अर्थात् २६ जनवरी, १९५५ को तथा १७ फरवरी, १९५५ को गायतोंडे दिवस के अवसर पर गोवा मे सत्याग्रह हुआ। इसके बाद गोवा राष्ट्रीय काग्रेस ने ६ अप्रैल को गोवा की सीमा के अन्दर मापुका में अपना खुला अधिवेशन करने का निश्चय किया। उस दिन कांग्रेस की नव-निर्वाचित अध्यक्षा श्रीमती सुधा जोशी भाषण पढ़ने वाली थीं। चूकि गणराज्य दिवस और गायतोंडे दिवस के अवसर पर काफी उत्साह दिखाई पड़ा था, और स्थानीय पुर्तगाली अधिकारियों की हर तरह की एतिहाती कारवाई के बावजूद १३५ से भी अधिक लोग गिरफ्तार हुए थे इसलिए ६ अप्रैल को पुर्तगाली सरकार ने अपनी सारी पुलिस और सेना वहां लगा दी थी। लोगों को डराने के लिए शक्ति का खूब प्रदर्शन किया गया था। जगह-जगह सेना तैनात की गयी थी। परतागल और कनकोना में तो टैंक और तोपे तक लगा दी गयीं थी। विशेष रूप से मारगाओ, मापुका और पंजिम मे राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओं को गिरफ्तार किया गया था ताकि वे अधिवेशन मे न जा सके। सिओलिन और कनकोना में छः लडकिया भी गिरफ्तार की गयी थीं। राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता भी काफी सक्रिय रहे। गोवा भर मे भारत का राष्ट्रीय झण्डा फहराया गया और गोवा काग्रेस की ओर से बहुत से इश्तहार लगाये गये।

"मापुका में गोवा राष्ट्रीय कांग्रेस का खुला अधिवेशन नहीं हो सका, पर श्रीमती सुधा जोशी ने अपने अध्यक्षीय भाषण का कुछ अंश पढ़ा।

श्रीमती जोशी और ४० से भी अधिक सत्याग्रही मारगाओ तथा मापुका में ६ अप्रैल को पकड़े गये। २० अप्रैल तक गिरफ्तार किये जाने वालों की संख्या ६१ हो गयी।...श्रीमती सुधा जोशी के साथ अभद्र बर्ताव किया गया और उन्हें गालियां दी गयीं। तीन सत्याग्रहियों को खुले आम पीटा गया।

"६ अप्रैल को मारगाओ में सत्याग्रह देखने वालों की लगभग दो हजार की भीड़ को तितर-बितर करने के लिए सेना बुलायी गयी। सत्याग्रहियों के के साथ बड़ी क्रूरता और प्रायः बर्बरता का बरताव किया गया।"*

१५ अगस्त और सितम्बर, १९५४ में गिरफ्तार होने वाले सत्याग्रहियों को पुर्तगालियों ने २८ साल के निर्वासन दण्ड तथा २० साल की कड़ी कैद से लेकर १ वर्ष तक की कड़ी कैद की सजा दी थी। बूट की ठोकरों, बंदूक के कुंदों और संगीनों की मार ऊपर से पड़ी थी। सत्याग्रहियों को पानी के लिए तड़पाया गया था। घायल अवस्था में उन्हें घसीटा गया था। इस प्रकार के न जाने कितने जुल्म उन पर ढाये गये थे।

६ अप्रैल की ज्यादतियों के विरोध में भारत सरकार ने पुर्तगाली मंत्री (राजदूत) को एक नोट भेजा था जिसे उसने १२ अप्रैल को यह कह कर लौटा दिया था कि 'यह पुर्तगाल के घरेलू मामलों में दस्तंदाजी है, अतः पुर्तगाल की सरकार इसे स्वीकार नहीं करती।' नोट में पुर्तगाली मंत्री को बताया गया था कि 'पुर्तगाली सरकार को यह नियमित चेतावनी दी जा रही है कि उसकी दमनात्मक काररवाइयों की प्रतिक्रिया गम्भीर होगी।'

गोवा के नागरिकों पर पुर्तगालियों के अत्याचार का असर गहरा पड़ा। गोवा विमोचन समिति के तत्त्वावधान में भारतीय सत्याग्रहियों ने सत्याग्रह के लिए गोवा में प्रवेश का कार्यक्रम जारी रखा। "१८ मई को गोरे (भारत के समाजवादी नेता) के नेतृत्त्व में शांतिपूर्ण सत्याग्रहियों के एक दल ने गोवा में प्रवेश किया। पुर्तगाली अधिकारियों ने इन शांत सत्याग्रहियों पर गोली चलायी जिससे चार व्यक्ति घायल हुए। बाद में सत्याग्रहियों को बुरी तरह पीटा गया। श्री गोरे और घायल सत्याग्रहियों को हवालात में रोक लिया गया और शेष को भारतीय प्रदेश में ढकेल दिया गया।" †

१८ मई से २५ जुलाई, १९५५ तक सत्याग्रहियों के १२ दस्तों ने गोवा में प्रवेश किया था। इनके साथ बहुत क्रूरता-पूर्ण व्यवहार किया गया था। इन पर

---

* भारत की लोकसभा में नेहरू जी का वक्तव्य—४ मई, १९५५

† भारत की लोकसभा में नेहरू जी का वक्तव्य—२५ जुलाई, १९५५।

हमला किया गया और इतना मारा गया कि ये बेहोश हो गये। जब मार खाकर कुछ व्यक्ति गिर पड़े तो उन्हें बूटों से कुचला गया। "श्री अमीचन्द गुप्त नामक एम घायल सत्याग्रही को बेहोशी की हालत में भारतीय क्षेत्र में रख दिया गया। चोटों के कारण बाद में इसकी मृत्यु हो गयी। अनेक सत्याग्रहियों की हड्डियां टूट गयी थीं और सख्त चोटें लगी थीं। इन्हें अस्पताल मे भर्ती किया गया। २५ जून को श्री जगन्नाथ राव जोशी के नेतृत्व मे सत्याग्रहियों का जो जत्था गया था, उसपर गोली चलाई गयी जिससे दो सत्याग्रही घायल हुए।" *

इस आन्दोलन के फलस्वरूप गोवानी दादरा और नगर हवेली नामक बस्तियों पर कब्जा करने और वहा अपनी सत्ता कायम करने में सफल हुए। दादरा में फौज भेजकर उस पर कब्जा करने में पुर्तगाली सफल हो गये लेकिन नगर हवेली आज भी गोवानिओं द्वारा शासित है। इसका कारण यह है कि वह चारो ओर से भारतीय क्षेत्र से घिरी हुई है। पुर्तगाली सेना भारतीय क्षेत्र से गुजर कर ही वहां पहुँच सकती है। भारत ने पुर्तगाल को इसकी इजाजत नहीं दी। भारतीय क्षेत्र से गुजर कर पुर्तगाली सेना को नगर हवेली मे भेजने को अपना अधिकार बताते हुए पुर्तगाल ने हेग के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में भारत के विरुद्ध दावा पेश किया है। कानूनन भारत इस मामले में सफाई पेश करने के लिये बाध्य नहीं है। फिर भी, उसने पुर्तगाल का सामना यहां भी करने की ठान ली है। अभी यह मामला विचारधीन है।

पुर्तगाल का यह दावा है कि गोवा आदि पुर्तगाल का प्रान्त है। वहाँ का आन्दोलन गोवानियो का नहीं बल्कि भारतीयों का आंदोलन है। यह सरासर झूठ है। पुर्तगाल का अत्याचार देखकर भारत सरकार ने १५ अगस्त, १९५५ से गोवा में भारतीय सत्याग्रहियों के प्रदेश को भी रोक दिया है। इसके बावजूद आंदोलन जारी है और अब भी सैकड़ो गोवानी जेलों में सड़ाये जा रहे हैं। इसी प्रकार पुर्तगाली बस्तियों को अपना प्रान्त बताने का पुर्तगाल का दावा भी मिथ्या है। सभी पुर्तगाली बस्तियाँ भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भारत का अंग हैं। "सन् १९५१ में पुर्तगाल सरकार द्वारा प्रकाशित आँकड़ों के अनुसार पुर्तगाली बस्तियों के ६ लाख ३८ हजार निवासियों मे केवल १४३८ को छोड़ कर शेष सब विशुद्ध भारतीय वंश के हैं। वे सीमा पार रहने वाले अपने भारतीय भाइयों से भाषा,

* भारत की लोकसभा में नेहरू जी का वक्तव्य—२५ जुलाई, १९५५।

चाल-ढाल या रीति-रिवाज की दृष्टि से तनिक भी भिन्न नहीं है। ६१ प्रतिशत लोग हिन्दू हैं और लगभग ३७ प्रतिशत ईसाई कैथोलिक। कुछ मुसलमान भी हैं। कुछ थोड़े ही लोग पुर्तगाली भाषा को लिख या पढ़ सकते हैं।"*

पुर्तगालियों के शासन के अन्तर्गत गोवा, डामन और ड्यू के निवासियों को नाम मात्र की भी आजादी प्राप्त नहीं है। "इन बस्तियों का सर्वोच्च अधिकारी पुर्तगाल सरकार द्वारा नियुक्त गवरनर जेनरल होता है। वह सबसे बड़ा मुल्की और सैनिक अधिकारी होता है। सार्वजनिक कोष भी इसके अधीन रहता है। जुलाई, १९५५ तक गवरनर जनरल १२ सदस्यों की परिषद के सहयोग से शासन करता था। इनमें सात सदस्यों को गवनर जनरल स्वयं मनोनीत करता था। प्रशासन तानाशाही है, इस दोषारोप का सामना करने के लिए पुर्तगाल सरकार ने गोवा में नया शासन कानून लागू किया जिसमें बड़ी 'शान' के साथ पुर्तगाली बस्तियों को स्वायत्त शासन प्राप्त इकाई बताया गया है।...लेजिस्लेटिव कौंसिल के संघटन से स्पष्ट हो जाता है कि भूतकाल का तानाशाही शासन नये लिबास में गोवानियों पर लादा गया है। नयी शासन परिषद के २२ सदस्यों में ११ सदस्य 'सीधे मतदाताओं' द्वारा निर्वाचित होते हैं और शेष की नियुक्ति या तो गवरनर जनरल करता है या वे व्यवसायिक संस्थाओं और नगर पालिका सदृश संस्थाओं द्वारा मनोनीत किये जाते हैं। व्यवसायिक संस्थाओं या नगर पालिकाओं आदि द्वारा सदस्यों का मनोनयन सरकारी उम्मीदवारों को ही परिषद में लेने का दूसरा प्रकार है, क्योंकि व्यवसायिक संस्थाओं और नगर पालिकाओं के सदस्यों को सरकार स्वयं मनोनीत करती है। जहाँ तक 'सीधे मतदाताओं' द्वारा निर्वाचित ११ सदस्यों का प्रश्न है, यह दिलचस्प बात ध्यान देने योग्य है कि ६, लाख ३८ हजार की आबादी में केवल २० हजार व्यक्तियों को निर्वाचक होने की योग्यता प्राप्त है। इस प्रकार देखा जा सकता है कि शासन परिषद में सरकारी पक्ष बहुत प्रबल है। परिषद के विचारणीय विषयों में भी ऐसी ही मामले शामिल किये जा सकते है जो गवरनर जनरल द्वारा स्वीकृत हों। यदि कोई सदस्य किसी प्रस्ताव को पेश करना चाहे तो उसे प्रस्ताव पेश करने से पूर्व गवरनर जनरल की सहमति प्राप्त करनी होगी। किसी समय परिषद, गवरनर जनरल से असहमत हो तो गवरनर जनरल लिसबन (पुर्तगाल की राजधानी) में

---

* लोकसभा में नेहरू जी का वक्तव्य—२५ जुलाई, १९५५

समुद्र पार विभाग के मंत्री से अपील कर सकता है जिसे परिषद के निर्णय को ठुकराने का अधिकार प्राप्त है।"*

इन परिस्थियों में भारत की पुर्तगाली बस्तियों के निवासी विदेशी शासन से अपनी मुक्ति के लिए जूझ रहे हैं। भारत ने पुर्तगाल की आर्थिक नाके-बन्दी कर रखी है जो 'जो चोरी से माल भेजने के व्यापार' के कारण अपना प्रभाव नहीं दिखा पा रही हैं। भारतीय सत्याग्रहियों के गोवा में प्रवेश पर भी भारत सरकार ने रोक लगा रखी है। भारत यद्यपि चन्द घंटों के अन्दर सैनिक शक्ति के बल पर पुर्तगाली सत्ता को समाप्त कर सकता है, तथापि आपसी वार्ता द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को हल करने की अपनी नीति के कारण वह ऐसा नहीं कर रहा है। कांग्रेस के अलावा भारत के प्रायः सभी अन्य प्रमुख राजनीतिक दल गोवा-सम्बन्धी सरकार की नीति से असहमत हैं। संक्षेप मे पुर्तगाली बस्तियों की मुक्ति के प्रयास का यही विवरण है।

———

* पं० डी० मचि—'दि गोवा प्राबलम' (इण्डियन कौंसिल आव वर्ल्ड अफेयर्स द्वारा प्रकाशित) पृ० सं० २२–२३

# विस्थापितों का पुनर्वास

**सन् १९४९ तक की स्थिति—पूर्वी पाकिस्तान में पुनः उपद्रव—भारी संख्या में अल्पसंख्यकों का निष्क्रमण—१९५६ में कराची वार्ता—पश्चिमी पाकिस्तान के विस्थापितों का पुनर्वास—पूर्वी पाकिस्तान के विस्थापितों का पुनर्वास—पाकिस्तान से लौटे मुसलमानों की सहायता—कश्मीरी विस्थापितों का पुनर्वास।**

अगस्त, १९४७ में भारत के विभाजन के पश्चात् पश्चिमी पाकिस्तान में हिन्दू और सिखों का उन्मूलन जिस रूप में हुआ, उसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। अपने पुरखों के घरबार से बलपूर्वक उजाड़े जाने वाले इन अभागों को पाकिस्तान से निकालने तथा इनकी सहायता करने के लिए सन् १९४७ में ही भारत सरकार ने पुनर्वास मंत्रालय को कायम किया था। सन् १९४८ तक इन्हें हटाने का कार्य प्रायः समाप्त हो चुका था। सिंध के शरणार्थियों को हटाने का कार्य १९४८ के अंत तक बराबर जारी रहा। सन् १९४९ के मध्य तक साधारण सहायता का कार्य पुनर्वास मंत्रालय की देख-रेख में होता रहा। इस समय तक पूर्वी पाकिस्तान के हिन्दुओं का मूलोच्छेद नहीं हुआ था। "सन् १९४८ के अंत तक पश्चिमी पाकिस्तान से निष्क्रमण करने वालों में से ४६.१४ लाख व्यक्ति भारत आ चुके थे। इस अवधि में ही पूर्वी पाकिस्तान से भारत आने वाले हिन्दुओं की संख्या १०.१३ लाख थी। सन् १९४९ में पश्चिमी पाकिस्तान से ०.४३ लाख व्यक्ति भारत आये लेकिन इस वर्ष पूर्व पाकिस्तान से आने वालों की संख्या ३.२६ लाख थी।"*

सन् १९५० का आरम्भ होते ही स्थिति गम्भीर हो गयी। पूर्वी बंगाल में साम्प्रदायिकता की ज्वाला जोरों से धधक उठी। बहुत बड़ी संख्या में यहां के हिन्दुओं का निष्क्रमण भी आरम्भ हो गया। दो मास तक जुल्म और सितम का बोलबाला रहा। इसका प्रभाव स्वाभाविक रूप में पश्चिमी बंगाल और असम पर पड़ने लगा। इस नये आकस्मिक संकट का सामना करने

* पुनर्वास मंत्रालय का वार्षिक प्रतिवेदन—१९५४-५५, पृ० सं० १

के लिए तब पुनर्वास मंत्रालय ने अपने सचिवालय की शाखा कलकत्ता में भी स्थापित की। उपद्रव के कारण पूर्वी बंगाल के हिन्दुओं का साहस छूट गया और वे तेजी से भारत आने लगे। इस पर भारत और पाकिस्तान के प्रधान मंत्रियों के बीच वार्ता हुई और स्थिति को सुधारने के लिए अप्रैल, १९५० में दोनों प्रधान मंत्रियों ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किये। इसके अनुसार दोनों ओर के अल्पसंख्यकों के लिए अपने व्यक्तिगत सामान तथा सीमित नकद रुपये के साथ निष्क्रमण करना सम्भव हो सका और मार्ग में उन्हें परेशान करने की कारवाई समाप्त हुई। समझौते के अनुसार दोनों देशों की सरकारों के एक-एक केन्द्रीय मंत्री ने व्यापक रूप में उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्रों का दौरा किया और किसी प्रकार वे अल्पसंख्यकों का भय दूर करने में सफल हो सके। समझौते का एक शुभ परिणाम यह भी हुआ कि बहुत से उद्वासित अपने-अपने घरों को लौट गये जहा उनकी सम्पत्ति पर उनका कब्जा दिलाने की कोशिश की गयी।

दो वर्षों की शांति के बाद—इस अवधि में काफी उद्वासित पूर्वी पाकिस्तान में लौट गये थे पूर्वी पाकिस्तान में हिन्दुओं का उन्मूलन पुनः आरम्भ हुआ और पासपोर्ट प्रणाली लागू होने से पूर्व सन् १९५२ के मई और अक्तूबर मास के बीच पूर्वी बंगाल के हजारों निष्क्रमणार्थी भारत पहुँच गये। इसके बाद यह सिलसिला आज तक बंद नहीं हुआ। "सन् १९५३-५४ में औसतन प्रति मास छः हजार हिन्दू पूर्वी पाकिस्तान से भारत आये।"* इससे स्थिति गम्भीर हो गयी। उसकी गम्भीरता को बढ़ाने वाला एक जबरदस्त कारण और था। सन् १९५३-५४ तक "पूर्वी पाकिस्तान से भारत आने वाले हिन्दुओं की संख्या ३२ लाख थी। इसके विपरीत भारत से पूर्वी पाकिस्तान जाने वालों की संख्या सिर्फ ५.३५ लाख थी। एक परेशानी और थी। यहा से निष्क्रमण करने वाले अल्पसंख्यक पूर्वी पाकिस्तान से लौटते तो उनकी सम्पत्ति सन् १९५० के करार के अनुसार लौटा दी जाती। इस कारणवश यहा निष्क्रमणार्थी सम्पत्ति रह ही नहीं गयी। पूर्वी पाकिस्तान से निष्क्रमण करने वाले हिन्दुओं के सहायतार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता था।

सन् १९५० के आगे पश्चिमी पाकिस्तान के अल्पसंख्यक नाममात्र की संख्या में भारत आये और यह शायद इसलिए कि वहां मुट्ठी भर अल्पसंख्यक, वह भी केवल सिंध में, बच गये थे। लेकिन १९५२ में पूर्वी पाकिस्तान

---

* पुनर्वास मंत्रालय का वार्षिक प्रतिवेदन—१९५३-५४, पृ० सं० २

के हिन्दुओं के निष्क्रमण का दौर जो शुरू हुआ तो आज तक नहीं रुका। निष्क्रमणार्थियों की संख्या बराबर बढ़ती ही गयी। सन् १९५३-५४ में पूर्वी पाकिस्तान से भारत आने वालों की संख्या औसतन प्रति मास ६ हजार थी जो सन् १९५४-५५ में बढ़कर ग्यारह हजार तक पहुँच गयी। भारत ने पुनः इस स्थिति की ओर पाकिस्तान का ध्यान आकृष्ट किया। फलतः १७ और १८ नवम्बर १९५४ को पूर्वी क्षेत्र में दोनों देशों के पुनर्वास मंत्रियों का सम्मेलन हुआ जिसमें निष्क्रमण को रोकने के लिए कई सिफारिशें की गयीं। पाकिस्तान सरकार ने इन सिफारिशों पर अमल नहीं किया। नतीजा यह हुआ कि भारत से निष्क्रमण करने वाले अल्पसंख्यकों की संख्या तो नाममात्र की रह गयी लेकिन पूर्वी पाकिस्तान से भारत आने वाले हिन्दुओं की सख्या घटने के बजाय बराबर बढ़ती गयी। "सन् १९५५ में पूर्वी पाकिस्तान से २ लाख ४ हजार विस्थापित भारत आये थे जब कि सन् १९५४ में इनकी संख्या १ लाख, २१ हजार ही थी।" सन् १९५५ में औसतन प्रति मास २० हजार विस्थापित भारत आये जब कि सन् १९५४ में यह संख्या १० हजार थी। मार्च, १९५५ में पूर्वी पाकिस्तान से भारत आने वालों की संख्या अन्य महीनों की तुलना में सबसे अधिक अर्थात् २७ हजार थी।

"पूर्वी क्षेत्र में सहायता और पुनर्वास का कार्य-क्रम तैयार करने तथा उसे कार्यान्वित करने के मार्ग में प्रवजन के बढ़ते हुए दौर से गम्भीर कठिनाइयां उत्पन्न हुई। स्थिति की गम्भीरता को महसूस करते हुए भारत के पुनर्वास मंत्री ने अप्रैल, १९५५ में कराची की यात्रा की और वहा उन्होंने पाकिस्तान के गृह मंत्री तथा अन्य सम्बन्धित मंत्रियों से वार्ता की। भविष्य में अल्पसंख्यकों के निष्क्रमण को रोकने के लिए दोनों देशों के मत्रियों के बीच करार हुआ। इसके पश्चात पाकिस्तान के अल्पसंख्यक विभाग के मंत्री तथा भारत के परराष्ट्र विभाग के उपमत्री ने संयुक्त रूप में पश्चिमी बंगाल, त्रिपुरा और पूर्वी पाकिस्तान का दौरा किया। फिर भी पूर्वी पाकिस्तान से आने वालों की बाढ़ न रुकी।"*

भारत के पुनर्वास मंत्री ने पुनः इस समस्या की ओर पाकिस्तान सरकार का ध्यान आकृष्ट किया और कराची जाकर समस्या पर बातचीत करने की इच्छा प्रकट की। इस बीच पाकिस्तान में आंतरिक उलट-फेर भी हुए जिससे पूर्वी पाकिस्तान के अल्पसंख्यकों की समस्या अधर में लटकती रही। सन्

* पुनर्वास मंत्रालय का वार्षिक प्रतिवेदन, १९५५-५६ पृ० सं० १

१९५५ का वर्ष समाप्त हो गया। सन् १९५६ में पाकिस्तान के गणराज्य दिवस समारोह के अवसर पर भारत के पुनर्वास मंत्री कराची गये। इस अवसर पर वहाँ उन्होंने पाकिस्तान के परराष्ट्र मंत्री से बातचीत की। वहाँ के प्रधान मंत्री से भी वार्ता हुई जिन्होंने यह सुझाव दिया कि "ढाका में इस समस्या पर दोनों देशों के मंत्रियों के बीच बातचीत होनी चाहिये।" भारत सरकार ने यह सुझाव स्वीकार कर लिया।

"५ और ६ मई, १९५६ को ढाका में इस समस्या पर बातचीत हुई। भारतीय शिष्ट मण्डल के नेता भारत सरकार के विधि तथा अल्पसख्यक मंत्री थे। अन्य व्यक्तियों के अतिरिक्त शिष्ट मण्डल में ये लोग भी शामिल थे—पुनर्वास मंत्री, उप-परराष्ट्र मंत्री, पाकिस्तान में भारतीय उच्चायुक्त और पश्चिमी बंगाल के श्रम मंत्री। पाकिस्तान के शिष्ट मण्डल के नेता वहाँ के परराष्ट्र मत्री थे। इस शिष्ट मण्डल मे अन्य लोगों के अतिरिक्त पाकिस्तान के अल्पसंख्यक मंत्री, पूर्वी-पाकिस्तान के मुख्य मंत्री (तत्कालीन) और भारत स्थित पाकिस्तान के उच्चायुक्त।

"इस अवसर पर दोनों शिष्टमण्डलों के बीच निष्क्रमण के कारणों और उसे रोकने के सम्भव उपायों के बारे में साफ-साफ बातचीत हुई। यह स्वीकार किया गया कि अल्पसंख्यकों की जिम्मेदारी उसी देश की सरकार पर है जिसमे वे रहते हैं और अपनी उचित कठिनाइयों को दूर करने के लिए उन्हे अपनी सरकार से ही अनुरोध करना चाहिये। सरकार को अपनी ओर से ऐसी स्थितियाँ कायम रखनी चाहिये जिनमे अल्पसख्यक लोग खुशी और सुरक्षा की भावना से अन्य बहुसंख्यकों के समान ही नागरिकों के रूप मे रह सकें।...पाकिस्तान सरकार की ओर से उसके प्रतिनिधियों ने अपने इस निश्चय पर जोर दिया कि 'पाकिस्तान के संविधान मे कहा गया है कि वह उन्हें पाकिस्तान के सम्मानित नागरिकों के रूप में रहने के अवसर प्रदान करेगी।' यह बताया गया कि 'अल्पसंख्यकों में विश्वास पैदा करने के लिए पूर्वी पाकिस्तान सरकार ने पहले ही आवश्यक काररवाई शुरू कर दी है। सभी गैर मुसलिम राजनीतिक दलों के विधान सभाई सदस्यों का एक परामर्शदाता मण्डल बनाया गया है और मुख्य मंत्री* उसके प्रधान है। यह मण्डल अल्पसख्यकों को निष्क्रमण के लिए प्रोत्साहन देने वाले के कारणों के दूर करने के कार्यों

---

* २७ मई को पूर्वी पाकिस्तान में राष्ट्रपति शासन कायम कर दिया गया था।

का निरक्षण करेगा। पाकिस्तान सिविल सर्विस का एक हिन्दू अफसर अल्पसंख्यकों के मामले में विशेष अफसर नियुक्त किया गया है। उसे अधिकार दिये गये हैं कि वह अल्पसंख्यकों की शिकायतें पूर्वी पाकिस्तान के अधिकारियों तथा सभी सरकारी विभागों तक पहुँचायेगा और उन्हें दूर करवाने का प्रयत्न करेगा। अल्पसंख्यक जातियों के सदस्यों को सरकारी नौकरियां देने के मामले में आवश्यक काररवाई की गयी है। यह आदेश दिया गया है कि सरकारी नौकरियों के मामले में उन्हें उम्र तथा शिक्षा-सम्बन्धी योग्यता के बारे में छूट दी जाय। अल्पसंख्यक-सम्बन्धी विशेष अफसर से यह भी कहा गया है कि वह नौकरियों पर लगने वाले नये लोगों की संख्या की जाँच करें और यह देखे कि अल्पसंख्यकों को उचित प्रतिनिधित्व मिल रहा है या नहीं। माल विभाग से कहा गया है कि सम्पत्ति हस्तगत करने वाले विभाग के खाली स्थानों मे २३ प्रतिशत तक अल्पसंख्यकों को रखे।...हिन्दुओं के मकानों के अधिग्रहण को रोकने वाले आदेश जारी कर दिये गये हैं।' पूर्वी पाकिस्तान के मुख्य मन्त्री ने बताया कि 'अगर और अधिक मकानों के मालिक आकर उनमें रहें तो उनके मकान अधिग्रहण करने से रोक दिये जायगे' पाकिस्तान के शिष्टमण्डल ने यह भी कहा कि 'स्त्रियों के अपहरण की शिकायतें आने पर उन्हें तत्काल ही प्राप्त करके ढाका-स्थित आश्रम मे भेजने के आदेश दे दिये गये हैं।'.....पाकिस्तान के शिष्ट मण्डल का यह विचार था कि इन काररवाइयों से अल्पसंख्यकों मे सुरक्षा और विश्वास पैदा होना चाहिये और भारत सरकार सहयोग दे तो उनके निष्क्रमण का और कोई कारण पैदा नहीं होना चाहिये। यह भी सुझाव दिया गया कि भारत सरकार निष्क्रमण के प्रमाण-पत्र देना बंद कर दे, या दूसरे शब्दों मे सीमा बंद कर दे। भारतीय शिष्ट मंडल ने कहा कि ऐसा नहीं हो सकता; क्योंकि १९५० मे प्रधान मंत्रियों के बीच हुए करार ( नेहरू-अली करार ) के मुताबिक निष्क्रमणार्थियों के आने-जाने की स्वतन्त्रता और यात्रा मे उनकी रक्षा की व्यवस्था की गयी है। पाकिस्तानी शिष्ट मंडल ने यह भी कहा कि 'निष्क्रमण को प्रोत्साहन मिलने का एक कारण यह भी है कि लोगों को आसानी से निष्क्रमण के प्रमाण-पत्र मिल जाते हैं। भारत ने निष्क्रमणार्थियों के पुनर्वास की जो व्यवस्था की है, उसका भी एक आकर्षण बना रहता है।' भारतीय शिष्ट मंडल ने कहा कि 'भारत सरकार ने पुनर्वास की जो सुविधाएं दी हैं, वे बहुत कम हैं और निश्चय ही वे ऐसी नहीं हैं कि उनके कारण लोग अपना घर-बार छोड कर आने को तैयार हों।' यह

भी कहा गया कि निष्क्रमण के प्रमाण-पत्र उचित जांच-पड़ताल के बाद दिये जाते हैं।"*

पश्चिमी और पूर्वी पाकिस्तान के विस्थापितों के अतिरिक्त जम्मू-कश्मीर के विस्थापितों के पुनर्वास की समस्या का सामना भी भारत को करना पड़ा। राज्य के उस क्षेत्र से जिस पर आक्रामकों का अधिकार है, १.३५ लाख कश्मीरियों ने प्रवजन किया। इनमें से लगभग ८७ हजार व्यक्ति जम्मू तथा कश्मीर में बस गये और शेष भारतीय संघ के दूसरे विभिन्न राज्यों में चले गये।

सन् १९५५-५६ तक कुल मिला कर लगभग ८५ लाख व्यक्ति पाकिस्तान से भारत में आये। इनके पास न रहने के लिए जमीन थी, न काम के लिए रोजगार। पहनने के लिए वस्त्र और भोजन के लिए अन्न का भी अभाव था। बच्चों के पालन-पोषण और उनकी शिक्षा-दीक्षा की समस्या भी साथ थी। स्वातंत्र्य सूर्य के उदय से पूर्व ही जन्म ग्रहण करने वाली यह समस्या वास्तव में स्वतन्त्रोत्तर भारत की सबसे जटिल समस्या रही है। इतनी अधिक संख्या में अनाथ होने वाले व्यक्तियों को पुनः बसाने की समस्या विश्व के इतिहास की असाधारण घटना है। दुनिया के बहुत से देश ऐसे है जिनकी पूरी आबादी भी इतनी नहीं है जितनी संख्या पाकिस्तान से भारत आने वाले विस्थापितों की है। नारवे और डेनमार्क, इन दोनों देशों की पूरी आबादी लगभग ८१ लाख है। इतनी ही आबादी शाम और इराक की होगी। सम्पन्न और आधुनिक दृष्टि से सुगठित कनाडा की आबादी ८५ लाख से लगभग दूनी है। इन आकड़ों से ही समस्या की जटिलता स्पष्ट हो जाती है। भारत ने धैर्य और दृढ़ता के साथ जिस प्रकार इस समस्या का सामना किया, वह विश्व के इतिहास की अभूत-पूर्व घटना है।

सन् १९४७-४८ और १९४८-४९ तक पश्चिमी पाकिस्तान के विस्थापितों को हटाने तथा उनको सहायता पहुँचाने का काम ही पुनर्वास मंत्रालय का मुख्य काम था। इसके पश्चात् विस्थापितों को स्थायी रूप से फिर से बसाने के काम पर मुख्य रूप से ध्यान दिया गया और अगले पांच वर्षों तक देश के विभिन्न स्थानों में लाखों विस्थापित बसा दिये गये। प्रथम पंचवर्षीय आयोजना के अन्तर्गत इस कार्य पर मुख्य रूप से ध्यान दिया गया।

---

* भारत सरकार के अल्पसंख्यक मंत्री श्री चारुचंद्र विश्वास का लोकसभा में वक्तव्य—२३ मई, १९५१,

पश्चिमी पाकिस्तान के विस्थापितों के पुनर्वास की समस्या के दो पहलू थे—(१) ग्रामीण क्षेत्रों के विस्थापितों का पुनर्वास और (२) शहरी क्षेत्रों के विस्थापितों का पुनर्वास। ४.७५ लाख परिवारों के लिए पंजाब तथा पेप्सू की निष्क्राम्य भूमि का अर्ध स्थायी आधार पर नियतन किया गया तथा ३३ हजार अन्य परिवारों को इन राज्यों की इच्छा पर निर्भर कृषकों के रूप में बसाया गया। इसके अतिरिक्त ५७ हजार ८ सौ परिवारों को अन्य राज्यों में यथा राजस्थान, भोपाल, दिल्ली, बम्बई एवं उत्तर प्रदेश में भूमि दी गयी। सन् १९५३-५४ में ग्रामीण ऋण के रूप में ८.२४ करोड रुपये का अग्रिम भुगतान किया गया और सन् १९५४-५५ तथा १९५५ ५६ के लिए क्रमशः २० लाख तथा ३२ लाख रुपये की व्यवस्था की गयी।

नगरों के विस्थापितों ( पश्चिमी पाकिस्तान ) की संख्या लगभग २३ लाख थी। मुसलमानों के निष्क्रमण के फलस्वरूप जो मकान उपलब्ध हुए, उनमें मुश्किल से १२ लाख व्यक्ति बसाये जा सके थे। शेष के लिए मकानों की व्यवस्था का काम जारी किया गया। इनमें से कुछ सडकों पर रहते थे, कुछ स्कूलों और धर्मशालाओं की इमारतों में। इनके आवास की व्यवस्था करने के लिए केंद्रीय और प्रदेशीय सरकारों ने विभिन्न प्रकार के मकान बनवाये। इनके लिए जमीन उपलब्ध करने तथा इनके निर्माण-कार्य पर सन् १९५५ तक प्रायः ५८ करोड़ रुपये खर्च किये गये। लगभग दो लाख आवास स्थानो की व्यवस्था की जा चुकी है जिनमें १ लाख ५५ हजार सरकारी एजेंसियो तथा शेष ४५ हजार सहकारी समितियों के माध्यम से स्वयं विस्थापितों द्वारा तैयार किये गये है।

इसके अतिरिक्त सन् १९५४-५५ तक पश्चिमी पाकिस्तान के विस्थापित व्यक्तियो को २६ हजार-निष्क्राम्य दूकाने तथा २ हजार औद्योगिक संस्थाएं दी गयीं और विभिन्न नगरों मे ३४ हजार नयी दूकानें बनायी गयी। उद्योगों, व्यापार, व्यवसाय तथा अन्य धधो मे उन्हे लगाने के लिए सन् १९५३-५४ तक राज्यों द्वारा १३.३८ करोड़ रुपये नगरीय ऋण के रूप मे दिये गये थे और ५.८७ करोड़ अन्य ऋण के रूप मे। सन् १९५४-५५ तथा १९५५-५६ में क्रमशः ४० लाख और ६२ लाख रुपये की व्यवस्था की गयी।

संक्षेप मे सन् १९५५-५६ तक पश्चिमी पाकिस्तान के विस्थापितों पर कुल मिला कर २०१.३४ करोड रुपये खर्च किये गये जिनका ब्योरा इस प्रकार है—

(१) अनुदान ८१.२२ करोड़—(२) ऋण (आवास के अतिरिक्त) २५.४४ करोड़ (३) आवास ६०.४६ करोड़, (४) स्थापना, १.३९ करोड़ (५)

विविध ०.०१ करोड़ (६) प्रतिकर २५.८१ करोड और ३० नवम्बर, १९५५ तक पुनर्वास वित्त प्रशासन द्वारा दिया गया ऋण ७.०१ करोड।

सन् १९५६-५७ मे पश्चिमी पाकिस्तान के विस्थापितों पर १६.९७ करोड़ रुपये के खर्च की व्यवस्था की गयी है।

इस प्रकार ही पूर्वी पाकिस्तान के विस्थापितों को बसाने का प्रयास जारी है। भारत सरकार के पुनर्वास मंत्रालय के सन् १९५५-५६ के प्रतिवेदन के अनुसार इस वर्ष तक ३.८८ विस्थापित परिवारों को ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि और दूसरे सहायक रोजगार देकर बसाया जा चुका था। नगरीय क्षेत्रों मे ८८,३७० परिवारों के पुनर्वास के लिए ९.८७ करोड़ रुपये की राशि ऋण के रूप में दी जा चुकी थी। लगभग २ लाख विस्थापित व्यक्तियों को नौकरी दिलायी गयी थी। सरकारी वित्तीय सहायता से विस्थापितों ने लगभग ३,३५,००० मकान बनवाये। इस काल तक स्वयं सरकार द्वारा १४,९८१ मकान बनवाये जा चुके थे। इसके अतिरिक्त विस्थापित बालको की शिक्षा तथा वयस्कों के औद्योगिक प्रशिक्षण पर भी करोड़ों रुपये खर्च किये जा चुके है।

सन् १९५५-५६ के वर्ष तक पूर्वी पाकिस्तान के विस्थापितों पर कुल ८५.८१ करोड़ रुपये खर्च किये गये थे जिनका ब्योरा इस प्रकार है—

(१) अनुदान ३६.५७ करोड (२) ऋण (आवास के अतिरिक्त) २३.४७ करोड (३) आवास २२.६५ करोड (४) स्थापना ०.२१ करोड़ और (५) पुनर्वास वित्त प्रशासन द्वारा दिया गया ऋण २.९१ करोड़।

पुनर्वास की समस्या के साथ-साथ पाकिस्तान मे विस्थापितों द्वारा छोड़ी गयी सम्पत्ति के मुआविजे की समस्या का भी हल करने की चेष्टा जारी रही है जिसका कुछ विवरण पहले 'भारत-पाकिस्तान समझौता' शीर्षक अध्याय मे दिया जा चुका है। मुआवजे-सम्बंधी व्यवस्था के अनुसार "पश्चिमी क्षेत्र मे ३१ जनवरी, १९५६ तक ८१ हजार दावेदारो को अचल सम्पत्ति के मुआविजे के रूप मे २३ करोड़ ७८ लाख रुपया नकद दिया जा चुका था। इसके अतिरिक्त ४ हजार से भी अधिक दावेदार ६ करोड रुपये की निष्क्रात सम्पत्ति खरीद चुके थे। लगभग ११ हजार दावेदारों को जमीन और बाग दिये गये थे। इस प्रकार ३१ जनवरी, १९५६ तक ९६ हजार दावेदारों को मुआविजा दिया जा चुका था।

"सन् १९५६-५७ के वित्तीय वर्ष में पश्चिमी पाकिस्तान से आये दावेदारों को मुआविजा देने के लिए ५५ करोड़ ९० लाख रुपये की व्यवस्था की गयी है। विस्थापितों को नकद मुआवजा देने के लिए बजट में २० करोड़ रुपये की

विशेष व्यवस्था की गयी है। बाकी मुआविजा सम्पत्ति आदि के रूप में दिया जायगा।"

निष्क्रमणार्थियों की चल सम्पत्ति तथा बंक के खाते के सभी शेष मसलों पर अब भारत और पाकिस्तान के बीच समझौता हो गया है। सन् १९४९ मे बंक-सम्बंधी जो समझौता हुआ था, उसकी शर्तों को लागू करने का आदेश १५ जनवरी, १९५६ को जारी किया गया था। इसके फलस्वरूप दोनों देशों के बंकों के 'लाकर्स' और 'सेफ डिपाजिट' में जो सम्पत्ति जमा है, वह ३१ अक्तूबर, १९५६ तक उस देश को लौटा दी जाने वाली थी, जहां उसके मालिक रह रहे हों।

पुनर्वास की समस्या का सम्बध पाकिस्तान से भारत आने वाले विस्थापितों तक ही सीमित नहीं रहा है। बहुत से मुसलमान भारत छोड़कर पाकिस्तान चले गये थे। उनमे से बहुत से भारत लौट आये। लौटने वालों को भारत सरकार ने उनकी सम्पत्ति वापस दिलवायी। इसके अतिरिक्त प्रति परिवार ५ सौ रुपये तक के व्यवसाय ऋण और प्रति परिवार २ सौ रुपया तक के तदर्थ सहायता अनुदान के रूप में वित्तीय सहायता भी दी गयी। मार्च, १९५१ तक ऋण के रूप में २६,१४,००० रुपये और अनुदान के रूप मे २,५५,००० रुपये असम में तथा कुल ७,०५,००० रुपये अन्य राज्यों मे खर्च किये गये थे। बाद मे १२.०० लाख रुपये का ऋण और १३.७७ लाख रुपये का अनुदान और स्वीकार किया गया।

इस अध्याय के आरम्भ मे यह बताया जा चुका है कि सन् १९४७ में कश्मीर पर पाकिस्तान के आक्रमण के फलस्वरूप वहां भी विस्थापितों की समस्या उत्पन्न हुई जिसका सामना भी भारत सरकार को करना पड़ा। सन् १९५३ तक कश्मीर के विस्थापितों के पुनर्वास की समस्या हल करने के जम्मू-कश्मीर सरकार के प्रयास में भारत सरकार सहायता देती रही लेकिन सन् १९५४ के संविधान (जम्मू तथा कश्मीर पर प्रवर्त्तन) आदेश के बाद से जम्मू तथा कश्मीर राज्य में विस्थापित व्यक्तियों के पुनर्वास के कार्य पर भारत सरकार का पुनर्वास मंत्रालय विशेष ध्यान देता रहा। जो व्यक्ति जम्मू तथा कश्मीर में बसे उन्हें नकद सहायता, ऋण, भूमि, पुनर्वास स्थान तथा निःशुल्क परिवहन और उपयुक्त मामलों में मकानों के निर्माण के लिए धन के रूप में सुविधाएं दी गयीं। सन् १९५५-५६ में १०.५३ लाख रुपये की राशि जम्मू तथा कश्मीर राज्य को इस प्रयोजन के लिए सहायक अनुदान के रूप में दी गयी थी। इसके अतिरिक्त १०६.३१ लाख रुपये की रकम विस्थापितों को पुनर्वास ऋणों की अदायगी के

के लिए (६५.६३ खाख रुपये) और जम्मू में उनके लिए एक बस्ती में २ हजार मकान बनाने के लिए (४३.६८ लाख रुपये) मंजूर की गयी थी। भारत संघ के दूसरे राज्यों मे पुनर्वासित कश्मीरी विस्थापितों को साधारणतः वे ही सुविधाएं दी गयीं जो पश्चिमी पाकिस्तान के विस्थापितों की दी गयीं।

जैसा कि उपर्युक्त विवरण मे बताया गया है, इस जटिल समस्या का समाधान अभी पूरी तरह नहीं हुआ है। इसके लिए द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना मे भी व्यवस्था की गयी है जिसका विवरण यथास्थान दिया जायगा।

—:०:—

# प्रथम पंचवर्षीय आयोजना

**आयोजना के तीन भाग—व्यय की रकम—केन्द्र और राज्यों में खर्च का बंटवारा—सिंचाई के साधनों पर जोर—उद्योग-धन्धों का लक्ष्य परिवहन और जहाजरानी—सड़कों का विकास—शिक्षा—मकानों के लिए व्यवस्था—रोजी-रोजगार का लक्ष्य—सामुदायिक योजना प्रशासन—भारत सेवक समाज—चार वर्षों की प्रगति की समीक्षा—विदेशी सहायता।**

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत न केवल राजनीतिक समस्याओं को हल करने में ही लगा बल्कि उसने राजनीतिक आजादी को स्थायित्व प्रदान करने वाले आर्थिक उपकरणों का विकास करने की ओर भी समुचित ध्यान दिया। इस उद्देश्य से भारत सरकार ने मार्च, सन् १९५० में आयोजना आयोग की स्थापना की। देश के साधनों का नक्शा तैयार करके अपने आर्थिक पुनर्निर्माण में उनके उपयोग की योजना का निर्धारण करने की यह कल्पना नयी न थी। वास्तव में पराधीन भारत में ही इसका श्रीगणेश उस समय हो चुका था जब कांग्रेस ने पंडित जवाहरलाल नेहरू की अध्यता में राष्ट्रीय आयोजना कमेटी की स्थापना की थी जिसके सदस्यों में देश के अनेक प्रमुख अर्थशास्त्री शामिल थे। देश की स्वतन्त्रता प्राप्त होने के बाद भी प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू बराबर इस ओर ध्यान आकृष्ट करते रहे। उनका सदा से यह कहना रहा कि जब तक देश के आर्थिक साधनों और देश को समृद्ध बनाने की दृष्टि से उनके उपयोग का नक्शा साफ न हो, तब तक नियोजित ढंग से देश का आर्थिक विकास सम्भव नहीं है। अंततः उनकी प्रेरणा से ही मार्च, १९५० में भारत सरकार ने आयोजना आयोग की स्थापना की और उसे इन बातों पर विचार करने का भार सुपुर्द किया— (१) देश की वर्तमान सम्पत्ति और जन-शक्ति का अनुमान लगाकर देश की आवश्यकताओं पर ध्यान रखते हुए सभी प्रकार के साधनों के विकास की सम्भावनाओं पर विचार, (२) देश के साधनों का उपयोग सर्वाधिक प्रभावकारी एवं संतुलित ढंग से करने की योजना का निरूपण; (३) प्राथमिकता प्राप्त करने वाले कार्यों का क्रमानुसार पता लगाकर यह निश्चित करना कि किन-किन दशाओं से गुजर कर

योजना आगे बढ़े, (४) देश के आर्थिक विकास के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों और उनके निराकरण के उपायों का पता लगा कर योजना को आगे बढ़ाने की तरकीब बताना (५) यह बताना कि विभिन्न दशाओं में योजना के प्रत्येक अंग को कार्यान्वित करने के लिए किस प्रकार के संघटन और शासन-यंत्र की आवश्यकता है, (६) विभिन्न दशाओं में योजना जिस प्रकार आगे बढ़ रही हो, उसे बताते हुए नीति और उपायों में आवश्यकतानुसार हेर फेर करना और (७) समय-समय पर यह सुझाव देना कि योजना के अन्तर्गत किये जाने वाले कार्य सरलता से किस प्रकार पूरे किये जा सकते हैं।

श्री गुलजारीलाल नन्दा इस आयोग के अध्यक्ष नियुक्त हुए।

१९५१ में आयोग में पंचवर्षीय आयोजना का प्रारूप प्रस्तुत किया जिसके अन्तर्गत पूरे किये जाने वाले कार्य-क्रम पर १७ अरब ९३ करोड़ रुपये के व्यय का अनुमान लगाया गया था। आयोजना के प्रारूप में आयोग ने कृषि व्यवस्था के पुनर्संघटन, खाद्यनीति, गृहोद्योग और लघु उद्योग, भविष्य मे उद्योगों के संघटन की व्यवस्था, यातायात, खनिज पदार्थों की उपलब्धि, सिंचाई के साधनों और जल-विद्युत का विकास, शिक्षा, समाज सेवा, स्वास्थ्य रक्षा, विस्थापितों के पुनर्वास, योजना को कार्यान्वित करने के लिए प्रशासन और शासन-यंत्र में सुधार तथा जन-सहयोग आदि की विस्तृत विवेचना की थी। इस प्रारूप पर काफी विचार-निमर्श हुआ और कुछ मास बाद इसका अंतिम रूप प्रस्तुत किया गया। इसमें आयोजना के अन्तर्गत होने वाले कार्यों पर व्यय की रकम १७ अरब ९३ करोड़ से बढ़ाकर २० अरब ६९ करोड़ रुपये निश्चित की गयी।*

आयोजना के अन्तिम रूप में तीन महत्त्वपूर्ण बातें और जोड़ दी गयीं—(१) ऋतु के प्रभाव से समय-समय पर होने वाली कमी का सामना करने का प्रबंध (२) राज्यों में आयोजना के अन्तर्गत होने वाले कार्यों की सफलता के लिए जिला और तहसील के स्तर पर उनका निरूपण और (३) रचनात्मक कार्यों में लगी संस्थाओं और व्यक्तियों का सहयोग उपलब्ध करने की व्यवस्था।

प्रथम पंचवर्षीय आयोजना तीन भागों में विभक्त की गयी। प्रथम भाग में यह बताया गया कि अविकसित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत विकास कैसे किया

---

* आयोजना के चतुर्थ वर्ष में व्यय में २ अरब, ८८ करोड़ रुपये की वृद्धि की गयी। इस प्रकार यह राशि २३ अरब, ५७ करोड़ रुपये हो गयी।

जाय तथा पहले कौन से कार्य पूरे किये जांय। दूसरे भाग में शासन और जनता में सहयोग तथा शासन में सुधार के उपाय बताये गये और तीसरे भाग में विकास-कार्यों की रूप-रेखा अलग-अलग समझायी गयी।

आयोजना पर होने वाले व्यय की रकम की प्राप्ति के संबंध में अनुमान लगाया गया कि राज्य और केंद्र की सरकारों के बजट में राजस्व और रेलों की आय से १२ अरब ५८ करोड़ रुपये प्राप्त हो जांयगे। शेष रकम में से अन्तर्राष्ट्रीय बंक, अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड से प्राप्त होने वाले १ अरब ५६ करोड़ रुपये भी घटा दिये गये।† इस प्रकार कार्य की पूर्ति में कुल ६ अरब, ५५ करोड़ का घाटा दिखाया गया। इस सम्बन्ध मे निर्णय किया गया कि घाटे की पूर्ति विदेशी सहायता से की जाय और वह उपलब्ध न हो तो नये कर लगाये जांय और जनता से ऋण प्राप्त किया जाय।

आयोजना के खर्च का ब्योरा इस प्रकार बताया गया—

| | ( करोड़ रुपयों में ) |
|---|---|
| (१) खेती और सामूहिक विकास | ३६१ |
| (२) सिंचाई | १६८ |
| (३) बहुउद्देश्यीय सिंचाई और बिजली योजनाएं | २६६ |
| (४) विद्युत्-शक्ति | १२७ |
| (५) परिवहन और संवाद वहन | ४६७ |
| (६) उद्योग | १७३ |
| (७) सामाजिक सेवाएं | ३४० |
| (८) पुनर्वास | ८५ |
| (९) अन्य | ५२ |
| | २०६९ करोड़ |

व्यय की पूंजी के सम्बंध में यह अनुमान लगाया गया कि इसका काफी बड़ा अंश पूंजी-गत व्यय होगा जो भविष्य में विकास की नींव बन सकेगा। आयोजना में यह ब्योरा इस प्रकार बताया गया—

† यह रकम उस समय तक प्राप्त हो चुकी थी।

करोड़ रुपये में

| | |
|---|---|
| (१) केंद्रीय तथा राज्य सरकारों की उत्पादक पूंजी का स्टाक बढ़ाने वाला व्यय | १, १६६ |
| (२) निजी क्षेत्र में उत्पादक पूंजी को बनाने मे मदद देने वाला व्यय | |
| (क) सामूहिक विकास योजनाओं और कमी वाले क्षेत्रों के प्रबंध को छोड़कर खेती और गांव के विकास पर होने वाला व्यय | २४४ |
| (ख) परिवहन और उद्योग के लिए ऋण | ४७ |
| (ग) सामूहिक योजनाएं तथा स्थानीय निर्माण-कार्य | १०५ |
| (३) सामाजिक पूंजी-सम्बंधी व्यय | ४२५ |
| (४) कमी वाले इलाकों के प्रबंध पर होने वाले व्यय को लेकर वह अन्य खर्च जो उपर्युक्त मदों मे नहीं दिखाया गया। | ४६ |
| कुल | २०६६ |

इस प्रकार हिसाब लगाया गया कि कुल व्यय का ६० प्रतिशत भाग उत्पादक पूंजी मे बदल जायगा। प्रायः इतनी ही रकम खर्च करने का भार केंद्रीय सरकार पर पड़ा। आयोजना के अन्तर्गत नदी घाटी योजनाओ, सामूहिक योजना और विस्थापितों के पुनर्वास आदि पर होने वाला खर्च केंद्र के जिम्मे पड़ा। केंद्र और राज्य सरकारों के बीच खर्च के बँटवारे का ब्योरा मोटे तौर पर इस प्रकार बताया गया—

| | ( करोड़ रुपयों मे ) |
|---|---|
| १—केन्द्रीय सरकार ( रेलों सहित ) | १,२४१, |
| २—राज्य : भाग—'क' | ६१० |
| भाग—'ख' | १७३ |
| भाग—'ग' | ३२ |
| जम्मू-कश्मीर— | १३ |
| कुल | २०६६ |

प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में खेती की उपज के लक्ष्य इस प्रकार निर्धारित किये गये—

| जिंस | परिमाण ( लाखों में ) | प्रतिशत वृद्धि |
|---|---|---|
| अन्न | ७६ टन* | १४ |
| रुई | १२.६ गाँठे | ४२ |
| जूट | २०.६ गाँठे | ६३ |
| गन्ना | ७.० टन† | १२ |
| तिलहन | ४.० टन | ८ |

आयोजना आयोग ने यह मत प्रकट किया था कि 'आबादी जितनी बढ़ी है, खेती के रकबे मे उस हिसाब से वृद्धि नहीं हुई, अन्न की उपज ४.४ करोड़ से ४.५ करोड़ टन के आस-पास थी। प्रत्येक व्यक्ति के लिए प्रतिदिन १३.७ औंस अन्न की आवश्यकता को आधार मान कर हिसाब लगाने पर यह देखा गया कि १९५५–५६ तक अन्न की उपज ६७ लाख टन बढ़ा देनी होगी। इस पर ध्यान रखते हुए आयोजना आयोग ने ७६ लाख टन अन्न अधिक उपजाने का लक्ष्य निर्धारित किया जिसका विवरण ऊपर दिया जा चुका है। 'खेती के लिए सहकार ढंग पर जोर दिया गया।' भूमि पर अधिकार के सम्बन्ध में आयोग ने यह सिद्धान्त निर्धारित किया कि "किसी एक मालिक के अधीन तीन परिवारों के उपयुक्त जमीन से अधिक जमीन न होनी चाहिये।..... जिनके पास एक परिवार द्वारा जोतने-बोने लायक जमीन है, वे किसान और जिनके पास तीन परिवारो द्वारा जोतने-बोने लायक तक जमीन है, वे मध्यम किसान कहलायेगे। उद्देश्य यह होना चाहिये कि छोटे और मध्यम किसानों को मदद दी जाय और उन्हें इस योग्य बनाया जाय कि वे जहां तक हो सके सहकारी समितियों मे संघटित हो जांय। छोटे किसानों के लिए यह बहुत जरूरी है कि राज्य उन्हें ऐसा मौका दे जिससे वे अपनी जमीनों को एक जगह कर सकें। यह भी होना चाहिये कि एक हद के बाद जमीन के टुकड़े करने की मनाही कर दी जाय। अस्थायी काश्तकारों के पास जमीन ५ से १० दस साल तक की शर्त पर रहे और यह शर्तनामा ऐसा होना चाहिये कि अवधि खत्म होने पर दोबारा चालू हो सके। उनसे जमीन लेना तभी जायज हो जब मालिक स्वयं खेती करना चाहे। लगान के सम्बंध मे

---

* इसमें ४० लाख टन चावल, २० लाख टन गेहूँ, १० लाख टन चना व दालें और ५ लाख टन ज्वार-बाजरा शामिल किया गया

† गुड़ के रूप में।

यह नीति होनी चाहिये कि खेती का खर्च और दूसरी विपत्तियों का हिसाब लगाकर भी काश्तकार के पास काफी बच जाय।"

आयोजना में इस बात पर विशेष रूप से जोर दिया गया कि सहकारी समितियां तथा ऐसी संस्थाएं बनायी जांय जिनके द्वारा तकावी, कर्ज आदि दिया जा सके। प्रत्येक वर्ष कुल एक अरब रुपया सहकारी समितियों द्वारा तथा सरकार से गांव वालों को अल्पकालीन कर के रूप में मिलना चाहिये। मध्यम दर्जे के कर्ज के रूप में प्रति वर्ष २५ करोड़ रुपया मिलना चाहिये। इसके अतिरिक्त पशु-धन की वृद्धि और उसके पालन-पोषण के संबंध में भी आयोजना में विशेष व्यवस्था की गयी।

सिंचाई पर आयोजना में विशेष रूप से ध्यान दिया गया। आज देश में अनेक जल-विद्युत योजनाएं पूरी की जा चुकी है या पूरी की जा रही हैं। इनमें से कुछ विश्व की सर्वाधिक बड़ी योजनाओं के मुकाबिले की हैं।

विभाजन से पूर्व भारत में ७ करोड़ २० लाख एकड़ भूमि की ही सिंचाई होती थी, यद्यपि खेती होती थी २६ करोड ८० लाख एकड़ पर। विभाजन के पश्चात् भारतीय संघ मे सिचाई वाला क्षेत्र २५ करोड़ १० लाख एकड़ में से ४ करोड़ ८० लाख एकड़ ही पाया गया। अतः सिंचाई के साधनों के विकास पर आयोजना में काफी जोर दिया गया। वास्तव में इसके तैयार होने के पूर्व ही कई योजनाएं लागू की जा चुकी थीं और मार्च १६५१ तक इन पर १ अरब ५३ करोड़ रुपये खर्च किये जा चुके थे। अनुमान लगाया गया था कि इन्हें पूरी करने पर ७६५ करोड़ रुपये खर्च हो गये। इस पर ध्यान देते हुए प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में सिंचाई के साधनों पर ५१८ करोड़ रुपये खर्च करने का निश्चय किया। अनुमान लगाया कि इन योजनाओं के पूरी होने पर ८५ लाख एकड़ अधिक भूमि की सिंचाई हो सकेगी और १० लाख ८० हजार किलोवाट बिजली उत्पन्न होगी। सिंचाई की कुल योजनाएं पूरी होने पर १६६ लाख एकड़ अधिक भूमि की सिंचाई होने तथा १४ लाख ६० हजार किलोवाट बिजली उत्पन्न होने का अनुमान लगाया गया।

आयोजना काल के प्रत्येक वर्ष में होने वाले खर्च और लाभ का ब्योरा इस प्रकार बताया गया—

| वर्ष | खर्च ( करोड़ में ) | सिंचाई में वृद्धि (एकड़ में) | बिजली में वृद्धि (किलोवाट में) |
|---|---|---|---|
| १६५१-५२ | ८५ | ६,४६,००० | ५८,००० |
| १६५२-५३ | १२१ | १६,६०,००० | २,३६,००० |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १९५३-५४ | १२७ | ३५,५५,००० | ७,२४,००० |
| १९५४-५५ | १०७ | ५७,४९,००० | ८,७५,००० |
| १९५५-५६ | ७८ | ८५,३३,००० | १०,८२,००० |
| अन्त में | | १,६९,४२,००० | १४,६५,००० |

इनके अलावा नयी योजनाओं के लिए ४० करोड़ की रकम पृथक रखी गयी जिसका ब्योरा नीचे दिया जा रहा है—

| योजना का नाम | लाभान्वित क्षेत्र | कुल व्यय | अनुमानित सिंचाई (हजार एकड़ में) | अंतिम लाभ (बिजली हजार कि. वा. में) |
|---|---|---|---|---|
| १. कोसी (प्रथम अवस्था) | बिहार तथा नेपाल | ६,६०० | २,६२० | ४० बाढ़ की रोक थाम |
| २. कोयना (प्रथम अवस्था) | बम्बई | ३,३०० | — | २४० |
| ३. कृष्णा (मद्रास) तथा चम्बल (पहली अवस्था) | हैदराबाद राजस्थान तथा मध्य भारत | अप्राप्य ३,३७५ | — १,२०० | अप्राप्य ८० |
| ४. रिहन्द | उत्तर प्रदेश | ३,५०० | — | २४० |

प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में मुख्यतः सिंचाई और जलविद्युत-विकास के साधनों पर ही जोर दिया गया। इस दृष्टि से इस में और द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में यह अंतर है कि दूसरी आयोजना में मुख्य रूप से बड़े उद्योगों पर अधिक जोर दिया गया है।

प्रथम आयोजना में केंद्रीय और राज्य सरकारों के अधीन औद्योगिक कार्यों के लिए ६४ करोड़ रुपये रखे गये। इसके अतिरिक्त बुनियादी उद्योग-धंधों के लिए (परिवहन-सम्बन्धी जरूरतों की पूर्ति के साथ) ५० करोड़ रुपये और खर्च करने का निर्णय किया गया। निजी व्यवसायों के क्षेत्र में औद्योगिक विस्तार के लिए २३३ करोड़ रुपये लगाने का लक्ष्य तय किया गया। इस सम्बन्ध मे आयोजना के प्रतिवेदन में कहा गया था कि "८० प्रतिशत पूंजी कलों तथा ऐसे धंधों में लगायी जायगी जिनसे उत्पादकों का सम्बंध है। इनमें मुख्य लोहा और इस्पात है जिनमें ४३ करोड़ रुपये लगेंगे, पेट्रोलियम की सफाई के

कारखाने हैं जिन पर ६४ करोड़ रुपये लगेंगे, सीमेण्ट का उत्पादन है जिसमें १३ करोड़ रुपये लगेंगे, एल्यूमोनियम में ६ करोड़ रुपये लगेंगे, और रासायनिक खाद, उच्च रासायनिक पदार्थ, पावर अलकोहल आदि में कुल मिलाकर १२ करोड़ रुपये लगेंगे।

उद्योग-धंधों का लक्ष्य इस प्रकार निर्धारित किया गया—

| | उत्पादन (१९५०-५१ में) | उत्पादन का लक्ष्य (१९५५-५६ में) |
|---|---|---|
| **लोहा और इस्पात** | | |
| कच्चा लोहा (पिग आयरन) | १५.७ लाख टन | १९.५ लाख टन |
| तैयार इस्पात | ६.८ ,, ,, | १२.८ ,, ,, |
| सीमेंट | २६.६ ,, ,, | ४५.० ,, ,, |
| **रासायनिक खाद** | | |
| एल्यूमोनियम | ३.७ ,, ,, | १२.० ,, ,, |
| अमोनियम सल्फेट | ४६,३०० टन | ४,५०,००० टन |
| सुपर फास्फेट | ५५,१०० टन | १,८०,००० टन |
| रेल के इंजन | ... | १५० |
| मशीनी औजार | १,१०० | ४,६०० |
| **पेट्रोलियम की सफाई** | | |
| द्रव पेट्रोलियम | अप्राप्य | ४,०३० लाख गैलन |
| बिट्यूमेन | ,, | ३७, ५०० टन |
| **सूती माल** | | |
| सूत | ११,७६० लाख पौंड | १६, ४०० लाख पौंड |
| मिल का कपड़ा | ३७,१८० लाख गज | ४७,००० लाख गज |
| हथकरघे का कपड़ा | ८,१०० ,, ,, | १७,००० ,, ,, |
| जूट का माल | ८,६२,००० टन | १२,००,००० टन |
| **खेती की मशीनें** | | |
| (क) पम्प (बिजली से चलनेवाले) | ३४,३०० | ८५,००० |
| (ख) डीजल इंजन | ५,५०० | ५०,००० |
| बाइसिकल | १,०१,००० | ५,३०,००० |
| मद्य-सार | ५० लाख गैलन | १८० लाख गैलन |

परिवहन और संचार साधनों के लिए जो कार्य-क्रम निश्चित किया गया, उसमें रेलों को प्रमुखता दी गयी। चितरंजन में १५ करोड़ रुपये की लागत से रेलवे इंजन का एक कारखाना तैयार किया गया। कुल व्यय ४ अरब निर्धारित किया गया जिसमें ८० करोड़ की देनदार केन्द्रीय सरकार बनायी गयी और शेष रकम पूरी करने की भार रेलों की अपनी आय पर छोड़ दिया गया।

जहाजरानी के विकास के सम्बन्ध में आयोजना में बताया गया कि "१९५५-५६ तक विदेशी और समुद्री किनारे के व्यापार के लिए लगभग ६,००,००० टन के रजिस्टर्ड जहाज काम करने लगेंगे।" आयोजना मे जहाज खरीदने के लिए जहाजी कम्पनियों को १५ करोड़ रुपये बतौर कर्ज देने की सिफारिश की गयी। १२ करोड़ रुपये के खर्च से कांडला बन्दरगाह तैयार करने का निश्चय किया गया जो अब बन चुका है। जो माल पहले कराची से जाता था, अब वह काडला से जाता है।

सडकों के सुधार के लिए २७ करोड़ रुपये की राशि निश्चित की गयी। डाक, तार और टेलीफोन व्यवस्था के विकास के लिए ५० करोड़ रुपये की रकम निर्धारित की गयी। नागरिक स्वास्थ्य रक्षा के सम्बन्ध में आयोजना मे बताया गया था कि "केंद्रीय सरकार तथा राज्य सरकारें ९९.५५ करोड़ रुपये खर्च करेगी। इसमे १७.८७ करोड रुपया केन्द्रीय सरकार देगी।"

प्रथम पंचवर्षीय आयोजना के अन्तर्गत शिक्षा पर १५१ करोड रुपये खर्च करने का निश्चय किया गया था। इसमे ३४ करोड़ रुपये केन्द्रीय सरकार के जिम्मे रहे और शेष ११७ करोड़ राज्य सरकारों के। इसके अतिरिक्त यह निश्चय किया गया था कि "स्त्रियों की शिक्षा के समुचित प्रबन्ध के अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार ७॥ करोड़ रुपये सामाजिक शिक्षा की व्यवस्था पर खर्च करेगी।" एक करोड की धन-राशि पृथक से इसलिए रखी गयी थी कि युवकों के शिविरों तथा विद्यार्थियों की श्रम-सेवाओं का संघटन किया जा सके।

मकानों की कमी की समस्या को हल करने के लिए आयोजना मे ४८.६९ करोड़ रुपये नये मकानों के निर्माण के लिए रखे गये। इनमें ३८.५ करोड़ रुपये के व्यय का भार केंद्रीय सरकार पर तथा शेष १०.१९ करोड़ के व्यय का भार राज्य सरकारों पर छोड़ा गया था।

पिछड़ी हुई जातियों की उन्नति के लिए आयोजना में २९ करोड़ रुपये रखे गये।

बेकारी और बेरोजगारी की समस्या के सम्बन्ध में आयोजना में बताया गया था कि "बेरोजगारी उन लोगों में हैं जो या तो क्लर्की का काम कर सकते हैं

या जिन्होंने किसी उद्योग-धन्धे की शिक्षा नहीं ली है। बेरोजगारी की वृद्धि के मुख्य कारण ये हैं—देश की तेजी से बढ़ती हुई आबादी, पहले के देहाती घरेलू उद्योग-धन्धों का नाश, कृषि से भिन्न-भिन्न क्षेत्रों का अधूरा विकास तथा बंटवारे के बाद देश की आबादी का एक स्थान से दूसरे स्थान पर आना-जाना।

इस पर ध्यान देते हुए देहाती उद्योगों के विकास के लिए १५ करोड़ रुपया खर्च करने का निश्चय किया गया था। रोजी-रोजगार की वृद्धि का अनुमान यह रहा—

| | रोजी-रोजगार में अधिक वृद्धि |
|---|---|
| १. छोटे और बड़े व्यवसाय | ४ लाख प्रति वर्ष |
| २. सिंचाई और बिजली के बड़े कार्यक्रम | ७॥ लाख ,, ,, |
| ३. खेती बारीः | |
| नयी सिंचाई से | १४ लाख प्रति वर्ष |
| तालाबों की मरम्मत से | १॥ लाख ,, ,, |
| नयी भूमि से | ७॥ लाख ,, ,, |
| ४. मकान बनाने का काम | १ लाख ,, ,, |
| ५. सड़क बनाने का काम | २ लाख ,, ,, |
| ६. घरेलू उद्योग-धंधे | २० लाख ,, ,, तथा ३६ लाख के लिए स्थायी काम |
| ७. स्थानीय कार्यों से | अकल्पित |

संक्षेप में प्रथम पंचवर्षीय आयोजना का यही रूप है। इसके अन्तर्गत दो काम सर्वाधिक महत्त्व-पूर्ण रहे—सामुदायिक विकास योजना और श्रम-शक्ति के उद्योग के लिए भारत सेवक समाज आदि संस्थाओं का संघटन।

सामुदायिक विकास योजना के अन्तर्गत जिले के अविसित भाग का एक क्षेत्र निर्धारित करके नियोजित ढंग से उसका विकास करने का कार्य जारी किया गया। इसमें कार्य-कर्त्ताओं का प्रशिक्षण तथा ग्रामीणों की श्रम-शक्ति का उपयोग भी शामिल है। विकास-कार्यों में स्वेच्छा-पूर्वक श्रमदान करने के लिए ग्रामीणों को प्रोत्साहित किया जाता है। उन्हें खेती के उत्तम औजार सुलभ कराये जाते हैं। अच्छी खाद दी जाती है। पाठशाला और पंचायत घर का निर्माण किया जाता है। सड़कों तथा सिंचाई के छोटे साधनों का निर्माण करने के लिए प्रेरित किया जाता है। छोटे-छोटे ग्रामोद्योगों को बढ़ाने के लिए ऋण और अनुदान दिया जाता है।

"सामुदायिक कार्य-क्रम का मुख्य उद्देश्य लोगों की दृष्टि को बदलना है ताकि अपने विकास के लिए वह स्वतः काम करने लगे।" इसका प्रशासन पृथक है। सामुदायिक योजना प्रशासन का कार्य केंद्रीय स्तर पर निर्देशात्मक है। यह राज्य सरकारों को परामर्श देता है जो जिले के अन्तर्गत विकास-कार्य सम्पन्न कराती हैं।

प्रथम पंचवर्षीय आयोजना के लक्ष्य की पूर्ति में जन-सहयोग के महत्त्व पर ध्यान देते हुए भारत सेवक समाज नामक संस्था की स्थापना की गयी जिसके प्रथम अध्यक्ष स्वयं भारत के प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू बने यह गैर राजनीतिक संस्था है और इस समय प्रायः सारे देश में इसकी शाखाएँ कायम हो चुकी हैं। इसके अन्तर्गत युवकों और युवतियों के प्रतिक्षण शिविरों का आयोजन किया गया था और किया जा रहा है जिनका उद्देश्य प्रशिक्षित कार्यकर्त्ताओं द्वारा गांवों में होने वाले निर्माण-कार्यों में सहयोग, स्वावलम्बन की ओर लोगों को, विशेष रूप से छात्रों को आकृष्ट करना तथा उपलब्ध साधनों का उपयोग समुचित रूप में करने के योग्य बनना तथा अन्य लोगों को इसके योग्य बनाना है। इसके विधान में उद्देश्य इस प्रकार बताये गये—

(१) स्वेच्छापूर्वक सेवा करने के लिए अवसरों का पता लगाना एवं उनका विकास करना। राष्ट्रीय क्षमता को आगे बढ़ाना तथा देश की आर्थिक शक्ति का निर्माण करना। समुदायिक और सामाजिक भलाई के काम को आगे बढ़ाना और समाज के उपेक्षित वर्ग की उदासीनता को मिटाना तथा इसकी कठिनाइयों को दूर करना।

(२) जनता को उपलब्ध हो सकने वाले बचे हुए समय, शक्ति और अन्य साधनों को लेकर आर्थिक और सामाजिक सक्रियता के विभिन्न क्षेत्रों में उन्हें लगाना।

(३) उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक सभी उपायों का अवलम्बन करना।*

इस प्रकार प्रथम पंचवर्षीय आयोजना के अन्तर्गत निर्धारित कार्य-क्रम की ओर कदम उठाया गया जो बराबर बढ़ता गया। पूरे पांच वर्ष की प्रगति का विवरण अभी आयोजना आयोग ने प्रकाशित नहीं किया है किन्तु चार वर्षों के आंकड़े उपलब्ध है जिनसे विभिन्न दिशाओं में हुई प्रगति का पता चल जाता है। कई क्षेत्रों में उत्पादन लक्ष्य से अधिक हो चुका है। खाद्यान्न के

---

* 'भारत सेवक समाज,' प्लानिंग कमीशन का प्रकाशन—पृ० सं० २८

मामले में देश आत्म-निर्भर हो चुका है। कुछ अन्य क्षेत्रों में भी जिनके सम्बन्ध में प्रायः पूरे काल के आंकड़े प्राप्त हैं, उत्पादन लक्ष्य से अधिक हुआ। सिंदरी के उर्वरक कारखाने में सन् १९५५–५६ में, ३,२६,०७३ टन एमोनियम सल्फेट तैयार हुआ। पहली आयोजना में ३,२०,००० टन के वार्षिक उत्पान का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। पिम्परी के पेनसिलिन कारखाने मे मार्च, १९५५ में परीक्षात्मक ढंग पर काम आरम्भ हुआ और अगस्त, १९५५ में कारखाने में नियमित ढंग से उत्पादन होने लगा। अप्रैल, १९५६ में आयोजना की अवधि समाप्त होने तक यह कारखाना ६४ लाख मेगा यूनिट पेनसिलिन तैयार कर चुका था जब कि उत्पादन का लक्ष्य ४८ लाख मेगा यूनिट ही निर्धारित किया गया था। रूपनारायणपुर के टेलीफोन तार के कारखाने में सन् १९५५–५६ मे ५२५ मील लम्बे तार बनाये गये। आयोजना मे वार्षिक उत्पादन का लक्ष्य ५१० मील रखा गया था।

प्रथम पंचवर्षीय आयोजना के समीक्षात्मक प्रतिवेदन के अनुसार जो २९ मई, १९५६ को प्रकाशित किया गया था, पहली पंचवर्षीय आयोजना के आरम्भ में देश की जो आर्थिक स्थिति थी, उसके मुकाबले आयोजना के चौथे वर्ष के अत मे स्थिति कही सुदृढ़ और संतोषजनक रही। इस वर्ष विकास के प्रयत्नों मे काफी वृद्धि हुई। सरकारी क्षेत्र में होने वाला खर्च काफी बढ़ा और निजी क्षेत्र मे भी पिछले दो सालो की अपेक्षा अधिक पूंजी कारबार में लगायी गयी। इसके पहले के वर्ष मे अन्न की उपज सबसे अधिक थी, पर चौथे वर्ष मे भी यह प्रायः उतनी ही रही। औद्योगिक उत्पादन पिछले साल से अधिक रहा। भारत के विदेशी व्यापार मे वृद्धि हुई और भुगतान मे थोड़ी सी बचत रही। देश में उत्पादन की वृद्धि, घाटे के बजट और भुगतान में बचत के साथ-साथ इस वर्ष व्यापार के लिए ६ प्रतिशत धन अधिक उपलब्ध हुआ। इस वृद्धि से कृषि-उपज के गिरते हुए दाम रुक गये।

आयोजना के चौथे वर्ष मे व्यापार-वाणिज्य की स्थिति मे और सुधार हुआ और कारोबार के लिए पूंजी सुलभ रही। विकास-कार्यों के कारण रोजगार बढ़ा अवश्य, पर इसकी स्थिति संतोषजनक नहीं रही। चौथे वर्ष तक यह स्पष्ट हो गया था कि आयोजना के तात्कालिक उद्देश्यों मे सफलता मिल रही है। ये उद्देश्य थे, कुछ अनिवार्य उपभोग्य सामग्री का उत्पादन बढ़ाकर मांग और पूर्ति ( सप्लाई ) का असंतुलन दूर करना और मुख्यतः आर्थिक तथा सामाजिक उपयोग के कार्यों मे पूंजी लगाकर देश की उन्नति का मार्ग खोलना।

आयोजना के कुछ महत्त्वपूर्ण लक्ष्यों और चौथे साल के अंत तक उनकी कितनी पूर्ति हुई, इससे सम्बंधित आंकड़ों की तालिका नीचे दी गयी है—

## आयोजना के लक्ष्य और उनकी पूर्ति

| | १९५०-५१ | १९५५-५६ तक वृद्धि का लक्ष्य | वास्तविक वृद्धि १९५३-५४ | १९५४-५५ | १९५४-५५ में आयोजना की लक्ष्य प्राप्ति में सफलता (प्र.श.) |
|---|---|---|---|---|---|
| | १ | २ | ३ | ४ | ५ |
| १. कृषि उपज | | | | | |
| (क) अनाज (लाख टनों में) * | ५४१.० क | ७६.० | १४४.० | ११६.० | १५२ |
| (ख) कपास (लाख गांठों में) | २९.७ | १२.६ | १०.६ | १३.९ | ११० |
| (ग) पटसन (लाख गाठों में) | ३२.८ | २०.९ | -१.५ | -१.३ | —— |
| (घ) ईख, गुड़ के हिसाब से (लाख टनों में) | ५६.२ | ७.० | -११.५ | -०.७ | —— |
| (ङ) तेलहन (लाख टनों में) | ५१.० | ४.० | ३.६ | ७.८ | १९५ |
| २. बिजली (कुल क्षमता लाख किलोवाट में) | २३.० | १३.० | ६.० | १०.० | ७७ |
| ३. सिंचाई (लाख एकड़ में) | ५००.० | १९७.० | ७५.० | १०३.०ख | ५२ |

* इसमें चना और दालें भी शामिल हैं

क. मूल वर्ष १९४९-५० मानकर

ख. इसमें से ४.० सिंचाई के बड़े साधनों से और ६.३ छोटे साधनों से हुई (मोटा अनुमान)

| | १ | २ | ३ | ४ | ५ |
|---|---|---|---|---|---|
| ४. औद्योगिक उत्पादन | | | | | |
| (क) इस्पात (लाख टनों में) | ६.८ | ६.७ग | १.० | २.६ | ३६ |
| (ख) सीमेंट (लाख टनों में) | २६.६ | २१.१ | १३.४ | १७.२ | ८२ |
| (ग) अमोनियम सल्फेट (हजार टनों में) | ४६.० | ४०४.० | २६१.० | ३१६.० | ७६ |
| (घ) इंजन (संख्या) | ३ | १७० | ८३ | १४५ | ८५ |
| (च) पटसन का माल (हजार टनों में) | ८६२ | ३०८ | –२८ | ७६ | २६ |
| (छ) मिल का कपड़ा (करोड़ गजों मे) | ३७१.८ | ६८.८ | ११८.८ | १३२.८ | १३५ |
| (ज) साइकिलें (हजारों मे) | १०१ | ४२६ | १८८ | ३६२ | ६१ |
| (झ) तटवर्ती व्यापार के जहाज (हजार टनों मे) | २१७ | १६५ घ | १०२ | १३० | ७६ |
| ५. बड़ी-बड़ी सड़कें (हजार मीलों में) | ११.६ | ०.६ | ०.३च | ०.४च | ६७ |
| ६. शिक्षा और स्वास्थ्य | | | | | |
| (क) प्राइमरी स्कूल— गैर-बुनियादी (हजारों मे) | २०८.३ | ५७.४ | २५.४ | ४१.४ | ७२ |
| (ख) जूनियर बुनियादी स्कूल (हजारों में) | १.४ | ७.० | २.५ | ४.७ | ६७ |
| (ग) अस्पतालों के बिस्तर (हजारों मे) | ११३ | १२ | ४.८ | ५.५ | ४६ |

आयोजना के चौथे साल में कृषि उपज में १६४६-५० के मुकाबले लगभग १४ प्रतिशत की और १६५०-५१ के मुकाबले १६ प्रतिशत वृद्धि हुई।

ग. यह लक्ष्य १९५७-५८ तक का है।

घ. इसमें जहाजों की तबदीलियाँ भी शामिल हैं।

च. ये संख्याएं साल के अन्त तक की वृद्धि की हैं।

१९५४-५५ में गेहूँ और दालों की पैदावार और बढ़ी, पर असम, बिहार, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल में बाढ़ आने से चावल की पैदावार कम रही। इस कारण अनाज की कुल पैदावार पिछले साल १९५३-५४ से कम रही। १९५४-५५ में ६ करोड़ ५६ लाख टन अनाज पैदा हुआ था और १९५३-५४ में ६ करोड़ ८४ लाख टन। फिर भी आलोच्य वर्ष में आयोजना के मूल वर्ष से उपज १ करोड़ १६ लाख टन अधिक और पाँचो साल के लक्ष्य से भी अधिक ही रही। अनाज की उपज बढ़ने का एक कारण अच्छी वर्षा होना भी रहा।

पहले ४ सालों में १ करोड़ ३ लाख एकड़ नये क्षेत्र में सिंचाई होने का अनुमान था। इसमें से ४० लाख एकड में नहरों आदि बड़े साधनों से और ६३ लाख एकड़ में कुओं आदि छोटे साधनों से सिंचाई हुई।

१९५४–५५ में औद्योगिक क्षेत्र मे काफी प्रगति हुई। इस वर्ष देश में कुछ ऐसी चीजों का उत्पादन शुरू हुआ जो अब तक यहां नहीं बनती थीं। औद्योगिक उत्पादन का सूचक अंक (१९४६ का १०० मानकर) इस वर्ष बढ़कर १४८ हो गया। १९५३–५४ का यह अंक १३७ था। इस साल पांच बड़े-बड़े सरकारी कारखानों-रूपनारायणपुर के हिन्दुस्तान के बिल कारखाने, पिम्परी के पेनिसिलिन कारखाने, उत्तर प्रदेश सरकार के सीमेंट कारखाने, जल्लहाली के हिन्दुस्तान मशीन टूल कारखाने और मध्य प्रदेश सरकार के अखबारी कागज के कारखाने में, उत्पादन शुरू हुआ। इसी वर्ष देश में दो तेल-शोधक कारखाने भी चालू हुए।

मिल के कपड़े का उत्पादन लक्ष्य से कहीं अधिक रहा। चौथे साल के अंत तक इंजनों, सीमेंट और अमोनियम सल्फेट का उत्पादन आयोजना के लक्ष्य का क्रमशः ८५, ८२ और ७९ प्रतिशत रहा। १९५३–५४ में सिंदरी में २,४९,००० टन अमोनियम सल्फेट बना था और १९५४–५५ में २,९८,३०० टन। इस वर्ष में लोहे और इस्पात का तथा पटसन के माल का उत्पादन काफी बढ़ गया था।

रेलों की लाइनों को बढ़ने और उनके विस्तार के कार्यक्रम को चलाने के माल ढोने में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। १९५४–५५ में १९५३–५४ की अपेक्षा छः प्रतिशत अधिक माल ढोया गया।

आयोजना की अवधि में रेलों पर काम का बोझ बराबर बढ़ता गया। लदान में वृद्धि होने के बावजूद, जितना सामान रेलों से ढुलाई के लिए आता है, रेलें उसे नहीं ढो पा रही हैं।

१९५४–५५ में ८० मील लम्बी नयी लाइनें, बिछायी गयीं और २९३ मील लम्बी लाइनें, जो पहले उखाड़ दी गयीं थी, फिर से बिछायी गयीं।

उपर्युक्त वर्ष में १४० मील लम्बी नयी सड़कें और पांच बड़े पुल बनाये गये। १२०० मील लम्बी सड़कें सुधारी गयीं। दूसरी सड़कों पर भी काम की प्रगति संतोषजनक रही। अंतरराज्यीय सड़कें बनाने का विशेष कार्यक्रम भी १९५४–५५ की आयोजना में सम्मिलित किया गया था। इसी काम के लिए केन्द्र ने राज्य सरकारों को दस करोड़ रुपये के अनुदान भी दिये थे।

सामुदायिक विकास और राष्ट्रीय विस्तार कार्यक्रमों के विस्तार की प्रगति जारी रही। पहली आयोजना में एक-चौथाई देहाती जनता को इन कार्यक्रमों के अंतर्गत लाने का लक्ष्य रहा। इसके लिए १२०० विकास खंड खोलने की आवश्यकता है। चौथे वर्ष के अंत तक ७२६ खंड खोले जा चुके थे। इनके अंतर्गत ८३,००० गांव आते हैं जिनमें ५ करोड़ ३७ लाख आदमी रहते हैं।

आयोजना के पहले तीन वर्षों में व्यय धीमी गति से हुआ। कुल ८ अरब ७२ करोड़ रुपये व्यय किये गये। इसी अवधि में पता लगा कि विकास की कुछ मदों पर शायद व्यय कम हो और अधिक नौकरी देने के लिए कुछ मदों पर खर्च बढ़ाना पड़े। इसलिए आयोजना में २ अरब ८८ करोड़ रुपये की वृद्धि की गयी। इस तरह आयोजना की राशि बढ़कर २३ अरब ५७ करोड़ रुपये हो गयी।

चौथे वर्ष में विकास कार्यों पर अधिक व्यय किया गया। संशोधित अनुमान के अनुसार १९५४–५५ में कुल ५ अरब १४ करोड़ रुपये व्यय किये गये जब कि १९५३–५४ और १९५२–५३ और १९५१–१९५१ में क्रमशः ३ अरब ४० करोड़ रु०, २ अरब ७३ करोड रु० और २ अरब ५९ करोड़ रु० व्यय किये गये थे। १९५५–५६ में से ७ अरब ३४ करोड़ रुपये व्यय करने का विचार बताया गया था।

१९५४–५५ में पूंजी बाजार की स्थिति उत्साहवर्धक रही। सरकारी ऋणों का जनता ने अच्छा स्वागत किया। सरकारी सिक्युरिटियों की कीमतें भी अपेक्षाकृत स्थिर रहीं।

देश में उत्पादन बढ़ने के कारण भुगतान के संतुलन की स्थिति में भी सुधार हुआ। आयोजना के पहले वर्ष में भारी मात्रा में अनाज आदि के आयात के कारण १ अरब ४२ करोड़ रुपये का घाटा रहा, पर देश में उत्पादन बढ़ने के कारण अनाज का आयात घट गया। फलतः अगले तीन वर्षों में इस संतुलन में क्रमशः ६६ करोड़ ३८ करोड़ और ९ करोड़ रुपये की बचत हुई।

स्थिर मूल्यों के आधार पर आयोजना के पहले तीन वर्षों में राष्ट्रीय आय १२ प्रतिशत और प्रति व्यक्ति आय ८ प्रतिशत बढ़ी। नीचे की तालिका से यह स्पष्ट है।

| शुद्ध राष्ट्रीय आय (चालू मूल्यों के आधार पर) करोड़ रुपयों में) | सूचक अंक (१९५०-५१=१००) | शुद्ध राष्ट्रीय आय १९४८-४९ के मूल्यों के आधार पर (करोड़ रुपयों में) | सूचक अंक (१९५०-५१=१००) | प्रति व्यक्ति आय (चालू मूल्यों के आधार पर रुपयों में) | सूचक अंक (१९५०-५१=१०० | प्रति व्यक्ति आय (१९४८-४९ के मूल्यों के आधार पर (रुपयों मे) | सूचक अंक (१९५०-५१=१०० |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १९५०–५१ ९,५३० | १०० | ८,८५० | १०० | २६५.२ | १०० | २४६.३ | १०० |
| १९५१–५१ ९,९९० | १०५ | ९,१६० | १०४ | २७४.५ | १०४ | २५१.७ | १०२ |
| १९५२–५३ ९,८६० | १०३ | ९,५२० | १०८ | २६७.४ | १०१ | २५८.१ | १०५ |
| १९५३–५४ १०,६०० | १११ | ९,९५० | ११२ | २८३.९ | १०७ | २६६.५ | १०८ |

प्राप्त आंकडों के अनुसार १९५४–५५ में राष्ट्रीय आय ढाई से तीन प्रतिशत तक और बढ़ गयी। १९५५–५६ में भी यह वृद्धि जारी बतायी गयी।

१९५४-५५ में निजी क्षेत्र में और अधिक पूंजी लगायी गयी और जैसा कि वर्तमान स्थिति से पता चलता है, १९५५-५६ में भी अधिक पूंजी लगायी गयी है।

काफी लोगों को रोजगार मिलने के बाद भी, शहरी क्षेत्रों के शिक्षित व्यक्तियों में अभी भी बेरोजगारी बनी हुई है। शहरों में शिक्षितों के लायक नौकरियों की संख्या में इतनी वृद्धि नहीं हुई है कि बेरोजगारों की बढ़ती हुई संख्या को खपाया जा सके।

आयोजना में प्रतिवर्ष होने वाले व्यय का विवरण नीचे की तालिका में दिया गया है। पहले तीन साल के आँकड़े खातों के आधार पर हैं। १९५४-५५ और १९५५-५६ के आँकड़े क्रमशः संशोधित अनुमान और बजट अनुमान के हैं:—



(करोड़ रुपये में)

| | १९५१-५२ (खाते) | १९५२-५३ (खाते) | १९५३-५४ (खाते) | ३ वर्ष का कुल जोड़ | १९५४-५५ (संशोधित अनुमान) | १९५५-५६ (बजट अनुमान) | ५ वर्ष का कुल जोड़ |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १. केन्द्र | १२९.९ | १२७.१ | १७८.९ | ४३५.९ | ३०३.२ | ४३७.३ | ११७६.४ |
| २. राज्य | १२९.३ | १४६.० | १६१.२ | ४३६.५ | २१०.५ | २९६.९ | ९४३.९ |
| कुल : | २५९.२ | २७३.१ | ३४०.१ | ८७२.४ | ५१३.७ | ७३४.२ | २,१२०.३ |

पहली तालिका में दिखाये गये व्यय के लिए धन जुटाने की व्यवस्था निम्न तालिका में दी जा रही है :—

( करोड़ रुपये में )

| | १९५१–५२ ( खाते ) | १९५२–५३ ( खाते ) | १९५३–५४ ( खाते ) | ३ वर्ष का कुल जोड़ | १९५४–५५ ( संशोधित अनुमान ) | १९५५–५६ ( बजट अनुमान ) | ५ वर्ष का कुल जोड़ |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १. आन्तरिक बजट व्यवस्था से | २०४.६ | १४६.८ | २४३.४ | ५९४.८ | २६६.९ | २५१.२ | १,११२.९ |
| २. विदेशों से सहायता | ६४.९ | ४५.६ | १८.६ | १२९.१ | २५.५ | ७५.३ | २२९.९ |
| ३. अल्पकालीन सार्वजनिक ऋण के रूप में सुरक्षित रखी गयी सिक्योरिटियों की बिक्री तथा बाकी रोकड़ से धन निकालने से | १० | ३८०.७ | ७८.१ | १४८.५ | २२१.३ | ४०७.७ | ७७७.५ |
| आयोजना के लिए जुटाया गया धन और व्यय | २५९.२ | २७३.१ | ३४०.१ | ८७२.४ | ५१३.७ | ७३४.२ | २,१२०.३ |

पहले चार वर्षों में केन्द्र तथा राज्य सरकारों को लम्बी अवधि के लिए ऋण के रूप में लगभग ११२ करोड़ रुपये मिले। आशा की जाती थी कि राज्य सरकारें पांच वर्ष की अवधि में अतिरिक्त करों से २३० करोड़ रुपये प्राप्त कर लेगी। परंतु पहले चार वर्षों में केवल ५३ करोड़ रुपये ही प्राप्त हो सके

केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारों को उनके कार्यक्रमों के चलाने के लिए पर्याप्त सहायता देती रही। आयोजना में इस प्रकार की सहायता के लिए २२६ करोड़ रुपये की व्यवस्था रखी गयी थी। बाद में यह राशि बढ़ाकर ३६० करोड़ रुपये कर दी गयी। पहले चार वर्षों में केन्द्रीय सरकार ने लगभग २२८ करोड़ रुपये की सहायता दी।

पहले तीन वर्षों में लगभग १२६ करोड़ रु० की विदेशी सहायता का उपयोग किया गया। चौथे साल २५.५ करोड़ रु० की सहायता का अनुमान लगाया गया था परन्तु वास्तव में इस अवधि में केवल १६.७ करोड़ रु० की ही सहायता का उपयोग हुआ।

भारत सरकार के वित्त मंत्रालय के आर्थिक मामलों के विभाग द्वारा प्रकाशित "प्रथम पंचवर्षीय आयोजना काल में विदेशी सहायता" नामक पुस्तक के अनुसार पंचवर्षीय आयोजना के लिए भारत को विदेशों से कुल लगभग तीन अरब रुपये की सहायता मिली। अमेरिका ने सब से अधिक धन दिया। सन् १६५१ के गेहूँ के ऋण को छोड़कर भारत अमेरिका सहायता कार्यक्रम के अन्तर्गत मार्च १६५६ तक अमेरिका से भारत को लगभग १ अरब ४२ करोड़ रुपये (२६ करोड़ ८० लाख डालर) की सहायता मिल चुकी थी और यदि गेहूँ के ऋण तथा फोर्ड फेडरेशन जैसी निजी लोक हितकारी संस्थाओं की मदद को भी शामिल कर लिया जाय तो कुल सहायता की रकम लगभग २ अरब ३८ करोड़ रुपये (या लगभग ५० करोड़ डालर) तक पहुँच जायगी।

अमेरिका के अतिरिक्त प्रथम आयोजना के विदेशी सहायकों की सूची में अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक, कोलम्बो योजना के सहायक राष्ट्र मण्डलीय देश, आस्ट्रेलिया, कनाडा तथा न्यूजीलैण्ड भी शामिल हैं। अन्तर्राष्ट्रीय बैंक ने ऋण तथा राष्ट्रमण्डलीय देशों ने अनुदान के रूप में सहायता प्रदान की। ब्रिटेन ने पौंड-पावना की आदायगी के अतिरिक्त शिल्पिक (टेक्नीकल) सहायता भी दी।

अन्तर्राष्ट्रीय बैंक ने मार्च, १६५६ तक लगभग ६२ करोड़ रुपये (१२ करोड़ ५० लाख डालर) का ऋण दिया जिसमें से लगभग २१ करोड़ रुपया (४ करोड़ २० लाख डालर) पहले आयोजना आरम्भ होने से पहले ही व्यय किया जा

चुका था। ५ करोड़ ८० लाख डालर निजी क्षेत्र को दे दिये गये। इस प्रकार प्रथम आयोजना काल में सरकारी क्षेत्र को उक्त बैंक से १२ करोड़ रु० से कुछ अधिक (ढाइ करोड़ डालर) की ही सहायता मिल पायी।

राष्ट्र मण्डलीय देशों की सरकारों ने आयोजना काल में कुल लगभग ४८ करोड़ रु० या लगभग १० करोड़ डालर की रकम अनुदान के रूप में दी।

विदेशों से प्राप्त सहायता का विवरण निम्न प्रकार है:—

अमेरिका की सरकार तथा राष्ट्र मण्डलीय देशों की सरकारों से प्राप्त सहायता से गेहूँ और इस्पात जैसी सामग्री और विभिन्न विकास योजनाओं के लिए साज-सामान खरीदा गया। अमेरिका ने १६ करोड़ डालर का जो गेहूँ का ऋण दिया था, उसका पूरा उपयोग किया गया।

अमेरिका ने दिसम्बर, १६५० में भारत से एक चतुर्सूत्री शिल्पिक सहायता समझौता होने के बाद मदद देनी शुरू की थी। इसके बाद जनवरी, १६५२ में दोनों सरकारों मे एक व्यापक समझौता हुआ जिसके अनुसार सामूहिक विकास, नलकूप, नदी घाटी विकास और कृषि के लिए उर्वरक एवं इस्पात की व्यवस्था के लिए सहायता पर बल दिया गया था।

१६५३–५४ के बाद आर्थिक विकास के लिए पृथक सहायता दी गयी है और उसका नाम रखा गया 'विकास सहायता'। शिल्पिक सहायता के लिए भी अलग रकम मंजूर की गयी थी।

विदेशी सहायता का उपयोग करने के लिए परिवहन और उद्योगों के विकास को चुना गया था। इससे रेल के इंजन तथा डिब्बे, उद्योग-धन्धों के लिए इस्पात और रेंड बिजली योजना जैसी बड़ी-बड़ी योजनाओं के लिए धन दिया गया था।

सन् १६५४–५५ में सहायता के रूप में एक नया परिवर्तन हुआ। ७५ प्रतिशत विकास सहायता ऋण के रूप में दी जाने लगी। साथ ही, पहली बार, यह प्रतिबन्ध लगाया गया था कि लगभग आधी विकास सहायता अमेरिका की बची हुई कृषि उपज (अनाज आदि) के रूप में लेनी पड़ेगी। सन् १६५४–५५ में स्वीकृत रकम में से भारत सरकार ने साढ़े चार करोड डालर का ऋण लेना स्वीकार किया था। यह ऋण ४० वर्ष में अदा किया जायगा। यह भी शर्त थी कि यदि इस मूलधन और व्याज का भुगतान डालर में किया जाय तो व्याज की दर ३ प्रतिशत होगी और यदि रुपयों में किया जाय तो ४ प्रतिशत। भारत सरकार ने रुपयों में अदायगी करना मंजूर किया।

सन् १९५५-५६ के अमेरिका के वित्तीय वर्ष में भारत को कुल ५ करोड़ डालर मिले जिसमें से ३ करोड़ ७५ लाख डालर ऋण रहा।

कनाडा सरकार ने भारत को पहली पंचवर्षीय आयोजना (१९५१-५२ से १९५५-५६ तक) के लिए लगभग ७५० लाख डालर अर्थात् ३६ करोड रु० की सहायता देनी स्वीकार की। यह सहायता माल तथा पहली पंचवर्षीय आयोजना की विभिन्न विकास योजनाओं के लिए साज-सामान के रूप में दी गयी। इस सहायता के अन्तर्गत रेलों के विकास के लिए इजन और बायलर तथा बिजली के विकास के लिए कच्चा माल और कनाडा में बना सामान भेजा गया।

आस्ट्रेलिया सरकार ने भी, १९५१-५२ से १९५५-५६ तक के लिए, भारत को लगभग १० करोड़ रु० की सहायता देनी स्वीकार की। यह सहायता, कनाडा की सहायता की तरह, पहली पंचवर्षीय आयोजना की विकास योजनाओं के साज-सामान और माल के रूप में दी गयी थी।

न्यूजीलैंड सरकार ने कोलम्बो योजना के आरम्भ के समय भारत को लगभग १० लाख पौंड सहायता के रूप में देना स्वीकार किया था। इस राशि में से १९५१-५२ में न्यूजीलैंड सरकार से ३३ लाख रु० लिये गये। शेष राशि १९५६-५७ और १९५७-५८ में खर्च की जायगी।

गोशाला विकास योजनाओं के लिए न्यूजीलैंड सरकार ने १९५४-५५ में २,५०,००० पौंड (३३ लाख रु०) और १९५५-५६ में ४,००,००० पौंड (५३ लाख रु०) की सहायता देना स्वीकार किया।

ब्रिटेन ने सहायता के रूप में शिल्पिक संस्थानों के लिए मुख्यतः गवेषणा और प्रशिक्षण में काम आने वाला सामान देने को कहा। विभिन्न शिल्पिक संस्थानों के लिए ५० लाख रु० के आवश्यक औजारों की सूची ब्रिटेन सरकार को भेजी गयी। १९५५-५६ के अंत तक लगभग ३३ लाख रुपये का सामान आने वाला था।

१९४९ से सरकारी तथा निजी क्षेत्रों की विभिन्न योजनाओं के लिए अन्तराष्ट्रीय बैंक ने लगभग १२ करोड़ ५० लाख डालर का ऋण दिया। सरकारी क्षेत्र में रेलवे, कृषि औजारों, दामोदर घाटी योजना और निजी क्षेत्र में इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी, टाटा की ट्राम्बे पावर योजना और औद्योगिक तथा विनियोजन निगम के लिए ऋण लिये गये।

फोर्ड फाउन्डेशन से लगभग १ करोड़ १० लाख डालर की सहायता नकद

और बचन के रूप में मिली। इस सहायता का अधिकांश भाग ग्राम विकास के विभिन्न कार्यों के लिए पुरुष तथा स्त्रियों को प्रशिक्षण देने के लिए था।

नारवे सरकार ने १९५३–५४ में भारत को आर्थिक विकास के लिए १ करोड़ क्रोनर ( ६७ लाख रु० ) की सहायता देना स्वीकार किया। इसके अलावा नारवेजियन फाउन्डेशन भी लगभग १ करोड़ रु० की सहायता दे रहा है।

सामान की सहायता के अतिरिक्त, भारत को राष्ट्र संघ तथा उसकी विशेष एजेंसियों, अमेरिका से चतुर्सूत्री तथा अन्य कार्यक्रमों के अन्तर्गत और कोलम्बो योजना के सदस्य देशों से काफी शिल्पिक सहायता भी मिली। इन सब योजनाओं के अन्तर्गत, भारत को ७३४ विशेषज्ञों की सेवाएं प्राप्त हुईं और १,३६० भारतीयों को विदेशों में प्रशिक्षण की सुविधाएं मिली।

———

# आम निर्वाचन

**१७ करोड़ से अधिक मतदाता—दुनिया में सबसे बड़ा चुनाव—२ लाख २४ हजार निर्वाचन-स्थल—१७ हजार उम्मीदवार—२२ में से १८ विधान सभाओं और संसद में कांग्रेस का बहुमत—राष्ट्रपति का चुनाव—२८ लाख महिलाएं मतदान से वंचित—गांवों में ६० प्रतिशत और नगरों में ८० प्रतिशत मतदान।**

सन् १९५१ में भारत में वह दौर भी आरम्भ हुआ जो उसने अपने हजारों वर्ष के लम्बे इतिहास में कभी नहीं देखा था। यह दौर चंद महीनों तक कायम रहा। इस अल्प काल में ही सारा भारत एक नयी जागर्ति और नयी प्रेरणा से भर उठा। प्रत्येक वयस्क व्यक्ति देश के शासन में अपने योगदान के अधिकार की चेतना से अविभूत होकर आत्मगौरव का अनुभव करने लगा। उपर्युक्त अवधि में भारत के लम्बे इतिहास में प्रथम बार वयस्क मताधिकार के आधार पर देश के विभिन्न राज्यों की विधान सभाओं और देश की संसद के सदस्यों का चुनाव हुआ। इस चुनाव में मतदान करने का अधिकार १७.६ करोड़ नर-नारियों को प्राप्त था। विश्व के इतिहास की यह अभूतपूर्व घटना थी। इससे पूर्व दुनिया के किसी लोकतांत्रिक देश में इतने बड़े पैमाने पर मतदाताओं ने चुनाव में भाग नहीं लिया था। सारी दुनिया की निगाहें भारत की ओर थीं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश के शासन के लिए तैयार किये गये संविधान द्वारा वयस्क नागरिकों को चुनाव में मताधिकार प्रदान करने के बाद उसके उपयोग के सम्बंध में भारत जो प्रयोग करने जा रहा था, उसके परिणाम की प्रतीक्षा दुनिया के हर कोने में उत्सुकता के साथ की जा रही थी और प्रतीक्षा की जा रही थी यह सोच कर कि करोड़ों निरक्षर व्यक्ति शांतिपूर्वक अपने मताधिकार का प्रयोग कर भी सकेंगे या नहीं; चुनाव-कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न हो सकेगा अथवा नहीं।

चुनाव पूरा हुआ और इस शान के साथ पूरा हुआ कि देखकर दुनियां दंग रह गयी।

अक्तूबर, सन् १९५१ के अंत में हिमांचल प्रदेश के दो पहाड़ी इलाकों में

संविधान की व्यवस्था के अन्तर्गत पहली बार चुनाव का श्री गणेश हुआ। नवम्बर में यह दृश्य सुदूर दक्षिण के राज्य तिरुवांकुर कोचीन में दिखाई देने लगा और धीरे-धीरे जनवरी तक यह प्रायः सारे देश में आरम्भ हो गया और करोड़ों मतदाताओं ने मतदान में भाग लिया। कुल निर्वाचन स्थानों की संख्या प्रायः २ लाख २४ हजार थी जहां मतदान प्राप्ति की व्यवस्था के लिए लगभग ५ लाख ६० हजार व्यक्तियों ने काम किया। इनमें से कुछ तो इस कार्य के लिए विशेष रूप से प्रशिक्षित किये गये थे किन्तु अधिकतर या तो अध्यापक थे, या राज कर्मचारी अथवा स्वायत्त शासन संस्थाओं के कार्यकर्त्ता।

चुनाव में लगभग ७५ राजनीतिक दलों के प्रायः १७ हजार उम्मीदवारों ने भाग लिया था जिनमे से २२ राज्यों की विधान सभाओं के लिए ३२७८ और लोकसभा के लिए ४८६ सदस्य चुने गये थे। चुनाव आयोग द्वारा प्रकाशित आकड़ों के अनुसार विधान सभाओं के चुनाओं मे १०३,८००,७७२ वैध मत प्राप्त हुए। इनमे ४२.३४ प्रतिशत अर्थात् ४३,६५०,२६५ मत देश की सबसे बड़ी राजनीतिक संस्था कांग्रेस को प्राप्त हुए। सोशलिस्ट पार्टी को १०,०७२, ३१६ और कम्युनिस्ट पार्टी तथा पिपुल्स डेमोक्रेटिक फ्रंट को ५, ४६३,३३८ मत प्रात हुए। कृषक मजदूर प्रजापार्टी ने ५,२६१ ७७७ और स्वतन्त्र उम्मीदवारों ने २१,६७४,२१० मत प्राप्त किये। तिरुवांकुर कोचीन में मतदान करने वालों की संख्या प्रतिशत की दृष्टि से अन्य सभी राज्यों के मतदाताओं से अधिक थी। यहाँ लोकसभा के चुनाव में ७०.८ प्रतिशत और राज्य की विधान सभा के चुनाव मे ६६.३७ प्रतिशत मतदाताओं ने भाग लिया था। इसके बाद क्रमशः इन राज्यों के मतदाताओं की संख्या अधिक थी—कुर्ग, पटियाब, दिल्ली, बम्बई, मद्रास और पंजाब। इन राज्यों से लोकसभा के चुनाव मे क्रमशः ६७.४६, ५६.२, ५७.७२, ५६.३५, ५६.५०, और ५६.०५ प्रतिशत मतदाताओं ने तथा विधान सभाओं के चुनाव में क्रमशः ६५.८७, ५६.४३, ५८.६५, ५७.०२, ५६.५७ और ५५.८७ प्रतिशत मतदाताओं ने भाग लिया था। हिमांचल प्रदेश और विंध्य प्रदेश में चुनाव में भाग लेने वालों की संख्या सबसे कम थी। यहां लोकसभा के चुनाव मे क्रमशः २६.२६ और ३०.२३ प्रतिशत मतदाताओं ने तथा विधान सभाओं के चुनाओं में ३६.६८ और २६.६१ मतदाताओं ने भाग लिया।

२२ विधान सभाओं मे से १८ में कांग्रेस को पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ। शेष चार विधान सभाओं में किसी भी दल को पूर्ण बहुमत प्राप्त न हो सका। कुल ३२७८ स्थानों में २२४८ कांग्रेस को, १२६ सोसलिस्ट पार्टी को, १८१

कम्युनिस्ट पार्टी और उसकी सहयोगी संस्थाओं को, ७८ किसान मजदूर प्रजापार्टी को, ३५ जनसंघ को, १२ परिगणित जाति संघ को तथा २८३ स्वतन्त्र उम्मीदवारों को प्राप्त हुए। शेष स्थानों पर विभिन्न स्थानीय दलों के उम्मीदवारों का कब्जा हुआ। इनमें बिहार की झारखंडे पार्टी को ३२, बिहार की जनता पार्टी को ११, बिहार के लोक सेवक संघ को ७, मार्क्सवादी फारवर्ड ब्लाक को १५, गणतन्त्र परिषद को ३२, कृषिकार लोक पार्टी को २२, अकाली दल को ३२, कृषक-मजदूर पार्टी को २६, तामिलनाद टायलर्स पार्टी को १६, युनाइटेड सोशलिस्ट अर्गनाइजेशन को ८, मुसलिम लीग को ५, मद्रास की कामनलीग पार्टी को ६, तिरुवांकर-तामिलनाद-कांग्रेस को ८, कुर्ग के विलय विरोधी स्वतन्त्र दल को ६ स्थान प्राप्त हुए।

राष्ट्रपति के चुनाव में निर्वाचक निकाय (एलेक्टोरस कालेज) के ४०५७ मतों में से केवल ३,४८६ प्राप्त हुए। इनमे डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद के पक्ष में राज्यों से २,३५७ तथा संसद से ५३६ मत प्राप्त हुए। राष्ट्रपति पद के विभिन्न उम्मीदवारों को प्राप्त कुल साधारण मतों की संख्या इस प्रकार थी, डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद—५,०७, ४००। प्रो० के. टी. शाह—६२, ८२७। श्री एल. जी. थत्ते—२६७२। श्री के. के. चटर्जी—५३३। श्री चौधरी हरीराम—१,६५४। कुल १०,५२७ मत रद्द घोषित किये गये थे।

लोक सभा के चुनाव मे प्राप्त कुल मतों के ४६.४ प्रतिशत मत सफल उम्मीदवारों को तथा शेष असफल मतदाताओं को प्राप्त हुए थे। इस चुनाव में कुल १०, ५६, ८७, ३१८ मत प्राप्त हुए थे। इनमे कांग्रेस के निर्वाचित उम्मीदवारों को ३,८२, ३५, ८६१ मत प्राप्त हुए थे। इनके पश्चात् सफल स्वतंत्र उम्मीदवारों का स्थान था जिन्हें ४०, ८६,०२६ मत प्राप्त हुए थे। कम्युनिस्ट पार्टी का स्थान तृतीय था।

राज्य सभा में दल गत स्थिति इस प्रकार थी—कांग्रेस, १४६—सोशलिस्ट, ६—कृषक मजदूर प्रजा पार्टी, ४—कृषिकार लोक पार्टी, १—जनसंघ, १—हिन्दूमहासभा, १—कम्युनिस्ट, ६—पिपुल्स डेमोक्रेटिक फ्रंट, २—मार्क्सवादी फारवर्ड ब्लाक, १—परिगणित जाति संघ, १—स्वतंत्र और अन्य, २७।

राज्य विधान सभाओं में से पंजाब, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, भोपाल, मैसूर, असम, विंध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, पश्चिम बंगाल आदि २२ राज्यों की विधान सभाओं में कांग्रेस को स्पष्टतः बहुमत प्राप्त हुआ। मद्रास,

उड़ीसा, पेप्सू ( पटियाब ) और मणिपुर में उसके सदस्यों की संख्या सबसे अधिक रही किंतु उसे स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो सका।

सबसे अधिक मत कोट्टायम, ( ८०.५ प्रतिशत ) अलेप्पी ( तिरुवांकुर कोचीन ) ७८.१ प्रतिशत और गुदीवड़ा ( मद्रास ) ७७ प्रतिशत—निर्वाचन क्षेत्रों में प्राप्त हुए थे। जयपुर के दो मतदान केंद्रों तथा उड़ीसा के कुछ जगली क्षेत्र में एक भी मतदाता ने मतदान नहीं किया था।

संसद और विधानसभाओं के लिए सारे देश में कुल निर्वाचन क्षेत्रों की संख्या ३, २९३ थी। चुनाव में लगभग २३ लाख मतपत्र बक्सों का उपयोग हुआ था और ५२ करोड़ मतपत्र छापे गये थे।

चुनाव आयोग द्वारा प्रकाशित आकड़ों के अनुसार लगभग २८ लाख महिलाएं अपना नाम न बताने के कारण मतदान के अधिकार से वंचित रहीं।

चुनाव में रामगढ़ ( बिहार ) के राजा बहादुर कामाख्या नारायण सिंह ने अद्भुत रिकार्ड कायम किया। आप चार निर्वाचन क्षेत्रों में उम्मीदवार थे और चारो क्षेत्रों मे विजय श्री आप के ही हाथ रही। सारे देश मे सबसे अधिक मत ( ३,०९, १६२ ) पिपुल्स डेमोक्रेटिक फ्रंट के उम्मीदवार श्री रविनारायण रेड्डी को प्राप्त हुए थे। पंडित जवाहरलाल नेहरू का भी स्थान इस दृष्टि से आप के बाद था जिन्हें २,३३,५७१ मत प्राप्त हुए थे।

गांवो में कुल ६० प्रतिशत और नगरों में ४० प्रतिशत मतदाताओं ने चुनाव मे भाग लिया। कुछ मतदान स्थलों में शत प्रतिशत मत पड़े और कुछ मे ८० से ९० प्रतिशत तक।*

---

* आंकड़े 'हिन्दुस्तान इयर बुक'—१९५२ की पूरक पुस्तिका से उद्धरित।

# राज्यों का पुनर्स्संघटन

**समस्या की पृष्ठ भूमि—भाषा के आधार पर प्रान्तों की रचना का विचार दर कमीशन का मत—आंध्र का निर्माण-राज्य पुनर्स्संघटन आयोग की नियुक्ति राज्यों के पुनर्स्संघटन पर आयोग का प्रतिवेदन—विभिन्न क्षेत्रों में असंतोष भारत सरकार का निर्णय—राज्य पुनर्स्संघटन विधेयक।**

प्रथम पंचवर्षीय आयोजना के रूप में देश के आर्थिक पुनर्निर्माण का क्रम आरम्भ करने के बाद देश की उस आन्तरिक जटिल समस्या की ओर भारत सरकार का ध्यान आकृष्ट हुआ, जिसे हल करने की मांग वर्षों से की जाती रही। २२ दिसम्बर, १९५३ को प्रधान मंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने संसद में घोषणा की कि भारतीय संघ के राज्यों के पुनर्स्संघटन पर प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए एक राज्य पुनर्स्संघटन आयोग नियुक्त किया जायगा। इसके एक सप्ताह बाद भारत सरकार ने एक प्रस्ताव स्वीकार करके २९ दिसम्बर १९५३ को आयोग की नियुक्त की। श्री एस. फजल अली इसके अध्यक्ष नियुक्त हुए और श्री हृदयनाथ कुंजरू तथा सरदार पणिक्कर, सदस्य। ३० जून, सन् १९५५ तक अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करने की हिदायत आयोग को दी गयी किन्तु बाद में यह तिथि बढ़ाकर ३० सितम्बर, १९५५ कर दी गयी।

आयोग ने देश का भ्रमण किया। तथ्यों का अध्ययन किया। राज्य-सरकारों तथा अन्य विशिष्ट व्यक्तियों के मतों का पता लगाया और राज्यों की आर्थिक समृद्धि पर ध्यान देते हुए समय पर अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जो १० अक्तूबर, १९५५ को भारत सरकार द्वारा प्रकाशित कर दिया गया।

जैसा की बताया जा चुका है, राज्यों के पुनर्स्संघटन की मांग बहुत पुरानी थी। इसके कारण का अपना इतिहास है जो राज्यों के पुनर्स्संघटन की मांग के औचित्य को सिद्ध कर देता है।

"यह संयोग की ही बात थी कि रियासतों पर कब्जा करके साम्राज्य बढ़ाने

का अंग्रेजों का इरादा सन् १८५७ की बगावत के बाद आप से आप बदल गया और इस प्रकार बची हुई रियासतें बची ही रह गयीं।"*

सत्रहवीं शती में तटवर्ती क्षेत्रों में छोटी-छोटी बस्तियों के रूप में भारत पर ब्रिटेन का आधिपत्य आरम्भ हुआ। अट्ठारहवीं शती के मध्य से इनके आधार पर भारत में ब्रिटेन के प्रभुत्व का विस्तार हुआ। सन् १८०१ में मद्रास और १८२७ मे बम्बई प्रेसिडेसियां बनीं। सन् १८६५ तक बंगाल प्रेसीडेंसी में नया क्षेत्र मिलाया जाता रहा।

सन् १८३३ मे आगरा प्रेसीडेंसी बनी लेकिन प्रशासन-खर्च मे कमी के उद्देश्य से बिहार के पश्चिमी भाग का क्षेत्र काटकर उत्तर-पश्चिम प्रान्त का निर्माण किया गया। इसके पश्चात् सन् १८४६ मे पजाब प्रांत बना। उस समय इसकी सीमा उत्तर-पश्चिम सीमांत तक विस्तृत थी। बाद में सन् १८५६ में यह देहली मे मिला दिया गया और बजाय चीफ कमिश्नर के इसे लेफ्टिनेण्ट गवरनर के मातहत कर दिया गया।

अवध पहले चीफ कमिश्नर के मातहत था। बाद मे सन् १८७७ में यह उत्तर-पश्चिम प्रात में मिला दिया गया। सन् १८६१ में उत्तर-पश्चिम प्रांत सागर, नर्मदा के तटवर्ती जिलों और नागपुर रियासत को मिलाकर मध्य प्रांत का निर्माण हुआ। असम पर अधिकार होने के बाद (१८२६) उसे बंगाल प्रेसीडेसी मे मिला दिया गया लेकिन कुछ ही वर्षों तक यह स्वरूप कायम रह सका। सन् १८७७ मे चीफ कमिश्नर के मातहत उसे पृथक कर दिया गया। इसी प्रकार सन् १६०१ मे उत्तर-पश्चिम सीमांत का इलाका पजाब से पृथक कर दिया गया और वह भी स्वतत्र रूप मे चीफ कमिश्नर के मातहत हो गया। उत्तर-पश्चिम प्रांत और अवध को संयुक्त-प्रात-आगरा व अवध का नाम दिया गया।

सन् १६०५ मे बंगाल का विभाजन हुआ लेकिन बाद में यह रद्द कर दिया गया। इससे सम्बंधित आन्दोलन का विवरण पहले यथास्थान दिया जा चुका है। सन् १६१२ मे असम और बंगाल का पुनस्संघटन हुआ। इसी समय उड़ीसा और छोटा नागपुर के साथ बिहार और उडीसा प्रान्तों का गठन हुआ।

मितव्ययिता, प्रशासकीय सुविधा और सैनिक दृष्टि से सुरक्षा पर ध्यान देते हुए इस प्रकार भारत के विभिन्न प्रान्तों का अंग्रेजों ने निर्माण किया। यह

---

* 'रिपोर्ट आव दि स्टेट्स रिआरगनाइजेशन'—पृ० सं०—१

विदेशी सरकार के साम्राज्यवादी स्वार्थों की रक्षा के प्रयास का ही फल था। जनता के स्वार्थ, उसकी आवश्यकता और सांस्कृतिक विकास के अवसर का इससे कोई सम्बंध न था। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक ही था कि प्रान्तों (अब राज्य) के पुनस्संघटन की मांग उठायी जाती। मांग उठायी गयी। बाद में इस मांग का स्वरूप बदल गया और स्पष्टतः भाषा के आधार पर प्रान्तों के पुनस्संघटन की मांग की जाने लगी।

सन् १९१८ में मांटेगू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट के प्रकाशन के बारह वर्षों के बाद भारतीय अनुविधिक आयोग (इण्डियन स्टेट्यूटरी कमीशन) ने प्रान्तों के पुनर्गठन के सम्बन्ध में विचार किया। कमीशन ने भाषा के आधार पर प्रान्तों के पुनर्गठन के सिद्धान्त का समर्थन किया। इस रिपोर्ट पर प्रशासकीय और वित्तीय पहलू से विचार के निमित्त सन् १९३१ में ओ' डानेल समिति संघटित की गयी। फलतः १९३६ में उड़ीसा का प्रान्त बना। इसी वर्ष अप्रैल मे सिंध प्रान्त का भी निर्माण हुआ।

सन् १९०५ मे बंगाल के विभाजन को, जिसके फलस्वरूप बंगला भाषा-भाषी दो क्षेत्रों मे विभक्त हो गये थे, रद्द करने की माग का समर्थन करते समय काग्रेस ने अप्रत्यक्ष रूप में भाषावार प्रान्तों के संघटन के सिद्धान्त के पक्ष मे अपना मत प्रकट किया था। सन् १९०८ में बिहार तथा १९१७ मे आंध्र के निर्माण की भी माग की गयी थी। सन् १९१७ के कांग्रेस अधिवेशन मे श्रीमती एनीबेसेंट ने भाषावार प्रान्तों के सिद्धांत के प्रति अपना गहरा विरोध प्रकट किया था। सन् १९२० मे कांग्रेस ने अपने नागपुर अधिवेशन के समय भाषावार प्रातों के गठन के सिद्धान्त को स्पष्टतः स्वीकार किया और इण्डियन स्टेट्यूटरी कमीशन की नियुक्ति के बाद सन् १९२७ में उसने इस सिद्धान्त के पक्ष मे अपना मत पुनः दोहराया।

सन् १९२८ में सर्वदलीय सम्मेलन द्वारा नियुक्त नेहरू समिति ने भी प्रान्तों के पुनर्गठन की समस्या पर विचार किया और भाषा के आधार पर प्रान्तों के पुनर्गठन के सिद्धान्त का जोरदार समर्थन किया था। सन् १९३७ में कांग्रेस ने एक बार पुनः इस सिद्धांत मे अपनी आस्था प्रकट की और आंध्र तथा कर्नाटक प्रान्तों के निर्माण की सिफारिश की। जुलाई, सन् १९३८ में कांग्रेस कार्यसमिति ने फिर से कर्नाटक, आंध्र और केरल प्रान्तों के गठन की सिफारिश की।

सन् १९४५–४६ के चुनाव घोषणा-पत्र में कांग्रेस ने यह मत प्रकट किया था कि प्रान्तों का पुनस्संघटन यथासम्भव भाषा के आधार पर हो। बाद में

भारत की स्वतंत्रता और उसके विभाजन के फलस्वरूप देश में जो घटनाएँ घटीं, उनके कारण कांग्रेस नेताओं का इरादा कुछ बदल गया। २७ नवम्बर, सन् १९४७ को पण्डित जवाहरलाल नेहरू (प्रधान मंत्री) ने भाषावार प्रान्तों के निर्माण के सिद्धांत का समर्थन तो किया लेकिन साथ ही यह भी कहा कि 'मुख्य समस्या को ही प्रमुख स्थान मिलना चाहिये और देश की सुरक्षा तथा उसकी दृढ़ता ही हमारी मुख्य समस्या है।' बाद में संविधान सभा की प्रारूप समिति की रिफारिश पर दर कमीशन की नियुक्ति हुई जिसे आंध्र, कर्नाटक, केरल और महाराष्ट्र प्रान्तों के पुनस्संघटन पर रिपोर्ट प्रेषित करने का काम सुपुर्द किया गया। इस कमीशन के लिए निश्चित निर्देश से यह स्पष्ट हो गया था कि केवल भाषा के आधार पर प्रान्तों के पुनस्संघटन का विचार बदल चुका है।

दिसम्बर, सन् १९४८ में दर कमीशन ने अपनी रिपोर्ट प्रेषित कर दी जिसमें उसने यह मतप्र कट किया कि 'केवल अथवा मुख्य रूप से भाषा के ही आधार पर प्रान्तों का पुनस्संघटन अवांछनीय है।' यह रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद कांग्रेस ने अपने जयपुर अधिवेशन ( दिसम्बर, १९४८ ) में दर कमीशन की सिफारिशों पर ध्यान देते हुए भाषावार प्रान्तों के पुनस्संघटन के प्रश्न पर पुनर्विचार के लिए पंडित नेहरू, सरदार पटेल और डाक्टर पट्टाभि सीतारम्मया की समिति संघटित की। इस समिति ने यह मत प्रकट किया कि 'भाषा में एकता की ही नहीं अपितु विघटन की भी शक्ति है। इस प्रश्न पर मुख्यतः भारत की एकता, सुरक्षा और आर्थिक सम्पन्नता की दृष्टि से विचार किया जाना चाहिये।' इसके साथ ही समिति ने यह विचार भी प्रकट किया कि 'स्पष्टतः एक भाषा वाले क्षेत्र और जो विवादग्रस्त न हो, फिर से संघटित किये जा सकते हैं तथा आंध्र के निर्माण से इस कार्य का श्रीगणेश हो सकता है।'

इसके पश्चात् कांग्रेस बराबर इस मत का ही प्रतिपादन करती रही। सरकार की बागडोर कांग्रेस दल के हाथ में होने के कारण उसका मत, सरकार का ही मत माना जाता रहा।

मद्रास के तेलगू भाषाभाषी क्षेत्र को लेकर स्वतंत्र रूप से आंध्र प्रांत का निर्माण करने की मांग पूरी कराने के लिए सन् १९५२ में गहरा आंदोलन हुआ। इस सिलसिले में ही श्री पोत्ती रामुल्लु ने अनशन किया और उनकी मृत्यु हुई। इसके फल स्वरूप मद्रास को छोड़कर शेष भाग का पृथक से आंध्र प्रान्त बनाने के अपने निर्णय की घोषणा भारत सरकार को करनी पड़ी। उसने

नये प्रांत के प्रशासन तथा वित्त-सम्बंधी मामलों पर अपनी रिपोर्ट प्रेषित करने के लिए विचारपति श्री वांचू को नियुक्त किया। आपने फरवरी, सन् १९५३ में अपनी रिपोर्ट दे दी। १० अगस्त, १९५३ को लोकसभा में विधेयक पेश किया गया और उसके कानून बन जाने के बाद १ अगस्त, १९५३ में आंध्र प्रान्त का निर्माण हुआ।

इसके पश्चात् ही राज्य पुनस्संघटन आयोग की नियुक्ति हुई जिससे सम्बधित विवरण इस अध्याय के आरम्भ में दिया जा चुका है।

जैसा कि आरम्भ में कहा जा चुका है, सन् १९५३ के राज्य पुनस्संघटन आयोग की रिपोर्ट भारत सरकार ने १० अक्तूबर, १९५५ को प्रकाशित की। निष्कर्ष पर पहुँचने के पूर्व आयोग को १ लाख, ५२ हजार, २५० कागज-पत्रों को पढ़ना पड़ा, ९ हजार से अधिक व्यक्तियों से भेंट करनी पड़ी और ३८ हजार मील की यात्रा करनी पड़ी।

राज्य पुनस्संघटन आयोग की रिपोर्ट कुल तीन भागों में विभक्त है। इसके अंतिम भाग में राज्यों के पुनस्संघटन-सम्बंधी सिफारिशें विस्तार से दी गयी हैं। इसकी पृष्ठभूमि में आयोग ने यह मत प्रकट किया कि "भारत संघ के राज्यों का वर्तमान रूप, कुछ तो संयोग, कुछ भारत में ब्रिटिश सत्ता के विस्तार और कुछ भारतीय संघ में देशी रियासतों के विलयन की प्रक्रिया का परिणाम है। ब्रिटिश शासन-काल में भारत का ब्रिटिश प्रान्तों और देशी रियासतों में जो विभाजन हुआ, वह घटना-वश हुआ था। उसका कोई ऐतिहासिक आधार न था। प्रान्तों के विभाजन के समय प्रशासक सुविधा, मितव्ययिता और सैनिक सुविधा तथा सुरक्षा का ध्यान रखा गया था।"

आयोग ने यह मत प्रकट किया कि पुनस्संघटन के काम में विलम्ब न होना चाहिये। साथ ही उसने इस बात पर भी जोर दिया कि "ऐसा कोई परिवर्तन न करना चाहिये जिससे वर्तमान स्थिति में सुधार न हो। जो परिवर्तन किया जाय, उससे होने वाले लाभ से प्रत्येक भाग के लोगों की भलाई होने के साथ-साथ पूरे राष्ट्र का भी भला हो। यह भी ध्यान में रखा जाय कि परिवर्तन के फलस्वरूप शासन और व्यवस्था पर जो गहरा बोझ पड़े, उसकी पूर्ति भलीभांति हो सके।"

आयोग का यह भी मत रहा कि "राष्ट्रीय एकता के हित की दृष्टि से यह आवश्यक है कि देश के शासन और उसकी राजनीति के ढाचे में प्रधानता राष्ट्र की हो। सामरिक महत्त्व के क्षेत्रों में प्रशासन की व्यवस्था करते समय राष्ट्र

की सुरक्षा पर मुख्यतः ध्यान देना होगा। एकमात्र भाषा अथवा संस्कृति के आधार पर राज्यों का पुनस्संघटन न तो सम्भव है, न वांछनीय।"

समस्या को सुलझाने के लिए आयोग ने इन बातों पर ध्यान देना आवश्यक बताया—

"(१) भाषा की एकता जिससे प्रशासन में सुविधा हो और क्षमता बढ़े, महत्त्वपूर्ण बात है किन्तु इसको ऐसा एकमात्र एवं अनिवार्य सिद्धान्त नहीं माना जा सकता जिसके समक्ष प्रशासन, वित्त, राजनीति और अन्य सभी बातों की उपेक्षा कर दी जाय;

"(२) इस बात पर ध्यान रखना होगा कि विभिन्न भाषा-भाषी लोगों के लिए यातायात, शिक्षा और संस्कृति-सम्बंधी आवश्यकताएं उचित रूप में पूरी हो सकें। चाहे लोग एक भाषाभाषी राज्य में हो अथवा बहुत भाषा-भाषी राज्य में;

"(३) जहां स्थिति संतोषजनक हो और आर्थिक, राजनीतिक तथा प्रशासन-विषयक सुविधा हो, वहां बहु भाषा-भाषी राज्य कायम रहने चाहिये किन्तु साथ ही इस बात की भी पूरी व्यवस्था होनी चाहिये कि बहु भाषा-भाषी राज्य के सभी वर्गों को बराबर के अधिकार और समान अवसर प्राप्त हो सके;

"(४) जातीय भूमि या किसी सम्प्रदाय के प्रदेश के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया जा सकता; क्योंकि यह भारत के संविधान के इस मूलभूत सिद्धात के विपरीत है कि देश के सभी नागरिक को बराबर के अधिकार और समान अवसर मिलने चाहियें;

"(५) 'एक भाषा, एक राज्य' के सिद्धांत को स्वीकार नहीं किया जा सकता; क्योंकि एक ही भाषा बोलने वालों के एक से अधिक राज्य भी हो सकते हैं। यह सिद्धांत व्यवहारिक भी नही है, क्योंकि प्रत्येक भाषा बोलने वालों को जिनमें देश के हिन्दी भाषा-भाषियों का विशाल जनसमूह भी है, सदा एक ही राज्य में नहीं रखा जा सकता;

"(६) अंत में इस बात पर भी ध्यान रखना पड़ेगा कि एक भाषा-भाषी राज्यों की स्थापना से पृथकता अथवा प्रान्तीयता का जहर न फैलने पाये। इसके लिए ऐसे सुनिश्चित उपायों का अवलम्बन करना होगा कि भारतीय राष्ट्रीयता की भावना और गहरी हो।"*

वर्तमान रूप में राज्यों के वर्गीकरण का उल्लेख करते हुए आयोग ने

---

* रिपोर्ट आव दि स्टेट्स रिआर्गनाइजेशन कमीशन—१९५५, पृ० सं० ४६

प्रतिवेदन में लिखा कि 'वर्तमान राज्य 'क', 'ख' और 'ग'—इन तीन भागों में बंटे हैं। यह संक्रांतिकालीन व्यवस्था है जिसमें यह मंशा निहित नहीं है कि देश का स्थायी ढांचा भी इस प्रकार का ही होगा।' पुनर्संघटन के समय यह संवैधानिक विभेद दूर किया जाना चाहिये। आयोग ने राजप्रमुख प्रथा का अंत करने की भी सिफारिश की; 'क्योंकि बहुत से लोग इसके विरुद्ध हैं और उनका कहना है कि यह प्रथा लोकतांत्रिक देश के ढांचे के प्रतिकूल है। इसके अलावा इस प्रथा के विरुद्ध कुछ और महत्त्वपूर्ण बातें भी हैं।'

'ख' श्रेणी के राज्यों के सम्बंध में आयोग ने यह मत व्यक्त किया कि 'इनका वर्तमान ढांचा संतोषजनक नहीं है। ये छोटे-छोटे भाग आर्थिक दृष्टि से असंतुलित, वित्तीय दृष्टि से निर्बल, प्रशासन और राजनीतिक दृष्टि से अस्थिर बने रहेंगे।'

इन मूलभूत बातों पर ध्यान देते हुए आयोग ने यह सिफारिश की कि वर्तमान २७ राज्यों के स्थान पर निम्नलिखित १६ राज्य बनाये जांय और दिल्ली, मणिपुर और अंदमान को केंद्र शासित रखा जाय—

(१) मद्रास, (२) केरल, (३) कर्नाटक, (४) हैदराबाद, (५) आंध्र, (६) बम्बई, (७) विदर्भ, (८) मध्य प्रदेश, (९) राजस्थान, (१०) पंजाब, (११) उत्तर प्रदेश, (१२) बिहार, (१३) पश्चिम बंगाल, (१४) असम, (१५) उड़ीसा और (१६) जम्मू तथा कश्मीर।

हिमांचल प्रदेश, कच्छ और त्रिपुरा के सम्बंध में आयोग ने सिफारिश की कि 'कुछ समय तक केंद्र इनकी देखरेख करता रहे ताकि इनका विकास वर्तमान गति से होता रहे।'

विभिन्न राज्यों को निम्न प्रकार से पुनर्संघटित करने का सुझाव आयोग ने दिया—

१. मद्रास—इस राज्य में निम्नलिखित रद्दोबदल के साथ वर्तमान क्षेत्र कायम रहें—[१] तिरुवांकुर-कोचीन के पांच ताल्लुके, अगस्त्येश्वरम्, थोवला, श्रीकाकुलम्, विलावनकोड़ी और शेंकोहा मद्रास में मिला लिये जाय और [२] मलाबार, दक्षिण कनाड़ा के जिले एवं कोयम्बटूर जिले का कोल्लेगल ताल्लुका मद्रास से पृथक कर दिया जाय।

२. केरल—इस नाम का नया राज्य कायम किया जाय जिसमें ये क्षेत्र शामिल हों—[क] मद्रास में शामिल किये जाने वाले पांच ताल्लुकों को छोड़कर सम्पूर्ण तिरुवांकुर-कोचीन राज्य और [ख] मलाबार जिला जिसमें कोचीन किला

और लक्कद्वीप भी शामिल है। दक्षिण कनाड़ा जिले का कसरागोडा ताल्लुका एवं अमीन द्वीप।

३. कर्नाटक—इस राज्य में अग्रलिखित क्षेत्र शामिल किये जांय—[क] बेलारी जिले के सिगुप्पा, बेलारी, होजपेट तालुके और मल्लापुरम् परगने का छोटा क्षेत्र जिसमें तुंगभद्रा बांध और तुंगभद्रा योजना के 'हेडवर्क' शामिल हैं; [ख] बम्बई के कन्नड़ भाषी चार जिले अर्थात् धारवाड़, बीजापुर, दक्षिण कनाड़ा और बेलगांव [ चंदगढ़ तालुके को छोड़कर ]; [ग] हैदराबाद के रायचूर और गुलबर्गा जिले; [घ] कसरागोड तालुके को छोड़कर मद्रास का दक्षिण कनाड़ा जिला; [ङ] मद्रास के कोयम्बटूर जिले का कोल्लेगुल ताल्लुका और [च] कुर्ग।

४. हैदराबाद—इस राज्य के पुनस्संघटन का सुझाव आयोग ने इस प्रकार दिया—

रायचूर और गुलबर्गा जिलों के अतिरिक्त मराठावाड़ जिले भी हैदराबाद राज्य से अलग कर दिये जांय और अवशिष्ट राज्य को हैदराबाद कहा जाय जिसमें ये क्षेत्र शामिल होंगे—वर्तमान हैदराबाद राज्य के तैलगू भाषी क्षेत्र, अर्थात् महबूब नगर, नालगोंडा, वारंगल (खम्माभ सहित), करीम नगर, आदिलाबाद, निजामाबाद, हैदराबाद और मेडक; आंध्र के नालगोंडा जिले में स्थित कृष्णा जिले का मुनगल क्षेत्र तथा बीदर जिला।

अपने प्रतिवेदन में आयोग ने लिखा कि—"१९६१ में या उसके आस-पास होने वाले आम चुनाव के बाद हैदराबाद का अवशिष्ट राज्य आंध्र में मिल सकता है, यदि हैदराबाद विधान सभा दो-तिहाई मतों से इस पक्ष में निर्णय करे।

५. आंध्र—निम्न परिवर्तनों को साथ तत्काल आंध्र राज्य वर्तमान रूप में कायम रहे—

सिरुगुप्पा, बेलारी और होजपेट के ताल्लुके तथा बेलारी जिले के मल्लपुरम् परगने का कुछ भाग आंध्र में जोड़ दिया जाय। कृष्णा जिले का मुनगल इलाका हैदराबाद में मिला लिया जाय।

६. बम्बई—आयोग ने यह सिफारिश की कि बम्बई को एक भाषा-भाषी राज्य की अपेक्षा बहु भाषा-भाषी राज्य माना जाय। इससे बम्बई नगर के भविष्य की समस्या का हल भी निकल आयेगा।

निम्न क्षेत्रों को पृथक कर बम्बई राज्य का पुनस्संघटन किया जाय—

बनास कांठा जिले का आबू रोड ताल्लुका और धारवाड़, बीजापुर,

दक्षिण कनाड़ा और बेलगांव (चाँदगढ़ ताल्लुके को छोड़कर) के कनाड़ा भाषी जिले।

(क) हैदराबाद के मराठी भाषी जिले अर्थात् उस्मानाबाद, भीर, औरंगाबाद, परमणी और नंदेड़;

(ख) सौराष्ट्र और (ग) कच्छ।

७.—विदर्भ—विदर्भ के नाम से नया राज्य बनाया जाय। इसमें मध्य प्रदेश के भाषा-भाषी ये जिले रखे जांय—बुलढाना, अकोला, अमरावती, यवतमाल, वर्धा, नागपुर, भंडारा और चांदा।

८. मध्य प्रदेश—विदर्भ के पृथक हो जाने के बाद निम्नलिखित क्षेत्रों को मिलाकर एक नये राज्य मध्यप्रदेश की स्थापना की जाय—

(क) अवशिष्ट मध्य प्रदेश के १४ जिले

(ख) समस्त भोपाल और समस्त विंध्य प्रदेश,

(ग) मंदसोर जिले के सुनेल क्षेत्र को छोड़कर मध्य भारत; और

(घ) राजस्थान के कोटा जिले का सिरोज परगना।

बड़े और साधन-सम्पन्न राज्य मिल जाने से भोपाल, विंध्य प्रदेश और मध्यभारत को लाभ पहुँचेगा। जबलपुर इस राज्य के बीच में पड़ेगा जो राजधानी के लिए उपयुक्त होगा।

९. राजस्थान—सिरोज को छोड़कर राजस्थान का वर्तमान स्वरूप बना रहे और उसमें निम्नलिखित क्षेत्र मिलाये जांय—

(क) अजमेर और

(ख) बम्बई के बनास कांठा जिले का आबू रोड तालुका, मंदसोर जिले का सुनेल भाग और पंजाब के हिसार जिले का लोहारू परगना।

बम्बई के बनास कांडा जिले का आबू रोड तालुका राजस्थान में मिलाना भाषा साम्य तथा स्थानीय लोगों की इच्छा की दृष्टि से उचित होगा।

१०. पंजाब—पंजाब का विभाजन करने और पटियाला राज्यसंघ एवं हिमाचल प्रदेश कायम रखने के पक्ष में भाषा-गत तथा अन्य जो विचार व्यक्त हुए, उन पर आयोग ने सावधानी से विचार किया और यह मत प्रकट किया कि—इनमें से कोई भी मांग स्वीकार करना कठिन है। पंजाब की भाषा का रूप तथा संचार-विषयक आवश्यकताएं ध्यान में रखते हुए पंजाबी भाषा-भाषी राज्य स्थापित करना उचित नहीं जान पड़ता। ऐसे राज्य की स्थापना से इस क्षेत्र का आर्थिक जीवन अस्त-व्यस्त होने की आशंका है। पंजाबी भाषा-भाषी राज्य बनाने की मांग का औचित्य सिद्ध न होने के दो कारण हैं—(१) इस क्षेत्र

के निवासी समान रूप से इस मांग का समर्थन नहीं करते और (२) मनोमालिन्य के जिन कारणों से एक अलग पंजाबी भाषा-भाषी राज्य की मांग की गयी है, उनमें से किसी का भी इससे निराकरण न होगा। पंजाबी भाषा-भाषी प्रांत की स्थापना से न तो भाषा को समस्या सुलझेगी, न साम्प्रदायिक समस्या का ही समाधान होगा। झगड़ा भाषा या प्रादेशिक गुटों मे नहीं बल्कि साम्प्रदायिक है जो पंजाबी भाषा-भाषी राज्य के कायम होने पर घटने बजाय और अधिक बढ़ सकता है।

बहुत छोटे होने के कारण पटियाला रियासत संघ और हिमाचल प्रदेश का अलग-अलग बना रहना उचित नहीं जान पड़ता। पटियाला रियासत संघ तथा हिमाचल प्रदेश से पंजाब का जो आर्थिक और प्रशासनिक सम्बध है, उसे देखते हुए इन दोनों राज्यों को पंजाब मे मिला देना ही उचित होगा।

पटियाला रियासत संघ और हिमाचल प्रदेश के मिलने के बाद जो नया पंजाब राज्य बनेगा, वह सुसंघटित क्षेत्र होगा और उसमे वे महत्त्वपूर्ण विकास योजनाएं अधिक प्रभावशाली ढंग से कार्यान्वित हो सकेंगी जो इस समय (प्रतिवेदन के प्रकाशन के समय) इस क्षेत्र के विभिन्न राज्यों के विचाराधीन हैं।

११. उत्तर प्रदेश—उत्तर प्रदेश के विभाजन की कोई आवश्यकता नहीं है और यह राज्य इसी रूप मे बना रहना चाहिये।

१२. बिहार—दक्षिण बिहार मे झारखण्ड राज्य बनाना न आवश्यक प्रतीत होता है, न यह उचित ही है। हाँ, इस क्षेत्र की विशेष आवश्यकताएं स्वीकार की जानी चाहिये।

सराय केला और खरसांवा बिहार मे ही रहने चाहिये। (बिहार के दो पूर्वी जिलों में कुछ हेर-फेर के सुझाव पश्चिम बंगाल के अन्तर्गत दिये गये हैं)।

१३. पश्चिम बंगाल—पश्चिम बंगाल के उत्तरी भाग को भौगोलिक रूप से शेष राज्य से जोडने की आवश्यकता प्रतीत होती है। इसके लिए व्यवस्था करनी होगी। अतः महानन्द नदी के पूर्व मे पूर्णिया जिले का एक भाग जो इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए न्यूनतम आवश्यक क्षेत्र है, बिहार से अलग करके पश्चिम बंगाल को देना होगा।

दक्षिण मे मानभूमि जिले के अन्तर्गत, चार थाना को छोड़कर, पुरुलिया उपजिला भी बिहार से निकाल कर पश्चिम बंगाल मे मिला देना चाहिये। इससे एक ऐसी महत्त्वपूर्ण बाढ़-नियंत्रण तथा सिंचाई योजना कार्यान्वित करने मे सुविधा होगी जो पश्चिमी बंगाल के लिए बहुत महत्त्व की है। इसके

अतिरिक्त पुरुलिया [उपजिले की भाषा के रूप तथा साम्य की दृष्टि से भी हस्तांतरण उचित होगा।

१४. असम—भौगोलिक स्थिति, नृवंश एवं सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से असम सुसंघटित राज्य रहा है और इसका ऐसे ही बना रहना आवश्यक भी है।

असम में एक पर्वतीय राज्य बनाने की माँग अव्यवहारिक है और यहां की विशेष बातों तथा परिस्थितियों की दृष्टि से भी अलग पर्वतीय राज्य बनाने का कोई कारण नजर नहीं आता। हाँ, पहाड़ी जिलों के विकास की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये और संविधान की छठीं सूची के अधीन स्थापित स्वायत्त-संस्थाओं की कार्य-व्यवस्था की जांच की जानी चाहिये।

त्रिपुरा को असम में मिला देना चाहिये।

उत्तर-पूर्वी सीमा अभिकरण की वर्तमान व्यवस्था ही चालू रखनी चाहिये।

१५. उड़ीसा—उड़ीसा की सीमाएँ १९३६ में काफी सयय तक और विस्तृत रूप से विचार करने के बाद निर्धारित की गयी थीं, अतः उनमे परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं है।

१६. जम्मू और कश्मीर—आयोग ने इस राज्य के विषय मे कोई सिफारिश नहीं की।

आयोग के अध्यक्ष श्री सैयद फजल अली ने बिहार के सीमा-सम्बन्धी विवाद की जांच और निर्णय में कोई भाग नहीं लिया, क्योंकि इससे उनका पुराना सम्बन्ध रहा है। हिमाचल और उत्तर प्रदेश को छोड़कर प्रतिवेदन सर्वसम्मत रहा। इन दोनों राज्यों के सम्बन्ध में क्रमशः अध्यक्ष और पणिक्कर ने अलग नोट लिखे। हिमाचल प्रदेश के सम्बन्ध में अध्यक्ष ने यह मत प्रकट किया कि इस राज्य पर सीधे केंद्र का शासन होना चाहिये। उत्तर प्रदेश के सम्बन्ध में पणिक्कर ने अपने नोट में लिखा कि "इस राज्य को भंग कर एक नया राज्य बनाया जाय जिसमे मेरठ, आगरा रुहेलखंड और झांसी कमिश्नरियां (देहरादून और पीलीभीत को छोड़कर) तथा दतिया एवं मध्यभारत के चार उत्तरी जिले शामिल किये जांय।"

राज्य पुनस्संघटन आयोग के प्रतिवेदन के प्रकाशन के बाद महाराष्ट्र, बम्बई, बिहार और उड़ीसा तथा बाद में पंजाब में बड़ा बावेला मचा। देश के कई भागों में हिंसात्मक प्रदर्शन हुए और विध्वंसात्मक काररवाइयां की गयी। महाराष्ट्र में बम्बई को मिलाने की मांग करने वाले इस मामले में सबसे आगे

रहे। बम्बई में ट्रामें फूंकी गयीं, शान्त नागरिकों की दूकानें लूटी गयीं, नागरिकों पर हमले किये गये और अन्य प्रकार की हिंसात्मक काररवाइयां की गयीं। उड़ीसा में भी यह दौर उठा। कुछ उपद्रव बिहार में भी हुआ। अन्य स्थानों में तो स्थिति पर काबू पा लिया गया था लेकिन बम्बई में कई बार उपद्रव हुए।

मराठा भाषा-भाषियों का यह हाल था। गुजराती प्रसन्न थे। उधर पंजाब ( पूर्वी ) में अकालियों के नेता मास्टर तारासिंह ने यह मत प्रकट किया था कि 'राज्य पुनस्संघटन आयोग ने सिखों के उन्मूलन का आदेश दिया है। रिपोर्ट ने सिख संसार के नाम को मिटा दिया है। आगे चल कर अकालियों ने आयोग के सुझाव का विरोध सक्रिय रूप से करने की ठानी। इससे वहां का भी वातावरण अशांत हो गया।

रिपोर्ट के प्रकाशन की तिथि को ही राष्ट्र के नाम प्रधान मंत्री नेहरू ने अपील ब्राडकास्ट की थी जिसमें यह आश्वासन दिया गया था कि 'जनता, विधान सभाओं और लोकसभा द्वारा भली-भांति विचार किये जाने के बाद ही आयोग के सुझावों के सम्बन्ध में कोई भी निर्णय किया जायगा।' इसके बावजूद उपद्रव नहीं रुके।

राजप्रमुख प्रथा का अन्त करने की आयोग की सिफारिश का स्वागत सारे देश ने किया।

रिपोर्ट के प्रकाशन के बाद उस पर विचार-विमर्श का कार्य आरम्भ हुआ। सारे देश के अनेकानेक प्रतिनिधियों से भारत सरकार के प्रतिनिधियों ने और नेताओं ने वार्ता की। इस वार्ता में कांग्रेस के अध्यक्ष ढेबर, पण्डित जवाहरलाल नेहरू, मौलाना अब्दुलकलाम आजाद, गोविन्द वल्लभ पंत प्रभृति मुख्य-मुख्य राष्ट्रनायकों ने विशेष रूप से भाग लिया था। उद्देश्य यह था कि सभी पक्षों की भावनाओं पर ध्यान देते हुए विवादास्पद मामलों का हल ढूढ़ा जा सके। बम्बई और पंजाब के प्रश्न पर विशेष रूप से काफी विस्तार से विचार-विमर्श हुआ था। अंततः १६ जनवरी, सन् १९५६ को प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलाल ने आयोग की सिफारिशों के सम्बन्ध में सरकार के निर्णय की घोषणा करते हुए राष्ट्र के नाम अपना भाषण ब्राडकास्ट किया। भारत सरकार के निर्णय से सम्बन्धित विज्ञप्ति भी इसी समय प्रकाशित कर दी गयी। इस विज्ञप्ति में सरकारी निर्णय का उल्लेख इस रूप में किया गया था—

"भारत सरकार ने इन नये राज्यों की स्थापना के सम्बन्ध में आयोग की सिफारिश स्वीकार कर ली है—(क) केरल, कर्नाटक जिसका नाम मैसूर होगा और (ग) मध्य प्रदेश।

"मोटे तौर से आयोग द्वारा प्रस्तावित आधार पर सरकार ने इन राज्यों को कायम रखने की सिफारिश भी स्वीकार कर ली है—(क) मद्रास (ख) राजस्थान (ग) उत्तर प्रदेश (घ) बिहार, (ङ) पश्चिम बंगाल, (च) असम और (छ) उडीसा। इन राज्यों मे शामिल किये जाने वाले क्षेत्रों के सम्बन्ध में थोडा परिवर्तन किया गया है।"

बम्बई और विदर्भ राज्यों की स्थापना से सम्बन्धित आयोग की सिफारिशों की प्रशंसा करते हुए भी जनता के विरोध के कारण सरकार ने उन्हें स्वीकार नहीं किया और यह निर्णय किया कि—"दो राज्य बनाये जांय—(१) गुजरात राज्य हो जिसमे गुजराती भाषा-भाषी क्षेत्र शामिल किये जांय और राज्य मे ही उसकी राजधानी हो और (२) महाराष्ट्र राज्य हो जिसमे मराठा भाषा-भाषी क्षेत्र तथा प्रस्तावित विदर्भ राज्य के क्षेत्र शामिल हो। राज्य की सीमा के अन्दर ही उसकी राजधानी हो। बम्बई को केंद्र शासित राज्य बनाया जाय जिसमे (१) वृहत्तर बम्बई और (२) भायंदर, डोंगरी, घोड़ बन्दर, काशी, मारोशी, भीरे, राय मुद्धे और उत्तन गावों को छोड़ कर थाना तालुका और बोरिवली तालुका के कोपारी, मुलुंद, नाहुर, और तुरम्भ गांवो के क्षेत्र मिलाये जाय।"

त्रिपुरा के सम्बन्ध मे यह निर्णय हुआ कि "फिलहाल उसे केंद्र शासित ही रखा जाय।" यही निर्णय लक्षदीप और मिनिकाय द्वीपों के सम्बन्ध भी किया गया था।

पंजाब और हैदराबाद के पुनस्संघटन-सम्बन्धी निर्णय को विज्ञप्ति मे विचाराधीन बताया गया।

विज्ञप्ति मे यह भी बताया गया था कि 'विकास के लिए अन्तरराज्य सहयोग के निमित्त भारत सरकार ने क्षेत्रीय परिषदें बनाने का भी निश्चय किया है। ये केवल परामर्शदात्री परिषदें ही होंगी जिनमे विचार-विमर्श किया जा सकेगा।'

विज्ञप्ति में इस उद्देश्य से विभिन्न राज्यों को पाँच गुटों में बांटने और प्रत्येक गुट के लिए क्षेत्रीय परिषद बनाने का रूप इस प्रकार प्रस्तुत किया गया—

१—उत्तरी क्षेत्र—इसमें पंजाब, पेप्सू, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली और राजस्थान राज्य शामिल होंगे।

२—केन्द्रीय क्षेत्र—उत्तर प्रदेश और प्रस्तावित मध्य प्रदेश को मिला कर।

३—पूर्वी क्षेत्र—इसमें बिहार, पश्चिम बंगाल, असम ( उत्तर-पूर्वी सीमा अभिकरण के साथ ), मणिपुर और त्रिपुरा, ये प्रस्तावित राज्य शामिल होंगे।

४—पश्चिमी क्षेत्र—प्रस्तावित महाराष्ट्र, गुजरात और केन्द्र शासित बम्बई को मिला कर।

५—दक्षिणी क्षेत्र—प्रस्तावित मैसूर, केरल और आयोग के प्रस्ताव के अनुसार आत्मभरित हैदराबाद राज्य के साथ आंध्र और मद्रास राज्यों को मिला कर।

उपर्युक्त निर्णय से भी सबको सन्तोष नहीं हुआ। फिर भी काररवाई जारी रही। अन्ततः १८ अप्रैल, १९५६ को इनके आधार पर लोकसभा में राज्य पुनस्संघटन विधेयक* प्रस्तुत किया गया।

इसमें बिहार और पश्चिम बंगाल के पुनस्संघटन-सम्बंधी उपबंध शामिल नहीं किये गये थे; क्योंकि विधेयक प्रस्तुत किये जाने से पूर्व बिहार और पश्चिम बंगाल के मुख्य मंत्रियों ने दोनों राज्यों को मिला कर एक राज्य बनाने के प्रस्ताव पर विचार करने की घोषणा संयुक्त रूप मे कर दी थी। दोनों राज्यों की विधान सभाओं ने यह प्रस्ताव स्वीकार भी कर लिया किन्तु बंगाल में इसके विरुद्ध गहरा जन-आन्दोलन जारी रहा। कांग्रेस-विरोधी सभी दलों ने संयुक्त मोर्चा बना कर इस प्रस्ताव की वैधता को चुनौती दी। वहाँ कई स्थानीय चुनावो में इस प्रश्न को मुख्य स्थान दिया गया जिनमें कांग्रेस की हार हुई। अन्त मे लोकसभा के एक रिक्त स्थान के उपनिर्वाचन में भी कांग्रेस उम्मीदवार पराजित हुआ। पश्चिम बंगाल के मुख्य मंत्री डा० विधान चन्द्र राय ने इसे दोनों राज्यों को मिलाने के प्रस्ताव के विरुद्ध जनता का फैसला माना और पश्चिमी बंगाल और बिहार को मिलाने के प्रस्ताव का त्याग करने की घोषणा की। इन दोनों राज्यों के पुनस्संघटन के लिए लोकसभा में पृथक से विधेयक प्रस्तुत किया गया।

अगस्त १९५६ में भारतीय संसद के दोनों सदनों ने राज्य पुनर्गठन विधेयक स्वीकार कर लिया। बहस के अंतिम दिनों में लोकसभा के बहुसंख्यक सदस्यों ने वृहत्तर बम्बई राज्य बनाने का प्रस्ताव पेश किया जो विधेयक में संशोधन के रूप में अत्यधिक बहुमत से स्वीकार कर लिया गया।

---

* भारत सरकार का असाधारण गजट ( भाग दो, सेक्शन २ ) संख्या १५, १८ अप्रैल, १९५६

इस विधेयक पर राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हो गयी है। राज्य पुनर्गठन आयोग अधिनियम और बिहार-पश्चिम बंगाल ( क्षेत्रहस्तांतरण ) अधिनियम के अनुसार १ नवम्बर १९५६ से भारत में १४ राज्यों का अस्तित्व कायम हुआ जिनके नाम हैं आंध्र प्रदेश, असम, बिहार, बम्बई, जम्मू-कश्मीर, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, केरल, मध्य प्रदेश, मद्रास, मैसूर और उड़ीसा। इन राज्यों के अलावा ये ६ केन्द्र शासित-प्रदेश भी हैं— अंदमान और निकोबार द्वीप, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, लक्कादीप और अमीन द्वीप, मणिपुर और त्रिपुरा।

राज्य प्रमुखों का पद समाप्त कर दिया गया और 'क' 'ख' और 'ग' भाग के राज्यों का भेद मिटा दिया गया।

नये राज्यों का क्षेत्रफल और जनसंख्या इस प्रकार है—

| राज्य | क्षेत्रफल ( वर्ग मील ) | जनसंख्या (दस लाख में) |
|---|---|---|
| आंध्र प्रदेश | १,१०,२५० | ३२.२ |
| असम | ८४,९२४ | ९.० |
| बिहार | ६७,८३०+ | ३८.९३+ |
| बम्बई | १,८८,२४० | ४७.८ |
| जम्मू-कश्मीर | ९२,७८० | ४.४ |
| केरल | १४,९८० | १३.६ |
| मध्य प्रदेश | १७,१,२०० | २६.१ |
| मद्रास | ५०,१७० | ३०.० |
| मैसूर | ७२,७३० | १९.० |
| उड़ीसा | ६०,१४० | १४.६ |
| पंजाब | ४६,६१६ | १६.० |
| राजस्थान | १,३२,३०० | १६.० |
| उत्तर प्रदेश | १,१३,४१० | ६३.२ |
| पश्चिम बंगाल | ३३,२७९+ | १६.१६+ |

———

+ लगभग

# द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना

**राज्य सरकारों से अनुरोध—आयोजना का ढांचा—राष्ट्रीय आय में २५ प्रतिशत की वृद्धि—आयोजना का प्रारूप—अन्तिम मसविदा—तीन प्रमुख लक्ष्य—आयोजना की संक्षिप्त रूप-रेखा।**

सन् १९५३ में राज्य पुनस्संघटन आयोग की नियुक्ति के बाद अगले वर्ष ही भारत के आर्थिक विकास के निमित्त द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना की रूप-रेखा तैयार करने का कार्य भी आरम्भ कर दिया गया था। अप्रैल, सन् १९५४ मे आयोजन आयोग ने देश की राज्य सरकारों से जिले और गांवों के विकास की योजनाएं तैयार करने की व्यवस्था करने का अनुरोध किया और ऐसा करते समय कृषि-गत उत्पादन, ग्रामोद्योग और सहयोग पर विशेष रूप से ध्यान देने का सुझाव भी दिया। इस वर्ष ही अर्थात् १९५४ में ही राष्ट्रीय आयोजना के बड़े पहलुओं के अध्ययन का कार्य भी आरम्भ कर दिया गया। वर्ष के अन्त में राष्ट्रीय आयोजना से सम्बद्ध प्रावधिक और सांख्यिक समस्याओं के अध्ययनार्थ भारतीय सांख्यिक सस्थान का सहयोग उपलब्ध किया गया। संस्थान में कई विषयों पर आवश्यक प्रालेख तैयार किये गये। इस रूप मे किये जाने वाले अध्ययन से प्राप्त तथ्यों का उल्लेख मार्च, १९५५ में प्रोफेसर पी० सी० महालनोबिस द्वारा तैयार किये गये थे 'द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना बनाने के निमित्त सिफारिशों के प्रारूप' में हुआ था। इसके पश्चात् वित्त मंत्रालय के अर्थ विभाग ने द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना का सुनिश्चित ढांचा तैयार किया। अप्रैल, १९५५ में इस पर आयोजना आयोग द्वारा नियुक्त अर्थ शास्त्रियों के 'पैनेल' ने विचार किया। मई में सभी तथ्यों पर राष्ट्रीय विकास परिषद में विचार-विनिमय हुआ। परिषद ने आयोजना के ढांचे तथा प्रोफेसर महालनोबिस की सिफारिशों के मूल आधार से सहमति प्रकट की और द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना को इस रूप में तैयार कराने का फैसला किया कि योजनावधि में राष्ट्रीय आय में २५ प्रतिशत की वृद्धि हो सके और एक करोड़ से लेकर १०२ करोड़ तक की संख्या में लोगों को काम-काज मिल सके। उसने यह भी निर्देश किया कि आयोजना में

समाजवादी ढंग के समाज की रचना से सम्बंधित नीतिगत निर्णयों का उल्लेख स्पष्टतः कर दिया जाय।

जुलाई और दिसम्बर, १९५५ के बीच आयोजना आयोग ने केंद्रीय तथा राज्य सरकारों के मंत्रियों से इस विषय पर विचार-विमर्श किया। इसके फलस्वरूप आयोजना का जो रूप तैयार हो सकता था, उस पर जनवरी, १९५६ के दौरान में राष्ट्रीय विकास परिषद तथा संसद के सदस्यों की परामर्शदात्री समिति ने विचार किया और सभी बातों पर ध्यान देते हुए द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना का प्रारूप तैयार करके फरवरी, १९५६ में उसे प्रकाशित कर दिया गया ताकि लोगों की आलोचनाएं और उनके विचार संग्रहित किये जा सकें।

देश के अर्थ शास्त्रियों, राजनीतिक दलों, व्यापारिक संस्थाओं तथा अन्य लोगों ने आयोजना के प्रारूप पर भिन्न-भिन्न रूप में अपने-अपने विचार व्यक्त किये। आयोजना आयोग ने इन पर विचार किया। फलतः आयोजना के प्रारूप में कुछ परिवर्तन हुआ। एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन यह रहा कि प्रारूप में निजी क्षेत्र में जितनी पूंजी लगाने का फैसला गया था, उससे अधिक पूंजी लगाना आयोजना के अंतिम मसविदे में स्वीकार किया गया। इसकी पर्याप्त आलोचना हुई और वामपंथी दलों ने इसे समाजवादी ढंग के समाज की रचना के लक्ष्य के विपरीत बताया।

१५ मई, १९५६ को आयोजना का अंतिम मसविदा प्रकाशित कर दिया गया। फिर इसे स्वीकृति के लिए ससद में पेश किया गया। संसद में इस पर बहस हुई और मसविदा स्वीकार कर लिया गया।

प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में देश का विकास करने के लिए जो प्रयत्न किया गया था, द्वितीय आयोजना की अवधि में वह जारी रहेगा। द्वितीय आयोजना में उद्योगीकरण पर निश्चित रूप से अधिक जोर दिया गया है जब कि प्रथम आयोजना में कृषि के उत्पादन पर विशेष जोर दिया गया था। द्वितीय आयोजना में भारी उद्योग और परिवहन आदि सहायक व्यवस्थाओं के विकास पर भी विशेष रूप से ध्यान दिया गया है।

द्वितीय पंच वर्षीय आयोजन के तीन मुख्य लक्ष्य इस प्रकार हैं—(१) पांच वर्ष की अवधि में राष्ट्रीय आय में लगभग २५ प्रतिशत की वृद्धि करना, (२) इस अवधि में जनसंख्या बढ़ने के कारण रोजगार चाहने वालों की जिस अनुपात में वृद्धि हो, उसी अनुपात में नये काम दिलाने की व्यवस्था करना और (३) देश के उद्योगों का तेजी से विकास करना ताकि अगली आयो-

जनाओं में तेज रफ्तार से प्रगति करने के लिए आवश्यक आधार तैयार हो जाय।

दूसरी आयोजना की अवधि में विकास कार्यों पर केन्द्रीय और राज्य सरकारों का कुल ४८०० करोड़ रुपया व्यय होगा। यह रकम विकास की जिन खास-खास मदों पर खर्च होगी, वे इस प्रकार हैं—

विकास की खास-खास मदें

| क्षेत्र | पहली पंचवर्षीय आयोजना कुल व्यवस्था (करोड़ रु० में) | प्रतिशत | दूसरी पंचवर्षीय आयोजना कुल व्यवस्था (करोड रु० में) | प्रतिशत |
|---|---|---|---|---|
| १ | २ | ३ | ४ | ५ |
| १. कृषि और सामुदायिक विकास— | ३५७ | १५.१ | ५६८ | ११.८ |
| (क) कृषि | २४१ | १०.२ | ३४१ | ७.१ |
| कृषि-कार्यक्रम | १६७ | ८.३ | १७० | ३.५ |
| पशु-पालन | २२ | १.० | ५६ | १.१ |
| जंगल | १० | ०.४ | ४७ | १.० |
| मछली पालन | ४ | ०.२ | १२ | ०.३ |
| सहकारिता | ७ | ०.३ | ४७ | १.० |
| विविध | १ | ... | ६ | ०.२ |
| (ख) राष्ट्रीय विस्तार और सामुदायिक योजनाएं | ६० | ३.८ | २०० | ४.१ |
| (ग) अन्य क्रार्यक्रम | २६ | १.१ | २७ | ०.६ |
| ग्राम पंचायत | ११ | ०.५ | १२ | ०.३ |
| स्थानीय विकास-कार्य | १५ | ०.६ | १५ | ०.३ |
| २. सिंचाई और बिजली | ६६१ | २८.१ | ६१३ | १६.० |
| सिंचाई | ३८४ | १६.३ | ३८१ | ७.६ |

| १ | २ | ३ | ४ | ५ |
|---|---|---|---|---|
| बिजली | २६० | ११.१ | ४२७ | ८.६ |
| बाढ़ नियंत्रण तथा अन्य योजनाएं, जांच-पड़ताल आदि | १७ | ०.७ | १०५ | २.२ |
| ३. उद्योग और खानें | १७६ | ७.६ | ८६० | १८.५ |
| बड़े और मझोले दर्जे के उद्योग | १४८ | ६.३ | ६१७ | १२.६ |
| खनिज विकास | १ | ... | ७३ | १.५ |
| ग्राम तथा छोटे उद्योग | ३० | १.३ | २०० | ४.१ |
| ४. परिवहन और संचार | ५५७ | २३.६ | १३८५ | २८.६ |
| रेलवे | २६८ | ११.४ | ६०० | १८.८ |
| सड़कें | १३० | ५.५ | २४६ | ५.१ |
| सडक परिवहन | १२ | ०.५ | १७ | ०.४ |
| बन्दरगाह | ३४ | १.४ | ४५ | ०.६ |
| जहाजरानी | २६ | १.१ | ४८ | १.० |
| अंतर्देशीय जल-परिवहन | ... | ... | ३ | ०.१ |
| नागरिक वायु परिवहन | २४ | १.० | ४३ | ०.६ |
| अन्य परिवहन | ३ | ०.१ | ७ | ०.१ |
| डाक तथा तार | ५० | २.२ | ६३ | १.३ |
| अन्य संचार | ५ | ०.२ | ४ | ०.१ |
| प्रसारण | ५ | ०.२ | ६ | ०.२ |
| ५. समाज सेवाएं | ५३३ | २२.६ | ६४५ | १६.७ |
| शिक्षा | १६४ | ७.० | ३०७ | ६.४ |

| १ | २ | ३ | ४ | ५ |
|---|---|---|---|---|
| स्वास्थ्य | १४० | ५.६ | २७४ | ५.७ |
| आवास | ४६ | २.१ | १२० | २.५ |
| पिछड़ी जातियों का कल्याण | ३२ | १.३ | ६१ | १.६ |
| समाज कल्याण | ५ | ०.२ | २६ | ०.६ |
| श्रम और श्रम-कल्याण | ७ | ०.३ | २६ | ०.६ |
| पुनस्संस्थापन शिक्षितों की बेकारी-संबंधी योजनाएं | १३६ | ५.८ | ६० | १.६ |
| | ... | ... | ५ | ०.१ |
| विविध | ६६ | ३.० | ६६ | २.१ |
| योग— | २३५६ | १००.० | ४८०० | १००.० |

कुल व्यय की इस रकम में स्थानीय विकास-कार्यों के लिए लोगों द्वारा धन और सामग्री के रूप मे दी जाने वाली मदद सम्मिलित नहीं है।

उपर्युक्त मदों को देखकर यह पता लग सकता है कि पहली आयोजना के मुकाबले दूसरी आयोजना में किन-किन मदों को उच्च प्राथमिकताएं दी गयी हैं। दूसरी आयोजना में सरकारी क्षेत्र में उद्योगों और खानों पर कुल व्यय के लगभग १६ प्रतिशत के बराबर धन खर्च किया जायगा। पहली आयोजना में इस मद में ८ प्रतिशत खर्च करने की व्यवस्था रखी गयी थी। इस प्रकार उद्योग और खानों पर किये जाने वाले व्यय में लगभग ४०० प्रतिशत वृद्धि हुई है। पहली आयोजना में इस मद में खर्च के लिए जितनी रकम रखी गयी थी, वास्तव में उससे ५० प्रतिशत से भी कम खर्च हुआ। इस दृष्टि से देखने से यह ज्ञात होगा कि दोनों आयोजनाओं के अंतर्गत इस मद में की गयी व्यवस्थाओं में जो अन्तर दिखाई पडता है, वास्तव में उससे कहीं अधिक अंतर है और दूसरी आयोजना के अंतर्गत इस मद में की गयी व्यवस्था अपेक्षाकृत कहीं अधिक है। उद्योगों और खानों पर जो ८६० करोड़ रु० खर्च होगा,

उसमें से ६६० करोड़ रु० बड़े उद्योगों पर लगेगा, जिनमें खानें भी शामिल हैं और २०० करोड़ रु० ग्राम और छोटे उद्योगों के विकास पर खर्च होगा।

परिवहन और संचार पर कुल खर्च के २६ प्रतिशत के बराबर खर्च होगा। रेलों के विकास कार्यक्रम पर कुल खर्च के १६ प्रतिशत के बराबर खर्च होगा, जब कि पहली आयोजना में इस मद मे लगभग ११ प्रतिशत व्यय हुआ। लेकिन, पहली आयोजना मे अन्य परिवहन और संचार-व्यवस्थाओं पर कुल व्यय के मुकाबले जिस अनुपात में धन की व्यवस्था की गयी थी, दूसरी आयोजना मे यह अनुपात उससे कुछ कम है। लेकिन, वास्तव मे इन मदों पर खर्च काफी बढ़ाया जा रहा है।

केन्द्र और राज्य सरकारें कुल जितना धन व्यय करेंगी उसमे से १६ प्रतिशत सिंचाई और बिजली के कामों के लिए और १२ प्रतिशत कृषि तथा सामुदायिक विकास पर खर्च होगा। इस प्रकार इन दोनों मदों पर कुल १४८१ करोड़ रु० खर्च बैठेगा। इस आयोजना मे कृषि की अपेक्षा उद्योगों पर अधिक ध्यान दिया गया है, पर न केवल दूसरी आयोजना की अवधि में बल्कि उसके बाद भी वर्षों तक अनाज और कच्चे माल का उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता बराबर बनी रहेगी। आयोजना मे सिंचाई और बाढ़ नियंत्रण के कामों के लिए ४८६ करोड़ रु० खर्च करने की व्यवस्था है। इसमें से २०६ करोड़ रु० उन योजनाओं के लिए है जो पहली आयोजना के काल में शुरू हुई और अभी पूरी नहीं हुई है। बाकी २७७ करोड़ रु० नयी योजनाओं पर खर्च होगा। बिजली, खेती और उद्योग दोनों के लिए बहुत जरूरी है। आयोजना मे इसके लिए ४२७ करोड़ रु० की जो व्यवस्था है। उसमे से १६० करोड़ रु० पहली आयोजना की अवधि में शुरू हुई योजनाओं के लिए है और २६७ करोड़ रु० नयी योजनाओं पर खर्च होगा। अगले १५ सालों में सरकारी साधनों से सींचे जाने वाले क्षेत्र मे दोगुनी और बिजली के उत्पादन मे ६ गुनी वृद्धि करने का व्यापक कार्यक्रम बनाया गया है। उक्त वृद्धि इस का ही एक अंग है।

पहली योजना में सामाजिक सेवाओं के लिए २३ प्रतिशत धन रखा गया था। इस योजना मे इस मद पर २० प्रतिशत धन खर्च होगा। कुल खर्च में से सामाजिक सेवाओं और संबद्ध मदों पर कितना प्रतिशत खर्च होगा? इस दृष्टि से शिक्षा, स्वास्थ्य और मकान बनाने के लिए प्रायः उतना ही धन दिया गया है जितना पहली आयोजना में दिया गया था पर वास्तव में इन मदों पर पहले से कही अधिक खर्च होगा। शिक्षा के लिए ३०७ करोड़

रु० की व्यवस्था है जो पिछली आयोजना की व्यवस्था से दोगुने से कुछ ही कम है। स्वास्थ्य के बारे में भी ऐसा ही है।

आयोजना के ४८०० करोड रु० के कुल प्रस्तावित व्यय में से २,५५६ करोड रु० केन्द्रीय सरकार और २,२४१ करोड़ रु० राज्य सरकारें खर्च करेंगी। केन्द्र, और 'क' 'ख' और 'ग' भाग के राज्यों की ओर से मुख्य मदों पर जो खर्च होगा वह इस प्रकार है—

(करोड रुपयों में)

| | केन्द्र | 'क' भाग के राज्य | 'ख' भाग के राज्य | 'ग' भाग के राज्य | कुल |
|---|---|---|---|---|---|
| १. कृषि और सामुदायिक विकास | ६५ | ३५६ | ११२ | ३१ | ५६८* |
| २. सिंचाई और बिजली | १०५ | ५६७ | २१७ | २४ | ६१३ |
| ३. उद्योग और खानें | ७४७ | ६६ | ३७ | ७ | ८६० |
| ४. परिवहन और संचार | १२०३ | १२० | ४१ | २१ | १३८५ |
| ५. सामाजिक सेवाएं | ३६६ | ३६३ | ११७ | ३६ | ६४५ |
| ६. विविध | ४३ | ४२ | ११ | ३ | ६६ |
| | २५५६ | १५८० | ५३५ | १२५ | ४८०० |

सरकारी क्षेत्र के ४८०० करोड़ रु० के कुल खर्च में से लगभग ३८०० करोड़ रु० स्थायी उपयोग के कामों में लगाया जायगा और १,००० करोड़ रु० तत्कालीन विकास-कार्यों में। मुख्य मदों पर दोनों प्रकार के खर्च का ब्योरा नीचे की तालिका में दिया गया है:—

---

( 'ग भाग के राज्यों में अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, उत्तर पूर्वी सीमांत अभिकरण और पांडिचेरी भी शामिल हैं )।

* इसमें वह १ करोड़ रुपया भी शामिल है, जिसका अभी बटवारा नहीं हुआ है और जो राज्यों की राष्ट्रीय विस्तार सेवा और सामुदायिक योजनाओं के लिए हैं।

(करोड़ रु० में)

| | स्थायी उपयोग के काम | तात्कालिक उपयोग के काम | कुल |
|---|---|---|---|
| १ | २ | ३ | ४ |
| १. कृषि और सामुदायिक विकास | ३३८ | २३० | ५६८ |
| (क) कृषि | १८१ | १६० | ३४१ |
| (ख) राष्ट्रीय विस्तार सेवा और सामुदायिक विकास | १५७ | ७० | २२७ |
| २. सिंचाई और बिजली | ८६३ | ५० | ९१३ |
| (क) सिंचाई और बाढ़-नियंत्रण | ४५६ | ३० | ४८६ |
| (ख) बिजली | ४०७ | २० | ४२७ |
| ३. उद्योग और खानें | ७९० | १०० | ८९० |
| (क) बड़े और दरमियानी उद्योग | ६७० | २० | ६९० |
| (ख) ग्राम तथा छोटे उद्योग | १२० | ८० | २०० |
| ४. परिवहन और संचार | १३३५ | ५० | १३८५ |
| ५. सामाजिक सेवाएं | ४५५ | ४९० | ९४५ |
| ६. विविध | १९ | ८० | ९९ |
| कुल | ३८०० | १००० | ४८०० |

सरकारी उद्योगों में ३८०० करोड रुपया लगाने का जो कार्यक्रम है उसके साथ-साथ निजी क्षेत्र में पूंजी नियोजन के कार्यक्रम का भी ध्यान रखना होगा, क्योंकि विकास और उत्पादन के जो लक्ष्य हैं वह दोनों क्षेत्रों के पूंजी नियोजन से ही पूरे होंगे। मोटे तौर से पिछले पांच सालों के पूंजी नियोजन के रुख को देखते हुए अन्दाज लगाया जा सकता है कि दूसरी आयोजना में निजी क्षेत्र में लगभग २४०० करोड़ रु० की पूंजी उद्योगों में लगायी जायगी। इसका ब्योरा इस प्रकार होगा:—

| | ( करोड़ रु० में ) |
|---|---|
| १. संगठित उद्योग और खानें | ५७५ |
| २. बगीचे, बिजली कम्पनियां और रेलवे को छोड़कर अन्य परिवहन | १२५ |
| ३. निर्माण | १००० |
| ४. कृषि और छोटे तथा ग्राम-उद्योग | ३०० |
| ५. स्टाक | ४०० |
| कुल | २,४०० |

अनुमान है कि पहली आयोजना की अवधि में सब क्षेत्रों में करीब ३१०० करोड़ रुपये की पूंजी लगायी गयी होगी। इसमें से निजी क्षेत्र में आधे से कुछ अधिक पूंजी लगायी गयी होगी। दूसरी आयोजना में करीब ६२०० करोड़ रुपये की पूंजी का नियोजन होगा और सरकार की ओर से पहले से कहीं अधिक पूंजी लगायी जायगी। पहली आयोजना मे सरकारी और निजी पूंजी का अनुपात ५०:५० का था पर दूसरी आयोजना में यह अनुपात ६१:३९ होगा। सरकार पहले से ढाई गुनी पूंजी लगायेगी और निजी व्यापारी तथा उद्योग मालिक पहले से ५० प्रतिशत अधिक धन लगायेंगे।

आयोजना के आकार-प्रकार से पता चलता है कि इसको पूरा करने में लिए प्रयत्न का क्या स्वरूप है और किन कामों को प्राथमिकता दी गयी है। इस अवधि मे सरकारी और गैरसरकारी क्षेत्रों में जो पूंजी लगायी जायगी, उससे कितना उत्पादन और विकास होगा इसकी जानकारी नीचे की तालिका से हो सकती है :—

तालिका

| | १९५०-५१ | १९५५-५६ | १९६०-६१ | १९५५-५६ से १९६०-६१ में प्र० श० वृद्धि |
|---|---|---|---|---|
| | १ | २ | ३ | ४ |
| कृषि | | | | |
| १. अनाज (लाख टनों मे) | ५४०+ | ६५० | ७५० | १५ |
| २. कपास (लाखगांठों में) | २९ | ४२ | ५५ | ३१ |
| ३. गुड़ (लाख टनों मे) | ५६ | ५८ | ७१ | २२ |

| | १ | २ | ३ | ४ |
|---|---|---|---|---|
| ४. तेलहन (लाख टनों मे) | ५१ | ५५ | ७० | २७ |
| ५. पटसन (लाख गांठों में) | ३३ | ४० | ५० | २५ |
| ६. चाय (लाख पौंड में) | ६१३० | ६४४० | ७००० | ६ |
| ७. राष्ट्रीय विस्तार खंड (संख्या) | — | ५०० | ३८०० | ६६० |
| ८. सामुदायिक विकास खंड (संख्या) | — | ६२२ | ११२० | ८० |
| ९. राष्ट्रीय विस्तार और सामुदायिक विकास कार्यक्रमों से कितने लोगों को फायदा हुआ (लाखों मे) | — | ८०० | ३२५० | ३०६ |
| १०. ग्राम पचायते (हजारों मे) | ८३ | ११८ | २०० | ७० |
| सिचाई और बिजली | | | | |
| १. सिंचाई का क्षेत्र (लाख एकड़ मे) | ५१० | ६७० | ८८० | ३१ |
| २. बिजली (कुल क्षमता लाख किलोवाट मे) | २३ | ३४ | ६९ | १०३ |
| खनिज पदार्थ | | | | |
| १. कच्चा लोहा (लाख टनों में) | ३० | ४३'++ | १२५ | १९१ |
| २. कोयला (लाख टनों में) | ३२३ क | ३८० क | ६०० क | ५८ |
| बड़े उद्योग | | | | |
| १. इस्पात (लाख टनों में) | ११ | १३ | ४३ | २३१ |

+ यह संख्या १९४९–५० की है;

++ यह संख्या १९५४ की है;

क. ये संख्याएं पक्की वर्षों की हैं।

| | १ | २ | ३ | ४ |
|---|---|---|---|---|
| २. ढलाई का लोहा (फाउंडरी द्वारा खरीद के लिए) (लाख टनों में) | ... | ३.८ | ७.५ | ६७ |
| ३. अलमुनियम (हजार टनों में) | ३.७ | ७.५ | २५.० | २३३ |
| ४. इस्पात के कास्टिंग (बिक्री के लिए— हजार टनो में | ... | ... | १२ | ... |
| ५. इस्पात के फोर्जिंग (बिक्री के लिए हजार टनों में | ... | ... | १५ | ... |
| ६. निर्माण के काम आने वाला इस्पात का सामान (हजार टनो में) | अनुपलब्ध | १८० | ५०० | १७८ |
| ७. मशीन टूल (ग्रेडिड, मूल्य लाख रु० में) | ३१.८ | ७५ | ३०० | ३०० |
| ८. सीमेंट बनाने की मशीन मूल्य लाख रु० में) | अनुपलब्ध | ५६+ | २०० | २५७ |
| ९. चीनी बनाने की मशीनें (मूल्य लाख रुपयों में) | अनुपलब्ध | २८+ | २५० | ७७९ |
| १०. कपड़ा और पाट बुनने की मशीनें (मूल्य लाख रु० में) | अनुपलब्ध | ४१२ | १९५० | ३७३ |

+ ये संख्या १९४९–५० की है।

| | १ | २ | ३ | ४ |
|---|---|---|---|---|
| ११. कागज बनाने की मशीनें (मूल्य लाख रुपयो मे) | नगण्य | नगण्य | ४०० | ... |
| १२. बिजली से चलने वाले सेंट्रीफ्यूगल पम्प (हजारों में) | ३४ | ४० | ८६ | ११५ |
| १३. डीजल इंजन (हजार हार्स पावर में) | अनुपलब्ध | १०० | २०५ | १०५ |
| १४. मोटर गाड़ियां (संख्या) | १६,५०० | २५,००० | ५७,००० | १२८ |
| १५. रेल के इंजन (सं०) | ३ | १७५ | ४०० | १२६ |
| १६. ट्रैक्टर (२०–३०–७८ हार्स पावर) (संख्या) | ... | ... | ३००० | .... |
| १७. सीमेंट (लाख टनों में) | २७ | ४३ | १३० | २०२ |
| १८. उर्वरक | | | | |
| क. नत्रजनयुक्त एमोनियम सल्फेट (हजार टनों में) | ४६ | ३८० | १४५० | २८२ |
| ख. फासफेटयुक्त सुपर फासफेट (हजार टनों में) | ५५ | १२० | ७२० | ५०० |
| १६. गंधक का तेजाब (हजार टनों मे) | ६६ | १७० | ४७० | १७६ |
| २०. सोडा ऐश (हजार टनों में) | ४५ | ८० | २३० | १८८ |
| २१. कास्टिक सोडा (हजार टनों में) | ११ | ३६ | १३५ | २७५ |

| | १ | २ | ३ | ४ |
|---|---|---|---|---|
| २२. पेट्रोल—शोध कारखाना (कच्चा पेट्रोल साफ किया गया—लाख टनों में) | — | ३६ | ४३ | १६ |
| २३ बिजली के ट्रांसफार्मर ३३ के. वी. और इससे नीचे (हजार के. वी. ए.) | १७६ | ५४० | १३६० | १५१ |
| २४. बिजली के केबिल (ए. सी. एस. आर. कंडक्टर, टनों मे) | १४२० | ६००० | १८००० | १०० |
| २५. बिजली की मोटर (हजार हार्स पावर) | ६६ | २४० | ६०० | १५० |
| २६. सूती कपड़ा (लाख गजों मे) | ४६,१८० | ६८,५०० | ८५,००० | २४ |
| २७. चीनी (लाख टनों में) | ११ | १७ | २३ | ३५ |
| २८. कागज और गत्ता (हजार टनों मे) | ११४ | २०० | ३५० | ७५ |
| २६. साइकिले (संगठित उद्योग हजारों मे) | १०१ | ५५० | १००० | ८२ |
| ३०. सीने की मशीनें (केवल संगठित उद्योग—हजारों में) | ३३ | ११० | २२० | १०० |
| ३१. बिजली के पंखे (हजारों मे) | १६४ | २७५ | ६०० | ११८ |
| परिवहन और संचार | | | | |
| क. रेलवे | | | | |
| १. सवारी गाड़ियाँ कितने मीलचलीं (लाख मीलों में) | ९५० | १०८० | १२४० | १५ |

| | १ | २ | ३ | ४ |
|---|---|---|---|---|
| २. कितना माल ढोया (लाख टनों मे) | ६१० | १२०० | १८१० | ५१ |
| ख. सडकें | | | | |
| १. राष्ट्रीय सडकें (हजार मीलों में) | १२.३ | १२.६ | १३.८ | ७ |
| २. पक्की सड़कें (हजार मीलों मे) | ६७ | १०७ | १२५ | १७ |
| ग. जहाजरानी | | | | |
| १. तटवर्ती तथा आसपास के क्षेत्रों को आने जाने वाले जहाज* (लाख जी. आर. टी) | २.२ | ३.२ | ४.३ | ३४ |
| २. विदेश जाने वाले जहाज† (लाख जी. आर. टी.) | १.७ | २.८ | ४.७ | ६८ |
| घ. बन्दरगाह (क्षमता–लाख टनों मे) | २०० | २५० | ३२५ | ३० |
| ङ. डाक और तार विभाग | | | | |
| १. डाकखाने–(हजारों मे) | ३६ | ५५ | ७५ | ३६ |
| २. तारघर–(हजारों मे) | ३.६ | ४.६ | ६.३ | २८ |
| ३. टेलीफोन (हजारों में) | १६८ | २७० | ४५० | ६७ |
| शिक्षा | | | | |
| १. स्कूलों में पढ़ने वाले हर वय के बच्चों की प्रतिशत संख्या | | | | |
| क. प्राइमरी (६ से ११ वर्ष के) | ४२ | ५१ | ६३ | ... |
| ख. मिडिल (११ से १४ वर्ष के) | १४ | १६ | २२.५ | ... |
| ग. हायर सेकेंडरी (१४ से १७ वर्ष के) | ६.४ | ६.४ | १२.० | ... |
| २. प्रारंभिक बुनियादी स्कूल (लाखों मे) | २.२३ | २.६३ | ३.५० | १६ |

* इसमें टैंकर भी शामिल हैं,

† इसमें ट्रैम्प टनेज भी शामिल है।

| | १ | २ | ३ | ४ |
|---|---|---|---|---|
| ३. प्राइमरी, मिडिल और सेकेंडरी स्कूलों के अध्यापकों की संख्या (लाखों में) | ७.४ | १०.३ | १३.४ | ३० |
| ४. अध्यापकों को शिक्षा देनेवाली संस्थाएं (संख्या) | ८३५ | ११३६ | १४१२ | २४ |
| ५. शिक्षण पाने वाले अध्यापकों की संख्या (हजारों में) | ७५.६ | १०३.५ | १३४.२ | ३० |
| स्वास्थ्य | | | | |
| १. चिकित्सा संस्थाएं (हजारों में) | ८.६ | १०.० | १२.६ | २६ |
| २. अस्पतालों में बिस्तरों की संख्या (हजारों में) | ११३ | १२५ | १५५ | २४ |
| ३. डाक्टरों की संख्या (हजारों में) | ५६ | ७० | ८२.५ | १८ |
| ४. नर्सों की संख्या (हजारों में) | १७ | २२ | ३१ | ४१ |
| ५. मिडवाइफों की संख्या (हजारों में) | १८ | २६ | ३२ | २३ |
| ६. नर्स-दाइयां और दाइयां (हजारों में) | ४ | ६ | ४१ | ५८३ |
| ७. स्वास्थ्य सहायक और सेनीटरी इंस्पेक्टर (हजारों में) | ३.५ | ४ | ७ | ७५ |

आयोजना में मूल उद्योगों के मामले में काफी प्रगति करने की व्यवस्था रखी गयी है। १०–१० लाख टन इस्पात की उत्पादन-शक्ति वाले तीन कारखाने खोले जायंगे। उर्वरक बनाने के तीन कारखाने और खोले जायंगे और सिंदरी कारखाने का विस्तार किया जायगा। सीमेंट का उत्पादन वर्तमान ४३ लाख टन से बढ़ाकर १ करोड ३० लाख टन तक पहुँचा दिया जायगा। कोयले का उत्पादन ३ करोड ८० लाख टान से बढ़ा कर ६ करोड़ टन कर दिया जायगा। इस समय साल में १७५ रेल-इंजन बनते हैं, लेकिन दूसरी आयोजना के अंत तक इनका उत्पादन बड़ा कर ४०० तक पहुँचा दिया जायगा। इस समय, कृषि वस्तुओं के उत्पादन में १८ प्रतिशत वृद्धि करने का

लक्ष्य रखा गया है, लेकिन इसे और भी बढ़ाने का प्रयत्न किया जायगा। अनाज की उपज में १५ प्रतिशत वृद्धि की जायगी, अर्थात् उपज ६ करोड़ ५० लाख टन से बढ़कर ७ करोड़ ५० लाख टन हो जायगी। कृषि वस्तुओं की उपज बढ़ाने के लिए २ करोड़ १० लाख एकड़ अतिरिक्त भूमि में सिंचाई की जायगी। इसमें से १ करोड़ २० लाख एकड़ की सिंचाई बड़ी और मँझोली सिंचाई योजनाओं से और ६० लाख एकड़ की सिंचाई छोटी सिंचाई योजनाओं से की जायगी। आशा है कि बिजली की उत्पादन शक्ति ३४ लाख किलोवाट से बढ़कर ६६ लाख किलोवाट हो जायगी। समाज सेवाओं के विकास का प्रयत्न जारी रहेगा। दूसरी आयोजना के अंत तक ६ से ११ साल तक की उम्र के ६३ प्रतिशत बच्चों और ११ से १४ साल तक की उम्र के २२.५ प्रतिशत बच्चों के लिए डाक्टरों, नर्सों आदि की संख्या बढ़ायी जायगी। दूसरी आयोजना की अवधि में करीब १३ लाख रिहायशी मकान सरकारों द्वारा बनवाये जायंगे।

विभिन्न क्षेत्रों में जो विकास-कार्य होंगे, वे सभी राष्ट्रीय आय को बढायेंगे। पहली और दूसरी आयोजनाओं में राष्ट्रीय आय की अनुमित वृद्धि के आंकड़े आगे की तालिका में दिये गये हैं :

अनुमित वृद्धि के आंकड़े निम्नलिखित तालिका में दिये गये हैं

उद्योगों से शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन

(करोड़ रु० में १९५२–५३ के मूल्यों के आधार पर)

| | १९५०–५१ | १९५५–५६ | १९६०–६१ | प्रतिशत वृद्धि १९५१–५६ | प्रतिशत वृद्धि १९५६–६१ |
|---|---|---|---|---|---|
| १. कृषि तथा अन्य सम्बद्ध कार्य | ४४५० | ५२३० | ६१७० | १८ | १८ |
| २. खानें | ८० | ९५ | १५० | १९ | ५८ |
| ३. कारखाने | ५९० | ८४० | १३८० | ४३ | ६४ |
| ४. छोटे उद्योग | ७४० | ८४० | १०८५ | १४ | ३० |
| ५. निर्माण | १८० | २२० | २९५ | २२ | ३४ |
| ६. वाणिज्य, परिवहन तथा संचार | १६५० | १८७५ | २३०० | १४ | २३ |
| ७. व्यसाय और सेवाएं, सरकारी प्रशासन सहित— | १४२० | १७०० | २१०० | २० | २३ |
| ८. कुल राष्ट्रीय उत्पादन | ९११० | १०,८०० | १३,४८० | १८ | २५ |
| ९. प्रति व्यक्ति आमदनी | २५३ | २८१ | ३३१ | ११ | १८ |

उपर्युक्त आंकड़ों से यह ज्ञात होगा कि १९५५-५६ में राष्ट्रीय आय १०, ८०० करोड रुपये होगी और १९६०-६१ में यह बढ़कर करीब १३,४८० करोड रुपये ( एक से मूल्यों के हिसाब से ) हो जायगी, अर्थात् करीब २५ प्रतिशत वृद्धि होगी। प्रति व्यक्ति आमदनी में लगभग १८ प्रतिशत वृद्धि ( १९५५-५६ में २८१ रु० से १९६०-६१ में ३३१ रु० ) होगी। पहली आयोजना अवधि में ११ प्रतिशत वृद्धि ( २५३ रु० से २८१ रु० ) हुई। कुल राष्ट्रीय आय में कृषि तथा अन्य सम्बद्ध कार्यों का हिस्सा १९५५-५६ के ४८ प्रतिशत से घटकर १९६०-६१ मे ४६ प्रतिशत रह जायगा। दूसरी तरफ, खानों और कारखानों के हिस्से का प्रतिशत ९ से ११ हो जायगा। इसी तथ्य के कारण अगली कई आयोजनाओं मे उद्योगीकरण पर जोर देते रहना आवश्यक है।

राष्ट्रीय आय की तुलना मे उपभोग के औसत स्तर में वृद्धि की रफ्तार कम रहेगी। दूसरी, आयोजना अवधि मे ६२०० करोड़ रु० के नियोजन के कार्यक्रम के अतर्गत घरेलू बचतों मे वृद्धि करने की व्यवस्था रखी गयी है, अर्थात् इस समय घरेलू बचत कुल राष्ट्रीय आय के लगभग ७ प्रतिशत के बराबर है, जो १९६०-६१ मे लगभग १० प्रतिशत के बराबर हो जायगी। यह अनुमान इस बात को ध्यान मे रखकर लगाया गया है कि लगभग ११०० करोड़ रुपये की बाहरी सहायता मिलेगी। इस अनुमान के आधार पर देश मे उपभोग्य वस्तुओं पर खर्च लगभग २१ प्रतिशत बढ़ने की आशा है, जब कि राष्ट्रीय आय २५ प्रतिशत बढ़ेगी। पहली आयोजना मे उपभोग्य वस्तुओं पर खर्च मे करीब १६ प्रतिशत वृद्धि होने का अनुमान रहा। निम्नलिखित तालिका मे १९५०-५१ और १९५५-५६ की स्थिति के मुकाबले दूसरी आयोजना के अत मे राष्ट्रीय आय, नियोजन, घरेलू बचत तथा उपभोग व्यय की स्थिति दी गयी है।

राष्ट्रीय आय, नियोजन, बचते और उपभोग

( करोड रु० में : १९५२-५३ के मूल्य के आधार पर )

| | १९५०-५१ | १९५५-५६ | १९६०-६१ |
|---|---|---|---|
| १. राष्ट्रीय आय | ९११० | १०,८०० | १३,४८० |
| २. शुद्ध नियोजन | ४४८ | ७९० | १,४४० |
| ३. शुद्ध विदेशी सहायता | (—) ७ | ३४ | १३० |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ४. शुद्ध घरेलू बचतें (२-३) | ४५५ | ७५६ | १,३१० |
| ५. उपभोग्य वस्तुओं पर खर्च (१-४) | ८६५५ | १०,०४४ | १२,१७० |
| ६. राष्ट्रीय आय की तुलना मे नियोजन का प्रतिशत | ४.६४ | ७.३१ | १०.६८ |
| ७. राष्ट्रीय आय की तुलना मे घरेलू बचतों का प्रतिशत | ४.६८ | ७.०० | ६.७२ |

यदि आवश्यकता के अनुसार विदेशी सहायता नहीं मिली, तो उपभोग की वृद्धि को उसी अनुपात मैं रोकना होगा। ६,२०० करोड रुपये के नियोजन से राष्ट्रीय आय मैं २५ प्रतिशत की वृद्धि होगी, बशर्ते कि आयोजन मे सामंजस्य रखा जाय, अपव्यय को रोका जाय और उत्पादन के सुधरे तरीके अपनाने तथा विकास के लिए अच्छा वातावरण बनाने के मामलों मे लोगों की सहायता तथा सहयोग प्राप्त करने के लिए ठीक संघटन-कार्य हो।

दूसरी आयोजना की अवधि में कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों मे ८० लाख लोगों को पूरे समय काम मिलने का अनुमान है। आयोजना मे सिंचाई और और भूमि-सुधार जैसे ऐसे विकास कार्यक्रम हैं, जिनसे कुछ हद तक अपर्याप्त रोजगार की स्थिति मे सुधार होगा और हो सकता है इनसे नये लोगों को भी काम मिले। आयोजना मे कृषि वस्तुओं की उपज मे और कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में रोजगार की स्थिति में पर्याप्त सुधार होगा। इससे लोगों की आमदनिया काफी बढ़ेंगी और अपर्याप्त रोजगार की स्थिति सुधरेगी। आयोजना मे सुझाये गये तरीके से ग्राम तथा छोटे उद्योगों का विस्तार और पुनर्गठन होने पर ज्यादा लोगों को काम मिलेगा। अनुमान है कि दूसरी आयोजना में १ करोड़ आदमियों को रोजगार की दरकार होगी।

विभिन्न राज्यों द्वारा आयोजना पर व्यय की तालिका आगे दी गयी है—

(करोड़ रु० में)

| | पहली आयोजना | दूसरी आयोजना |
|---|---|---|
| आंध्र | ७५.६ | ११६.० |
| असम | २८.१ | ५७.६ |
| बिहार | १०४.४ | १६४.२ |
| बम्बई | १८१.३ | २६६.२ |
| मध्य प्रदेश | ५७.५ | १२३.७ |
| मद्रास | ६७.० | १७३.१ |
| उड़ीसा | ८५.२ | १००.० |
| पंजाब | १२४.० | १२६.३ |
| उत्तर प्रदेश | १६५.६ | २५३.१ |
| पश्चिम बंगाल | १५१.६ | १५३.७ |
| क) राज्यों का योग | १०७१.२ | १५६७.२ |
| हैदराबाद | ५७.० | १००.२ |
| मध्य भारत | ३६.१ | ६७.३ |
| मैसूर | ५३.२ | ८०.६ |
| पटियाला | ३६.२ | ३६.३ |
| राजस्थान | ६२.८ | ६७.४ |
| सौराष्ट्र | २६ ८ | ४७.७ |
| तिरुवांकुर-कोचीन | ३५.४ | ७२.० |
| जम्मू और कश्मीर | १३.२ | ३३.६ |
| (ख) राज्यों का योग | ३२६.७ | ५३५.४ |
| अजमेर | ३.६ | ७.६ |
| भोपाल | ६.३ | १४.३ |
| कुर्ग | २.० | ३.८ |
| दिल्ली | १०.५ | १७.० |
| हिमाचल प्रदेश | ७.५ | १४.७ |
| कच्छ | ४.२ | ७.६ |

| | | |
|---|---|---|
| मणिपुर | २.२ | ६.२ |
| त्रिपुरा | ३.० | ८.५ |
| विंध्य प्रदेश | ६.३ | २४.६ |
| (ग) राज्यों का योग | ५२.२ | १०५.२ |
| अंडमान और निकोबार द्वीप | १.५ | ५.६ |
| उत्तर पूर्वी सीमा अभिकरण | ४.४ | ६.५ |
| पांडिचेरी | ०.८ | ४.८ |
| योग— | ६.७ | २०.२ |
| दामोदर घाटी निगम मे केन्द्र का हिस्सा | ... | १२.२ |
| राष्ट्रीय विस्तार और सामुदायिक योजनाओं के लिए दी जाने वाली अतिरिक्त रकम | ... | ०.७* |
| कुल योग | १४५६.८ | २२४०.६ |

संक्षेप में दूसरी पंचवर्षीय आयोजना का यही रूप हैं ।†

---

*यह रकम आयोजना में अलग-अलग राज्यों के लिए की गयी व्यवस्थाओं के अतिरिक्त है । राष्ट्रीय विस्तार और सामुदायिक योजनाओं के लिए २०० करोड़ रु० रखा गया है, जिसमें से लगभग १२ करोड़ रु० केन्द्रीय सरकार के नाम दिखाया गया है। जब राज्यों की योजनाएं बनायीं गयी थीं, तो अलग-अलग राज्यों के लिए अस्थायी रूप से व्यवस्थाएं की गयीं थी। कार्यक्रमों के विवरण निर्धारित हो जाने पर इन पर फिर विचार किया जानेवाला था । ‡

†भारत सरकार के सूचना विभाग द्वारा प्रकाशित संक्षिप्त रूप के आधार पर ।

# परराष्ट्र-नीति

**दो भागों में विभक्त—एशियाई सम्मेलन—राष्ट्रमंडल की सदस्यता अमेरिका से नाता—बिना शर्त सहायता प्राप्त का सिद्धांत—चीन और भारत रूस से मैत्री सम्बन्ध—पश्चिमी एशिया—लैटिन अमेरिका के देश—अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएं—बांदुंग सम्मेलन—सैनिक गुटबन्दी का विरोध—पंचशील के मोटे सिद्धांत।**

स्वतंत्रोत्तर भारत की प्रमुख राजनीतिक समस्याओं का विवरण प्रस्तुत करने के बाद अंत में उसकी परराष्ट्र-नीति की प्रवृत्तियों और उनके विकास का संक्षिप्त इतिहास दिया जा रहा है। इसका संचालन आरम्भ से ही पंडित जवाहर लाल नेहरू करते रहे है। आरम्भ से ही आप प्रधान मंत्री के साथ-साथ परराष्ट्र मत्री भी रहे है। स्वतन्त्र भारत की परराष्ट्र नीति के निर्धारण और नियमन का अधिकार प्राप्त करने के बाद आपने इस क्षेत्र में जो सिद्धांत निर्धारित किये, सात वर्षों के बाद उनकी परिणति 'पंचशील' में हुई। आज न केवल भारत बल्कि रूस और चीन सदृश महान् राष्ट्र भी परराष्ट्र-सम्बन्ध के निर्धारण में 'पंचशील' की महत्ता को स्वीकार कर चुके है। उनके साथ-साथ दक्षिण-पश्चिम एशिया में मिस्र सदृश प्रमुख राष्ट्रों द्वारा यह भी घोषित किया जा चुका है कि युद्ध की विभीषिका से विश्व को मुक्त रखने के लिए 'पंचशील' के सिद्धांतों का अपनाया जाना आवश्यक है।

भारत की परराष्ट्र-नीति का इतिहास स्पष्टतः दो भागों में विभक्त है। सन् १९४७ से १९५१ तक रूस और उसके मित्र-देशों की दृष्टि में भारत पश्चिमी गुट का अनुयायी रहा। सन् १९५२ के बाद रूस और उसके मित्र देशों का विश्वास अर्जित करने में भी भारत को सफलता मिली। १९५२ से १९५४ तक के अन्दर कोरिया में तटस्थ राष्ट्रबन्दी प्रत्यर्पण आयोग और हिन्दचीन के तथस्थ राष्ट्र निरीक्षण आयोग के अध्यक्ष-पद पर भारत की नियुक्ति से यह स्पष्ट हो गया कि विश्व के दो परस्पर विरोधी गुट तटस्था के मामले में समान रूप से भारत पर ही विश्वास कर सकते हैं।

अगस्त, १९४७ से १९४८ तक भारत आंतरिक समस्याओं में जिनका

उल्लेख विस्थापितों और कश्मीर-सम्बन्धी अध्यायों में किया जा चुका है, बुरी तरह फँसा रहा, अतः अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र की ओर वह नाम-मात्र से ही ध्यान दे सका। सन् १९४९ के आरम्भ में उसने अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं में सक्रिय रूप से दिलचस्पी लेनी आरम्भ की और तब से वह अबाध गति से इस दिशा में बढ़ता जा रहा है। इस दिशा में उसकी यात्रा का आरम्भ १९ एशियाई देशों के सम्मेलन से हुआ जिसका आयोजन डच साम्राज्यवाद प्रपीडित हिन्दएशिया की मुक्ति से सम्बन्धित समस्या पर विचारार्थ नयी दिल्ली में २० जनवरी, सन् १९४९ को हुआ था। "इसमें कुछ निश्चित सिफारिशें सुरक्षा परिषद से की गयी थी। इसके पश्चात् भारत के प्रधान मन्त्री की अध्यक्षता में १३ अप्रैल १९४९ को हिन्दएशिया की समस्या पर एक गैर रस्मी सम्मेलन हुआ जिसमें ११ देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया था।"*

इस सम्मेलन में भारत का नेतृत्व, एशिया में कायम साम्राज्यवाद के उच्छेदन की दिशा में उसकी कारर्वाई का ज्वलत प्रतीक था। इससे दो बातें स्पष्ट हो गयीं—(१) साम्राज्यवाद से भारत का समझौता नहीं हो सकता और (२) अन्तर्राष्ट्रीय समस्या अथवा विवाद को शातिपूर्ण ढग से सुलझाने के लिए राष्ट्रसंघ का उपयोग किया जाना चाहिये। आगे चलकर भारत ने बराबर इन मूल सिद्धान्तों के विकास की दशाएं उत्पन्न करने की चेष्टा की।

एशियाई सम्मेलन में २२ जनवरी, १९४९ को जो प्रस्ताव स्वीकार किया गया था, उसमें स्पष्टतः यह कहा गया था कि हिन्दएशिया में "डचों का आक्रमण दक्षिण-पूर्वी एशिया और संसार की शाति के लिए एक खतरा है।" भारत ने राष्ट्रसघ में इस पर ही जोर दिया—एशियाई सम्मेलन के आयोजन से पूर्व भी और बाद में भी। ३० जुलाई, १९४७ को ही (अस्थायी सरकार के काल में) राष्ट्रसंघ में भारत के सम्पर्क अधिकारी ने एक पत्र द्वारा सुरक्षा परिषद का ध्यान "हिन्दएशिया की स्थिति की ओर आकृष्ट किया था और राष्ट्रसंघ के अधिकार-पत्र के अन्तर्गत उचित उपायों का सहारा लेकर इस स्थिति का अंत करने की प्रार्थना की थी।"† राष्ट्रसंघ को निष्क्रिय देखकर ही

---

* 'रिपोर्ट आव दि मिनिस्ट्री आव एक्सटर्नल अफेयर्स' १९४९–५० पृ० सं० ७

† 'एनुअल रिपोर्ट आव दि सेक्रेटरी जेनरल आन दि वर्किंग आ वदि आर्गनाइजेशन' १ जुलाई १९४७ से ३० जून, १९४८ तक—पृ० सं० १७, (राष्ट्रसंघ का प्रकाशन)

पर आश्चर्य प्रकट किया था। फिलिपाइंस के राष्ट्रपति द्वारा प्रस्तुत प्रशांत संघ योजना का अमेरिका समर्थक था और भारत उसका विरोधी।

नेहरू की अमेरिका-यात्रा के फलस्वरूप भारत की परराष्ट्र नीति के इस सिद्धांत की सार्थकता सिद्ध हो गयी कि विचार-भिन्नता के बावजूद दो राष्ट्रों मे मैत्री कायम रह सकती है और दोनों एक दूसरे के लिए सहायक सिद्ध हो सकते हैं। वास्तव मे नेहरू की अमेरिका-यात्रा का उद्देश्य ही था दोनों देशों के मैत्री-संबंध को बढ़ाना। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए नेहरूजी ने भारत की परराष्ट्र-नीति के सिद्धांतों की हत्या नही होने दी। यह जानते हुए भी कि एशियाई देशों के कधे पर साम्राज्यवाद का जुआ लादने वाले कुछ यूरोपीय देश अमेरिका के परम मित्र है, उन्होंने दृढ़ता के साथ अमेरिका मे घोषित किया था कि "भारत एशियाई देशों को परतंत्रता के बंधन से मुक्त होते देखना चाहता है। वह इन देशों की जनता का शोषण और उत्पीडन बरदाश्त नहीं कर सकता। हिन्द एशिया, हिन्दचीन और अन्य एशियाई देशों की जनता में भारत की विशेष दिलचस्पी है।"*

उस समय भारत व्यापक अन्न-सकट का सामना कर रहा था। वह अमेरिका से गेहूँ चाहता था। यह आवश्यकता सर्वोपरि थी। अमेरिका भी यह जानता था और भारत के लोग भी यह जानते थे। अमेरिका की कूटनीति इस अवसर का लाभ उठाना चाहती थी। वह चाहती थी कि भारत गेहूँ प्राप्त करे और बदले मे अमेरिका को अबरक और मैगनीज दे। नेहरू जी ने यह सौदा ठुकरा दिया था। १३ अक्टूबर को अमेरिका की काग्रेस के समक्ष भाषण करते हुए उन्होंने स्पष्ट शब्दों मे यह घोषित कर दिया था कि "कडी तपस्या के बाद प्राप्त होने वाली स्वतंत्रा के किसी अंश के बदले में हम किसी प्रकार की भौतिक सुविधा को प्राप्त नहीं करना चाहते।"†

भारत की परराष्ट्र नीति का यह आवश्यक अंग रहा है कि देश के विकास लिए यदि विदेश से बिना शर्त आर्थिक सहायता प्राप्त हो सकती हो तो वह ग्रहण की जा सकती है। पं० नेहरू ने अमेरिका मे पुनः यह सिद्धांत स्पष्ट किया और बिना शर्त प्राप्त होने वाली अमेरिकन पूंजी का स्वागत करने के लिए तैयार रहने की घोषणा की।‡ इसी प्रकार उन्होंने इस बात पर भी

---

* लेखक की पुस्तक—'अमेरिका में नेहरू—पृ० सं० २४

† वही—पृ० सं० ९४

‡ वही—पृ० सं० ५२

तीखा व्यंग कसा था कि "हम शांति की बात करते हैं, लेकिन तैयारी करते हैं युद्ध की।" × नेहरू जी ने यह प्रतिपादित किया था कि युद्धकाल मे गुटबन्दी सार्थक हो सकती है लेकिन शांतिकाल मे वह निरर्थक है।

भारत की परराष्ट्र-नीति का आधार और लक्ष्य बराबर यही रहा है। वह निष्क्रिय नहीं है—गतिशील है। अमेरिका में नेहरू जी ने इस रूप में इसकी गतिशीलता व्यक्त की थी—"न तो हम वास्तविकता के प्रति अंधे हैं, न मनुष्य की स्वतंत्रता को दी गयी चुनौती को, वह चाहे जहा से आये, बिना प्रतिरोध किये स्वीकार कर सकते हैं। स्वतन्त्रता के संकटापन्न होने पर, न्याय के खतरे में पड़ने पर और आक्रमण होने पर न तो हम तटस्थ रह सकते हैं, न रहेंगे।"+

भारत और अमेरिका का पारस्परिक सम्बन्ध इन सिद्धातों पर ही आधारित रहा है। कुछ मामलों में भारत और अमेरिका के बीच मौलिक मतभेद रहा है। फिर भी भारत कभी टस से मस नहीं हुआ। इसके साथ-साथ अमेरिका से वह अपनी मित्रता बनाये रखने मे भी सफल रहा है। प्रथम पंचवर्षीय आयोजना से सम्बन्धित अध्याय मे इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि इस आयोजना काल मे विदेशों से उपलब्ध आर्थिक सहायता मे सबसे अधिक सहायता अमेरिका से ही प्राप्त हुई थी।

जिस दिन नेहरू जी ने अमेरिका मे पैर रखा था, उसके कुछ दिन पूर्व अर्थात् अक्तूबर के आरम्भ में ही चीन मे माओ सरकार की स्थापना की घोषणा की जा चुकी थी। यहा कम्युनिस्ट पक्ष को विजयी न होने देने के लिए अमेरिका, च्यांगकाई शेक की राष्ट्रीय सरकार को अरबों डालर की सहायता दे चुका था। फिर भी च्यांग सरकार को पलायित होना पड़ा और बाजी कम्युनिस्ट पक्ष के हाथ मे रही।

चीन में कम्युनिस्ट सरकार की स्थापना के दूसरे ही दिन अर्थात् २ अक्तूबर-१९४९ को मास्को रेडियो से यह घोषणा की जा चुकी थी कि "सोवियत सरकार तथा चीन की कम्युनिस्ट सरकार के बीच कूटनीतिक सम्बंध स्थापित हो गया है।" इसके तुरंत बाद ही रूसी गुट के अन्य कम्युनिस्ट देशों के भी रूस की ही नीति का अनुगमन किया था। पश्चिमी यूरोप तथा एशियाई देशों ने तब तक कोई निर्णय नहीं किया था।

---

× लेखक की पुस्तक—अमेरिका में नेहरू—पृ० सं० १३९

+ वही—पृ० सं०९५

चीन की कम्युनिस्ट सरकार के प्रति अमेरिका का रोष छिपा नहीं है। उस समय तो रोष बिलकुल ताजा था। तूफान आया ही था। ऐसे ही अवसर पर अमेरिका में नेहरू जी से पूछा गया था—"क्या चीन सरकार को भारत मान्यता देने वाला है?" उत्तर था—"चीन मे घटनेवाली घटनाओं की उपेक्षा नहीं की जा सकती।"*

१९४९ के वर्ष का अंत होते-होते भारत ने चीन की सरकार को मान्यता देने की घोषणा कर दी। राष्ट्रमंडल मे उसके शामिल होने के कारण जो आशंका व्यय की गयी थी, वह निर्मूल सिद्ध हुई। दुनिया ने यह देख लिया कि भारत ब्रिटेन का पिछलग्गू नहीं है। ब्रिटेन को अपना अनुगामी बनाने की क्षमता भी उसमे है; क्योंकि कुछ ही अर्से के बाद ब्रिटेन ने भी चीन सरकार को मान्यता प्रदान करने की घोषणा कर दी थी।

चीन-अमेरिका के पारस्परिक सम्बंध मे निरंतर कटुता बढ़ती गयी लेकिन इसके विपरीत भारत-चीन सम्बंध क्रमशः दृढ़ से दृढ़तर होता गया। मित्रता के विकास के इस क्रम मे ही अप्रैल, १९५४ मे 'पचशील' सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा हुई जिन्हें आज परराष्ट्र-सम्बंध की आचरण संहिता मे प्रमुख स्थान प्राप्त हो चुका है।

चीन कम्युनिज्म का अनुगामी है और भारत लोकतन्त्र मे अपनी आस्था प्रकट कर चुका है। फिर भी दोनों की मित्रता अक्षुण्ण है। सह-अस्तित्व (पंचशील) के सिद्धांत की सार्थकता का यह ज्वलंत उदाहरण भारत की ही परराष्ट्र नीति की देन है।

अमेरिका की ही भांति विश्व के सर्वाधिक शक्तिशाली राष्ट्र रूस के साथ भारत के कूटनीतिक सम्बन्ध के स्वस्थ विकास मे भी भारत की परराष्ट्र नीति का जबरदस्त हाथ है। सन् १९४८ तक रूस का यही मत था कि "स्वतंत्र परराष्ट्र एवं गृहनीति निर्धारित करने का उसका (भारत का) कार्य वाह्य शक्तियों के कारण अवरुद्ध है, जो उपनिवेशवादी शासन को स्थायी बनाये रखना चाहती है।"† इस समय तक भारत के सत्ताधारी राष्ट्रीय नेताओं को रूस मे 'तथाकथित राष्ट्रीय' नेता बताया जाता था।‡ यह विचार अगले चार-पाच वर्षों तक बना रहा रहा। दक्षिण कोरिया पर उत्तर कोरिया के आक्रमण से सम्बंधित

---

* लेखक की पुस्तक—चीन और नेहरू, पृ० सं० १२

† लेखक की पुस्तक—नेहरू की रूस-यात्रा पृ० सं० ४

‡ न्यू टाइम्स (मास्को) २१ अप्रैल, १९४८ का अंक, पृ० सं० ५१

सुरक्षा समिति ( राष्ट्रसंघ ) के २५ जून, १९५० के प्रस्ताव का भारत द्वारा समर्थन, उसके प्रति रूस और उसके समर्थक राष्ट्रों की धारणा पक्की करता रहा लेकिन अंततः सन् १९५३ में यह धारणा निर्मूल सिद्ध हो गयी जब जुलाई, १९५३ में कोरियाई युद्ध-विराम संधि में निर्दिष्ट बंदी प्रत्यर्पण आयोग का अध्यक्ष भारत को नियुक्त करना अमेरिका तथा उसके पक्ष के राष्ट्रों के साथ-साथ रूस तथा उसके पक्ष के राष्ट्रों ने भी स्वीकार कर लिया और दोनों गुटों ने बंदियों की अदला-बदली के लिए कोरिया में सैनिक भेजने का अधिकार केवल भारत को ही दिया। इस प्रकार भारत के निकट आने पर रूस की धारणा भी बदल गयी और आज वह भी स्वीकार करता है कि विश्व को युद्धाग्नि में भस्म होने से बचाने के लिए भारत और चीन द्वारा प्रतिपादित सह-अस्तित्व ( पंचशील ) का सिद्धांत सभी राष्ट्रों द्वारा अपनाया जाना आवश्यक है। रूस-भारत मैत्री-सबध के विकास का यह स्तर नेहरू जी की रूस-यात्रा का परिणाम है। जून, १९५५ में नेहरू जी ने रूस की यात्रा की थी। इसके फलस्वरूप ही रूस के प्रधान मंत्री मार्शल बुलगानिन और रूस की सुप्रीम सोवियत की प्रिसीडियम के सदस्य निकेता ख्रुश्चेव ने नवम्बर-दिसम्बर १९५५ में भारत का भ्रमण किया था। रूसी नेताओं का भारत-भ्रमण और भारत में करोड़ों नागरिकों द्वारा सार्वजनिक रूप में उनका स्वागत विश्व के आधुनिक इतिहास की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना है जिसे मौन रह कर पश्चिमी देश साश्चर्य देखते रहे! कम्युनिस्ट रूस के गत चालिस वर्षों के इतिहास में एक भी ऐसी घटना नहीं मिलती। रूस के नेताओं ने इससे पूर्व कभी किसी गैर कम्युनिस्ट देश का भ्रमण नहीं किया था।

दोनों देशों के नेताओं द्वारा एक दूसरे के देश की यात्रा से भ्रान्त धारणाओं का उन्मूलन हुआ और आज दोनों का मैत्री सम्बंध क्रमशः अत्यधिक दृढ़ होता जा रहा है। इस समय दोनों देशों के बीच व्यापार सम्बंध भी काफी बढ़ा हुआ है और रूस यथाशक्ति भारत को आर्थिक सहायता देकर उसके विकास में योगदान कर रहा है। आज वह मानता है कि भारत शांति का पुजारी है। उसकी नीति पारस्परिक सद्भावना के विकास पर आधारित है। वह युद्ध का विरोधी और मानवता का उपासक है।

छोटे छोटे देशों से भारत का मैत्री सम्बंध है ही। दक्षिण एशिया के बर्मा और हिंदएशिया सदृश प्रमुख राष्ट्र उसकी परराष्ट्र-नीति के प्रशंसक और उसके सिद्धान्तों के उपासक हैं। अब तो लंका की है सरकार भी जिसने चुनाव में कोटलेवाला सरकार को पराजित किया, भारत की परराष्ट्र-नीति से अपनी

सहमति प्रकट कर चुकी है। पूर्वी यूरोप के प्रमुख कम्युनिस्ट देश यूगोस्लाविया और रूस में पुनः मैत्री स्थापित कराने में भारत की परराष्ट्र-नीति के सिद्धान्तों और उसकी गतिशीलता का प्रमुख हाथ रहा है। सन् १९४९ में यूगोस्लाविया को कोमिंफार्म की सदस्यता से पृथक करके रूस तथा उसके समर्थक अन्य कम्युनिस्ट देशों ने उसका तिरस्कार किया था।

पश्चिमी एशिया के प्रमुख अरब देश भी भारत की परराष्ट्र-नीति के समर्थक है और मानते है कि वह पिछड़े हुए छोटे-छोटे राष्ट्रों का प्रेरणा-स्त्रोत है। जिस प्रकार भारत अन्तर्राष्ट्रीय सैनिक गुटबदी का विरोधी हैं, उसी प्रकार सऊदी अरब और मिस्र सदृश प्रमुख अरब देश भी उसके विरोधी हैं। ये देश पश्चिमी देशों से कहीं अधिक विश्वास भारत पर करते हैं। सूडान के चुनाव आयोग मे भारत को शामिल करना मिस्र ने सहर्ष स्वीकार किया था। अरब के शाह ने १९५५ मे स्वयं भारत का भ्रमण किया और उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

लैटिन अमेरिका के लोगों के प्रति मित्रता की भारत की नीति क्रमशः विकसित हो रही है। फरवरी, १९५५ मे भारत ने क्यूबा के राष्ट्रपति के अधिष्ठापन समारोह मे भाग लेनेके लिए एक विशेष दूत भेजने का निमत्रण स्वीकार किया था। मार्च में मांटिविडो मे नयी राष्ट्रीय परिषद के उद्घाटन समारोह के लिए उसने युरुग्वे सरकार का भी निमंत्रण स्वीकार किया था। उसने ग्वाटेमाला सरकार को विधवत् मान्यता प्रदान की है और क्यूबा सरकार से वह सैद्धांतिक रूप में राजनीतिक सम्बधों के विनिमय पर सहमत हो गया है। भारत अर्जेण्टाइना मे पेरो सरकार की उत्तराधिकारिणी सरकार को भी मान्यता प्रदान कर चुका है।

भारत की परराष्ट्रनीति निष्क्रिय और गतिहीन नही है। वह विकासशील है और उसमें, सैद्धान्तिक विरोध रखने वालों को भी प्रभावित कर सकने की क्षमता है। हिंदएशिया, कोरिया, हिन्दचीन, चीन-अमेरिका के कटुतापूर्ण पारपरिक सम्बंध अलजीरिया और स्वेज की समस्याओं के मामले मे भारत ने जो रुख अख्तियार किया और उसका जो परिणाम सामने आया, उसकी समीक्षा से उपर्युक्त तथ्य सिद्ध हो जाता है।

कोरियाई युद्धबंदियों की वापसी के मामले में राष्ट्रसंघ ने संशोधित रूप में भारत का प्रस्ताव १ दिसम्बर, १९५३ को स्वीकार किया था। लेकिन यह निरर्थक सिद्ध हुआ क्योंकि रूस इससे सहमत नहीं हुआ। ११ अप्रैल, १९५३ को कोरियाई विराम-संधि पर संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रतिनिधि ने तथा कम्युनिस्ट

प्रतिनिधि ने हस्ताक्षर किये। इसके चंद दिनों बाद ही ६ मई, १९५३ को बंदियों के संरक्षण तथा उनके प्रत्यर्पण के सम्बंध में प्रमुख कम्युनिस्ट प्रतिनिधि जेनरल नाम इल ने अष्ट सूत्रीय प्रस्ताव रखा था। यह प्रस्ताव १ दिसम्बर, १९५२ के भारतीय प्रस्ताव के सदृश ही था। इसके कई अंश अक्षरशः भारतीय प्रस्ताव से लिये गये थे।* भारतीय नीति की सार्थकता का ही यह प्रमाण है। इसके पश्चात् ही भारत के सम्बंध मे रूस का रुख एकदम बदल गया और उसे अपना यह दोषारोप वापस लेना पड़ा कि भारत पश्चिमी गुट का अनुयायी है। भारत-स्थित तत्कालीन रूसी दूत ईवान ए० बेनेदिक्तोव ने मास्को लौटकर ३ अक्तूबर, १९५३ को स्वयं यह स्वीकार किया था कि "कोरिया का युद्ध समाप्त कराने मे भारत सरकार ने बहुत महत्त्वपूर्ण भाग लिया है।...एशिया मे शांतिपूर्ण निपटारे की कार्रवाई मे भारत का जो भाग हो सकता है, उसके महत्त्व को नजर अंदाज करना कठिन है।"†

सन् १९५४ में हिन्दचीन के सम्बध मे जनेवा में होने वाले सम्मेलन मे भाग लेने के लिए यद्यपि भारत को आमंत्रित नहीं किया गया था, तथापि उसके प्रतिनिधि कृष्ण मेमन ने पृथक-पृथक राष्ट्रों से गैररस्मी तरीके पर वार्ता करके सम्मेलन के निर्णय को जिस प्रकार प्रभावित किया; उसका लोहा अमेरिका के अतिरिक्त सभी देशों ने स्वीकार किया। हिन्दचीन के युद्ध मे अमेरिका ने फ्रांस की पर्याप्त सहायता की थी। फिर भी जनेवा सम्मेलन मे भाग लेने वाले अमेरिका के परराष्ट्र मंत्री जान फास्टर डलेस वार्ता भंग करने का अपनी उद्देश्य पूरा करने मे फ्रास का सहयोग प्राप्त न कर सके। ब्रिटेन ने स्पष्टतः भारत के विचारों से सहमति प्रकट की थी (लोक सभा मे नेहरू जी का भाषण, २४ अप्रैल, १९५४)। + चीन ने तो खुल्लम-खुल्ला भारत के प्रयास की सराहना की थी। उसके प्रधान मत्री चाओ एन लाई ने कहा था—"हिन्द चीन की लड़ाई को बंद कराने की कोशिश में भारत बराबर दिलचस्पी लेता रहा है। जनेवा सम्मेलन में हिन्दचीन मे फिर से शांति स्थापित करने के लिए जो प्रयत्न किये गये हैं; उनका उसने दृढ़ता से समर्थन किया है।"††

अपनी शांति की नीति के कारण ही भारत हिन्दचीन-सम्बंधी जनेवा समझौते

---

* लेखक की पुस्तक—चीन और नेहरू, पृ० सं ३९

† वही.....पृ० सं० ३८

+ चीन और नेहरू—पृ० सं० १२०,

†† चीन और नेहरू—पृ० सं० ५५,

के अनुसार वहां नियुक्त किये जाने वाले अन्तरराष्ट्रीय निरीक्षण आयोग का अध्यक्ष चुना गया। इस प्रकार एक बार पुनः वह दोनों परस्पर विरोधी गुटों का विश्वास समान रूप में अर्जित कर सकने में सफल रहा।

चीन में बंदी ११ अमेरिकी हवाबाजों की रिहाई भी भारत के ही प्रयास से सम्भव हो सकी थी। चीन इस मामले में अमेरिका की धमकियों के आगे नहीं झुका लेकिन शांति के पक्ष में भारत के विचारों से प्रभावित हुए बिना वह न रह सका। अवश्य ही अन्तर्राष्ट्रीय तनातनी को कम करने की उसकी अपनी इच्छा का भी महत्त्वपूर्ण भाग इस काररवाई में रहा और इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

सन् १९५५ में अमेरिका और चीन के प्रतिनिधियों के बीच सीधे सीधे जनेवा में जो वार्ता हुई, उसका आयोजन कराने में भी भारत ने मुख्य रूप से भाग लिया था। इसके पूर्व यही प्रतीत होता था कि अमेरिका और चीन के प्रतिनिधि प्रत्यक्षतः एक दूसरे से वार्ता कर ही नहीं सकते। इस जबरदस्त अन्तर्राष्ट्रीय जिच को समाप्त करने के प्रयास में भारत का योगदान उसकी परराष्ट्र नीति की सफलता का ज्वलंत उदाहरण है।

"बर्मा, सीलोन, भारत, हिंदएशिया और पाकिस्तान के प्रधान मंत्रियों के निमंत्रण पर एशियाई-अफ्रिकी देशों का सम्मेलन अप्रैल, १९५५ में बादुग (हिंदएशिया) में हुआ था। एशिया और अफ्रीका के २९ देशों ने इस सम्मेलन में भाग लिया था। इसका उद्देश्य था पारस्परिक सद्भावना और सहयोग में वृद्धि करना, समान सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक समस्याओं पर विचार करना, एशियाई और अफ्रिकी लोगों की विशेष अभिरुचि की समस्याओं का विवेचन करना—जैसे जातिवाद, उपनिवेशवाद आदि—तथा विश्व में एशिया और अफ्रिका की स्थिति की जांच करना और यह देखना कि विश्व में शांति एवं सहयोग को आगे बढ़ाने में वे किस प्रकार योगदान कर सकते हैं।

"सम्मेलन विश्व की महत्त्वपूर्ण घटना के रूप में देखा गया और सारी दुनिया का ध्यान इसकी ओर आकृष्ट हुआ क्योंकि इतिहास में यह पहला अवसर था जब एशिया और अफ्रिका के स्वशासित और स्वतंत्र देश एक साथ मिले। इसने एशियाई-अफ्रिकी देशों के बीच सद्भावना और मैत्री उत्पन्न की और इन देशों के नेताओं के बीच व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करने में सहायता दी।...सम्मेलन की समाप्ति पर जो विज्ञप्ति प्रकाशित हुई, उसकी ओर सारी दुनिया का ध्यान आकृष्ट हुआ।"*

*परराष्ट्र मंत्रालय का वार्षिक प्रतिवेदन, १९५५-५६, पृ० सं० ४४

इस ऐतिहासिक सम्मेलन के आरम्भ में लंका के प्रतिनिधि मंडल के नेता सर जान कोटलेवाला तथा पाकिस्तान के प्रतिनिधि मंडल के प्रमुख मोहम्मद अली आदि ने जो भाषण किये, उनसे सम्मेलन में भाग लेने वालो मे वर्तमान विचार-वैभिन्य स्पष्ट हो गया था। उन्होंने उपनिवेशवाद की आलोचना के प्रसंग में 'साम्यवादी साम्राज्यवाद' को घसीट कर कम्युनिस्ट देशों की भर्त्सना की थी। इसका कारण सम्भवतः यह रहा कि चीन भी सम्मेलन में भाग ले रहा था और अमेरिका से प्रभावित राष्ट्र उसे ताडित करना चाहते थे।

इस कारवाई के फलस्वरूप सम्मेलन की सफलता के प्रति आशंका प्रकट की जाने लगी। चीन, हिंदएशिया और बर्मा के सहयोग से सम्मेलन मे भाग लेने वाले भारतीय प्रतिनिधि मंडल के नेता पंडित जवाहर लाल नेहरू ने अकथ परिश्रम करके उपर्युक्त आशका निर्मूल सिद्ध कर दी। अवश्य ही इस सफलता मे चीन के प्रधान मंत्री और अन्य प्रतिनिधियों की सहिष्णुता का भी मुख्य हाथ था। फिर भी पंडित नेहरू के योगदान के महत्त्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

"सम्मेलन की गवेषणाओ के फलस्वरूप आर्थिक और सास्कृतिक सहयोग, उपनिवेशवाद, अणु-अस्त्र, सामूहिक संहार के अस्त्र और विश्व-शाति एवं सहयोग की उन्नति पर एक संयुक्त विज्ञप्ति प्रकाशित की गयी थी जिसका ऐतिहासिक महत्त्व है। विज्ञप्ति मे पंचशील के वे सिद्धात भी सन्निहित है जिनको भारत अन्य देशों के साथ अपने सम्बंध का आधार मानता है।"*

भारत की परराष्ट्र नीति मे अन्तर्राष्ट्रीय सैनिक गुटबंदी और सैनिक समझौतों को भी कोई स्थान प्राप्त नहीं है। भारत इन्हे विश्व-शाति के प्रयास मे बाधक मानता है। इस विश्वास के आधार पर ही उसने सन् १९५४ की मनीला संधि जिसके फलस्वरूप, दक्षिण-पूर्वी एशिया प्रतिरक्षा संघटन का जन्म हुआ, पाक-अमेरिका सैनिक समझौता तथा बगदाद समझौते का विरोध किया था। मनीला सधि मे शामिल होने के लिए भारत को भी आमंत्रित किया गया था लेकिन उसने इनकार कर दिया था। जिन शर्तों पर अमेरिका ने पाकिस्तान को सैनिक सहायता देने का निर्णय किया और उससे समझौता किया; उन्हीं शर्तों पर भारत को भी सैनिक सहायता देने के लिए तैयार रहने की घोषणा अमेरिका के राष्ट्रपति आइसन हावर ने की थी लेकिन भारत ने इसे भी स्वीकार नहीं किया। इस नीति के फलस्वरू उसे अमेरिका के उस वर्ग का कोप-

---

* परराष्ट्र मंत्रालय का वार्षिक प्रतिवेदन, १९५५–५६, पृ० सं० ४४.

भाजन होना पड़ा है जिसका कम्युनिस्ट-द्रोह बहुत उग्र है। इसके बावजूद भारत अपने सिद्धांत से विचलित नहीं हुआ है।

भारत की परराष्ट्र-नीति की आलोचना मुख्यतः इन बातों के आधार पर पर की जाती है—

(१) तटस्थ रहकर विपत्तिकाल में वह किसी से सहायता प्राप्त नहीं कर सकता, (२) दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों की समस्या सुलझाने में वह असमर्थ रहा है, (३) वह गोवा की समस्या नहीं सुलझा सका, (४) कश्मीर का मामला अधर में है और (५) लंका के भारतीयों की समस्या को सुलझाने में उसे सफलता नहीं मिली।

आलोचना का आधार आलोचकों का किसी न किसी पक्ष से लगाव ही है। सहायता प्राप्त न कर सकने की आशंका निर्मूल है। भारत आज सभी समर्थ देशों से सहायता प्राप्त कर रहा है और सभी उसके आर्थिक विकास में योगदान करने को उत्सुक हैं। दक्षिण अफ्रिका के भारतीयों के विरुद्ध वहां की यूनियन सरकार की नीति का विरोध भारत संयुक्त राष्ट्रसघ और उसके बाहर दृढ़तापूर्वक करता रहा है। दक्षिण अफ्रिका की सरकार अपनी रंगभेद की नीति को जारी रखने पर तुली है। भारत इसका विरोधी है। किसी गुट में शामिल होकर भारत उसे रंगभेद की नीति से विरत कर सकता है, यह कहना हास्यास्पद ही होगा। वह दक्षिण अफ्रिका की सरकार के जुल्म के विरुद्ध दुनिया का जनमत जागरित करने में सफल नहीं हो सका, यह कहना भी तथ्यों की अवहेलना करना होगा। बादुंग सम्मेलन में भाग लेने वाले २९ एशियाई और अफ्रिकी देश दक्षिण अफ्रिका सरकार की रंगभेद की नीति के विरोधी हैं ही। इनके अतिरिक्त रूस सदृश शक्तिशाली देश और पूर्वी योरोप के देश भी उसके विरोधी हैं। यह विरोध क्रमशः तीव्रतर होता जा रहा है।

कश्मीर और गोवा की समस्याओं के सम्बन्ध में भारत की नीति का उल्लेख विस्तार से पृथक अध्याय में किया जा रहा है। लंका के भारतीयों की समस्या पर दोनों देशों में पत्र-व्यवहार जारी है। भारत मैत्री-पूर्ण ढंग से यह समस्या हल करना चाहता है। दूसरा मार्ग ही क्या है? वह अपना मत लंका पर लाद नहीं सकता। युद्ध का प्रश्न नहीं उठता। यह उसके मूल सिद्धान्त के विपरीत है। भारत जिस मार्ग पर चल रहा है, उसके अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग ऐसा नहीं है जिस पर चलकर समस्या शांति-पूर्ण ढंग से सुलझायी जा सकती हो।

'पंचशील' के सिद्धान्त जिनका उल्लेख भारत और चीन के तिब्बत प्रदेश

के बीच व्यापार और संसर्ग के सम्बन्ध में २९ अप्रैल, १९५४ के भारत-चीन करार में हैं, भारत की परराष्ट्र-नीति के मूलाधार हैं। ये सिद्धान्त इस प्रकार हैं—(१) एक-दूसरे की प्रादेशिक अखंडता और प्रभुता का आदर करना, (२) एक-दूसरे पर कभी हमला न करना, (३) एक दूसरे के अन्दरूनी मामलों में दखल न देना, (४) समता और परस्पर-हित की नीति अपनाना और (५) शान्ति से साथ-साथ रहना। ये सिद्धांत ही सह-अस्तित्व के सिद्धांत के नाम से जगत् विख्यात हैं।

संक्षेप में भारत की परराष्ट्र-नीति का स्पष्टीकरण निम्नलिखित सिद्धान्त वाक्यों मे निहित है—

१—"हम केवल तटस्थ और नकरात्मक नीति का अनुसरण नहीं करना चाहते हैं, बल्कि क्रियात्मक नीति चाहते हैं। स्वभावतः इससे उन शक्तियों को मदद मिलेगी जिन्हे हम सही समझते है और उन बातों का विरोध होगा जिन्हें हम गलत समझते है—लेकिन बुनियादी तौर पर अपने को दूसरे देशों से और अन्य शक्तियों की गुटबदी से पृथक रखते हुए।"*

२—"आज गुटबंदी की दृष्टि से विचार करने का अर्थ है—गुजरे हुए कल की बात करना। इसका अर्थ यह हुआ कि जमाने की रफ्तार के मुकाबिले मे हमारी रफ्तार धीमी है।"†

३—"जब लोग राष्ट्रो की गुटबदी की बात करते है, तब सम्बंधित समस्याओं को अपेक्षाकृत अधिक आसान समझ लेते है। युद्ध के जमाने में गुटबंदी का अर्थ समझा जा सकता है। सम्भवतः तब वह अपरिहार्य होती है; लेकिन युद्धकालीन प्रवृत्ति को शांति-काल मे क्यो ग्रहण किया जाय और क्यों किसी देश से इस या उस गुट मे शामिल होने का अनुरोध किया जाय।"‡

४—"परराष्ट्र-नीति का अभिप्राय ऐसे सिद्धान्तों को निर्धारित करना नहीं है जिन पर विश्व चले। यह सम्बंधित देश की शक्ति पर निर्धारित होती है और उसके द्वारा नियंत्रित होती है। यदि वह देश की सामर्थ्य के बाहर हो तो उस पर टिका नहीं जा सकता।"=

———

* लोकसभा में नेहरू जी का भाषण—१७-३-५०

† ,, ,, ,, ,, ६-१२-५०

‡ ,, ,, ,, ,, ५८-३-५१

= राज्य परिषद् में नेहरू जी का भाषण—१६-३-५३

# उपसंहार

राजनीतिक समस्याओं का सामना करते हुए भारत इस समय अपने आर्थिक पुनर्निर्माण के प्रयास मे लगा है। पंचवर्षीय आयोजनाओं-सम्बंधी अध्यायों मे यह बताया जा चुका है कि उसने समाजवादी ढग के समाज की रचना का लक्ष्य निर्धारित किया है। स्मरण रखना चाहिये कि दिसम्बर, १९५४ मे ही ससद ने समाजवादी ढंग के समाज की सामाजिक और आर्थिक नीति का लक्ष्य निर्धारित करके मूलभूत और सुनिश्चित सिद्धान्तों को निश्चित दिशा प्रदान की थी। भारत सरकार की नीति किस हद तक इसके अनुकूल है, यह विवादास्पद का प्रश्न है और उसका उल्लेख यह यहा संगत भी न होगा।

वास्तव मे स्वतंत्रता अर्जित करने के बाद ही भारत ने जो उद्योग नीति निर्धारित की थी, उसमे उपर्युक्त दिशा की ओर संकेत कर दिया गया था। संक्षेप मे इतना ही कह देना होगा कि यहा मिश्रित अर्थ-व्यवस्था को प्रोत्साहन दिया जा रहा है।

६ अप्रैल, १९४८ को भारत के तत्कालीन उद्योग मंत्री डाक्टर श्यामा प्रसाद मुकर्जी ने ससद मे पहली बार उद्योग नीति पर विस्तृत वक्तव्य दिया था। इसमे निजी उद्योगो की सीमा निर्धारित कर दी गयी थी और यह निश्चय प्रकट किया गया था कि हथियारो और गोला-बारूद का निर्माण, अणुशक्ति के उत्पादन और नियंत्रण तथा रेलों और परिवहन का प्रबंध पूरी तरह सरकार के हाथ मे रहेगा। आपत्ति काल मे किसी महत्त्वपूर्ण उद्योग पर कब्जा करने का अधिकार भी सरकार ने प्राप्त कर लिया था। साथ ही यह भी घोषित कर दिया गया था कि "केंद्र, प्रांत और राज्यों की सरकारों तथा नगर निगमों जैसी सार्वजनिक संस्थाओ को कोयला निकालने, लोहा और इस्पात बनाने, विमान बनाने, जहाज बनाने, टेलीफोन तार और बेतार के तार का सामान बनाने और खनिज तेल निकालने के लिए संस्थान खड़े करने का भी अधिकार है।" बिजली बनाने और बेचने पर नियमन और नियंत्रण का अधिकार भी सरकार ने अपने हाथ म रखा।

सन् १९५५ तक सरकार इस नीतिका पर आचरण करती रही। ३० अप्रैल, १९५६ को उसने प्रस्ताव स्वीकार करके नयी औद्योगिक नीति स्वीकार की जिसमे राष्ट्रीयकरण का क्षेत्र पहले से अधिक विस्तृत कर दिया गया है।

अप्रैल, १९५६ के प्रस्ताव के अनुसार उद्योगों का वर्गीकरण तीन भागों में किया गया है। प्रथम वर्ग के उद्योग वे हैं, जिनके भावी विकास का दायित्व केवल राज्य पर होगा। द्वितीय वर्ग में वे उद्योग माने गये जिन पर राज्य का स्वाभित्व क्रमशः होगा और जिनमें नये प्रतिष्ठानों की स्थापना का भार तो सामान्यतः राज्य पर होगा किंतु जिनमे राज्य के प्रयत्नों में गैर सरकारी उद्यम के सहयोग की भी अपेक्षा की जायगी। तृतीय वर्ग में शेष समस्त उद्योगों का समावेश होगा और सामान्यतः इन उद्योगों का भावी विकास गैर सरकारी क्षेत्र के प्रयत्नों तथा उद्यम पर छोड दिया जायगा।

प्रथम वर्ग के उद्योग इस प्रकार है—(१) अस्त्र-शस्त्र और सुरक्षा के सामान (२) अणु-शक्ति (३) लोहा और इस्पात (४) हेवी कंस्ट्रक्शन के माल (५) खनिज उद्योग, मशीन निर्माण और इस प्रकार के अन्य उद्योग (६) बड़े-बड़े विद्युत प्लाण्ट, (७) कोयला और लिग्नाइट (८) खनिज तेल (९) कच्चालोहा, मैंगनीज, जिप्सम, गंधक, सोना और हीरा (१०) ताबा, रागा, जस्ता, टीन (११) अणुशक्ति आदेश ( १९५३ ) मे वर्णित खनिज पदार्थ (१२) वायुयान (१३) हवाई यातायात (१४) रेलवे यातायात (१५) जहाज-निर्माण (१६) टेलीफोन और उसके तार, टेलीग्राफ, बेतार का तार ( रेडियो को छोड़कर ) (१७) बिजली उत्पादन और वितरण।

द्वितीय वर्ग के उद्योग इस प्रकार हैं—(१) मिनरल्स कन्सेशन रूल्स ( १९४९ ) के भाग ३ के अन्तर्गत जिन छोटे-छोटे रासायनिक पदार्थों का उल्लेख किया गया है, उनके अतिरिक्त अन्य सभी रासायनिक पदार्थ (२) प्रथम वर्ग में जिन धातुओं का उल्लेख हुआ है, उनके अतिरिक्त अन्य सभी लोहेतर धातु तथा अल्युमोनियम (३) मशीन-निर्माण उद्योग (४) लौह मिश्रण तथा औजार बनाने के काम आनेवाला स्टील (५) औषधियों, रंगों तथा प्लास्टिक का उत्पादन करने के प्रसंग में काम मे आने वाले आधारभूत तथा मध्यवर्ती माल (६) एण्टीबायटिक तथा अन्य आवश्यक औषधिया, (७) रासायनिक खाद (८) नकली रबर (९) कोयले के कार्बन गैस का उत्पादन (१०) रासायनिक लुगदी (११) सडक परिवहन (१२) समुद्री यातायात।

शेष उद्योग तृतीय वर्ग मे माने गये हैं।

अपनी औद्योगिक नीति के ही अन्तर्गत भारत सरकार ने इम्पीरियल बंक का पुनर्गठन किया। यह कार्य विशेष रूप में देहातों में छोटे उद्योगों के लिए ऋण की व्यवस्था करने के लिए किया गया। इसके फलस्वरूप बंक पर 'सरकार का पूरा अधिकार हो गया है। राज्य बंक (स्टेट बैंक आव इण्डिया) के रूप में पुन-

गठित होने के बाद इम्पीरियल बंक ने पांच वर्षों में चार सौ शाखाएं खोलने का निश्चय किया और इस निश्चय के अनुसार ३१ दिसम्बर, १९५५ तक बीस केंद्रों मे शाखाएं खोली जा चुकी थीं।

राष्ट्रीयकृत उद्योगों के विकास के निमित्त पूंजी के समुचित उपयोग के उद्देश्य मे सन् १९५५-५६ मे भारत सरकार ने बीमा व्यवसाय के राष्ट्रीयकरण के प्रश्न पर ध्यान दिया। "राष्ट्रीयकरण के प्रभाव और सम्भाव्य विकल्पों का सूक्ष्म अध्ययन करने के बाद सरकार इस निष्कर्ष पर पहुँची कि जीवन बीमा व्यवसाय का तत्काल राष्ट्रीयकरण करना आवश्यक है। इस निश्चय को कार्यान्वित करने की तैयारी के रूप मे १९ जनवरी, १९५६ को जीवन बीमा अध्यादेश लागू किया गया। इसके अनुसार उपर्युक्त तिथि से ही सारे जीवन बीमा व्यवसाय के प्रबंध का अधिकार" सरकार ने अपने हाथ मे ले लिया।

उद्योगीकरण का मूल आधार इस्पात है। इस पर ध्यान देते हुए २८ मई, १९५५ को राष्ट्रपति द्वारा जारी किये गये अध्यादेश के अनुसार केंद्रीय सरकार के अन्तर्गत लोहा तथा इस्पात मंत्रालय की स्थापना पृथक से की गयी ताकि आवश्यकताओं की पूर्ति सफलतापूर्वक कर सकने का मार्ग प्रशस्त हो सके। यह आवश्यक भी था। हमारे देश मे इस्पात का उत्पादन मांग की अपेक्षा सदा से ही कम रहा है। इसका उत्पादन बढ़ाने का कार्य जारी है। रूरकेला, भिलाई और दुर्गापुर (पश्चिम बंगाल) मे इस्पात के तीन बड़े-बड़े कारखाने स्थापित करने की योजना कार्यान्वित की जा चुकी है। प्रत्येक कारखाने में दस-दस लाख टन इस्पात तैयार होने का अनुमान लगाया गया है। वर्तमान उत्पादन सिर्फ चौदह लाख टन के लगभग है। उपर्युक्त तीनों राजकीय कारखानों के बनने पर अनुमान लगाया गया है कि वर्तमान कारखानों के उत्पादन मे वृद्धि तथा नये कारखानों के उत्पादन को लेकर सन् १९६० तक ६० लाख टन इस्पात का उत्पादन किया जा सकेगा।

इस मामले मे भारत ने प्रथम बार रूस से बहुत बड़े पैमाने पर आर्थिक और प्राविधिक सहायता लेनी स्वीकार की। रूस-भारत समझौते के ही अन्तर्गत भिलाई मे इस्पात के कारखाने का निर्माण हो रहा है। इसका निर्माण रूस करा रहा है और उसके इंजीनियरों और विशेषज्ञों ने भारतीयों को प्रशिक्षित करने का कार्य भी आरम्भ कर दिया है। अनुमान है कि यह कारखाना सन् १९५९ तक चालू हो जायगा। रुड़केला के कारखाने के निर्माण में काफी प्रगति हो ही चुकी है।

वर्तमान युग को 'अणु-युग' कहा जाता है। इसमें संदेह नहीं है कि

निकट भविष्य में ही उद्योगीकरण काफी हद तक अणु-शक्ति पर निर्भर हो जायगा। इसमें यदि विध्वंस की अपरिमित शक्ति है तो निर्माण की दृष्टि से भी वह पीछे नहीं है। सन्तोष की बात है कि इस मामले मे भी भारत ने सतर्कता से काम लिया और इस दृष्टि से १९५६ का वर्ष का उसके लिए बहुत महत्त्वपूर्ण वर्ष माना जायगा क्योंकि इस वर्ष के उत्तरार्द्ध में भारत के परमाणु शक्ति संस्थान के तत्त्वावधान मे प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक होमी जहांगीर भाभा के नेतृत्व में भारतीय वैज्ञानिकों और इंजीनियरों ने अपने देश में ही बनायी हुई भट्ठी मे परमाणु को विकीर्ण करने के कार्य मे सफलता अर्जित की। अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस कनाडा और रूस के बाद इस दिशा में सफलता प्राप्त करने का श्रेय भारत को ही प्राप्त हुआ है, यह कम महत्त्व की बात नहीं है।

अणु-शक्ति के विकास के लिए भारत सरकार ने अगस्त, सन् १९५४ में डाक्टर होमी जहांगीर भाभा की अध्यक्षता में पृथक से अणु-शक्ति विभाग कायम किया था। इसने परमाणु शक्ति आयोग की नियुक्ति की थी जिसकी सिफारिश पर परमाणु शक्ति संस्थान कायम किया गया जो बम्बई से १३ मील दूर ट्राम्बे मे अपने कार्य मे संलग्न है।

ट्राम्बे आयोजना समिति ने जिसे परमाणु शक्ति की व्यवस्था की आयोजना तैयार करने का काम सौपा गया था, १९५५ में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था जो सरकार द्वारा स्वीकार किया जा चुका है। अब कार्य तेजी से आगे बढ़ रहा है जिसका अनुमान १९५६ मे प्राप्त सफलता के आधार पर सरलता से लगाया जा सकता है।

किसी भी देश के आर्थिक निर्माण मे जितना महत्त्व उद्योग नीति का होता है, उससे कम महत्त्व भूमि-व्यवस्था का नहीं होता। किसी अर्थ मे तो भारत सदृश कृषि प्रधान देश मे भूमि व्यवस्था का महत्त्व और भी अधिक होता है। इस दिशा में भारत जितना आगे बढ़ सकता था, उतना बढ़ा है या नहीं, यह कह सकना कठिन है। फिर भी इतना तो मानना ही होगा कि इस क्षेत्र में भी उसने काफी प्रगति की है और सामंतवादी प्रथा को तोड़ने मे सफल हुआ है। जमींदारी, जागीरदारी, ताल्लुकेदारी और ईनामदारी प्रथा को मिटाया जा चुका है। यह सिद्धान्त मान लिया गया है कि भूमि पर उसका ही अधिकार होना चाहिये जो उसे जोते और बोये। सम्प्रति यह सिद्धान्त पूरी तरह लागू नहीं किया जा सका है लेकिन जो प्रवृत्ति है, उसे देखते हुए कहा जा सकता है कि निकट भविष्य में ही उपर्युक्त सिद्धान्त निश्चित नीति का आधार बन जायगा और व्यवहारतः अपना लिया जायगा।

भूमि की समस्या सचमुच अब भी बहुत विकट है। कारण यह है कि इस देश मे लगभग चार करोड ऐसे कृषि मजदूर हैं जिनके पास जोतने-बोने के लिए भूमि नही है। निस्संदेह यह राष्ट्रीय अपव्यय है। सरकार कानून बना कर इसका सामना करने की चेष्टा कर रही है। लेकिन देश मे एक ऐसा भी वर्ग है जो विश्वास करता है कि कानून से यह समस्या हल नहीं हो सकती। यह वर्ग इस समय भूदान यज्ञ के प्रवर्त्तक आचार्य विनोबा भावे के नेतृत्व मे काम कर रहा है। अब तक आचार्य विनोबा भावे भूदान आन्दोलन को काफी बल प्रदान कर चुके हैं। अप्रैल, १९५१ मे उन्होंने हैदराबाद राज्य के अन्तर्गत पोचमल्ली स्थान में अकस्मात इसका सूत्रपात किया था। आज यह सारे देश पर छा गया है। आचार्य विनोबा भावे पैदल ही अनेक प्रदेशों का दौरा कर चुके है। उनके अनुयायियों की भी सख्या कम नहा है। दान में भूमि प्राप्त करना और भूमिहीनों के बीच उसे बाँटना उनका मुख्य काम है। नैतिक मान्यता और हृदय परिवर्तन के सिद्धान्त पर आधारित इस आन्दोलन के सम्बन्ध मे चाहे जो शका व्यक्त की जाय लेकिन यह असदिग्ध है कि आज अनेक देश इस आन्दोलन की ओर उत्सुकता पूर्वक आँखें लगाये हुए हैं और इस क्रान्ति के परिणाम की प्रतीक्षा कर रहे है।

आचार्य विनोबा भावे ने ५० लाख एकड भूमिदान मे प्राप्त करके उसका वितरण करने का फैसला किया है। उन्हें दान मे मिली भूमि के ताजे आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं। अप्रैल, १९५५ तक लगभग ३८ लाख एकड भूमि प्राप्त की जा चुकी थी। इसमें से प्रायः २ लाख एकड भूमि ५२ हजार परिवारों के बीच बाँटी जा चुकी थी। यह क्रम अब भी जारी है और अब तो आचार्य विनोबा भावे ने भूदान के साथ-साथ सम्पत्ति दान और जीवन-दान आन्दोलन भी आरम्भ कर दिया। गाँधी जी के बाद आचार्य विनोबा भावे ही ऐसे व्यक्ति हैं जो अपने आन्दोलन से सारे भारत को आलोडित करने में सफल हुए हैं।

समस्याए अनेक हैं, फिर भी हम भारत के सुनहले भविष्य में निश्चित रूप से विश्वास कर सकते हैं।

———